भारतीय ज्ञानपीठ

(स्थापना फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि. स. २४७०, विक्रम सं २०००, १८ फरवरी, १९४४)

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की पवित्र स्मृति मे

स्व० साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित

एवं

उनकी धर्मपत्नी स्व० श्रीमती रमा जैन द्वारा संपोषित

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तमिल आदि प्राचीन भाषाओं मे उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उनका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारो की सूचियाँ, शिलालेख-सग्रह, कला एव स्थापत्य पर विशिष्ट विद्वानों के अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं।

•

ग्रन्थमाला सम्पादक (प्रथम सस्करण)

डॉ. हीरालाल जैन एवं डॉ. आ. ने. उपाध्ये

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११० ००३

मुद्रक विकास ऑफसेट, दिल्ली-११० ०३२

Moortidevi Jain Granthamala : Prākrita Grantha No. 1



MAHĀBANDHO

[First Part : Prakṛti Bandhādhikāra]

of

Bhagvān Bhutabali

Vol. I

Edited and Translated by
Pt. Sumeruchandra Diwakar



BHARATIYA JNANPITH

Third Edition : 1998 □ Price : Rs. 140.00

BHARATIYA JNANPITH

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira N Sam 2470 • Vikrama Sam 2000 • 18th Feb 1944

MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA

Founded by
Late Sahu Shanti Prasad Jain
In memory of his late Mother Smt Moortidevi
and
promoted by his benevolent wife
late Smt Rama Jain

In this Granthamala Critically edited Jain agamic, philosophical,
puranic, literary, historical and other original texts
available in Prakrit, Sanskrit, Apabhramsha, Hindi,
Kannada, Tamil etc, are being published
in the respective languages with their
translations in modern languages
Also
being published are
catalogues of Jain bhandaras, inscriptions, studies,
art and architecture by competent scholars,
and also popular Jain literature

•

General Editors (First Edition)

Dr Hiralal Jain & Dr A N Upadhye

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003

Printed at Vikas Offset, Delhi-110032

समर्पण

जिन्होने समीचीन श्रद्धा, आत्म-विज्ञान और दुर्धर सकल संयम से समलंकृत हो, विषयासक्त विश्व को अपने विमल जीवन द्वारा आदर्श दिगम्बर श्रमण-चर्या का दर्शन कराया;

जिन्होने अपने आत्मतेज और प्रशस्त अध्यवसाय द्वारा भव्यात्माओ के अन्त करण मे रत्नत्रय की दिव्य ज्योति प्रदीप्त करते हुए उन्हे श्रेयोमार्ग मे संलग्न कराया,

जिन्होने परमपूज्य महाबन्धादि आगम ग्रन्थो के संरक्षण हेतु उन्हे ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण कराया, जिनवाणी की चिरस्मरणीय सेवा की तथा जनसाधारण मे सम्यग्ज्ञान के प्रसार हेतु उपयोगी ग्रन्थो को मुद्रित करवाकर अमूल्य वितरण कराया;

जिन्होने अपने नेत्रो की ज्योति मन्द होने पर अहिसा पहाव्रत के रक्षणार्थ वैयावृत्य रहित इंगिनीमरण रूप उच्च सल्लेखना को धारण कर इस दुषमा काल मे ३६ दिवस पर्यन्त आहार त्यागकर परम शान्तिपूर्वक आदर्श समाधिमरण किया;

जिनकी उच्च तप-साधना तथा अपूर्व आत्मतेज से शरीर पर लिपटनेवाले भीषण सर्पराज भी बाधाकारी न हुए तथा व्याघ्र आदि क्रूर वन्य पशु जिनके पार्श्व मे आकर प्रशान्त बने;

उन भयविमुक्त, आध्यात्मिक चूडामणि, चारित्र-चक्रवर्ती, साधुरत्न, १०८ आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज की पावन स्मृति मे—

—सुमेरुचन्द्र दिवाकर

GENERAL EDITOTIAL
(Third Edition)

Mahābandha is the sixth khanda (section) of the great Siddhānta work *Satkhandāgama* of Ācārya Bhūtabali It is also Known as *Mahādhavalā* The subject-matter of this work is of a highly technical nature which could be interesting only to those who are adepts in Jaina Philosophy and who desire to probe into the karma theory. The entire work is published in seven volumes Mahabandha is an integral part of *Satkhandāgama Satkhandāgama*, was reduced to writing, just at the time when the whole Jain canon was on the point of being forgotten In this connection it may be noted that according to the Digambara tradition all the twelve Angas have been lost except these portions of the last of them i e *Ditthivāya* and a bit of the fifth Anga According to the Śvetāmbaras, on the other hand, the first eleven are preserved though in a mutilated form, while the *Ditthivāya* is totally lost The last and 12th Anga of Jain canon is available in the form of *Ṣatkhandāgama* only The age of *Satkhandāgama* is about 614 years after the Nirvāna of Tirthankara Mahāvira, i e, A D 73-106 A.D and it is accepted by all The exact time of Bhutabali said to be about 87 A D and it is also confirmed that he was a Digambara Ācārya

Mahābandha is the composite work of the special features of *Karman* philosophy, and is was composed in forty thousand sutras in Prakrit prose The prakrit of the sutras, is Saurseni with special features

The literal meaning of 'Karma' is 'action' In its widest sense, the word is used for (*i*) floating wave of *Jiva* or soul, (*ii*) the bhava of affective consciousness with influx of matter into the soul and (*iii*) that affective consciousness generated by *Karman* molecules due to Sanskāras In fact, the activities of mind and matter constituted a superradio, with the quintillious of living cells sending out their individual waves to be tuned in quadrillious of receiving sets in the brain closely It is regarded as a subtle form of matter which is drawn in towards the soul as a result of our desires, passions and other thought activities It is a well-known fact that the whole cosmic evolution is due to the interaction between soul and matter The bondage of *Jiva* and *Karman* has been classified into *Prakriti* (Nature of Species of *Karman*), *Sthiti* (duration of *Karman*), *Anubhāga* (fruition of *Karman*) and *Pradeshabandha* (quantity of space-points of *Karman*) The first volume of the work, the *prakritibandha* deals with the nature of the Karmic bondage As it is in the nature of opium to bring intoxication so *karman* has its own nature While explaining the nature of *Karmas*, the author has cited the instance of meals, transforming into blood flesh, bone, muscle, marrow etc, in accordance with the digestive power, similarly the *Karmas* assure in numerable forms in conformity with the psychic experience of the Jiva The first chapter of the *prakritibandha* narrates the *sarvabandha*, no *sarvabandha*, *utkristabandha*, *anutkristabandha* etc *Adhikāras*

It is a matter of great pleasure that after a long time first part of *Mahābandha*

is coming forth neatly and well presented. According to the wishes of the former respected editors a few pages have been added to introduce the summary of this volume properly I hope and trust it will be useful for readers to understand the subject-matter of this great work.

I take this opportunity to offer my humble thanks to Sahu Ashok Kumar Jain and Sahu Ramesh Chandra Jain who are carrying on the noble work originated by Late Sahu Shanti Prasad Jain and Smt. Ramarani Jain

Devendra Kumar Shastri
Editor
Moortidevi Jain Granthamala

प्रकाशकीय
(प्रथम सस्करण)

प्राचीन जैन ग्रन्थो की शोध-खोज, सम्पादन-प्रकाशन तथा आधुनिक लोकोपयोगी, धार्मिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, सुरुचिपूर्ण भव्य साहित्य के निर्माण और प्रकाशन की भावनाओ से प्रेरित होकर सेठ शान्तिप्रसादजी और उनकी सहधर्मचारिणी श्रीमती रमारानीजी ने फाल्गुन कृष्ण ६, वि. स २०००, शुक्रवार, १८ फरवरी, १९४४ को बनारस मे भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना की।

उनकी धर्मनिष्ठ स्नेहमयी स्वर्गीया माता मूर्तिदेवी की अभिलाषा जैन सिद्धान्त ग्रन्थो—विशेषकर जयधवल, *'महाधवल'* के उद्धार की थी। अत उनकी अभिलाषा की पूर्तिस्वरूप उनकी पवित्र स्मृति मे ज्ञानपीठ से एक मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला प्रकाशित की जा रही है।

ज्ञानपीठ की स्थापना को ३-४ मास ही हुये थे कि श्री प. सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर ने स्वसम्पादित प्रस्तुत ग्रन्थराज प्रथम खण्ड को ज्ञानपीठ से प्रकाशित करने की अभिलाषा प्रकट की। माताजी की अभिलाषा पूर्तिस्वरुप जयधवल का प्रकाशन जैन सघ के तत्त्वावधान मे प्रारम्भ हो चुका था। अत *'महाधवल'* को ज्ञानपीठ से प्रकाशित कग्ना तुरन्त निश्चय कर लिया गया और वीरशासन जयन्ती की शुभ वेला मे प्रेस मे दे दिया। परम सन्तोष की बात है कि ३ वर्ष पश्चात् श्रुतपचमी के पुण्य दिवस पर उत्सुक और भक्तिविभोर जनता को उसके पूजन का अवसर मिल रहा है। हमारी अभिलाषा इसे शीघ्र से शीघ्र प्रकाशित करने की थी, पर प्रेस आदि की कठिनाइयो के कारण ऐसा नही हो सका।

दिवाकर जी ने अनेक विघ्न-बाधाओ को पार करके जिस साहस और अदम्य उत्साह से यह अलभ्य ग्रन्थ प्राप्त किया, उतनी ही लगन और परिश्रम से इसका सम्पादन किया है। ग्रन्थराज की उपलब्धि, अनुवाद और सम्पादनादि सब कुछ आत्मकल्याण की पवित्र भावना से किया है और इसी भाव से ज्ञानपीठ को प्रकाशन के लिए भेट कर दिया है। जिनवाणी के उद्धार की दिवाकरजी की यह निस्पृह भावना और लगन अनुकरणीय और अभिनन्दनीय है।

हम उन धर्म-प्रेमी महाशयो का विशेषत मूडबिद्री के पू भट्टारकजी का स्मरण करके आत्म-विभोर हो उठते है, जिन्होने घोर सकट काल मे, जब कि शास्त्रो को जला-जलाकर स्नान के लिए पानी गरम किया जाता था, मन्दिर विध्वस किये जाते थे, प्राणो से लगाकर इस ग्रन्थरत्न की रक्षा की और उपयुक्त समय आने पर उनके उत्तराधिकारियो ने भगवन्त भूतबलि की यह धरोहर समाज के कल्याणार्थ सौप दी।

समाज उन सभी बन्धुओ का आभारी है जिन्होने इस ग्रन्थराज की गोपनीय भण्डार से उपलब्धि और प्रतिलिपि कराने मे एक क्षण के लिए भी सहयोग दिया है अथवा प्रयत्न किया है।

वे महानुभाव भी कम आदर के पात्र नहीं है जिन्होने ग्रन्थ की प्राप्ति मे विघ्न नही डाला, क्योकि बने-बनाये शुभ कार्य तनिक-से विघ्न से छिन्न-भिन्न होते देखे गये है।

प परमानन्दजी साहित्याचार्य और प कुन्दनलालजी शास्त्री के हम विशेषत आभारी है जिन्होने उक्त ग्रन्थ के सम्पूर्ण आद्य अनुवाद में दिवाकर जी को नींव की ईट की तरह सहयोग देकर इस ग्रन्थप्रासाद की जड जमायी।

ज्ञानपीठ के प्राकृत विभाग के सम्पादक ख्यातिप्राप्त डॉ हीरालालजी ने इस ग्रन्थ का प्रास्ताविक लिखा है और सस्कृत विभाग के सम्पादक न्यायाचार्य प. महेन्द्रकुमारजी की देख-रेख मे मुद्रण और प्रकाशन हुआ है। समस्त प्रूफ उन्होने देखे है। दोनों ही विद्वान् ज्ञानपीठ के विशिष्ट अग है, उन्हे धन्यवाद देने का हमे अधिकार नहीं है।

हम उन सभी बन्धुओं के आभारी हैं जिनकी कृपा या भावनाओं से यह ग्रन्थराज प्रकाश मे आया और हमें भी घर बैठे दर्शनों और स्वाध्याय का पुण्य प्राप्त हुआ।

भार्गव प्रेस के मालिक पं. पृथ्वीनाथजी भार्गव भी धन्यवाद के पात्र हैं।

अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री

डालमियानगर,
५ मई, १९४७

प्रास्ताविकं किंचित्
(प्रथम सस्करण)

जव मैने *'षट्खण्डागम'* का सम्पादन प्रारम्भ किया था, तव मेरे मार्ग में अनेक विघ्न-वाधाएँ उपस्थित थीं। तो भी जव उक्त ग्रन्थ का प्रथम भाग सन् १६३६ में प्रकाशित हुआ और लोगो ने उसका आनन्द से स्वागत किया, तव मुझे यह आशा हो गयी कि कठिनाइयों के होते हुए भी यथासमय तीनो सिद्धान्त ग्रन्थ प्रकाश में लाये जा सकेंगे। फिर भी मुझे यह भरोसा नही था कि मेरी आशा इतने शीघ्र सफल हो सकेगी और साहित्यिक प्रवृत्तियो मे ससार-युद्ध के कारण अधिकाधिक वाधाओ के उपस्थित होते हुए भी, जयघवल का प्रथम भाग सन् १६४४ में तथा *'महावन्ध'* का प्रथम भाग सन् १६४७ में ही प्रकाशित हो सकेगा। जैन समाज और उसके विद्वानों के इन सफल प्रयत्नो से भविष्य आशापूर्ण प्रतीत होता है।

मैं *'षट्खण्डागम'* के प्रथम भाग की प्रस्तावना मे वतला चुका हूँ कि धवल और जयधवल सिद्धान्तों की प्रतिलिपियाँ सन् १६२४ मे ही मूडविद्री के शास्त्रभण्डार से वाहर आ गयी थीं और उसके पश्चात् कुछ वर्षो मे उनकी प्रतियाँ उत्तर भारत में उपलम्य हो गयीं। किन्तु *'महाधवल'* नाम से प्रसिद्ध सिद्धान्त ग्रन्थ फिर भी मूडविद्री सिद्धान्त मन्दिर मे ही सुरक्षित था। जव मैंने सन् १६३८-३६ में इन सिद्धान्त ग्रन्थो के अन्तर्गत विषयो को जानने का प्रयत्न प्रारम्भ किया, तव मुझे यह जानकर वडा विस्मय हुआ कि जो कुछ थोडा-वहुत वृत्तान्त *'महाधवल'* की प्रति के विषय मे प्राप्त हो सका था, उसके आधार पर उस प्रति में केवल वीरसेनाचार्यकृत 'सत्कर्म चूलिका' की एक पंजिका मात्र है और *'महावन्ध'* का वहाँ कुछ पता नहीं चलता। तव मैंने इस विषय पर अपनी आशका और चिन्ता को प्रकट करते हुए कुछ लेख प्रकाशित किये और अधिकारियों से इस विषय की प्रेरणा भी की कि वे मूडविद्री की ताडपत्रीय प्रति का सावधानी से समीक्षण कराकर *'महावन्ध'* का पता लगाएँ। मुझे यह कहते हर्ष होता है कि मेरी वह प्रार्थना शीघ्र सफल हुई। मूडविद्री के भट्टारकजी महाराज ने, प लोकनाथ शास्त्री व प नागराज शास्त्री से ताडपत्रीय प्रति की जॉच करायी और मुझे सूचित किया कि उक्त पंजिका ताडपत्र २७ पर समाप्त हो गयी है, एव आगे के पत्रों पर *'महावन्ध'* की रचना है। देखिए, जैन सिद्धान्त भास्कर (भाग ७, जून १६४०, पृ ८६-६८) में प्रकाशित मेरा लेख 'श्री *'महाधवल'* मे क्या है?' एव *'षट्खण्डागम'* भाग ३, १६४१ की भूमिका पृ ६-१४ मे समाविष्ट '*महावन्ध*' की खोज'।

इस अन्वेषण से उत्पन्न हुई रुचि वढती गयी और शीघ्र ही, विशेषत प. सुमेरचन्द्रजी दिवाकर के सत्प्रयत्न से, दिसम्वर १६४२ तक *'महावन्ध'* की प्रतिलिपि भी तैयार हो गयी व उन्होंने प्रस्तुत प्रथम भाग का सम्पादन व अनुवाद कर डाला। उनके इस स्तुत्य कार्य के लिए मै उन्हे वहुत धन्यवाद देता हूँ। पण्डितजी ने अपनी प्रस्तावना मे जो सामग्री उपस्थित की है, उसके साथ *'षट्खण्डागम'* के प्रकाशित ७ भागों मे मेरे-द्वारा लिखी गयी भूमिकाओ को पढ लेने की मै पाठकों से प्रेरणा करता हूँ। इससे इन सिद्धान्तो के इतिहास व विषय आदि का बहुत कुछ परिचय प्राप्त हो सकेगा। पण्डितजी की भूमिका के पृ. ३० पर णमोकार मन्त्र के जीवट्ठाण के आदि में अनिबद्ध मगल होने के सम्बन्ध का वक्तव्य मुझे बिलकुल निराधार प्रतीत होता है, क्योंकि वह प्राचीन प्रतियो के उपलब्ध पाठ एव आचार्य वीरसेन की[1] टीका की युक्तियो के सर्वथा विरुद्ध है। इस सम्बन्ध में *'षट्खण्डागम'*, भाग २ की भूमिका के पृ. ३३ आदि पर मेरा 'णमोकार मन्त्र के आदि कर्ता' शीर्षक लेख देखें।

---

१ "इद पुण जीवट्ठाण णिवद्धमगल। यत्तो 'इमेसिं चोद्दसण्ह जीवसमासाण' इदि एदस्स सुत्तस्सादीए णिवद्ध 'णमो अरिहताण' इच्चादि देवदाणमोक्कारदसणादो।" –ध टी, पृ ४१

निबद्ध का अर्थ स्वरचित है, जिसे दिवाकरजी ने स्वयं अपनी भूमिका में स्वीकार किया है। यथा—"अर्थात् सूत्र के आदि में सूत्र रचयिता के द्वारा रचित देवता नमस्कार निबद्ध मंगल है।"

'महाबन्ध' सिद्धान्त नाम से प्रसिद्ध शास्त्र यथार्थतः *'षट्खण्डागम'* का ही *'महाबन्ध'* नामक छठा खण्ड है जैसा कि मैं उसके प्रथम भाग की भूमिका में बतला चुका हूँ। वहाँ मैं इस ग्रन्थ के कर्ताओं व समय आदि के सम्बन्ध का भी विचार कर चुका हूँ। तब से अभी तक कोई ऐसी नवीन सामग्री प्रकाश में नहीं आयी, जिसके कारण मुझे अपने उस मत में परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत हो।

यद्यपि *'महाबन्ध'* *'षट्खण्डागम'* का ही एक अंश है और उन्हीं भूतबलि आचार्य की रचना है जिन्होंने पूर्व पाँच खण्डों के बहुभाग की रचना की है, यहाँ तक कि उसका मंगलाचरण भी पृथक् न होकर चतुर्थ खण्ड वेदना के आदि में उपलब्ध मंगलाचरण से ही सम्बद्ध है, तथापि यह रचना एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में उपलब्ध होती है। इसके मुख्यतः दो कारण हैं—एक तो यह ग्रन्थ पूर्व पाँचों भागों को मिलाकर भी उनसे बहुत अधिक विशाल है, और दूसरे उस पर धवलाकार वीरसेनाचार्य की टीका नहीं है, क्योंकि उन्होंने इतनी सुविस्तृत रचना पर टीका लिखने की आवश्यकता ही नहीं समझी। इस ग्रन्थ का विषय बहुत ही शास्त्रीय है जिसमें केवल जैनदर्शन के उन्हीं मर्मज्ञों की रुचि हो सकती है जिन्हें कर्मसिद्धान्त सम्बन्धी सूक्ष्मतम व्यवस्थाओं की जिज्ञासा हो।

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला के प्राकृत विभाग के सम्पादक और नियामक के नाते मैं इस अवसर पर श्रीमान् साहु शान्तिप्रसादजी जैन का अभिनन्दन करता हूँ और उन्हें धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने भारतीय ज्ञानपीठ-जैसी संस्था स्थापित की व भारतीय संस्कृति की छिपी हुई निधियों का संसार को परिचय कराने के हेतु अपनी मातुश्री की स्मृति में यह मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला प्रारम्भ करायी। मुझे आशा और विश्वास है कि उनकी धर्मपत्नी तथा ज्ञानपीठ की संचालक समिति की अध्यक्ष श्रीमती रमारानीजी की रुचि तथा संस्था के संचालक न्यायाचार्य पं. महेन्द्रकुमारजी शास्त्री के परिश्रम, अभियोग और उत्साह से संस्था का कार्य उत्तरोत्तर गतिशील होगा। मेरी सब विद्वानों से प्रार्थना है कि वे संस्था के उद्देश्य की पूर्ति में सहयोग प्रदान करें।

मॉरिस कॉलेज,
नागपुर, १५-४-४७

हीरालाल जैन
ग्रन्थमाला सम्पादक

द्वितीय आवृत्ति का प्रधान-सम्पादकीय

हर्ष का विषय है कि उन्नीस वर्षो के पश्चात् *'महाबन्ध'* के प्रथम भाग की द्वितीय आवृत्ति पाठको के हाथ पहुँच रही है। सयोग की बात है कि इससे पूर्व सन् १९५८ मे उधर *'षट्खण्डागम'* के प्रथम पाँच खण्ड सोलह भागों मे पूर्ण प्रकाशित हो गये और इधर छठा खण्ड भी सात भागो मे पूर्ण प्रकाशित हो गया। *'महाबन्ध'* की मूल प्रति के प्रारम्भ मे २७ पत्रो मे जो 'सतकम्म पजिका' पायी गयी थी, उसका भी सम्पादन करके *'षट्खण्डागम'* के १५वे भाग के परिशिष्ट रूप ११ पृष्ठो मे प्रकाशन कर दिया गया है।

पाठक देखेगे कि उक्त समस्त भागो मे हमने प्रत्येक भाग के विषय का शास्त्रीय परिचय देने का व उसका वैशिष्ट्य बतलाने का प्रयत्न किया है। *'महाबन्ध'* के अन्य भागों मे भी यही किया गया है। तदनुसार प्रस्तुत भाग के सम्पादक से भी यही अपेक्षा की जाती थी कि वे इस भाग के विषय का शास्त्रीय परिचय प्रस्तुत करे और उन गूढ रहस्यो को सामने लाएँ जो इस महान् आगम की विशेषता हो। किन्तु उन्होने वैसा न कर अपनी प्रस्तावना मे ऐसी चर्चाएँ की है जिनका इस भाग से लेश मात्र भी सम्बन्ध नही है, जैसे गुरु-परम्परा व प्रशस्ति-परिचय व मगल-चर्चा। यथार्थत प्रस्तुत ग्रन्थ मे कोई मगलाचरण नही है। *'षट्खण्डागम'* के प्रथम व तृतीय खण्डो के प्रारम्भ मे मगल आया है, वहाँ प्रस्तावनाओ मे उन पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इनके सम्बन्ध मे अपनी धारणाओ व कल्पनाओ का नही, किन्तु धवलाकार वीरसेन स्वामी के अभिमत का विशेष महत्त्व है। उन्होंने णमोकार मन्त्र को निबद्ध मगल और 'णमो जिणाण' आदि को अनिबद्ध मगल कहा है। इसी से फलित होनेवाली व्यवस्था पर विवेकपूर्वक ध्यान देना योग्य है। कर्मबन्ध मीमांसा पर विद्वान् सम्पादक ने ३५ से ८५ तक पचास पृष्ठ लिखे है। किन्तु वह सब सामान्य चर्चा है और प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रतिपादन का वहाँ लेशमात्र भी परिचय नही है। इसके लिए सम्पादक से बहुत आग्रह किया गया, किन्तु उन्होने प्रस्तावना मे कोई हेरफेर करना स्वीकार नहीं किया। उन्होने इस सस्करण के सम्बन्ध मे यह तो कहा कि १७ वर्ष के शास्त्राभ्यास के फलस्वरूप अनेक बाते परिवर्तन तथा सशोधन योग्य लगी तथा सहारनपुर निवासी नेमीचन्दजी व रतनचन्दजी ने अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। किन्तु यह बतलाने की कृपा नही की कि वे सशोधन कहाँ किस प्रकरण मे कैसे किये गये है। दो-चार सशोधन भी बतला दिये जाते, तो उनसे पाठ-सशोधन सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होतीं। अस्तु, हम विद्वान् सम्पादक के अनुगृहीत है कि उन्होने ग्रन्थ का यह द्वितीय सस्करण प्रस्तुत किया। ग्रन्थमाला अधिकारियो को भी धन्यवाद है कि उन्होने ग्रन्थ को द्वितीय बार भी सुन्दरता से प्रकाशित कराया।

हीरालाल जैन
आ. ने. उपाध्ये
प्रधान सम्पादक

ज़बलपुर
२६-९-६६

FOREWORD

When I started editing the *Satkhandāgama*, there were several difficulties in my way Still, when the first volume was published in 1939 and was received with general applause, I became hopeful that, inspite of all the hindrances then existing, all the three *Siddhānta* works would be brought to light in due course But I did not then expect that my hope will materialize so soon as to lead to the publication of *Jayadhavalā* Vol I in 1944 and of *Mahābandha* Vol I in 1947, inspite of the additional difficulties in the way of such literary efforts, created by the World War These successful efforts of the Jaina community and its scholars augur well for the future

I had already described in my introduction to Vol I of *Satkhandāgama*, how copies of *dhavalā* and *Jayadhavalā Siddhānta* had emerged from the Moodbidri temple as early as 1915 and how the same had become available in North India during the subsequent years, But the so-called *Mahādhavalā Siddhānta* was still confined to the private archives of the Moodbidri temple When I examined critically the contents of these *Siddhānta* works in 1938-39, I was startled to find that the scanty information available about the manuscript of *Mahādhavalā* only showed the existence of a gloss (Pamjikā) on the supplementary portion (Cūlikā) of Virasena's commentary *Dhavalā*, and there was no trace of the Mahābandha I, therefore, published a few articles on the subject expressing my anxiety in the matter and also urged upon the proper authorities the necessity of a thorough examination of the palm-leaf manuscript in search of Mahābadha I am glad to say that my appeal met with a ready response The Bhattārakaji got the palm-leaf manuscript examined by Pandit Lokanath Shastri and his colleagues, and reported to me that the gloss ended on leaf 27 and the rest of the MS did contain the Mahābandha (see my article on "*Śrī Mahādhavalā men kyā hai?*" in *Jaina Siddhānta Bhāskara* Vol VII, June 1940, pp 86-98, and "*Mahābandha kī khoja*" in Satkhandāgama Vol III, 1941, Introdiction, pp 6-14)

The interest aroused by this discovery was kept up, and a transcript of the *Mahābandha* was completed by the end of 1942, mainly through the efforts of Pandit Sumeruchandra Diwakar, the editor of this volume, to whom my best thanks are due for the laudable task he has done in obtaining, editing and translating the text, as well as in writing the introduction which the readers would be well advised to supplement by the information presented in my introductions to the seven volumes of Satkhandāgama so for published, in order to get a clear idea of the history and subject-matter of these works The remarks of Pandit Sumerchandraji on page 30 of his introduction regarding the *Pañca Namokāra Mantra* as *'anibaddha mangala'* in *Jīvatthāna* appear to me to be entirely baseless as they are against the reading available in the old MSS and the arguments set forth by Virasenacharya which I have discussed in my introduction to Vol II, p 33 ff under the heading *'Namokāra Mantra ke Ādikartā '*

The *Mahābandha*, popularly known as *Mahādhavalā Siddhānta* forms the sixth section (*Khandā*) of the *Satkhandāgama*, as I had already shown in my introduction to Vol I of that work where I had also discussed all the evidence available on the point of authorship and the age of these works No new material has since been brought to light and therefore my views on the subject remain unaltered

Though *Mahābandha* is an integral part of the *Satkhandāgama*, and is composed by the same author *Bhūtabali* who did not even provide it with a separate benediction (*Mangala*), but made it share the one given at the beginning of the fourth Khanda Vedana, yet it has come down to us in a separate manuscript for two reasons Firstly, the composition is much larger in volume than even all the first five sections put together, and secondly, it contains no commentary by Virasena, the author of *Dhavalā*, who thought it unnecessary to comment upon a work which was so exhaustively self-sufficient The subject-matter of the work is of a highly technical nature which could be interesting only to those adepts in Jaina philosophy who desire to probe the minutest details of the *Karma Siddhānta*.

As the General Editor of the Series, I take this opportunity to congratulate and offer my best thanks to Mr Shantiprasad Jain for establishing the Bharatiya Jnanapitha at Banares and starting this series of publications in memory of his mother Moortidevi, with the noble object of making known to the world the hidden treasures of ancient Indian culture I hope and trust that with the keen interest of Mrs, Shantiprasad, Shrimati Rāma Rani, the President of the Managing Committee, and the industry, zeal and enthusiasm of Nyayacharya Pandit Mahendrakumar Shastri, the acting Director of the institution, the work started would continue to advance steadily towards the goal I appeal to all scholors to cooperate with the institution in achieving its laudable object

Morris College,
Nagpur
15th March, 1947

Hiralal Jain
General Editor

द्वितीय संस्करण

यह परम आनन्द की बात है कि *'महाबन्ध'* सदृश दुरूह और गम्भीर ग्रन्थ के प्रथम खण्ड का प्रथम सस्करण समाप्त हो जाने से उसके पुन मुद्रण का मगल प्रसग प्राप्त हुआ। हमने *'महाबन्ध'* का सूक्ष्मता से पुन· पर्यालोचन करके भूमिका, अनुवाद आदि मे अत्यधिक आवश्यक तथा उपयोगी परिवर्तन और परिवर्धन किये है।

इस ग्रन्थ की कोई पूर्व मे टीका नहीं थी, अत· १७ वर्ष के शास्त्राभ्यास के फलस्वरूप अनेक बाते परिवर्तन तथा सशोधन योग्य लगी। सहारनपुर के श्रुतप्रेमी बन्धु श्री नेमीचन्दजी एडवोकेट तथा ब्र. रतनचन्दजी मुख्तार ने अनेक महत्त्वपूर्ण सशोधनो का सुझाव दिया। मूडबिद्री जाकर पुन प्रतिलिपि मिलाने के कार्य मे हमारे अनुज अभिनन्दनकुमार दिवाकर, एम ए, एल एल बी, एडवोकेट ने महत्त्वपूर्ण योग दिया था। हमारे भाई श्रेयासकुमार दिवाकर, बी.एस-सी से भी उपयोगी सहायता मिली। भाई शान्तिलाल दिवाकर के ज्येष्ठ चिरजीव ऋषभकुमार ने लेखन कार्य मे पर्याप्त श्रम उठाया है।

भारतीय ज्ञानपीठ ने इस ग्रन्थ के पुन मुद्रण का भार उठाया। इन सबके प्रति हम अत्यन्त आभारी है। चारित्रचक्रवर्ती, क्षपकशिरोमणि, १०८ आचार्य शान्तिसागर महाराज की इच्छानुसार सम्पूर्ण *'महाबन्ध'* की ताम्रपत्रीय प्रति के लिए पूर्ण ग्रन्थ संशोधन, सम्पादन तथा मुद्रण का महान् कार्य करने का पवित्र सौभाग्य मिला था। उस कार्य के अनुभव से इस टीका के कार्य मे विशेष लाभ पहुँचा। सन् १९५५ मे उन ऋषिराज ने सिद्धक्षेत्र कुन्थलगिरि में ३६ दिन पर्यन्त सल्लेलखनापूर्वक आदर्श देहोत्सर्ग किया। अत उनके पुण्यचरणों को कृतज्ञता पूर्वक स्मरण करते हुए प्रणामाजलि अर्पित करते है। ऋषीश्वर धरसेन आचार्य तथा पुष्पदन्त-भूतबलि मुनीन्द्रो के चरणों को शतश· वन्दन है, जिनके कारण इस द्वादशाग वाणी के अगरूप आगम का सरक्षण हुआ। 'जयउ सुयदेवदा।'

दिवाकर सदन, सिवनी
३० दिसम्बर, १९६४

—सुमेरुचन्द्र दिवाकर

PREFACE

(First Edition)

Mahābandha and its importance

We have great pleasure in placing before the literary world the first volume of *Mahābandha* alias *Mahādhavalā* which was hitherto hidden in the Śāstra Bhandār of Moodbidri (South Kanara) It is one of the three most reputed and revered Jain canonical works, whereof *Jayadhavalā* and *Dhavalā* have seen the light of the day and have reached the hands of scholars Ordinarily this *Mahābandha* is supposed to be as remarkable as the said two Śāstras but as a matter of fact, this is worthy of greater attention, since it is the biggest *Prākrta sūtra* work consisting of forty thousand ślokas, composed in the beginning of the Christian era

This *Mahābandha* is the sixth part of the great *Śatkhandāgama sūtra* The commentary on the five parts is called *Dhavalā*, composed by *Ācārya* Virasen in the 9th century A D during the reign of Jain monarch Amoghavarsha having 72000 *ślokas* The original *sūtras* consist of 6000 *ślokas*, out of which only 177 *sūtras* had been written by *Puspadanta Ācārya* and the remaining portion was composed by *Śrī Bhūtabalī Ācaryā* Thus the entire composition of *Bhūtabali* comes to about 46000 *ślokas*

The other sacred work *Jayadhavalā* is a commentary written in the 9th century A D by Virasen and *Bhāgwata Jinasen Ācārya* in 60000 *ślokas* on one of the most sacred scriptures, named *Kasāya Pāhuda* of Gunadhara Ācārya This *Kasāya Pāhuda* consists of only hundred and eighty *gāthās*, which also belong to the early part of the Christian era Naturally therefore *Dhavalā* and *Jayadhavalā* commentaries cannot rank with *Mahābandha* from antiquarian stand-point

This work deals with the *Bandha* category, which is one of the sevenfold *Tattvas* in Jainism, in the Jain *Saurasenī Prākrta* The language is simple and lucid The entire work is in prose, with the exception of about one and a half dozen verses About three thousand *ślokas* of the work are missing, since they have been eaten by worms and so they cannot be replaced by any amount of human effort

Historical reference

The entire work has no historical reference, even the name of the author Ācārya *Bhūtabali* does not appear in such a voluminous composition, probably reflecting the author's detachment for name, which according to poet Milton 'is the last infirmity of a noble mind '

In the panegyric the name of the work appears as *Mahābandha*, 'which is a mine of meritorious *karmas*' (सत् पुण्याकर महाबन्धपुस्तकं) This book has been referred to in the *Dhavalā* and *Jayadhavalā* on several occasions and its authorship is ascribed to *Bhūtabali* The *praśasti* of palm-leaf manuscript mentions that it was written through the munificience of *Rājā Śāntisena's* pious and benevolent queen *Mallikādevī* for the purpose of presentation to an erudite *Munirāj Māghanandī* who was the disciple of Meghachandra Suri in commemoration of the successful

completion of her Pañcamī-Vrta This throws light upon the fact that in ancient India the ladies of high families had refined taste and were attached to literature It is through the generosity of *Mallikādevī* that we have at least one copy amid us written in the Kannad script It is really a matter of profound regret that such important work has not been preserved in any other *Bhandāra*

The *Dhavalā* sheds light upon the descent of this work and the historicity of Monks *Bhūtabali*, *Puspadanta* and their spiritual preceptor *Dharasena Ācārya* He was a great soul and an enlightened scholar well-versed in some portions of the Twelve-*Angas*, which had been composed by the head of Jain hierarchy, *Gautama Ganadhar*, who had received direct Teaching from the Omniscient *Tirthankara Bhagavān Mahāvīra* *Dharasena* flourished after *Lohācārya*, who died 683 years after Mahavira's *Nirvāna* i e , in 137 A.D What is the exact date of *Dharasena* is not definitely known, but it is surmised that he must have lived a couple of years after *Lohācārya*. It is just possible that he might have seen the demise of *Lohācārya*, who possessed the knowledge of entire Ācharanga It appears, therefore, that *Dharasena* should belong to the later half of the second century after Christ

It transpires that *Dharasena Ācārya* was proficient in the occult science of Ashtanga Nimitta Śāstra, as also in 'Mahā-Karma-Prakriti-Prābhrita ' On one occasion his mind was diverted towards the sudden disappearance of canonical Teachings of Mahavira Bhagavana and this fact grieved him a great deal He made up his mind to preserve the Teaching, which was fresh in his memory He imparted instructions to *Bhūtabali* and *Puspadanta*, who were sent to him by the religious head of the monks of the south on his requisition for sending disciples specially remarkable for their memory and retentive faculty After the termination of studies, the disciples left the place in accordance with the wishes of their master *Puspadanta* went to Vanavās Desa (modern Wandewash), composed 177 *sūtras* and sent them to *Bhūtabali* with his high-souled disciple Jinapālita to Dramila Desa After going through the sūtras *Bhūtabali* could see into the mind of *Puspadanta* Jinapālita communicated to him that his master was not expected to survive long, thereby suggesting to him that he should speed up the matter of compiling the teaching imparted to them by the preceptor, Dharasena *Ācārya*

Bhūtabali devoted himself to writing with single minded devotion and was successful in completing the whole of Śatkhandāgama sūtra Fortunately *Puspadanta* was alive then, therefore he sent the entire composition to his colleague *Puspadanta* with the self-same saint Jinapālita *Puspadanta* was extremely delighted to see his heartfelt wishes fulfilled and he performed the worship of the scripture with due eclat and grandeur accompanied by the huge assemblage of Jains on *jyestha sudi* 5th day

Date of the author

The date of the author is not mentioned, but it appears that it must be assigned to the early part of the first century A.D

The Subject matter

The subject matter of this book, as already mentioned, is *Bandha*, (Bondage) which forms an essential part of the doctrine of *Karma* Almost all the believers in transmigration attach importance to the philosophy of *Karmas* The adage, 'as you

sow, so you reap,' is significant enough to show the universality and popularity of this doctrine, but the treatment of this subject is unique in Jain philosophy, in as much as it is scientific, rational and elaborate No other system has explained this matter, as has been done by Jain thinkers and sages

With a view to appreciate this doctrine it is necessary to comprehend the nature of the world Our analysis brings out that there are sentient and non-sentient beings in this universe The soul is possessed of consciousness, while other objects, devoid of this faculty, are matter, space, time, etc The special characteristics of matter are taste, smell, touch and colour All that is perceived by us is material Like the soul, matter is also indestructible They are eternal, therefore they are not created by any agency, whether super-natural or super-human The whold panorama of nature is the outcome of the combination or the chemical action of atoms due to the property of smoothness and aridity The variegated forms and appearances are evolved out of material atoms But this has driven many a thinker to the conclusion that some Intelligent and Supreme Being is at the helm of affairs He creates, destroys and recreates The entire world dances attendance to His sweet wishes He is Omnipotent, Omniscient and Enjoyer of transcendental bliss

The Jain philosophers do not agree with the idea of a Supreme Being guiding the destinies of all things, since it does not stand to critical examination and logical interpretation Impartial study and mature thought lead us to the conclusion that this world full of barbarities and inequalities cannot be the handiwork of a good, happy, Omnipotent and Omniscient God The observations of the scientist Huxley deserve special attention in this respect —

"In my opinion it is not the quantity, but the quality, of persons among whom the attributes of divinity are distributed, which is the serious matter If the divine might is associated with no higher ethical attributes than those which obtained among ordinary men, if the divine intelligence is supposed to be so imperfect that it connot foresee the consequences of its own contrivances, if the supernal powers can become furiously angry with the creatures of their omnipotence and in their senseless wrath destroy the innocent along with the guilty, or if they can show themselves to be as easily placated by presents and gross flattery as any oriental or occidental despot, if in short, they are only stronger than mortal men and no better, then surely, it is time for us to look somewhat closely into their credentials and to accept none but conclusive evidence of their existence " (Science & Hebrew Tradition p 258)

This world connot be the creation of a benevolent and good God, for it presents a poor picture of the abundance of misery and calamity as the lot of the majority of its creatures, Edwin Arnold in his Light of Asia argues —

> "How can it be, that Brahma,
> Would make a world, and keep it miserable,
> Since, if all-powerful, he leaves it so,
> He is no good, and if not powerful,
> He is not God "

Due to these failings, the Jains believe in a God, who is Omniscient, who is passionless and who enjoys the bliss of perfection, and who does not bother about

the creation or destruction of the world The manifold conditions of sentient beings are due to fruition of *Karmas* acquired by the *Jiva* in the past

Bondage of karma

Some think that the soul is pure and perfect, therefore it is wrong to suppose it as the reaper of the harvest of its merits or demerits This view goes against our experience and reason The mundane soul is impure, since it is contaminated with matter assuming the form of good or bad *karmas* We see that the *Jiva* has been imprisoned in this body, which is a store-house of the filthiest of objects The pure, perfect and powerful soul would never have liked to reside in such an impure tabernacle even for a moment We, therefore, infer that the *jiva* is under forced servility of something, which is instrumental for such an awkward position of the soul The main source of this downfall is the matter having assumed the form of a *Karma*

This *Karma* is material since its effects, auspicious or otherwise, are visible either on the physical body or they are exhibited by means of association or separation of material objects

This soul, although immaterial, is recipient of good or evil effects of the *Karmas* which are material This phenomenon should not bewilder any one, for we see that the intelligent being is subject to intoxication caused by drinking wine which is non-sentient It is to be noted that the very liquor does not cause any intoxication to the bottle which contains it Such is the nature of things

The mundane soul has got vibrations through mind, body or speech The molecules which assume the form of mind, body or speech, engender vibrations in the *Jiva*, whereby an infinite number of subtle atoms is attracted and assimilated by the *Jiva* This assimilated group of atoms is termed as *Karma* Its effect is visible in the multifarious conditions of the mundane soul As a red-hot iron-ball, when dipped into water, assimilates its particles, or as a magnet draws iron filings towards itself due to magnetic force, in the like manner the soul, propelled by its psychic experiences of infatuation, anger, pride, deceit and avarice, attracts karmic molecules and becomes polluted by the *Karmas* The psychic experience is the instrumental cause of this transformation of matter into a *Karma*; as the clouds are instrumental in the change of sun's rays into a rainbow

When *Karmas* come in contact with the soul, fusion occurs, whereby a new condition springs up which is endowed with marvellous potentialities and is more powerful than infinite atom bombs One can easily imagine the power of *Karmas*, which have covered infinite knowledge, infinite power, infinite bliss of the soul and have made a beggar of this very *Jiva*, who is no less than a Paramatman by its intrinsic nature Psychic experiences of anger etc , cause the fusion of *Karmas* and these *Karmas* again produce feelings of attachment, aversion or anger etc , thus the chain of karmic bondage continues *ad infinitum*

This karmas-soul-association is without a beginning There has been no period when the *fusion of Karmas* took place in a pure soul It is beyond comprehension that a perfect, pure, blissful, omniscient and powerful soul will ever enter into the folly of embracing the *Karmas* and thus dig its own grave by inviting innumerable and indescribable sufferings

When the husk of paddy is removed from it, the rice loses its power of

sprouting, likewise when the husk of Karmic molecules is removed from the mundane soul, the resulting perfect *Jiva* cannot be imprisoned by the regermination of *Karmas* The nature of a soul, entangled in the cob-web of transmigration, can be understood easily, when we divert our attention to the impure gold found in a mine The association of filth with golden ore is without beginning but when the foreign matter is burnt by fire and various chemicals, the resulting pure gold glitters, in the like manner the fire of right belief, right knowledge and right conduct destroys the karmic bondage in no time If the fire of self-absoprtion is intense, the work of destruction can be achieved within a span of 48 minutes This destruction does not mean complete annihilation of the atoms, but it denotes the dissociation of Karmic molecules from the soul

While explaining the nature of *Karmas,* the Jain saints have cited the instance of meals, transforming into blood, flesh, bone, muscle, marrow etc., in accordance with the digestive power, similarly the *Karmas* assume innumerable forms in conformity with the psychic experiences of the *Jiva* These Karmic molecules are superfine They are not visible even with the aid of physical instruments Even after the destruction of this physical gross body, the *Karmas* are not destroyed The Karmic body and the electric body (*Taijas Sharira*) always control and regulate the activities of the *Jiva* Had they left the *Jiva* for a moment, no power in the world could have recaptured the soul in the clutches of *Karmas* and debarred the Divine Being from enjoying transcendental bliss of liberation *

---

*The doctrine of *karma* Philosophy has been dealt with at length in my book "Religion and Peace " The great Hindu recondite scholar Dr Sir C P Ramaswami Aiyar had observed in his letter "The Chapter on *Karma* Philosophy is entitled to special attention, as the term *Karma* has not the same mening in Jain philosophy as in ordinary Parlance Jain philosophers, as the author says, do not agree with the idea of a Supreme Being personally guiding the destinies of all things *Karma* is in the nature of vibrations operating through mind, body or speech, by means of which atoms and molecules assume several aspects and forms A group of atoms is termed *Karma,* whose effect is visible in exterior condition This theory, in fact, embodies a marvellous pre-science of modern scientific developments The whole chapter is intensely interesting and is an attempt at rational expostion of Karmic bonds, as they affect the soul's evolution

"The final teaching that the *Jiva* with attachment gets bound by *Karma,* but the one with detachment remains free from *Karma,* is not different from the Vedantic approach, but the process of reasoning and the background of the doctrine are inherently *sui generis* and it is to the glory of the great Jain teachers that they were able to evolve a philosophy of conduct uninfluenced by any reliance upon supernatural intervention or guidance " (Relegion And Peace, p. 318)

"For it is impossible that he who has once been made perfect by love and feasts eternally and insatiably on the boundless joy of contemplation, should delight in small and grovelling things For what rational cause remains any more to the man who has gained the 'light inaccessible' for reverting to the good things of the world?" (Clement) A N C L Vol XII, pp 346-347)

Varieties of Bandha

The bondage of *Jiva* and *karma* has been classified into *'Prakrti', 'Sthiti', 'Anubhāga'* and *'Pradeśa' bandha* The first i e, the *prakrti bandha* deals with the nature of the Karmic bondage, e g the nature of opium is intoxication Similarly the *'Jñānāvaranīya' Karma* obstructs the knowledge, the *'Darśanāvaranīya'* obstructs *darsana* (form of consciounsess, which precedes knowledge), *'Vedanīya'* enables the soul to have sensations of pleasure or pain through senses, *'Mohanīya'*, the ring-leader of the *Karmas*, causes delusion and perverse vision of the self and non-self, *'Āyuh'* determines the length of life in a particular body, *'Nāma'* is responsible for physical form, complexion, constitution etc, *'Gotra'* decides the birth in high or low family and the last one, *'Antarāya'*, acts as an impediment in the acquisition and enjoyment of things, possession of strength etc These eightfold Karmas are further sub-divided into 148 varieties The present volume deals with this *prākrti bandha* from several stand-points The second one i e, *'sthiti bandha'* determines duration of the bondage, the third *'anubhāga bandha'* deals with the potentiality of various *karmas*; the foruth, *'pradeśa bandha'* causes the division of karmic molecules into several varieties in accordance with the vibrations of the soul

The modern worldy-wise man perhaps may think that this work has no bearing upon life and it is a mere display of intellectual exercises

An aspirant for liberation will immediately differ from this viewpoint In *Mahābandha* he will find wonderful remedy for warding off the feelings of attachment or aversion and thereby uplift the soul to the sphere of equanimous contemplation, which ultimately leads to the final beatitude One who devotes himself to the study of this work is so deeply engrossed therein, that he forgets for a while the world of attachment and aversion His Holiness the Digamber Jain *Ācārya Cāritra Cakravartī Śrī Śāntisāgar Mahārāj* had once remarked, "This Shastra must be thoroughly studied by those who are tired of transmigration and who long for liberation Proper knowledge of Bandha-Tattva is essential before proceeding towards the ultimate goal of purity and perfection "

In the end, we deem it our duty to express our sincere gratefulness to Sri D Manjjaiya Heggade, B A., M L C, Dharmasthala, His Holiness Bhattarak Sriman Charukirti Panditacharya Swami, Moodbidri and the trustees of the Jain Siddhanta Temple, Moodbidri, (South Kanara) for the kind permission to take a copy from the original text preserved in the Siddhanta Mandir

We are also thankful to Danvir Sri Shanti Prasal Jain, B Sc, the founder of the Bhāratīya Jñana-Pītha Kashi, through whose munificence this volume is coming to the hands of the public

Diwakar Sadan
Seoni (M P)
6th January, 1947

—Sumeruchandra Diwakar

Preface to the Second Edition

It is a matter of profound gratification that this sacrosanct scripture, *Mahābandha*, is undergoing the second edition When it was first printed in 1947, it was revealed that more than three thousand *ślokas* of the palm-leaf manuscript were irrevocably destroyed by moths This information deeply pinched the soul of the greatest Digambar Jain Saint His Holiness *Cāntra Cākravartī*—108 Ācārya Shanti Sāgar Mahārāj, who was then spending his Chāturmās—period of rainy season—in the Jain Tirtha, Kunthalgiri (Maharashtra State) When the saint's mental worry and disturbed internal condition became known, the devoted disciples humbly prayed for conveying to them the internal difficulty His Holiness observed "Look here, precious part of the most ancient and sacred Jain literature is lost for ever If immediate care is not taken for proper preservation of the remaining literary priceless treasure, we shall one day become paupers I, therefore, feel it imperative that the entire *Siddhānta* literature comprising of one lakh and seventy thousand *ślokas* should be inscribed in copper plates so that it may last for hundreds of years "

The master's bidding was immediately obeyed and about two lakhs of rupees were contributed by the generous, opulent and cultured disciples to fulfil the sublime desire of the saint

Fortunately, the sacred responsibility of critically editing and printing the entire Mahābandha comprising of forty thousand *ślokas* was entrusted to me

In view of my onerous responsibility and arduous duty, I had been to the Jain monastery at Moodbidri (South Kanara) with a view to critically examine and collate the press copy with the palm-leaf manuscript of the Shāstra Bhandar with my younger brother Abhinandan Kumar Diwakar, M A., LL , B , Advocate, Seoni This effort was very fruitful since several inaccuracies could be detacted then Thus the work was accomplished in such a way that His Holiness was much pleased and he bestowed his valuable blessings on me I had made a deep study of several Jain canonical compositions of master thinkers and literary luminaries, This study equipped me with such new and novel material as necessitated to thoroughly revise the first edition and make necessary additions and alterations in order that the wisdom-lovers may be profited thereby I, therefore, have improved this second edition with seveval new explanatory notes appended to the translation and have equipped the Hindi introduction with many a new points of information

All this is due to the great benevolent saint His Holiness *Ācārya Śāntisāgar* Mahārāj who was gracioulsy pleased to provide me the sublime opportunity to serve the cause of learning and thus purify and elevate my humble self Since the said great *Ācārya* left his mortal coil after a fast lasting for 36 days in 1955 by way of superb Sallekhanā—Ideal and pious death—because his eyesight grew dimmer and thus he could not faithfully follow the Ahimsā Mahāvrata—complete vow of non-injury I have, therefore, dedicated this volume to the sacred memory of the immortal saint

S.C. Diwakar

Diwakar Sadan
Seoni
26th January, 1965

प्राक्कथन

जैन वाङ्मय में धवल, जयधवल, *महाधवल* (*महाबन्ध*) इन सिद्धान्त ग्रन्थों का अत्यधिक सम्मान और श्रद्धापूर्वक नाम स्मरण किया जाता है। ये परम पूज्य शास्त्र मूडबिद्री, दक्षिण कर्णाटक के सिद्धान्त मन्दिर के शास्त्रभण्डार को समलंकृत करते हैं। इन ग्रन्थरत्नों के प्रभाववश सम्पूर्ण भारत के जैन बन्धु मूडबिद्री को विशेष पूज्य तीर्थस्थल सदृश समझ वहाँ की वन्दना को अपना विशिष्ट सौभाग्य मानते हैं, और वहाँ जाकर इन शास्त्रों के दर्शनमात्र से अपने को कृतार्थ मानते हैं। भगवद्भक्त जिस ममत्व, श्रद्धा तथा प्रेमभाव से पावापुरी, चम्पापुरी सम्मेदशिखर, राजगिरि आदि तीर्थस्थलों की वन्दना करते है, प्राय. उसी प्रकार की समुज्ज्वल भावनाओ सहित उत्तर भारत के श्रुतभक्त श्रावक तथा श्राविकाएँ दक्षिण भारत के पश्चिम कोण में मगलूर बन्दर के पार्श्ववर्ती मूडबिद्री की वन्दना करते हैं। उसे वे श्रुतदेवता की भूमि सोचते है। जिन व्यक्तियो को सिद्धान्त ग्रन्थों के कारण पूज्य मानी गयी मूडबिद्री को जाने का सौभाग्य नहीं मिला, वे उक्त स्थल की परोक्षवन्दना करते हुए उस सुअवसर की बाट जोहा करते हैं कि, वे कब वहाँ पहुँचकर अपने चक्षुओ को सफल कर सकें।

कहते हैं, ये सिद्धान्तशास्त्र पहले जैनबद्री—श्रमणबेलगोला के महनीय ग्रन्थागार को अलकृत करते थे। पश्चात् ये ग्रन्थ मूडबिद्री पहुँचे। इन ग्रन्थो की प्रतिलिपि भारतवर्ष-भर मे अन्यत्र कहीं भी नहीं थी। इन शास्त्रों का प्रमेय क्या है, यह किसी को भी पता नहीं था। बहुत लोग तो यह सोचते थे कि इन शास्त्रो में आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार सदृश चमत्कारप्रद एव भौतिक आनन्दवर्धक सामग्री-निर्माण का वर्णन किया गया होगा। हवाई जहाज, रेडियो, टेलीफोन, ग्रामोफोन, सोना बनाना आदि सब कुछ इन शास्त्रो मे होंगे। इस काल्पनिक महत्ता के कारण साधारण व्यक्ति भी श्रुतदेवता की वन्दना को सोत्कण्ठ सन्नद्ध रहते थे।

दुर्लभ दर्शन

ये ग्रन्थ अपनी महत्ता, अपूर्वता तथा विशेष पूज्यता के कारण बडे आदर के साथ निधि अथवा रत्नराशि के समान सावधानीपूर्वक सुरक्षित रखे जाते थे। जिस प्रकार विशेष भेट लेकर भक्त गुरु के समीप जाता है, उसी प्रकार वन्दक व्यक्ति भी यथाशक्ति उचित द्रव्य-अर्पण करके ग्रन्थराज की वन्दना करता था। शास्त्रभण्डार खुलवाने के लिए द्रव्यार्पण आवश्यक था। सिद्धान्त मन्दिर मूडबिद्री के व्यवस्थापक लोग ही शास्त्रों पर अपना स्वत्व समझते थे, उनकी ही कृपा के फलस्वरूप दर्शन हुआ करते थे। शास्त्रो की एकमात्र प्रति पुरानी (हळेकन्नड) कनडी लिपि मे थी, अत उस लिपि से सुपरिचित तथा प्राकृत भाषा का परिज्ञाता हुए बिना ग्रन्थ का यथार्थ रस लेने तथा देनेवाला कोई भी समर्थ व्यक्ति ज्ञात न था। ग्रन्थ को उठाकर दर्शन करा देना और चोरो से या बाधको से शास्त्रों को बचाना, इतना ही कार्य व्यवस्थापक करते थे। इसका फल यह हुआ कि अत्यन्त जीर्ण तथा शिथिल ताडपत्र पर लिखे ग्रन्थो की पुन' प्रतिलिपि कराकर सुरक्षा की ओर ध्यान न गया, इससे दुर्भाग्यवश *'महाधवल'-'महाबन्ध'* के लगभग तीन, चार हजार श्लोक नष्ट हो गये, किन्तु इसका पता किसी को भी नहीं हुआ।

जैन कुलभूषण श्रावकरत्न स्व सेठ माणिकचन्दजी जे पी बम्बई से सन् १८८३ मे वन्दनार्थ मूडबिद्री पहुँचे। वे एक विचारक दानी श्रीमान् थे। शास्त्रो का दर्शन करते समय उनकी भावना हुई कि ग्रन्थ को किसी विद्वान् से पढवाकर सुनना चाहिए, किन्तु योग्य अभ्यासी के अभाववश उस समय उनकी कामना पूर्ण न हो पायी। उनके चित्त में यह बात उत्कीर्ण-सी हो गयी कि किसी भी तरह इन शास्त्रों का उद्धार

करके जगत् के समक्ष यह निधि अवश्य आनी चाहिए। तीर्थयात्रा से लौटते हुए उक्त सेठजी ने अपने हृदय की सारी बाते अपने अत्यन्त स्नेही सेठ हीराचन्द नेमचन्दजी सोलापुरवालो को सुनायीं। सेठ हीराचन्दजी के अन्त करण मे दक्षिणयात्रा की वलवती इच्छा हुई। अत आगामी वर्ष वे मूडबिद्री के लिए रवाना हो गये। ब्रह्मसूरि शास्त्री नामक प्रकाण्ड जैन विद्वान् जैनबद्री (श्रमणवेलगोला) मे रहते थे। वे इन शास्त्रों को बॉचकर समझा सकते थे। अत सेठ हीराचन्द जी ने उक्त शास्त्रीजी को जैनबद्री से अपने साथ ले लिया था। जव ग्रन्थो का मगलाचरण पढकर उनका अर्थ सुनाया गया, तव श्रोतृमण्डली को इतना आनन्द मिला कि उसका वाणी के द्वारा वर्णन नही किया जा सकता, कारण उन्हे साक्षात् जिनेन्द्र के वचनामृत के रसपान का सौभाग्य मिला।

प्रतिलिपि का सरम्भ

प्रवास से लौटने पर सेठ हीराचन्दजी के चित्त मे ग्रन्थो की प्रतिलिपि कराने की इच्छा हुई, किन्तु लौकिक कार्यो मे सलग्नता के कारण बहुत समय व्यतीत हो गया और मन की बात कृतिका रूप धारण न कर सकी। इस बीच मे धनकुबेर सेठ नेमीचन्दजी सोनी (अजमेर) प गोपालदासजी वरैया को साथ लेकर तीर्थयात्रार्थ निकले और मूडबिद्री पहुँचे। उनके प्रभाव तथा सत्प्रयत्न से स्थानीय व्यवस्थापक पचमण्डली ने प ब्रह्मसूरि शास्त्री के द्वारा देवनागरी लिपि मे प्रतिलिपि कराने की स्वीकृति प्रदान की। अत्यन्त मन्दगति से कार्य प्रारम्भ किया गया और थोडी नकल मात्र हो पायी कि अन्तराय कर्म ने विघ्न उत्पन्न कर दिया।

सेठ हीराचन्दजी के प्रयत्न से प्रतिलिपि निमित्त लगभग चौदह हजार रुपयो की समाज-द्वारा सहायता की व्यवस्था हुई। अत ब्रह्मसूरि शास्त्री के साथ गजपति उपाध्याय महाशय मिरजनिवासी के द्वारा पूर्वोक्त स्थगित कार्य पुन चालू हुआ। कुछ काल व्यतीत होने पर दुर्भाग्य से ब्रह्मसूरि शास्त्री का स्वर्गवास हो गया। अत प गजपतिजी ही कार्य करते रहे। धवला और जयधवला टीकाओ की नकल लगभग १६ वर्षो में पूर्ण हो पायी। इस बीच मे श्रीदेवराज सेट्टि, शान्तप्पा उपाध्याय और ब्रह्मराज इन्द्र ने कनडी भाषा मे एक प्रतिलिपि कर ली।

देवनागरी मे प्रतिलिपि

इधर गजपति उपाध्याय मूडबिद्री के सिद्धान्त मन्दिर मे विराजमान करने के लिए देवनागरी लिपि मे प्रतिलिपि करते थे, उधर गुप्त रूप से अपनी विदुषी धर्मपत्नी लक्ष्मीबाई के सहयोग से कनडी में भी एक प्रतिलिपि तैयार कर ली, जिसका किसी को रहस्य अवगत न था। वह प्रति उपाध्यायजी ने विशेष पुरस्कार लेकर परमधार्मिक स्वर्गीय लाला जम्बूप्रसादजी रईस (सहारनपुर) को प्रदान की। उन्होने प. विजय चन्द्रय्या और प सीताराम शास्त्री के द्वारा उस कनडी प्रतिलिपि से देवनागरी मे जो प्रतिलिपि लिखवायी, उसमे सात वर्ष का समय व्यतीत हुआ। प विजयचन्द्रय्या से कनडी प्रति बॅचवाकर सीताराम शास्त्री नकल करते थे। शीघ्र कार्य निमित्त सीतारामजी साधारण कागज पर पहले लिख लेते थे, पीछे लाला जम्बूप्रसादजी के भण्डार के लिए नकल करते थे। सीताराम शास्त्री ने अपने पास के साधारण कागज पर लिखी गयी नकल पर से अन्य प्रतिलिपि की। उसके आधार पर अन्य प्रतियॉ लिखाकर आरा, सागर, सिवनी, दिल्ली, बम्बई, कारजा, इन्दौर, ब्यावर, अजमेर, झालरापाटन आदि स्थानो मे पहुँचायी गयी। इससे जयधवल और धवल शास्त्रो के दर्शन तथा स्वाध्याय का सौभाग्य अनेक व्यक्तियो को प्राप्त होने लगा।

'महाबन्ध' पर विशेष प्रतिबन्ध

मूडबिद्रीवालो को अन्धकार मे रखकर जिस ढग से पूर्वोक्त दो सिद्धान्त शास्त्र मूडबिद्री से बाहर गये और उनका प्रचार किया गया, उससे मूडबिद्री के पचों के हृदय को बडा आघात पहुँचा। मूडबिद्री की विभूति के अन्यत्र चले जाने से मूडबिद्री के प्रति आकर्षण कम हो जाएगा, यह बात भी उनके चित्त मे अवश्य रही

होगी, इस कारण अब उन्होने *'महाधवल'—'महाबन्ध'* की प्रतिलिपि के विषय मे पूर्ण सतर्कता से कार्य लिया। 'दूधका जला छाँछ को भी फूँककर पीता है,' इस कहावत के अनुसार उन्होने *'महाबन्ध'* को शास्त्र भण्डार मे इतना अधिक सुरक्षित कर दिया कि भेट देनेवाले व्यक्ति भी *'महाबन्ध'* के स्थान मे अनेक बार अन्य शास्त्र का दर्शन कर अपने मन को काल्पनिक सन्तोष प्रदान करते थे कि हमने भी *'महाधवल'*जी आदि की वन्दना कर ली। अब जब *'महाबन्ध'* का यथार्थ दर्शन कठिन हो गया, तब प्रतिलिपि की उपलब्धि की तो कल्पना भी नही की जा सकती थी।

प्रतिलिपि मे समय

सेठ हीराचन्दजी के सत्प्रयत्न से *'महाबन्ध'* की देवनागरी प्रतिलिपि का कार्य प लोकनाथजी शास्त्री मूडबिद्री के ग्रन्थागार के लिए करते जाते थे। यह कार्य सन् १६१८ से १६२२ पर्यन्त चला। इसी बीच मे प नेमिराजजी ने इसकी कनडी प्रतिलिपि भी बना ली। तीनो सिद्धान्त ग्रन्थो की प्रतिलिपि कराने मे लगभग बीस हजार रुपये खर्च हुए और छब्बीस वर्ष का लम्बा समय लगा।

तीनो ग्रन्थो की देवनागरी तथा कनडी प्रतिलिपि के हो जाने से अब सुरक्षण सम्बन्धी चिन्ता दूर हो गयी, केवल एक ही जटिल समस्या श्रुतभक्त समाज के समक्ष सुलझाने को थी कि *'महाबन्ध'* को बन्धनमुक्त करके किस प्रकार उस ज्ञाननिधि के द्वारा जगत् का कल्याण किया जाए? इस कार्य मे महान् प्रयत्नशील सेठ माणिकचन्दजी (बम्बई) तथा सेठ हीराचन्दजी (सोलापुर) सफल मनोरथ होने के पूर्व ही स्वर्गीय निधि बन गये।

जैन महासभा का उद्योग

दिगम्बर जैन महासभा ने इस विषय मे एक प्रस्ताव पास करके प्रयत्न किया, किन्तु वह अरण्यरोदन रहा। महासभा का एक वार्षिक उत्सव सन् १६३६ मे इन्दौर मे रावराजा दानवीर श्रीमन्त सर सेठ हुकमचन्दजी की जुबली के अवसर पर हुआ। वहाँ *'महाबन्ध'* के विषय मे हमने प्रस्ताव पेश करने का प्रयत्न किया, तो महासभा के अनेक अनुभवी व्यक्तियो ने यह कहकर विरोध किया कि यह अनावश्यक है, क्योकि वह ग्रन्थ मूडबिद्री की समाज देने को बिलकुल तैयार नहीं है। विशेष श्रम करने पर सौभाग्य से पुन प्रस्ताव पास हुआ और उसमे प्राण-प्रतिष्ठा निमित्त एक उपसमिति का निर्माण हुआ। उसके सयोजक जिनवाणी भूषण धर्मवीर सेठ रावजी सखारामजी दोशी बनाये गये। लेखक भी उसका अन्यतम सदस्य था। सेठ रावजी भाई ने दो बार मूडबिद्री का लम्बा प्रवास करके एव हजारो रुपया भेट करने का अभिवचन देकर भी सफलता निमित्त प्रयास किया, किन्तु दुर्भाग्यवश मनोरथ पूर्ण न हो पाया। कुछ ऐसी बाते उत्पन्न हो गयी, जिन्होने परस्पर के मधुर सम्बन्धो मे भी शैथिल्य उत्पन्न कर दिया। *'महाबन्ध'* उपसमिति के समक्ष यहाँ तक विचार आने लगा कि जिनवाणी माता की रक्षा निमित्त व्यक्तिगत अनुनय-विनय का मार्ग छोडकर अब न्यायालय का आश्रय लेना चाहिए। किन्हीं व्यक्तियो के विचित्र ग्रन्थ-मोह की पूर्ति निमित्त विश्व की अनुपम निधि को अब अधिक समय तक बन्धन मे नहीं रखा जा सकता।

न्यायालय के द्वार खटखटाने के विचार पर हमारी आत्मा ने सहमति नही दी। सहसा हृदय मे यह भाव उदित हुए कि अदालत के द्वार पर मूडबिद्रीवालो को घसीटकर कष्ट देना योग्य नही है, कारण इनके ही विवेकी, धर्मात्मा तथा चतुर पूर्वजों के प्रयत्न और पुरुषार्थ के प्रसाद से ग्रन्थराज अब तक विद्यमान है, और अब भी वे यथामति उनकी सेवा कर ही रहे है। उनकी श्रुत-भक्ति तथा सेवा के प्रति कृतज्ञतावश हमारा मस्तक नम्र हो जाता है। यदि हम पुन उनसे सस्नेह अनुरोध करेगे और अपनी सद्भावनापूर्ण बात समझाएँगे, तो वे लोग अवश्य हमारी हृदय की ध्वनि को ध्यान से सुनेगे। न मालूम क्यो, हृदय बार-बार यह कहता था कि प्रेम-पूर्ण प्रयत्न के पथ मे ही सफलता है। यह सूक्ति महत्त्वपूर्ण है "मृदुना दारुण हन्ति, मृदुना हन्त्यदारुणम्। नासाध्य मृदुना किञ्चित्, तस्मात् तीक्ष्णतर मृदु ॥"

जटिल समस्या

कुछ समय के बाद पुरुषार्थ धर्मवीर सेठ रावजी भाई का स्वर्गवास हो गया। इससे आत्मा बहुत व्यथित हुई। हमने सोचा–भगवन्! अब यह *'महाबन्ध'* की प्राप्ति की अत्यन्त कठिन तथा जटिल समस्या कब तक और कैसे सुलझती है?

सुदैव से ग्रन्थराज की प्रतिलिपि प्राप्ति के मार्ग की बाधाओ का अभाव होना तथा अनुकूल परिस्थितियो का निर्माण आरम्भ हुआ।

नवीन परिस्थिति

सन् १९३९ की बात है। श्रमणवेलगोला मे १००८ भगवान् बाहुबलिस्वामी की भुवनमोहिनी, विश्वातिशायिनी दिव्य मूर्ति के महाभिषेक की पुण्यवेला आयी। किन्तु मैसूर प्रान्त मे स्व. सेठ एम एल. वर्धमानैय्या सदृश कार्यकुशल, प्रभावशाली, उदार तथा समर्थ नेता के अभाव होने से आदरणीय भट्टारक श्री चारुकीर्ति पण्डिताचार्य (पूर्व मे जो ब्र. नेमिसागरजी वर्णी के रूप मे विख्यात थे) महाराज श्रमणवेलगोला तथा उनके सहयोगी महानुभाव, अन्तरायो की अपरिमित राशि देख सचिन्त थे, और गोम्मटेश्वर स्वामी से पुन-पुन प्रार्थना करते थे–'देवाधिदेव, आपके चरणो के प्रसाद से यह मगलकार्य सम्यक् प्रकार सम्पन्न हो, कोई भी विघ्न नही आने पाए।'

उस समय दिगम्बर जैन महासभा के मुखपत्र जैन गजट के सम्पादक तथा अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन राजनीतिक स्वत्वरक्षक समिति के मन्त्री के रूप मे हमने यथाशक्ति महाभिषेक की सफलता निमित्त पत्र-द्वारा आन्दोलन किया, विघ्नकारियो का तीव्र प्रतिवाद किया तथा मैसूर राज्य के दीवान सा. सर मिर्जा स्माइल आदि उच्च अधिकारियो से पत्र व्यवहार द्वारा अनुरोध किया। उस समय हमारे लेखो आदि का कनडी अनुवाद मैसूर राज्य के आस्थान महाविद्वान् प शान्तिराजजी शास्त्री के कनडी पत्र *'विवेकाभ्युदय'* मे छपता था। इस कारण कर्णाटक प्रान्तीय जैन बन्धुओं से हमारा आन्तरिक स्नेह-सम्बन्ध सहज ही स्थापित हो गया। यही स्नेह आगे सफलता मे प्रमुख हेतु बना।

महाभिषेक-महोत्सव का पुण्य अवसर आया। लाखो वन्दक विश्ववन्दनीय विभूति की वन्दना द्वारा जीवन सफल करने के लिए भारतवर्ष के कोने-कोने से आये। उस महाभिषेक के अपूर्व तथा दिव्य समारोह को कौन भूल सकता है? बडे सौभाग्य से हम भी अपने पूज्य पिता श्री सिघई कुँवरसेनजी आदि के साथ वहाँ पहुँचे। जब भट्टारकजी से मिलने गये, तब उनके समीप उस प्रान्त के प्रमुख जैन बन्धु बैठे हुए थे। वहाँ स्वामीजी ने (भट्टारक महाराज का बडा प्रभाव तथा सम्मान है। मैसूर महाराज भी उनकी बडी प्रतिष्ठा करते है, उनको वहाँ स्वामीजी कहते है।) हमारे प्रति प्रगाढ प्रेम प्रकट किया। उन्होने बडे गौरवपूर्ण शब्दो द्वारा लोगो को हमारा परिचय देते हुए इस महाभिषेक को सम्पन्न कराने का विशेष श्रेय हमे प्रदान किया

हम चकित हो गये। महाराज से कहा–"हमने क्या कार्य किया, जिसका आप इतना उल्लेख कर रहे है। हमारा इतना पुण्य नही है। गोम्मटेश्वर स्वामी के चरणो के प्रति भक्तिवश कुछ सेवा बन गयी, उसे अधिक मूल्यवान् बताना आपकी ही महत्ता है।" स्वामीजी ने अपनी कर्णाटकी ध्वनि (tone) मे कहा है, "क्या आपकी स्तुति करके हमे कुछ प्राप्त करना है, जो हम यहाँ अतिशयोक्तिपूर्ण बात कहते ?" हमे चुप हो जाना पडा।

वहाँ से चलते समय स्वामीजी ने हृदय से मगल आशीर्वाद दिया और 'फलेन फलमालभेत्'–इन फलो के द्वारा तुम्हे महाफल मिले–कहते हुए कुछ पक्व फल हमें दिये। वह पर्व का दिन था। हमारे हाथो में फलो को देखकर एक शास्त्रीजी ने व्यग्य मे कहा–"क्या अँगरेजी की शिक्षा ने आपकी प्रवृत्ति बदल तो नही दी?" हमने भट्टारकजी से फल-प्राप्ति की बात सुनायी, तो वे बोल उठे–"आप खूब मिले, और लोग तो भट्टारकजी को फल चढाते हैं, भेट देते है और भट्टारकजी आपको देते हैं।" हँसते हुए हम अपने स्थान पर आ गये।

व्यवस्थापको से मधुर सम्बन्ध-निर्माण

महाभिषेक बड़े वैभव और अपूर्व आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ। अभिषेक के कलशों की बोली से प्राप्त रकम मैसूर स्टेट के अधिकारियो के पास जमा हो गयी। किन्तु बहुत-से धर्मबन्धु अपने धन को अपने ही अधिकार मे रखने की बात सोचते थे। अर्थ-व्यवस्था निमित्त रावराजा श्रीमन्त सर सेठ हुकमचन्दजी के स्थान पर एक बैठक हुई। उसमे कर्णाटक प्रान्त के महान् प्रभावशाली व्यक्ति श्री डी मजेय्या हेगडे, बी ए , धर्मस्थल तथा उस प्रान्त के विशेष श्रीमन्त राजवंशीय श्रीरघुचन्द्रबल्लाल, मेंगलोर भी शामिल हुए थे। वह मीटिंग उक्त दोनों महानुभावो के साथ हमारे स्निग्ध सम्बन्धों के स्थापन तथा सवर्धन में कारण बनी। यहाँ यह लिख देना उचित होगा कि *'महाबन्ध'* के व्यवस्थापको मे उन लोगों का प्रमुख स्थान था, इसलिए उनके साथ का परिचय तथा मैत्री सम्बन्ध भावी सफलता के मार्ग के लिए अनुकूलता को सूचित करते थे।

महाभिषेक-महोत्सव पूर्ण होने के पश्चात् मूडबिद्री, कार्कल आदि की वन्दना निमित्त हम पिताजी के साथ मेंगलोर पहुँचे। वहाँ माननीय श्रीबल्लाल महाशय से अकस्मात् भेंट हो गयी। प्रसंगवश हमने उनसे कहा—"पहले तो आपके बल्लाल वंश ने दक्षिण भारत मे राज्य किया था। आपको भी उस वश की प्रतिष्ठा के अनुरूप अपूर्व कार्य करना चाहिए। देखिए, आपके यहाँ मूडबिद्री के शास्त्रभण्डार में ससार की अपूर्व विभूति *'महाबन्ध'* शास्त्र है। इसका उद्धार कार्य करने से विश्व आपका आभार मानेगा।" इसके अनन्तर कुछ और भी धार्मिक बातें हुई। शायद वे उन्हें पसन्द आयीं। उन्होंने हमसे कहा—"हम मूडबिद्री में आपका भाषण कराना चाहते हैं, क्या आप बोलेंगे?" हमने विनोदपूर्वक कहा—"जब भी आप भाषण के लिए कहेंगे, तब ही हम बोलने को तैयार हैं, किन्तु इसके बदले में आपको *'महाबन्ध'* शास्त्र देना होगा।" वे हँसने लगे।

सक्रिय उद्योग

हम मूडबिद्री पहुँचे। वहाँ जैन नरेशों के औदार्य तथा भक्तिवश निर्माण कराये गये त्रिलोकचूडामणि चैत्यालय (चन्द्रनाथबसदि) की भव्यता तथा विशालता को देख बडा आनन्द आया। उस मन्दिर मे अफ्रीका के कारीगरों ने आकर प्राचीन समय में शिल्प का कार्य किया था। हमें बताया गया कि पहले जैनियों की वहाँ बहुत समृद्धिपूर्ण स्थिति थी। बड़े-बडे जहाजों के वे अधिपति थे। उनसे वे विदेश जाकर रत्नों का व्यापार करते थे और श्रेष्ठ वस्तु जिनशासन के उपयोग में लाते थे। इस प्रकार वहाँ की अमूल्य अपूर्व मूर्तियाँ बनायी गयी थीं। पुरातन जैन वैभव की चर्चा सुन-सुनकर हृदय हर्षित हो रहा था। उस समय वयोवृद्ध परमधार्मिक श्री नागराज श्रेष्ठी से भेंट हुई। उन्होंने बडा स्नेह व्यक्त किया। हमने विनीत भाव से कहा—"बडी दया हो, यदि इस बार के महाभिषेक की स्मृति में आप लोग *'महाबन्ध'* की प्रतिलिपि करने की अनुज्ञा दे दें। आपके पूर्वजो का ही पुण्य था जो रत्नराशि से भी अधिक मूल्यवान् इस ग्रन्थरत्न की अब तक रक्षा हुई।" हमारी बात सुनकर उन्होंने कहा—"प्रयत्न करो, आपको ग्रन्थ मिल जाएगा।" हमने कहा, "आपके आशीर्वाद और कृपा द्वारा ही यह कठिन कार्य सम्भव हो सकता है।" उन्होंने हमें उत्साहित करते हुए कहा—"अगर आप मंजैय्या हेगड़े तथा रघुचन्द्र बल्लाल को यहाँ ला सकें, तो सरलता से काम बन जाएगा। उन लोगो का यहाँ की समाज पर विशेष प्रभाव है। हेगड़ेजी का प्रभाव तो असाधारण है।" अत. दूसरे दिन सबेरे हम अपने छोटे भाई चिरंजीव (प्रोफेसर) सुशीलकुमार दिवाकर (बी. काम , एम. ए , एल-एल. बी.) को तथा ब्र. फतेहचन्दजी परवारभूषण नागपुरवालों को साथ लेकर धर्मस्थल गये तथा श्री मंजैय्या हेगड़े से मूडबिद्री चलने का अनुरोध किया। बड़े आग्रह करने पर उन्होंने हमारा निवेदन स्वीकार किया। धर्मस्थल में धर्ममूर्ति हेगडेजी के वैभव, प्रभाव तथा पुण्य को देखकर आनन्द हुआ।

धर्मस्थल से वापस होते समय हम वेणूर की बाहुबलि स्वामी की विशाल तथा उच्च कलापूर्ण मूर्ति के दर्शनार्थ ठहरे। वहाँ सौभाग्य से दानवीर रावराजा श्रीमन्त सर सेठ हुकमचन्दजी से भेंट हो गयी। हमने उन्हें सिद्धान्तशास्त्र सम्बन्धी चर्चा सुनाकर सन्ध्या के समय मूडबिद्री पहुँचने का अनुरोध किया और अपने स्थान पर वापस आये। पश्चात् हम श्रीमन्त बल्लाल महोदय से मिलने मँगलोर पहुँचे। उन्होंने पूछा—"कैसे आये?"

हमने विनोदपूर्वक कहा—"उस दिन आपने कहा था कि मूडबिद्री मे हम आपका व्याख्यान कराना चाहते है। आप अबतक नहीं आये। हमे अपने देश वापस जल्दी जाना है, इससे आपको लेने आये है कि आज सन्ध्या को हमारा व्याख्यान सुन ले।" वे मुस्करा पडे। अनन्तर हमने सब कथा उनको सुनाकर शीघ्र चलने की प्रेरणा की। वे सहर्ष तैयार हो गये। उनकी मोटर मे उनके साथ हम मूडबिद्री के लिए रवाना हुए। मार्ग मे हमने सब विषय उनके समक्ष स्पष्ट किया, तो उन्हे अपनी स्वीकृति प्रदान करने मे विलम्ब न लगा। उन्होने अपार प्रेम दिखाया।

मूडबिद्री वापस आने पर हमे श्री हेगडेजी और सर सेठ हुकमचन्दजी मिल गये। रात्रि को पूर्वोक्त त्रिलोकचूडामणि चैत्यालय-चन्द्रनाथवसदि के प्रागण मे सर सेठ हुकमचन्दजी की अध्यक्षता में एक सभा बुलायी गयी। अनेक प्रतिष्ठित महानुभाव पधारे थे। मूडबिद्री मठ के अधिपति आदरणीय भट्टारकजी चारुकीर्ति पण्डिताचार्य स्वामी भी उस सभा मे आये थे। हमने *'महाबन्ध'*-सम्बन्धी चर्चा प्रारम्भ की, उस समय ज्ञात हुआ कि मूडबिद्री सिद्धान्त शास्त्रमन्दिर के ट्रस्टी वर्ग तथा पच महानुभावो के चित्त मे इस बात की गहरी ठेस लगी कि एक जैन पत्र मे यह वृत्तान्त प्रकाशित किया गया था कि *'महाबन्ध'* शास्त्र न देने मे मूडबिद्रीवालो का व्यक्तिगत स्वार्थ कारण है। वे शास्त्र-विक्रय (Traffic in literature) करके लाभ उठाना चाहते है। इस सम्बन्ध मे भ्रमनिवारण किया गया कि जिन लोगो के पूर्वजो ने त्रिलोकचूडामणि चैत्यालय-जैसा विशाल जिन मन्दिर बनवाया, धर्मसेवा के उज्ज्वल कार्य नि स्वार्थ भाव से सम्पन्न किये, उनके विषय मे दूषित कल्पना करना तथा मिथ्या प्रचार करना ठीक नही है।

मूडबिद्री मे भाषण

इसके पश्चात् हमने अपने भाषण मे मूडबिद्री के प्राचीन पुरुषो एव वर्तमान धर्मपरायण समाज के प्रति आन्तरिक अनुराग तथा आदर का भाव व्यक्त करते हुए कहा—"जब लोग धार्मिक अत्याचार करते थे, उस सकट के युग में जिन्होने शास्त्रो को छिपाकर श्रुत की रक्षा की, उनके प्रति हम हार्दिक श्रद्धाजलि समर्पित करते है। किन्तु जगत् मे बडा परिवर्तन हो गया। लोग ज्ञानामृत के पिपासु है। भूतवलिस्वामी ने जगत् के कल्याण निमित्त महान् कष्ट उठाकर इतना बडा और अत्यन्त गम्भीर शास्त्र बनाया। उसके प्रकाश मे आने पर जगत् मे ग्रन्थकर्ता की कीर्ति व्याप्त होगी तथा मुमुक्षुगण अपना हित सम्पन्न करेगे। पूज्य पुरुषो की निर्मल कीर्ति का सरक्षण करना हमारा कर्तव्य है। सोमदेवसूरि ने बताया है—'यशोवध प्राणिवधात् गरीयान्' प्राणिघात की अपेक्षा यश का घात करना गुरुतर दोष है, कारण यशोवध-द्वारा कल्पान्तस्थायी यश शरीर का नाश होता है। भूतबलिस्वामी के साहित्य को छिपाने से उनके प्राणघात से भी बढकर दोष प्राप्त होता है। भूतवलिस्वामी ने विश्वकल्याण के लिए यह रचना की थी। इस अमूल्य कृति का क्या उन्होने कुछ मूल्य रखा था? हमारी भक्ति का अर्थ है—श्रुत का सरक्षण तथा सुप्रचार। उसे बन्धन मे रखकर दीमक आदि द्वारा नष्ट होते देखना कभी भी श्रुतभक्ति नहीं कही जा सकती।" इतने मे किसी ने कहा—"हमारे यहाँ लोग गरीब है, उनकी सहायतार्थ द्रव्य आवश्यक है"। इसे सुनते ही हमने कहा—"इन वाक्यो को सुनकर मुझे वहुत दु ख हुआ कि हमारे दक्षिण के कोई-कोई वन्धु अपने को गरीव समझ रहे हैं। जिनके पास भगवान् गोम्मटेश्वर-जैसी अनुपम प्रभावशाली मूर्ति है, क्या वे गरीव है? जिनके पास वहुमूल्य तथा अपूर्व जिनविम्ब विद्यमान है, वे क्या गरीव है? जिनके पास धवल, *'महाधवल'* सदृश श्रेष्ठ ग्रन्थराज है, वे भी क्या गरीव है? यदि इसे ही गरीवी कहा जाता है, तो हम ऐसी गरीवी का अभिनन्दन करते है, अभिवन्दन करते हे। लीजिए भौतिक ससार की समृद्धि को और हमे यह गरीवी दे दीजिए।" हमने यह भी कहा—"वताइए, इन ग्रन्थो का आपने क्या मूल्य रखा है? रुपयो का मूल्य तो जाने दीजिए, हम तो जीवन-निधि तक अर्पण कर इस आगम-निधि को लेने आये है। वताइए, इससे भी अधिक और मूल्य आपको क्या चाहिए? हम जानते है, *'महावन्ध'* सदृश श्रुत की रक्षा निमित्त हमारे सदृश सेकडो व्यक्तियो का जीवन नगण्य हे। लोग राष्ट्रप्रेम के कारण जीवन-उत्सर्ग करते है, तो सकल सन्तापहारी श्रुतरक्षार्थ जीवन अर्पण करने में क्या भीति हे? कहिए, ग्रन्थ के लिए आप ओर क्या मूल्य चाहते है?"

स्वीकृति

इस पर विवेकमूर्ति परम सज्जन श्री मजैय्या हेगडे ने द्रवित होकर कहा "You have given us more than we wanted—जो कुछ हम चाहते थे, उससे अधिक मूल्य आपने दे दिया। श्री हेगडेजी की अनुकूलता होने पर आदरणीय भट्टारक महाराज, श्री वल्लाल आदि सवने स्वीकृति प्रदान कर दी। हमारे पूज्य वडे भाई सिघई अमृतलालजी ने हमसे कहा—"यह महान् कार्य है। परिणामो मे परिवर्तन का पदार्पण होते विलम्ब नही लगता, अत लिखित स्वीकृति आवश्यक है। वह सर्व आशकाओ को दूर कर देगी। हमने सव समाज से विनय की—"आज आप लोगो ने *'महाधवल'*जी की विना मूल्य प्रतिलिपि प्रदान करने की पवित्र स्वीकृति दी है। समाचार पत्रो मे प्रामाणिकता पूर्वक समाचार प्रकाशित करने के लिए आप लोगो की लिखित स्वीकृति महत्त्वपूर्ण होगी, और लोगो को तनिक भी सन्देह नही रहेगा।" सवका हृदय पूर्णतया पवित्र था। स्वीकृति अन्त करण से दी गयी थी, अत प्रमुख पुरुपो ने सहर्ष शीघ्र हस्ताक्षर करके स्वीकृतिपत्रक हमे दिया। उसे पा हमने अपने को धन्य तथा कृतार्थ समझा। इस कार्य को सम्पन्न करने मे हमे अपने पूज्य पिताजी (सिघई कुँवरसेनजी) से विशिष्ट पथ-प्रदर्शन प्राप्त हुआ था, कारण वे महान् शास्त्रज्ञ, लोक-व्यवहार-प्रवीण एव अपूर्व कार्यकुशलता सम्पन्न थे। उनका प्रभाव भी कार्य सम्पन्न करने मे वडा साधन वना।

मूडबिद्री के पत्रो की महान् उदारता को घोषित करनेवाला समाचार जव जैन समाज ने सुना, तव चारो ओर सबने महान् हर्ष मनाया और मूडबिद्री की समाज के कार्य की प्रशसा की। किन्तु दुर्भाग्य से एक समाचार पत्र मे कुछ ऐसे समाचार निकल गये, जिससे पुरातन विरोधाग्नि पुन प्रदीप्त हो उठी। इससे दक्षिण के एक प्रमुख पुरुष ने हमे लिखा—"अब आप प्रतिलिपि ले लेना, देखे, कौन देता है?" इससे हमारी आत्मा काँप उठी। यह ज्ञात कर बडा दु ख हुआ, कि व्यक्तिगत विशेष मान की रक्षार्थ हमारे विज्ञवन्धु ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय को पुन विरोध और विवाद की भँवर मे फँसा रहे है। इसके अनन्तर ज्ञात हुआ कि न्यायदेवता के आह्वान निमित्त कानूनी कार्रवाई भी प्रारम्भ होने लगी। उस समय श्रुतभक्त ब्र श्री जीवराज गौतमचन्दजी दोशी और मुनि समन्तभद्रजी के (जो उस समय क्षुल्लक थे) प्रभाव तथा सत्प्रयत्न से विरोध शान्त किया गया। यह चर्चा हमने इससे की कि लोग यह देख ले, कि बना-बनाया धर्म का कार्य किस प्रकार अकारण अवाछनीय सकटों मे घिर जाता है। सोमदेव सूरि की उक्ति बडी अनुभवपूर्ण है। वे 'नीतिवाक्यामृत' मे लिखते है—'धर्मानुष्ठाने भवति, अप्रार्थितमपि प्रातिलोम्य लोकस्य' (१,३५) 'धर्मकार्य मे लोग बिना प्रार्थना किये गये स्वयमेव प्रतिकूलता धारण करते है'। ऐसी प्रवृत्ति पापानुष्ठान के विषय मे नही होती।

और भी विपत्तियो का वर्णन करके हम लेख को बढाना उचित नही समझते। सक्षेप मे इतना ही कहना है कि बडे-बडे विचित्र विघ्न आये, किन्तु श्रुतदेवता के प्रसाद से वे शरदृतु के मेघो के सदृश अल्पस्थायी रहे।

आबाधाकाल

वर्ष बीत गया, फिर भी प्रतिलिपि का कार्य प्रारम्भ नही हो रहा था। एक बार श्री मजैय्या हेगडे ने अपने धर्मस्थल के सर्वधर्म-सम्मेलन मे मुझे बुलाया। वहाँ पहुँचने से प्रतिलिपि का कार्य शीघ्र प्रारम्भ करने मे विघ्न नही आता, किन्तु कारण विशेष से पहुँचना न हो सका। कुछ समय के अनन्तर दिसम्बर सन् १६४१ मे गोम्मटेश्वर महामस्तकाभिषेक फण्ड सम्बन्धी कमेटी की बैठक मे सम्मिलित होने को हमे बैगलोर जाना पडा। उत्तर भारत से केवल श्रीमन्त सर सेठ हुकमचन्दजी, सर सेठ भागचन्दजी सोनी पहुँचे थे। मीटिग के पश्चात् हम ग्रन्थप्राप्ति की आशा से श्री मजैय्या हेगडे, श्री रघुचन्द बल्लाल, श्री जिनराज हेगडे एडवोकेट, एम एल ए, श्री शान्तिराज जी शास्त्री आस्थान महाविद्वान् (मैसूर) के साथ मूडबिद्री के लिए रवाना हुए।

सब लोग आवश्यक कार्यवश अपने-अपने घर चले गये। अत हम अकेले मूडबिद्री पहुँचे। दो-तीन दिन प्रयत्न करने पर भी प्रतिलिपि का कार्य प्रारम्भ न हो सका। आगे कब तक प्रतीक्षा करनी पडेगी, यह भी पता नहीं चलता था। इससे चित्त मे विविध सकल्प-विकल्प उत्पन्न होते थे। चित्त अपार चिन्ता-निमग्न था। जिनेन्द्र भक्ति का एकमात्र अवलम्बन था।

चिरस्मरणीय दिवस

परम सौभाग्य से तीन दिन की प्रबल प्रतीक्षा के पश्चात् व्यवस्थापक बन्धु श्री धर्मपालजी श्रेष्ठि की विशेष कृपा हुई। उन्होने भण्डार खोलकर *'महाबन्ध'* शास्त्र की ताडपत्रीय प्रति हमारे समक्ष विराजमान कर दी। जिनेन्द्रदेव तथा जिनवाणी की पूजा के अनन्तर हमने स्वय देवनागरी लिपि मे प्रतिलिपि प्रारम्भ करने का परम सौभाग्य प्राप्त किया। वह ३० दिसम्बर, १९४१ का दिन जैन साहित्य के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेगा।

कृतज्ञता

अनन्तर प्रतिलिपि का कार्य प लोकनाथजी शास्त्री के तत्त्वावधान मे सम्पन्न होता रहा। ३० दिसम्बर सन् १९४२ तक कार्य पूर्ण हो गया। पहले मूडबिद्री के भण्डार के लिए यही कापी ४ वर्ष मे तैयार की गयी थी। यह कार्य शीघ्र सम्पन्न करने का श्रेय उक्त शास्त्रीजी के सहयोगी विद्वान् प नागराजजी तथा देवकुमारजी को भी है। भट्टारक महाराज तथा व्यवस्थापको की भी विशेष कृपा रही जो उन्होने इस कार्य मे कोई भी बाधा नहीं उत्पन्न होने दी। इस सम्बन्ध मे श्री मजैय्या हेगडे के हम अत्यन्त कृतज्ञ है कि उन्होने सर्वदा इस पुण्य कार्य मे सर्व प्रकार का सहयोग प्रदान किया। कुछ विद्वानो ने उत्तर भारत से श्री हेगडेजी को प्रतिलिपि न देने का अप्रार्थित बहुमूल्य परामर्श दिया, किन्तु विद्वान् हेगडे महाशय के उत्तर से उन लोगो को चुप होना पडा। जब हम आपत्तियो से आकुलित होकर हेगडेजी को लिखते थे, तो उनके उत्तर से निराशा दूर हो जाती थी। उन्होने हमे लिखा था—"आप भय न करे, ग्रन्थ-प्रकाशन के विषय में कोई भी बाधा न आएगी। प्रतिलिपि का कार्य आपकी इच्छानुसार होता रहे, इस पर मैं विशेष ध्यान रखूँगा।" उन्होने अपने वचन का पूर्णतया रक्षण किया। यथार्थ मे वे महापुरुष थे। कुछ भी भेट लिये बिना प्रतिलिपि की अनुज्ञा प्रदान करने की उदारता तथा कृपा के उपलक्ष मे हम सिद्धान्त मन्दिर के ट्रस्टियो तथा मूडबिद्री के पचो को हार्दिक धन्यवाद देते है। भट्टारक महाराज के भी हम अत्यधिक कृतज्ञ है। मूडबिद्री के महानुभवो के हार्दिक प्रेम, कृपा तथा उदार भाव की स्मृति चिरकाल पर्यन्त अन्त करण मे अकित रहेगी।

मूडबिद्री मे प्रतिलिपि कराने मे जो द्रव्य-व्यय हुआ, वह सेठ गुलाबचन्दजी हीराचन्दजी (सोलापुर) के पास से प्राप्त हुआ था। इसके लिए उन्हे धन्यवाद है। ब्र श्री जीवराजजी ने इस श्रुत-रक्षा या सेवा के कार्य मे जो सत्परामर्श तथा सर्व प्रकार का सहयोग दिया, उसके लिए हम अत्यन्त अनुगृहीत है।

दानवीर साहू श्री शान्तिप्रसादजी जैन की वदान्यता से स्थापित भारतीय ज्ञानपीठ काशी ने इस टीका के प्रकाशन की उदारता की, इसके लिए हम साहू शान्तिप्रसादजी के अत्यन्त अनुगृहीत है। प महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य ने प्रकाशन निमित्त जो श्रम किया, उसके लिए उन्हे विशेष धन्यवाद है।

इस शास्त्र का तेजी के साथ शब्दानुवाद प्रथम बार वैद्यराज प कुन्दनलालजी परवार, न्यायतीर्थ तथा प परमानन्दजी साहित्याचार्य (सौरई निवासी) के सहयोग से लगभग सवा माह मे पूर्ण हुआ था। इसके पश्चात् प कुन्दनलालजी के अस्वस्थ हो जाने के कारण उनका बहुमूल्य सहयोग न मिल सका। प परमानन्दजी का लगभग दो-एक सप्ताह और सहयोग बडी कठिनता से मिला, और आगे वे सहयोग न दे पाये। उन विद्वानो के अमूल्य सहयोग के लिए हम अत्यन्त आभारी है।

आद्य अनुवाद की प्रति देखकर अनेक अनुभवी विद्वानो ने सलाह दी कि सम्पूर्ण टीका पुन लिखी जानी चाहिए। यह ग्रन्थ महान् है। हमने भी जब विशेष शास्त्रो का अभ्यास किया और रचना का सूक्ष्मतया

निरीक्षण किया, तब नवीन रूप से टीका निर्माण करना ही उचित जँचा। *'महावन्ध'* की टीका को मुख्य कार्य समझ हम उसमें संलग्न हो गये। लगभग तीन वर्ष मे यह कार्य वन पाया। बना या नहीं, यह हम नहीं कह सकते। हमारा भाव यह है कि इसमे पूर्वोक्त समय लगा। इस अनुवाद मे विशेपार्थ, टिप्पणी, शुद्ध पाठ–योजना आदि भी कार्य हुए। इस अपेक्षा से यह टीका पूर्णतया नवीन समझना चाहिए।

सन् १९४५ के ग्रीष्मावकाश मे न्यायालकार, सिद्धान्त महोदधि, गुरुवर पं वशीधरजी शास्त्री (महरौनीवालों) ने सिवनी पधारकर अनुवाद को ध्यानपूर्वक देखा। उनके सशोधन के उपलक्ष मे हम हृदय से कृतज्ञ हैं। यह उनकी ही कृपा है जो यह महान् कार्य हम-जैसे व्यक्ति से सम्पन्न हो गया।

प. हीरालालजी शास्त्री, साढूमलने अनेक बहुमूल्य परामर्श तथा सुझाव प्रदान किये थे। प फूलचन्द्रजी शास्त्री ने सिवनी पधारकर अनेक महत्त्वास्पद वाते सुझायी थीं। इसके लिए हम दोनो विद्वानो के अनुगृहीत हैं। अन्य सहायको के भी हम आभारी हैं।

हमें स्वप्न में इस बात का भान न था कि *'महावन्ध'* की प्रति मूडविद्री से प्राप्त करने का परम सौभाग्य हमे मिलेगा और उसकी टीका करने का भी अमूल्य अवसर आयेगा। जैन धर्म के प्रसाद से और चारित्र चक्रवर्ती प्रातःस्मरणीय पूज्य आचार्य १०८ श्री शान्तिसागर महाराज के पवित्र आशीर्वाद से यह मगलमय कार्य सम्पन्न हुआ। प्रमाद अथवा अज्ञानवश टीका मे जो भूलें हुई हों, उन्हें विशेषज्ञ विद्वान् क्षमा करेंगे और सशोधनार्थ हमे सूचित करने की कृपा करेंगे, ऐसी आशा है। ऐसे महान् कार्य में भूलें होना असम्भव नहीं हैं। 'को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे।'

पौष कृ ११, वीर संवत् २४७३
१८ दिसम्बर, १९४६, सिवनी (म.प्र.)

—सुमेरुचन्द्र दिवाकर

प्रस्तावना

(प्रथम सस्करण से)

'महाबन्ध' पर प्रकाश

जिनेन्द्रदेव की निर्दोष वाणी रूप होने के कारण सम्पूर्ण आगम ग्रन्थ समान आदर तथा श्रद्धा के पात्र है, फिर भी जैन ससार मे धवल, जयधवल, *'महाधवल'* नामक शास्त्रो के प्रति उत्कट अनुराग एव तीव्र भक्ति का भाव विद्यमान है। इस विशेष आदर का कारण यह है कि तीर्थकर भगवान् महावीर प्रभु की दिव्यध्वनि को ग्रहण कर गणधरदेव ने ग्रन्थ-रचना की। वह मौखिक परम्परा के रूप मे, विशेष ज्ञानी मुनीन्द्रो की चमत्कारिणी स्मृति के रूप मे, हीयमान होती हुई, विद्यमान थी। महावीर निर्वाण के छह सौ तिरासी वर्ष व्यतीत होने पर अगो और पूर्वो के एक देश का भी ज्ञान लुप्त होने की विकट स्थिति आ गयी। उस समय अग्रायणीयपूर्व के चयनलब्धि अधिकार के चतुर्थ प्राभृत 'कम्मपयडि' के चौबीस अनुयोग द्वारो से *'षट्खण्डागम'* के चार खण्ड बनाये गये, जिन्हे वेदना, वर्गणा, खुद्दाबन्ध तथा *'महाबन्ध'* कहते है। बन्धक अनुयोग द्वार के अन्यतम भेद बन्धविधान से जीवट्ठाण का बहुभाग और तीसरा बन्धसामित्तविचय निकले। इस प्रकार *'षट्खण्डागम'* का द्वादशाग वाणी से सम्बन्ध है। इसी प्रकार ज्ञानप्रवाद नामक पचमपूर्व के दशम वस्तु अधिकार के अन्तर्गत तीसरे 'पेज्जदेसपाहुड' से कषायप्राभृत की रचना की गयी। इन ग्रन्थो का द्वादशागवाणी से अविच्छिन्न सम्बन्ध होने के कारण द्वादशागवाणी के समान श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक आदर किया जाता है। *'षट्खण्डागम'* के *'महाबन्ध'* को छोडकर पाँच खण्डो पर जो वीरसेनाचार्य रचित टीका है, उसे धवल टीका कहते है। *'महाबन्ध'* पर कोई टीका उपलब्ध नही है।[1] *'कषाय प्राभृत'* मे गुणधर आचार्य रचित एक सौ अस्सी गाथाएँ है।[2] इनमें तिरेपन गाथाएँ और जोडने पर गुणधर आचार्य रचित कुल गाथाओ की सख्या दो सौ तैतीस हो जाती है। जयधवला टीका मे कहा है—"कसायपाहुडे सोलसपदसहस्साणि (१६०००)। एदस्स अवसहारगाहाओ गुणहर-मुह-कमल- विणिग्गियायो तेत्तीसाहिय-विसदमेत्तीओ (२३३)" (भाग १, पृ. ६६)। यतिवृषभ आचार्य ने छह हजार श्लोकप्रमाण चूर्णि सूत्र बनाये। इसकी बहत्तर हजार श्लोकप्रमाण टीका वीरसेनाचार्य तथा उनके शिष्य भगवज्जिनसेन स्वामी ने बनायी, उसका नाम जयधवला टीका है।

सूत्र-रचना—*'षट्खण्डागम'* मे जीवट्ठाण के प्रारम्भिक सत्प्ररूपणा अधिकार के केवल एक सौ सतहत्तर सूत्रों की रचना पुष्पदन्त आचार्य ने की है, शेष समस्त रचना भूतबलि स्वामीकृत है। जीवट्ठाण, खुद्दाबन्ध, बन्धसामित्त, वेदना और वर्गणा—इन सूत्ररूप पाँच खण्डो की श्लोक सख्या छह हजार प्रमाण है। छठे खण्ड *'महाबन्ध'* मे चालीस हजार श्लोक प्रमाण सूत्र है। साधाराणतया सम्पूर्ण धवला, जयधवला टीका को द्वादशाग से साक्षात् सम्बन्धित समझा जाता है।

महाबन्ध का प्रमाण—द्वादशाग वाणी से सम्बन्ध रखनेवाले प्राचीन साहित्य की दृष्टि से गुणधर

---

१ वप्पदेव ने आठ हजार पाँच श्लोक प्रमाण महाबन्ध की टीका रची थी।
व्यलिखत् प्राकृतभाषारूपा सम्यक्पुरातनव्याख्याम्।
अष्टसहस्रग्रन्था व्याख्या पञ्चाधिका महाबन्धे ॥१७६॥—इन्द्र श्रुता ।

२ गाहासदे असीदे अत्थे पण्णरसधा विहत्तम्मि।
वोच्छामि सुत्तगाहा जयि गाहा जम्मि अत्थम्मि ॥—जयध १,१५१।

आचार्य रचित दो सौ तैतीस गाथाओं को जो विशेषता प्राप्त होगी, वह उनपर रची गयी बहत्तर हजार श्लोक प्रमाण टीका को नहीं होगी। इसी दृष्टि से यदि धवला टीका पर भी प्रकाश डाला जाय, तो कहना होगा कि साठ हजार श्लोक प्रमाण टीका भी नौवीं सदी की है, प्राचीन अंश पाँच खण्डों के रूप में केवल छह हजार श्लोक प्रमाण है। '*महाबन्ध*' ग्रन्थ की सम्पूर्ण चालीस हजार श्लोक प्रमाण रचना भूतबलि स्वामीकृत होने के कारण अत्यन्त प्राचीन तथा महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार सबसे प्राचीन जैनवाङ्मय की दृष्टि से '*महाबन्ध*' सूत्र की रचना धवला, जयधवला टीकाओं के मूल की अपेक्षा लगभग सातगुनी है। ब्रह्म हेमचन्द्र रचित श्रुतस्कन्ध में लिखा है–

"सत्तरिसहस्सधवलो जयधवलो सट्ठिसहस्स बोधव्वो।
महबंधं चालीसं सिद्धंततयं अहं वंदे ॥"

'धवलशास्त्र सत्तर सहस्र प्रमाण है, जयधवल साठ हजार प्रमाण है तथा '*महाबन्ध*' चालीस हजार प्रमाण है। इन सिद्धान्तशास्त्रत्रय की मैं वन्दना करता हूँ।'

इन्द्रनन्दि ने '*महाबन्ध*' को तीस हजार[1] कहा और ब्रह्म हेमचन्द्र चालीस हजार श्लोक[2]प्रमाण बताते हैं। इस मतभेद का कारण यह विदित होता है कि सम्भवत इन्द्रनन्दि ने '*महाबन्ध*' में उपलब्ध अक्षरों की गणनानुसार अपनी संख्या निर्धारित की, ब्रह्म हेमचन्द्र ने '*महाबन्ध*' के संक्षिप्त किये सांकेतिक अक्षरों को, सम्भवत पूर्ण मानकर गणना की। 'ओरालियसरीर' को '*महाबन्ध*' में 'ओरा०' लिखा है। इसे इन्द्रनन्दि ने दो अक्षर माने और ब्रह्म हेमचन्द्र ने सात अक्षर रूप गिना। समस्त ग्रन्थ में पुन-पुन प्रकृति आदि के नामों की गणना हुई है, इस कारण भूतबलि स्वामी ने सांकेतिक संक्षिप्त शैली का आश्रय लिया। अत इन्द्रनन्दि और हेमचन्द्र की गणना में भिन्नता तात्त्विक भिन्नता नहीं है।

महाधवल–जैन समाज में '*महाबन्ध*' शास्त्र '*महाधवल*' जी के नाम से विख्यात है। '*महाबन्ध*' नाम को पढ़कर कुछ लोग तो भ्रम में पड़ेंगे। यथार्थ में ग्रन्थ का नाम '*महाबन्ध*' के अनुभागबन्ध खण्ड के अन्त की प्रशस्ति से प्रमाणित होता है। वहाँ लिखा है–

"सकलधरित्री-विनुत-प्रकटितयशोशे मल्लिकब्बे बेरेसि सत्पुण्याकर-'*महाबन्ध*'-पुस्तक श्रीमाघनंदिमुनि-पतिगित्तल्।"

'यह '*महाबन्ध*' भूतबलि स्वामी-द्वारा रचित है, इस बात का निश्चय धवला टीका (सिवनी प्रति, पृ १४३७) के इस अवतरण से होता है–

"जं त बंधविहाण त चउव्विह। पयडिबंधो, ट्ठिदिबंधो, अणुभागबंधो, पदेसबंधो चेदि। एदेसि चदुण्ह बंधाण भूदबलिभडारएण महाबंधे सप्पवंचेण लिहिद ति अम्हेहि ति अम्हेहि एत्थ ण लिहिद।"

'*धवला*' टीका '*महाबन्ध*' शास्त्र के रचयिता के रूप में भूतबलि का नाम बताती है। '*महाबन्ध*' नामका परिज्ञान पूर्वोक्त अनुभागबन्ध की प्रशस्ति से होता है, अत यह स्पष्ट हो जाता है कि इस '*महाबन्ध*' के निर्माता भूतबलि स्वामी हैं। इसी '*महाबन्ध*' की '*महाधवल*' के नाम से ख्याति है। संवत् १६१७ तक '*महाधवल*' की प्रसिद्धि विदित होने का प्रमाण उपलब्ध है। कारंजा के प्राचीन शास्त्र भण्डार से प्रतिक्रमण नाम की एक पोथी है। उसमें यह उल्लेख पाया जाता है–

"धवलो हि महाधवलो जयधवलो विजयधवलश्च।
ग्रन्थाःश्रीभद्रिरमी प्रोक्ताः कविधातरस्तस्मात् (?) ॥१३॥

---

1. प्रोवेरच्य महाबन्धाह्वय तत पष्ठक खण्डम्। त्रिंशत्सहस्रसूत्र व्यरचयदसौ महात्मा ॥ —इन्द्र श्रुता १३९।
2. समस्त महाबन्ध गद्यमय रचना है। अनुष्टुप् छन्द के ३२ अक्षरों को एक श्लोक का माप मानकर समस्त ग्रन्थ की गणना की गयी। इसे ही श्लोकों के नाम से कहा जाता है। '*महाबन्ध*' सूत्र छन्दोबद्ध रचना नहीं है।

धवल, जयधवल तथा *'महाधवल'* के साथ 'विजयधवल' का नवीन उल्लेख है जो अनुसन्धान का विषय है। आगे लिखा है–

"तत्पट्टे धरसेनकस्समभव सिद्धान्तगः सेंशुमः (?)
तत्पट्टे खलु वीरसेनमुनिपो यैश्चित्रकूटे परे।
येलाचार्यसमीगं कृततरं सिद्धान्तमल्पस्य ये
वाटे चैत्यवरे द्विसप्ततिमिति सिद्धाचलं चक्रिरे ॥१४॥"

सवत् १६३७ आश्विनमासे कृष्ण पक्षे अमावस्यातिथौ शनिवासरे शिवदासेन लिखितम्।

कवि वृन्दावनजी ने *'महाधवल'* नाम प्रयुक्त किया है।[1]

पण्डितप्रवर टोडरमलजी की गोम्मटसार कर्मकाण्ड की टीका मे भी *'महाधवल'* नाम आया है। "तहाँ गुणस्थान विषै पक्षान्तर जो महाधवला का दूसरा नाम कषायप्राभृत (?) ताका कर्ता यतिवृषभाचार्य ताके अनुसार ताकरि अनुक्रम ते कहिए है।" *'कषाय प्राभृत'* पर वीरसेनाचार्य ने जो *'जयधवला'* टीका लिखी है, उससे विदित होता है कि कषायपाहुड के गाथा सूत्रों पर यतिवृषभ आचार्य ने चूर्णिसूत्र बनाये थे। इसे पण्डित टोडरमलजी ने *'महाधवल'* ग्रन्थ रूप मे कह दिया। प्रतीत होता है, सिद्धान्तग्रन्थो का साक्षात्कार न होने के कारण 'कषाय-प्राभृत' का नामान्तर *'महाधवल'* लिखा गया।

'महाधवल' नाम प्रचार का कारण

यहाँ यह विचार उत्पन्न होता है कि *'महाबन्ध'* शास्त्र का नाम *'महाधवल'* प्रचलित होने का क्या कारण है? इस सम्बन्ध मे यह विचार उचित जँचता है कि *'महाबन्ध'* मे भूतबलि स्वामी ने अपने प्रतिपाद्य विषय का स्वय अत्यन्त विशद तथा स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन किया है। इसी कारण वीरसेन आचार्य अपनी *'धवला'* टीका मे लिखते हैं[2]—इन चार बन्धो का विस्तृत विवेचन भूतबलि भट्टारक ने *'महाबन्ध'* मे किया है, अतएव हम यहाँ इस सम्बन्ध मे कुछ नही लिखते। *'महाबन्ध'* के विशेषण रूप मे *'महाधवल'* शब्द का प्रयोग अनुचित नहीं दिखता। यह भी सम्भव दिखता है कि विशेष्य के स्थान मे विशेषण ने ही लोकदृष्टि मे प्राधान्य प्राप्त कर लिया हो। यह भी प्रतीत होता है कि परम्परा शिष्य सदृश वीरसेन, जिनसेन स्वामी ने अपनी सिद्धान्त शास्त्र की टीकाओ के नाम धवला, जयधवला रखे, तब स्वय स्पष्ट प्रतिपादन करनेवाले गुरुदेव भूतबलि की महिमापूर्ण कृति को भक्ति तथा विशिष्ट अनुरागवश *'महाधवल'* कहना प्रारम्भ कर दिया गया होगा।

'महाबन्ध' के *'महाधवल'* नाम के बारे मे सन् १९४५ मे, चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर महाराज के समक्ष चर्चा करने का अवसर आया था। इस ग्रन्थ की प्रस्तुत हिन्दी टीका का आचार्य महाराज

---

१ अग्रणीपूर्व के, पाँचवें वस्तु का, महाकरमप्रकृति नाम चौथा।
इस पराभृत का, ज्ञान तिनके रहा, यहाँ लग अग का, अश तौ था॥
सो पराभृत्त को भूतबलि पुष्परद, दोय मुनि को सुगुरु ने पढाया।
तास अनुसार, षट्खण्ड के सूत्र को, बाँधि के पुस्तकों मे मढाया ॥४६॥
फिर तिसी सूत्र को, औंर मुनिवृन्द पढि, रची विस्तार सों तासु टीका।
धवल महाधवल जयधवल आदिक सु, सिद्धान्तवृत्तान्त परमान टीका॥
तिरुन हि सिद्धान्त को, नेमिचन्द्रादि आचार्य, अभ्यास करिके पुनीता।
रचे गोमट्टसारादि बहुशास्त्र यह, प्रथम सिद्धान्त-उतपत्ति-गीता ॥४७॥
—श्रीप्रवचनसार-परमागम, कवि वृन्दावन, पृ ६,७।

२ एदेसि चदुण्ह बधाणं विहाण भूदवलिभडारएण महाबन्धे सप्पवचेण लिहिदंति, अम्हेहि एत्थ ण लिहिद"—ध टी , सि १४३७।

ध्यानपूर्वक स्वाध्याय कर चुके थे, अत ग्रन्थराज से प्राप्त परिचय के आधार पर आचार्य महाराज ने कहा था—सचमुच मे यह ग्रन्थ *'महाधवल'* है। बन्ध पर स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन करनेवाला शास्त्र यथार्थ मे महान् है। बन्ध का ज्ञान होने पर ही मोक्ष का बराबर ज्ञान होता है। *'समयसार'* पहले नही चाहिए। पहले *'महाबन्ध'* चाहिए। पहले सोचो हम क्यो दु ख मे पडे है, क्यो नीचे है? तीन सौ त्रेसठ पाखण्ड मतवाले भी पूर्ण सुख चाहते है, किन्तु मिलता नही। हमे कर्मक्षय का मार्ग ढूँढना है। भगवान् ने मोक्ष जाने की सडक वतायी है। चलोगे तो मोक्ष मिलेगा, इसमे शका क्या?" यह *'महाबन्ध'* शास्त्र वस्तुत *'महाधवल'* है। इस विपय को स्पष्ट करने के लिए आचार्य महाराज ने एक विद्वान् ब्राह्मण पुत्र की कथा सुनायी थी, जिसको उसके पिता ने, जो राजपण्डित था, अपने जीवन काल मे अर्थकरी विद्या नही सिखायी थी, केवल इतनी बात सिखायी थी कि अमुक कार्य करने से अमुक प्रकार का बन्ध होता है। बन्धशास्त्र मे पुत्र को प्रवीण करने के अनन्तर पिता की मृत्यु हो गयी। अब पितृविहीन विप्रपुत्र को अपनी आजीविका का कोई मार्ग नही सूझा। अत वह धनप्राप्ति निमित्त राजा के यहाँ चोरी करने पहुँचा। उसने रत्न, सुवर्णादि वहुमूल्य सामग्री हाथ मे ली तो पिता के द्वारा सिखाया गया पाठ उसे स्मरण आ गया कि इस कार्य के द्वारा अमुक प्रकार का दु खदायी बन्ध होता है। अत बन्ध के भय से उसने राजाकोष का कोई भी पदार्थ नही चुराया। उसे वापिस निराश लौटते समय मार्ग मे भूसा मिला। भूसा के लेने मे क्या दोष है, यह पिता ने नही सिखाया था, इसलिए वह भूसा का ही गट्ठा बॉधकर साथ ले चला। पहरेदारो ने उसे पकडकर राजा के समक्ष उपस्थित किया। राजा ने पूछा—तुमने स्वर्ण, रत्नादि को छोडकर भूसा की चोरी क्यो पसन्द की? तब ब्राह्मणपुत्र ने बताया कि मेरे पिताजी ने अपने जीवन मे मुझे केवल बन्ध का शास्त्र पढाया था। उसमे भूसा को लेने मे दोष का कोई उल्लेख न पाकर मैंने उसे ही चुराना निर्दोष समझा। अपने राजपुरोहित के पुत्र को इतना अधिक पापभीरु देख राजा प्रभावित हुआ और उसने उसको अत्यन्त विश्वासपूर्ण उच्च पद देकर निराकुल कर दिया।" इस कथा को सुनाते हुए आचार्य श्री ने कहा—बन्धका ज्ञान होने से जीव पाप से बचता हे, इससे कर्मो की निर्जरा भी होती है। बन्धका वर्णन पढने से मोक्ष का ज्ञान होता है। बन्धका वर्णन करनेवाला यह शास्त्र वास्तव मे *'महाधवल'* है। इससे बहुत विशुद्धता होती है।"

'महाबन्ध' का अध्ययन बुद्धि का विलास या बौद्धिक व्यायाम की सामग्री मात्र उपस्थित करता है, यह धारणा अयथार्थ है। इस आगम रूप महान् शास्त्र से आत्मा का वास्तविक कल्याणप्रद अमृत का निर्मल निर्झर प्रवाहित होता है। उसमें निमग्न होनेवाला मुमुक्षु महान् शान्ति तथा आह्लाद को प्राप्त करता है। उसके असख्यात गुणश्रेणी रूप कर्मो की निर्जरा भी होती है।

आचार्य यतिवृषभने *'तिलोयपण्णत्ति'* मे कहा है कि परमागम के अध्ययन-द्वारा अनेक लाभ होते है। उससे 'अण्णाणस्स विणास' अज्ञान का विनाश होता है, 'णाणदिवायरस्स उप्पत्ती'—ज्ञान सूर्य की प्राप्ति होती है तथा 'पडिसमयमसखेज्ज-गुणसेढि-कम्मणिज्जरण'—प्रतिक्षण असख्यात गुणश्रेणी रूप कर्मो की निर्जरा होती है। (१, गाथा ३६, ३७)

इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि *'महाबन्ध'* का परिशीलन विचारो को, बुद्धि को एव आत्मा को धवल ही नहीं, महाधवल बनाता है। इस दृष्टि ने *'महाधवल'* इस नाम के प्रचार मे भी सहायता या प्रेरणा प्रदान की होगी।

'महाबन्ध' का परिशीलन तथा मनन करते समय यह बात समझ मे आयी कि जब तक मनोवृत्ति पवित्र तथा निराकुल न हो, तब तक ग्रन्थ का पूर्वापर गम्भीर विचार नही हो पाता। महाधवल मनोवृत्तिपूर्वक *'महाबन्ध'* का रसास्वादन किया जा सकता है, अत इस मनोवृत्ति को लक्ष्य मे रखकर भी यह *'महाधवल'* नाम प्रचलित हो गया प्रतीत होता है। चारित्रचक्रवर्ती, मुनीन्द्र शातिसागर महाराज ने जो यह कहा था कि सचमुच मे 'यह ग्रन्थ महाधवल है', वह अक्षरश यथार्थ है।

'महाबन्ध' के अवतरण का इतिहास

कवि की कल्पना या विचारो के द्वारा जैसे काव्य की रचना होती है, उसी प्रकार यह *'महाबन्ध'*-शास्त्र भूतबलि स्वामी के व्यक्तिगत अनुभव, विचार या कल्पनाओ की साकार मूर्ति नही है। इस ग्रन्थ का प्रमेय सर्वज्ञ भगवान् महावीर स्वामी ने अपनी दिव्यध्वनि-द्वारा प्रकाशित किया था।[1] श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के प्रभात मे विपुलाचल पर्वत पर सर्वज्ञ महावीर तीर्थंकर की कल्याणकारिणी धर्म-देशना हुई थी। उसे गौतमगोत्री चतुर्विध निर्मल ज्ञानसम्पन्न, सम्पूर्ण दु श्रुति मे पारगत इन्द्रभूति ब्राह्मण ने वर्धमान भगवान् के पादमूल मे उपस्थित हो सुना और अवधारण किया था। अनन्तर गौतम स्वामी ने[2] उस वाणी की द्वादशाग तथा चतुर्दश पूर्वरूप ग्रन्थात्मक रचना एक मुहूर्त मे की 'एक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा'। उत्तरपुराण मे गुणभद्र स्वामी ने कहा है कि अगो की रचना पूर्वरात्रि मे की गयी थी और पूर्वो की रचना रात्रि के अन्तिम भाग मे की गयी थी –'अगाना ग्रन्थसन्दर्भ पूर्वरात्रे व्यधाम्यहम्। पूर्वाणा पश्चिमे भागे ' (७४-३७१, ३७२) इस सम्बन्ध मे भगवान् महावीर को अर्थकर्त्ता कहा गया है और गौतम स्वामी को ग्रन्थकर्त्ता। गौतम ने द्रव्यश्रुत की रचना की थी। तिलोयपण्णत्तिकार का कथन है–

> "इय मूलतंतकत्ता सिरिवीरो इदभूदिविप्पवरो।
> उवतंते कत्तारो अणुतंते सेसआइरया ॥"१,८०

'इस प्रकार श्री वीर भगवान् मूलतन्त्रकर्त्ता, विप्रशिरोमणि इन्द्रभूति उपतन्त्रकर्त्ता तथा शेष आचार्य अनुतन्त्रकर्ता है।'

गणधर का व्यक्तित्व–इस द्वादशाग रूप परमागम का प्रमेय सर्वज्ञ भगवान् वर्धमान जिनेन्द्र की दिव्यध्वनि से प्राप्त होने से वह प्रमाण रूप है। गणधर का भी व्यक्तित्व लोकोत्तर था। गौतम गणधर के विषय मे 'जयधवला' मे लिखे गये ये शब्द ध्यान देने योग्य है –

जो आर्य क्षेत्र मे उत्पन्न हुए है, मति, श्रुत, अवधि और मन पर्यय–इन चार निर्मल ज्ञानो से सम्पन्न है, जिन्होने दीप्त, उग्र और तप्त तप को तपा है, जो अणिमा आदि आठ प्रकार की वैक्रियिक लब्धियो से सम्पन्न है, जिनका सर्वार्थसिद्धि मे निवास करनेवाले देवो से अनन्तगुणा बल है, जो एक मुहूर्त मे बारह अगो के अर्थ और द्वादशाग रूप ग्रन्थो के स्मरण और पाठ करने मे समर्थ है, जो अपने हाथरूपी पात्र मे दी गयी खीर को अमृत रूप मे परिवर्तित करने मे या उसे अक्षय बनाने मे समर्थ है, जिन्हे आहार और स्थान के विषय मे अक्षीण ऋद्धि प्राप्त है, जिन्होने सर्वावधिज्ञान से समस्त पुद्गल द्रव्य का साक्षात्कार कर लिया है, जिन्होने अपने तप के बल से विपुलमति मन पर्यय ज्ञान उत्पन्न कर लिया है, जो सप्त प्रकार के भय से रहित हैं, जिन्होने क्रोध, मान, माया तथा लोभ रूप कषायो का क्षय किया है, जिन्होने पॉच इन्द्रियो को जीत लिया है, जिन्होने मन, वचन तथा काय रूपी तीन दण्डो को भग्न कर दिया है, जो छहकायिक जीवो की दया पालने मे तत्पर है, जिन्होने कुलमद आदि अष्ट मदो को नष्ट कर दिया है, जो क्षमा आदि दस धर्मो मे निरन्तर उद्यत है, जो पॉच समिति और तीन गुप्ति रूप अष्टप्रवचन मातृकाओ का पालन करते है, जिन्होने क्षुधादि बाईस परीषहो को जीत लिया है और जिनका सत्य ही अलकार है–"सच्चालकारस्स", ऐसे आर्य इन्द्रभूति के लिए उन महावीर भट्टारक ने अर्थ का उपदेश दिया। (जयधवला टीका भाग १, पृ ८३, ७४)। ऐसी महनीय विभूति गुरु गौतम गणधर रचित होने से समस्त द्वादशागवाणी पूज्य तथा विश्वसनीय है।

---

१ वासस्स पढमासे सावणणामम्मि बहुलपडिवाए।
अभिजीणक्खत्तम्मि य उप्पत्ती धम्मतित्थस्स॥–ति प १।६९

२ पुणो तेणिदभूतिणा भावसुदपज्जयपरिणदेण बारहगाण चोद्दसपुव्वाण च गथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा। तदो भावसुदस्य अत्थपदाण च तित्थयरो कत्ता। तित्थयरादो सुदपज्जाएण गोदमो परिणदो त्ति दव्वसुदस्स गोदमो कत्ता। तत्तो गथरयणा जादेत्ति।–ध टी १,६५

यह द्वादशाग समुद्र के समान विशाल तथा गम्भीर है। सम्पूर्ण द्वादशाग की 'मध्यमपद' के रूप मे गणना करने पर जो सख्या प्राप्त होती है, उसे कविवर द्यानतरायजी इस प्रकार बताते है–

"एक सौ बारह कोडि बखानो। लाख चौरासी ऊपर जानो ॥
ठावनसहस पंच अधिकानो। द्वादश अंग सर्व पद मानो ॥"

सम्पूर्ण श्रुतज्ञान मे पदो की सख्या ११२,८४,५८००,५ होती है। बारह अगो मे निवद्ध अक्षरो के अतिरिक्त अक्षरो का प्रमाण ८०१०८१७५ है। इनकी अनुष्टुप् छन्दरूप गणना करे, तो २५०३३८० $\frac{१५}{३२}$ श्लोको का प्रमाण होता है।

प्रथम अग का नाम आचाराग है। इसमे अठारह हजार पद कहे गये है। ये मध्यम पद रूप है। एक मध्यम पद मे कितने श्लोक होंगे, इसके विषय मे कहा है–

"कोडि इक्कावन आठ हि लाखं। सहस चुरासी छह सौ भाखं॥
साढ़े इक्कीस श्लोक बताये। एक एक पद के ये गाये ॥"

इन श्लोको की सख्या से अचाराग के १८००० पदो का गुणा करने के अनन्तर आचाराग के अपुनरुक्त अक्षर विशिष्ट श्लोको की प्राप्ति होगी। जिस *'व्याख्याप्रज्ञप्ति'* नामक पचम अग का उपदेश धरसेन आचार्य ने भूतबलि पुष्पदन्त को दिया था और जो इस ग्रन्थराज के बीज स्वरूप है, उसमे पदो की सख्या इस प्रकार कही है–

"पंचम व्याख्याप्रगपति दरसं। दोय लाख अट्ठाइस सरसं।"

धरसेन गुरु द्वारा दृष्टिवाद नामक बारहवे अग के चौथे पूर्व अग्रायणी सम्बन्धी उपदेश दिया गया था। उस दृष्टिवाद का भी बडा विशाल रूप है।

"द्वादस दृष्टिवाद पनभेदं, एक सौ आठ कोडिपन वेदं।
अडसठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पंच पद मिथ्या हन हैं।"

'व्याख्याप्रज्ञप्ति'[1] अग में जिनेन्द्र भगवान् के समीप मे गणधरदेव से जो साठ हजार प्रश्न किये गये थे, उनका वर्णन है। *'दृष्टिवाद'* मे तीन सौ तिरेसठ कुवादो का वर्णन तथा निराकरण किया गया है।[2] इस अग के पूर्वगत भेद का उपभेद अग्रायणीपूर्व है। उसमे सुनय, दुर्नय, पचास्तिकाय, षड्द्रव्य, सप्ततत्त्व, नवपदार्थों आदि का वर्णन किया गया है।[3] इस पूर्व के विषय मे श्रुतस्कन्ध विधान मे इस प्रकार कथन आया है–षण्णवति–लक्षसुपद मुनि-मानसरत्न-काचनाभरणम्, अगाग्रार्थनिरूपकमर्च्य चाग्रायणीयमिदम् ॥ द्वादशाग वाणी मे दिव्यध्वनि का अधिक से अधिक सार सगृहीत रहता है। सर्वज्ञ भगवान ने विश्व के समस्त तत्त्वो का प्रतिपादन किया था, इस कारण द्वादशाग वाणी मे भी सभी विषयो का विशद प्रतिपादन किया गया है। जब रत्नत्रय धर्म की विशुद्ध साधना होती थी, तब पवित्र आत्माओ मे चमत्कारी ज्ञान की ज्योति जगती थी। अब राग-द्वेष-मोह के कारण आत्मा की मलिनता बढ़ जाने से महान् ज्ञानो की उपलब्धि की बात तो दूर है, वह चर्चा भी चकित कर देती है।

द्वादशांग वाणी की मर्यादा–द्वादशाग वाणी के अत्यन्त विस्तृत विवेचन के होते हुए भी समस्त पदार्थ का प्रतिपादन उसके द्वारा नही हो सका। कारण–

---

१ षष्टिसहस्राणि भगवदर्हत्तीर्थकरसन्निधौ गणधरदेवप्रश्नवाक्यानि प्रज्ञाप्यन्ते कथ्यन्ते यस्या सा व्याख्याप्रज्ञप्ति नाम।

२ द्वादशमङ्ग दृष्टिवाद इति। दृष्टिशताना त्रयाणा त्रिषष्ट्युत्तराणा प्ररूपण निग्रहश्च दृष्टिवादे क्रियते।–त. रा, पृ ५१।

३ अग्रस्य द्वादशाङ्गेषु प्रधानभूतस्य वस्तुन अयन ज्ञान अग्रायण तत्प्रयोजन अग्रायणीयम्। तच्च सप्तशतसुनयदुर्नय-पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्व-नवपदार्थादीन् वर्णयति।–गो जीव जी, गा. ३६५, पृ ७७८

"पण्णवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं।
पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुदणिवद्धो ॥"–गो जी, गा ३३४

पदार्थों का बहुभाग वाणी के परे है। वह केवलज्ञान गोचर है। अनिर्वचनीय पदार्थों का अनन्तवाँ भाग सर्वज्ञवाणी के गोचर है। इसका भी अनन्तवाँ भाग श्रुतरूप मे निवद्ध किया गया है। श्रुतकेवली के ज्ञान के अगोचर पदार्थ का निरूपण दिव्यध्वनि मे होता है। उस दिव्यध्वनि के भी अगोचर पदार्थ केवलज्ञान के विषय होते है।[1]

यह द्वादशाग वेद है, कारण यह किसी प्रकार के दोष से दूषित नही है। हिंसा का वर्णन करनेवाला वेद नही है। उसे तो कृतान्त (यम) की वाणी कहना चाहिए। महर्षि जिनसेन का कथन है–

"श्रुतं सुविहितं वेदो द्वादशाङ्गमकल्मषम्।
हिंसोपदेशि यद्वाक्य न वेदोऽसौ कृतान्तवाक् ॥"–महापु ३९,२२

गुरु-परम्परा–गौतमस्वामी ने द्वादशाग ग्रन्थ का सुधर्माचार्य को व्याख्यान किया। धवलाटीका मे सुधर्माचार्य के स्थान मे लोहाचार्य का नाम ग्रहण किया गया है। कुछ काल के अनन्तर गौतमस्वामी केवली हुए।[2] उन्होने बारह वर्ष पर्यन्त विहार करके निर्वाण प्राप्त किया। उसी दिन सुधर्माचार्य ने जम्बूस्वामी आदि अनेक आचार्यो को द्वादशाग का व्याख्यान किया और केवलज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार महावीर भगवान् के निर्वाण के बाद गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य तथा जम्बूस्वामी–ये तीन सकलश्रुत के धारक हुए, पश्चात् केवलज्ञान-लक्ष्मी के अधिपति बने। परिपाटी क्रम से ये तीन सकलश्रुत के धारक कहे गये है[3] और अपरिपाटी क्रम से सकलश्रुत के ज्ञाता सख्यात हजार हुए।[4] जयधवला मे बताया है कि सुधर्माचार्य ने अनेक आचार्यो को द्वादशाग का व्याख्यान किया। इसे ही धवलाटीका मे स्पष्ट करते हुए कहा है कि अपरिपाटी की अपेक्षा सख्यात हजार श्रुतकेवली हुए। जम्बूस्वामी ने विष्णु आदि अनेक आचार्यो को द्वादशाग का व्याख्यान किया।

सुधर्माचार्य ने बारह वर्ष विहार किया और जम्बूस्वामी ने अडतीस वर्ष विहार किया, पश्चात् जम्बूस्वामी ने मोक्ष प्राप्त किया। जम्बूस्वामी के बारे मे जयधवलाकार लिखते है–'एसो एत्थोसप्पिणीए अंतिमकेवली।'–ये इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम केवली हुए। इस कथन से यही अर्थ निकाला जाता है कि जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् अन्य महापुरुष निर्वाण को नही गये। 'तिलोयपण्णत्ति' मे लिखा है कि जम्बूस्वामी के निर्वाण जाने के पश्चात् अनुबद्ध केवली नही हुए।

"तम्मि कदकम्मणासे जंबूसामित्ति केवली जादो।
तम्मि सिद्धिं पत्ते केवलिणो णत्थि अणुबद्धा॥"–४,१४७७

गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य तथा जम्बूस्वामी–ये तीन अनुबद्ध-क्रमबद्ध परिपाटीक्रम युक्त (In

---

१ श्रुतकेवलिनामपि अगोचरार्थप्रतिपादनशक्तिर्दिव्यध्वनेरस्ति। तद्दिव्यध्वनेरपि अगोचरजीवाद्यर्थ ग्रहणशक्ति केवलज्ञानेऽस्तीत्यर्थ –गो जीव, सस्कृतटीका, पृ ७३१

२ 'तेण गोदमेण दुविहमवि सुदणाण लोहज्जस्स सचारिद।' –ध टी, १,६५
तदो तेण गोअमगोत्तेण इदभूदिणा सुहमा (म्मा) इरियस्स गथो वक्खाणिदो। –ज ध, १,८४

३ 'परिवाडिमस्सिदूण एदे तिण्णि वि सयलसुदधारया भणिया।
अपरिवाडीए पुण सयलसुदपारगा सखेज्जसहस्सा ॥' –ध टी, १,६५

४ तद्दिवसे चेव सुहम्माइरियो जवूसामियादीणमणेयाणमाइरियाण वक्खाणिददुवालसगो घाइचउक्कक्खएण केवली जादो। –ज ध, १,८४

"तद्दिवसे चेव जवूसामिभडारओ विट्टु (विण्णु) आइरियादीणमणेयाण वक्खाणिददुवालसगो केवली जादो ॥" –ध टी, १,६५

succession) केवली हुए। अननुबद्ध-अक्रमपूर्वक[1] कैवल्य उपार्जन करनेवाले अन्य भी हुए हैं, जिनमे अन्तिम केवल श्रीधरमुनि ने कुण्डलगिरि से मुक्ति प्राप्त की।[2]

"कुंडलगिरिम्मि चरिमो केवलणाणीसु सिरिधरो सिद्धो।
चारणारिसीसु चरिमो सुपासचंदाभिधाणो य॥"–ति. प. ४,१४७९

तीन केवलियों में बासठ वर्ष व्यतीत हुए और विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन तथा भद्रबाहु इन पाँच श्रुतकेवलियो मे सौ वर्ष का समय पूर्ण हुआ। इन पाँच श्रुतकेवलियो की गणना भी परिपाटी क्रम-अनुबद्धरूप से की गयी, जो इस बात को सूचित करती है कि यहाँ अपरिपाटी क्रम की अपेक्षा नही ली गयी है। इन पाँच श्रुतकेवलियो मे प्रथम श्रुतकेवली के नाम के विषय मे 'तिलोयपण्णत्ति' तथा 'उत्तरपुराण' मे भिन्न कथन आया है। उक्त दोनो ग्रन्थो मे 'विष्णु' के स्थान पर 'नन्दि' का कथन किया गया है। धवला, जयधवला, हरिवशपुराण, श्रुतावतार मे विष्णु नाम दिया गया है। ये पाँच महापुरुष पूर्ण श्रुतज्ञान के पारगामी हुए। इनके अनन्तर अनुक्रम से एकादश महामुनि ग्यारह अग और दश पूर्व के पाठी हुए। निम्नलिखित इन एकादश मुनीश्वरो का काल एक सौ तिरासी वर्ष कहा गया है–१ विशाखाचार्य, २ प्रोष्ठिल, ३ क्षत्रिय, ४ जय, ५ नागसेन, ६ सिद्धार्थ, ७ धृतिषेण, ८ विजय, ९ बुद्धिल, १०. गगदेव, ११. धर्मसेन। ये ग्यारह नाम गिनाये गये हैं। इन नामो के विषय में उत्तरपुराण, धवला, हरिवशपुराण एकमत है, किन्तु 'तिलोयपण्णति' तथा 'श्रुतावतार' मे विशाखाचार्य की जगह क्रमश विशाख तथा विशाखदत्त नाम आया है। बुद्धिल के स्थान पर श्रुतावतार में बुद्धिमान शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'तिलोयपण्णत्ति' मे धर्मसेन की जगह सुधर्म नाम आया है। इन मुनियो के विषय मे आचार्य गुणभद्र ने लिखा है कि ये–"द्वादशागार्थ-कुशला दशपूर्वधराश्च ते।" (उ पु पर्व ७६, श्लोक ५२३)–द्वादशाग मे कुशल तथा दश पूर्वधर थे।

इनके अनन्तर एकादशांग के ज्ञाता नक्षत्र, जयपाल, पाडु, ध्रुवसेन और कस ये पाँच महापुरुष दो सौ बीस वर्ष मे हुए। इन नामो के विषय मे तिलोयपण्णत्ति, उत्तरपुराण तथा धवला एकमत है। जयधवला मे 'जयपाल' के स्थान मे 'जसपाल' तथा हरिवशपुराण मे 'यश पाल' नाम आये है। श्रुतावतार मे 'ध्रुवसेन' की जगह 'द्रुमसेन' नाम आया है।

इनके पश्चात् आचाराग के ज्ञाता सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहाचार्य एक सौ अठारह वर्ष मे हुए। इन नामो मे श्रुतावतार मे इतनी भिन्नता है कि 'यशोभद्र' की जगह 'अभयभद्र' तथा 'यशोबाहु' की जगह 'जयबाहु' नाम प्रयुक्त हुए है। शेष ग्रन्थकार भिन्नमत नही है।

महावीर भगवान् के निर्वाण के पश्चात् अनुबद्ध क्रम से उपर्युक्त अट्ठाईस महाज्ञानी मुनीन्द्र छह सौ तिरासी वर्ष मे हुए थे। क्रमबद्ध परम्परा को ध्यान मे रखकर ही वीर निर्वाण के पश्चात् होनेवाले महापुरुषो का कथन किया गया है।

'श्रुतावतार' कथा मे लोहाचार्य के पश्चात् विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त, अर्हद्दत्त, अर्हद्बलि तथा

---

१ जयधवलाकारने परिपाटीक्रमका पर्यायवाची 'अतुट्टसताणेण' (१, ८५) जिसकी सतान या परम्परा अत्रुटित है, ऐसा कहा है।

२ अपने *'जैन साहित्य और इतिहास'* के पृ १४, १५ पर श्री नाथूरामजी प्रेमी लिखते हैं–"भगवान् महावीर के बाद तीन ही केवलज्ञानी हुए है, जिनमें जम्बूस्वामी अन्तिम थे। ऐसी दशामें यह समझ में नहीं आता, कि यहाँ श्रीधर को क्यों अन्तिम केवली बतलाया और ये कौन थे तथा कब हुए हैं। शायद ये अन्त कृत केवली हों।" इस शका का निवारण पूर्वोक्त वर्णन से हो जाता है, कारण श्रीधर मुनि अननुबद्ध अन्तिम केवली हुए है, जिनका निर्वाणस्थल कुंडलगिरि है। इनको अन्त कृत केवली मानने मे कोई आगम का आधार नहीं है। सामान्यतया नन्दी, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन तथा भद्रबाहु–ये पाँच श्रुतकेवली कहे गये है, किन्तु धवलाटीका से ज्ञात होता है कि अपरिपाटी क्रम की अपेक्षा ये द्वाशाग के पाठी सख्यात हजार थे। *'जयधवला'* से भी इस अधिक सख्या की पुष्टि होती है। यही युक्ति केवलियो के विषय में लगेगी। शास्त्रो में अनुबद्धकेवली तथा श्रुतकेवली की मुख्यता से प्रतिपादन किया गया है।

माघनन्दि, इन छह महापुरुषो को अगपूर्व के एकदेश के ज्ञाता कहा है। अन्य ग्रन्थो मे ये नाम नहीं दिये गये है। सम्भवत ये नाम अनुबद्ध परम्परा के क्रम से और भी अक्रमबद्ध परम्परावाले मुनीश्वर रहे होगे।

अंग-पूर्वो के एकदेश ज्ञाता- जयधवला टीका मे लिखा है कि लोहाचार्य के पश्चात् अग और पूर्वो का एकदेश ज्ञान आचार्य परम्परा से आकर गुणधर आचार्य को प्राप्त हुआ था। जयधवलाकार के ये शब्द ध्यान देने योग्य है–"तदो अग-पुव्वाणमेगदेसो चेव आइरिय-परपराए आगतूण गुणहराइरिय सपत्तो" (जय ध भाग १, पृ ८७)। धवलाटीका मे इस सम्बन्ध मे लिखा है–, "तदो सव्वेसि-भग-पुव्वाणमेगदेसो आइरियपरपराए आगच्छमाणो धरसेणाइरिय संपत्तो"–(१, ६७)–लोहार्य के पश्चात् आचार्य परम्परा से सम्पूर्ण अग और पूर्वो का एकदेशज्ञान धेरसेन आचार्य को प्राप्त हुआ। आचार्य धरसेन अथवा गुणधर स्वामी भी विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त, अर्हद्त्त, अर्हद्‌वलि तथा माघनन्दि मुनीश्वरो के समान अग-पूर्व के एकदेश के ज्ञानी थे। ये नाम सम्भवत क्रमबद्ध परम्परागत न होने से हरिवशपुराण, उत्तरपुराण, तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रन्थो मे नही पाये जाते है। प्रतीत होता है कि इन मुनीश्वरो के समय मे कोई विशेष उल्लेखनीय अन्तर न रहने से इनके काल का पृथक् रूप से वर्णन नही पाया जाता है। आचाराग के पाठी आचार्य वीरनिर्वाण के पश्चात् छह सौ तिरासी वर्प तक हुए। स्थूल रीति से वही समय धरसेनस्वामी तथा गुणधर आचार्य का रहा होगा।

विचारणीय विषय–इस विषय मे यह कथन विचारणीय है, वीर निर्वाण के छह सौ पॉच वर्ष तथा पॉच माह व्यतीत होने पर शकराजाकी उत्पत्ति कही गयी है। 'त्रिलोकसार' मे लिखा है–

"पण-छस्सयवस्सं षणमास जुदं गमिय वीरणिव्वुइदो।
सगराजो तोकक्की चदु-णव-तिय-महियसगमासं ॥८५०॥"

वीरभगवान् के निर्वाण जाने के छह सौ पॉंच वर्ष, पॉच माह पश्चात् शक राजा हुआ। उसके अनन्तर तीन सौ चौरानवे वर्ष, सात माह के पश्चात् कल्की हुआ। इस गाथा की टीका मे माधवचन्द्र त्रैविघदेव कहते है–**"श्रीवीरनाथनिर्वृत्तेः सकाशात् पंचोत्तरषट्‌शतवर्षाणि (६०५) पंच (५) मासयुतानि गत्वा पश्चात् विक्रमांकशकराजो जायते"**–यहॉ शकराजा का अर्थ विक्रमराजा किया गया है। इस कथा के प्रकाश मे आचाराग के पाठी मुनियो का सद्भाव विक्रम सवत् ६८३-६०५=७८ आता है। विक्रम सवत् के सत्तावन वर्ष पश्चात् ईसवी सन् प्रारम्भ होता है, अत ७८-५७=२१ वर्ष ईसा के पश्चात् आचारागी लोहाचार्य हुए। उसके समीप ही धरसेन स्वामी का समय अनुमानित होने से उनका काल ईसवी की प्रथम शताब्दी पूर्वार्ध होना चाहिए।

दो परम्परा–श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार विक्रम के चार सौ सत्तर वर्ष पूर्व भगवान् महावीर का निर्वाण कहा जाता है। इस प्रकार दिगम्बर परम्परा श्वेताम्बर मान्यता से एक सौ पैतीस वर्ष पूर्व वीरनिर्वाण को मानती है। इतिहासकारो के मध्य प्रचलित वीरनिर्वाण काल ईसवी पूर्व पॉच सौ सत्ताईस वर्ष श्वेताम्बर परम्परा के आधार पर अवस्थित है। ४७० + ५७=५२७ वर्ष ईसा के पूर्व महावीर भगवान् हुए।

मुख्य विचारणीय विषय है कि 'शकराज' का क्या अर्थ किया जाय?[1] यदि शालिवाहन शक अर्थ किया जाता है, तो महावीर भगवान् का निर्वाण काल ईसवी के पॉँच सौ सत्ताईस वर्ष पूर्व होता है। उसके आधार पर यदि धरसेन स्वामी का समय निकाला जाएगा, तो ईसवी सन् इक्कीस मे एक सौ पैतीस और जोडने पडेंगे। इस प्रकार यह समय एक सौ छप्पन ईसवी होगा अर्थात् ईसा की दूसरी शताब्दी हो जाएगा। दिगम्बर आगम के कथन मे श्रद्धा करनेवालो की दृष्टि मे वीरनिर्वाण काल विक्रम सवत् से छह सौ पॉँच वर्ष पॉच माह पूर्व माना जाएगा। अत विक्रम सवत् २०२० मे वीरनिर्वाण सवत् २०२० + ६०५ =२६२५ होगा।

---

१ इस सम्बन्ध मे विशेप विवेचन आस्थान महाविद्वान् पण्डित शान्तिराज शास्त्री ने मैसूर राज्य-द्वारा मुद्रित तत्त्वार्थसूत्र की भास्करनन्दी रचित टीका की सस्कृत भूमिका में किया है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर परम्पराओ को ध्यान मे रखते हुए डॉ. जेकोबी ने लिखा था—"The traditional date of Mahavira's nirvana is 470 years before Vikrama according to the Śvetāmbaras and 605 according to the Digambaras"—श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुसार महावीर का निर्वाण विक्रम से चार सो सत्तर वर्ष पूर्व हुआ था तथा दिगम्बरों की परम्परा के अनुसार वह छह सौ पाँच वर्ष पूर्व हुआ था।

पुरावृत्तज्ञ श्री राइस ने अपने शिलालेख सग्रह की प्रस्तावना मे महावीर भगवान् के निर्वाण के छह सौ पॉच वर्ष वाद उज्जैन के विक्रमादित्य का उल्लेख करते हुए लिखा है —"There was born Vikramaditya in Ujjayini and he by his knowledge of astronomy, having made an almanac established his own era from the year Rudhirodgāri, the 605 year after the death of Vardhamana

उज्जैनी में एक विक्रमादित्य राजा उत्पन्न हुआ था, जिसने अपने ज्योतिष ज्ञान के वलपर एक पचाग बनाकर रुधिरोद्गारी वर्ष से अपना सवत् चलाया था, जिसका समय वर्धमान के निर्वाण के छह सौ पाँच वर्ष बाद था।

सूत्रकार का समय—

अत दिगम्बर परम्परा को ध्यान मे रखते हुए आचार्य धरसेन का समय ईसा की प्रथम शताब्दी का पूर्वार्ध मानना होगा तथा वही समय उनके पास मे 'महाकम्मपयडिपाहुड' के रहस्य का अभ्यास करनेवाले महाज्ञानी पुष्पदन्त, भूतवलि मुनीश्वरो का मानना सम्यक् प्रतीत होता है। इस प्रकाश मे *'महाबन्ध'* के रचयिता आचार्य भूतबलि का समय ईसा की प्रथम शताब्दी स्वीकार करना होगा।

'महाबन्ध' शास्त्र की रचना भूतवलि आचार्य ने की थी। इस सम्बन्ध मे *'धवला'* टीका मे कहा है कि सौराष्ट्र देश के गिरिनगर पत्तन की चन्द्रा गुफा में अग तथा पूर्व के एकदेश के ज्ञाता धरसेन आचार्य विराजमान थे।[1] वे अष्टाग महानिमित्त विद्या के पारगामी थे। उनके चित्त मे यह भय उत्पन्न हुआ कि आगे श्रुतज्ञान का विच्छेद हो जाएगा। अत प्रवचनवत्सल उन महर्षि ने दक्षिणापथ के निवासी तथा महिमा नगरी मे एकत्रित आचार्यो के पास अपना एक लेख भेजा, जिसमे उनका मनोगत भाव सूचित किया गया था।

'श्रुतावतार' कथा मे लिखा है—धरसेन आचार्य को अग्रायणी पूर्व के अन्तर्गत पंचम वस्तु के चतुर्थ भाग महाकर्म प्राभृत का ज्ञान था। अपने निर्मलज्ञान मे जब उन्हे यह भासमान हुआ कि मेरी आयु थोडी शेष रही है। यदि कोई प्रयत्न नहीं किया जाएगा, तो श्रुत का विच्छेद हो जाएगा। ऐसा विचारकर उन्होने देशेन्द्र देश के वेणातटाकपुर मे निवास करनेवाले महामहिमाशाली मुनियो के निकट एक ब्रह्मचारी के द्वारा पत्र भेजा। उस पत्र मे लिखा था—"स्वस्ति श्री वेणाकतटवासी यतिवरो को उर्ज्जयन्त तट निकटस्थ चन्द्रगुहानिवासी धरसेनगणि अभिवन्दना करके यह सूचित करता है कि मेरी आयु अत्यन्त अल्प रह गयी है। इससे मेरे हृदयस्थ शास्त्र की व्युच्छित्ति हो जाने की सम्भावना है, अतएव उसकी रक्षा के लिए आप शास्त्र के ग्रहण-धारण मे समर्थ तीक्ष्ण बुद्धि दो यतीश्वरों को भेज दीजिए।" पश्चात् योग्य विद्वान् मुनीश्वरो के आने पर धरसेन स्वामी ने अपनी ज्ञाननिधि उन दोनो को सौंप दी थी।

बृहत्कथाकोश मे विशेष कथन—'आराधना कथाकोश' मे दक्षिणापथ से आगत महिमा नगरी मे विराजमान संघ के प्रमुख आचार्य का नाम महासेन दिया गया है। हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश (पृ. ४२) मे लिखा है कि उस समय सौराष्ट्र देश मे धर्मसेन राजा का शासन था तथा उनकी रूपवती रानी का नाम धर्मसेना था। उसके गिरिनगर के समीप चन्द्रगुहा मे धरसेन महामुनि रहते थे।

---

१ "तेण वि सोरट्ठविसय-गिरिणयरपट्टणचंदगुहाठिएण अट्ठगमहाणिमित्तपारएण गथवोच्छेदो होहदि त्ति जादभयेण पवयणवच्छलेण दक्खिणावहाइरियाण महिमाए मिलियाण लेहो पेसिदो।"

—ध टी, १,६७

"ततः सौराष्ट्रदेशेऽस्ति नगरं गिरिपूर्वकम्। धर्मसेननृपस्तत्र धर्मसेनास्य सुन्दरी ॥१॥
तत्पत्तनसमीपे च चन्द्रोपपदिका गुहा। सन्तिष्ठते गुरुस्तस्यां धरसेनो महामुनि· ॥२॥

विबुध श्रीधर रचित 'श्रुतावतार' (पृ ३१६) से ज्ञात होता है कि धरसेन महामुनि के समीप भेजे गये दो शिष्यो का नाम 'सुबुद्धि' और 'नरवाहन' था। सुबुद्धि दीक्षा के पहले श्रेष्ठिवर थे और नरवाहन नरेश थे।

जिस दिन मुनियुगल धरसेन मुनीन्द्र के समीप पहुँचे थे, उसके प्रभाव काल मे धरसेन स्वामी ने एक स्वप्न देखा था कि दो सुन्दर धवलवर्ण बैलो ने उनके समीप आकर उनकी तीन प्रदक्षिणा दी और नम्रतापूर्वक उनके चरणो मे पड गये। इस स्वप्न को देखकर स्वप्नशास्त्र के अनुसार उन्होने उसे अत्यन्त शुभसूचक स्वप्न समझा। उन्होने "जयउ सुददेवदा"—श्रुतदेवता की जय हो, ये शब्द उच्चारण किये। कुछ क्षण के अनन्तर महिमानगरी से आगत धारणा तथा ग्रहण शक्ति मे प्रवीण मुनियुगल ने गुरुदेव को प्रणाम करके अपने आने का कारण निवेदन किया, "अणेण कज्जेणम्हा दोवि जणा तुम्ह पादमूलमुवगया"। आचार्य महाराज ने कहा, "सुट्ठु, भद्द"—ठीक है, कल्याण हो। (ध टी, १,६८) हरिषेण कथाकोश (पृष्ठ ४२) मे लिखा है—

"उपविश्य क्षणं स्थित्वा प्रोचतुस्तौ मुनीश्वरम्।
नाथ। ग्रहीतुमायातौ त्वत्तो विद्यां मनोद्भवाम् ॥६॥"

वे क्षण-भर गुरु के चरणो मे बैठे, पश्चात् खडे होकर उन्होने मुनीश्वर धरसेन स्वामी से कहा, "नाथ। आपके अन्त करण से प्रसूत विद्या को ग्रहण करने को हम लोग आये है।"

यह सुनकर धरसेन स्वामी ने समागत साधुयुगल की सत्पात्रता की परीक्षा करना उचित समझा, क्योकि श्रुतज्ञान सामान्य वस्तु नही है। वह अमृत से भी विशेष महत्त्वपूर्ण है। आज जो पात्रता-अपात्रता का विशेष विचार किये बिना श्रुतदान का कार्य चलता है, उसका फल प्रत्यक्ष दिखाई पडता है कि किन्ही के द्वारा पान किया गया श्रुतज्ञान रूप दुग्ध विषरूप परिणमन को प्राप्त होता है, अत ऐसे लोग परमागम के द्वारा स्व-परकल्याण साधन के स्थान मे अपनी शक्ति का उपयोग आगम निषिद्ध कार्यो मे करते है। परम विवेकी धरसेन स्वामी ने सोचा—'जहाछदाईण विज्जादाण ससारभयवद्धण'—स्वच्छन्द वृत्तिवालो को विद्यादान ससार भय का सवर्धक है, अत उन्होने उन साधुयगल की सत्पात्रता, वीतरागता, विवेकशीलता तथा निर्भीकता आदि की परीक्षा के हेतु कोई शास्त्रीय प्रश्न न पूछकर दो विद्याएँ सिद्ध करने को दी। एक का मन्त्र हीनाक्षर था, दूसरे का मन्त्र अधिक अक्षर वाला था। आचार्य ने कहा था—दो उपवासपूर्वक इनको सिद्ध करो। जब उन्होने विद्या सिद्ध की, तब एक के समक्ष कानी देवी आयी और अधिक अक्षरवाले साधक के समक्ष दन्तुरा—लम्बे दाँतोवाली देवी आयी। उस समय वे साधकयुगल विचार करने लगे—

"विलोक्य देवतां व्यग्रामेताभ्यां चिन्तितं तदा। काणिकोद्दन्तुरा देवी दृश्यते न कदाचन ॥१०॥
शोधयित्वा पुनर्विद्यां मन्त्रव्याकरणेन तु। ऊनाधिकाक्षरं दत्वा हित्वा ताभ्यां विचिन्ततम् ॥११॥
भूयोऽपि चिन्तिता विद्या ताभ्यां देवी समागता। सर्वलक्षणसम्पूर्णा किंकर्तव्यसमाकुला ॥१२॥
विसृज्य देवतां साधू सिद्धविद्यौ तपस्विनौ। गुरोः समीपतां प्राप्य प्रोचतुस्तौ यथाक्रमम् ॥१३॥"

इन्होने देवता के व्यग्र स्वरूप को देखकर विचार किया कि कोई भी देवी एकाक्षी नहीं होती तथा विकृत दन्तवाली नही होती, इसलिए उन्होने मन्त्र के व्याकरण के अनुसार विद्यासाधन हेतु दिये गये मन्त्र को शुद्ध किया। न्यूनाक्षर मन्त्र मे अक्षर जोडे और अधिक अक्षरवाले मे कम किये। इसके पश्चात् उन्होंने पुन मन्त्र का चिन्तवन किया। उस समय सर्वलक्षणो से समलकृत देवता का आगमन हुआ और उन्होने उनसे अपने योग्य कर्त्तव्य बताने का अनुरोध कया। उन तपस्वियो ने विद्या सिद्ध कर उनका सम्यक् प्रकार विसर्जन किया और गुरु के समीप आकर निवेदन किया—

"भवद्भिर्दत्तविद्यायां दत्तमेकं मयाक्षरम्। तथा निरस्तमेक च महातीचारकारिणा ॥१४॥
कृतातीचारपापस्य प्रायश्चित्त त्वमावयो.। प्रदेहि साम्प्रत तेन स्वचेत. शुद्धिमिच्छतोः ॥१५॥"

भगवन्! आपके द्वारा दी गयी विद्या मे मैने एक अक्षर जोड दिया। दूसरे साधक ने कहा--मैने एक अक्षर कम कर दिया। ऐसा करने से हमारे-द्वारा महान् दोप हुआ है। इस प्रकार अतिचाररूपी पाप करने के कारण आप हमे अभी प्रायश्चित्त दीजिए, जिससे हमारी मानसिक मलिनता दूर हो।

उसे सुनकर धरसेन आचार्य ने कहा--

"ऊनाधिकाक्षरे विद्ये परीक्षार्थं यथाक्रमम्।
वितीर्णे ते भवद्भ्यां मे न वा दोषोऽल्पकोऽपि स. ॥१७॥"

मैने तुम्हारी परीक्षा करने के लिए क्रमश ऊन अक्षर और अधिक अक्षर युक्त विद्या तुम्हे दी थी। इसमे तुम्हारा तनिक भी दोष नही है।

धरसेन स्वामी की परीक्षा मे वे दोनो साधु विशुद्ध सुवर्ण सदृश प्रमाणित हुए। उन्होंने यह देख लिया कि साधु-युगल का चरित्र अत्यन्त निर्मल है। वे अत्यन्त बुद्धिमान, विवेकी ज्ञानवान् है तथा उनका मन विपयों के प्रति पूर्णतया विरक्त है। उन्हे विश्वास हो गया कि इनको दी गयी विद्या का मधुर परिणाम ही होगा, इसलिए उन्होने--'सोमतिहि-णक्खत्त-वारे गथो पारद्धो'--शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र तथा शुभ दिन मे ग्रन्थ का पढाना प्रारम्भ किया। आचार्य धरसेन स्वामी ने यह नहीं सोचा कि हमे धर्मरूप पवित्र ज्ञाननिधि इन्हे सौपनी है, इसमे मुहूर्त आदि देखना अर्थहीन है। ऐसा न सोचकर उन परम विवेकी महाज्ञानी गुरुदेव ने शुद्ध काल रूप बाह्य सामग्री को अपने ध्यान मे रखा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी सत्कार्य करने मे बाह्य योग्य सामग्री की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। वादीभसिह सूरिने 'क्षत्रचूडामणि' काव्य मे लिखा है, "पाके हि पुण्य-पापाना, भवेद् बाह्य च कारणम्" ॥११-१४॥ पुण्य तथा पाप के उदय मे बाह्य सामग्री भी कारण रूप होती है। उन महामेधावी, प्रतिभाशाली तथा लोकोत्तर व्यक्तित्व समलकृत साधुयुगल को महाज्ञानी मुनीन्द्र धरसेन स्वामी ने उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया, जिसे उन महर्षियो ने अपने स्मृति पटल मे पहले पूर्णतया अकित कर लिया। इस प्रसग मे द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावरूप सामग्रीचतुष्य श्रेष्ठ रूप से विद्यमान थी, अत धरसेनाचार्य का मनोरथ पूर्ण हो गया।

आषाढसुदी एकादशी का महत्व--आषाढ सुदी एकादशी के पूर्वाह्न मे 'महाकम्म-पयडि पाहुड' गत कर्म-साहित्य का उपदेश पूर्ण हो चुका। प्रवचन प्रेमवश धरसेन स्वामी के मन मे जो पहले भय उत्पन्न हुआ था, वह भय अब दूर हो गया। उनकी श्रुतप्रेमी आत्मा को अवर्णनीय आनन्द हुआ। उन्होने परम शान्ति तथा सन्तोष का अनुभव किया।

देवों द्वारा पूजा--'धवला' टीका मे लिखा है--"विणएण गथो समाणिदोत्ति" (१,७०) विनयपूर्वक ग्रन्थ समाप्त हुआ। "तुट्ठेहि भूदेहि तत्थेयस्सु महती पूजा पुप्फ-बलि-सख-तूर-रव-सकुला कदा"--इससे सन्तोष को प्राप्त हुए भूतजाति के व्यन्तर देवो ने पुष्प, बलि, शखो की उच्च ध्वनियुक्त वैभवपूर्ण पूजा की। पवित्र कार्य पूर्ति होने पर इस पचमकाल में देवताओ का आगमन होकर पूजा का कार्य सम्पन्न होना असामान्य घटना थी।

नामकरण--उस मगल वेला मे धरसेनाचार्य के मन मे अपने श्रुतज्ञान निधि के उत्तराधिकारी उन शिष्य-युगल के नवीन नामकरण की भावना उत्पन्न हुई।

'धवला' टीका मे लिखा है--"त दट्ठूण तस्स 'भूदबलि' त्ति भडारएण णाम कय। अवरस्स वि भूदेहि पूजिदस्स अत्थ-वियत्थ-ट्ठिय-दत-पंति-मोसारिय भूदेहि समीकय दतस्स 'पुप्फयतो' त्ति णाम कय। (१,७१)

उस महान् पूजाको देवताओ के द्वारा सम्पन्न हुई देखकर भट्टारक धरसेन स्वामी ने भूतजाति के देवो द्वारा पुष्पादि से पूजा की जाने के कारण उन मुनीश्वरों को 'भूतबलि', यह सज्ञा प्रदान की तथा अस्त-व्यस्त

दन्तपक्ति दूर कर भूत देवो ने जिनके दन्तो को समानरूपता प्रदान की, ऐसे देवपूजित द्वितीय साधुराज का नाम पुष्पदन्त रखा।

विबुध[1] श्रीधर विरचित 'श्रुतावतार' में कहा है कि नरवाहन राजा ने मुनि पद को स्वीकार किया था। वे 'भूतबलि' इस सज्ञा-युक्त किये गये तथा सद्बुद्धि नामक द्वितीय मुनि का नाम पुष्पदन्त रखा था। पहले गृहस्थ जीवन मे वे श्रेष्ठिवर थे।

धरसेन स्वामी का मनोगत—अष्टांग-निमित्त-विद्या के पारगामी धरसेन स्वामी को यह ज्ञात हो गया कि अब रत्नत्रय साधक उनका शरीर अधिक काल तक नही टिकेगा। अब उनका मरण समीप है। ऐसे अवसर पर ये दोनो मुनि यदि मेरे समीप रहेगे, तो इनके चित्त मे मेरे वियोग की व्यथा उत्पन्न होना सम्भव है, अत उन वीतराग गुरुदेव ने मोहभाव का त्याग कर उन शिष्यो को उसी दिन प्रस्थान कर अन्यत्र चातुर्मास करने का आदेश दिया। धवला टीका मे लिखा है—"पुणो तद्दिवसे चेव पेसिदा सतो-गुरुवयणमलघणिज्ज इदि चितिऊणागदेहि अकुलेसरे वरिसाकालो कओ" (१,७१) गुरु की आज्ञानुसार वे भूतबलि-पुष्पदन्त मुनिराज उसी दिन यह सोचकर कि 'गुरु के वचन अलघनीय होते है' वहॉ से रवाना हो गये और उन्होंने अकलेश्वर में चातुर्मास किया।

इन्द्रनन्दि आचार्य ने लिखा है—"दूसरे दिन गुरु ने यह सोचकर कि मेरी मृत्यु निकट है, यदि ये समीप रहेगे तो दु खी होंगे। उन दोनों को कुरीश्वर भेज दिया। तब वे ६ दिन चलकर इस नगर मे पहुँच गये और वहॉ पचमी को योग ग्रहण करके उन्होने वर्षाकाल समाप्त किया।"

विबुध श्रीधर ने धवलाकार के अनुसार उन मुनिद्वय का अकुलेसर मे चातुर्मास लिखा है। इसका कारण उन्होने यह लिखा है कि धरसेन स्वामी ने अपनी मृत्यु को निकट ज्ञात किया तथा उससे इन मुनिद्वय को क्लेश न हो, इसलिए उनका वहाँ से प्रस्थान कराया।[2]

वीतराग चित्तवृत्ति—इस प्रकरण से जिनेन्द्र के शासन मे गुरु की वाणी का महत्त्व घोषित होता है। धरसेन आचार्य की वीतरागता का सजीव स्वरूप समझ आता है। अपने शिष्यो को मनोव्यथा न हो, यह विचार उनकी परम कारुणिक मनोवृत्ति को व्यक्त करता है। उनके वीतराग हृदय मे यह मोहभाव नही रहा कि मेरे स्वर्ग प्रयाण करते समय मेरे शिष्य मेरे समीप मे रहे। समाधिमरण के लिए तत्पर धरसेन स्वामी अपने को शरीर से भिन्न चैतन्य ज्योति स्वरूप एकाकी आत्मा सोचते थे, इसलिए उन्होने विशुद्ध भावो के साथ उन अत्यन्त गुणी तथा महाज्ञानी साधुओ को सदा के लिए अपने पास से अलग भेज दिया। अब उनका विशुद्ध मन जिनेन्द्र-चरणों का स्मरण करते हुए कर्मजाल से विमुक्त चैतन्य की ओर विशेष रूप से केन्द्रित हो रहा था।

चातुर्मास का काल व्यतीत होने पर भूतबलि भट्टारक द्रमिल देश—तामिल देश को गये—'भूदबलि-भडारो दमिलदेस गदो' तथा पुष्पदन्ताचार्य वनवास देशको गये। प्रतीत होता है कि इस चातुर्मास के भीतर ही महामुनि धरसेन स्वामी का स्वर्गवास हो गया होगा, अन्यथा उनके जीवित रहते हुए कृतज्ञ शिष्य-युगल गुरुदेव के पुण्य दर्शन हेतु गये विना न रहते।

---

१ विबुध श्रीधर के शब्दो मे इन्द्रभूति गणधर ने श्रेणिक महाराज से षट्खण्डागम सूत्र की उत्पत्ति के विषय में प्रकाश डालते हुए कहा था —"धरसेनभट्टारक कतिपयदिनैर्नरवाहन-सद्बुद्धिनाम्नो पठनाकर्णन-चिन्तनक्रिया कुर्वतोरषाढ-श्वेतेकादशीदिने शास्त्र परिसमाप्ति यास्यति। एकस्य भूता रात्रौ बलिविधि करिष्यन्ति, अन्यस्य दन्तचतुष्क सुन्दरम्। भूतबलिप्रभावाद् भूतबलिनामा नरवाहनो मुनिर्भविष्यति। समदन्तचतुष्टयप्रभावात् सद्बुद्धि पुष्पदन्तनामा मुनिर्भविष्यति।

—श्रुतावतार, पृ ३१७।

२ आत्मनो निकटमरण ज्ञात्वा धरसेन एतयोर्मा क्लेशो भवतु इति मत्वा तन्मुनिविसर्जन करिष्यति।

—श्रुतावतार, पृ ३१७।

पुष्पदन्तस्वामी की रचना–'धवलाटीका' मे लिखा है कि वनवास देश मे पहुँचकर पुष्पदन्त स्वामी ने जिनपालित को दीक्षा दी।[1] वीस प्ररूपणा गर्भित सत्प्ररूपणाके १७७ सूत्र वनाये और उन्हे जिनपालित के द्वारा भूतवलि स्वामी के समीप भेजे।

जिनपालित–इन्द्रनन्दि श्रुतावतार के कथनानुसार जिनपालित पुष्पदन्त स्वामी के भानजे थे। विबुधश्रीधर के श्रुतावतार में जिनपालित का नाम निजपालित आया है।[2] धर्मकीर्ति शिलालेख न १ मे (पट्टावली वागडा सघ या लालवागढ) जिनपालित को 'योगिराट्'–योगियो के अधीश्वर लिखा है।

"तेषां नामानि वच्मीतः शृणु भद्र महान्वय।
भद्रो भद्रस्वमावश्च धरसेनो यतीश्वरः ॥६॥
भूतबलिः पुष्पदन्तो जिनपालितयोगिराट्।
समन्तभद्रो धीधर्मा सिद्धिसेनो गणाग्रणीः ॥७॥"

भूतबलि की रचना–[3]भूतवलि स्वामी ने जिनपालित के पास वीसदि सूत्रो को देखा, उसमे अन्तिम १७७वॉ सूत्र यह है–'अणाहारा चदुसु ट्ठाणेसु विग्गहगइसमावण्णाण, केवलीण वा समुग्घादगदाण अजोगिकेवली, सिद्धा चेदि।' उन्हे जिनपालित के द्वारा ज्ञात हुआ कि पुष्पदन्त का जीवन-प्रदीप शीघ्र वुझनेवाला है। इससे उनके हृदय मे विचार उत्पन्न हुए कि अव 'महाकम्मपयडिपाहुड' का लोप हो जाएगा, अत उन्होने 'दव्वपमाणाणुगममादि काऊण गथरचणा कदा'–द्रव्यप्रमाणानुगम को आदि लेकर ग्रन्थरचना की। *'षट्खण्डागम'* में भूतबलि स्वामी रचित आदि सूत्र यह है–'दव्वपमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य।'–ध. टी २,१

इस सूत्र के प्रारम्भ में वीरसेनाचार्य धवलाटीका मे लिखते है–

"सपहि चोद्दसण्ह जीवसमासाणमत्थित्तमवगदाणं सिस्साण तेसि चेव पिरमाणपडिवोहणट्ठ भूदबलियाइरियो सुत्तमाह" (२,१)

'अब चौदह जीवसमासो के अस्तित्व को जाननेवाले शिष्यो को परिमाण का अवबोध कराने के लिए भूतबलि आचार्य सूत्र कहते है।'

पूर्वोक्त सूत्र को आदि लेकर शेष समस्त *'षट्खण्डागम'* सूत्र भूतबलि स्वामी की उज्ज्वल कृति है।

श्रुत पंचमी पर्व–इन्द्रनन्दिकृत 'श्रुतावतार' से विदित होता है कि जब यह रचना पूर्ण हो गयी, तब चतुर्विध सघ सहित भूतबलि स्वामी ने ज्येष्ठ सुदी पचमी को ग्रन्थराज की बडी भक्तिपूर्वक पूजा की।[4] उस समय से श्रुतपचमी पर्व प्रचलित हो गया, जब कि श्रुत-देवता की सर्वत्र अभिवन्दना की जाती है। इसके पश्चात् भूतबलि स्वामी ने यह रचना जिनपालित के साथ पुष्पदन्त स्वामी के पास भेजी। सौभाग्य की बात हुई, जो दुर्दैव ने पुष्पदन्ताचार्य को उस समय तक नही उठाया था। आचार्य पुष्पदन्त ने रचना देखी। अपना

---

१ तदो पुप्फदताइरिएण जिणवालिदस्स दिक्ख दाऊण वीसदिसुत्ताणि कारिय पढाविय पुणो सो भूदवलिभयवतस्स पास पेसिदो।–ध टी १,७१

२ Documents produced by Digambaris bebore the court of Dhwajadand Commissioner Udaipur, pp 29-30

३ भूदबलिभयवदा जिणवालिदासे दिट्ठवीसदिसुत्तेण अप्पाउओ त्ति अवगयजिणवालिदेण महाकम्मपयडिपाहुडस्स वोच्छेदो होहदि त्ति समुप्पण्ण-बुद्धिणा पुणो दव्वपमाणाणुगममादि काऊण गथ रचणा कदा। –ध टी, १,७१

४ ज्येष्ठसितपक्षपञ्चम्या चातुर्वर्ण्यसघसमवेत । तत्पुस्तकोपकरणैर्व्यधात् क्रियापूर्वक पूजाम् ॥१४३॥
श्रुतपंचमीति तेन प्रख्याति तिथिरिय परामाप। अद्यापि येन तस्या श्रुतपूजा कुर्वते जैना ॥१४४॥

–इ श्रु।

मनोरथ सफल हुआ ज्ञात कर वे अत्यन्त आनन्दित हुए। उन्होने भी चातुर्वर्णसघ सहित सिद्धान्तशास्त्र की पूजा की।[1]

इस महाशास्त्र के रक्षण कार्य मे जिनपालित की भी महत्त्वपूर्ण सेवा विदित होती है। हम देखते है कि चातुर्मास पूर्ण होने के पश्चात् पुष्पदन्त अपने साथी भूतबलि को छोडकर जिनपालित के पास वनवास देश मे पहुँचते है। वे विशतिसूत्रो की रचना करके अपना मन्तव्य भूतबलि के पास प्रेषित करते है। भूतबलि जब ग्रन्थराज का निर्माण पूर्ण कर लेते है, तब वे इन्ही जिनपालित के साथ अपनी अमूल्य जीवन निधि-ज्ञाननिधि को पुष्पदन्ताचार्य के समीप भेजते है, ताकि उनका भी इस आगम-रचना के विषय मे अभिप्राय ज्ञात हो जाय। जिनपालित योगिराज थे तथा पुष्पदन्त-जैसे महामुनि के अत्यन्त विश्वासपात्र थे। भूतबलि स्वामी ने भी उन्हे योग्य समझ अपने समीप स्थान दिया था और अपनी रचना उनके ही साथ पुष्पदन्त स्वामी के पास भिजवायी थी। इससे हमें प्रतीत होता है कि महान् ग्रन्थ-रचनाकार्य मे वे भूतबलि स्वामी के समीप अवश्य रहे होगे। बहुत सम्भव है कि भूतबलि स्वामी के तत्त्व प्रतिपादन को लिखने का कार्य जिनपालित-द्वारा सम्पन्न हुआ हो। कम से कम इतना तो दृढतापूर्वक कहा जा सकता है कि इस सिद्धान्तशास्त्र के उद्धार कार्य मे जिनपालित मुनिराज का विशेष स्थान रहा। इसका वर्णन इसलिए नहीं मिलता कि पहले लोग कार्य को प्रधान मानते थे, नाम की ओर प्राय कम ध्यान रहता था। इतना बडा *'षट्खण्डागम'* महाशास्त्र निर्माण करते हुए भी ग्रन्थ मे जब भूतबलि स्वामी का नाम कहीं नहीं आया, तब जिनपालित का नाम न आना विशेष आश्चर्यप्रद बात नही है।

ग्रन्थ की प्रामाणिकता

'महाबन्ध' शास्त्र मे सम्पूर्ण चर्चा आगमिक तथा अहेतुवाद-आश्रित है। आगम की निम्नलिखित परिभाषा प्रस्तुत शास्त्र के विषय में पूर्णतया चरितार्थ होती है–

"पूर्वापरविरोधादेर्व्यपेतो दोषसन्ततेः।
द्योतकः सर्वभावनामाप्तव्याहृतिरागम· ॥"–ध टी, पृ ८७५

–जो पूर्वापरविरोधादि दोषपरम्परा से रहित हो, सर्व पदार्थो का प्रकाशक हो तथा आप्त की वाणी हो, उसे आगम कहते है।

कुन्दकुन्दस्वामी ने 'नियमसार' मे कहा है–

"तस्स मुहग्गयवयणं पुव्वावरदोसविरहियं सुद्धं।
आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था ॥८॥"

अरहन्त परमात्मा के मुख से विनिर्गत, पूर्वापर दोष रहित शुद्धवाणी को आगम कहा है। उस आगम के द्वारा तत्त्वार्थ का कथन किया गया है। यह आगम सम्यक्त्व की उत्पत्ति मे निमित्त कारण कहा गया है। (नियमसार गाथा ५३)

षट्खण्डासगम सूत्रो की, विशेषकर *'महाबन्ध'* की चर्चा बहुत सूक्ष्म है। उसमे कही भी पूर्वापर विरोध का दर्शन नही होता। जितना सूक्ष्म चिन्तक एव विचारक *'महाबन्ध'* का पारायण करेगा, वह ग्रन्थ के विवेचन से उतना ही अधिक प्रभावित होगा। ग्रन्थ की महत्ता यथार्थ मे पूर्वापर अविरोधिता में है। अपने विषय पर प्रकाश डालने मे आचार्य ने किंचित् भी न्यूनता नहीं प्रदर्शित की है। ग्रन्थराज आप्त की कृति है, अत यह स्वत प्रमाण है। किसी हेतुवादरूप साधन-सामग्री की आवश्यकता नही है। आप्तमीमासाकार समन्तभद्र स्वामी का कथन है–

---

१ विबुध श्रीधरकृत 'श्रुतावतार' से ज्ञात होता है कि पुष्पदन्त आचार्य के साथ चतु सघ ने तीन दिन पर्यन्त बडे उत्साहपूर्वक पूजा प्रभावना की थी। धार्मिक समाज ने व्रतादि का परिपालन भी किया था। पृ ३१६

"वक्तर्यनाप्ते यद्धेतोः साध्यं तद्धेतुसाधितम्।
आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात्साध्यमागमसाधितम् ॥७८॥"

—वक्ता यदि अनाप्त है, तो युक्ति-द्वारा जो बात सिद्ध की जाएगी, वह हेतुसाधित की जाएगी। और यदि वक्ता आप्त है, तो उनके वचनामत्र से ही बात सिद्ध होगी। इसे आगमसाधित कहते है।

भूतबलि को आप्त किस कारण माना जाय, इस सम्बन्ध मे धवला टीका मे सुन्दर तर्कणा की गयी है। शकाकार कहता है, सूत्र की परिभाषा है—

"सुत्तं गणहरकहियं तहेव पत्तेयबुद्धकहियं च।
सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदसपुव्विकहियं च ॥"

—गणधर का कथन, प्रत्येकबुद्ध मुनिराज की वाणी, श्रुतकेवली का कथन, अभिन्नदशपूर्वी का कथन सूत्र है।

"ण च भूदवलिभडारओ गणहरो, पत्तेयबुद्धो, सुदकेवली, अभिण्णदसपुव्वी वा येणेद सुत्त होज्ज? जदि एद सुत्त ण होदि तो. .पमाणत्तं कुदो णव्वदे?" भूतबलि भट्टारक गणधर नहीं है। न वे प्रत्येक बुद्ध, श्रुतकेवली अथवा अभिन्न दशपूर्वी हैं, जिससे यह शास्त्र 'सूत्र' हो जाय। यदि यह शास्त्र सूत्र नहीं होता है, तो इसमे प्रामाणिकता का किस प्रकार ज्ञान होगा?

इस शका के समाधान में कहते है—"रागदोसमोहाभावेण पमाणीभूदपुरिसपरपराये आगत्तादो" (ध टी, पृ १२८२) 'यह ग्रन्थ प्रमाण है, कारण राग-द्वेष-मोहरहित प्रामाणिकता-प्राप्त पुरुषपरम्परा से यह प्राप्त हुआ है।

इस ग्रन्थ मे अप्रामाणिकता का लेश भी नहीं है। इस सम्बन्ध मे वीरसेनाचार्य का कथन महत्त्वपूर्ण है। वे लिखते हैं[1]—इस प्रकार प्रमाणीभूत महर्षिरूप प्रणालिका के द्वारा प्रवाहित होता हुआ महाकर्म-प्रकृतिप्राभृतरूप अमृत-जल-प्रवाह धरसेन भट्टारक को प्राप्त हुआ। उन्होने भी गिरिनगरी की चन्द्रगुफा मे भूतबलि, पुष्पदन्त को सम्पूर्ण महाकर्म-प्रकृति-प्राभृत सौंपा। तदनन्तर श्रुतनदी का प्रवाह व्युच्छिन्न न हो जाय, इस भय से भव्य जीवों के अनुग्रह के लिए उन्होने 'महाकम्मपयडि पाहुड' का उपसहार करके षट्खण्ड बनाये। अत यह त्रिकालगोचर समस्त पदार्थो को ग्रहण करनेवाले प्रत्यक्ष तथा अनन्त केवलज्ञान से उत्पन्न हुआ है, प्रमाणस्वरूप आचार्य प्रणालिका के द्वारा आगत है और प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण से अबाधित है। अत. यह शास्त्र प्रमाण है। इसलिए मोक्षाभिलाषी भव्यात्माओ को इसका अभ्यास करना चाहिए।

पुन शकाकार कहता है—"सूत्र विसवादी क्यो नही है?" उत्तर मे कहते है—"सूत्र मे विसवादीपना नहीं है, कारण यह विसंवाद के कारण सम्पूर्ण दोषों से मुक्त भूतबलि के वचनो से विनिर्गत है।"[2] पुन शकाकार तर्क करता है—"कदाचित् भूतबलि ने असम्बद्ध देशना की हो?" इसके निराकरण मे वीरसेन स्वामी कहते हैं—"ण चासंबद्ध भूदबलिभडारओ परूवेदि, महाकम्मपयडिपाहुड-अमियधाणेण ओसारिदासेसराग-दोस

---

१ एव पमाणीभूदमहरिसिपणालेण आगतूण महाकम्मपयडिपाहुडामियजलपहावो धरसेणभडारय सपत्तो। तेण वि गिरिणयरचदगुहाए भूदबलिपुप्फदताण महाकम्मपयडिपाहुड सयल समप्पिद। तदो भूदबलिभडारएण सुद-णइ-पवाहवोच्छेदभीएण भवियलोगाणुग्गहट्ठ महाकम्मपयडिपाहुडमुवसहरियऊण छखडाणि कयाणि, तदो तिकालगोयरासेस-पयत्थविसय-पच्चक्खाणत-केवलणाणप्पभवादो पमाणीभूदआइरियपणालेणागत्तादो, दिट्ठिट्ठविरोहाभावादो पमाणमेसो गंथो, तम्हा मोक्खत्थिणा अब्भसेयव्वो।

—ध. टी, सि, पृ ७६२।

२ विसवादी सुत्त किण्ण जायदे? ण, विसवादकारण-सयलदोसमुक्क भूदबलि-वयणविणिग्गयस्स सुत्तस्स विसवादत्तविरोहादो। —ध टी सि, पृ १०३३

मोहत्तादो"—भूतबलि भट्टारक असम्बद्ध प्ररूपण नही करेगे, कारण उन्होने महाकर्मप्रकृतिप्राभृत के अवधारण करने से रागद्वेष तथा मोह का निराकरण कर दिया है।

महाधवल मनोवृत्ति—वक्ता का जब विशिष्ट व्यक्तित्व स्थापित हो जाता है, तब उनकी वाणी मे भी स्वय विशेषता का अवतरण हो जाता है। इस चर्चा से यह बात भी ज्ञात हो जाती है कि महाकर्मप्रकृति प्राभृत के परिशीलन से राग, द्वेष तथा मोह का विनाश होता है, तब उस महाशास्त्र के उपसहाररूप इस ग्रन्थराज के द्वारा भी रागद्वेष-मोह की विशेष मन्दता होती है। कषायादि की विशेष तीव्र अवस्था मे तो मनोवृत्ति *'महाबन्ध'* का अवगाहन भी नहीं कर सकेगी। इसके लिए अन्त करण वृत्ति की निर्मलता तथा निश्चिन्तता की परम आवश्यकता है। गृहस्थ सदृश आकुलतापूर्ण श्रमण भी इस शास्त्र का रसास्वाद नही कर सकता। श्रमणसदृश मनोवृत्ति तथा पवित्र परिणतियुक्त व्यक्ति इस महाशास्त्र का सम्यक् परिशीलन करने मे समर्थ होगा। गार्हस्थिक आकुलतावाला व्यक्ति इस अमृतनिधि का आनन्द न ले सकेगा। प्रतीत होता है, इस बात को लक्ष्य मे रखकर सर्वसाधारण को इस ज्ञानसिन्धु मे अवगाहन करने का पात्र नही कहा। *'महाबन्ध'* का रसास्वादन करनेवाले की मनोवृत्ति *'महाधवल'* होनी चाहिए। इस ग्रन्थराज के द्वारा जीवन महाबन्ध से मुक्त हो महाधवल रूप होता है।

मंगल-चर्चा

जैन शास्त्रकार अपने शास्त्र के प्रारम्भ में जिनेन्द्र भगवान् के गुणस्मरणरूप मगल-रचना करते है। इसका कारण आचार्य विधानन्दि यह बताते है कि—

"अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः प्रभवति स च शास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्यः तत्प्रसादप्रबुद्धैर्न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥"

—श्लो वा , पृ.२

'अभिमतफल-सिद्धि का उपाय सुबोध है, वह शास्त्र से प्राप्त होता है और शास्त्र की उत्पत्ति आप्त से होती है, अत शास्त्र के प्रसाद से प्रबोध प्राप्त पुरुषों का कर्तव्य है कि आप्त को अपनी प्रणामाजलि अर्पित करे, कारण सत्पुरुष अपने पर किये गये उपकार को नही भूलते।'

मगल के विषय मे तिलोयपण्णत्ति मे कहा है—

"पढमे मंगलवयणे सिस्सा सत्थस्स पारगा होंति।
मज्झिम्मे णिव्विग्घं विज्जा, विज्जाफलं चरिमे ॥१,२९"

ग्रन्थ के आरम्भ मे मगल पाठ से शिष्य लोग शास्त्र के पारगामी होते है। मध्य मे मगल के करने से निर्विघ्न विद्या की उपलब्धि होती है तथा अन्त मे मगल करने से विद्या का फल प्राप्त होता है। *'महाबन्ध'* का प्रथम पत्र नष्ट हो गया है, अत ग्रन्थ के आदि मे क्या मगल श्लोक या सूत्र रहे, इसका परिज्ञान नही हो सकता। यह भी कल्पना हो सकती है कि *'कषायप्राभृत'* के समान यहाँ भी मगल न किया गया हो।

कषायप्राभृत मे मंगल का अभाव—कषायप्राभृत की टीका में वीरसेन स्वामी लिखते हैं—"ववहारणयमस्सिदूण गुणहरभडारयस्स पुण एसो अहिप्पाओ, जहा-कीरउ अण्णत्थ सव्वत्थ णियमेण अरहतणमोक्कारो, मगलफलस्स पारद्धकिरियाए अणुवलभादो।-एत्थ पुण णियमो णत्थि, परमागमुवजोगम्मि णियमेण मगलफलोवलभादो। एदस्स अत्थविसेसस्स जाणावणट्ठ गुणहरभडारएण गथस्सादीए ण मगल कय।" (१।६)।

"व्यवहार नय की अपेक्षा गुणधर भट्टारक का यह अभिप्राय है कि परमागम के अतिरिक्त अन्यत्र सर्वत्र नियम से अरहन्त-नमस्कार करना चाहिए, कारण प्रारब्धक्रियाओ मे मगलफलविघ्नध्वसकता की अनुपलब्धि है। यहाँ इस बात का नियम नही है। परमागम मे उपभोग लगने पर नियम से मगल के फल

की प्राप्ति होती है। इस अर्थविशेष का परिज्ञान कराने के लिए गुणधर भट्टारक ने ग्रन्थ के आदि में मगल नही किया।

यह विवेचन आपातत विरोधात्मक दृष्टिगोचर होता है, किन्तु अनेकान्त शैली के प्रकाश में इनका समाधान स्वय हो जाता है।

महाबन्ध का मंगल—*'महावन्ध'* के मगल के विषय मे *'धवला'* टीका के चतुर्थ वेदना नामक खण्ड मे महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। उसमे आचार्य वीरसेन स्वामी लिखते है—"निवद्ध ओर अनिवद्ध के भेद से मगल दो प्रकार का है।"[1]

अनिबद्ध मगल—तव फिर वेदना खण्ड के आदि मे 'णमो जिणाण' आदि मगल सूत्र है, वे निवद्ध मगल है या अनिवद्ध मगल? वे निवद्धमगलरूप नही है। कृति आदि चौवीस अनुयोग है अवयव जिसके, ऐसे महाकर्मप्रकृतिप्राभृत के आदि मे गौतमस्वामी-द्वारा प्ररूपित मगल को भूतवलि भट्टारक ने वहाँ से उठाकर वेदना खण्ड के प्रारम्भ मे स्थापित कर दिया, इस कारण इसे निवद्ध मगल मानने में विरोध आता है। वेदनाखण्ड तो महाकर्मप्रकृति प्राभृत नहीं है। अवयव को अवयवी मानने में विरोध है। अर्थात् वेदनाखण्ड अवयव है, उसे महाकर्म प्रकृति पाभृत रूप अवयवी मानने मे विरोध आता है। भूतवलि तो गौतम है नही, विकल श्रुत के धारी धरसेनाचार्य शिष्य भूतवलि को सकल श्रुतधारी वर्धमान भगवान् शिष्य गौतम मानने मे विरोध है। निवद्ध मगल मानने में कारण रूप अन्य प्रकार है नही, अत यह अनिवद्ध मगल है।"

आचार्य अपनी तर्कशैली से इसे निवद्धमगल भी सिद्ध करते है। महापरिमाणवाले गणधरदेव रचित वेदना खण्ड के उपहसहाररूप वेदनाखण्ड मे वेदना का अभाव सर्वथा नही है। उनमे प्रमेय की दृष्टि से कथंचित् ऐक्य है। आचार्य भूतवलि ओर गोतम मे भी कथंचित् अभिन्नता द्योतित करते हुए कहते है—"अथवा भूदवली गोदमो चेव, एगाहिप्पायत्तादो, तदो सिद्ध णिवद्धमगलत्तमपि।" अथवा भूतवलि गौतम है, कारण उनके अभिप्राय मे एकत्व है।

विशेष विचार—वेदना खण्ड मे मगल के दो भेद टीकाकार ने कहे हैं—"णिवद्धा-णिवद्धभेएण दुविह मगल" (पृ ३१, ताम्रपत्र प्रति)। मगल के इन दो भेदो का कथन जीवट्ठाण प्रथम खण्ड मे (पृष्ठ ७ ताम्रपत्रीय प्रति में) इस प्रकार आया है—"तच्च मगल दुविह णिवद्धमणिवद्धमिदि"—वह मगल निवद्ध, अनिवद्ध के भेद से दो प्रकार हैं। वेदना खण्ड मे निवद्ध, अनिवद्ध शब्दो का उल्लेख करके उनकी परिभाषा नही दी गयी है। वहाँ इतना ही कहा है कि 'णमो जिणाण' आदि सूत्र 'महाकम्मपयडि पाहुड' मे गौतम स्वामीने रचे थे। उनकी वेदना, वर्गणा तथा *'महावन्ध'* इन तीन खण्डो का मगल भूतवलि स्वामी ने माना है। भूतबलि स्वामी ने अन्य मगल नही लिखे। जब ये मगल सूत्र अन्य रचित है (borrowed) तथा अन्य ग्रन्थ से उद्धृत किये गये है, तब ये अनिवद्ध मगल है, ऐसा स्पष्ट धवला टीका मे उल्लेख किया गया है।

जीवट्ठाण की टीका मे मगल के दो भेदो का उल्लेख करके इस प्रकार स्पष्ट किया है—"तत्थ णिबद्ध णाम, जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कय-देवदा-णमोक्कारो त णिबद्धमगल। जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धो देवदा-णमोक्कारो तमणिबद्धमगल।" (पृ ७, ताम्रपत्र प्रति) —जो सूत्र के आरम्भ मे सूत्रकर्ता के द्वारा किया गया अर्थात् रचा गया देवता का नमस्कार है, वह निबद्ध मगल है तथा जो सूत्र के आदि मे सूत्रकर्ता के द्वारा निबद्ध अर्थात् उद्धृत (borrowed) देवता का नमस्कार है, वह अनिबद्ध मगल है। ऐसी स्थिति मे यह प्रश्न होता है कि जीवट्ठाण के प्रारम्भ मे पुष्पदन्त आचार्य ने जो 'णमो अरहताण, णमो सिद्धाण,

---

[1] णिबद्धाणिबद्धभेएण दुविह मगल। तत्थेद कि णिबद्धमाहो अणिबद्धमिदि। ण ताव णिबद्धमगलमिद? महाकम्मपयडिपाहुडस्स कदिआदिचउवीस-अणियोगावयवस्स आदीए गोदमसामिणा परूविदस्स भूदबलिभडारएण वेयणाखडस्स आदीए मगलट्ठ तत्तो आणेदूण ठविदस्स णिबद्धत्तविरोहादो। ण च वेयणाखण्ड महाकम्मपयडिपाहुड, अवयवस्स अवयवित्तविरोहादो। ण च भूदबली गोदमो, विगलसुदधारयस्स धरसेणाइरियसीसस्स भूदबलिस्स सयलसुदाधारवड्ढमाणतेवासिगोदमत्तविरोहादो। ण च अण्णो पयारो णिबद्धमगलत्तस्स हेदुभूदो अत्थि। तम्हा अणिबद्धमगलमिद। (ताम्रपत्र प्रति, भाग ४, पृ ३१)

णमो आइरियाण, णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्वसाहूण' सूत्र लिखा है उसे कौन-सा मगल माना जाए? वेदना खण्ड मे गणधर-रचित 'णमोजिणाण' आदि सूत्र उद्धृत होने से जैसे अनिबद्ध मगल है, उसी प्रकार 'णमो अरिहताण' आदि को भी पारिभाषिक अनिवद्ध मगलरूपता प्राप्त होती है।

शंका—इस सम्बन्ध मे शकाकार कहता है कि यह मान्यता भ्रमपूर्ण है। णमोकार मन्त्र निबद्ध मगल है, ऐसा वीरसेन स्वामी ने जीवट्ठाण की टीका मे लिखा है—'इद पुण जीवट्ठाण णिबद्धमगल'। (पृ ७, ताम्र पत्र प्रति)—यह जीवट्ठाण निबद्ध-मगल है, अत यह पुष्पदन्त आचार्यकृत है। यह उनसे पूर्व मे रचित मगल नही है।

समाधान—यह धारणा भ्रान्त है। खण्डागम के प्रथम खण्ड का नाम जीवट्ठाण है। वह ग्रन्थ निबद्ध मगल अर्थात् पारिभाषिक निबद्ध मगल रूप नही है। वहॉ निवद्ध मगल शब्द बहुव्रीहि समास रूप है, 'निबद्ध मगल जत्थ एवभूत जीवट्ठाण'—जीवट्ठाण ग्रन्थ मंगल युक्त है। यदि निबद्धमगल रूप पारिभाषिक मगल अपेक्षित होता तो पाठ होता—'इद जीवट्ठाण सणिवद्ध-मगल'। किन्तु ग्रन्थगत पाठ है—'जीवट्ठाण णिबद्धमगल'। अत बहुव्रीहि समास की अपेक्षा जीवट्ठाण मगल युक्त है, इतना ही अर्थ होता है। इससे इस कथन के आधार पर णमोकार मन्त्र को पुष्पदन्ताचार्य की कृति मानना अनुचित है। जिस तरह 'णमोजिणाण' आदि वेदना खण्ड के प्रारम्भ मे निबद्ध सूत्र गौतम गणधर रचित है, वही बात णमोकारमन्त्र के विषय मे भी है।

प्रश्न—'जीवट्ठाण णिबद्धमगल'—इन शब्दो-द्वारा जीवट्ठाण रूप प्रथम ग्रन्थ मे 'निबद्ध मगल' शब्द देने का क्या प्रयोजन है?

समाधान—टीकाकार का अभिप्राय यह है कि ग्रन्थ के आरम्भ मे मगल होना चाहिए—इस सामान्य शिष्टाचार की मान्यता का परिपालन जीवट्ठाण मे हुआ है। उसका उल्लघन नही हुआ है। यह उन्होने सूचित किया है।

प्रश्न—जब मगल के निवद्ध, अनिवद्ध ये दो भेद जीवट्ठाण मे किये गये, तब आचार्य ने टीका मे वेदना खण्ड के समान णमोकार मन्त्र को अनिबद्ध मगल क्यो नही कहा? यदि *'णमो जिणाण'* आदि मगल सूत्रो के समान णमोकार मन्त्र को भी अनिबद्ध मगल कह देते तो भ्रम ही उत्पन्न न होता।

समाधान—णमोकार मन्त्र निबद्ध मगल है या अनिबद्ध है, यह चर्चा टीकाकार ने नही की, क्योकि णमोकार मन्त्र अनादि मूल मन्त्र रूप मे सर्वत्र प्रसिद्ध है, अत उसके विषय मे चर्चा करना धवलाकार को अनावश्यक प्रतीत हुआ। 'णमो जिणाण' आदि मगल सूत्रो के कर्तृत्व के विषय मे अवबोध न रहने से वीरसेन स्वामी ने अपनी वेदना खण्ड की टीका मे यह स्पष्ट किया कि ये मगल सूत्र उद्धृत किये गये है, अत ये अनिबद्ध मगल है, अर्थात् भूतवलि स्वामी की रचना नही है। जहॉ सन्देह या भ्रम की सम्भावना हो, वहॉ स्पष्टीकरण की आवश्यकता होती है।

प्रश्न—यदि णमोकार मन्त्र अनादि मूल मन्त्र है तथा वह द्वादशाग वाणी का अग है, तो णमोकार मन्त्र को पुष्पदन्त आचार्यरचित सूचित करने के लिए जो मुद्रित धवलाटीका के प्रथम खण्ड मे आदर्श प्रतियों के पाठ मे परिवर्तन किया गया, वह कैसा है?

समाधान—आदर्श प्रतियो मे जो पाठ है, उसके अर्थ मे पूर्ण सगति बैठने से उसमे फेरफार करने की कोई भी आवश्यकता नही थी। उसमे परिवर्तन करने का ही यह फल हुआ, कि जब से धवला टीका हिन्दी मे मुद्रित हुई, तब से कोई-कोई लोग इस भ्रम मे आ गये कि णमोकार मन्त्र पुष्पदन्त आचार्य की रचना है तथा उसे अनादि मूल मन्त्र मानना ठीक नही है। मूडबिद्री की ताडपत्र की प्रतियो मे इस प्रकार पाठ है—'जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कयदेवदा-णमोक्कारो त णिबद्धमगल' इसका पाठ इस प्रकार बदला गया—'जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धदेवदा-णमोक्कारो त णिबद्धमगल।'

मूल पाठ यह था—'जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धो देवदा-णमोक्कारो तमणिबद्धमगल।'

परिवर्तित पाठ यह किया गया—'सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कय-देवदा-णमोक्कारो तमणिवद्धमगल' (पृ ४१, ध टी १)।

प्रश्न—इस छोटे-से परिवर्तन से क्या बाधा हो गयी?

समाधान—सूत्रकर्ता के द्वारा स्वय रचित देवता का नमस्कार निवद्ध मगल है तथा जीवट्ठाण निवद्ध मंगल है, इससे सामान्य बुद्धि के पाठकों को यह भ्रम हो गया कि णमोकार रूप मगल निवद्ध मगल है। यथार्थ बात यह है कि टीकाकार वीरसेन स्वामी ने णमोकार मन्त्र कौन-सा मगल है, यह चर्चा ही नहीं की। उन्होंने मगल के दो भेद कहने के पश्चात् मात्र सूचित किया कि जीवट्ठाण मे मगल है। वह ग्रन्थ मगलरहित नही है। 'कसायपाहुड' मे मगलाचरण नहीं रचा गया, ऐसी अवस्था इस जीवट्ठाण की नहीं है, इसे स्पष्ट करने को आचार्य ने कहा—'जीवट्ठाण णिवद्धमगल' (१।४१)—यह जीवट्ठाण ग्रन्थ मगलाचरण युक्त है। यह ग्रन्थ निबद्ध मंगल नहीं है।

भूतबलि स्वामी की विशिष्ट दृष्टि—भूतबलि स्वामी-जैसे महाज्ञानी, प्रतिभासम्पन्न तथा परम विवेकी आचार्य ने वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और *'महाबन्ध'*—इन तीन खण्डो के लिए स्वतन्त्र मगल रचना न करके गौतम गणधर रचित 'महाकम्मपयडि पाहुड' के अन्तर्गत वेदना खण्ड के आरम्भ मे दिये णमो जिणाण, णमो ओहिजिणाण आदि सूत्रो को वहाँ से उठाकर अपनी रचना मे मंगलरूप मे स्थापित किया, इससे यह सूचित होता है कि वे महर्षि परम वीतरागभावसम्पन्न थे। वे अपनी रचना-द्वारा अपना पाण्डित्य प्रदर्शन करने की कल्पना नहीं सोचते थे। प्रतीत होता है कि वे गौतम गणधर के उन सूत्रों से विशेष प्रभावित थे। अत उन्हे अन्य मगल रचना करने की आवश्यकता नही प्रतीत हुई। अपनी रचना को वे स्वय की कृति न सोचकर जिनेन्द्र की वाणी मानते थे। जैसे समस्त ग्रन्थ गणधर रचित 'महाकम्म-पयडि पाहुड' का अवयव है, उसी प्रकार उन्हीं गणधर की रचना रूप मगलसूत्र को लेना किसी प्रकार भी अनुचित नहीं प्रतीत हुआ।

'णमो जिणाण' आदि सूत्रो को वीरसेन आचार्य गौतम गणधर की कृति स्वीकार करते हैं। उन्होने वेदनाखण्ड की *'धवला टीका'* मे लिखा है "महाकम्म-पयडि-पाहुडस्स कदिआदि-चउवीस-अणियोगावयवस्स आदीए गोदमसामिणा परूविदस्स भूदबलि भडारएण वेयणाखडस्स आदीए मगलट्ठं ततो आणेदूण ठविदस्स णिबद्धत्त विरोहादो—तम्हा अणिबद्धमगलमिद" (पृ ३१, ताम्रपत्रीय प्रति)। वेदनाखण्ड, वर्गणा खण्ड तथा *'महाबन्ध'* के मगलरूप गौतम गणधर रचित 'णमो जिणाण' आदि सूत्र हैं। अत उनके मूलकर्त्ता भूतबलि स्वामी नहीं हैं। अन्य कृत रचना को अपने ग्रन्थ मे निबद्ध करने के कारण उन सूत्रो को अनिबद्ध मंगल माना गया है। अलकार चिन्तामणि मे लिखा है—

"स्वकाव्यमुखे स्वकृतं पद्यं निबद्धं परकृतमनिबद्धम्"

नय-दृष्टि—*'महाबन्ध'* का प्रथम मंगलसूत्र 'णमो जिणाण' द्रव्यार्थिक नयाश्रित लोगो के अनुग्रह हेतु गौतम स्वामी ने रचा था। इसके पश्चात् रचित ४३ सूत्रो को पर्यायार्थिक नयाश्रित जीवो के अनुग्रह हेतु रचा था। उनमे 'णमो ओहिजिणाणं' प्रथम सूत्र है। वेदना खण्ड मे टीकाकार वीरसेन स्वामी ने कहा है—"एव दव्वट्ठिय-जणाणुग्गहट्ठं णमोक्कारं गोदमभडारओ महाकम्म-पयडि-पाहुडस्स आदिम्हि काऊण पज्जवट्ठिय-णयाणुग्गहणट्ठमुत्तर-सुत्ताणि भणदि" (ताम्रपत्रीय प्रति, पृ ४)—इस प्रकार द्रव्यार्थिक दृष्टि युक्त जीवों के अनुग्रह हेतु गौतम भट्टारक ने *'महाकर्म प्रकृति'* प्राभृत के आरम्भ मे नमस्कार करके पर्यायार्थिक नयवालों के अनुग्रह के हेतु उत्तरसूत्र कहते हैं। इस प्रकार स्याद्वाद दृष्टि को श्रद्धा की दृष्टि से देखनेवाले महर्षि ने दोनों नयो के प्रति समान आदरभाव व्यक्त किया।

---

१ जयधवला भाग १, पुस्तक १, पृ ८

गौतम गणधर की दृष्टि

गणधरदेव गौतम स्वामी ने जो मगलसूत्रो की रचना की थी, वह व्यवहार नय की अपेक्षा से की थी, क्योकि उन्होने व्यवहार नय को अनेक जीवो का कल्याणकारी मानकर उसका आश्रय लिया है। जयधवला टीका के ये शब्द विशेष महत्त्वपूर्ण है[1]—"ववहारणय पडुच्च पुण गोदमसामिणा चदुवीसण्हमणियोगद्दाराणमादीए मगल कद" व्यवहार नय का आश्रय लेकर गौतम स्वामी ने चौवीस अनुयोगद्वारो के प्रारम्भ मे (णमो जिणाण आदि) मगल किया है।

यहॉ यह शका होती है कि गणधर देव ने अभूतार्थ व्यवहार नय का आश्रय क्यो लिया, वह तो छोडने योग्य नय है, क्योकि वह असत्य है।

समाधान—"ण च ववहारणओ चप्पलओ। तत्तो सिस्साण-पउत्तिदसणादो। जो बहुजीवाणुग्गहकारी ववहारणओ, सो चेव समस्सिदव्वो त्ति मणेणावहारिय गोदमथेरेण मगल तत्थकय"[1]—"व्यवहार नय चपल अर्थात् असत्य नही है। क्योकि उससे शिष्यो की प्रवृत्ति देखी जाती है। गौतम स्थविर ने इस बात को मन मे अवधारण करके वहाँ मगल रचना की कि व्यवहार नय बहुत जीवो का अनुग्रहकारी है और उस व्यवहार नय का आश्रय लेना चाहिए। इसके द्वारा व्यवहार नय का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

णमोकार मन्त्र की प्राचीनता पर प्रकाश—णमोकार मन्त्र अनादि मूलमन्त्र है। इसके लिए जैन परम्परा मे यह प्रसिद्धि है—

"अनादिमूलमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलो मतः ॥"

इसके सिवाय मूलाराधना टीका मे अपराजित सूरि ने (पृ २) कहा है कि गणधर ने 'णमो अरहताण' इत्यादि शब्दो-द्वारा सामायिक आदि *'लोकबिन्दुसार'* पर्यन्त समस्त परमागम मे पच परमेष्ठियो को नमस्कार किया है।" ग्रन्थ मे ये शब्द आये है—"यद्येव सकलस्य श्रुतस्य सामायिकादेर्लोकबिन्दुसारान्तस्यादौ मगल कुर्वद्भिर्गणधरै णमो अरहताणमित्यादिना कथ पचाना नमस्कार कृत ?"

प्रायश्चित्त मे णमोकार का उपयोग—मुनि-जीवन मे प्रतिक्रमण रूप अन्तरग नय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भगवान् ऋषभदेव और अन्तिम तीर्थकर महावीर के तीर्थ मे अपराध न करनेवाले भी श्रमणों को प्रतिक्रमण रूप प्रायश्चित्त करने का विधान है। शेष बाईस तीर्थकरो के तीर्थ मे होनेवाले मुनियो के लिए ऐसा कथन नही आया है। उनके तीर्थ मे दोष लगने पर ही प्रतिक्रमणरूप प्रायश्चित्त किया जाता था, किन्तु आदि जिन और अन्तिम जिन के तीर्थ मे दोष लगाने की सदा सम्भावना रहने से प्रायश्चित्त कहा है। प्रायश्चित्त के भेद प्रतिक्रमण मे णमोकार मन्त्र के जाप का आवश्यक और महत्त्वपूर्ण स्थान है। मूलाचार मे कहा है—

"सपडिक्कमणो धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स।
अवराहे पडिकमणं मज्झिमयाणं जिणवराणं ॥७,१५४॥"

आदि जिन तथा पश्चिम जिन अर्थात् वीरभगवान् ने प्रतिक्रमण युक्त धर्म का उपदेश दिया है। अपराध न होने पर भी प्रतिक्रमण करना ही चाहिए, ऐसी आद्यन्त तीर्थकरो ने शिष्यो को आज्ञा दी है। मध्यम तीर्थकरो ने अपराध होने पर प्रतिक्रमण कहा है।

इसका हेतु मूलाचार मे यह दिया है—

"मज्झिमया दिढबुद्धी एयग्गमणा अमोहलक्खा य।
तम्हा हु जमाचरंति तं गरहंता विसुज्झंति ॥७,१५७॥"

---

१ कोश मे 'चपल' शब्द का अर्थ 'असच्च'—असत्य किया है—दे नाममाला ३-२० ।

मध्यम तीर्थंकरों के शिष्य दृढ़बुद्धि अर्थात् मजबूत स्मरण शक्ति युक्त थे, एकाग्रमन थे, मोहरहित होते थे। इससे उनसे जो अतिचार होता था, उस दोष की वे गर्हा करते थे और शुद्ध चारित्रवाले बनते थे।

"पुरिम-चरिमा दु जम्मा चलचित्ता चेव मोहलक्खा च।
तो सव्वपडिक्कमणं अंधलम-घोडय-दिट्ठंता ॥१५८॥"

आद्यन्त तीर्थंकरों के शिष्य चंचलचित्त हैं। उनका मन दृढ़ नहीं है। मोह से उनका मन आक्रान्त है। वे ऋजुजड़ और वक्रजड़ हैं। अतः सर्व प्रतिक्रमण दण्डकों का वे उच्चारण करते हैं। उनके लिए अन्धे घोड़े का दृष्टान्त है। जैसे वैद्य पुत्र ने अन्धे घोड़े की औषधि का ज्ञान होने से नेत्र की भिन्न-भिन्न दवाओं को क्रम-क्रम से लगा, उसे रोगमुक्त कर दिया, उसी प्रकार सर्व प्रतिक्रमणों का उच्चारण करते हैं, क्योंकि सर्व प्रतिक्रमण दण्डक कर्मक्षय के कारण हैं।

उच्छ्वास का उपयोग—दैवसिक रात्रिक, पाक्षिक आदि प्रतिक्रमणों मे णमोकार के जप की आवश्यकता कही गयी है। 'मूलाचार' में लिखा है—"दैवसिक प्रतिक्रमण के कायोत्सर्ग मे एक सौ आठ उच्छ्वास करना चाहिए। अर्थात् छत्तीस बार पंच नमस्कार का जाप करना चाहिए। एक बार णमोकार का पाठ करने में तीन उच्छ्वास का काल लगता है। 'णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं' में एक उच्छ्वास, 'णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं' में दूसरा उच्छ्वास तथा 'णमो लोए सव्वसाहूणं' पदोच्चारण में तीसरा उच्छ्वास होता है। प्राण वायु को भीतर लेना और बाहर छोड़ना, यह उच्छ्वास का लक्षण है। रात्रिक प्रतिक्रमण में चौवन उच्छ्वास करना चाहिए अर्थात् १८ बार पंच नमस्कार मन्त्र को चौवन उच्छ्वासों में पढ़ना चाहिए। पाक्षिक प्रतिक्रमण तीन सौ उच्छ्वासों में अर्थात् सौ बार णमोकार पढ़ना चाहिए। चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में चार सौ उच्छ्वास, सांवत्सरिक में पाँच सौ उच्छ्वास कहे हैं। (मूलाचार पृ. ३३८, अ. ७, गा. १८५, १८६)

अनगारधर्मामृत टीका (अ. ८, पृ. ६७५) में यह पद्य उद्धृत किया गया है,

"सप्तविंशतिरुच्छ्वासाः संसारोन्मूलनक्षमे।
सन्ति पंचनमस्कारे नवधा चिन्तिते सति ॥"

पंचनमस्कार मन्त्र का नौ बार चिन्तवन करने में २७ उच्छ्वास होते हैं। इस प्रकार इसका चिन्तवन संसार का उच्छेद करने में समर्थ होता है।

णमोकार मन्त्र के पाठ में तीन उच्छ्वास प्रमाण काल लगता है। यह उच्छ्वास व्यवहार काल का भेद कहा है। 'आवलि असंखसमया संखेज्जावलि समूहमुच्छ्वासो'—असंख्यात समय प्रमाण आवलि होती है तथा संख्यात आवली प्रमाण उच्छ्वास होता है। चरणानुयोग रूप आगम में णमोकार के जाप की गणना को उच्छ्वास के माध्यम से भी कहा गया है। जैसे नौ बार णमोकार का जाप करे, इसको इस रूप से कहेंगे कि २७ उच्छ्वास करते हैं। अनगारधर्मामृत में लिखा है—

"उच्छ्वासाः स्युस्तनूत्सर्गे नियमान्ते दिनादिषु।
पंचस्वष्ट—शतार्ध-त्रि-चतुःपंचशतप्रमाः ॥८-७२॥"

दिन, रात्रि, पक्ष, चतुर्मास, संवत्सर इन पाँच अवसरों पर वीर भक्ति करते समय जो कायोत्सर्ग किया जाता है उसमें क्रम से एक सौ आठ, चौवन, तीन सौ, चार सौ, और पाँच सौ उच्छ्वास हुआ करते हैं।

अनादि मन्त्र मानने में हेतु—जैनधर्म का प्राण श्रमण धर्म है। उस मुनिधर्म को निर्दोष बनाने के लिए साधुगण सदा प्रतिक्रमणादि-द्वारा अपनी आत्मा को परिशुद्ध करते हैं। उस प्रतिक्रमण कार्य मे पंच णमोकार का स्मरण अत्यन्त आवश्यक अंग है। भगवान् ऋषभनाथ तीर्थंकर के समय में भी जो साधुराज होते थे, वे प्रतिक्रमण करते समय णमोकार मन्त्र को पढ़ा करते थे। अतः यह णमोकार मन्त्र गौतम गणधर से ही सम्बन्धित नहीं है, किन्तु इसका सम्बन्ध प्रथम गणधर वृषभसेन स्वामी से भी रहा है। यथार्थ मे यह अनादि मूल मन्त्र है। चौदह पूर्व के अन्तर्गत जो विद्यानुवाद नाम का दशम पूर्व है, उसमे णमोकार मन्त्र को पैंतीस अक्षरों से युक्त मन्त्र के रूप में निरूपण किया गया है। अत. चरणानुयोग रूप परमागम

के प्रकाश मे भी णमोकार मन्त्र अनादि मूल मन्त्र निश्चित होता है। ऐसी स्थिति मे मुद्रित हिन्दी धवला टीका के नाम पर जिन्होने यह धारणा वना ली है कि यह णमोकार पुष्पदन्त आचार्य की रचना है, वह योग्य नही है। यह णमोकार मन्त्र उसी प्रकार अनिवद्ध मगल रूप है, जिस प्रकार णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाण आदि वेदना खण्ड, वर्गणा खण्ड तथा *'महाबन्ध'* के मगल सूत्र अनिबद्ध मगल हैं।

प्रश्न—*'षट्खण्डागम'* के प्रारम्भ मे पुष्पदन्त आचार्य णमोकार मन्त्र रूप मगल सूत्र को उद्धृत करके जीवट्ठाण को अलकृत किया गया, चौथे, पॉचवे तथा छठे खण्ड में भूतवलि स्वामी ने भी ग्रन्थान्तर का मगल उद्धृत किया, तो क्या दूसरे और तीसरे खण्ड मे भी इसी प्रकार अनिवद्ध मंगल को अपनाने की पद्धति अगीकार की गयी है?

समाधान—दूसरे तथा तीसरे खण्ड मे भूतवलि स्वामी ने स्वयं मगल पद्यो को रचकर उन खण्डो को निवद्ध मगल युक्त किया है। इस प्रकार *'षट्खण्डागम'* सूत्र मे निवद्ध और अनिवद्ध दोनो प्रकार के मगल पाये जाते हैं। अन्य ग्रन्थो मे निवद्ध मगल ही पाया जाता है।

निबद्ध मंगल—दूसरे खण्ड मे क्षुद्रवन्ध मे यह महत्त्वपूर्ण मगल श्लोक है—

"जयउ धरसेणणाहो जेण महाकम्मपयडि-पाहुड-सेलो।
बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ पुप्फयंतस्स॥"

वे धरसेन स्वामी जयवन्त हो, जिन्होने महा-कर्मप्रकृति-प्राभृत रूप पर्वत को अपनी बुद्धिरूपी मस्तक के द्वारा धारण करके उसे पुष्पदन्त को सौंपा।

इस गाथा मे भूतवलि आचार्य ने 'महाकम्म-पयडि-पाहुड' ग्रन्थ की पर्वत से तुलना की है। पर्वत विशाल होता है, यह दुर्गम होता है, असमर्थ तथा दुर्वल हृदयवाले उस पर्वत के पास नहीं जाते हैं, इसी प्रकार यह कर्मविपयक ग्रन्थ महान् है, गम्भीर है तथा सर्व साधारण की पहुँच के परे है। यह महाज्ञानियों की बुद्धि के द्वारा गम्य है।

भूतबलि आचार्य की महत्ता—इस ग्रन्थ का उपदेश धरसेन स्वामी ने पुष्पदन्त के साथ भूतबलि को भी दिया था, किन्तु अत्यन्त विनम्र भाव से भूषित हृदय होने से भूतबलि स्वामी अपना कोई भी उल्लेख न करके अपने साथी का ही वर्णन करते हैं।

बन्ध-स्वामित्व-विचय नाम के तीसरे खण्ड की मगल गाथा इस प्रकार है—

"साहू—वज्झाइरिए अरहंते वंदिऊण सिद्धे वि।
जे पंच लोगवाले वोच्छं बंधस्स सामित्तं॥"

साधु, उपाध्याय, आचार्य, अरहत तथा सिद्ध—इन पच लोकपालो की वन्दना करके मैं बन्ध-स्वामित्व विचय ग्रन्थ का कथन करता हूँ।

पॉचो परमेष्ठी का जीवन त्रस तथा स्थावर जीवो का रक्षक होने से उनको लोकपाल कहा है। वे प्राणीमात्र का रक्षण करते हैं।

'षट्खण्डागम' सूत्र के विषय मे यह बात ज्ञातव्य है कि जीवट्ठाण के १७७ सूत्रों के सिवाय द्रव्यप्रमाणानुगम आदि समस्त ग्रन्थ भूतवलि मुनीन्द्र की रचना होते हुए भी उन्होंने प्रकारान्तर से भी अपने नाम की झलक तक नहीं दी। (विदना खण्ड, ताम्रपत्र, पृ. ४०, ४१) में टीकाकार वीरसेन-स्वामी ने कहा है—'एव पमाणीभूदमहरिसि—पणालेण आगतूण महाकम्मपयडि-पाहुडामिय-जलप्पवाहो धरसेणभडारय संपत्तो। तेण वि गिरिणयर-चदगुहाए भूदबलि-पुप्फदंताण महाकम्मपयडिपाहुड सयलं समप्पिदं। तदो भूदवलिभडारयेण सुदणईपवाह-वोच्छेदमीएण भवियलोगाणुग्गहट्ठ महाकम्म-पयडिपाहुड उवसहरिय छखंडाणि कयाणि"—इस प्रकार प्रमाणरूप महर्षिरूप प्रणालिका से आता हुआ महाकर्म-प्रकृतिप्राभृतरूप अमृत जल का प्रवाह धरसेनाचार्य को प्राप्त हुआ। उन्होंने गिरिनगर की चन्द्रगुहा मे भूतबलि तथा पुष्पदन्त को सम्पूर्ण महाकर्मप्रकृतिप्राभृत प्रदान किया। इसके अनन्तर भूतबलि भट्टारक ने श्रुतज्ञान रूप नदी के प्रवाह के व्युच्छेद

के भय से भव्यलोक के अनुग्रह के हेतु महाकर्मप्रकृतिप्राभृत का उपसहार करके छह खण्ड रूप रचना की।"
इस प्रकार धवलाटीकाकार भूतबलि भट्टारक के विषय मे प्रकाश डालते है, जिससे यह प्रतीत हो जाता है कि इस ग्रन्थरचना मे उनका बहुत बडा हाथ था। फिर भी, वे महापुरुष अपने विपय मे मौन धारण करते है, ऐसी विश्वपूज्य आत्माओ का जीवन धन्य माना गया है। यथार्थ मे धरसेन स्वामी, पुष्पदन्त स्वामी, भूतबलि स्वामी ये रत्नत्रय तुल्य थे—

आचार्य धरसेन की विशेषता—वीरसेन स्वामी धरसेन भट्टारक के विषय मे लिखते है—

"पसियउ यहु धरसेणो पर-वाइ-गओह-दाण-वर-सीहो।
सिद्धंतामिय—सायर-तरंग-संघाय-धोय-मणो ॥४॥"

वे धरसेन आचार्य मुझ पर प्रसन्न हो जो परवादी रूप गजसमूह के मद को नष्ट करने के लिए श्रेष्ठ सिह के समान है तथा जिनका अन्त करण सिद्धान्त रूपी अमृत के सागर की तरगो के समूह से परिशुद्ध हो चुका है।

पुष्पदन्त को प्रणामांजलि—

"पणमामि पुप्फदंतं दुकयंतं दुण्णयंधयार-रविं।
भग्ग-सिव-मग्ग कंटयमिसि-समिइ-वइं सया दंतं ॥५॥"

मै उन पुष्पदत आचार्य को प्रणाम करता हूँ जो दुष्कृतो का अन्त करनेवाले है, कुनयरूपी अन्धकार के लिए सूर्य के समान है, जिन्होने मोक्षमार्ग के कटको को नष्ट कर दिया है, जो ऋषि समाज के स्वामी हैं तथा निरन्तर इन्द्रियो का दमन करते हैं।

भूतबलि भट्टारक—

भूतबलि स्वामी के विषय मे आचार्य वीरसेन कहते हैं—

"पणमह कय-भूय-बलिं भूयबलिं केस-वास परिभूय-बलिं।
विणिहय-वम्मह पसरं वड्ढाविय विमल-णाण-वम्मह-पसरं ॥६॥"

जो प्राणिमात्र अथवा भूत जाति के व्यन्तर देवो से पूजे गये है, जिन्होने अपने केशपाश के द्वारा जरा आदि से उत्पन्न हुई शिथिलता को तिरस्कृत किया है, जिन्होने कामभाव के प्रसार को नष्ट करके वर्द्धमान, निर्मल ज्ञान के द्वारा ब्रह्मचर्य के प्रसार को बढाया है, ऐसे भूतबलि स्वामी को प्रणाम करो।

जैनी दीक्षा मे उपयोग—इस महामन्त्र णमोकार का जैन सस्कृति मे दीक्षा प्रदान करते समय उपयोग किया जाता है। *'महापुराण'* मे नवीन जैन दीक्षा लेनेवाले व्यक्ति के लिए इस प्रकार सस्कार का वर्णन आया है—"जिनेन्द्र भगवान् के समवसरण मे मगल की पूजा हो जाने के उपरान्त आचार्य उस भव्य पुरुष को जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा के सम्मुख बैठाएँ और बार-बार उसके मस्तक को स्पर्श करता हुआ कहे कि यह तेरी श्रावक की दीक्षा है—"तवोपासकदीक्षेय" (पर्व ३९, श्लोक ४१)। पच गुरु मुद्रा के विधानपूर्वक उसके मस्तक का स्पर्श करे तथा तू दीक्षा से पवित्र हुआ है—"पूतोऽसि दीक्षया", इस प्रकार कहकर उससे पूजा के शेषाक्षत ग्रहण कराएँ।

"ततः पंचनमस्कारपदान्यस्मा उपादिशेत्।
मन्त्रोऽयमखिलात्पापात्त्वां पुनीतादितीरयन् ॥४३॥"

इसके पश्चात् आचार्य उस भव्य को पचनमस्कार पदो का उपदेश दे तथा उसके पूर्व यह आशीर्वाद दे कि यह मन्त्र समस्त पापो से तुझे पवित्र करे।

यह अडतालीस प्रकार की दीक्षान्वय क्रिया के अन्तर्गत तीसरी स्थानलाभ नाम की क्रिया कही गयी है।

गणधर कथित पर्युपासना में णमोकार—गौतम गणधर रचित 'प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी' मे प्रतिक्रमण करते समय यह पाठ पढा जाता है—"जाव अरहताण भयवताण णमोक्कार करेमि, पज्जुवास करेमि ताव काय

पावकम्म दुच्चरियं वोस्सरामि"—जब तक मै अरहन्त भगवान् को नमस्कार करता हूँ, पर्युपासना करता हूँ, तब तक मै पापकर्म तथा दुश्चरित्र के कारण शरीर के प्रति 'उदासीनो भवामि'—मै उदासीनता धारण करता हूँ। पर्युपासना के विषय मे टीकाकार आचार्य प्रभाचन्द इस प्रकार प्रकाश डालते है—"एकाग्रेण हि विशुद्धेन मनसा चतुर्विंशत्युत्तर- शतत्रयाद्युच्छ्वासैरष्टोत्तरशतादिवारान् पञ्चनमस्कारोच्चारणमर्हतापर्युपासनकरण"—(बृहत्प्रतिक्रमण, पृष्ठ १५१)। एकाग्रचित्त हो विशुद्ध मनोवृत्तिपूर्वक तीन सौ चौवीस उच्छ्वास मे एक सौ आठ वार पचनमस्कार का उच्चारण करना अर्हन्त की पुर्यपासना है।" इससे स्पष्ट होता है कि प्रतिक्रमण करते समय १०८ बार णमोकार का जापरूप पर्युपासना का कार्य आवश्यक है। अत णमोकार मन्त्र की रचना *'षट्खण्डागम'* सूत्रो के मगल रूप मे आचार्य पुष्पदन्त-द्वारा की गयी है, यह धारणा पूर्णतया भ्रान्त प्रमाणित होती है। यह द्वादशागवाणी का अग है।

यह णमोकार मन्त्र जैन सस्कृति का हृदय है। श्रमणो तथा उपासको के लिए प्राणसदृश है। धर्मध्यान के दूसरे भेद पदस्थ ध्यान मे मन्त्रो के जाप और ध्यान का कथन किया गया है। पचपरमेष्ठी के वाचक पैतीस अक्षर रूप मन्त्र का ध्यान तथा जप का उल्लेख आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने द्रव्यसग्रह गाथा ४६ मे किया है। उसकी टीका मे द्वादश सहस्र श्लोकप्रमाण पचनमस्कार ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है।[1]

निष्कर्ष—इस प्रकार णमोकार मन्त्र की प्राचीनता के विषय मे शास्त्राधार तथा गुरुपरम्परा सद्भाव होने से उसे द्वादशाग वाणी का अग मानना चाहिए। इस चर्चा से यह ज्ञात होता है कि सत्प्ररूपणा के १७७ सूत्रो के प्रारम्भ मे महाज्ञानी मुनीन्द्र पुष्पदन्त स्वामी ने णमोकारमन्त्र रूप अनिबद्ध मगल को निबद्ध किया था तथा वेदना, वर्गणा तथा *'महाबन्ध'* रूप तीन खण्डो के लिए 'णमो जिणाण' आदि ४४ मन्त्रो को भूतबलि स्वामी ने मगल सूत्र बनाये, जो कि णमोकार मन्त्र के समान ही द्वादशाग वाणी के ही साक्षात् अग रूप है। वास्तव मे यह हमारा अनादिमूलमन्त्र है तथा यथार्थ में यह अपराजित मन्त्रराज है। 'अनादिमूलमन्त्रोऽयम्' यह पाठ पूजा के समय पढा जाता है, वह वास्तविकता से सम्बन्ध रखता है।

यह भी स्मरणीय बात है कि श्वेताम्बर जैन साहित्य मे भी इस महामन्त्र को दिगम्बरो के समान ही पूज्य और प्राचीन माना गया है।

जिस प्रकार गौतम गणधर के मगलसूत्रो को भूतबलि स्वामी ने अपनी रचना का मगल बनाया, तदनुसार इस हिन्दी टीका मे भी वीरसेन स्वामी के मगलपद्यो को हमने विघ्न-विनाश निमित्त अपने मगलरूप मे ग्रहण किया।

प्रतिलिपि के विषय मे

'महाबन्ध' की मूल प्रति ताडपत्र पर कन्नड लिपि मे है। भाषा प्राकृत है। प्राचीन प्रति होने के कारण उसकी लिपि भी पुरातन कन्नड है। *'महाबन्ध'ग्रन्थ* २१६ ताडपत्रो मे है। इसके आरम्भ के २६ ताडपत्रों का *'महाबन्ध'* से कोई सम्बन्ध नही है। उसमे सत्कर्मपंजिका है जो *'षट्खण्डागम'* के अन्य विषय स्थलों पर प्रकाश डालती है। *'महाबन्ध'* का प्रारम्भिक ताडपत्र अनुपलब्ध है। सम्पूर्णग्रन्थ के १४ पत्र नष्ट हो चुके है। इससे लगभग तीन-चार सहस्र श्लोक प्रमाण शास्त्र तो सदा के लिए हमारे दुर्भाग्य से चला गया। कही-कही पत्र इतस्तत त्रुटित भी है। इसके कारण अनेक महत्त्वपूर्ण स्थलों का अवबोध नहीं हो सकता तथा किसी विषय का सहसा रस भग हो जाता है, कारण प्रसग-परम्परा का अभाव हो गया है। ऐसे अवसर पर हृदय मे अवर्णनीय वेदना होती है कि हमारी असावधानी के कारण उस द्वादशाग वाणी की महानिधि का वह अश लुप्त हो गया जो जगत् के कल्याण निमित्त धरसेन स्वामी ने भूतबलि मुनीन्द्र के द्वारा बडी कठिनता से नष्ट होने से बचाया था। आज उस लुप्त अश की पूर्ति की कथा ही दूर, उसकी पक्तियो की पूर्ति करना भी असम्भव है। कारण भूतबलि स्वामीसदृश क्षयोपशम किसे प्राप्त है?

---

१ "द्वादश-सहस्र-प्रमित-पचनमस्कारग्रन्थ-कथितक्रमेण लघुसिद्धचक्र, बृहत्सिद्धचक्रमित्यादिदेवार्चन—विधान भेदाभेद-रत्नत्रयाराधक-गुरुप्रसादेन ज्ञात्वा ध्यातव्यम् ॥" बृहत् द्रव्यसग्रह, २०४

आचार्य शान्तिसागर महाराज की श्रेष्ठ श्रुतसेवा—इस सम्बन्ध में यह कथन उल्लेखनीय है कि चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर महाराज ने सन् १९४३ के दशलक्षण पर्व के समय स्वर्गीय ब्रह्मचारी फतेचन्दजी परवारभूषण के द्वारा एक पत्र भिजवाया था। उसमें यह लिखा था कि '१०८ पूज्य आचार्य महाराज *'महाबन्ध'* के सूत्रों की प्रतिलिपि चाहते हैं, अत- उसको लिखकर शीघ्र भिजवाएँ।' उस समय हमने आचार्य महाराज को समाचार भेजा था कि *'महाबन्ध'* भूतबलि स्वामी रचित सूत्ररूप ही है। उस पर कोई टीका नहीं है। चालीस हजार प्रमाण ग्रंथ की प्रतिलिपि के लिए लेखक भिजवाना आवश्यक होगा। दुर्भाग्य से ग्रन्थ के १४ ताड़पत्र नष्ट हो जाने से तीन-चार हजार श्लोक सदा के लिए विलुप्त हो गये।"

हमारे पत्र को प्राप्त कर प्रवचनभक्ति-भावना-भूषित आचार्य महाराज के हृदय में अपार चिन्ता उत्पन्न हो गयी। उन्होंने कहा था—"तुम्हारे पत्र को पाकर हमें ऐसी ही चिन्ता हो गयी थी, जैसी चिन्ता धरसेन स्वामी के मन में शास्त्र के उद्धार हेतु हुई थी। रात्रि को नींद नहीं आयी। हमने सोचा तीन, चार हजार श्लोक तो नष्ट हो चुके। यदि शीघ्रता से ग्रन्थों की रक्षा का कार्य नहीं किया गया, तो और भी अपार क्षति हो जाएगी। इससे हमने कुन्थलगिरि में संघपति गेंदनमल, भट्टारक जिनसेन (नाँदणी मठ), चन्दूलाल सराफ, बारामती आदि के समक्ष कहा था कि हमारी इच्छा है कि धवल, *'महाधवल'* और जयधवल, इन आगम-ग्रन्थों को ताम्रपत्र में खुदवाकर उनकी रक्षा की जाए, जिससे वे चिरकाल तक सुरक्षित रह सकें। उस समय संघपति सेठ गेंदनमल ने कहा कि वे इस काम के लिए सारा खर्चा देने को तैयार हैं; किन्तु हमने कहा कि यह काम एक का नहीं है। समाज के द्वारा यह कार्य होना चाहिए। लोगों ने रात्रि के समय बैठक करके इस कार्य के लिए अर्थ की व्यवस्था की। इस कार्य के लिए जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था की स्थापना की गयी। 'महाराज ने हमसे कई बार कहा था कि इन सिद्धान्त ग्रन्थों को ताम्रपत्र में उत्कीर्ण किये जाने में मुख्य कारण तुम हो। तुम्हारे पत्र के कारण ही हमारा ध्यान ताम्रपत्र में ग्रन्थ को उत्कीर्ण कराने को गया था।" उक्त संस्था के मन्त्री श्री बालचन्द्र देवचन्द शहा, बी. ए. सोलापुर ने महत्त्वपूर्ण सेवा की।

उन जगद्वंद्य, बालब्रह्मचारी, श्रमणशिरोमणि आचार्य महाराज की प्रेरणा से एक लाख सत्तर हजार श्लोक के लगभग सिद्धान्त शास्त्र ताम्रपत्र में उत्कीर्ण हो गये तथा उनकी पाँच सौ प्रतियाँ भी कागज में मूल रूप में मुद्रित हो गयीं। उन प्रभावक मनस्वी गुरुदेव के प्रभाव से जैनधर्म तथा रत्नत्रय की ज्योति बहुत दीप्तिमान् हुई थी, किन्तु उनके कार्यों में सिद्धान्त-शास्त्र-संरक्षण तथा उसका प्रचार कार्य सर्वोपरि गिना जाएगा। उन्हीं साधुराज की इच्छानुसार सम्पूर्ण मूल रूप, *'महाबन्ध'* के संशोधन, सम्पादन का कार्य करके ताम्रपत्र में उत्कीर्ण कराने में हमें भी अपनी नम्र ऑनरेरी सेवा अर्पण करने का परम सौभाग्य मिला। हमने सम्पूर्ण *'महाबन्ध'* मुद्रित कराकर सन् १९५४ के दशलक्षण पर्व में फलटण के जिनालय में, आचार्य शान्तिसागर महाराज के कर-कमलों में सविनय समर्पण कर उनका हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त किया था। हमारे द्वारा एक वर्ष में ही सम्पूर्ण कार्य को सम्पन्न देखकर उन गुरुदेव को अपार आनन्द तथा सन्तोष हुआ था।[1]

---

१. श्री १०८ चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर दिगम्बर जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था की रिपोर्ट में लिखा है—"आचार्य शान्तिसागर महाराज ने अनेक बार यह कहा था कि इस जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था के कार्यपूर्ति के कारण दिवाकरजी हैं, क्योंकि इनके द्वारा जब पूज्यश्री को महाधवल ग्रन्थ के चार, पाँच हजार श्लोकों के नष्ट होने की सूचना प्रेषित की गयी, तब आचार्यश्री के मन में श्रुतरक्षण की ऐसी ही तीव्र भावना उत्पन्न हुई, जिस प्रकार आचार्य धरसेन स्वामी को श्रुतरक्षण की चिन्ता उत्पन्न हुई थी। श्री पं. सुमेरचन्दजी दिवाकर शास्त्रीजी ने महाधवल के सम्पादन, प्रकाशन आदि का कार्य बहुत धर्मप्रेमवश परिश्रमपूर्वक किया और उसके बदले में किसी भी प्रकार की आर्थिक सहायता या भेंट स्वीकार नहीं की। फलटण में उक्त पण्डित जी को आचार्यश्री के समक्ष संवत् २०१० भाद्रपद वदी ५ को सम्मानित किया। आचार्यश्री ने पं. दिवाकरजी की नि:स्वार्थ सेवा और किसी प्रकार की भेंट स्वीकार न करने पर अत्यन्त हर्ष प्रदर्शित करते हुए पण्डितजी को मंगलमय पवित्र आशीर्वाद प्रदान किया।" (पृष्ठ ६ तथा ७, संवत् २०१० से २०१६ का अहवाल, प्रकाशक, वालचन्द देवचन्द शहा, बी ए मन्त्री तथा माणिकचन्द भटूकचन्द दोशी, बी.ए. एल-एल बी, उपमन्त्री, फलटण (महाराष्ट्र)।

महाबन्ध की प्रतिलिपि—*'महाबन्ध'* आदि सिद्धान्त ग्रन्थो की जो कन्नड लिपि मे ताडपत्र मे उत्कीर्ण प्रति मूडबिद्री के सिद्धान्त मन्दिर मे विद्यमन है, वह यथार्थ मे मूल प्रति नही है। वह प्रति सात या आठ सौ वर्ष पुरानी कही जाती है। उस प्रति के आधार पर अन्य प्रतियॉ तैयार कराकर कुछ स्थानो पर भेजी गयी है। हमने मूडबिद्री जाकर इन ग्रन्थो को देखा, कारण ताम्रपत्र की प्रति तैयार करने मे कोई त्रुटि न रह जाए, अत मूडबिद्री की कॉपी का सूक्ष्म निरीक्षण आवश्यक था। *'महाबन्ध'* की हमारी प्रति में पाठ कही-कही दूसरा था, ज्ञानपीठ काशी से मुद्रित प्रति मे भिन्न था। इससे मूडबिद्री के ताडपत्र के शास्त्र का क्या पाठ है, यह जानना आवश्यक तथा पुण्य कर्त्तव्य था। हम अपने साथ मे सन् १६५३ मे छोटे भाई अभिनन्दनकुमार दिवाकर एम ए , एल-एल बी, एडवोकेट को भी मूडबिद्री ले गये थे, क्योंकि ग्रन्थ का सम्यक्-परिशीलन बडे उत्तरदायित्व का कार्य था। प चन्द्रराजैय्या कन्नडी भाषा के विशेषज्ञ से ग्रन्थ को हम वॅचवाते थे। उस समय हमे ज्ञात हुआ था कि ताडपत्र की प्रतियाँ कहीं-कहीं अशुद्ध पाठ्युक्त भी है। प लोकनाथजी शास्त्री, प नागराजजी शास्त्री तथा पं चन्द्रराजेन्द्रजी ने पहले हमारे लिए देवनागरी लिपि मे प्रतिलिपि तैयार की थी। उसमे कुछ त्रुटियो को देखकर ताडपत्र की प्रतिलिपि के साथ अपनी प्रतिलिपि का दोबारा सन्तुलन का कार्य प चन्द्रराजेन्द्र शास्त्री ने बडे परिश्रम से सम्पन्न किया था। फलत महत्त्वपूर्ण भूलो को सुधारा गया है।

महारानी मल्लिका देवी का शास्त्र-दान—मूडबिद्री में विद्यमान ताडपत्रीय प्रति के विषय मे यह बात ज्ञातव्य है कि वनितारत्न महारानी मल्लिकादेवी ने अपने पंचमी व्रत के उद्यापन मे उक्त प्रतिलिपि तैयार कराकर यतिपति मुनिराज श्रीमाघनन्दि महाराज को अर्पण की थी। अत भूतबलि स्वामी के द्वारा लिखित *'महाबन्ध'* की मूल प्रति मूडबिद्री मे है, ऐसी कल्पना अयथार्थ है। प्रथम प्रति के जीर्ण होकर नष्ट होने के पूर्व दूसरी प्रति श्रुतभक्त व्यक्तियो-द्वारा तैयार की गयी थी। ऐसा ही क्रम अन्य ग्रन्थो के विषय मे रहा है। अत. ग्रन्थो के पाठो मे सशोधन आदि कार्य करते समय जो यह सोचा जाता है कि यह परिवर्तन भूतबलि, पुष्पदन्त रचित मूल सूत्रो के विषय मे किया गया है, यथार्थ मे यह बात नहीं है। वास्तव मे बात यह है कि मूडबिद्री की प्रतियॉ भी प्रतिलिपियॉ ही है। इतने बडे ग्रन्थो को ताडपत्र मे उत्कीर्ण करने के अनेक वर्ष के परिश्रमसाध्य कार्य मे प्रमाद, क्षयोपशम की मन्दता अथवा शारीरिक परिस्थिति आदि अनेक कारणो से कहीं कुछ अयथार्थ लिखा जाना असम्भव नहीं है। पापभीरु, आगमभक्त, श्रुतसेवी विद्वान् पूर्वापर सम्बन्ध, परम्परा आदि के प्रकाश मे कार्य किया करते है।

मूडबिद्री की प्रति—पूर्ण *'महाबन्ध'* २१६ ताडपत्रों में अंकित है। उसमे २७ पत्र पंजिका के हैं, जिसका *'महाबन्ध'* से कोई सम्बन्ध नहीं है। ग्रन्थ के १४ ताडपत्र नष्ट हो गये, इस प्रकार *'महाबन्ध'* की ताडपत्रीय प्रति १७८ पत्रो मे विद्यमान है।

'महाबन्ध' मे प्रकृतिबन्ध का कथन ताडपत्र ५० पर्यन्त है। *'महाबन्ध'* के इस प्रथम खण्ड में २२ ताडपत्रो का मूल तथा अनुवाद छापा जा रहा है। स्थितिबन्ध का वर्णन ताडपत्र ११३ पर्यन्त है, अनुभाग बन्ध का वर्णन एक सौ तेरह ताडपत्र तक है तथा प्रदेशबन्ध दो सौ उन्नीस ताडपत्र पर्यन्त है। मूडबिद्री के पण्डित लोकनाथ जी शास्त्री के नेतृत्व मे हमने देवनागरी लिपि मे प्रतिलिपि तैयार करायी थी। उन्होंने हमे लिखा था कि ताडपत्र की प्रति लगभग सात सौ या आठ सौ वर्ष प्राचीन होगी। *'महाबन्ध'* की ताड़पत्र की राशि मे चार-पॉच त्रुटित ताडपत्र भी अलग हैं, जो किसी-किसी प्रकरण के त्रुटित अश के पूरक प्रतीत होते है।

'महाबन्ध' शास्त्र द्वादशागवाणी से साक्षात् सम्बन्ध रखता है। इस ग्रन्थराज पर कोई भी टीका उलब्ध नही होती है। कहते है, तुम्बुलुर नामक आचार्य ने *'महाबन्ध'* पर सात हजार श्लोक प्रमाण टीका रची थी, किन्तु उसकी अब तक उपलब्धि नहीं हुई है। *'महाबन्ध'* के सूत्र गद्यरूप हैं। इसके प्रारम्भ मे सोलह गाथाएँ आयी हैं। स्थितिबधाधिकार-मे तीन गाथाएँ और पायी जाती है।

महाबन्ध में भिन्न परम्परा का संकेत—यह चालीस हजार श्लोकप्रमाण *'महाबन्ध'* शास्त्र भूतवलि

स्वामी की अनुपम रचना है। इस ग्रन्थ मे आचार्य भूतवलि स्वामी ने कही-कहीं भिन्न गुरुपरम्परा का द्योतक उल्लेख भी किया है। वे काल प्ररूपणा मे (ताम्रपत्र, पृ १२, १३) तेजोलेश्या की अपेक्षा प्ररूपणा करते हैं–"थीणगिद्धितिग अणुताणुब ४ एय। उक्क वेसागरोव सादिरे। णवरि केसि च जह एगस।" पद्मलेश्या का कथन करते हुए आचार्य लिखते है–"थीणगिद्धि अणताणु ४ एगस (स)। उक्क अट्ठारस सादि। णवरि के मि च एगस।" यहाँ 'केसि च' शब्द-द्वारा अन्य पक्ष का प्रतिपादन किया गया है। यह अन्य पक्ष किनका है, इसका उल्लेख नही हुआ है। यह प्रकृतिवन्ध खण्ड का कथन है।

'महाबन्ध' के स्थिति बन्ध खण्ड मे (ताम्रपत्र प्रति ७७) *'अद्धच्छेद परूवणा'* का निरूपण करते हुए कहते है–"सुहुमस पचणाणा चदुदस पचतरा उक्क ट्ठिदि मुहुत्तपुधत्त, अतोमु आवधा णिसे। सादावे जसगि उच्चागो उक्क ट्ठिदि मासपुधत्त अतो आवा णिसे। अथवा पचणा चदुदस पचतरा उक्क ट्ठिदि दिवसपुधत्त अतो आबा णिसे। सादा जसगि उच्चा उक्क ट्ठिदि वासपुधत्त, अतो आवा णिसे" यहाँ 'अथवा' के द्वारा भिन्न परम्परा का कथन किया प्रतीत होता है।

यतिवृषभ आचार्य का भिन्न मत

'गोम्मटसार' मे भूतबलि आचार्य के कथन से भिन्न *'कषाय प्राभृत'* के चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभ का कथन मिलता है। यतिवृषभ आचार्य कहते है कि नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव मे उत्पन्न हुए जीव के प्रथम समय मे क्रमश क्रोध, माया, मान तथा लोभ का उदय होता है अर्थात् नारकी के क्रोध का, तिर्यच के माया का, मनुष्य के मान का और देव के लोभ का उदय प्रथम समय मे पाया जाता है, किन्तु भूतवलि आचार्य का कथन है कि इस विषय मे कोई नियम नहीं है। नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने दोनो मान्यताओ का प्रतिपादन इस गाथा मे किया है–

"णारय-तिरिक्ख-णर-सुरगईसु उप्पण्ण-पढमकालम्हि।
कोहो माया माणो लोहुदओ अणियमो वापि ॥गा. २८८॥"–जीवकाण्ड

इस काल मे, इस क्षेत्र मे केवली, श्रुतकेवली का असद्भाव रहने से 'गोम्मटसार' मे दोनो मान्यताओ का कथन किया है। सस्कृत टीकाकार के शब्द महत्त्वपूर्ण है–"अस्मिन् भरते तीर्थकर-श्रुतकेवल्याभावात्, आरातीयाचार्याणा सिद्धान्तशास्त्रकर्तृभ्यो ज्ञानातिशयवतामभावाच्च"–इस भरत क्षेत्र मे तीर्थकर तथा केवली का अभाव है और उक्त सिद्धान्तशास्त्रो के कर्ताओ से अधिक ज्ञानियो के पश्चात्वर्ती आचार्यो का अभाव है। ऐसी स्थिति मे दोनो मतो का कथन करने के सिवाय अन्य मार्ग नहीं है।

'गोम्मटसार कर्मकाण्ड' में भी भूतबलि स्वामी का मत प्रतिपादन के साथ दूसरा मत भी प्रदर्शित किया है। उदय–व्युच्छित्ति का वर्णन करते हुए भूतबलि आचार्य का मत इस गाथा-द्वारा व्यक्त किया है–

"पण-णव-इगि-सत्तरसं-अड-पंच च चउर छक्क छच्चेव।
इगि-दुग-सोलस-तीसं बारस उदये अजोगंता ॥२६४॥"

मिथ्यात्व गुणस्थान में ५, सासादन मे ९, मिश्र मे १, अविरत मे १७, देशविरत मे ८, प्रयत्तसयत मे ५, अप्रमत्तसयत मे ४, अपूर्वकरण में ६, अनिवृत्तिकरण मे ६, सूक्ष्मसाम्पराय मे १, उपशान्तकषाय मे २, क्षीणकषाय मे १६, सयोगीजिन में ३० तथा अयोगकेवली मे १२ प्रकृति की व्युच्छित्ति कही है।

अन्य आचार्य-परम्परा का कथन इस गाथा मे किया है–

"दस-चउ-रिगि-सत्तरसं अट्ठ य तह पंच चेव चउरो य।
छच्छक्क-एक्क-दुग-दुग-चोद्दस उगुतीस तेरसुदयविधिः ॥२६३॥"

मिथ्यात्वादि गुणस्थानो में दस, चार, एक, सत्रह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, दो, चौदह, उन्तीस तथा तेरह प्रकृतियो की उदय व्युच्छित्ति कही है।

'महाबन्ध' का प्रभाव

समस्त जैनवाङ्मय मे बन्ध के विषय मे *'महाबन्ध'* श्रेष्ठ रचना है। इतना ही नहीं, किन्तु विश्व के कर्म-सम्बन्धी साहित्य मे यह श्रेष्ठ कृति ही अत्यन्त प्राचीन, पूज्य तथा प्रामाणिक ग्रन्थ होने के कारण यह महाशास्त्र भूतबलि स्वामी के पश्चाद्वर्ती प्राय सभी महान् शास्त्रकारो का बन्ध के विषय मे मागदर्शक रहा है। 'तत्त्वार्थवार्तिकालकार' के देखने से ज्ञात होता है कि अकलक स्वामी पर *'महाबन्ध'* का प्रभाव पडा है। वे *'महाबन्ध'* को 'आगम' शब्द से सकीर्तित करके अपना आदर तथा श्रद्धा का भाव व्यक्त करते हुए प्रतीत होते है—

"आगमे ह्युक्त मनसा मन परिच्छिद्य परेषां सज्ञादीन् जानाति, इति मनसात्मनेत्यर्थ । तमात्मनावबुध्यात्मन परेषा च चिन्ता-जीवित-मरण-सुख-दु ख-लाभालाभादीन् विजानाति। व्यक्तमनसा जीवानामर्थ जानाति, नाव्यक्तमनसाम्।"

—त रा, पृ ५८।

"मणेण माणस पडिविदइत्ता परेसि सण्णासदिमदिचिंतादि विजाणदि। जीविदमरण लाभालाभ सुहदुक्ख णगरविणास देहविणास जणपदविणास अदिवुट्ठि-अणावुट्ठि-सुवुट्ठि-दुवुट्ठि-सुभिक्ख दुभिक्ख खेमा-खेम भयरोग उब्भम इब्भम सभम। वत्तमाणाण जीवाण, णोअवत्तमणाण जीवाण जाणदि।"

— *'महाबन्ध'*, ताम्रपत्र प्रति, पृ २

'गोम्मटसार' पर भी *'महाबन्ध'* का प्रभाव स्पष्टतया दृग्गोचर होता है। उदाहरणार्थ, इस प्रकृतिबन्धाधिकार के बन्धसामित्तविचय अध्याय से तुलना करे, तो पता चलेगा, कि यहाँ वर्णित कर्मप्रकृतियो के बन्धको, अबन्धको आदि का कथन 'गोम्मटसार' कर्मकाण्ड की 'मिच्छत्तहुडसढा' आदि गाथा ९५ से १२० तक पद्यरूप मे निबद्ध है। *'महाबन्ध'* मे बन्ध के सादि-अनादि, ध्रुव-अध्रुवरूप भेदो का वर्णन ३३-४३ पृष्ठ पर किया गया है। वह गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा १२२ से १२४ मे निरूपित हुआ है।

'महाबन्ध' के पृ २१-२४ मे 'ओगाहणा जहण्णा' आदि सोलह गाथाएँ है, वे तनिक परिवर्तन के साथ गोम्मटसार जीवकाण्ड की ज्ञानमार्गणामे वर्णित है।

अन्य आगम पर *'महाबन्ध'* का प्रभाव प्रकट ज्ञात होगा। वहाँ भी उनमे *'महाबन्ध'* के प्रमेयसम्बन्धी चर्चा की गयी है, कारण बन्धविषय के विशदरूप से प्रतिपादक *'महाबन्ध'* से प्राचीन ग्रन्थराज की अनुपलब्धि है।

ग्रन्थ की उपयोगिता

भौतिक उपयोगितावादी *'महाबन्ध'* को देखकर आनन्दामृत पान नही कर सकेगा, कारण उसकी दृष्टि मे बाह्य पदार्थो की उपलब्धि ही आत्मोपलब्धि है। अनेक व्यक्तियो की यह धारणा रही है कि इन सिद्धान्तग्रन्थो मे अपूर्व तथा अश्रुतपूर्व विद्या का भण्डार है, जिसके बल से लोहा सोना रूप मे परिणत किया जा सकता है, आकाश मे विमान उडाये जा सकते हैं, आदि विविध वैज्ञानिक चमत्कारो का आकर होने की मधुर कल्पना के कारण लोगो की इन शास्त्रो के प्रति अत्यधिक ममता रही, किन्तु प्रत्यक्ष परिचय के द्वारा जब यह ज्ञात होता है कि *'महाबन्ध'* मे केवल प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेशरूप बन्धचतुष्टय का सूक्ष्म एव विस्तृत वर्णन है, तब वह सोचता है कि इससे हमें क्या करना है? अपना काम करो, ऐसी रचनाओ मे अपने बहुमूल्य समय का व्यय क्यों किया जाए? आपातत यह दृष्टि प्रिय तथा आकर्षक मालूम पडती है, किन्तु ज्ञानवान् व्यक्ति को यह विचार अविद्यान्धकार पूर्ण प्रतीत होता है। लौकिक अर्थभक्त, अनर्थ की जननी तथा आत्मनिधि का लोप करनेवाली सामग्री को सर्वस्व मानता है। वह इन ग्रन्थो मे भौतिक विज्ञान की सामग्री न पाकर निराश होता है, किन्तु ज्ञानवान् तथा आत्मनिधि के वैभव को समझनेवाला सत्पुरुष यह अनुभव करता है कि वास्तविक वैज्ञानिक चमत्कारपूर्ण सामग्री से यह महाशास्त्र आपूर्ण है।

आत्मा अपने प्रयत्न से कर्मों के जाल में फँसता है। जो ज्ञान नामक सामग्री बन्धन को ओर पुष्ट करती है, वह तो महान् अविद्या है। श्रेष्ठ कला, विद्या, विज्ञान या चमत्कार तो इसमें है कि यह आत्मा कर्मों की राशि को पृथक् करके अपने अनन्त तथा अमर्यादित विभूतियों से अलकृत 'आत्मत्व' को अभिव्यक्त करे। भगवान् वृषभदेव ने सातसमुद्रान्त विशाल साम्राज्य को छोड़कर 'आत्मवान्' की प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।[1] अर्थशास्त्री रुपयों के हानि-लाभ पर ही दृष्टि रखता है, किन्तु ज्ञानी जीव आत्मा के स्वरूप को ढकनेवाले आस्रव को हानि तथा संवर और निर्जरा को अपना लाभ समझता है। वही सच्चा सम्पत्तिशाली है, जिसे आत्मत्व की उपलब्धि है और वही चमत्कारपूर्ण शक्ति विशिष्ट है, जिसने कर्म-राशि को चूर्ण किया है तथा इसमें उद्योग करता रहता है।

नाटक समयसार में कितनी सुन्दर बात कही गयी है–

"जे जे जगवासी जीव थावर जंगम रूप, ते ते निज बस करि राखे बल तोरिके।
महा अभिमानी ऐसो आस्रव अगाध जोधा, रोपि रणथम्भ ठाड़ो भयो मूछ मोरिके॥
आयो तिहि थानक अचानक परमधाम, ज्ञान नाम सुभट सवायो बल फेरिके।
आस्रव पछारयो रणथम्भ तोड़ि डारयो ताहि निरखि बनारसि नमत कर जोरिके।"

अभिमानी आस्रव सुभट को पछाड़कर विजय प्राप्त करनेवाले आत्मज्ञानी को *'महाबन्ध'* सदृश शास्त्र अपूर्व बल प्रदान करते हैं। कर्मों का आत्मा के साथ जो बन्ध है, वह इतना सुदृढ़ और सूक्ष्म है कि भयकर से भयंकर अस्त्र-शस्त्रादि के प्रहार होने पर भी उस पर कुछ भी असर नहीं होता। आध्यात्मिक शक्ति के जागृत होते ही कर्मों का सुदृढ़ बन्धन ढीला होने लगता है। ऐसे ग्रन्थ उस आत्मीक तेज को प्रवृद्ध करते हैं, जिसके द्वारा यह आत्मा कर्मबन्धन के प्रपंच से मुक्त होने के मार्ग में लग जाता है। कर्मों के प्रपंच से छूटने का उपाय ही यथार्थ में सबसे बड़ा चमत्कार है। ससार के समस्त भौतिक चमत्कार और अन्वेषण एक ओर रखकर दूसरी ओर कर्मनाश करने की आत्मचातुरी अथवा चमत्कार को रख सन्तुलन किया जाए, तो वह आत्मबोध की कला ही श्रेष्ठ निकलेगी, जो अनन्तभव से बँधे हुए अनन्त दु:खों के मूलकारण कर्मों का पूर्णतया उन्मूलन कर आत्मा में अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य तथा अनन्तसुख को अभिव्यक्त कर देती है। भौतिकता की आराधना से आत्मत्व का ह्रास ही हुआ करता है। इसका ही कारण है जो जीव अपने 'स्व' को भूलकर 'पर' का उपासक बनता है। अनादि काल से मोह-महाविद्यालय में अभ्यास करनेवाला यह जीव जहाँ भी जाता है और जिस किसी पदार्थ के सम्पर्क में आता है, वहाँ वह या तो आसक्ति धारण करता है या द्वेषभाव रखता है। वीतरागता का प्रकाश कभी भी इसकी जीवनवृत्ति को आलोकित नहीं कर पाया।

'महाबन्ध' सदृश शास्त्र के परिशीलन से आत्मा को पता चलता है कि किस-किस कर्म का मेरे साथ सम्बन्ध होता है, उसके स्वरूपादि का विशद बोध होने से राग, द्वेष तथा मोह का अध्यास एवं अभ्यास मन्द होने लगता है। आर्त और रौद्र नामक दुर्ध्यानों का अभाव होकर धर्मध्यान की विमल चन्द्रिका का प्रकाश तथा विकास होता है जो आनन्दामृत को प्रवाहित करती है और मोह के सन्ताप का निवारण करती है। समुद्र के तल में डुबकी लगाने वालों को बाह्यजगत् की शुभ, अशुभ बातों का पता नहीं चलता; इसी प्रकार कर्मराशि का विशद तथा विस्तृत विवेचन करने वाले इस ग्रन्थार्णव में निमग्न होने वाले मुमुक्षु के चित्त में राग-द्वेषादि सन्तापकारी भाव नहीं उत्पन्न होते। वह बड़ी निराकुलता तथा विशिष्ट शान्ति का अनुभव करता है।

व्यायामादि का सम्यक् अभ्यासशील व्यक्ति व्याधियों के आक्रमण से प्राय: बचा रहता है, इसी प्रकार

---

१. "विहाय यः सागरवारिवाससं वधूमिवेमां वसुधावधूं सतीम्।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकुकुलादिरात्मवान् प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णुरच्युत ॥"–बृहत्स्व. २

ऐसे पुण्यानुबन्धी वाङ्मय के परिशीलन-द्वारा भव्य जीव उस आध्यात्मिक परिशुद्ध व्यायाम को करता है, जिससे आत्मा बलिष्ठ होती है और भौतिक चमक-दमक चित्त मे चमत्कृति या विकृति उत्पन्न नही कर पाती तथा काम-क्रोध-मोहादि दोष आत्मशक्ति को न्यून नही कर पाते।

विपाकविचय धर्मध्यान का साधक—शास्त्रकारो ने धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान को निर्वाण का कारण बताया है।[1] धर्म ध्यान के चार भेदो मे विपाकविचय नाम का ध्यान कहा गया है। आचार्य अकलक लिखते है—"कर्मफलानुभवनविवेक प्रति प्रणिधान विपाकविचय । कर्मणा ज्ञानावरणादीना द्रव्यक्षेत्रकाल-भव-भावप्रत्ययफलानुभवन प्रति प्रणिधान विपाकविचय ।" —त रा, ३५३। "कर्मो के फलानुभव विवेक के प्रति उपयोग का होना विपाकविचय है। ज्ञानावरणादिक कर्मो का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव के निमित्त से जो फलानुभवन होता है, उस ओर चित्तवृत्ति को लगाना विपाकविचय है।" कर्मो के विपाक आदि के विषय मे अनुचिन्तन करने से रागादि की मन्दता होती है और कषायविजय का कार्य सरल हो जाता है। समय प्राभृतकार के शब्दो मे जीव विचारता है—

"जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभायठाणाणि ॥५२॥
जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा।
णेव य उदयट्ठाणा मग्गट्ठाणया केई ॥५३॥
णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा ॥५४॥
णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स।
जेण दु एदे सव्वे पुग्गलदव्वस्स परिणामा ॥५५॥"

इस जीव के न तो वर्ग है, न वर्गणा है, न स्पर्धक है, न अध्यवसायस्थान है, न अनुभागस्थान है। जीव के न योगस्थान है, न बन्धस्थान है, न उदयस्थान है, न मार्गणास्थान है, न स्थितिबन्धस्थान है, न सक्लेशस्थान है, न विशुद्धिस्थान है, न सयमलब्धिस्थान है। जीव के न जीवस्थान है, न गुणस्थान है, कारण ये सब पुद्गलद्रव्य के परिणाम है।

यह है—परिशुद्ध परमार्थ दृष्टि। मुमुक्षु व्यवहार दृष्टि को भी दृष्टिगोचर रखता है। यदि एकान्त शुद्ध दृष्टि पर आश्रित हो जाए, तो फिर वह मोक्षमार्ग के विषय मे अकर्मण्य बनकर विषयादि मे प्रवृत्ति कर पाप-पक मे अधिक निमग्न होता है। जिसने अपूर्ण अवस्था मे भी अपने को साक्षात् पूर्ण मान लिया है, उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है, इसी प्रकार निश्चयैकान्त का आश्रय ह्रास का हेतु बन जाता है। व्यवहारैकान्तवाला तात्त्विक दृष्टि को सर्वथा भुला अपने को 'दासोऽह' का पाठ पढने वाला समझता है। 'सोऽह' की विमल दृष्टि उसे नही प्राप्त होती है। 'सोऽह' का भक्त यदि कल्याण चाहता है, तो उसे 'दासोऽह' के पूर्व मे 'उदासोऽह' का पथ भी पकडना आवश्यक है, अन्यथा एकान्तवाद की महामारी उसका पिण्ड नहीं छोडती है। इस कारण समन्तभद्र स्वामी कहते है—

"निरपेक्षा नया मिथ्याः सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत्॥" —आ मी, १०८

विवेकी साधक व्यवहार दृष्टि से विचारता है—

"ववहारेण दु एदे जीवस्स हवति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥समयपाहुड गा. ५६॥

ये वर्ण आदि गुणस्थान पर्यन्त भाव व्यवहार नय से पाये जाते है। निश्चय नय की अपेक्षा वे कोई नही है।

---

१ "परे मोक्षहेतू"—त सू ६, २९।

अल्पज्ञानी पुरुषो के के लिए बन्ध के विषय मे परिज्ञान कराने के लिए सूत्रकार उमास्वामी ने लिखा है—

"प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः॥"—त सू ८,३

उस बन्ध के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेश बन्ध ये चार भेद हैं। विस्तृतरुचि एव सूक्ष्मबुद्धिधारी महाज्ञानियो के लिए सही तत्त्व महर्षि भूतबलि ने चालीस हजार श्लोक प्रमाण *'महाबन्ध'* शास्त्र-द्वारा निबद्ध किया है। *'महाबन्ध'* के विमल और विपुल प्रकाश से साधक अपनी आत्मा के अन्तस्तल मे छिपे हुए अज्ञान एव मोहान्धकार को दूर कर जीवन को *'महाधवल'* बनाता है। जिस प्रकार जिनेन्द्रदेव की आराधना के द्वारा पूजक जिनेन्द्र का पद प्राप्त करता है, उसी प्रकार *'महाधवल'* के सम्यक् परिशीलन तथा स्वाध्याय से जीवन भी *'महाधवल'* हो जाता है। अनुभागबन्ध की प्रशस्ति मे ग्रन्थ को 'सत् पुण्याकर' बताया है। यथार्थ मे यह सातिशय पुण्य की उत्पत्ति का कारण है। प्रशस्त पुण्य का भण्डार है। श्रेयोमार्ग की सिद्धि का निमित्त है। *'प्रवचनसार'* मे कुन्दकुन्द स्वामी ने अर्हन्त की पदवी को पुण्य का फल कहा है। *'पुण्णफला अरहता'* (गाथा १, ४५)। अमृतचन्द्र सूरि ने टीका मे पुण्य को 'कल्पवृक्ष' कहते हुए उसके पूर्ण परिपक्व फल को 'अर्हन्त' कहा है। 'अर्हन्त खलु सकल-सम्यक् परिपक्व-पुण्य-कल्पपादपफला एव' (प्रवचनसार टीका, पृष्ठ ५८)

प्रशस्ति-परिचय

'महाबन्ध' ग्रन्थ मे ऐतिहासिक उल्लेख का दर्शन नही होता। प्रकृतिबन्ध-अधिकार के प्रारम्भिक अश के नष्ट हो जाने से उसके ऐतिहासिक उल्लेख का परिज्ञान होना असम्भव है। इस अधिकार के अन्त मे प्रशस्तिरूप मे भी कोई उल्लेख नहीं है। स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध तथा प्रदेशबन्ध—इन तीन अधिकारो के अन्त में ही प्रशस्ति पायी जाती है।

प्रशस्ति में ग्रन्थ कर्ता का नाम तक नही आया है। स्थितिबन्ध के पद्य न. ७ और प्रदेश-बन्ध के पद्य न ५ से, जो समान हैं, विदित होता है, कि सेनवधू बनितारत्न मल्लिका देवी ने अपने पचमी व्रत के उद्यापन मे शान्त तथा यतिपति माघनन्दि महाराज को इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि अर्पण की थी।

मल्लिका देवी को शीलनिधान, ललनारत्न, जिनपदकमलभ्रमर, सिद्धान्त शास्त्र मे उपयुक्त अन्त करणवाली तथा अनेकगुणगण अलकृत बताया है। उन्होने पुण्याकर *'महाबन्ध'* पुस्तक जिन माघनन्दि मुनीश्वर को भेट की थी। वे गुप्तित्रयभूषित, शल्यरहित, कामविजेता, सिद्धान्तसिन्धु की वृद्धि करने को चन्द्रमा तुल्य तथा सिद्धान्त शास्त्र के पारगत विद्वान् थे।

वे मेघचन्द्र व्रतपति के चरणकमल के भ्रमर-सदृश थे।

मल्लिका देवी सारे जगत् मे अपने गुणो के कारण विख्यात थी। 'सत्कर्म-पजिका' से ज्ञात होता है कि प्रशस्ति मे आगत 'सेन' का पूरा नाम शान्तिषेण है। वे राजा थे। राजपत्नी मल्लिका देवी-द्वारा व्रतोद्यापन के अवसर पर शास्त्र का दान इस बात को सूचित करता है कि उस समय महिला जगत् के हृदय मे जिनवाणी माता के प्रति विशेष भक्ति थी।[1]

राजा शान्तिषेण सद्गुण-भूषित थे। प्रशस्ति मे गुणभद्रसूरि का भी उल्लेख आया है। उनको कामविजेता, नि शल्य बताया है। उग्रादित्य नाम के लेखक ने *'महाबन्ध'* की कापी लिखी थी, यह बात सत्कर्मपंजिका से ज्ञात होती है। प्रशस्ति इस प्रकार है—

---

१ कर्नाटक के गगवश की महिलाओं ने प्राचीन काल मे महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। इस वश की महिला अतिमब्बेने अपने द्रव्य के द्वारा महाकवि पोन्न रचित शान्तिनाथ पुराण की एक हजार प्रतियाँ लिखवाकर दान की थीं। ऐसी प्रसिद्धि है कि उस वीरागना ने सोना, चाँदी, जवाहरात आदि की बहुमूल्य सैकडो मूर्तियाँ मन्दिरों में विराजमान की थीं।

स्थितिबन्धाधिकार के अन्त की प्रशस्ति

नमस्सिद्धेभ्यः। नमो वीतरागाय शान्तये
यो दुर्जयस्मरमदोत्कटकुम्भिकुम्भसंचोदनोत्सुकतरोग्र-मृगाधिराजः।
शल्यत्रयादपगतस्त्रयगौरवारिः संजातवान्स भुवने गुणचन्द्रसूरिः ॥१॥
दुर्वारमारमदसिन्धुरसिन्धुरारिः शल्यत्रयाधिकरिपुस्त्रयगुप्तियुक्तः।
सिद्धान्तवार्धिपरिवर्धन-शीतरश्मिः श्रीमाघनन्दिमुनिपोऽजनि भूतलेऽस्मिन् ॥२॥

स्रग्धरावृत्तम् (कन्नड)

वरसम्यक्त्वद-देशसंयमद-सम्यग्बोधदत्यन्तभासुरहारत्रिकसौख्यहेतु-वेनिसिर्दा-दानदौदार्यदेल्तरदिं गी (दी) तने जन्मभूमि येनुतं सानंददिंक्कर्तुमूभरमेल्लं पोगकुत्तमिर्पुदभिमानाधीननं सेननम् ॥३॥
सुजनतें सत्यमोलपुदयेशील-गुणोन्नति पेंपु जैन-मार्गज गुणमेंब सद्गुणमिवत्यधिकं तनगोप्पनूतनधर्मजनिवनेंदुं कित्ते सुमतीधरे मेदिनि गोप्पे तोर्ब्बेचित्तजसमरूपनं नेगल्द 'सेनन' नुद्धगुणप्रधानम् ॥५॥

कन्नड कन्दपद्य

अनुपमगुणगणदतिवर्मन शीलनिदानमेसेव जिनपदसत्को-
कनद-शिलीमुखियेने मांतनदिदं 'मल्लिकब्बे ललनारत्नम्' ॥६॥
आवनिता रत्नदो, पेंपावंगं पोगललरिदु जिनपूजये नाना-
विधद-दानदमलिन-भावदोला 'मल्लिकब्बेयं' पोल्ववरार
श्री पंचमिय नोंतुधापनमं माडि बरेसि रांद्धांतगना [राद्धांतमना]।
रूपवती 'सेनवधू' जितकोपं श्रीमाघनंदियतिपति-गित्तल् ॥७॥

अनुभागबन्धाधिकार के अन्त की प्रशस्ति

स्रग्धरावृत्तम्

जितचेतोजातनुर्वीश्वर-मुकुटतटोद्घृष्टपादारविन्द-
द्वितयं वाक्कामिनी-पीवरकुचकलशालंकृतोदारहार-
प्रतिमं दुर्द्धोरसंसृत्यतुल-विपिनदावानलं माघनन्दि-
व्रतिनाथं शारदाभ्रोज्ज्वलविशदयशोराजिता शान्तकान्तम् ॥१॥

कन्दपद्य

भावभवविजयि-वरवाग्देवीमुखनूलरत्नदर्पनान-
न्नावनि-पालकनेनिसिद-नला विश्रुतकित्ते माघनंदिमुनीन्द्रम् ॥२॥

महास्रग्धरावृत्तम्

वरराद्धान्तामृताम्भोनिधि-तरल-तरंगोत्कर-क्षालितान्तः-
करणं श्रीमेघचन्द्रव्रतिपतिपदपंकेरुहासक्तसत्त्व (त्व)
द्गचरणं तीव्र प्रतापोद्धृत-विततबलोपेत-पुष्पेषुभृत्तसं-
हरणं सैद्धान्तिकाग्रेसरनेने नेगल्दं माघनन्दिव्रतीन्द्रम् ॥३॥

कन्दपद्य

महनीय गुणनिधानं, सहजोन्नतबुद्धिविनयनिधियेन नेगव्द
महि बिनुतकित्ते किर्त्तित (मही) महिमानं मानिताभिमान सेनम् ॥४॥
विनयद-शीलदोल गुणदोलादिय पेपिन पुड्डिजंमनो-
जनरतिरूपि नोल्पनिलिसिर्द-मनोहरमप्पुदोदु-
रूपिनमने दानदा (सा) गरमेमिप्प वधूत्तमे यप्प संदसे-
नन सति मल्लिकब्बेगे धरित्रियोलार्दोरे सद्गुणंगलि ॥५॥
सकलधरित्रीविनुत-प्रकटितयशे मल्लिकब्बे बरेयिसि सत्पु-
ण्याकर महाबन्धद पुस्तकमं श्रीमाघनंदि मुनिपति गित्तल् ॥६॥

प्रदेशबन्धाधिकार के अन्त की प्रशस्ति

कन्दपद्य

श्रीमलधारिमुनीन्द्रपदामलसरसीरुहभृंगनमलिकित्ते।
प्रेम मुनिजनकैरवासोमनेनल्माघनंदियतिपतियेसेदं ॥१॥
जितपपचेषु-प्रतापानलमलतरोत्कृष्टचरित्ररारा-
जितलेतं भारती-भासुर-भासुरकुचकलशालीढ-भाभारनूला।
यत् तारोदारहारं समदमनियमालकृतं माघनंदि-
व्रतिनाथं शारदाभ्रोज्ज्वलविशदयशो-वल्लरी-चक्रवालम् ॥२॥
जिनवक्त्रांभोज-नीनिर्गत-हितनुतराद्धान्तकिंजल्कसुस्वादन-
... ... जपदनत भूपेन्द्रकोटीरसेना।
तिनिकायभ्राजितांध्रिद्वयनखिल-जगद्भव्यनीलोत्पलाल्हादन-
ताराधीशने केवलमें भुवनदोल् माघनंदिव्रतीन्द्रम् ॥३॥
वराद्धान्तामृतांभोनिधितरलतरंगोत्करक्षालितांतः-
करणं श्रीमेघचंद्रव्रतपतिपपंकेरुहासक्तषद्चरणं ॥
... ... त्तं।
च्चारणं सैद्धान्तिकाग्रेसरनेने नेगर्दंमाघनंदिव्रतीन्द्रम् ॥४॥
श्री पंचमियं नोंतुधापनमं माडि बरेसि राद्धांतमना
रूपवती सेनवधू जितकोपं श्रीमाघनंदियतिपतिगित्तल् ॥५॥

कर्मबन्धमीमांसा

"जह भारवहो पुरिसो वहइ भरं गेहिऊण कावडियं।
एमेव वहइ जीवो कम्मभरं कायकावडियं[1] ॥"—गो. जी., गा २०१

१ जैसे कोई बोझा ढोनेवाला पुरुष काँवड़ को ग्रहण कर बोझा ढोता है, इसी प्रकार यह जीव शरीर रूप काँवड में कर्म-भार को रखकर ढोता है।

'महावन्ध' शास्त्र का प्रमेय वन्ध तत्त्व है। *'षट्खण्डागम'* के द्वितीय खण्ड 'खुद्दावन्ध' (क्षुद्रवन्ध) की अपेक्षा षष्ठखण्ड मे वन्ध के विषय मे विस्तारपूर्वक प्रतिपादन होने के कारण प्रतीत होता है कि उसे *'महावन्ध'* कहा गया है। *'तत्त्वार्थसूत्र'* वन्ध के विषय मे यह व्याख्या करता हे–

"सकषायत्वात् जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स वन्ध.।" ८,२

'जीव कषायसहित होने से कर्मरूप परिणत होने योग्य पुद्गलो को–कार्मण वर्गणाओ को ग्रहण करता है, उसे वन्ध कहते हे।'

यहाँ वन्ध को समझने के पूर्व कर्मसिद्धान्त पर प्रकाश डालना उचित जंचता है। कारण, वन्ध के विवेचन की आधारभूमि कर्मतत्त्व को हृदयगम करना परमावश्यक है। कर्म की अवस्था-विशेष का ही नाम वन्ध है।

कर्मविषयक मान्यताएँ

जैन आगम मे कर्मसाहित्य का अतीव महत्त्वपूर्ण स्थान हे। यहाँ कर्म के विषय मे सर्वांगीण, सुव्यवस्थित एव वैज्ञानिक (Scientific) पद्धति से विवेचन किया गया है। अन्य धर्मो तथा दर्शनो ने भी कर्म को महत्त्व प्रदान किया है। अज्ञ जगत् मे भी कर्मसिद्धान्त की मान्यता पायी जाती है। 'जैसा करो, तैसा भरो' यह सूक्ति इसी सिद्धान्त की ओर निर्देश करती हे। अँगरेजी भाषा मे 'As you sow, so you reap'–'जैसा वोओ, तैसा काटो'–कहावत प्रचलित है। तुलसीदास का कथन हे–

> **"तुलसी काया खेत है, मनसा भयो किसान।**
> **पाप पुण्य दोउ वीज है, वुवै सो लुनै निदान ॥"**

कहते है एक वार गौतम वुद्ध भिक्षार्थ किसी सम्पन्न किसान के यहाँ गये। इस कृषक ने कहा–"आप मेरे समान किसान वन जाइए। मेरे समान आपको धन-धान्य की प्राप्ति होगी। ऐसा करने से भीख माँगने का प्रसग नही प्राप्त होगा। वुद्ध ने कहा–"भाई। मै भी तो किसान हूँ। मेरा खेत मेरा हृदय है। इसमे सत्कर्मरूपी वीज वोकर मै विवेकरूपी हल चलाता हूँ। मै विकार-वासनारूपी घास आदि की निराई करता हूँ और प्रेम तथा आनन्द की अपार फसल काटता हूँ।"

दार्शनिक ग्रन्थो के परिशीलन से ज्ञात होता है कि 'कर्म' शव्द का अनेक अर्थो मे प्रयोग हुआ है। मीमासा दर्शन पशुवलि आदि यज्ञ तथा अन्य क्रियाकाण्ड को कर्म मानते है। वैयाकरण पाणिनि अपने *'कर्तुरीप्सिततम कर्म'* (१,४,७६) सूत्र-द्वारा कर्ता के लिए अत्यन्त इष्ट को कर्म कहते है। वैशेषिक दर्शन ने अपने सप्तपदार्थो की सूची मे कर्म को भी स्थान प्रदान किया है। वैशेषिक दर्शनकार कणाद कहते है[१]–"जो एक द्रव्य हो–द्रव्यमात्र मे आश्रित हो, जिसमे कोई गुण न रहे तथा जो सयोग और विभाग में कारणान्तर की अपेक्षा न करे, वह कर्म है।[२] उसके उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुचन, प्रसारण तथा गमन ये पॉच भेद कहे गये है। नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य क्रियाओ को भी कर्म-कहते है। साख्यदर्शन ने सस्कार अर्थ मे 'कर्म' को ग्रहण किया है। ईश्वर कृष्ण की साख्यकारिका मे लिखा है[३]–'सम्यक्ज्ञान की प्राप्ति होने पर भी पुरुष सस्कारवश–कर्म के वश से शरीर धारण करके रहता है, जैसे गति प्राप्त चक्र सस्कार के वश से भ्रमण करता रहता है।"

वाचस्पति मिश्र का कथन है–"[४] क्लेशरूपी जल से सिंचित बुद्धिरूपी भूमि में कर्मरूपी बीज अकुरो

---

१ एकद्रव्यमगुण सयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम्।" १,७। —सभाष्य वैशेषिक दर्शन ४,३५

२ "उत्क्षेपण ततोऽवक्षेपणमाकुञ्चन तथा। प्रसारण च गमन कर्माण्येतानि पञ्च च ॥" —सि मुक्तावली ६

३ "सम्यक्ज्ञानाधिगमाद्धर्मादीनामकारणप्राप्तौ। तिष्ठति सस्कार वशाच्चक्रभ्रमिवद्धृतशरीर ॥" —सा त कौ ६७

४ "क्लेशसलिलावसिक्तायां हि वुद्धिभूमौ कर्मवीजान्यङ्कुर प्रसुवते। तत्त्वज्ञाननिदाघनिपीतसकलक्लेशसलिलायामूषरायां कुत कर्मवीजानामङ्कुरप्रसव ?" —सां त कौ, पृ ३१५।

को उत्पन्न करते हैं। तत्त्वज्ञानरूपी ग्रीष्मकाल के द्वारा जिसका सम्पूर्ण क्लेशरूप जल सूख चुका है, उस शुष्क भूमि मे कर्मबीजो का अकुर कैसे उत्पन्न होगा?"

गीता मे कार्यशीलता (activity) को कर्म बताया है।[1] कहा है—"अकर्मण्य रहने की अपेक्षा कर्म करना श्रेयस्कर है।[2] सन्यास और कर्मयोग ये दोनो ही कल्याणकारी हैं, किन्तु कर्मसन्यास की अपेक्षा कर्मयोग विशेष महत्त्वास्पद है।"[3]

महाभारत शान्तिपर्व मे लिखा है—

"कर्मणा बध्यते जन्तुः, विद्यया तु प्रमुच्यते।" (२४०,७)

—यह प्राणी कर्म से बँधता है, विद्या के द्वारा मुक्ति लाभ करता है।

पतजलि योगसूत्र मे कहते हैं[4]—"क्लेश का मूल कर्माशय—कर्म की वासना है। वह इस जन्म में या जन्मान्तर मे अनुभव मे आती है। अविद्यादिरूप मूल के सद्भाव मे जाति, आयु तथा भोगरूप कर्मो का विपाक होता है। वे आनन्द तथा सन्ताप प्रदान करते हैं, क्योंकि उनका कारण पुण्य तथा अपुण्य है।" योगी के अशुक्ल तथा अकृष्ण कर्म होते हैं। ससारी जीवो के शुक्ल, कृष्ण तथा शुक्ल-कृष्ण कर्म होते हैं।

न्यायमजरी मे लिखा है[5]—"जो देव, मनुष्य तथा तिर्यचो मे शरीरोत्पत्ति देखी जाती है, जो प्रत्येक पदार्थ के प्रति बुद्धि उत्पन्न होती है, जो आत्मा के साथ मन का ससर्ग होता है, वह सब प्रवृत्ति के परिणाम का वैभव है। सर्व प्रवृत्ति क्रियात्मक है, अत- क्षणिक है, फिर भी उससे उत्पन्न होनेवाला धर्म, अधर्म पदवाच्य आत्म-संस्कार कर्म के फलोपभोग पर्यन्त स्थिर रहता ही है।"

अशोक के शिलालेख न. ८ मे लिखा है—"इस प्रकार देवताओ का प्यारा प्रियदर्शी अपने भले कर्मो से उत्पन्न हुए सुख का उपभोग करता है।[6]

भिक्षु नागसेनने मिलिन्द सम्राट् से जो प्रश्नोत्तर किये थे, उनसे कर्मो के विषय मे बौद्ध दृष्टि का अवबोध होता है[7]—

---

१ "योग कर्मसु कौशलम्।"

२ "कर्मज्यायो ह्यकर्मण।" —गी ३,८

३ "सन्यास कर्मयोगश्चय नि श्रेयसकरावुभौ। तयोस्तु कर्मसन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते॥" —गी. ५,२

४ "क्लेशमूल कर्माशय दृष्टादृष्टजन्मवेदनीय । सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा । ते ह्लादपरितापफला पुण्यापुण्य-हेतुत्वात्।"—यो सू २,१२-१४। "कर्माशुक्लकृष्ण योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्"—यो द कैवल्यपाद ७

५. "यो ह्ययं देव-मनुष्य-तिर्यग्भूमिषु शरीरसर्ग, यश्च प्रतिविषय बुद्धिसर्ग, यश्चात्मना सह मनसा ससर्ग स सर्व प्रवृत्तेरेव परिणामविभव । प्रवृत्तेश्च सर्वस्या क्रियात्वात् क्षणिकत्वेऽपि तदुपहितो धर्माधर्मशब्दवाच्य आत्मसस्कार कर्मफलोपभोगपर्यन्तस्थितिरस्त्येव।"—न्या म, पृ. ७०

६ बुद्ध और बुद्धधर्म, पृ २५६

७ "राजा आह—भन्ते नागसेन, केन कारणेन मनुस्सा न सब्बे समका, अञ्ञे अप्पायुका, अञ्ञे दीघायुका, अञ्ञे बहाबाधा अञ्ञे अप्पाबाधा, अञ्ञे दुब्बण्णा, अञ्ञे वण्णवन्तो, अञ्ञे अप्पेसक्खा, अञ्ञे महेसक्खा, अञ्ञे अप्पभोगा, अञ्ञे महाभोगा, अञ्ञे नीचकुलीना, अञ्ञे महाकुलीना, अञ्ञे दुप्पञ्ञा, अञ्ञे पञ्ञावन्तोति।"
थेरो आह, किस्स पन, महाराज! रुक्खा न सब्बे समका, अञ्ञे अंबिला, अञ्ञे लवणा, अञ्ञे तित्तका, अञ्ञे कटुका, अञ्ञे कसावा, अञ्ञे मधुराति।
मञ्ञामि भन्ते! बीजाना नानाकरणेनाति।
एवमेव खो महाराज कम्मान नानाकरणेन मनुस्सा न सब्बे समका । भासित पेत महाराज! भगवता कम्मस्स कामाणवसत्ता, कम्मदायादा, कम्मयोनी, कम्मबधु, कम्मपटिसरणा, कम्म सत्ते विभजति यदिद हीनप्पणीततायीति। कल्लोसि भन्ते नागसेनाति।"

—Pali Reader p 39 मिलिन्दपञ्ह in अंगुत्तनिकाय, मिलिन्दप्रश्न ८१

Thus spoke king Milinda. 'How comes it, reverend Sir, that men are not alike? some

राजा बोला—भन्ते! क्या कारण है, कि सभी आदमी एक ही तरह के नहीं होते? कोई कम आयुवाले, कोई दीर्घ आयुवाले, कोई बहुत रोगी, कोई नीरोग, कोई भद्दे, कोई बडे सुन्दर, कोई प्रभावहीन, कोई बडे प्रभाववाले, कोई गरीब, कोई धनी, कोई नीच कुलवाले, कोई ऊँच कुलवाले, कोई मूर्ख, कोई बुद्धिमान क्यो होते है?

स्थविर बोले—महाराज! क्या कारण है कि सभी वनस्पतियाँ एक-सी नहीं होती? कोई खट्टी, कोई नमकीन, कोई तिक्त, कोई कडवी, कोई कषायली और कोई मधुर क्यो होती है?"

भन्ते! मै समझता हूँ कि बीजो की भिन्नता के कारण ही वनस्पतियो मे भिन्नता है।

महाराज! इसी प्रकार सभी मनुष्यो के अपने-अपने कर्म भिन्न-भिन्न होने से वे सभी एक ही प्रकार के नही है। महाराज! बुद्धदेव ने भी कहा है—हे मानव! अपने कर्मो का सभी जीव उपभोग करते है। सभी जीव अपने कर्मो के स्वामी है। अपने कर्मो के अनुसार नाना योनियो मे जन्म धारण करते है। अपना कर्म ही अपना बन्धु है, अपना आश्रय है। कर्म से ही लोग ऊँचे-नीचे हुए है।

भन्ते—"आपने ठीक कहा।"

इस प्रकार दार्शनिक साहित्य के अवगाहन से और सामग्री प्राप्त होगी जो यह ज्ञापित करेगी कि कर्मसिद्धान्त की किसी-न-किसी रूप मे दार्शनिक जगत् मे अवस्थिति अवश्य है। जैनवाङ्मय मे कर्मसिद्धान्त पर बडे-बडे ग्रन्थ बने है। उनसे विदित होता है कि जैनसिद्धान्त मे कर्म का सुव्यवस्थित, शृखलाबद्ध तथा विज्ञानदृष्टिपूर्ण वर्णन किया गया है।

जैनदर्शन मे कर्म

जैन दृष्टि से कर्म पर विचार करने के पूर्व यदि हम इस विश्व का विश्लेषण करे, तो हमे सचेतन (जीव), तथा अचेतन (अजीव) ये दो तत्त्व उपलब्ध होते हैं। पुद्‌गल (matter), आकाश, काल तथा गमन और स्थिति के माध्यमरूप धर्म और अधर्म ये पॉच द्रव्य अचेतन है। ज्ञान-दर्शन गुणसमन्वित जीव द्रव्य है। इस प्रकार छह द्रव्यो मे जीव और पुद्‌गल ये दो द्रव्य परिस्पन्दात्मक क्रियाशील है। धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये चार द्रव्य निष्क्रिय है। इनमे प्रदेश-सचलन रूप क्रिया नहीं पायी जाती। इनमे अगुरुलघु गुण के कारण षड्‌गुणीहानिवृद्धिरूप परिणमन अवश्य पाया जाता है। इस परिणमन को अस्वीकार करने पर द्रव्य का स्वरूप परिणमनहीन कूटस्थ बन जाता है।

इसी बात को पचाध्यायीकार दूसरे शब्दो मे प्रकट करते है—

"भाववन्तौ क्रियावन्तौ द्वावेतौ जीवपुद्‌गलौ।
तौ च शेषचतुष्कं च षडेते भावसंस्कृताः ॥

,live long and some are short lived, some are hale and some weak, some comely and some ugly, some powerful and some with no power, some rich, some poor, some born of noble stock, some meanly some wise born, and some foolish '

To whom Nagasena the Elder made answer

'How comes it that all plants are not alike? Some have a sour taste and some are salt, some are acid, some bitter and some sweet' 'It must be, I take it, reverend sir, that they spring from various kinds of seed '

'Even so, O Maharaja, it is beccause of differences of action that men are not alike for some live long, and some are short-lived, some are hale and some weak, some comely and some ugly, some powerful, and some without power, some rich, some poor, some borm of noble some meanly born, stock, some wise and some foolish '

—The Heart of Buddhism, p 85

तत्र क्रिया प्रदेशानां परिस्पन्दश्चलात्मकः।
भावस्तत्परिणामोऽस्ति धारावाह्येकवस्तुनि॥ —२,२५-२६

—"जीव तथा पुद्गल मे भाववती तथा क्रियावती शक्ति पायी जाती है। शेष चार द्रव्यो मे तथा पूर्व के दो द्रव्यो मे भी भाववती शक्ति उपलब्ध होती है। प्रदेशो के सचालन रूप परिस्पन्दन को क्रिया कहते है। धारावाही एक वस्तु मे जो परिणमन है, वह भाव है।"

इससे यह स्पष्ट होता है, कि जीव पुद्गल मे ही प्रदेशों का हलन-चलन पाया जाता है। जीव और पुद्गल-विशेष का परस्पर मे बन्धन होता है, कारण जीव मे बन्ध का कारण वैभाविक शक्ति का सद्भाव है। यदि वैभाविक शक्ति न होती, तो जीव और पुद्गल का सश्लेष नही होता।[1]

जिस प्रकार चुम्बक लोहे को अपनी ओर आकर्षित करता है, उसी प्रकार वैभाविक शक्ति विशिष्ट जीव रागादि भावो के कारण कार्मणवर्गणा तथा आहार, तैजस, भाषा तथा मनरूप नोकर्मवर्गणाओ को अपनी ओर आकर्षित करता है।[2] पुद्गलद्रव्य के तेईस प्रकारो मे कार्मण वर्गणा नाम का एक भेद है।[3] अनन्तानन्त परमाणुओ के प्रचयरूप वर्गणा होती है। रागादिभावो के कारण जीव का कर्मो के साथ सम्बन्ध होता है। जीव का अहित धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल द्रव्यो-द्वारा नही होता है। पद्मनदि पचविंशतिका मे कहा है—

"धर्माधर्मनभांसि काल इति मे नैवाहितं कुर्वते
चत्वारोऽपि सहायतामुपगतास्तिष्ठन्ति गत्यादिषु।
एकः पुद्गल एव सन्निधिगतो नोकर्म-कर्माकृतिः
वैरी बन्धकृदेष सम्प्रति मया भेदासिना खण्डितः ॥"—आलोचनाधिकार २५

—धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये द्रव्य मेरा अहित नहीं करते। ये चारो गमनादि कार्यो मे मेरी सहायता करते है। एक पुद्गल द्रव्य ही कर्म तथा नोकर्म रूप होकर मेरे समीप रहता है। अब मैं उस बन्ध के कारण रूप कर्म शत्रु का भेदविज्ञानरूपी तलवार के द्वारा विनाश करता हूँ।

परिभाषा

'परमात्मप्रकाश' मे कर्म की इस प्रकार परिभाषा की गयी है—

"विसयकसायहिं रंगियहं, जे अणुया लग्गंति।
जीवपएसहं मोहियहं, ते जिण कम्म भणंति ॥६२॥"

प्रवचनसार टीका मे अमृतचन्द्रसूरि लिखते है—"क्रिया खल्वात्मना प्राप्यत्वात्कर्म, तन्निमित्तप्राप्तपरिणाम पुद्गलोऽपि कर्म।" (पृ १६५)

—"आत्मा के द्वारा प्राप्य होने से क्रिया को कर्म कहते है। उसके निमित्त से परिणमन को प्राप्त पुद्गल भी कर्म कहा जाता है।" इसका अभिप्राय यह है कि आत्मा मे कम्पनरूप क्रिया होती है। इस क्रिया के निमित्त से पुद्गल के विशिष्ट परमाणुओ मे जो परिणमन होता है, उसे कर्म कहते है। यह व्याख्या आध्यात्मिक दृष्टि से की गयी है।

---

१ "अयस्कान्तोपलाकृष्टसूचीवत्तद्द्वयो पृथक्। अस्ति शक्ति विभावाख्या मिथो बन्धाधिकारिणी ॥" —पचा २,४२

२ "देहोदयेण सहिओ जीवो आहरदि कम्मणोकम्म।
पडिसमय सव्वग तत्तायसपिडओव्व जलं॥"—गो क, गा ३

३ "परमाणूहि अणताहि वग्गणसण्णा दु होदि एक्का हु।" —गो जी, गा २४४

जीव के परिणामो का निमित्त पाकर पुद्गल की अवस्था, जिससे जीव परतन्त्र--सुख-दु ख का भोक्ता किया जाता है, कर्म कहलाती है।

आचार्य अकलकदेव अपने राजवार्तिक (पृ २६४) मे लिखते है--"यथा भाजनविशेषे प्रक्षिप्ताना विविधरसबीजपुष्पफलाना मदिराभावेन परिणाम, तथा पुद्गलानामपि आत्मनि स्थिताना योगकषायवशात् कर्मभावेन परिणामो वेदितव्य ।" जैसे पात्रविशेष मे डाले गये अनेक रसवाले बीज, पुष्प तथा फलो का मदिरारूप मे परिणमन होता है, उसी प्रकार योग तथा कषाय के कारण आत्मा मे स्थित पुद्गलो का कर्मरूप परिणाम होता है।

महर्षि कुन्दकुन्द *'समयसार'* मे लिखते है--

"जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्मणिमित्त तहेव जीवो वि परिणमदि ॥८०॥"

--"जीव के परिणामो का निमित्त पाकर पुद्गल का कर्मरूप परिणमन होता है। इसी प्रकार पौद्गलिक कर्म के निमित्त से जीव का भी परिणमन होता है।"

केशवसिह ने 'क्रियाकोष' मे कहा है--

"सूरज सन्मुख दरपण धरै, रुई ताके आगे करै।
रवि-दर्पण को तेज मिलाया, अगन उपज रुई बलि जाय ॥५४॥
नहि अगनी इकली रुइ माहिं, दरपन मध्य कहूँ है नाहि।
दुहुयनि को संयोग मिलाय, उपजै अगनि न संशै थाय ॥५५॥"

'समयसार' मे कहा है--

"ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हपि॥ ८१॥"

--"तात्त्विक दृष्टि से विचार किया जाए, तो जीव न तो कर्म मे गुण करता है और न कर्म ही जीव मे कोई गुण उत्पन्न करता है। जीव तथा पुद्गल का एक-दूसरे के निमित्त से विशिष्ट परिणमन हुआ करता है।"

प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभाव मे स्थित है। उसके परिणमन में अन्य द्रव्य उपादान कारण नही बन सकता। जीव न पुद्गल का कारण है और न पुद्गल जीव का उपादान हो सकता है। इनमें उपादान-उपादेयभाव के स्थान मे निमित्त-नैमित्तिकपना पाया जाता है। इससे जो सिद्धान्त स्थिर होता है, उसके विषय मे कुन्दकुन्द स्वामी का कथन है--

"एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण।
पुग्गलकम्मकदाणं दु कत्ता सव्वभावाणं ॥८२॥"

--"इस कारण आत्मा अपने भाव का कर्त्ता है। वह पुद्गलकर्मकृत समस्त भावो का कर्त्ता नही है।"

इस विषय पर अमृतचन्द्रसूरि इन शब्दो मे प्रकाश डालते है--

"जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये।
स्वयमेव परिणमन्तेऽत्र पुद्गलाः कर्मभावेन ॥" --पु सि, १२

--"जीवके रागादि परिणामो का निमित्त पाकर पुद्गलो का कर्म रूप में परिणमन स्वयमेव हो जाता है।"

जैसे मेघ के अवलम्बन से सूर्य की किरणो का इन्द्रधनुषादिरूप परिणमन हो जाता है, उसी प्रकार स्वय अपने चैतन्यमय भावो से परिणमनशील जीव के रागादिरूप परिणमन मे पौद्गलिक कर्म निमित्त पडा

करता है।[1] यदि जीव और पुद्गल मे निमित्त भाव के स्थान मे उपादान उपादेयत्व हो जाए, तो जीव द्रव्य का अभाव होगा अथवा पुद्गल द्रव्य नही रहेगा। दोनो मे भिन्नत्व का अभाव होकर स्थापित होगा। भिन्न द्रव्यो मे उपादान-उपादेयता नही पायी जाती है।

'प्रवचनसार' मे लिखा है–

"कम्मत्तण-पाओग्गा खंधा जीवस्स परिणइं पप्पा।
गच्छंति कम्मभावं ण हि ते जीवेण परिणमिदा ॥" –प्रवचनसार, गा २,७७ (१६९)

–"जीव की रागादिरूप परिणतिविशेष को प्राप्त कर कर्मरूप परिणमन के योग्य पुद्गलस्कन्ध कर्म भाव को प्राप्त करते है। उनका कर्मत्वपरिणमन जीव के द्वारा नही किया गया है।"[2]

"ते ते कम्मत्तगदा पोग्गलकाया पुणो वि जीवस्स।
सजायते देहा देहतरसंकमं पप्पा।" –प्रवचनसार, गा २,७८ (१७०)

–"कर्मत्व को प्राप्त पुद्गलकाय जीव के देहान्तररूप सक्रम-परिवर्तन को पाकर पुन देहरूप को प्राप्त करते है।"

"आदा कम्ममलिमसो परिणामं लहदि कम्मसंजुत्तं।
तत्तो सिलसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामो।" –प्रवचनसार, गा १२१

–"कर्म के कारण मलिनता को प्राप्त आत्मा कर्म-सयुक्त परिमाण को प्राप्त करता है। इससे कर्मो का सम्बन्ध होता है। अत परिणाम को भी कर्म कहते है।"

इस विषय को स्पष्ट करते हुए अमृतचन्द्रसूरि लिखते है–

'परमार्थ दृष्टि से देखा जाए, तो जीव आत्मपरिणामरूप भाव कर्म का कर्ता है। पुद्गल परिणामरूप द्रव्यकर्म का कर्ता नही है। द्रव्यकर्म का कर्ता कौन है? पुद्गल का परिणाम स्वय पुद्गल रूप है। इससे परमार्थ दृष्टि से पुद्गलात्मक द्रव्य कर्म का पुद्गल का परिणाम स्वय है। वह आत्मपरिणाम स्वरूप भाव कर्म का कर्ता नहीं है। इससे जीव आत्मस्वरूप से परिणमन करता है, पुद्गल रूप से परिणमन नही करता है।'

कर्म के द्रव्यकर्म और भावकर्म ये दो भेद कहे गये है। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कहते हैं[3]–पुद्गल का पिण्ड द्रव्यकर्म है। उस पिण्ड स्थित शक्ति से उत्पन्न अज्ञानादि भावकर्म हैं।[4] अध्यात्म शास्त्र की दृष्टि से आत्मा के प्रदेशो का सकम्प होना भावकर्म है। इस कम्पन के कारण पुद्गल की विशिष्ट अवस्था की उत्पत्ति को द्रव्यकर्म कहा है।

बन्ध का स्वरूप

कर्मो की अवस्थाविशेष को बन्ध कहते है। जीव और कर्मो के सम्बन्ध होने पर दोनो के गुणो मे विकृति की उत्पत्ति होना बन्ध है। उदाहरणार्थ, हल्दी और चूना के सम्बन्ध से जो विशेष लालिमा की उत्पत्ति हुई है, वह वर्ण एक जात्यन्तर है। वह न हल्दी मे है और न चूने मे ही पाया जाता है। इसी प्रकार राग-द्वेषादि

---

१ "परिणममानस्य चितश्चिदात्मकै स्वयमपि स्वकैर्भावै ।
भवति हि निमित्तमात्र पौद्गलिक कर्म तस्यापि ॥"–पु सि, १३

२ यतो हि तुल्यक्षेत्रावगाढ-जीवपरिणाममात्र बहिरगसाधनमाश्रित्य जीव परिणमयितारमन्तरेणापि कर्मत्वपरिणमनशक्तियोगिन पुद्गलस्कन्धा स्वयमेव कर्म भावेन परिणमन्ति। ततोऽवधार्यते न पुद्गलपिण्डाना कर्मत्वकर्ता पुरुषोऽस्ति–अमृतचन्द्रसूरिकृत–प्रवचनसार टीका तत्त्व-प्रदीपिकावृत्ति, पृ. २३१

३ कर्मभाव ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपर्यायम्–जयसेनाचार्य।

४ "पोग्गलपिंडो दव्व तस्सत्ती भावकम्म तु ॥" –गो क, गा ६

विकारी भाव न शुद्ध आत्मा मे उपलब्ध होते हे ओर न जीव से असम्बद्ध पुद्गल मे उनकी प्राप्ति होती हे। बन्ध की अवस्था मे जिन दो वस्तुओ का परस्पर मे बन्ध्य-बन्धक भाव उत्पन्न होता हे, उन दोनो के स्वगुणो मे विकृति उत्पन्न होती हे। कहा भी हे–

"हरदी ने जरदी तजी, चूना तज्यो सफेद।
दोऊ मिल एकहि भए, रह्यो न काहू भेद ॥"

'पचाध्यायी' मे कहा हे–

"बन्ध परगुणाकारा क्रिया स्यात् पारिणामिकी।
तस्या सत्यामशुद्धत्वं तद्द्वयोः स्वगुणच्युतिः ॥२,१३०॥"

–'अन्य के गुणो के आकार रूप परिणमन होना बन्ध हे। इस परिणमन के उत्पन्न होने पर अशुद्धता आती है। उस समय उन दोनो बन्ध होने वालो के स्वगुणो का विपरिणमन होता हे।'

जीव के रागादि भाव न शुद्ध जीव के हे ओर न शुद्ध पुद्गल के हे। 'बन्धोऽय द्वन्द्वज स्मृत'–यह बन्ध दो से उत्पन्न होता हे। एक द्रव्य का बन्ध नही होता।

इस प्रसग मे *'बृहद्द्रव्यसग्रह'* टीका का यह कथन विशेप उद्बोधक हे–आगम मे बन्ध के कारण मोह, राग ओर द्वेप कहे गये हे। *'मोह'* शब्द दर्शनमोहनीय अर्थात् मिथ्यात्व का सूचक है। राग और द्वेष चारित्र मोह रूप हैं–'मोहो दर्शनमोहो मिथ्यात्वमिति यावत् चारित्र-मोहो रागद्वेपौ भण्येते।'

प्रश्न–चारित्रमोह शब्द से राग-द्वेप किस प्रकार कहे जाते हैं–

"चारित्रमोह शब्देन रागद्वेपो कथ भण्येते? इति चेत्।"

उत्तर–"कपायमध्ये क्रोध-मानद्वय द्वेपाङ्गम्, मायालोभद्वय च रागाङ्गम्, नोकपायमध्ये तु स्त्री पु-नपुसकवेदत्रय हास्य-रतिद्वय च रागाङ्गम्, अरति-शोकद्वय भयजुगुप्साद्वय च द्वेपाङ्गमिति ज्ञातव्यम्।"– कषाय मे द्वेष के अग रूप क्रोध तथा मान अन्तर्भूत हे। राग के अग माया तथा लोभ अन्तर्भूत है। नोकषाय मे स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद ये तीन तथा हास्य और रतिद्वय राग के अगरूप है। अरति, शोक तथा भय और जुगुप्सा युगल द्वेप के अग है।

प्रश्न–राग-द्वेष आदिक परिणाम क्या कर्मजनित है अथवा जीव से उत्पन्न हुए है?

उत्तर–स्त्री और पुरुष के सयोग से उत्पन्न हुए पुत्र के समान, चूना तथा हल्दी के सयोग से उत्पन्न हुए वर्ण-विशेष के समान राग और द्वेप जीव और कर्म के सयोग से उत्पन्न हुए है। नय की विवक्षा के अनुसार विवक्षित एकदेश शुद्ध निश्चय से राग-द्वेष कर्मजनित कहलाते है तथा अशुद्ध-निश्चयनय से जीवजनित कहलाते है। यह अशुद्ध निश्चयनय शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा से व्यवहारनय ही है।[1]

प्रश्न–साक्षात् शुद्ध निश्चयनय से ये राग-द्वेष किसके है?

उत्तर–स्त्री और पुरुष के सयोग बिना पुत्र की अनुत्पत्ति के समान तथा चूना और हल्दी के सयोग विना रगविशेष की अनुत्पत्ति के समान साक्षात् शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा से राग-द्वेषादि की उत्पत्ति ही नही होती, क्योकि शुद्ध निश्चयनय की दृष्टि मे जीव और पुद्गल दोनो ही शुद्ध है और इनके सयोग का अभाव है।

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कहते है–

---

१ अत्राह शिष्य –रागद्वेषादय कि कर्मजनिता, कि जीवजनिता इति? तत्रोत्तरम्-स्त्री-पुरुषसयोगोत्पन्नपुत्र इव सुधा-हरिद्रासयोगोत्पन्नवर्णविशेष इवोभयसयोगजनिता इति। पश्चान्नयविवक्षावशेन विवक्षितैक-देशशुद्धनिश्चयेन कर्मजनिता भण्यन्ते। तथैवाशुद्धनिश्चयेन जीवजनिता इति। स चाशुद्धनिश्चय शुद्धनिश्चयापेक्षया व्यवहार एव। अथ मतम्-साक्षाच्छुद्धनिश्चयनयेन कस्येति पृच्छामो वयम्? तत्रोत्तरम्-साक्षाच्छुद्धनिश्चयेन स्त्री पुरुष-सयोगरहितपुत्रस्येव सुधाहरिद्रासयोगरहितरङ्ग विशेषस्येव तेषामुत्पत्तिरेव नास्ति कथमुत्तर प्रयच्छाम इति। बृहद्द्रव्यसग्रह, गाथा ४८ की टीका, पृष्ठ २०१-२०२

"बज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो।
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥"–द्रव्यसग्रह, गा ३२

जिस चैतन्य परिणति से कर्मो का वन्ध होता है, उसे भाववन्ध कहते हे। आत्मा और कर्म के प्रदेशो का परस्पर मे प्रवेश हो जाना द्रव्यवन्ध है।

सूक्ष्मदृष्टि से विचार करने पर विदित होता है कि जिस प्रकार कर्मो को यह जीव बाँधता हे–पराधीन करता है, उसी प्रकार कर्म भी इस जीव को पराधीन वनाते हे। वन्ध मे दोनो की स्वतन्त्रता का परित्याग होता है। दोनो विवश किये जाते हैं।

पण्डितप्रवर आशाधरजी लिखते हैं–

"स बन्धो बध्यन्ते परिणतिविशेषेण विवशी–
क्रियन्ते कर्माणि प्रकृतिविदुषो येन यदि वा।
स तत्कर्माम्नातो नयति पुरुषं यत् स्ववशतां
प्रदेशानां यो वा स भवति मिथः श्लेष उभयोः ॥" –अन धर्मा २,३८

–"जिस परणति विशेष से कर्म अर्थात् कर्मत्व परिणत पुद्गल- द्रव्यकर्म विपाक-अनुभव करने वाले जीव के द्वारा परतन्त्र वनाये जाते है–योगद्वार से प्रविष्ट होकर पुण्य-पापरूप परिणमन करके भोग्यरूप से सम्बद्ध किये जाते है, वह वन्ध है। अर्थात् आत्मा के जिन भावो से कर्मत्वपरिणत पुद्गल जीव के द्वारा परतन्त्र किया जाता है, वह बन्ध है। अथवा जो कर्म जीव को अपने अधीन करता हे, वह वन्ध हे अथवा जीव और पुद्गल के प्रदेशो का परस्पर मिल जाना वन्ध है।"

वन्ध के विषय मे यह वात तो सर्वसाधारण के दृष्टिपथ मे रहती है कि जीव कर्मो को बाँधता है, किन्तु कर्म भी जीव को बाँधते है, प्राय यह वात ध्यान मे नहीं लायी जाती। प आशाधरजी ने यही विषय बताया कि बन्ध मे दोनो की स्वतन्त्रता का परित्याग होता है। जीव तथा कर्म दोनो स्वतन्त्र नही रहते है। अर्थात् वे परतन्त्र हो जाते है।

यह बन्ध आत्मा और कर्म की परस्पर अनुकूलता होने पर ही होता है। प्रतिकूलो का बन्ध नही होता है। यही बात पंचाध्यायी कही गयी है–

"सानुकूलतया वन्धो न बन्धः प्रतिकूलयोः ॥" –२,१०२

मुनीन्द्र कुन्दकुन्द कहते है–

"फासेहिं पुग्गलाणं बंधो जीवस्स रागमादीहिं।
अण्णोण्णमवगाहो पुग्गलजीवप्पगो भणिदो ॥" –प्रवचनसार, गा २,८५ (१७७)

–"यथायोग्य स्निग्धरूक्षत्वरूप स्पर्श से पुद्गल-कर्म-वर्गणाओ का परस्पर मे पिण्डरूप बन्ध होता है। रागद्वेष मोहरूप परिणामों से जीव का बन्ध होता है। जीव के परिणामो का निमित्त पाकर जीव पुद्गल का बन्ध होना जीव पुद्गल का बन्ध है।"[1]

"सपदेसो सो अप्पा तेसु पदेसेसु पुग्गला काया।
पविसंति जहाजोग्गं चिट्ठंति य जंति बज्झंति ॥" –२,८६(१७८)

यह आत्मा असंख्यातप्रदेशी है। उसके प्रदेशो मे आत्मप्रदेश-परिस्पन्दनरूप योग के अनुसार

---

१ यस्तावदत्र कर्मणां स्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषैरेकत्वपरिणाम स केवल पुद्गलबन्धः। यस्तु जीवस्योपाधिक-मोह-राग द्वेषपर्यायैरेकत्वपरिणाम स केवल जीवबन्ध । य पुन जीवकर्म-पुद्गलयो परस्परनिमित्तमात्रत्वेन विशिष्टतर परस्परमवगाह स तदुभयबन्ध–अमृतचन्द्र सूरि कृत प्रवचनसार टीका, २,८५

मन-वचन-कायवर्गणाओं की सहायता से पुद्गल कर्म-वर्गणारूप पिण्ड आकर प्रविष्ट होता है। वे कर्म-वर्गणाएँ राग-द्वेष तथा मोह के अनुसार अपनी स्थिति प्रमाण ठहरकर क्षीण हो जाती है।

यथार्थ बात यह है कि राग-द्वेष, मोह के कारण आत्मा में एक उत्तेजना विशेष उत्पन्न होती है। उससे वह कर्मो को आकर्षित कर बाँधता है, जैसे गरम लोहपिण्ड जलराशि को आत्मसात् किया करता है।

रागादि से बन्ध होता है

'समयसार' मे सक्षेप मे बन्धतत्त्व को इस प्रकार समझाया है—

"रत्तो बंधदि कम्मं, मुंचदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा।
एसो बंधसमासो जीवाणं जाण णिच्छयदो ॥१५०॥"—प्रवचनसार, गा १७९

रागपरिणाम विशिष्ट जीव कर्मो का बन्ध करता है। रागरहित आत्मा कर्मो से मुक्त होता है। जीवो के बन्ध का सक्षेप मे यही तात्त्विक वर्णन है।

राग-द्वेष से बन्ध होता है, रागादि के अभाव होने पर क्रियाओ के होते हुए भी बन्ध नहीं होता, इसे सोदाहरण कुन्दकुन्द स्वामी इन शब्दो मे स्पष्ट करते है—

"जह णाम कोवि पुरिसो णेहभत्तो दु रेणुबहुलम्मि।
ठाणम्मि ठाइदूण य करेदि सत्थेहि वायामं ॥
छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकलिवंसपिंडीओ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवघादं ॥
उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहि करणेहिं।
णिच्छयदो चिंतिज्जदु किं पच्चयगो दु तस्स रयबंधो ॥
जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबंधो।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥
एवं मिच्छादिट्ठी वट्टंतो बहुविहासु चेट्ठासु।
रायादी उवओगे कुव्वंतो लिप्पदि रयेण ॥" —समयसार, गा २३७-२४१

—आचार्य महाराज के कथन का भाव यह है कि कोई व्यक्ति अपने शरीर मे तेल लगाता है तथा धूलिपूर्ण स्थल में जाकर शस्त्र-सचालनरूप व्यायाम करता है तथा ताड, केला, बाँस आदि के वृक्षों का छेदन-भेदन करता है। इन क्रियाओं के करते हुए जो धूलि उडकर उसके शरीर पर चिपकती है, उसका कारण व्यायाम क्रिया नही है। उसका वास्तविक कारण है—शरीर में तेल का लगाना। इसी प्रकार मिथ्यात्वी जीव अनेक चेष्टाओ को करता है। अपने उपभोग-परिणामो मे रागादि धारण करता है, इससे वह कर्म रूपी धूलि के द्वारा लिप्त होता है।

यहाँ यह शका उत्पन्न होती है कि शरीर में रज-लेपका कारण तेल के स्थान मे व्यायाम क्रिया को क्यो न माना जाए? इसका समाधान स्वामी कुन्दकुन्द अधिक स्पष्टतापूर्वक करते हुए लिखते है—

"जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वह्मि अवणिये संते।
रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहि वायामं ॥
छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकदलिवंसपिंडीओ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवघादं ॥—समयसार, गा. २४२-२४३
उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं।
णिच्छयदो चिंतिज्जहु किं पच्चयगो ण तस्स रयबंधो ॥

जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबंधो।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहि सेसाहिं ॥
एवं सम्मादिट्ठी वट्टंतो बहुविहेसु जोगेसु।
अकरंतो उवओगे रागादी णेव बज्झदि रयेण ॥—समयसार, गा २४५-२४६

इसका भाव यह है कि वही पूर्वोक्त पुरुष अपने शरीर के तेल को पोछकर उसी प्रकार धूलिपूर्ण प्रदेश मे शस्त्र द्वारा व्यायाम तथा वृक्ष-छेदनादि कार्य करता है। अब तेल का अभाव होने से उसके शरीर पर धूलि नही जमती है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव अनेक प्रकार के योगो मे विद्यमान रहता है, किन्तु उसके उपयोग मे रागादि का अभाव रहता है, इस कारण वह कर्म-रज से लिप्त नही होता।[1]

शरीर पर धूलि जमने का कारण व्यायाम नही है, कारण शस्त्रसचालन का अन्वय-व्यतिरेक धूलि जमने के साथ नही देखा जाता। शस्त्र-सचालन दोनो अवस्थाओ मे होते हुए भी धूलि लेप तब होता है, जब शरीर पर तेललिप्त रहता है। शरीर पर तेल के अभाव मे धूलि का लेप भी नही पाया जाता, इससे यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि धूलि के जमने मे कारण तेल का लेप है। इसी प्रकार रागादि के होने पर कर्मो का लेप होता है। आसक्तिजनक रागादि के अभाववश कर्मो का भी लेप नहीं होता। प आशाधरजी ने कहा है—

"भूरेखादिसदृक्कषायवशगो यो विश्वदृश्वाज्ञया
हेयं वैषयिकं सुखं निजमुपादेयं त्विति श्रद्दधत्
चौरो मारयितुं धृतस्तलवरेणेवात्मनिन्दादिमान्
शर्माक्षं भजते रुजत्यपि परं नोत्तप्यते सोऽप्यघैः ॥" —सागरधर्मा १,१३

अप्रत्याख्यानावरणादि कषाय के अधीन रहनेवाला अविरत सम्यक्त्वी सर्वज्ञदेव के वचनानुसार विषय-सुख को त्याज्य और आत्मीक आनन्द को ग्राह्य श्रद्धान करता हुआ भी, जैसे कोट्टपाल के द्वारा मारने के लिए पकडा गया चोर आत्मनिन्दा-गर्हा आदि मे प्रवृत्ति करता है, उसी प्रकार वह कषायोद्रेकवश इन्द्रियजन्य सुख का अनुभव करने मे प्रवृत्त होता है और प्राणियो को पीडा भी देता है, किन्तु वह पापो से पीडित नहीं होता।[2] अनासक्त भाव से विषय सेवन करने के कारण वह बन्ध की तीव्र व्यथा नही उठाता। इसका भाव यह नहीं है कि चतुर्थगुणस्थानवाला सर्वथा बन्ध-विमुक्त हो जाता है। अनन्तानुबन्धी का उदय न होने से उत्त सम्बन्ध से होनेवाला बन्ध नहीं होता है। एकान्त नही है।

कर्मबन्ध पर परमार्थदृष्टि

जीव परमार्थदृष्टि अपने भावो का कर्ता है, फिर उसे कर्म का कर्ता क्यो कहते है? इसके समाधानार्थ समयसारकार कहते है—

"जीवह्मि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं।
जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमत्तेण ॥
जोधेहि कदे जुद्धे राएण कदं ति जंपदे लोगो।
तह ववहारेण कदं णाणावरणादि जीवेण॥"—समयसार, गा १०५-१०६॥

---

१ "तैल-म्रक्षणा भावे यथा रजोबन्धो न भवति, तथा वीतरागसम्यग्दृष्टेर्जीवस्य रागाद्यभावाद्बन्धो न भवति"—जयसेनाचार्यकी टीका पृ ३३८, स सा गाथा २४६। जैसे तेल की चिकनाई के अभाव मे धूलिका बन्ध नहीं होता, उसी प्रकार वीतराग सम्यक्त्वी जीव के रागादिके अभाव से बन्ध नहीं होता है, अर्थात् सरागी सम्यक्त्वीके रागके कारण बन्ध होता है।

२ "नोत्तप्यते नोत्कृष्ट क्लिश्यते। कोऽसौ, सोऽपि अविरतसम्यग्दृष्टि, किं पुन त्यक्तविषयसुख सर्वात्मनैकदेशेन वा हिंसादिभ्यो विरतश्चेत्यपि शब्दार्थ।" —स्वोपज्ञ टीका सा ध १,१३

'जीव के निमित्त को पाकर कर्मवन्ध रूप परिणमन देखकर उपचारवश कहते है कि जीव ने कर्मवन्ध किया। उदाहरणार्थ, यद्यपि योद्धा लोग ही युद्ध करते है, किन्तु लोग कहते हे राजा युद्ध करता है, इसी प्रकार व्यवहारनय से कहते है कि जीव ने ज्ञानावरणादि का वन्ध किया हे।'[1]

अमृतचन्द स्वामी की इसी प्रसग पर वडी सुन्दर उक्ति है–

"जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशङ्कयैव।
एतर्हि तीव्ररजमोहनिवर्हणाय संकीर्त्यते शृणुत पुद्गलकर्म कर्तृ ॥३।१८।"

'यदि जीव पुद्गलकर्म का कर्ता नही है, तो उसका कर्ता कौन है? ऐसी आशका होने पर शीघ्र मोह निवारणार्थ कहते है, उसे सुन लो कि पौद्गलिक कर्मो का कर्ता पुद्गल ही है।'

आत्मा परभावों का कर्ता नहीं होगा, वह अपने निज भाव का कर्ता है, यह वात समझाते हुए कहते हैं–

"आत्मभावान् करोत्यात्मा परभावान् परः सदा।
आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते ॥"–समयसार, पृ १४४

'आत्मा सदा अपने भावो का कर्ता है, पर अर्थात् पुद्गल सदा पौद्गालिक भावो का कर्ता है। आत्मा के भाव आत्मरूप ही है, इसी प्रकार पुद्गल के भाव भी पुद्गलरूप हे।'

उपरोक्त सत्य को हृदयंगम करनेवाले जीव के विपय मे कुन्दकुन्द स्वामी कहते है–

"परमप्पाणमकुव्वं अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो।
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारगो होदि।"–समयसार, गा. ६३

'ज्ञानी जीव पर को आत्मरूप नही मानता है और न आत्मा को पर ही करता है, वह कर्मो का अकर्ता होता है।' जयसेनाचार्य अपनी टीका मे यह स्पष्ट करते हैं–"स निर्मलात्मानुभूतिलक्षणभेदज्ञानी जीव कर्मणामकर्ता भवतीति"–निर्मल आत्मानुभूति स्वरूप भेदज्ञानी जीव कर्मो का अकर्ता होता है।

यहाँ यह गम्भीर वात्त समझाते है कि जव आत्मा अपने भाव के सिवाय परमार्थ से परभावो का कर्ता नही है, तव जीव मे कर्मो का कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व नही रहेगा।

नाटक समयसार मे कहा है–

"जोलों ज्ञान को उदोत तोलों नहिं बन्ध होत बरतै मिथ्यात्व तब नानाबन्ध होहि है।
ऐसो भेद सुन के लग्यो तू विषय भोगन सूं जोगनि सूं उद्यम की रीति तै बिछोहि है॥
सुनो भैया सन्त तू कहे मै समकितवन्त यहू तो एकन्त परमेश्वर का द्रोही है।
विषै सुं विमुख होहि अनुभव दशा आरोहि मोक्ष सुख ढोहि तोहि ऐसी मति सोही है ॥३९॥"

जिस आत्मा के हृदय मे सम्यग्ज्ञान की निर्मल ज्योति प्रदीप्त होती है, उस आत्मा का जीवन सहज पवित्रता के रस से शोभित होता है। वह विषय-सुखो मे आसक्त होता है, ऐसा जिन्हे भ्रम है, उनके समाधान निमित्त कविवर बनारसीदासजी कहते हैं–

"ज्ञानकला जिसके घट जागी। ते जग माहिं सहज बैरागी ॥
ज्ञानी मगन विषै सुख माही। यह विपरीत सम्भवै नाहीं ॥४०॥

ज्ञानशक्ति वैराग्यबल शिवसाधे समकाल।
ज्यों लोचन न्यारे रहें, निरखे दोऊ ताल ॥४१॥"

---

1 अनादिबन्धपर्यायवशेन वीतरागस्वसंवेदनलक्षण-भेदज्ञानाभावाद् रागादिपरिणामस्निग्ध· सन्नात्मा कर्मवर्गणायोग्य-पुद्गलद्रव्य कुम्भकारो घटमिव द्रव्यकर्मरूपेणोत्पादयति करोति स्थितिबन्ध वध्नात्यनुभागवन्ध परिणमयति प्रदेशवन्धं तप्ताय पिण्डो जलवत् सर्वात्मप्रदेशैर्गृह्णाति चेत्यभिप्राय ॥ –जयसेनाचार्य-तात्पर्यवृत्ति टीका।

अमृतचन्द्रस्वामी ने कहा है—

"सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्य-शक्तिः
स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या।
यस्माद् ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वत· स्वं परं च
स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात् ॥"—समयसार कलश, १३६

सम्यक्त्वी के नियम से ज्ञान ओर वैराग्य की शक्ति होती है, क्योंकि यह सम्यग्दृष्टि अपने वस्तुपना—यथार्थ स्वरूप का अभ्यास करने को अपने स्वरूप का ग्रहण और पर के त्याग की विधि कर 'यह तो अपना स्वरूप है और यह पर द्रव्य का है,' ऐसे दोनो का भेद परमार्थ से जानकर अपने स्वरूप मे ठहरता है और पर द्रव्य से सव तरह राग का योग छोडता है।

आत्मा सर्वथा अकर्ता नही है

कोई लोग कर्म के मर्म को यथार्थ रूप से समझकर आत्मा को सर्वथा अकर्ता मानते है—और कहते हैं कि जो कुछ भी परिणमन होता है, सव का कर्तृत्व कर्म पर है। जड की क्रिया होती है। साख्यदर्शन भी पुरुष को कमलपत्र सम मानकर कर्म-जल से उसे पूर्णतया अलिप्त बताता है। वह प्रकृति को ही सव कुछ कर्ता-धर्ता मानता है। इस प्रकार की दृष्टि को महर्षि कुन्दकुन्द एकान्तवादी कहते हैं—

"कम्मेहिं दु अण्णाणी किज्जदि णाणी तहेव कम्मेहि।
कम्मेहिं सुवाविज्जदि जग्गाविज्जदि तहेव कम्मेहिं ॥"—समयसार, गा ३३२

—'यह जीव कर्म के ही द्वारा अज्ञानी किया जाता है। उसके द्वारा ही वह ज्ञानी किया जाता है। कर्म ही जीव को सुलाता है, कर्म ही उसे जगाता है।'

"कम्मेहि भमाडिज्जदि उड्ढमहं चावि तिरियलोयं च।
कम्मेहिं चेव किज्जदि सुहासुहजे त्तियं किंचि ॥"—समयसार, गा ३३२

—'कर्म के कारण ही जीव ऊर्ध्व, मध्य तथा अधोलोक मे भ्रमण करता है। जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म हैं, वे भी कर्म के ही द्वारा किये जाते है। इस प्रकार कर्मैकान्त मानने वाले के अनुसार कर्म को ही कर्ता, हर्ता, दाता आदि माना जाए, तो क्या आपत्ति है? इस पर कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

"जम्हा कम्मं कुव्वदि कम्मं देदि हरत्ति जं किंचि।
तम्हा सव्वे जीवा अकारगा होंति आवण्णा ॥"—समयसार, गा. ३३५

'यत कर्म ही सब कुछ करता है, देता है, हरण करता है, अत सर्व जीवो मे अकारकत्व आ गया।' पुन उस एकान्त मान्यता मे दोषोद्भावन कहते है—

"पुरिसित्थियाहिलासी इत्थीकम्मं च पुरिसमहिलसदि।
एसा आयरियपरंपरागदा एरिसी दु सुदी ॥३३६॥"
तम्हा ण कोवि जीवो अबंभचारी दु तुम्हमुवदेसे।
जम्हा कम्मं चेव हि कम्मं अहिलसदि जं भणिदं ॥३३७॥
जम्हा घादेदि परं परेण घादिज्जदे य सा पयडी।
एदेणत्थेण दु किर भण्णदि परघादणामेत्ति ॥३३८॥
तम्हा ण कोवि जीवो उवघादगो अत्थि तुम्ह उवदेसे।
जम्हा कम्मं चेव हि कम्मं घादेदि इदि भणियं ॥३३९॥
एवं संखुवदेसं जेदु परूविंति एरिसं समणा।
तेसिं पयडी कुव्वदि अप्पा य अकारगा सव्वे ॥३४०॥"

इस विपय मे आचार्य कहते है–'पुरुप नामक कर्म के उदय से स्त्री की अभिलाषा उत्पन्न होती है। स्त्री कर्म के कारण पुरुष की वाछा होती है। ऐसी बात स्वीकार करने पर कोई भी अब्रह्मचारी नही होगा, कारण कर्म ही कर्म की अभिलाषा करता है, यह कहा जाएगा।

कोई जीव दूसरे को मारता है या मारा जाता है, इसका कारण परघात, उपघात नाम की प्रकृतियाँ है। यह मानने पर कोई वध करने वाला न होगा। कारण यह कथन किया जाएगा कि कर्म ही कर्म का घात करने वाला है। इस प्रकार जो साख्य सिद्धान्त के अनुसार मानते है, उनके यहाँ प्रकृति ही करती है और सर्व आत्मा अकारक हुए।

समन्वय पथ–इस जटिल समस्या को सुलझाते हुए अनेकान्त विद्या के मार्मिक आचार्य अमृतचन्द कहते है–

"माऽकर्तारममी स्पृशन्तु पुरुष साख्या इवाप्यार्हता.
कर्तारं कलयन्तु त किल सदा भेदावबोधादध.।
ऊर्ध्व तूद्धतबोधधामनियत प्रत्यक्षमेव स्वयं
पश्यन्तु च्युतकर्मभावमचलं ज्ञातारमेकं परम् ॥" –समयसारकलश, २०५

–'अर्हन्त भगवान् के भक्तो को यह उचित है कि वे साख्यों के समान जीव को सर्वथा अकर्ता न माने, किन्तु उनको भेदविज्ञान होने के पूर्व आत्मा को सदा कर्ता स्वीकार करना चाहिए। जब भेदविज्ञान की उत्पत्ति हो जाए, तब आत्मा को कर्म भावरहित, अविनाशी, प्रवृद्ध ज्ञान का पुज, प्रत्यक्षरूप एक ज्ञातारूप मे दर्शन करो।'

आचार्य महाराज की देशना का भाव यह है कि जब तक भेदविज्ञान ज्योति के प्रकाश से आत्मा आलोकित नही हुई है, तब तक आत्मा को रागादिरूप भाव कर्मो का कर्ता मानो। भेद-विज्ञान की उपलब्धि के पश्चात् आत्मा को ज्ञाता–द्रष्टा मानो। बहिरात्मा मे कर्म-कर्तृत्व का भाव मानना चाहिए। परिग्रह-रहित योगीरूप अन्तरात्मा को अपने ज्ञान स्वभाव का कर्ता जानना उचित है। आत्मा निर्विकल्प समाधि की अवस्था मे अकर्ता कहा गया है। भेद-ज्ञान निर्विकल्प समाधिरूप अवस्था का ज्ञापक है। जयसेनाचार्य समयसार टीका मे कहते है–"तत स्थितमेतत्, एकान्तेन साख्यमतवदकर्ता न भवति कि तर्हि रागादिविकल्परहित-समाधि लक्षण-भेदज्ञानकाले कर्मण कर्ता न भवति, शेष काले कर्तेति" (गाथा ३४४)–अत यह बात जाननी चाहिए कि आत्मा साख्यमत के समान अकर्ता नही है। वह रागादि विकल्परहित समाधिरूप भेद-विज्ञान के काल मे कर्मो का कर्ता नही है, शेषकाल मे कर्ता होता है। यह विकल्परहित समाधि गृहस्थावस्था मे असम्भव है। मुनिपद मे ही वह होती है। इस प्रकार दृष्टिभेद से आत्मा मे कर्तृत्व और अकर्तृत्व का समन्वय किया जाता है। अकर्तापने का एकान्तपक्ष साख्यदर्शन की मान्यता है। स्याद्वादशासन की मान्यता एकान्तवाद रूप नही हो सकती है।

साख्यतत्त्वकौमुदी मे कहा है–

"तस्मान्न बध्यतेऽसौ न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृति. ॥६२॥"

इससे कोई भी पुरुष न बँधता है, न मुक्त होता है, न परिभ्रमण करता है। अनेक आश्रयों को ग्रहण करने वाली प्रकृति का ही ससार होता है, बन्ध होता है तथा मोक्ष होता है।

भेदज्ञान का रहस्य–इस पद्य से स्पष्ट हो जाता है कि जो आत्मा की निश्चयनय की अपेक्षा प्रतिपादित शुद्धता को ही एकान्त रूप से ग्रहण कर उसे सर्वथा कर्मबन्ध रहित मानते है, वे यथार्थ मे साख्यदर्शनवाले बन जाते है। सर्वज्ञ अरहन्त भगवान् की वाणी अनेकान्त तत्त्व को सत्य का स्वरूप बताती है। इस कारण जयसेनाचार्य ने कहा है–"तत स्थितमेतत्, एकान्तेन साख्यमतवदकर्ता न भवति। कि तर्हि? रागादिविकल्परहित-समाधिलक्षणभेदज्ञानकाले कर्मण कर्ता न भवति, शेषकाले भवति" (समयसार, गाथा

३४४-टीका)—अत यह बात निर्णीत है कि आत्मा एकान्तरूप से सांख्यमत के समान अकर्ता नहीं है। फिर आत्मा कैसी है? रागादि विकल्परहित समाधिरूप भेदज्ञान के समय यह कर्मो का कर्ता नहीं है, शेष काल मे आत्मा कर्मों का कर्ता होता है। अर्थात् जब वह अभेद समाधिरूप नहीं होता है, तब उसके रागादि के कारण बन्ध हुआ करता है। भेदज्ञान का अर्थ अविरत सम्यक्त्वी का ज्ञान समझने से यह भ्रम होता है कि अविरत सम्यक्त्वी के बन्ध नहीं होता है। भेदविज्ञान निर्विकल्प समाधि का द्योतक है जो मुनिपद धारण करने के उपरान्त ही प्राप्त होती है। विकल्पजालपूर्ण गृहस्थावस्था में उसकी सम्यक् कल्पना भी अशक्य है।

आत्मा कर्मस्वरूप नहीं होता

मुनीन्द्र कुन्दकुन्द का कथन है—

> "जह सिप्पिओ दु कम्मं कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि।
> तह जीवो वि य कम्मं कुव्वदि ण य तम्मओ होदि ॥" —समयसार, गा ३४६

—जैसे शिल्पकार आभूषण आदि के निर्माण कार्य को करता है, किन्तु वह स्वय आभूषण स्वरूप नहीं होता, उसी प्रकार यह जीव कर्मो को बाँधता हुआ भी कर्मस्वरूप नहीं होता है।

शिल्पकार सुनार आभूषण निर्माण में निमित्त कारण है, अत वह अपने स्वरूप से भी च्युत नहीं होता और निमित्त कारण भी बनता है। इसी प्रकार जीव भी अपने स्वरूप का नाश नहीं करता है और कर्मो के बन्धन में निमित्त रूप भी रहा आता है। उपादान-उपादेय भाव का यहाँ निषेध किया गया है, निमित्त-नैमित्तिक-भाव की अपेक्षा कर्ता कर्म, भोक्ता, भोग्यपने का व्यवहार उपयुक्त माना है। अमृतचन्द्रसूरि कहते हैं—

> "ततो निमित्तनैमित्तिकभावमात्रेणैव तत्र कर्तृकर्मभोक्तृभोग्यत्वव्यवहार·"।
> —समयसार, पृ. ४५५

शंका—सच्चा नय तो निश्चय नय है। व्यवहार तो अभूतार्थ है, मिथ्या है, अत सांख्यदर्शन की तरह आत्मा को सदा पुरुष के समान निर्लेप शुद्ध मानना चाहिए। प्रत्यक्ष स्वीकार करने में भय नहीं करना चाहिए।

समाधान—सम्यग्ज्ञान के अंग होने से जितना सत्यपना निश्चय नय में है, उतना ही समीचीनपना व्यवहार नय में भी है। जो नय परस्पर में निरपेक्ष हो, अन्य नयको मिथ्या मानता है, वह स्वयं मिथ्या रूपता को प्राप्त होता है। निश्चय का यह कथन यथार्थ है कि जीव शुद्ध है, किन्तु व्यवहार का कथन भी सम्यक् है कि जीव में कथंचित् कर्तृत्व आदि भाव भी पाये जाते हैं। इस सम्बन्ध मे आचार्य पद्मनन्दि का 'पंचविंशतिका के निश्चय पचाशत् अधिकार मे किया गया प्रतिपादन महत्त्वपूर्ण है। वे कहते है—

> "व्यवहारोऽभूतार्थो भूतार्थो देशितस्तु शुद्धनयः।
> शुद्धनयमाश्रिता ये प्राप्नुवन्ति यतयः पदं परमम् ॥" —समयसार, गा ६ से उद्धृत

व्यवहार नय अभूतार्थ है तथा शुद्धनय भूतार्थ कहा है। जो मुनीश्वर शुद्धनय का आश्रय लेते हैं, वह परम पद को प्राप्त करते हैं। यहाँ श्लोक मे आगत 'यतय' शब्द महत्त्वपूर्ण है। उससे गृहस्थ की व्यावृत्ति हो जाती है। आकुलता के जाल में फँसा हुआ परिग्रह पिशाच के द्वारा छला गया गृहस्थ शुद्ध दृष्टि का पात्र नहीं है। उसका कल्याण व्यवहार नय द्वारा प्रतिपादित पथ का आश्रय ग्रहण करने में है। सविकल्प अवस्थावाले श्रमण का भी अवलम्बन व्यवहार नय रहा करता है। शुद्धोपयोगी निर्विकल्प समाधिवाला दिगम्बर मुनि अभेद दृष्टि रूप निश्चय नय का आश्रय लेता है। पद्मनन्दि आचार्य कहते हैं—

> "तत्त्वं वागतिवर्ति व्यवहृतिमासाद्य जायते वाच्यम्।
> गुण-पर्यायादि-विवृत्तेः प्रसरति तच्चापि शतशाखम् ॥" —पद्मनन्दिपंच. श्लो. 10

वास्तविक दृष्टि से अथवा निश्चय नय की अपेक्षा तत्त्व का स्वरूप वचन के अगोचर है, किन्तु व्यवहार नय का आश्रय ले वह कथंचित् वाणी का विषय हो जाता है। गुण, पर्याय आदि के भेद से वह सैकडो भेद युक्त हो जाता है। वस्तु का विवेचन भेदग्राही व्यवहार नय के द्वारा ही सम्भव है। एकान्तवादी व्यवहार नय को तिरस्कार और निन्दा का पात्र मानता है, किन्तु अनेकान्त तत्त्वज्ञान का सौन्दर्य समझनेवाला स्याद्वादी व्यवहार नय को भी आदरणीय स्वीकार करता है।

महत्त्व की बात—'पद्मनन्दि पचविंशतिका' का यह कथन विशेष ध्यान देने योग्य है—

> **"मुख्योपचार-विवृति व्यवहारोपायतो यत. सन्तः।**
> **ज्ञात्वा श्रयन्ति शुद्धं तत्त्वमिति व्यवहृतिः पूज्या ॥११॥"**

मुनीश्वर व्यवहारनय की सहायता से मुख्य तथा उपचार के भेद को समझकर शुद्ध तत्त्व का आश्रय लेते है, इस कारण व्यवहार-नय पूज्य है। 'व्यवहृति. पूज्या' शब्द महान् आध्यात्मिक मुनीश्वर के द्वारा कहे गये है।

अभेद रत्नत्रयरूप अद्वैत तत्त्व मे स्थित निश्चय नयवाला योगी परम पदवी को प्राप्त करता है। एकत्व वितर्क नामक शुक्ल ध्यान के द्वितीय भेद का आश्रय कर शुक्लध्यानी शुद्धोपयोगी मोहनीय कर्म को नष्ट करता है। वास्तव मे शुद्ध तत्त्व नयादि के विकल्पो से अतीत है। उस अनुभव की दशा मे व्यवहारनय और निश्चयनय दोनो समान रूप से अग्राह्य बन जाते है। पद्मनन्दि आचार्य कहते है—

> **"नय-निक्षेप-प्रमिति-प्रभृति-विकल्पोज्झितं परं शान्तम्।**
> **शुद्धानुभूति-गोचरमहमेकं धाम चिद्रूपम् ॥४५॥"** निश्चयपचाशत्

मै नय, निक्षेप, प्रमाण आदि विकल्पो से रहित, परमशान्त, शुद्धानुभूतिगोचर चिद्रूप-तेजस्वरूप हूँ। जिनागम का रसपान करनेवाले को एकान्तवाद के दलदल से बचना चाहिए। 'तत्त्वज्ञान-तरगिणी' का यह कथन हृदयग्राही है—

> **"व्यवहारेण बिना केचिन्नष्टाः केवल निश्चयात्।**
> **निश्चयेन बिना केचित् केवल-व्यवहारतः ॥"** —तत्त्वज्ञानतरंगिणी

कोई लोग व्यवहार का लोप करके निश्चय के एकान्त से विनाश को प्राप्त हुए और कोई निश्चय दृष्टि को भूलकर केवल व्यवहार का आश्रय ले विनष्ट हुए। अतएव समन्वय की पद्धति अभिवन्दनीय है। अत उक्त ग्रन्थकार कहते है—

> **"द्वाभ्यां दृग्भ्यां बिना न स्यात् सम्यग्द्रव्यावलोकनम्।**
> **यथा तथा नयाभ्यां चेत्युक्तं च स्याद्वादिभिः ॥"**

जैसे दोनो नेत्रो के बिना सम्यक् प्रकार से वस्तु का अवलोकन नही होता है, उसी प्रकार दोनो नयो के बिना भी यथार्थ रूप मे वस्तु का ग्रहण नहीं होता है, ऐसा भगवान् ने कहा है।

महान् भ्रम—लोग प्राय लोकाचार तथा लौकिक व्यवहार को (formalities) व्यवहार नय सोचते है और निश्चय को सुदृढ विचार (determination) समझकर भ्रान्त धारणा बनाते है। इसी के आधार पर वे कहते है कि किसी कार्य के सम्पादन के पूर्व निश्चय नय होता है, पश्चात् उसकी पूर्ति हेतु प्रवृत्ति व्यवहारनय है। यह कथन इतना ही विपरीत है, जितना बकराज को हसराज बताना मिथ्या है। शब्दो के अनेक अर्थ होते है, जिनका आगमानुसार अर्थ करना तत्त्वज्ञ का कर्तव्य है। सम्यग्ज्ञान के भेदनय का उपभेद व्यवहारनय निश्चयन का साधक है। दोनो मे साधनसाध्यभाव है। *'तत्त्वानुशासन'* मे कहा है—

> **"मोक्षहेतुः पुनर्द्वेधा निश्चयाद् व्यवहारतः।**
> **तत्राद्यः साध्यरूपः स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनम् ॥"** —तत्त्वानुशासन, श्लो २८

मोक्षका मार्ग निश्चय तथा व्यवहार के भेद से दो प्रकार का है। उसमें निश्चयमोक्षमार्ग साध्यरूप है तथा व्यवहार मोक्षमार्ग साधनरूप है। *'तत्त्वार्थसार'* मे अमृतचन्द्र सूरि ने भी लिखा है–

"निश्चय-व्यवहाराभ्यां मोक्षमार्गो द्विधा स्थित.।
तत्राद्य. साध्यरूप. स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनम् ॥" –तत्त्वार्थसार

साधन से साध्य की सिद्धि की जाती है, इससे साधनरूप व्यवहारनय पूर्ववर्ती होगा और साध्यरूप निश्चयनय पश्चाद्वर्ती होगा। इसका विपरीत कथन करना ऐसी ही विचित्र बात होगी, जैसे यह कहना कि पहले मोक्ष होता है, फिर बन्ध होता है। बुद्धिमान् तथा विवेकी व्यक्ति जैसे बन्धपूर्वक मोक्ष को स्वीकार करता है, उसी प्रकार अनेकान्त दृष्टि तत्त्वज्ञ साधनरूप व्यवहार दृष्टि को प्राथमिकता देकर साध्यरूप दृष्टि को पश्चाद्वर्ती मानेगा।

निश्चयनय और व्यवहारनय का आगम मे क्या अर्थ है, यह 'तत्त्वानुशासन' में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है–

"अभिन्न-कर्तृ-कर्मादि-विषयो निश्चयो नयः।
व्यवहारनयो भिन्न-कर्तृ-कर्मादि-गोचर. ॥२९॥"

निश्चनय मे कर्ता, कर्म, कारण आदि भिन्न नही होते है, अत वह अभिन्न कर्तृ-कर्मादि विषयक है। वह अभेदग्राही (synthetic approach) है। व्यवहारनय कर्ता–कर्मादि भेद का ग्राहक है। वह (analytic approach) भेद दृष्टि युक्त है। समन्तभद्र स्वामी ने–*'आप्तमीमासा'* में वस्तु का स्वरूप भेद तथा अभेद रूप माना है–"भेदाभेदौ न संवृती"–भेद तथा अभेद वस्तु रूप है, कल्पना नहीं है।

निर्विकल्प समाधि की स्थिति सामान्य बात नही है। उस अवस्था मे अद्भुत रूप से आत्मनिमग्नता पायी जाती है। भीम, अर्जुन तथा युधिष्ठिर ने मुनिपद को स्वीकार कर जब निर्विकल्प समाधि मे तल्लीनता प्राप्त की थी, तब उनके शरीर पर जलते हुए लोहे के आभूषण पहनाये जाने पर भी वे पूर्णतया स्थिर थे। जब सुकुमाल मुनि निर्विकल्प समाधि का रसपान कर रहे थे, तब स्यालनी उनका शरीर भक्षण कर रही थी, फिर भी वे स्वरूप मे निमग्न थे। सुकौशल मुनि की भी ऐसी ही अभेद रत्नत्रय रूप परिणति थी, जब व्याघ्री ने उनके शरीर का भक्षण किया था। उस निर्विकल्प समाधि की स्थिति के अनुसार साख्य का आत्मा का अकर्तृत्व पक्ष निर्दोष तथा यथार्थ है, किन्तु वह सविकल्पदशा मे भी अकर्तृत्व कहता है, इससे उसकी मान्यता पूर्णतया अवास्तविक बन जाती है।

अभेद स्वरूप मे निमग्न योगी अद्वैत भाव को प्राप्त होता है। वेदान्तदर्शन भी उस अद्वैत का कथन करता है। इस प्रकार शुद्ध निश्चनय की दृष्टि वेदान्त की अद्वैत विचारधारा के सदृश प्रतीत होती है, किन्तु उसमें और जैन विचारधारा मे इतना अन्तर है कि जैनदर्शन सविकल्प अवस्था मे भेदरूप द्वैत दृष्टि को भी यथार्थ मानता है। वेदान्ती द्वैत दृष्टि को अयथार्थ तथा काल्पनिक बताता है। स्याद्वाद सिद्धान्त मे अद्वैत दृष्टि प्राप्त व्यक्ति इस प्रकार अनुभव करता है–

"एकमेव हि चैतन्यं शुद्धनिश्चयतोऽथवा।
कोऽवकाशः विकल्पानां तत्राखण्डैकवस्तुनि ॥१५॥" –पद्मनन्दिपचविंशति, एकत्वाशीति

शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा चैतन्य एक है, अद्वैत रूप है। उस अखण्ड आत्मस्वरूप मे विकल्पो के लिए कोई स्थान नहीं है।

"बद्धो मुक्तोऽहमथ द्वैते सति जायते ननु द्वैतम्।
मोक्षायेत्युभय-मनोविकल्परहितो भवति मुक्तः ॥४६॥" –वही

मै बद्ध हूँ, मुक्त हूँ, ऐसी द्वैतबुद्धि द्वैतभाव के होने पर होती है। बद्ध और मुक्त के दोनो मानसिक विकल्पों का भय होना मोक्ष का कारण है।

"बद्धो वा मुक्तो वा चिद्रूपो नय-विचारविधिरेषः।
सर्वनय पक्षरहितो भवति हि साक्षात्समयसारः ॥५३॥" —वही

चिद्रूप बद्ध है अथवा मुक्त है, यह नय–दृष्टि का कथन है। सर्व प्रकार के नयपक्षरहित साक्षात् समयसार है।

'पचास्तिकाय' मे कहा है–

"जो संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसुगदी ॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते।
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो य दोसो वा ॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा ॥"—गा १२६-१३०

—'जो जीव ससार मे स्थित है, उसके राग-द्वेष रूप परिणाम होते है। उन भावो से कर्मो का बन्धन होता है। कर्मो के कारण नरक आदि गतियो मे गमन होता है। गतियो मे जाने पर शरीर की प्राप्ति होती है। शरीर से इन्द्रियो की प्राप्ति होती है। इन्द्रियो के द्वारा विषयो का ग्रहण होता है। इससे राग-द्वेष उत्पन्न होते है। ससार चक्र मे परिभ्रमण करते हुए जीव के इस प्रकार के भाव होते है। जिनेन्द्र ने कर्म को सन्तति की अपेक्षा अनादि-निधन और पर्याय की अपेक्षा सादि कहा है। इस विवेचन का निष्कर्ष यह है कि यह जीव राग-द्वेष के कारण इस अनादिनिधन ससार चक्र मे परिभ्रमण किया करता है।

कर्म को पौद्‌गलिक एव मूर्तिक मानने मे युक्ति

आत्मा से सम्बद्ध कर्मो को पौद्‌गलिक प्रमाणित करते हुए–*'पचास्तिकाय'* मे लिखा है–

"जम्हा कम्मस्स फलं विसयं फासेहिं भुंजदे णियदं।
जीवेण सुहं दुक्खं तम्हा कम्माणि मुत्ताणि ॥" —पचास्तिकाय, गा १३३

'जीव कर्मो के फलस्वरूप सुख-दुःख के हेतु स्वरूप विषयो को मूर्तिमान् इन्द्रियो के द्वारा भोगता है, इससे कर्म मूर्तिक है।'

एक पुद्‌गल द्रव्य ही स्पर्श, रस, गन्ध तथा वर्ण विशिष्ट होने के कारण मूर्तिक है। अत कर्मो मे मूर्तिक पना सिद्ध होने पर उनकी पौद्‌गलिकता स्वय प्रमाणित होती है।

टीकाकार अमृतचन्द्रसूरि लिखते हैं–'मूर्त कर्म मूर्तसम्बन्धेनानुभूयमानमूर्तफलत्वादाखुविषवत्, इति'–कर्म मूर्तिक है, कारण उसका फल मूर्तिक द्रव्य के सम्बन्ध से अनुभवगोचर होता है, जैसे चूहे के काटने से उत्पन्न हुआ विष। चूहे के काटने से शरीर मे जो शोथ आदि विकार उत्पन्न होता है, वह इन्द्रियगोचर होने से मूर्तिमान् है, इससे उसका मूल कारण विष भी मूर्तिमान् होना चाहिए। इसी प्रकार यह जीव मणि, पुष्प, वनितादि के निमित्त से सुख तथा सर्प सिहादि के निमित्त से दुःखरूप कर्म के विपाक का अनुभव करता है, अत इस सुख-दुःख का कारण जो कर्म है, वह भी मूर्तिमान् मानना उचित है।[1]

जयधवला टीका (१।५७) में लिखा है–"तंपि मुत्त चेव। त कथ णव्वदे? मुत्तोसहसबधेण परिणामातरगमयण्णहाणुववत्तीदो। ण च परिणामातरगमणमसिद्ध, तस्स तेण विणा जरकुट्ठक्खयादीण विणासाणुववत्तीए परिणामतरगमणसिद्धीदो।"–

---

१ "यदाखुविषवन्मूर्तसम्बन्धेनानुभूयते।
यथास्व कर्मण पुसा फल तत्कर्म मूर्तिमत् ॥" —अन धर्मा, २,३०

'कर्म मूर्त है यह कैसे जाना? इसका कारण यह कि यदि कर्म को मूर्त न माना जाय तो मूर्त औषधि के सम्बन्ध से परिणामान्तर की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अर्थात् रुग्णावस्था में औषधि ग्रहण करने से रोग के कारण कर्मों की उपशान्ति देखी जाती है, वह नहीं बन सकती है। औषधि के द्वारा परिणामान्तर की प्राप्ति असिद्ध नहीं है, क्योंकि परिणामान्तर के अभाव में ज्वर, कुष्ठ तथा क्षय आदि रोगों का विनाश नहीं बन सकता, अतः कर्म में परिणामान्तर की प्राप्ति होती है, यह सिद्ध हो जाता है।'

कर्म मूर्तिमान् तथा पौद्गलिक है। जीव अमूर्तिक तथा अपौद्गलिक है, अतः जीव से कर्मों को सर्वथा भिन्न मान लिया जाय, तो क्या दोष है? इस विषय में वीरसेनाचार्य 'जयधवला' में इस प्रकार प्रकाश डालते हैं–'जीव से यदि कर्मों को भिन्न माना जाए, तो कर्मों से भिन्न होने के कारण अमूर्त जीव का मूर्त शरीर तथा औषधि के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता। इससे जीव तथा कर्मों का सम्बन्ध स्वीकार करना चाहिए। शरीर आदि के साथ जीव का सम्बन्ध नहीं है, ऐसा नहीं कह सकते, कारण शरीर के छेदे जाने पर दुःख की उपलब्धि देखी जाती है। शरीर के छेदे जाने पर आत्मा में दुःख की उत्पत्ति से जीवकर्म का सम्बन्ध सूचित होता है। एक के छेदे जाने पर दूसरे में दुःख की उत्पत्ति नहीं पायी जाती। ऐसा मानने पर अव्यवस्था होगी।

भिन्नता का पक्ष मानने पर जीव के गमन करने पर शरीर का गमन नहीं होना चाहिए, कारण दोनों में एकत्व का अभाव है। औषधिसेवन भी जीव की नीरोगता का सम्पादक नहीं होगा, कारण औषधि शरीर के द्वारा पिई गयी है। अन्य के द्वारा पिई गयी औषधि अन्य की नीरोगता को उत्पन्न नहीं करेगी। इस प्रकार की उपलब्धि नहीं होती। जीव के रुष्ट होने पर शरीर में कम्प, दाह, गले का सूखना, नेत्रों की लालिमा, भौंहों का चढ़ना, रोमांच का होना, पसीना आना आदि बातें शरीर में नहीं होनी चाहिए, कारण उनमें भिन्नता है। जीव की इच्छा से शरीर का गमनागमन, हाथ, पाँव, सिर तथा अंगुलियों का हलन-चलन भी नहीं होना चाहिए। कारण वे पृथक् हैं। सम्पूर्ण जीवों के केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, विरति, सम्यक्त्वादि हो जाना चाहिए, कारण सिद्धों के समान जीव से कर्मों का पृथक्पना है। अथवा सिद्धों में अनन्तगुणों का अभाव मानना होगा; किन्तु ऐसी बात नहीं पायी जाती, इससे कर्मों को जीव से अभिन्न श्रद्धान करना चाहिए।

अमूर्त स्वभाव आत्मा को मूर्तिक कर्मों ने क्यों बाँधा?

प्रस्तुत समस्या पर प्रकाश डालते हुए अकलंकदेव आत्मा को कथंचित् मूर्तिक और कथंचित् अमूर्तिक बताते हैं। उन्होंने लिखा है :

"अनादिकर्मबन्धसन्तानपरतन्त्रस्यात्मनः अमूर्तिं प्रत्यनेकान्तो बन्धपर्यायं प्रत्येकत्वात् स्यान्मूर्तम्, तथापि ज्ञानादिस्वलक्षणापरित्यागात् स्यादमूर्तिः। ...मदमोहविभ्रमकरीं सुरां पीत्वा नष्टस्मृतिर्जनः काष्ठवदपरिस्पन्द उपलभ्यते तथा कर्मेन्द्रियाभिभवादात्मा नाविर्भूतस्वलक्षणो मूर्त इति निश्चीयते।"–तत्त्वार्थवार्तिक, रा., पृ.८१

"अनादिकालीन कर्मबन्ध की परम्परा के अधीन आत्मा के अमूर्तत्व के विषय में अनेकान्त है। बन्धपर्याय के प्रति एकत्व होने से आत्मा कथंचित् अमूर्तिक है, किन्तु अपने ज्ञानादि लक्षण का परित्याग न करने के कारण कथंचित् अमूर्तिक भी है। मद, मोह तथा भ्रम को उत्पन्न करने वाली मदिरा को पीकर मनुष्य स्मृतिशून्य हो काष्ठ की भाँति निश्चल हो जाता है तथा कर्मेन्द्रियों के अभिनव होने से अपने ज्ञानादि स्वलक्षण का अप्रकाशन होने से आत्मा मूर्तिक निश्चय किया जाता है।"[1]

इस विषय में 'प्रवचनसार' में एक मार्मिक बात कही गयी है–

"रूवादिएहिं रहिदो पेच्छदि जाणादि रूवमादीणि।
दव्वाणि गुणे य जधा तह बंधो तेण जाणीहि ॥२,८२।"

---

1. "वण्णरसपंचगंधा दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ॥–द्रव्यसंग्रह ।७।"

—"जिस प्रकार रूपादिरहित आत्मा रूपी द्रव्यों तथा उनके गुणों को जानता-देखता है, उसी प्रकार रूपादिरहित जीव पुद्गल कर्मों से बाँधा जाता है। कदाचित् ऐसा न माना जाय, तो यह शका उत्पन्न होती है कि अमूर्तिक आत्मा मूर्तिक पदार्थों को क्यों देखता जानता है। निष्कर्ष यह है, अमूर्तिक आत्मा अपने विशिष्ट स्वभाव के कारण जैसे मूर्तिक पदार्थों का ज्ञाता-द्रष्टा है, उसी प्रकार वह अपनी वैभाविक शक्ति के परिणमन विशेष से मूर्तिक कर्मों के-से वन्ध को प्राप्त करता है।[1] वस्तुस्वभाव तर्क के अगोचर है।"

'तत्त्वार्थसार' में कहा है—"आत्मा अमूर्तिक है, फिर भी उसका कर्मों के साथ अनादिनित्य सम्बन्ध है। उसके ऐक्यवश आत्मा को मूर्तिक निश्चय करते हैं।"[2]

आत्मा को कर्मबद्ध मानने का कारण

कोई-कोई सोचते हैं यह हमारा भ्रम है जो हम अपनी आत्मा में कर्मों का वन्धन स्वीकार करते हैं। यथार्थ ज्ञान होने पर विदित होता है कि आत्मा कर्मादि विकारों से रहित पूर्णतया परिशुद्ध है। ऐसे विचार वालों के समाधाननिमित्त विद्यानन्दिस्वामी *'आप्तपरीक्षा'* (पृ १) में लिखते हैं—

"विचार प्राप्त संसारी जीव वँधा हुआ है, कारण यह परतन्त्र है, जैसे हस्तिशाला के स्तम्भ में वँधा हुआ हाथी परतन्त्र रहता है। इसी प्रकार संसारी जीव भी पराधीन होने के कारण वँधा हुआ है।"

जीव की पराधीनता को सिद्ध करने के लिए आचार्य कहते हैं—"यह ससारी जीव पराधीन है, कारण इसने हीनस्थान को ग्रहण किया है। कामवासनावश श्रोत्रिय ब्राह्मण वेश्या के घर को अगीकार करता है। वेश्या का घर निन्द्य स्थान है। वहाँ उच्च ब्राह्मण की उपस्थिति प्रमाणित करती है कि वह अपनी वासना वेग से अत्यन्त पराधीन वन चुका है। इसी प्रकार हीन स्थान को अंगीकार करने वाला संसारी जीव परतन्त्र सिद्ध होता है।"

हीनस्थान क्या है, इस पर प्रकाश डालते हैं कि "ससारी जीव का शरीर ही हीनस्थान है, कारण यह शरीर दु ख का कारण है। जैसे कारागार दुःखप्रद होने के कारण हीनस्थान माना जाता है, उसी प्रकार यह शरीर भी हीनस्थान है।"

आत्मा यदि स्वतन्त्र होता, तो वह मूत्रपुरीषभण्डाररूप इस महान् अपावन घृणित देह को अपना आवासस्थल कभी न बनाता। विवश हो जीव को इस शरीर मे रहना पडता है। मोहवश वह फिर इसमे आसक्त हो जाता है। प्रबुद्ध पुरुप शरीर में ममत्व भाव का त्याग करते हैं। जीव को विवश करनेवाला कर्म है।

यह विश्ववैचित्र्य कर्मो के कारण दृष्टिगोचर होता है। कोई धनवान् है, कोई गरीव है, कोई वीमार है, तो कोई नीरोग है, आदि विविधताओं का कारण कर्म है।

> "अहं प्रत्ययवेद्यत्वाज्जीवस्यास्तित्वमन्वयात् ।
> एको दरिद्रः एको हि श्रीमानिति च कर्मणः ॥" पंचाध्यायी—२,५०

'मैं हूँ' इस प्रकार अहं प्रत्यय से जीव का अस्तित्व ज्ञात होता है। यह ज्ञान अन्वय रूप से पाया जाता है। एक दरिद्र है, एक श्रीमान्, यह भेद कर्म के कारण है।

यह आत्मा तात्त्विक दृष्टि से विचार करे, तो उससे प्रतीत होगा कि यह जगत् एक रग-मच के समान

---

१. येन प्रकारेण रूपादिरहितो रूपीणि द्रव्याणि तद्गुणाश्च पश्यति जानाति च, तेनैव प्रकारेण रूपादिरहितो रूपिभि कर्मपुद्गलै किल वध्यते, अन्यथा कथममूर्तो मूर्तं पश्यति जानाति चेत्यत्रापि पर्यनुयोगस्यानिवार्यत्वात् (अमृतचन्द्राचार्य की टीका)

२ "अनादिनित्यसम्वन्धात् सह कर्मभिरात्मन ।
अमूर्तस्यापि सत्यैक्ये मूर्तत्वमवसीयते ॥" —तत्त्वार्थसार, ५,१७

है। यहाँ जीव विविध वेष धारण कर अपना अभिनय दिखाते है। अपना खेल दिखाने के अनन्तर वे वेष बदलते है। कर्मविपाक के अनुसार उनका वेष और अभिनय हुआ करता है।[1]

विश्ववैचित्य कर्मकृत है

कोई लोग कर्मकृत विश्ववैचित्र्य को स्वीकार करते हुए भी कहते है—ईश्वर ही कर्मो के अनुसार इस अज्ञ जीव को विविध योनियों में पहुँचाकर दु ख और सुख देता है। महाभारत मे लिखा है—

"अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्ग वा श्वभ्रमेव वा ॥" वनपर्व ३०,२८

कोई ईश्वर को सुख-दु ख का केवल निमित्त कारण मानते है। इस विषय में स्वामी समन्तभद्र अपनी 'आप्तमीमासा' मे कहते है—

"कामादिप्रभवश्चित्रः कर्मबन्धानुरूपतः।
तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्यशुद्धितः ॥९९॥"

'काम, क्रोध, मोहादिका उत्पत्तिरूप जो भावससार है, वह अपने-अपने कर्म के अनुसार होता है। वह कर्म अपने कारण रागादिको से उत्पन्न होता है। वे जीव शुद्धता, अशुद्धता से समन्वित होते है।'

इस पर तार्किक पद्धति से विचार करते हुए आचार्य विद्यानन्दि 'अष्टसहस्री' मे लिखते है कि अज्ञान, मोह, अहकाररूप यह भाव-ससार है।[2] यह एक स्वभाववाले ईश्वर की कृति नहीं है, कारण उसके कार्य मे सुख-दु खदि मे विचित्रता दृष्टिगोचर होती है। जिस वस्तु के कार्य मे विचित्रता पायी जाती है, उसका कारण एक स्वभाव विशिष्ट नहीं होता है। जैसे अनेक धान्य अकुरादिरूप विचित्र कार्य अनेक शालिबीजादिक से उत्पन्न होते है, उसी प्रकार सुख-दु खविशिष्ट विचित्र कार्यरूप जगत् एक स्वभाव वाले ईश्वरकृत नहीं हो सकता।[3]

जब कारण एक प्रकार का है, तब उससे निष्पन्न कार्य मे विविधता नही पायी जाती। एक धान्य-बीज से एक ही अकुर की उद्‌भूति होती है। इस प्राकृतिक नियम के अनुसार एक स्वभाव वाला ईश्वर क्षेत्र, काल तथा स्वभाव की अपेक्षा भिन्न शरीर, इन्द्रिय तथा जगत् आदि का कर्ता नही सिद्ध होता है।[4]

अनादि कर्मबन्ध का अन्त क्यो है?

प्रश्न—जब कर्मबन्ध और रागादिभाव का चक्र अनादि काल से चलता है, तब उसका भी अन्त नही होना चाहिए?

समाधान—यह शका ठीक नहीं है। कारण अनादि की अनन्तता के साथ कोई व्याप्ति नही है। अनादि होते हुए भी सान्तता की उपलब्धि होती है। बीज वृक्ष की सन्तति को परम्परा की अपेक्षा अनादि कहते

---

१ All the world's a stage,
And all the men and women merely players,
They have their exits and their entrances,
And one man in his time plays many parts,
Shakespeare —AS YOU LIKE IT Act II, Sc VII

२ अष्टस, पृ २६८-२७३।

३ "ससारोऽय नैकस्वभावेश्वरकृत, तत्कार्यसुख-दु खादिवैचित्र्यात्। न हि कारणस्यैकरूपत्वके कार्यनानात्व युक्त शालिवीजवत्",—अष्टशती

४ इस सम्बन्ध मे विशद चर्चा तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, प्रमेयकमलमार्तण्ड, आप्तपरीक्षा आदि जैन ग्रन्थों मे की गयी है।

है। बीज को यदि दग्ध कर दिया जाए, तो फिर वृक्ष-परम्परा का अभाव हो जाएगा। कर्म बीज के नष्ट हो जाने पर भवाकुर की उत्पत्ति नही हो सकती। तत्त्वार्थसार मे कहा है—

"दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे न प्ररोहति भवाङ्कुरः ॥—तत्त्वार्थसार, ८,७

अकलक स्वामी का कथन है कि आत्मा मे आने वाला कर्ममल प्रतिपक्षरूप है, अत वह आत्मगुणो के विकास होने पर क्षयशील है।[1]

जैसे प्रकाश के आते ही सदा अन्धकाराक्रान्त प्रदेश से अन्धकार दूर होता है अथवा सदा शीत भूमि मे गरमी के प्रकर्ष होने पर शीत का अपकर्ष होता है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शनादि के प्रकर्ष से मिथ्यात्वादिक विकारो का अपकर्ष होता है। रागादि विकारो के अपकर्ष मे हीनाधिकता देखकर तार्किक समन्तभद्र कहते है कि ऐसी भी आत्मा हो सकती है जिसमे से रागादि का पूर्णतया क्षय हो चुका हो।[2] उसे ही परमात्मा कहते है।[3]

अनादि-सादि बन्धके विषय मे अनेकान्त

प्रश्न—शकाकार कहता है—आपका यह कथन कि 'कामादिप्रभवश्चित्र कर्मबन्धानुरूपत' विचित्र कामादिक की उत्पत्ति कर्मबन्ध के अनुसार होती है', निर्दोष नही है। हम पूछते है, जीव और कर्मो का सम्बन्ध कब से है?

समाधान—द्रव्यदृष्टि अथवा सन्तति की अपेक्षा यह बन्ध अनादि है। पर्याय की अपेक्षा यह सादि कहा जाता है। पचाध्यायीकार का कथन है—

"यथाऽनादिः स जीवात्मा यथाऽनादिश्च पुद्गल।
द्वयोर्बन्धोऽप्यनादिः स्यात् सम्बन्धो जीवकर्मणोः ॥" —पञ्चाध्यायी, २,३५

जिस प्रकार जीवात्मा अनादि है, उसी प्रकार पुद्गल भी अनादि है। जीव और कर्मो का सम्बन्ध रूप बन्ध भी अनादि है।

"द्वयोरनादिसम्बन्धः कनकोपलसन्निभः।
अन्यथा दोष एव स्यादितरेतरसंश्रयः ॥" —पञ्चाध्यायी, २,३६

जीव और कर्मो का अनादि सम्बन्ध है, जैसे सुवर्ण-पाषाण मे सुवर्ण द्रव्य किट्ट, कालिमादि विशिष्ट पाया जाता है, उसी प्रकार ससारी जीव भी अशुद्ध रूप मे उपलब्ध होता है। ऐसा न मानने पर अन्योन्याश्रय दोष आता है।

"तद्यथा यदि निष्कर्मा जीवः प्रागेव तादृशः।
बन्धाभावेऽथ शुद्धेऽपि बन्धश्चेन्निर्वृतिः कथम् ॥" —पञ्चाध्यायी, २,३७

---

१ "प्रतिपक्ष एवात्मनामागन्तुको मल परिक्षयी, स्वनिर्ह्रासनिमित्तविवर्धनवशात्।"—अष्टशती।

२ "दोषावरणयोर्हानिर्नि शेषाऽस्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षय ॥"—आप्तमीमासा, कारिका ४

३ अमितगति आचार्य कहते है—
"यो दर्शन-ज्ञान-सुखस्वभाव समस्त-ससारविकारबाह्य ।
समाधिगम्य परमात्मसज्ञ स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥"

यदि जीव पूर्व मे कर्म रहित माना जाए, तो उसके बन्ध का अभाव होगा। शुद्धात्मा के भी बन्ध मानने पर मुक्ति कैसे होगी?

यहाँ आचार्य का भाव यह है कि पूर्व अशुद्धता के बिना बन्ध नही होगा। पूर्व मे शुद्ध जीव के भी कर्मबन्ध मान लेने पर निर्वाण का लाभ असम्भव हो जाएगा। जब शुद्ध जीव कर्म बाँधने लगेगा, तब ससार का चक्र पुन-पुन चलने से मुक्ति का अभाव हो जाएगा।

यदि पुद्गल को अनादि से शुद्ध माना जाए, तो क्या बाधा है? पचाध्यायीकार कहते है–

"अथ चेत्पुद्गलः शुद्धः सर्वतः प्रागनादित.।
हेतोर्विना यथा ज्ञानं तथा क्रोधादिरात्मनः ॥
एवं बन्धस्य नित्यत्वं हेतोः सद्भावतोऽथवा।
द्रव्याभावो गुणाभावे क्रोधादीनामदर्शनात्! ॥"–पञ्चाध्यायी, २, ३८-३९

–यदि पुद्गल को अनादि से शुद्ध मान लिया जाए तो जैसे बिना कारण के स्वभावत जीव मे ज्ञान पाया जाता है, उसी प्रकार क्रोधादि भी जीव के स्वभाव या गुण हो जाएँगे। क्रोधादि के सदा सद्भाववश बन्ध मे नित्यता आ जाएगी। अथवा यदि क्रोधादि गुणो का अभाव माना जाएगा, तो स्वभाववान् या गुणी जीव का भी लोप हो जाएगा। क्रोधादि का अदर्शन पाया जाता है।

यहाँ अभिप्राय यह है कि यदि कामादिक कर्मबन्ध से उत्पन्न नहीं हुए, कारण पुद्गल सदा शुद्ध रहता है, तब ऐसी स्थिति मे क्रोधादिक जीव के स्वभाव हो जाएँगे। सयमी पुरुषो मे क्रोधादि विकारो का अदर्शन पाया जाता है। क्रोधरूप स्वभाव का अभाव होने पर स्वभाववान् आत्मा का भी लोप हो जाएगा। अत. पुद्गल को अनादि शुद्ध मानकर क्रोधादि को जीव का स्वभाव मानना अनुचित है। क्रोधादि भावो को कर्मकृत मानना ही श्रेयस्कर है। ग्रन्थकार कहते है–

"पूर्वकर्मोदयाद्भावो भावात्प्रत्यग्रसंचयः।
तस्य पाकात्पुनर्भावो भावाद् बन्धः पुनस्ततः ॥
एवं सन्तानतोऽनादिः सम्बन्धो जीवकर्मणोः।
संसारः स च दुर्मोच्यो विना सम्यग्दृगादिना ॥"–पञ्चाध्यायी, २,४२-४३

–पूर्वकर्मोदय से रागादि भाव होते है। उन भावों से आगामी कर्म का संचय होता है। उस कर्म-विपाक से पुन रागादिभाव होते है। उन भावो से पुन. बन्ध होता है। इस प्रकार जीव तथा कर्म का सम्बन्ध सन्तान की अपेक्षा अनादि है। सम्यग्दर्शनादि के बिना यह ससार दुर्मोच्य है।

निष्कर्ष–आत्मा और कर्म का सादि सम्बन्ध स्वीकार करने पर दोषो का उद्भावन ऊपर किया जा चुका है। यह भी कहा जा चुका है कि वर्तमान आत्मा परतन्त्र है। वह कर्मो के अधीन है। यह कर्मबन्धन सादि स्वीकार करने मे भयकर आपत्तियाँ आती है। यदि आत्मा को शुद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ, आनन्दमय तथा अनन्त शक्तिमान माना जाए, तो यह प्रश्न होता है कि वह ससार के बन्धन मे कैसे फँस गया? पूर्व मे शुद्ध का बन्धन मे आना ऐसा ही असगत और असम्भव है, जैसे बीज के दाह किये जाने पर उससे वृक्ष का प्रादुर्भाव मानना असगत और असम्भाव्य है। जीव की बन्धन अवस्था स्वयंसिद्ध अनुभव गोचर है। उसके लिए तर्क की जरूरत नहीं है।

ऐसी स्थिति मे एक ही मार्ग निरापद बचता है कि कर्म और आत्मा का अनादि सम्बन्ध माना जाए। इसके सिवाय कोई और मध्यम मार्ग नही है। आत्मशक्ति के विकसित होने पर कर्मो का बन्धन शिथिल होने लगता है और शक्ति के पूर्ण प्रबुद्ध होने पर कर्मो का नाश हो जाता है। फिर वह शुद्ध जीव कर्मबन्धन मे नहीं फँसता है। सर्वज्ञ तथा अनन्तशक्ति युक्त शुद्ध जीव कर्मो के जाल मे फँमने का कदापि उद्योग नहीं करेगा।

कर्मो के आस्रव का कारण योग है

इस जीव के कर्मबन्धन का कारण रागादिभावो को कहा है कर्मो के आगमन मे कारण–आत्म-प्रदेशो का परिस्पन्दन होना। मनोवर्गणा, वचनवर्गणा अथवा कायवर्गणा के अवलम्बन से आत्मप्रदेशो मे सकम्पपना पाया जाता है। मन, वचन, काय का क्रियारूप योग के द्वारा नवीन कर्मो का आस्रव–आगमन तथा जीव के साथ सयोग होता है। योगो के त्रयात्मक भेदो पर प्रकाश डालते हुए आचार्य वीरसेन धवलाटीका (१,२७६) मे लिखते है–"क पुन मनोयोग इति चेद्भावमनस समुत्पत्त्यर्थ प्रयत्नो मनोयोग। तथा वचस समुत्पत्त्यर्थ प्रयत्नो वाग्योग। कायक्रियासमुत्पत्त्यर्थ प्रयत्न काययोग।" –'मनोयोग का क्या स्वरूप है? भावमन की उत्पत्ति के लिए जो प्रयत्न होता है, उसे मनोयोग कहते है। इसी प्रकार वचन की उत्पत्ति के लिए जो प्रयत्न होता है, उसे वचनयोग कहते है और काय की क्रिया की उत्पत्ति के लिए जो प्रयत्न होता है, उसे काययोग कहते है।' यह योग ध्यानरूप योग से भिन्न है।

पुण्य-पाप का विश्लेषण

प्रश्न–'सर्वार्थसिद्धि' मे यह शका की गयी है कि जिस योग के द्वारा पुण्य कर्म का आस्रव होता है, उसी योग के द्वारा क्या पाप का आस्रव होता है?

समाधान–'शुभ पुण्यस्याशुभ पापस्य' (त सू ६,३)–शुभयोग के द्वारा पुण्य का आस्रव होता है तथा अशुभयोग के द्वारा पाप का आस्रव होता है। शुभयोग-अशुभयोग की परिभाषा 'सर्वार्थसिद्धि' मे इस प्रकार की गयी है–"शुभपरिणामनिर्वृत्तो योग शुभ अशुभपरिणामनिर्वृत्तश्चाशुभ"–शुभ परिणामो से रचित योग शुभ है तथा अशुभ परिणामो के द्वारा रचित योग अशुभ है।

जिस शुभ परिणाम के द्वारा पुण्य का आस्रव होता है, उसके विषय मे कुन्दकुन्द स्वामी ने *'प्रवचनसार'* मे इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है–

"देवद-जदि-गुरु-पूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।
उपवासादिसु रत्तो सुहोवओगप्पगो अप्पा॥"–प्रवचनसार १,६९

जिनेन्द्र भगवान् रूप देवता, इन्द्रियजय के द्वारा शुद्धात्म स्वरूप के विषय मे तत्पर यति (इन्द्रियजयेन शुद्धात्मस्वरूप प्रयत्नपरो यति), स्वय भेदाभेदरूप रत्नत्रय के आराधक तथा उस रत्नत्रय के आकाक्षी भव्यो को जिनदीक्षा देनेवाले गुरु (स्वय भेदाभेद-रत्नत्रयाराधकस्तदर्थिना भव्याना जिनदीक्षादायको गुरु) तथा उनकी प्रतिमा की द्रव्य तथा भावरूप पूजा (द्रव्य-भावरूपा पूजा), चार प्रकार का दान देना, शीलव्रतादि का परिपालन तथा उपवासादि शुभ अनुष्ठानो मे जो व्यक्ति अनुरक्त होता है तथा अशुभ अनुष्ठानो से विरत रहता है, वह जीव शुभ उपयोगवाला होता है।

जीवघात, चोरी आदि अशुभ कार्य, सत्य, पीडाकारी हिसारूप अशुभ वचन तथा ईर्ष्या, जीवबन्धादि रूप अशुभ मन से अशुभ उपयोग होता है। 'प्रवचनसार' मे लिखा है–

"धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्ध संपयोगजुदो।
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं॥" –प्रवचनसार १,११

धर्म से परिणत आत्मा जब शुद्धोपयोग रूप परिणति को धारण करता है, तब वह निर्वाण सुख को प्राप्त करता है। धर्म से परिणत आत्मा जब शुभोपयोग को प्राप्त होता है, तब वह स्वर्ग सुख को प्राप्त करता है।

इस विषय को स्पष्ट करते हुए जयसेनाचार्य तात्पर्यवृत्ति टीका मे कहते है–"तत्र यच्छुद्ध सम्प्रयोगशब्द वाच्य शुद्धोपयोगस्वरूप वीतरागचारित्र तेन निर्वाण लभते"–गाथा मे आगत 'शुद्ध सम्प्रयोग' शब्द के द्वारा वाच्य जो शुद्धोपयोग स्वरूप वीतराग चारित्र है, उससे निर्वाण प्राप्त होता है। वीतराग चारित्र ध्यानस्थ मुनि

के ही होता है। आत्मसमाधि में स्थित परमध्यानी मुनिराज के ही शुद्धोपयोग होता है। सरागसयमी अवस्था मे मुनिराज के शुद्धोपयोग नही होता है। अत गृहस्थावस्था मे शुद्धोपयोग की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

जब सरागी सकलसयमी महाव्रती भावलिगी मुनीश्वर के शुद्धोपयोग का अभाव है, तव असयमी अथवा देशसयमी श्रावक के शुद्धोपयोग का अभाव स्वयमेव सिद्ध होता है। "निर्विकल्प समाधिरूप-शुद्धोपयोगशक्त्यभावे सति यदा शुभोपयोगरूप-सरागचारित्रेण परिणमति, तदाऽपूर्वमनाकुलत्वलक्षण-पारमार्थिकसुखविपरीतमाकुलत्वोत्पादक स्वर्गसुख लभते, पश्चात् परमसमाधि-सामग्रीसद्भावे मोक्ष च लभते"—निर्विकल्प समाधि (अभेदरत्नत्रयरूपपरिणति) रूप शुद्धोपयोग की सामर्थ्य के अभाव होने पर जब वह जीव शुभोपयोग रूप (भेदरत्नत्रय रूप परिणति) सराग चारित्र को धारण करता है, उस समय वह अपूर्व, अनाकुलतास्वरूप परमार्थ सुख के विपरीत आकुलता का उत्पादक स्वर्ग सुख को प्राप्त करता है। इसके अनन्तर वह परम समाधि (शुद्धोपयोग) की सामग्री का लाभ होने पर मोक्ष को भी प्राप्त करता है। इससे अमृतचन्द्र स्वामी कहते हैं कि शुद्धोपयोग परिणतिके द्वारा निर्वाण का सुख प्राप्त होता है, अत "शुद्धोपयोग उपादेय"—शुद्धोपयोग उपादेय है। सविकल्प अवस्थारूप भेद रत्नत्रयस्वरूप शुभोपयोग से आकुलता उत्पादक स्वर्ग का सुख प्राप्त होता है, निर्वाण का सुख नहीं मिलता है, इससे 'शुभोपयोगो हेय' मुनिराज के लिए कथंचित् शुभोपयोग हेय है। (प्रवचनसार, ११, पृ. १३)

हेय तथा उपादेय उपयोग—मुनि अवस्था में शुद्धोपयोग और शुभोपयोग दोनो होते है, अत उस अपेक्षा से उपादेय तथा हेय का कथन किया गया है। गृहस्थावस्था मे शुद्धोपयोग की पात्रता ही नहीं है, अत उसकी अपेक्षा एकमात्र शुभोपयोग आश्रय योग्य होगा। शुभोपयोग कथचित् हेय है, तो कथंचित् उपादेय भी है। निर्विकल्प समाधि निमग्न महामुनि की अपेक्षा शुभोपयोग हेय है, किन्तु उस उच्च ध्यान की प्राप्ति मे असमर्थ मुनिराज के लिए शुभोपयोग उपादेय है। ऐसी स्थिति मे गृहस्थ के लिए शुभोपयोग को हेय नहीं कहा जा सकता है। परम हेयरूप गृहस्थ की दशा है। उस स्थिति को ध्यान मे रखते हुए उस आर्त, रौद्रध्यान के जाल मे जकडे हुए जीव का उद्धार शुभोपयोग के द्वारा ही होगा। यदि शुद्धोपयोग को उपादेय मानते हुए परिग्रह तथा पापाचार के त्याग से विमुख गृहस्थ ने शुभोपयोग को हेय सोचकर उसे छोड दिया, तो अशुभोपयोग के द्वारा उस गृहस्थ की दुर्गति होगी। अमृतचन्द्रसूरि कहते है, "अत्यन्त हेय एवायमशुभोपयोग"—अशुभोपयोग अत्यन्त हेय है। शुद्धोपयोग उपादेय है। उसकी अपेक्षा शुभोपयोग हेय है, किन्तु अशुभोपयोग अत्यन्त हेय है। ऐसी स्थिति मे अशुभोपयोग की अपेक्षा शुभोपयोग उपादेय है। बुद्धिमान् व्यक्ति अत्यन्त हेय अशुभ का त्याग कर शुभ का आश्रय लेता है, क्योंकि वह *Lesser art* अपेक्षाकृत अल्प दोषरूप है।

उदाहरणार्थ—सत्पुरुष को ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना चाहिए। वह श्रेष्ठ व्रत है, किन्तु जिसकी आत्मा पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन मे असमर्थ है, उसे स्वस्त्रीसन्तोषव्रती बनने का कथन किया जाता है। यदि वह पर-स्त्री सेवन मे प्रवृत्ति करता है, तो सत्पुरुष उसे महापापी कहते है। यद्यपि दोनो ही ब्रह्मचर्य व्रत पालन नहीं करते हैं और ब्रह्मचर्य की अपेक्षा स्त्रीमात्र का सेवन हेय है, किन्तु असमर्थ व्यक्ति की अपेक्षा स्वदारसन्तोषव्रती को शीलवान् कहकर उसकी स्तुति की जाती है तथा उसको परस्त्री सेवन का त्यागी होने से आदर का पात्र मानते हैं। इस उदाहरण के प्रकाश मे शुद्धोपयोग ब्रह्मचर्य के समान परम उपादेय है। शुभोपयोग स्वदारसन्तोषव्रत के समान कथंचित् उपादेय है तथा अशुभोपयोग परस्त्री सेवन रूप महापाप के समान सर्वथा हेय है—अत्यन्त हेय है। स्वदारसतोषी तथा परस्त्रीसेवी इन दोनो मे स्त्रीसेवनरूपताका सद्भाव होते हुए भी स्वस्त्रीसतोषी गृहस्थ की अवस्था उपादेय है। किन्तु परस्त्रीसेवन का कार्य अत्यन्त निषिद्ध है। इसी प्रकार अशुद्धोपयोगपना शुभ तथा अशुभ उपयोग मे है, किन्तु गृहस्थ के लिए शुभ उपयोग उपादेय है तथा अशुभ उपयोग सर्वथा हेय है। दोनो को समान मानकर अशुभ की प्रवृत्ति से विमुख न होनेवाला अपार कष्ट पाता है। शीलव्रती सीता स्वर्ग गयीं। कुशील परिणामवाला रावण नरक गया। दोनों को एक समान मानने वाला

चतुर व्यक्ति नही कहा जाएगा। अशुभोपयोग के विषय मे 'प्रवचनसार' मे इस प्रकार कथन किया गया है–

"असुहोदयेण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो।
दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिंधुदो भमदि अच्चंतं ॥" –प्रवचनसार, १,१२

अशुभोपयोग परिणति के द्वारा आत्मा दीन-दु खी मनुष्य, तिर्यंच तथा नारकी होकर हजारो दु खो से दु खी होता हुआ ससार मे निरन्तर भ्रमण करता है।

अशुभोपयोग के कारण सचित पापोदयवश जीव इष्ट-वियोग, अनिष्ट-सयोग, पीडाचिन्तवन आदि मलिन सामग्री को प्राप्त कर सक्लेशभाव-द्वारा पुन पाप का बन्ध करता है।

पुण्य-पाप मे समानता तथा भिन्नता–ससर के कारणपने की अपेक्षा यद्यपि शुभोपयोग तथा अशुभोपयोग और उनके द्वारा प्राप्त पुण्य तथा पाप समान है, किन्तु उनमे दूसरी अपेक्षा से महान् भिन्नता है। पूर्ण ब्रह्मचर्य की अपेक्षा विचार करने पर स्वस्त्रीसन्तोष तथा परस्त्रीसेवन दोनो मे स्त्री के सम्पर्क का त्याग नही है, किन्तु जैसे उन दोनो के फल को देखकर उनको भिन्न माना जाता है, उसी प्रकार अशुद्धोपयोग की अपेक्षा शुभ और अशुभ उपयोग यद्यपि समान है, किन्तु उनमे महान् भिन्नता भी है। अध्यात्म शास्त्र मे निश्चय नय की मुख्यता से शुद्धोपयोग को आदर्श मानकर अन्य उपयोगो को हेय कहा है, किन्तु निर्विकल्प समाधि मे असमर्थ व्यक्ति की दृष्टि से शुभोपयोग और अशुभ उपयोग मे भिन्नता माननी होगी। अमृतचन्द्रसूरि ने *'तत्त्वार्थसार'* मे कहा है–

"हेतु-कार्यविशेषाभ्यां विशेषः पुण्य-पापयोः।
हेतु शुभाशुभौ भावौ कार्ये चैव सुखासुखे ॥"–तत्त्वार्थसार आस्रवतत्त्व, श्लोक १०३

साधन और फल की भिन्नता से पुण्य तथा पाप मे भिन्नता है। पुण्य और पाप के कारण भिन्न-भिन्न है। पुण्य का कारण शुभ परिणाम है, पाप का कारण अशुभ परिणाम है। पुण्य का फल इन्द्रियजनित सुख की उपलब्धि है तथा पाप का फल दु ख की प्राप्ति है।

तात्त्विक बात–कुन्दकुन्द स्वामी ने 'बारसाणुवेक्खा' मे यह महत्त्वपूर्ण कथन किया है–

"सुहजोगेसु पवित्ती संवरणं कुणदि असुहजोगस्स।
सुहजोगस्स णिरोहो सुद्धुवजोगेण सभवदि ॥" –बारसाणुवेक्खा, गा ६३

शुभ योगो मे प्रवृत्ति होने पर अशुभ योग का सवर होता है। शुभ योग का सवर शुद्धोपयोगरूप परमसमाधि-द्वारा सम्भव है। सामान्यतया अध्यात्मशास्त्र का ऊपरी पल्लवग्राही परिचय प्राप्त व्यक्ति पूजा, दान, स्वाध्याय आदि सत्कार्यो को शुभोपयोगरूप कहकर उसके विरुद्ध अमर्यादित आक्षेपपूर्ण शब्द कहता है, किन्तु वह स्वय को विकथा, पचपाप, सप्तव्यसन आदि अशुभोपयोग के महान् दूतो के हाथो मे सौंपता है। उसे यह ज्ञात होना चाहिए कि शुभोपयोग शुद्धोपयोग के द्वारा रुकेगा। शुद्धोपयोगरूप अभेद रत्नत्रय की आराधना महान् मुनीन्द्रो को भी कठिन है, परिग्रही गृहस्थ को वह उसी प्रकार असम्भव है, जिस प्रकार देव पर्यायवाले जीव को मोक्ष की प्राप्ति असम्भव है। इसी कारण भव्य जीवो के कल्याणार्थ आचार्यो ने शुभोपयोग-द्वारा पुण्यसचय को प्रशस्त मार्ग कहा है। हिन्दी के कुछ लेखको और कवियो ने पुण्यबन्ध और शुभोपयोग के विरुद्ध इतना अतिरेकपूर्ण प्रतिपादन किया है कि वह एकान्तवाद की सीमा का स्पर्श कर जाता है।

पुण्य-संचय की प्रेरणा–अध्यात्मशास्त्र के मार्मिक आचार्य पद्मनन्दि भव्य जीव को पुण्यसचय के लिए प्रेरणा करते है। अपनी 'पचविंशतिका' के दानपचाशत् अध्याय मे वे कहते है–

"दूरादभीष्टमभिगच्छति पुण्ययोगात्
पुण्याद्विनाकरतलस्थमपि प्रयाति।

अन्यत्परं प्रभवतीह निमित्तमात्रं
पात्रं बुधा भवत निर्मलपुण्यराशेः ॥" —पद्मनन्दिपचविंशतिका, श्लोक १७

पुण्य के होने पर दूर से भी अभीष्ट वस्तु का लाभ होता है। पुण्य के बिना अर्थात् पापोदय होने पर हाथ मे रखी हुई वस्तु भी उपयोग में नहीं आ पाती। पुण्य को छोडकर अन्य सामग्री निमित्तमात्र है। अत विवेकियो! निर्मल पुण्य की राशि के पात्र बनो, अर्थात् पवित्र पुण्य का सग्रह करो।

वे पुनः कहते हैं—

"ग्रामान्तरं व्रजति यः स्वगृहाद् गृहीत्वा
पाथेयमुन्नततरं स सुखी मनुष्यः।
जन्मान्तरं प्रविशतोऽस्य तथा व्रतेन
दानेन चार्जितशुभं सुखहेतुरेकम् ॥" —वही, श्लोक २६

जो व्यक्ति अपने घर से देशान्तर को जाते समय बढिया पाथेय-(कलेवा) साथ में रखता है, वह सुखी रहता है। इसी प्रकार इस भव को छोडकर अन्य भव में यदि सुख चाहिए तो व्रत-पालन और पात्रदान करो। इससे प्राप्त किया गया शुभ अर्थात् पुण्य ही सुख का हेतु होगा।

उनका यह कथन विशेष ध्यान देने योग्य है—

"नार्थः पदात्पदमपि व्रजति त्वदीयो
व्यावर्तते पितृवनादपि बन्धुवर्गः।
दीर्घे पथि प्रवसतो भवतः सखैकं
पुण्यं भविष्यति ततः क्रियतां तदेव ॥" —वही, श्लोक ४३

अरे जीव! तेरा धन एक डग भी तेरे साथ नहीं जाता है। बन्धुवर्ग श्मशान तक जाकर लौट जाते हैं। एक तेरा मित्र पुण्य ही तेरे साथ दूर तक जाएगा। इससे उस पुण्य को प्राप्त करो। आचार्य के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं। "पुण्यं भवतः सखा भविष्यति"—पुण्य ही तेरा मित्र रहेगा, क्योंकि वह तेरा साथ देगा।

वे महान् आचार्य जिनेन्द्र की स्तुति करते समय अपने को "पुण्य-निलयोऽस्मि" —मैं पुण्य का घर हूँ ऐसा कहते हैं।

"धन्योऽस्मि पुण्यनिलयोऽस्मि निराकुलोऽस्मि
शान्तोऽस्मि नष्टविपदस्मि विदस्मि देव।
श्रीमज्जिनेन्द्र भवतोऽङ्घ्रियुगं शरण्यं
प्राप्तोऽस्मि चेदहमतीन्द्रिय-सौख्यकारि ॥६॥"—क्रियाकाण्डचूलिका।

हे जिनेन्द्र! मैं अतीन्द्रिय आनन्द के प्रदाता आपके चरणो की शरण को प्राप्त हुआ हूँ, इससे मैं धन्य हूँ। मैं पुण्य का भवन हूँ। मैं निराकुल हूँ। मैं शान्त हूँ। मैं संकटमुक्त हो गया हूँ तथा मैं ज्ञानवान् बन गया हूँ।

'कल्याणमन्दिर स्तोत्र' में जिनेन्द्र भगवान् को करुणा तथा पुण्य की निवास भूमि कहा है—

"त्वं नाथ! दुःखि-जन-वत्सल हे शरण्य!
कारुण्य-पुण्यवसते वशिनां वरेण्य!।
भक्त्यानते मयि महेश दयां विधाय
दुःखाङ्कुरोद्दलन-तत्परतां विधेहि ॥३९॥"

हे स्वामिन्! आप दुखी जीवों के प्रति प्रेमभाव धारण करते हैं, अत. आप दुःखीजनवत्सल हैं। हे शरण्यरूप भगवन्! हे करुणा और पुण्य की निवासभूमि, जितेन्द्रियों के शिरोमणि महेश, भक्तिपूर्वक मुझ

विनत पर आप दयाभाव धारण करके तत्काल मेरे दु खो के अकुरो को उच्छेद करने की कृपा कीजिए।

भगवज्जिनसेन स्वामी ने *'सहस्रनाम पाठ'* मे जिनेन्द्र भगवान् को पुण्यगी अर्थात् पुण्यवाणी युक्त, पुण्यवाक् पुण्यनायक, पुण्यधी, पुण्यकृत्, पुण्यशासन आदि नामयुक्त बताया है–

"गुणादरी गुणोच्छेदो निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः।
शरण्यः पुण्यवाक् पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ॥
अगण्यः पुण्यधीर्गण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः।
धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्य-निरोधकः" ॥ –महाशोकध्वजादिशतकम्, ४-५

भगवान् को पुण्यराशि भी कहा है–

"शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्यराशिरनामयः।
धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायक." ॥ –दिग्वासादिशतम्, १०

अनेकान्त शैली का मर्म न समझकर कोई-कोई निश्चयाभासी व्रतशून्य गृहस्थ पुण्य को पाप के समान घृणा योग्य मानते हुए पुण्य को छोडकर पाप की ओर प्रवृत्त होते हुए ऐसे लगते है, मानो वे गगा को छोडकर वैतरिणी की ओर प्रवृत्ति करते है अथवा अमृतघट को फोडकर विषकुम्भ के रस को प्रेम तथा श्रद्धा से सेवन करते है।

पुण्य के फल की कथा विकथा नहीं है। वह तो धर्मकथा का अग है, उसे सवेदनी कथा कहा है। "काणि पुण्णफलाणि? तित्थयर-गणहर-रिसिचक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेव-सुर-विज्जाहर-रिद्धाओ" (ध टी १,१०५)

पुण्य के फल क्या है? तीर्थकर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, सुर, विद्याधर की ऋद्धियाँ पुण्य के फल है। इन पुण्यफलो की प्राप्ति शुभोपयोग से होती है।

जिनेन्द्रदेव की आराधना-द्वारा पुण्य की प्राप्ति होती है। भरत चक्रवर्ती ने समवसरण मे जाकर आदिनाथ भगवान् का स्तवन करते हुए कहा था–

"भगवंस्त्वद् गुणस्तोत्राद् यन्मया पुण्यमर्जितम्।
तेनास्तु त्वत्पदाम्भोजे परा भक्तिः सदापि मे ॥" –आ जिनसेन, आदिपुराण, प ३३,१९६

हे भगवान्! आपके गुणस्तवन-द्वारा जो मैंने पुण्य प्राप्त किया है, उसके फलस्वरूप आपके चरण कमलो मे मेरी सदा श्रेष्ठ भक्ति होवे। भगवज्जिनसेन की यह वाणी इस विषय के अज्ञानान्धकार को दूर कर देती है कि विवेकी गृहस्थ को पुण्यरूपी वृक्ष का रक्षण करना चाहिए या उसका उच्छेद करके पाप रूप विष का वृक्ष बोना चाहिए। आचार्य जिनसेन कहते है–

"पुण्याच्चक्रधर-श्रियं विजयिनीमैन्द्रीं च दिव्यश्रियं
पुण्यात्तीर्थकरश्रियं च परमां नैःश्रेयसीं चाश्नुते।
पुण्यादित्यसुभृच्छ्रियां चतसृणामाविर्भवेद् भाजन
तस्मात्पुण्यमुपार्जयन्तु सुधियः पुण्याज्जिनेन्द्रागमात् ॥"–आदिपुराण, प ३०, श्लोक १२९

पुण्य से सर्वविजयिनी चक्रवर्ती की लक्ष्मी प्राप्त होती है। पुण्य से इन्द्र की दिव्यश्री प्राप्त होती है। पुण्य से ही तीर्थकर की लक्ष्मी प्राप्त होती है तथा परम कल्याणरूप मोक्षलक्ष्मी भी पुण्य से प्राप्त होती है। इस प्रकार पुण्य से ही जीव चार प्रकार की लक्ष्मी को प्राप्त करता है। इसलिए हे सुधीजनो! तुम लोग भी जिनेन्द्र भगवान् के पवित्र आगमन के अनुसार पुण्य का उपार्जन करो।

प्रश्न–आगम मे पुण्य प्राप्ति का क्या उपाय कहा है? यह प्रश्न उत्पन्न होता है।

समाधान–महाकवि जिनसेन इस विषय का समाधान इस महत्त्वपूर्ण पद्य-द्वारा करते है–

"पुण्यं जिनेन्द्र-परिपूजनसाध्यमाद्यं

पुण्यं सुपात्र-गत-दानसमुत्थमन्यत्।
पुण्यं व्रतानुचरणादुपवासयोगात्
पुण्यार्थिनामिति चतुष्टयमर्जनीयम् ॥" –आदिपुराण, प २८, श्लोक २१९

जिनेन्द्र भगवान् की पूजा से उत्पन्न होने वाला पुण्य प्रथम है। सुपात्र को दान देने से उत्पन्न पुण्य दूसरा है। व्रतो के पालन से उत्पन्न पुण्य तीसरा है। उपवास करने से चौथा पुण्य होता है। इस प्रकार पुण्यार्थी पुरुष को पूजा, दान, व्रत तथा उपवास-द्वारा पुण्य का उपार्जन करना चाहिए।

प्रश्न–पूजा, दान, व्रत तथा उपवास से आत्मा को क्या लाभ होगा?

समाधान–इन चार कारणो से कषायभाव मन्द होते है। आत्मा की विभाव परणति न्यून होने लगती है। उससे अशुभ का सवर होता है। पूर्वबद्ध पापराशि प्रलय को प्राप्त होती है। इसी प्रकार पुण्य बन्ध के साथ मोक्ष के अगरूप सवर और निर्जरा तत्त्वो की भी प्राप्ति होती है।

मुमुक्षु को मोक्षाभाव–जैन धर्म का कथन निरपेक्ष नही है। शुद्धोपयोगरूप परम समाधि की स्थिति मे पुण्य उपादेय नही रहता है। उस अवस्था मे यह जीव मुमुक्षु भी नही कहा जा सकता है। सूक्ष्म दृष्टि से विचारने पर यह कहना होगा कि मोक्ष जानेवाले व्यक्ति को मुमुक्षु की भी उपाधि से विमुक्त होना पडेगा। जब तक यह जीव मुमुक्षु रहेगा, तब तक उसे मोक्ष नही प्राप्त होगा और वह ससार मे परिभ्रमण करेगा। "मोक्तुमिच्छु मुमुक्षु" –जिसके मोक्ष की इच्छा है, वह मुमुक्ष है। जब तक मोक्ष की इच्छा है, तब तक राग भाव है, क्योकि इच्छा रागरूप परिणाम है। रागी को मोक्ष नही प्राप्त होता है, विरागी ही मोक्ष प्राप्त करता है।

पद्मनन्दिने *'पचविंशतिका'* मे कहा है–

"मोक्षेऽपि मोहादभिलाषदोषो विशेषतो मोक्षनिषेधकारी।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो मुमुक्षुर्भवेत्किमन्यत्र कृताभिलाषः ॥" –पद्मनन्दिपचविंशतिका, श्लोक ५५

मोहवश मोक्ष की इच्छा भी दोष रूप है, जो विशेष रूप से मोक्ष की प्राप्ति मे बाधक है, इससे आत्मतत्त्व मे लीन मुमुक्षु अन्य पदार्थ की इच्छा कैसे करेगा?

उन्होने यह भी कहा है कि परिग्रहधारी के सच्चा कल्याण असम्भव है। "परिग्रहवता शिव यदि तदानल शीतल" –यदि परिग्रही व्यक्ति को कल्याण का लाभ हो जाए, तो कहना होगा कि अग्नि शीतल हो गयी।

परम प्रवीण वीतराग ऋषियों ने ससारी विषयलोलुपी जीव की मनोदशा को सम्यक् प्रकार ज्ञात कर उसे पुण्य के माध्यम से श्रेष्ठ इन्द्रियजनित सुखों की ओर आकर्षित करते हुए धर्म की ओर आकर्षित किया है तथा पश्चात् विषयसुख की नि सारता का उपदेश देकर उसे निर्वाण दीक्षा की ओर आकर्षित करते है और शुद्धोपयोगी बना मुक्तिश्री का स्वामी बना देते है। उनकी तत्त्वदेशना की पद्धति यह है कि जीव को सर्वप्रथम पापो से विमुख बनाकर पुण्य की ओर उन्मुख कर उसके फल वैभव को भी त्याग कर अकिचन भावना द्वारा उसे त्रिलोकीनाथ बनाया जाए। जो व्यक्ति हीनप्रवृत्ति को अपनाकर पाप मे निमग्न हो रहा है, उसे कोई पाप से विमुख न बनाकर पुण्यक्रियाओ से विमुख बनाता है, तो वह उस जीव के कल्याण के प्रति महान् शत्रुता दिखाता है।

पूज्यपाद स्वामी का यह कथन स्मरणीय है–

"अपुण्यमव्रतैः पुण्य व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः।
अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत् ॥" –समाधिशतक, श्लोक ८३

असयमी जीवन-द्वारा पाप का सचय होता है। अहिसादि व्रतो के द्वारा पुण्य की प्राप्ति होती है। पुण्य-पाप दोनो के क्षय होने पर मोक्ष होता है। इससे मोक्षार्थी मुनि अभेद रत्नत्रयरूप निर्विकल्प समाधि का आश्रय लेकर अव्रत के समान विकल्पात्मक व्रतो को भी त्यागे।

विकास-क्रम--कोई-कोई सद्गुरु का शरण न मिलने से पाप को तो जोर से पकडते है और पुण्य को छोडकर यह सोचते है कि उन्होने मोक्षमार्ग को प्राप्त कर लिया है। उन्हे पूज्यपाद स्वामी-द्वारा *'समाधिशतक'* में प्रतिपादित त्याग का यह क्रम हृदयगम करना चाहिए--

> **"अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः।**
> **त्यजेत्तान्यपि सम्प्राप्य परमं पदमात्मनः ॥"**--समाधिशतक, श्लोक ८४

सर्वप्रथम प्राणातिपात, अदत्तादान, असत्यभाषण, कुशील सेवन, परिग्रहासक्तिरूप पाप के कारणो को--अव्रतो को छोडकर अहिसा, अचौर्य, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहरूप व्रतो मे पूर्णता प्राप्त करनी चाहिए। इसके पश्चात् आत्मा के निर्विकल्प स्वरूप मे लीन हो परम समाधि को प्राप्त करता हुआ उन विकल्परूप व्रतो को छोडकर आत्मा के परम पद को प्राप्त करे।

जब सविकल्प दशावाले परिग्रह-त्यागी मुनीश्वरो के लिए पुण्य का कारण शुभयोग अथवा शुभोपयोगयुक्त सरागसयम आश्रयणीय है, तब प्रमादमूर्ति परिग्रही गृहस्थ के लिए आर्त, रौद्र ध्यान से सम्बन्धित अशुभयोग का त्याग करते हुए पुण्य हेतु शुभयोग सदा उपादेय रहता है। शुद्धोपयोग सर्वश्रेष्ठ निधि है, किन्तु विषय कषायो के कारण जिसकी आत्मा अत्यन्त अशक्त है, वह निर्विकल्प परम समाधिरूप अप्रमत्त दशाको नही प्राप्त कर सकता है, अत उसके लिए शुभोपयोग कथचित् उपादेय है तथा अशुभयोग दुर्गति का बीज होने से सर्वथा तथा सर्वदा हेय है। अमृतचन्द्रसूरि की यह वाणी सर्वदा स्मरण योग्य है--*"अत्यन्तहेय एवायमशुभोपयोग"*।

'आत्मानुशासन' में गुणभद्राचार्य कहते है--

> **"परिणाममेव कारणमाहुः खलु पुण्य-पापयोः प्राज्ञाः।**
> **तस्मात्पापापचयः पुण्योपचयश्च सुविधेय. ॥"**

ज्ञानी पुरुष पुण्य तथा पाप का कारण जीव का परिणाम ही कहते है, अत निर्मल परिणामों के द्वारा पूर्वसचित पाप का विनाश तथा आगामी पुण्य का सचय करना चाहिए।

उन्होने कहा है--

> **"शुभाशुभे पुण्य पापे सुख-दु-खे च षट् त्रयम्।**
> **हितमाद्यमनुष्ठेयं शेषत्रयमथाहितम् ॥"** --वही, श्लोक २३९

शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप, सुख-दु ख से छह अर्थात् तीन युगल है। इनमे आद्यशुभ, पुण्य तथा सुख--ये तीन उपादेय है तथा शेष अशुभ, पाप और दु ख त्याज्य है।

> **"तत्राप्याद्यं परित्याज्यं शेषौ न स्तः स्वतः स्वयम्।**
> **शुभं च शुद्धे त्यक्त्वाऽन्ते प्राप्नोति परमं पदम् ॥"** --वही, श्लोक २४०

पूर्वोक्त शुभ, पुण्य और सुख इनमे से प्रथम शुभ का त्याग होने पर पुण्य तथा इन्द्रियजनित सुख स्वयमेव दूर हो जाएँगे। राग-द्वेषरहित उदासीनतारूप शुद्ध परिणति को प्राप्त होने पर शुभ का त्याग कर मोक्षरूप उत्कृष्ट पद को प्राप्त होता है।

यह बात स्मरण योग्य है कि योग्य के द्वारा कर्मो का आस्रव होता है। इसके पश्चात् आत्मा और कर्मो का एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध रूप बन्ध है।[1] उस समय की अवस्था को पचाध्यायीकार इस प्रकार समझाते हैं--

---

१ "आत्माकर्मणोरन्योन्यानुप्रवेशात्मको बन्ध" --स सि ।

"जीवः कर्मनिबद्धो हि जीवबद्धं हि कर्म तत् ॥"—२।१०४

—जीव कर्म से निबद्ध हो जाता है और कर्म जीव से बद्ध हो जाता है। दोनों का परस्पर में सश्लेष होता है। इस सश्लेष तथा परस्पर बन्धनबद्धता का भाव यह है कि कर्म अपना फलोपभोग दिये बिना आत्मा से पृथक् नहीं होते।

शंका—तत्त्वार्थसूत्र में मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग को बन्ध का कारण कहा है (अ ८,सू १०)। इसी प्रकार समयसार में भी मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग बन्ध का कारण गिनाया है। कहा भी है—

"सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।
मिच्छत्तं अविरमणं कसाय-जोगा य बोधव्वा ॥१०९॥"

'गोम्मटसार' कर्मकाण्ड में मिथ्यात्व आदि को आस्रवरूप कहा है—

"मिच्छत्तं अविरमणं कसाय-जोगा य आसवा होंति।
पण बारस पण बीसं पण्णारसा होंति तब्भेया ॥७८६॥"

इस प्रकार भिन्न कथनों में कैसे समन्वय किया जा सकता है?

समाधान—इस विषय में 'अध्यात्मकमलमार्तण्ड' से इस प्रकार समाधान प्राप्त होता है। उसमें कहा है कि मिथ्यात्व आदि चारों कारण बन्ध और आस्रव में हेतु हैं, क्योंकि उनमें दोनों प्रकार की शक्तियाँ पायी जाती हैं, जिस प्रकार अग्नि में दाहकत्व और पाचकत्वरूप शक्तियों का सद्भाव पाया जाता है। जो मिथ्यात्वादि प्रथम समय में आस्रव के कारण होते हैं, उन्हीं से द्वितीय क्षण में बन्ध होता है, इसलिए पूर्वोक्त कथनों में अपेक्षा भेद है, वस्तुत देशना में भिन्नता नहीं है। 'अध्यात्मकमलमार्तण्ड' के निम्नलिखित पद्य ध्यान देने योग्य है—

"चत्वारः प्रत्ययास्ते ननु कथमिति भावास्रवो भावबन्ध-
श्चैकत्वाद्वस्तुतस्तौ बत मतिरिति चेतन्न शक्तिद्वयात्स्यात्।
एकस्यापीह वह्नेर्दहन-पचन-भावात्म-शक्तिद्वयाद्वै
वह्निः स्याद्दाहकश्च स्वगुणगणबलात्पाचकश्चेति सिद्धेः।
मिथ्यात्वाद्यात्मभावाः प्रथमसमय एवास्रवे हेतवः स्युः
पश्चात्तत्कर्मबन्धं प्रतिसमसमये तौ भवेतां कथञ्चित्।
नव्यानां कर्मणागमनमिति तदात्वे हि नाम्नास्रवः स्याद्
आयत्यां स्यात्स बन्धः स्थितिमिति लयपर्यन्तमेषोऽनयोर्मित् ॥" —परिच्छेद ४

शंका—श्लोकवार्तिक में एक शंका उत्पन्न करके समाधान किया गया है। शकाकार कहता है, "योग एव आस्रव सूत्रितो न तु मिथ्यादर्शनादयोऽपीत्याह"—योग ही आस्रव कहा गया है, मिथ्यादर्शनादि को आस्रव नहीं कहा गया है, इसका क्या कारण है?

समाधान—ज्ञानावरणादि कर्मों के आगमन का कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्यादृष्टि ही होता है, सासादन सम्यग्दृष्टि आदि के नहीं होता है। अविरति पूर्णतया असयत के ही पूर्णतया तथा एकदेश रूप से पायी जाती है, संयत के नहीं पायी जाती है। प्रमाद भी प्रमत्तपर्यन्त पाया जाता है; अप्रमत्तादि के नहीं। कषाय सकषाय के ही पायी जाती है, उपशान्त कषायादि के नहीं पायी जाती है। योगरूप आस्रव सयोगकेवली पर्यन्त सबके पाया जाता है। अत उसे आस्रव कहा है। मिथ्यादर्शनादि का सक्षेप से योग मे ही अन्तर्भाव हो जाता है। (६,२,पृ. ४४३)

आस्रव के भेद—*'द्रव्यसग्रह'* मे कहा है—जीव के जिन भावो से कर्मो का आगमन होता है उनको भावास्रव कहते है। कर्मो का आगमन द्रव्यास्रव है। भावास्रव मे मिथ्यात्वादि का समावेश किया गया है।

"मिच्छत्ताविरदि-पमाद-जोग-कोधादओ अथ विण्णेया।
पण-पण-पण-दस-तिय-चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥"—द्रव्यसग्रह, गा ३०

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग तथा क्रोधादि कषाय ये भावास्रव के भेद है। उनके क्रमश पॉच, पॉच पन्द्रह, तीन तथा चार भेद कहे गये है।

"णाणावरणादीण जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।
दव्वासवो स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो ॥"—द्रव्यसग्रह, गा ३१

ज्ञानावरणादि आठ कर्मो रूप परिणमन करने योग्य जो पुद्गल आता है, वह द्रव्यास्रव है। उसके अनेक भेद होते है, ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है।

आस्रव के उत्तर क्षण मे बन्ध

आस्रव और बन्ध के पौर्वापर्य के विषय मे विचार करते हुए पण्डितप्रवर आशाधरजी अपने 'अनगारधर्मामृत' मे लिखते है—

"प्रथमक्षणे कर्मस्कन्धानामागमनमास्रव, आगमनानन्तर द्वितीयक्षणादौ जीवप्रदेशेष्ववस्थान बन्ध इति भेद ।"—पृ ११२

प्रथम क्षण मे कर्मस्कन्धो का आगमन—आस्रव होता है। आगमन के पश्चात् द्वितीय क्षणादिक मे कर्मवर्गणाओ की आत्मप्रदेशो मे अवस्थिति होती है, उसे बन्ध कहते है। यह उनमे अन्तर है। और भी ज्ञातव्य बात यह है—

"आस्रवे योगो मुख्यो बन्धे च कषायादि । यथा राजसभायामनुग्राह्यनिग्राह्ययो प्रवेशने राजादिष्टपुरुषो मुख्य, तयोरनुग्रहनिग्रहकरणे राजादेश" (११२)।

"आस्रव मे योग की मुख्यता है तथा बन्ध मे कषायादिक की प्रधानता है। जैसे राजसभा मे अनुग्रह करने योग्य तथा निग्रह करने योग्य पुरुषो के प्रवेश कराने मे राज्य-कर्मचारी मुख्य है, किन्तु प्रवेश होने के पश्चात् उन व्यक्तियो को सत्कृत करना या दण्डित करना इसमे राजाज्ञा मुख्य है।"

इस प्रकार योग की मुख्यता से कर्मो के आगमन का द्वार खोल दिया जाता है। आगत कर्मों का आत्मा के साथ एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध होना कषायादि की मुख्यता से होता है।

योग की प्रधानता से आकर्षित किये गये तथा कषायादि की प्रधानता से आत्मा से सम्बन्धित कर्म किस भॉति जगत् की अनन्त विचित्रताओ को उत्पन्न करने मे समर्थ होता है? कोई एकेन्द्रिय है, कोई दो इन्द्रिय है, आदि ८४ लाख योनियो मे जीव कर्मवश अनन्त वेष धारण करता फिरता है। यह परिवर्तन किस प्रकार सम्पन्न होता है, इस विषय को कुन्दकुन्दस्वामी इन शब्दो-द्वारा स्पष्ट करते हैं—

"जह पुरिसेणाहारो गहिओ परिणमदि सो अणेयविहं।
मंसवसारुहिरादीभावे उदरग्गिसंजुत्तो ॥
तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं।
बज्झंते कम्मं ते णयपरिहीणा दु ते जीवा ॥"—समयसार, गा १७६-१८०

जैसे पुरुष के द्वारा खाया गया भोजन जठराग्नि के निमित्तवश मास, चर्बी, रुधिर आदि पर्यायो को प्राप्त होता है, उसी प्रकार ज्ञानवान् जीव के पूर्वबद्ध द्रव्यास्रव बहुत भेदयुक्त कर्मो को बॉधते है। वे जीव परमार्थ दृष्टि से रहित है।

आचार्य पूज्यपाद तथा अकलंक स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि (८,२) और राजवार्तिक (६,७) में भी यही लिखा है।[1]

जिस प्रकार भोज्यवस्तु प्रत्येक के आमाशय में पहुँचकर भिन्न-भिन्न रूप में परिणत होती है, उसी प्रकार योग के द्वारा आकर्षित किये गये कर्मों का आत्मा के साथ संश्लेष होने पर अनन्त प्रकार परिणमन होता है। इस परिणमन की विविधता में कारण रागादि परणति की हीनाधिकता है।

क्या बन्ध का कारण अज्ञान है?

आत्मा के बन्धन-बद्ध होने का कारण कोई लोग अज्ञान या अविद्या को बताते हैं। अज्ञान से ही बन्ध होता है और ज्ञान से मुक्ति लाभ होता है[2]—इस विचार की मीमांसा करते हुए स्वामी समन्तभद्र कहते हैं—

"अज्ञानाच्चेद् ध्रुवो बन्धो ज्ञेयानन्त्यान्न केवली।
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद् बहुतोऽन्यथा ॥" —आप्तमीमांसा, कारिका, ९६

—"अज्ञान के द्वारा नियम से बन्ध होता है, ऐसा सिद्धान्त अंगीकार करने पर कोई भी व्यक्ति सर्वज्ञकेवली न हो सकेगा कारण ज्ञेय अनन्त हैं। अनन्त ज्ञेयों का बोध न होगा, अतः जिनका ज्ञान नहीं हो सकेगा वे बन्ध के हेतु होंगे। इससे सर्वज्ञ का सद्भाव न होगा। कदाचित् यह कहा जाए कि समीचीन अल्पज्ञान से मोक्ष प्राप्त हो जाएगा, तो अवशिष्ट महान् अज्ञान के कारण बन्ध भी होगा। इस प्रकार किसी को भी मुक्ति का लाभ नहीं होगा।"

शंकाकार कहता है—आपके सिद्धान्त में भी तो अज्ञान को बन्ध तथा दुःख का कारण बताया गया है, फिर 'अज्ञान से बन्ध होता है' इस पक्ष के विरोध करने में क्या कारण है? देखिए, अमृतचन्द्र सूरि क्या कहते हैं?

"अज्ञानान्मृगतृष्णिकां जलधिया धावन्ति पातुं मृगाः
अज्ञानात्तमसि द्रवन्ति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः।
अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरङ्गाब्धिवत्
शुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवन्त्याकुलाः ॥—समयसारकलश, श्लो ५८

—अज्ञान के कारण मृगगण मृगतृष्णा में जल की भ्रान्तिवश पानी पीने के लिए दौड़ते हैं। अज्ञान के कारण लोग रस्सी में सर्प की भ्रान्ति धारण कर भागते हैं। जैसे पवन के वेग से समुद्र में लहरें उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार अज्ञानवश विविध विकल्पों को करते हुए स्वयं शुद्धज्ञानमय होते हुए भी अपने को कर्ता मानकर ये प्राणी दुःखी होते हैं।

समाधान—यहाँ मिथ्यात्व भाव विशिष्ट ज्ञान को अज्ञान मानकर उस अज्ञान की प्रधानता की विवक्षावश उपर्युक्त कथन किया गया है। यथार्थ में देखा जाए, तो बन्ध का कारण दूसरा है। राग-द्वेषादि विकारों सहित अज्ञान बन्ध का कारण है। थोड़ा भी ज्ञान यदि वीतरागता सम्पन्न हो तो कर्मराशि को विनष्ट करने में समर्थ हो जाता है। *'परमात्मप्रकाश'* टीका में लिखा है—

"वीरा वेरग्गपरा थोवं पि हु सिक्खिऊण सिज्झंति।
ण हु सिज्झंति विरागेण विणा पढिदेसु वि सव्वसत्थेसु ॥"—अ. २, दो. ८४ टीका

—वैराग्यसम्पन्न वीर पुरुष अल्प ज्ञान के द्वारा भी सिद्ध हो जाते हैं। सम्पूर्ण शास्त्रों के पढ़ने पर भी वैराग्य के बिना सिद्ध पद की प्राप्ति नहीं होती।

---

१. "उदयानुभूतपाहारग्रहणवत्तीव्रमन्दमध्यमकषायाशयानुरूपस्थित्यनुभवविशेषप्रतिपत्त्यर्थम्"—स सि ८,२,२५२.
२. "ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्धः।" —सांख्यकारिका, ४४

कुन्दकुन्द स्वामी ने *'भावपाहुड'* मे कहा है—

"अंगाइं दस य दुण्णिय चउदस-पुव्वाइं सयलसुयणाणं।
पढिओ अ भव्वसेणो ण भाव-सवणत्तणं पत्तो ॥"—भावपाहुड, गा ५२

भव्यसेन मुनि ने वारह अग तथा चौदह पूर्व रूप सकल श्रुतज्ञान को पढा था, फिर भी वे अन्तरग से श्रमणपने को—भावलिगी मुनिपने को नही प्राप्त हुए।

"तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडं जाओ ॥" —भावपाहुड, गा ५३

निर्मल परिणाम युक्त तथा महान् प्रभाव वाले शिवभूति मुनिराज ने 'तुष माष' भिन्न—दाल और छिलका जैसे पृथक् है, इस प्रकार मेरा आत्मा भी कर्मरूपी छिलके से जुदा है—इस पद को स्मरण करते हुए केवलज्ञान पाया था।

इसका यह अर्थ नही है कि शास्त्र का अभ्यास व्यर्थ है। उसका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है, किन्तु ऐसा नही है कि ज्ञानावरण के उदयवश मन्दज्ञानी, किन्तु विशुद्धचारित्र व्यक्ति को मोक्ष नही मिले। सम्यक् चारित्र से समलकृत मन्दज्ञानी भी कैवल्यश्री का स्वामी होता है। मोह का क्षय अत्यन्त आवश्यक है। उसके साथ मे आवश्यक अल्पज्ञान भी अद्‌भुत शक्तियुक्त हो जाता है।

तार्किक समन्तभद्र अपने युक्तिवाद-द्वारा इस समस्या को सुलझाते हुए कहते है—

"अज्ञानान्मोहिनो बन्धो न ज्ञानाद्वीतमोहतः।
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा ॥" —आप्तमीमासा, कारिका, ९८

—'मोहविशिष्ट अर्थात् मिथ्यात्वयुक्त व्यक्ति के अज्ञान से बन्ध होता है। मोहरहित व्यक्ति के ज्ञान से बन्ध नही होता है। मोहरहित अल्प ज्ञान से मोक्ष होता है। मोही के ज्ञान से बन्ध होता है।'

यहाँ बन्ध का अन्वयव्यतिरेक ज्ञान की न्यूनाधिकता के साथ नही है। इससे ज्ञान को बन्ध या मुक्ति का कारण नही माना जा सकता। मोहसहित ज्ञान बन्ध का कारण है और मोहरहित ज्ञान मुक्ति का कारण है। अत यह बात प्रमाणित होती है कि बन्ध का कारण मोहयुक्त अज्ञान है और मुक्ति का कारण मोहका अभाव युक्त ज्ञान है, क्योंकि इसके साथ ही अन्वयव्यतिरेक सुघटित होता है।

शंका—यहाँ यह आशका सहज उत्पन्न होती है कि इस कथन का सूत्रसार उमास्वामी के इस सूत्र के साथ विरुद्धता है—*"मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतव"*—(८,१)—तत्त्वका अनवबोध, असयम, असावधानता, क्रोध, मान, लोभ, तथा मन, वचन, कायकी चचलता के द्वारा बन्ध होता है।

समाधान—इस विषय का समाधान करते हुए विद्यानन्दिस्वामी कहते है (अष्टसह पृ २६७) —मोहविशिष्ट अज्ञान मे सक्षेप में मिथ्यादर्शन आदि का सग्रह किया गया है। इष्ट अनिष्ट फल प्रदान करने मे समर्थ-कर्म बन्ध का हेतु कषायैकार्थसमवायी अज्ञान के अविनाभावी मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग को कहा गया है। मोह और अज्ञान मे मिथ्यात्व आदि का समावेश हो जाता है। दोनो आचार्यो के कथन मे तात्त्विक भेद नही है, केवल प्रतिपादनशैली की भिन्नता है।

एकान्तदर्शनो मे कर्म सिद्धान्त का असम्भवपन

स्वामी समन्तभद्र का कथन है कि यह कर्म बन्ध की व्यवस्था स्याद्वाद शासन मे ही निर्दोष रीति से बनती है। एकान्त दर्शनो मे कर्मबन्ध, फलानुभवन आदि बाते असम्भव है। वे कहते है[1]—हे जिनेन्द्र!

---

१ "कुशलाऽकुशल कर्म परलोकश्च न क्वचित्।
एकान्तग्रहरक्तेषु नाथ स्वपरवैरिषु ॥"—आप्तमीमासा, का ८

अनित्यैकान्त आदि सिद्धान्तवादियों के यहाँ पुण्य कर्म, पाप कर्म, परलोक सिद्ध नहीं होते। एकान्तग्रहाविष्ट लोग अनेकान्त पक्ष के विरोधी तो हैं ही, साथ ही वे स्वपक्ष के भी घातक हैं।

नित्यैकान्त अथवा अनित्यैकान्त पक्ष में क्रम तथा अक्रमपूर्वक अर्थक्रिया नहीं बनती। अर्थक्रियाकारित्वपने के अभाव में पुण्य-पाप बन्धादि की व्यवस्था भी नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ, बौद्धदर्शन में कर्म की मान्यता है—यह स्थविर नागसेन और सम्राट् मिलिन्द के पूर्व प्रतिपादित प्रश्नोत्तर से ज्ञात होता है; किन्तु बौद्धदर्शन के सर्व क्षणिकवाद तत्त्व के साथ उक्त कथानक का सामंजस्य नहीं होता। बात यह है कि क्षणिक पक्ष में प्रत्येक पदार्थ क्षणस्थितिशील है, अतः उसमें कर्मों का बन्धन और फलोपभोग आदि की बातें क्षणिकत्व सिद्धान्त के विरुद्ध पड़ती हैं। हिंसादि पापों का कर्ता अकुशल कर्म का सम्पादन तथा फलानुभवन नहीं करेगा, कारण उसका हिंसादि कार्य क्षण में क्षय हो गया, अतः फलोपभोक्ता अन्य व्यक्ति होगा। क्षणिक पक्ष में वस्तु तथा लोकव्यवस्था नहीं बनती।

इसे आप्तमीमांसाकार इस प्रकार समझाते हैं[1]—"हिंसाका संकल्प करनेवाला द्वितीय क्षण में नष्ट हो चुका, अतः संकल्पविहीन व्यक्ति ने हिंसा की, ऐसा कहना होगा। हिंसक व्यक्ति का भी उत्तर क्षण में विनाश हो गया, इससे हिंसनकार्य के फलस्वरूप पीड़ा प्राप्त करने वाला और बन्धन में फँसने वाला ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने न तो हिंसा का संकल्प किया और न हिंसा ही की है। इसी न्याय के अनुसार बन्धनबद्ध व्यक्ति तो नष्ट हो गया, मुक्ति प्राप्तकर्ता दूसरा ही होगा।" सूक्ष्म दृष्टि से विचारने पर इस प्रकार की विचित्र स्थिति और अव्यवस्था क्षणिकैकान्त पक्ष में उत्पन्न होती है।

क्षण-क्षण में पदार्थों का सर्वथा नाश स्वीकार करने पर किसी प्रकार की नैतिक जिम्मेदारी भी नहीं होगी। किये गये कर्मों का नाश और अकृत कर्मों का फलोपभोग होगा, ऐसे सिद्धान्त में कर्मबन्ध व्यवस्था नहीं बन सकती।[2]

नित्यैकान्त में दोष

एकान्त नित्य पक्ष अंगीकार करने पर क्रियाशीलता का अभाव होगा। अतः देशक्रम का कारण देशान्तर गमन नहीं होगा। शाश्वतिक होने से कालक्रम नहीं बनेगा। सकल कालकलाव्यापी वस्तुको विशेष काल में स्थित मानने पर नित्यत्व का विरोध होगा। कदाचित् सहकारी कारण की अपेक्षा वस्तु में क्रम मानते हो, तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सहकारी कारण उस पदार्थ में कुछ विशेषता उत्पन्न करते हैं या नहीं? यदि उसमें विशेषता की उत्पत्ति मानते हो तो नित्यत्व का एकान्त नहीं रहता है। यदि नित्य वस्तु में विशेषता उत्पन्न किये बिना भी सहकारी कारणों के द्वारा क्रम मानते हो, तो यह क्रमतत्त्व सहकारियों में ही रहेगा। दूसरी बात यह है कि नित्य वस्तु में देशक्रम, कालक्रम नहीं पाया जाता।

नित्य पदार्थ में युगपद् अर्थक्रियाकारित्व मानने पर एक ही समय में समस्त कार्यों की उत्पत्ति हो जाएगी और द्वितीय क्षण में क्रिया के अभाव में अवस्तुत्व हो जाएगा। अतः नित्यैकान्त पक्ष में अर्थक्रिया का अभाव होने से कर्मबन्ध की व्यवस्था भी नहीं बनती। ऐसी स्थिति में सांख्यादिकों की कर्ममान्यता उनकी मनोनीत सत्कार्यवाद रूप तत्त्व-व्यवस्था आदि के प्रतिकूल सिद्ध होती है।

---

१ "हिनस्त्यनभिसन्धातृ न हिनस्त्यभिसन्धिमत्।
बध्यते तद्द्वयापेतं चित्तं बद्धं न मुच्यते॥" —आप्तमीमांसा, का., ५१

२. प्रतिक्षणं भङ्गिषु तत्पृथक्त्वान्न मातृघाती स्वपतिः स्वजाया।
दत्तग्रहो नाधिगतस्मृतिर्न न क्त्वार्थसत्यं न कुलं न जातिः॥ युक्त्यनुशासन, १६

अद्वैत मान्यता मे बाधा

अद्वैत पक्ष मानने पर कर्मव्यवस्था नही वनती।[1] लौकिक-वैदिक कर्म, कुशल-अकुशल कर्म, पुण्य-पाप कर्म आदि को स्वीकार करने पर अद्वैत मान्यता पर वज्रपात होता है। अविद्या के कारण कर्मद्वैत मानना भी युक्तिसगत नही है, कारण ऐसी स्थिति मे विद्या, अविद्या का द्वैत उपस्थित होगा। स्वामी समन्तभद्र का (आप्तमी २६, २७) कथन है कि द्वैत के विना अद्वैत नही वनता, जैसे हेतु के अभाव मे अहेतु नहीं पाया जाता है। प्रतिषेध्यके विना सद्भावान् पदार्थ का प्रतिषेध नही किया जा सकता। उनकी एक सुन्दर तथा सरल युक्ति है। यदि युक्ति से अद्वैततत्त्व मानते हो, तो साधन और साध्य का द्वैत उपस्थित होता है। कदाचित् अपने वचनमात्र से अद्वैत को प्रमाणित करते हो, तो इस पद्धति से द्वैत पक्ष भी क्यो नही सिद्ध किया जा सकता है? अत प्रमाण एव युक्तिविरुद्ध अद्वैत की एकान्त मान्यता मे कर्मसिद्धान्त सिद्ध नहीं होता।

अनेकान्त शासन मे ही समीचीन रूप से कर्म-वन्ध व्यवस्था सिद्ध होती है। एकान्तवादी अपनी दार्शनिक मान्यता के आधार पर कर्म-व्यवस्था को प्रमाणित नही कर सकते।

कर्मसिद्धान्त का अतिरेक

कर्मसिद्धान्त का अतिरेक भी इष्ट साधक नही है। इसके अतिरेकवश मनुष्य दैव के नाम पर अकर्मण्यता का आश्रय लेकर अपने विकास के मार्ग को अवरुद्ध करता है। कर्म को ही सब कुछ समझनेवाला कहता है–"यदत्र लिखित भाले तत्स्थितस्यापि जायते" जो भाल मे लिखा है वह उद्यम न करने पर भी प्राप्त हुए विना न रहेगा। पौरुष करने मे शक्ति लगाना व्यर्थ है–'विधिरेव शरणम्' भाग्य ही का भरोसा है, इस प्रकार दैवैकान्त के चक्र मे फँसे हुए व्यक्ति प्रलाप करते है। स्वामी समन्तभद्र कहते हैं[2]–"दैव से ही यदि प्रयोजन सिद्ध होता है, तो यह वताओ, जीव के प्रयत्न के द्वारा, दैव की उत्पत्ति क्यो होती है? आज जो हमारा पुरुषार्थ है, भावी जीवन के लिए वह दैव बन जाता है। पूर्वकृत कर्म को छोडकर दैव और क्या है?"

यदि दैव के द्वारा दैव की उत्पत्ति मानते हो और उसमे बुद्धिपूर्वक किये गये मानव प्रयत्नो का तनिक भी हस्तक्षेप नही मानते, तो मोक्ष की प्राप्ति सम्भव न होगी, क्योकि पूर्वकृत कर्मबन्ध के अनुसार ही आगामी कर्म का बन्ध होगा, इस प्रकार की परम्परा चलने से मोक्ष का अवसर नही मिलेगा और पौरुष अकार्यकारी ठहरेगा।

दैवैकान्त की दुर्वलता से लाभ उठाते हुए पुरुषार्थवादी कहता है–बिना पौरुष के कोई कार्य नही बनता। सोमदेवसूरि के शब्दो मे वह कहता है–

> "येषां बाहुबलं नास्ति, येषां नास्ति मनोबलम्।
> तेषां चन्द्रबलं देव! किं कुर्यादम्बरस्थितम् ॥"–यशस्तिलक, ३,५४

जिनकी भुजाओ मे बल नही है और न जिनके पास मनोबल है, ऐसे व्यक्तियो का आकाश मे स्थित चन्द्रबल–जन्मकालीन नक्षत्र आदि की स्थिति क्या करेगी?"

केवल भाग्य को ही भगवान् माननेवाले पुरुषो का कृषि आदि कार्य, कोई अर्थ नहीं रखता है।

---

१ "कर्मद्वैत फलद्वैत लोकद्वैत च नो भवेत्।
विद्याऽविद्याद्वय न स्याद्वन्धमोक्षद्वय तथा ॥" –आप्तमीमासा, का ३५

२ "दैवादेवार्थसिद्धिश्चेद्दैव पौरुषत कथम्। दैवतश्चेदनिर्मोक्ष पौरुष निष्फल भवेत् ॥"–आप्तमीमासा, का ८८

पुरुषार्थ का एकान्त भी बाधित है

पुरुषार्थ के अनन्य भक्त से स्वामी समन्तभद्र पूछते है[1]—यदि पुरुषार्थ से ही तुम कार्य सिद्धि मानते हो तो यह बताओ, दैव से तुम्हारा पुरुषार्थ कैसे उत्पन्न होता है? कदाचित् यह मानो कि हम सब कुछ पुरुषार्थ के द्वारा ही सम्पन्न करते है, तब सम्पूर्ण प्राणियो का पुरुषार्थ जयश्री समन्वित होना चाहिए। कर्म का तीव्र उदय आने पर पुरुषार्थ कार्यकारी नहीं होता है। समान पुरुषार्थ करते हुए भी पूर्वकृत कर्मोदयानुसार फल मे भिन्नता पायी जाती है। समान श्रम करनेवाले किसान दैववश एक समान फसल नही काट पाते है।

समन्वय पथ

इस दैव और पुरुषार्थ के द्वन्द्व मे अनेकान्त समन्वय शैली-द्वारा मैत्री स्थापित करता है। [2]सोमदेवसूरि कहते है—"इस लोक मे फल प्राप्ति दैव—पूर्वोपार्जित कर्म तथा मानुषकर्म—पुरुषार्थ इन दोनो के अधीन है। ऐसा न मानने वालो से आचार्य पूछते है कि क्या कारण है, समान चेष्टा करनेवालो के फलों मे-सिद्धि मे भिन्नता प्राप्त होती है?।" आचार्य कहते है—

> "परस्परोपकारेण जीवितौषधयोरिव।
> दैवपौरुषयोर्वृत्तिः फलजन्मनि मन्यताम् ॥" —यशस्तिलक, ३, ६३

जैसे औषधि जीवन के लिए हितप्रद है और आयुकर्म औषधि के प्रभाव के लिए आवश्यक है, अर्थात् जैसे फलोत्पत्ति मे आयुकर्म और औषधिसेवन परस्पर में एक-दूसरे को लाभ पहुँचाते है, उसी प्रकार दैव और पौरुष की वृत्ति समझना चाहिए।

[3]वे कहते है—दैव चक्षु आदि इन्द्रियो के अगोचर अतीन्द्रिय आत्मा से सम्बन्धित है और प्राणियो की सम्पूर्ण क्रियाएँ पुरुषार्थपर निर्भर हैं, इसलिए उद्यम की ओर ध्यान रहना चाहिए।

सत्परामर्श—'आत्मानुशासन' मे भव्य प्राणी को यह सत्परामर्श दिया गया है कि वह वर्तमान जीवन को सुखी बनाने के लिए जो अधिक श्रम उठाता है, वह अच्छा नही है। उसे उज्ज्वल भविष्य निर्माण के क्षेत्र मे विशेष प्रयत्नशील होना चाहिए। वर्तमान जीवन तो अतीत के पुरुषार्थ का पुरस्कार है जो दैव के नाम से वर्तमान में माना जाता है। भदन्त गुणभद्र के महत्त्वपूर्ण शब्द इस प्रकार है—

> "आयुः श्रीवपुरादिकं यदि भवेत्पुण्यं पुरोपार्जितं
> स्यात् सर्वं न भवेन्न तच्च नितरामायासितेऽप्यात्मनि।
> इत्यार्याः सुविचार्य कार्यकुशलाः कार्येऽत्र मन्दोद्यमा-
> द्रागागामिभवार्थमेव सततं प्रीत्या यतन्तेतराम् ॥"—आत्मानुशासन, श्लोक ३७

—यदि पूर्व मे संचित पुण्य पास मे है, तो दीर्घ जीवन, धन तथा शरीर, सम्पत्ति आदि मनोवाछित पदार्थ प्राप्त हो सकते है। यदि वह पुण्य नही है, तो स्वय को अपार कष्ट देने पर भी वह सामग्री प्राप्त नही हो सकती। अतएव उचित-अनुचित का सम्यक् रूप से विचार करने मे प्रवीण श्रेष्ठजन भावी जीवन निर्माण के विषय मे शीघ्र ही प्रीतिपूर्वक विशेष प्रयत्न करते हैं तथा इस लोक के कार्यो के विषय मे उद्यम नहीं करते।

कोई-कोई प्रमादी मानवोचित पुरुषार्थ करने से जी चुराते हुए भाग्य का अथवा नियति (Destiny) का

---

१ "पौरुषादेव सिद्धिश्चेत् पौरुष दैवत कथम्। पौरुषाच्चेदमोघ स्यात् सर्वप्राणिषु पौरुषम् ॥"—आप्तमीमासा, का ८९

२ "दैव च मानुष कर्म लोकस्यास्य फलाप्तिषु। कुतोऽन्यथा विचित्राणि फलानि समचेष्टिषु ॥"—यशस्तिलक, ३, ६०

३ "तथापि पौरुषायत्ता सत्त्वाना सकला क्रिया। अतस्तच्चिन्त्यमन्यत्र का चिन्तातीन्द्रियात्मनि ॥"
—यशस्तिलक, ३, ६४

आश्रय लेकर अपने मिथ्या पक्ष को उचित बताने का प्रयत्न करते है। वे लोग कहते हैं कि जिस समय जैसा होना है, उस समय वैसा ही होगा। नियति के विधान को बदलने की किसी मे समार्थ्य नही है। उसका उल्लघन नही हो सकता। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने ऐसे भीरुतापूर्ण भावो को मिथ्यात्वका भेद नियतिवाद कहा है—

> "जत्तु जदा जेण जहा जस्स य णियमेण होदि तत्त तदा।
> तेण तहा तस्स हवे इदि वादो णियदिवादो दु ॥"—गो कर्मकाण्ड, गा ८८२

जो जिस काल मे जिसके द्वारा जैसे जिसके नियम से होता है, वह उस काल मे उससे उस प्रकार उसके होता है। इस प्रकार का पक्ष नियतिवाद है।

विवेकी व्यक्ति आत्मशक्ति, जिनेन्द्रभक्ति तथा जिनागम की देशना का आश्रय लेकर अपना जीवन सयम तथा सदाचार समलकृत बनाता हुआ, दैव का दास न बनकर अपने भविष्य का निर्माता बनता है। जो दैव या नियति आदि की ओट मे पाप से चिपके रहते है, वे अपने नरजन्म रूपी चिन्तामणि रत्न को समुद्र मे फेक देते है।

समन्तभद्र स्वामी इस सम्बन्ध मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन करते है[1]—अबुद्धि पूर्वक इष्ट-अनिष्ट कार्य अपने दैव की प्रधानता से होता है। बुद्धिपूर्वक इष्ट-अनिष्ट फल प्राप्ति मे पौरुष की प्रधानता है।

सोते हुए व्यक्ति का सर्प से स्पर्श होते हुए भी मृत्यु न होने मे दैव की प्रधानता है। लेकिन सर्प देखकर बुद्धिपूर्वक आत्मरक्षा करने मे पुरुषार्थ की विशेषता कारण है।

भोगी प्राणी दैव और पुरुषार्थ के महोदधि को मथकर अमृत के स्थान पर विष निकालकर सोचता है और तदनुसार नि सकोच हो प्रवृत्ति भी करता है। वह अविवेकी मोक्ष-मार्ग के लिए दैव की ओर निहारा करता है और विषय-भोग के लिए कमर कसकर पुरुषार्थी बनता है। मुमुक्षु प्राणी विषयादिको के विषय मे पुरुषार्थ को अधिक महत्त्व नहीं देता। वह अपने पौरुष का प्रयोग कर्मजाल के काटने मे करता है। तत्त्व की बात यह है कि मुमुक्षु के धर्माराधनरूप प्रयत्न से विरुद्ध कर्म भी क्षीण-शक्तियुक्त बन जाता है। इस प्रकार आत्म-विकास का मार्ग अधिक सरल और उज्ज्वल हो जाता है।

जैनशासन मे यह बताया है कि रत्नत्रय रूप सच्चे पुरुषार्थ के द्वारा यह जीव अनादि काल से आगत पुरातन कर्म-पुज को अन्तर्मुहूर्त के भीतर ही विनष्ट करने मे समर्थ होता है। आत्मकल्याण के क्षेत्र मे दैव या नियति का आश्रय लेकर प्रमादी तथा विषयासक्त न बनकर सत्साहस पूर्वक कर्मो को नष्ट करने के हेतु सत्प्रयत्न करते जाना चाहिए। मोक्ष पुरुषार्थी को मिलता है। वह स्वय चतुर्थ पुरुषार्थ कहा गया है।

कर्मो का विभाजन

'कर्म' के स्वभाव की अपेक्षा असख्यात भेद हैं। अनन्तानन्त प्रदेशात्मक स्कन्धो के परिणमन की अपेक्षा कर्म के अनन्त भेद होते है। ज्ञानावरणादि अविभागी प्रतिच्छेदो की अपेक्षा भी अनन्त भेद कहे जाते है।[2] इस कर्म की बन्ध, उत्कर्षण, सक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्त्व, उदय, उपशम, निधत्ति, निकाचना रूप दस कारणात्मक अवस्थाएँ पायी जाती हैं[3]। बन्ध की परिभाषा की जा चुकी है।[4] उत्कर्षण करण मे कर्म के अनुभाग तथा स्थिति की वृद्धि होती है। अपकर्षण मे इसके विपरीत बात होती है। सक्रमण करण मे एक कर्मप्रकृति का अन्य प्रकृति रूप परिणमन किया जाता है। कर्मो को उदय काल के पूर्व उदयावली

---

१ "अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्ट स्वदैवत । बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायामिष्टानिष्ट स्वपौरुषात् ॥" —आप्तमीमासा, का ९१

२ अनगारधर्मामृत पृ ३००।

३ "बधुक्कट्टणकरण सकममोकट्टुदीरणा सत्त।
उदयुवसामणिधत्ती णिकाचणा होदि पडिपयडी।"—गो कर्मकाण्ड, गा ४३७

४ गो कर्मकाण्ड, ४३८-४०

मे लाना उदीरणा करण है। कर्मों का सत्ता मे रहना सत्त्व है। फलदान उदय कहलाता है। उदयावली मे न आकर कर्मो की उपशान्त अवस्था उपशम है। कर्मो की ऐसी अवस्था, जिसमे उत्कर्षण, अपकर्षण करण के सिवाय उदीरणा तथा सक्रमण न हो सके, निधत्ति है। ऐसी कर्म-स्थिति, जिसमे उदीरणा, सक्रमण, उत्कर्षण तथा अपकर्षण न हो सके, निकाचना कही जाती है।

कर्मो की इन दस अवस्थाओ पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह जीव अपने परिणामों के अनुसार कर्मो को हीनशक्ति और महान् शक्ति युक्त बना सकता है। यह उदीरणा के द्वारा उदयकाल के पूर्व भी कर्मो को उदय अवस्था मे लाकर निर्जीर्ण कर सकता है। कभी कर्म शक्तिहीन बनकर निर्जरा को प्राप्त होते हैं। सार बात यह है कि जीव अपने परिणामो के अनुसार कर्मो को भिन्न रूप मे परिणत कर सकता है।

कर्म का फल भोगना ही पडेगा—"नाभुक्त क्षीयते कर्म" यह बात जैन सिद्धान्त मे सर्वथा रूप मे सम्भव नहीं है। जब आत्मा मे रत्नत्रय की ज्योति प्रदीप्त होती है, तब अनन्तानन्त कार्मणवर्गणाएँ बिना फल दिये हुए निर्जरा को प्राप्त हो जाती है। केवली भगवान् को असाता प्रकृति कुछ भी बिना फल दिये हुए साता रूप में परिणत होकर निकल जाती है। इसलिए वीतराग शासन मे केवली के असाता निमित्तक क्षुधा-तृषा आदि की पीडा का अभाव माना गया है।

बन्ध के प्रकार

कर्मबन्ध के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेश—ये चार भेद बताये गये है। *'महाबन्ध'* के इस प्रथम खण्ड मे प्रकृतिबन्ध का विविध अनुयोग-द्वारो से वर्णन किया गया है। प्रकृति शब्द का अर्थ है—स्वभाव, जैसे गुड की प्रकृति मधुरता है। ज्ञानावरण कर्म का स्वभाव ज्ञान का आवरण करना है। दर्शनावरण की प्रकृति दर्शन गुण को ढाँकना है। वेदनीय का स्वभाव सुख-दु ख का अनुभवन कराना है। मोहनीय का स्वभाव आत्मा के दर्शन और चारित्र गुणो को विकृत करना है। यह आत्मा के सुख गुण को भी नष्ट करता है। मनुष्यादि के भवधारण का कारण आयु कर्म है। नर-नारकादि नाम से जीव सकीर्तित होता है। इसका कारण नाम की रचनाविशेष है। उच्च या नीच शरीर मे जीव को रखना गोत्र की प्रकृति है। दान-भोगादि मे बाधा डालना अन्तराय कर्म की प्रकृति है।

इन आठ कर्मो के नाम के अनुसार उनकी प्रकृति कही गयी है। इन कर्मो का स्वभाव समझाने के लिए जैन आचार्यो ने निम्नलिखित उदाहरण दिये हैं। ज्ञानावरण का उदाहरण परदा है। दर्शनावरण का द्वारपाल है, कारण उसके द्वारा इष्ट दर्शन का आवरण होता है। मधुलिप्त असिधारा के समान वेदनीय कर्म है। वह मधुरता के साथ जीभ कटने का सन्ताप पैदा करती है। मोहनीय मदिरा के समान जीव को आत्म-स्मृति नहीं होने देता है। आयु कर्म काष्ठ के खाण्डा-बन्धनविशेष-द्वारा व्यक्ति को कैदी बनाने के समान है। नाम कर्म भिन्न-भिन्न शरीर आदि की रचना चित्रकार के समान किया करता है। गोत्रकर्म जीव को उच्च, नीच शरीरधारी बनाता है, जैसे कुम्भकार छोटे-बडे बर्तन बनाता है। भण्डारी जिस प्रकार स्वामी-द्वारा स्वीकृत द्रव्य को देने में बाधा पैदा करता है, उसी प्रकार विघ्न करना अन्तराय का स्वभाव है।

इन आठ कर्मो के १४८ भेद कहे गये है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अतराय कर्म जीव के क्रमश ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व तथा अनन्त वीर्यरूप अनुजीवी गुणो को घातने के कारण घातिया कहे जाते है। आयु, नाम, गोत्र तथा वेदनीय को अघातिया कर्म कहा है। ये जीव के अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व तथा अव्याबाधत्व नामक प्रतिजीवी गुणो को घातते है।

स्थितिबन्ध उसे कहते हैं, जिसके कारण प्रत्येक कर्म के बन्धन की कालमर्यादा निश्चित होती है। कर्मो के रस प्रदान की सामर्थ्य को अनुभागबन्ध कहा है। कर्मवर्गणाओ के परमाणुओं की परिगणना को प्रदेशबन्ध कहते हैं। कहा भी है—

"स्वभावः प्रकृतिः प्रोक्ता स्थितिः कालावधारणम्।
अनुभागो विपाकस्तु प्रदेशोंऽशविकल्पनम् ॥"

योग के कारण प्रकृति और प्रदेश बन्ध होते है। कषाय के कारण कर्मो मे स्थिति और अनुभाग का बन्ध होता है।

कर्मकृत परिणमन पर वैज्ञानिक दृष्टि

गन्धक, शोरा, तेजाब आदि के मिलने पर रासायनिक प्रक्रिया प्रारम्भ होती है तथा भिन्न प्रकार के तत्त्वविशेष की उपलब्धि होती है, इसी प्रकार कर्मो का जीव के साथ सम्मेलन होने पर रासायनिक क्रिया (Chemical action) प्रारम्भ होती है और उससे अनन्त प्रकार की विचित्रताएँ जीव के भावानुसार व्यक्त हुआ करती है। जीव के परिणामो मे वह बीज विद्यमान है जो प्रस्फुटित तथा विकसित होकर अनन्तविध विचित्रताओ को विशाल वट वृक्ष के समान दिखाता है। कोई जीव मरकर कुत्ता होता है, तो श्वान पर्याय मे उत्पन्न होने के पूर्व व्यक्ति की मनोवृत्ति मे श्वान वृत्ति के बीज सार रूप मे सगृहीत होगे, जिनके प्रभाव से गृहीत कार्मण-वर्गणा श्वान सम्बन्धी सामग्री (Environment) को प्राप्त करा देगी या उस रूप परिणत होगी।

आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म है, इसलिए उसे बॉधने वाली कार्मण वर्गणाओ का पुज भी बहुत सूक्ष्म है। उस सूक्ष्म पुज मे अनन्त प्रकार के परिणमन प्रदर्शन की सामर्थ्य है। अणु बम में (Atom bomb) आकार की अपेक्षा अत्यन्त लघुता का दर्शन होता है, किन्तु शक्ति की अपेक्षा वह सहस्रो विशाल बमो से अधिक कार्य करता है। भौतिक विज्ञान प्रयत्न करे तो राई के दाने से भी छोटा बम बन सकता है जो ससार-भर को हिला दे।

आत्मा के साथ मिली हुई कार्मण वर्गणाओ मे अनन्तानन्त प्रदेश कहे गये हैं जो अभव्य जीवो से अनन्त गुणित है, फिर भी सूक्ष्म होने के कारण वे इन्द्रियो के अगोचर है। उनमे विद्यमान कर्मशक्ति (Karmicenergy) अद्भुत खेल दिखाती है। किसी जीव को निगोद, अपर्याप्तक पर्यायवाला जीव बना एक श्वास मे अठारह बार शरीर-निर्माण और ध्वस-द्वारा जीवन-मरण को प्रदर्शित करती है। वह आत्मा की अनन्त ज्ञान-शक्ति को ढॉककर अक्षर के अनन्तवे भाग बना देती है। 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में कहा है—

"का वि अपुव्वा दीसादे पुग्गलदव्वस्स एरिसी सत्ती।
केवलणाणसहाओ विणासिदो जाइ जीवस्स ॥२११॥"

—पुद्गल कर्म की भी ऐसी अद्भुत सामर्थ्य है, जिसके कारण जीव का केवलज्ञान स्वभाव विनाश को प्राप्त हो गया है।

उस कर्म शक्ति के कारण गाय, बैल, ऊँट आदि का आकार-प्रकार प्राप्त होता है। ऐसा कौन-सा काम है जो उस शक्ति की परिधि के बाहर हो। ज्ञानावरण के रूप मे उसके द्वारा बुद्धि की हीनाधिकता का विचित्र दृश्य निर्मित होता है, लेकिन जिस प्रकार नाटक का अभिनय करानेवाला सूत्रधार होता है, जिसके सकेत के अनुसार कार्य होता है, इसी प्रकार सूत्रधारक जीव के भाव है। उन भावो की हीनता, उच्चता, वक्रता, सरलता, समलता, विमलता आदि पर जिन बाह्य क्रियाओ का प्रभाव पडता है, उनसे भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्म बँधते है। उनका वर्णन जैन महर्षियों ने किया है जिनके अध्ययन से मानव इस बात की कल्पना कर सकता है कि उसका अतीत कैसा था, जिससे उसे वर्तमान सामग्री मिली और वर्तमान विकृत अथवा विमल जीवन के अनुसार वह अपने किस प्रकार के भविष्य का निर्माण कर सकता है।

उदाहरणार्थ—एक व्यक्ति अत्यन्त मन्द ज्ञानी है। इसका क्या कारण है? शरीरशास्त्री तो शारीरिक कारणो के द्वारा मस्तिष्क के परमाणुओ की दुर्बलता को दोषी ठहराएगा, किन्तु कर्म सिद्धान्त का ज्ञाता कहेगा कि इस जीव ने पूर्व मे जब कि इसके वर्तमान जीवन का निर्माण हो रहा था, ज्ञान को ढाँकने वाली साधन

सामग्री को सगृहीत किया था। इसी प्रकार अन्य प्रकार के बाह्य और आभ्यन्तर कार्यों के विषय में कर्म सिद्धान्त वाला समर्थन करेगा।

कर्मो के आगमन के कारणो का स्पष्टीकरण

ज्ञानावरण के कारण—ज्ञानावरण कर्म में विशेष कारण निम्नलिखित बाते बतायी गयी है, जैसे—निर्मल ज्ञान के प्रकाशित होने पर मन मे दूषित भाव रखना, ज्ञान को छिपाना, योग्य व्यक्ति को दुर्भाववश ज्ञान प्रदान न करना, दूसरे की ज्ञान-साधना मे बाधा डालना, वाणी अथवा प्रवृत्ति के द्वारा ज्ञानवान् के ज्ञान का निषेध करना, पवित्र ज्ञान मे लाछन लगाना, निरादरपूर्वक ज्ञान का ग्रहण करना, ज्ञान का अभिमान तथा ज्ञानियो का अपमान, अन्याय पक्ष समर्थन मे शक्ति लगाना, अनेकान्त विद्या को दूषित करनेवाला कथन करना, आदि। इस प्रकार के कार्यों से जो जीव के मलिनभाव होते है, उनके द्वारा इस प्रकार का मलिन कर्मपुज गृहीत होता है जो ज्ञान के प्रकाश को ढाकता है।

दर्शनावरण के कारण—उपर्युक्त बाते दर्शन के विषय मे करने से दर्शनावरण कर्म आता है। उसके अन्य भी कारण है, जैसे अधिक सोना, दिन मे सोना, आँखो को फोड देना, निर्मल दृष्टि मे दोष लगाना, मिथ्या मार्गवालो की प्रशसा करना, आदि।

वेदनीय के कारण—जिस असातावेदनीय के कारण जीव कष्टमय जीवन बिताता है, उसके कारण ये हैं—स्व-पर अथवा दोनो को पीडा पहुँचाना, शोकाकुल रहना, हृदय मे दु खी बने रहना, रुदन करना, प्राणघात करना, अनुकम्पा उत्पादक फूट-फूटकर रोना, अन्य की निन्दा और चुगली करना, जीवों पर दया न करना, अन्य को सन्ताप देना, दमन करना, विश्वासघात, कुटिल स्वभाव, हिंसापूर्ण आजीविका, साधुजनो की निन्दा करना, उन्हे सदाचार के मार्ग से डिगाना, जाल, पिंजरा आदि जीवघातक पदार्थो का निर्माण करना, अहिंसात्मक वृत्ति का विनाश करना आदि।

जीव को आनन्दप्रद अवस्था प्राप्त करानेवाले सातावेदनीय के कारण ये हैं—जीवमात्र पर दया करना, सन्त जनो पर स्नेह रखना, उन्हे दान देना, प्रेमपूर्वक सयम पालन करना, विवशता में शान्त भाव से कष्टो को सहना करना, क्रोधादि का त्याग करना, जिनेन्द्र भगवान् की पूजा, सत्पुरुषो की सेवा-परिचर्या, आदि।

मोहनीय के कारण—मोहनीय कर्म के कारण मदोन्मत्त हो यह जीव न आत्मदर्शन कर पाता है और न सच्चे कल्याण के मार्ग मे लगता है।[1] दर्शनमोहनीय के कारण देव, गुरु, शास्त्र तथा तत्त्वों के विषय मे यह सम्यक् श्रद्धा वंचित रहता है और वैज्ञानिक दृष्टि से श्रेष्ठ और पवित्र प्रकाश को नहीं प्राप्त करता। इसके कारण ये है—जिनेन्द्र देव, वीतराग वाणी तथा दिगम्बर मुनिराज के प्रति काल्पनिक दोष लगाकर ससार की दृष्टि मे मलिन भाव उत्पन्न करना, धर्म तथा धर्म के फलरूप श्रेष्ठ आत्माओ मे पाप प्रवृत्तियो के पोषण की सामग्री को बताकर भ्रम उत्पन्न करना, मिथ्या मार्ग का प्रचार करना, आदि।

चारित्रमोहनीय के कारण यह जीव अपने निज स्वरूप मे स्थित न रहकर क्रोधादि विकृत अवस्था को प्राप्त करता है। क्रोधादि के तीव्र वेगवश मलिन प्रचण्ड भावो का करना, तपस्वियो की निन्दा तथा धर्म का ध्वस करना, सयमी पुरुषो के चित्त में चचलता उत्पन्न करने का उपाय करने से कषायो का बन्ध होता

---

१ आत्मा को पराधीन बनाकर दु खी बनाने में प्रमुख स्थान मोहनीय कर्म का है। मोह के कारण ज्ञान अज्ञानरूप बनता है। 'तत्त्वानुशासन' में मिथ्याज्ञान को मोह महाराज का मन्त्री कहा है—
"बन्धहेतुषु सर्वेषु मोहश्चक्रीति कीर्तितं । मिथ्याज्ञानं तु तस्यैव सचिवत्वमशिश्रयत ॥" —तत्त्वानुशासन, श्लोक १२
बन्ध के कारणों में मोह चक्रवर्ती कहा गया है। मिथ्याज्ञान ने सचिवरूप में उसका आश्रय लिया।
"ममाहकारनामानौ सेनान्यौ च तत्सुतौ। यदायत्त सुदुर्भेदो मोह-व्यूह प्रवर्तते ॥" —तत्त्वानुशासन, श्लोक १३
उस मोह के ममकार अहकार नाम के दो पुत्र सेनानायक हैं। उन दोनों के आधीन मोह का व्यूह—सेना का चक्र कार्य करता है।

है। अत्यन्त हास्य, बहुप्रलाप, दूसरे के उपहास से हास्य का पात्र बनता है। विचित्र रूप से क्रीडा करने से, औचित्य की सीमा का उल्लंघन करने से रति-वेदनीय का आगमन होता है। दूसरे के प्रति विद्वेष उत्पन्न करना, पापप्रवृत्ति वालों का ससर्ग करना, निन्द्य प्रवृत्ति को प्रेरणा प्रदान करना, आदि अरति प्रकृति के कारण हैं। दूसरे को दु:खी करना और दूसरे के दु:खों को देख हर्षित होना, शोक प्रकृति का कारण है। भय प्रकृति के द्वारा यह जीव भयभीत रहता है, उसका कारण भय के परिणाम रखना, दूसरो को डराना, सताना तथा निर्दयतापूर्ण प्रवृत्ति करना है। ग्लानिपूर्ण अवस्था का कारण जुगुप्सा प्रकृति है। पवित्र पुरुषों के योग्य आचरण की निन्दा करना, उनसे घृणा करना, आदि से यह बँधती है। स्त्रीत्व विशिष्ट स्त्रीवेद का कारण महान् क्रोधी स्वभाव रखना, तीव्र मान, ईर्ष्या, मिथ्यावचन, तीव्रराग, परस्त्रीसेवन के प्रति विशेष आसक्ति रखना, स्त्री सम्बन्धी भावों के प्रति तीव्र अनुराग भाव है। पुरुषत्व सम्पन्न पुरुषवेद के कारण क्रोध की न्यूनता, कुटिल भावो का अभाव, लोभ तथा मान का त्याग, अल्प राग, स्वस्त्रीसन्तोष, ईर्ष्या परिणाम की मन्दता, आभूषण आदि के प्रति उपेक्षा के भाव आदि हैं, जिसके उदय से नपुंसक वेद मिलता है। उसके कारण प्रचुर प्रमाण मे क्रोध, मान, माया, लोभ से दूषित परिणामो का सद्भाव, परस्त्रीसेवन, अत्यन्त हीन आचरण, तीव्र राग, आदि हैं।

आयु के कारण—नरक आयु के कारण बहुत आरम्भ और अधिक परिग्रह, हिसा के परिणाम, मिथ्यात्वपूर्ण आचरण, तीव्र मान तथा लोभ, दूसरे को सन्ताप पहुँचाना, सदाचार तथा शीलहीनता, काम, भोगसम्बन्धी अभिलाषा मे वृद्धि, बध-बन्धन करने के भाव, मिथ्याभाषण, पापनिमित्तक आहार, सन्मार्ग में दूषण लगाना, कृष्ण लेश्या युक्त रौद्र ध्यानसहित मरण करना है।

पशु पर्याय के कारण कुटिल तथा छलपूर्ण मनोवृत्ति तथा प्रवृत्ति, अधर्म प्रचार, विसवाद उत्पन्न करना, जाति, कुल तथा शील मे कलंक लगाना, नकली नाप-तौल का सामान रखना, नकली सोना, मोती, घी, दूध, अगर, कपूर, कुंकुम आदि के द्वारा लोगों को ठगना, सद्गुणो का लोप करना, आर्त्तध्यान युक्त मरण करना, आदि हैं।

मनुष्यायु के कारण अल्पारम्भ तथा अल्पपरिग्रह, मृदुल परिणाम, महान् पुरुषो का सम्मान, सन्तोष वृत्ति, दान में प्रवृत्ति, संक्लेश का अभाव, वाणी का संयम, भोगो के प्रति उदासीनता, पापपूर्ण कार्यो से निवृत्ति, अतिथि-संविभागशीलता, आदि है। प्रेमपूर्वक पूर्ण तथा अल्प सयम का धारण करना, सकट आने पर शान्त भाव धारण करना, तत्त्वज्ञान शून्य तपश्चर्या, दयापूर्ण अन्त करण आदि से देवायु की प्राप्ति होती है।

नाम के कारण—विकृत अग-उपाग होना, शरीर सम्बन्धी दोषों का सद्भाव, अपयश आदि का कारण अशुभ नाम-कर्म है। वह मन, वचन, कायकी कुटिलता, मिथ्याप्रचार, मिथ्यात्व, परनिन्दा, मिथ्या, कठोर तथा निरकुश भाषण, महा आरम्भ और परिग्रह, आभूषणो मे आसक्ति, मिथ्यासाक्षी, नकली पदार्थों का देना, वन में आग लगाना, पापपूर्ण आजीविका करना, तीव्र क्रोध, मान, माया, लोभ के परिणाम, मन्दिर के धूप, गन्ध, माल्य, आदि का अपहरण करना, अभिमान करना, अन्य के घातक यन्त्र आदि बनाना, दूसरे के द्रव्य का अपहरण करने से सम्पादित होता है। इस अशुभ नाम कर्म के कारण आज जगत् मे शारीरिक विकृतियों की बहुलता दिखती है। शुभ नाम कर्म का कारण पूर्वोक्त प्रवृत्तियों से विपरीतपना है।

गोत्र के कारण—लोकनिन्दित कुलों मे जन्म धारण करने का कारण नीच गोत्र है। वह जाति, कुल, रूप, बल, ऐश्वर्य आदि का मद, दूसरों का तिरस्कार अथवा अपवाद, सत्पुरुषो की निन्दा, यश का अपहरण करना, पूज्य पुरुषो का तिरस्कार करना, अपने को बडा बताना, दूसरो की हँसी उडाना आदि से प्राप्त होता है। श्रेष्ठ कुलों में उत्पन्न होकर लोकप्रतिष्ठा लाभ का कारण उच्च गोत्र कर्म है। यह मानरहितपना, सत्पुरुषो का आदर करना, जाति-कुल आदि का उत्कर्ष होते हुए उसका अभिमान नहीं करना, अन्य का तिरस्कार, निन्दा, उपहास न करना, अनुपमगुणभूषित होते हुए भी निरभिमानता, भस्म से ढँकी हुई अग्नि के समान अपनी महिमा को स्वय प्रकाशित न करना, धर्म के साधनों का सम्मान करना, आदि से प्राप्त होता है।

अन्तराय के कारण—प्रत्येक कार्य में विघ्न उपस्थित करनेवाला अन्तराय कर्म है। वह प्राणिवध, ज्ञान

का निषेध करना, धर्म-कार्यो मे विघ्न उत्पन्न करना, देवता को अर्पित नैवेद्य का प्रसादपूर्वक ग्रहण करना, भोजन-पान आदि मे विघ्न करना, निर्दोष सामग्री का परित्याग, गुरु तथा देवपूजा का व्याघात करना, आदि के द्वारा सम्पन्न होता है। यह अन्तराय कर्म दान देना, पदार्थो की प्राप्ति, उनका भोग तथा उपभोग मे बाधा उत्पन्न करता है। इसके ही कारण जीव शक्तिहीन होता है।

उपर्युक्त कारणो से ज्ञानावरण आदि को विशेष अनुभाग मिलता है, कारण आयुकर्म को छोडकर शेप कर्मो का निरन्तर वन्ध हुआ करता है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी ने यदि ज्ञान के साधनो मे बाधा उपस्थित की, तो उसके मोहनीय, अन्तराय आदि कर्मो का भी आस्रव होगा। इतनी विशेपता होगी कि ज्ञानावरण को विशेष अनुराग मिलेगा, ज्ञानावरण के रस मे प्रकर्षता होगी।

तत्त्वज्ञानी के बन्ध होता है या नही?

इस बन्धतत्त्व के विपय में कुछ लोगों की ऐसी समझ है कि सम्यक्त्व की आत्मनिधि मिलने पर आत्मा की बन्ध-परम्परा नष्ट हो जाती है। वे कहते हैं—वन्ध का कारण अज्ञान चेतना है। सम्यग्दृष्टि के ज्ञानचेतना होती है, इसलिए वह वन्धन की व्यथा से मुक्त है। ज्ञान से मुक्ति लाभ का समर्थन साख्य, वौद्ध, नैयायिक आदि भी करते है। यदि ज्ञान अथवा सम्यग्दर्शन के द्वारा कर्मो का अभाव हो जाये, तो रत्नत्रय-मार्ग की मान्यता के साथ कैसे समन्वय होगा?

सम्यग्दृष्टि के वन्ध के विषय मे अमृतचन्द्र सूरि लिखते है—"ज्ञानी जीव आस्रव-भावना के अभिप्राय के अभाववश निरास्रव है। वहॉ उसके भी द्रव्यप्रत्यय प्रत्येक समय अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मो को बॉधते है। इसमे ज्ञान गुण का परिणमन कारण है।"

यहॉ शकाकार पूछता है—ज्ञान गुण का परिणमन वन्ध का हेतु किस प्रकार है?

इस पर महर्षि कुन्दकुन्द कहते है—

"जम्हा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि।
अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो ॥" —समयसार, गा १७१

—'यत ज्ञानगुण जघन्य ज्ञानगुण से पुन अन्यरूप परिणमन करता है, तत वह ज्ञानगुण कर्म का बन्धक कहा गया है।'

इस प्रकार प्रकाश डालते हुए अमृतचन्द्र सूरि कहते है—"ज्ञानगुणस्य यावज्जघन्यो भाव, तावत् तस्यान्तर्मुहूर्तविपरिणामित्वात् पुन पुनरन्यतयाऽस्ति परिणाम । स तु यथाख्यातचारित्रावस्थाया अधस्तादवश्यभाविरागसद्भावात् बन्धहेतुरेव स्यात्" 'जब तक ज्ञानगुण का जघन्यभाव है—क्षायोपशमिक भाव है, तब तक उसका अन्तर्मुहूर्त मे विपरिणमन होता है, इस कारण पुन पुन अन्यरूप परिणमन होता है। वह ज्ञान का परिणमन यथाख्यात चारित्ररूप अवस्था के नीचे निश्चय से रागसहित होने से बन्धका ही कारण है।'

'सर्वार्थसिद्धि' मे कहा है; "यथाख्यात-विहारशुद्धि-सयता उपशान्तकषायादयोऽयोगकेवल्यन्ता " (१,८, पृष्ठ १२)—यथाख्यात विहारशुद्धि संयमी उपशान्तकषाय नामक ग्यारहवे गुणस्थान से अयोगी जिनपर्यन्त पाये जाते है। अत. कषायरहित जीवो के ही अबन्ध होता है। अध्यात्मशास्त्र मे सम्यक्त्वी के अबन्धकपने का अर्थ यही है कि कषायरहित सम्यक्त्वी के बन्ध नहीं होता है, शेष के बन्ध होता है। जिसके कषाय है, उससे अवश्य बन्ध होता है।

यदि ज्ञानगुण का जघन्य भावरूप परिणमन बन्ध का कारण है, तो ज्ञानी को कैसे निरास्रव कहा? इस शका के समाधान में आचार्य कुन्दकुन्द कहते है—

"दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहण्ण-भावेण।
णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण ॥" —समयसार, गा १७२

—"दर्शन, ज्ञान, चारित्र का जघन्य भाव से परिणमन होता है, इससे ज्ञानी जीव अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मो से बँधता है।"

इस विषय पर विशेष प्रकाश डालते हुए टीकाकार जयसेनाचार्य लिखते है--

--"इस कारण भेदज्ञानी अपने गुणस्थानो के अनुसार परम्परा रूप से मुक्ति के कारण तीर्थकर नामकर्म आदि प्रकृतिरूप पुद्गलात्मक अनेक पुण्यकर्मो से बँधता है।" (समयसार, पृ २४५)

शंका--कोई स्वाध्यायशील व्यक्ति पूछता है--यदि उपर्युक्त कथन ठीक है, तो उसका भगवत्कुन्दकुन्द के इस वचन से किस प्रकार समन्वय होगा--

"रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ॥" समयसार, गा. १७७

'सम्यक्त्वी के राग, द्वेष, मोह रूप आस्रवो का अभाव है।' इस गाथा के उत्तरार्ध मे आचार्य लिखते है--

"तम्हा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति।"

--अर्थात् इस कारण आस्रवभाव के अभाव मे द्रव्यप्रत्यय कर्मबन्ध के कारण नही होते है।

समाधान--इस विषय मे विरोध की कल्पना का निराकरण करते हुए जयसेनाचार्य लिखते है--

--"सम्यग्दृष्टि के अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्वोदयजनित राग-द्वेष मोह नही है, अन्यथा वह चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सरागसम्यक्त्वी नही हो सकेगा। अथवा अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, क्रोध, मान, माया, लोभोदयजनित राग, द्वेष-मोह सम्यक्त्वी के नही पाये जाते है, कारण षष्ठ गुणस्थानरूप सरागचारित्र के अविनाभावी सरागसम्यत्क्व की अन्य प्रकार से उपपत्ति नही पायी जाती है। अथवा अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, सज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभोदयजनित प्रमाद के उत्पादक राग-द्वेष-मोह सम्यक्त्वी के नही है, कारण अप्रमत्तादिगुणस्थानवर्ती वीतरागचारित्र के साथ अविनाभाव सम्बन्ध रखनेवाले वीतराग सम्यक्त्व की अन्य प्रकार से उपपत्ति नही पायी जाती है।"

इस सुव्यवस्थित तथा सुस्पष्ट निरूपण-द्वारा आचार्य महाराज ने यह समझा दिया है कि सम्यक्त्वी के बन्ध-अबन्ध का कथन एकान्तरूप से नही है। अविरत सम्यक्त्वी के मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी निमित्तक प्रकृतियो का बन्ध नही होता है, किन्तु अन्य कषायादि निमित्तक प्रकृतियों का बन्ध होता है। मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी निमित्तक प्रकृतियो के अभाव को मुख्य बना अविरत सम्यक्त्वी के अबन्ध का वर्णन सुसंगत है। इस विवक्षा को गौण बनाकर बन्ध को प्राप्त होनेवाली प्रकृतियो की अपेक्षा बन्ध का कथन भी समीचीन है।

शंका--सम्यक्त्वी के बन्धाभाव का एकान्तपक्ष वाले कहते है कि 'अविरत सम्यक्त्वी के जो अप्रत्याख्यानावरण, वज्रवृषभ सहनन, औदारिक शरीर आदि का बन्ध है, वह बन्ध नहीं के समान है।'

समाधान--इस कथन मे तात्त्विक विचार का अभाव है। जब अविरतसम्यक्त्वी के द्वारा बाँधे गये कर्मो मे कषाय और योग के कारण प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग बन्ध होते है, तब उनको बिलकुल ही तुच्छ मानना और सर्वथा अबन्ध घोषित करना जैन दृष्टि--स्याद्वाद विचार शैली के अनुकूल नहीं कहा जा सकता। जयसेनाचार्य ने पूर्णतया विश्लेषण करके सम्यक्त्वी को कथंचित् बन्धक और कथंचित् अबन्धक प्रमाणित कर दिया है।

आगम की आज्ञा--इस प्रसग मे *'षट्खण्डागमसूत्र'* के दूसरे खण्ड क्षुद्रबन्ध मे भूतबलि भट्टारक रचित महत्त्वपूर्ण सूत्र आया है। *'षट्खण्डागम'* सूत्र का साक्षात् सम्बन्ध गणधर की वाणी से रहा है, अत उस सूत्र का सर्वोपरि महत्त्व हो जाता है। वह सूत्र इस प्रकार है--"सम्मादिट्ठी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि" ३६--सम्यक्त्वी के बन्ध होता है, अबन्ध भी होता है। इस पर धवला टीकाकार कहते है--"कुदो? सासवाणासवेसु सम्मद्दसणुवलभा"--

प्रश्न--उपर्युक्त कथन क्यो किया गया?

उत्तर--आस्रवयुक्त तथा आस्रवरहित जीवो मे सम्यग्दर्शन का सद्भाव पाया जाता है।

इस कथन से दो प्रकार के सम्यक्त्वी ज्ञात होते है। एक सम्यक्त्वी सास्रव है और दूसरा आस्रवरहित

है। आस्रव के उत्तर क्षण मे वन्ध होता है, अत वन्धसहित भी सम्यक्त्वी होता है, यह सर्वज्ञ की प्ररूपणा शिरोधार्य करना श्रेयस्कर है। आस्रव का कारण योग है—"काय-वाड्मन कर्मयोग, स आस्रव "। ऐसी स्थिति मे सयोगकेवली को आस्रवयुक्त मानना होगा। आस्रवरहित अयोगकेवली माने गये हैं—"णिरुद्धणिस्सेस-आस्रवो जीवो गय जोगो केवली"—जब केवली भगवान् के सयोगी होने पर कर्मवन्ध माना है, तव अविरत सम्यक्त्वी को सर्वथा वन्धरहित कहना उचित नही है। उसके आस्रव तथा वन्ध के चार कारण अविरति, प्रमाद, कपाय और योग पाये जाते है।

वन्ध का लक्षण सूत्रकार ने इस प्रकार किया है—"सकपायत्वाज्जीव कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स वन्ध "—(८/२) जीव सकपाय होने के कारण जो कर्मों के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है, उसे वन्ध कहते हैं। यह लक्षण अविरत सम्यक्त्वी आदि के द्वारा गृहीत कर्मों मे गर्भित होने से उनके पाया जानेवाला वन्ध काल्पनिक नहीं है। सम्यग्दर्शन की प्राथमिक दशा मे अल्प मात्रा मे निर्जरा होती है। अविरति आदि कारणो से कर्मो का निरन्तर वन्ध होता रहता है। अविरत दशावाला कर्मों की महान् निर्जरा करता है, उसके वन्ध नहीं होता, ऐसा साहित्य प्रचार मे आता है, उससे प्रभावित चित्तवालो को पक्षमोह छोडना चाहिए।

महत्त्वपूर्ण कथन—गुणभद्र आचार्य का यह कथन ध्यान से मनन करने योग्य है। उन्होंने *'उत्तरपुराण'* मे विमलनाथ भगवान् के वैराग्यभाव का उल्लेख करते हुए कहा है कि भगवान् इस प्रकार सोचते है—जब तक ससार की अवधि है, तब तक इन उत्तम तीन ज्ञानो से क्या काम निकलता है और इस वीर्य से भी क्या लाभ है, यदि मैंने श्रेष्ठ विकास-मोक्ष को नहीं प्राप्त किया। भगवान् अपने चित्त मे विचारते है —

> "चारित्रस्य न गन्धोऽपि प्रत्याख्यानोदयो यत.।
> वन्धश्चतुर्विधोऽप्यस्ति वहुमोहपरिग्रह' ॥
> प्रमादाः सन्ति सर्वेऽपि निर्जराप्यल्पिकेव सा।
> अहो मोहस्य माहात्म्यं मान्याम्यहमिहैव हि॥ —उत्तरपुराण, पर्व ५९, श्लोक ३५-३६

प्रत्याख्यानावरण कपाय के उदय होने से मेरे चारित्र की गन्ध तक नही है तथा वहुत मोह और परिग्रह जनित प्रकृति, प्रदेश, स्थिति तथा अनुभाग रूप चतुर्विध वन्ध हो रहा है। मेरे सभी प्रमाद पाये जाते है। मेरे कर्मो की निर्जरा भी अत्यन्त अल्प प्रमाण मे होती है। अहो! यह मोह की महिमा है, जो मै (तीर्थकर होते हुए भी) इस ससार में ही वैठा हूँ"। भगवान् विमलनाथ के विचारो के माध्यम से चतुर्थ, पचम गुणस्थानवर्ती व्यक्ति की मनोदशा का यथार्थ स्वरूप समझा जा सकता है तथा इस प्रकाश मे देखने पर यह प्रतीत होता है कि कुछ आध्यात्मिक कवियो, लेखको तथा भजन-निर्माताओ ने जो अविरत सम्यक्त्वी के महत्त्व पर गहरा रग भरा है और उसे अवन्धक कहा है, वह उनकी निजी वस्तु है। आगम तो यह मानता है कि अविरत दशा मे अविरति आदि कारणो से वन्ध होता रहता है तथा पूर्वबद्ध कर्मो की निर्जरा अत्यन्त अल्प मात्रा मे होती है।

प्रश्न—चौथे गुणस्थान से आगे के गुणस्थान चारित्र के विकास से सम्बन्ध रखते है। असली रत्न कहो, विधि कहो, वह तो सम्यक्त्व है। चारित्र का कोई विशेष महत्त्व नही है क्या?

समाधान—यह धारणा सर्वज्ञ प्रणीत देशना से विपरीत है। सम्यक्त्व का महत्त्व सर्वोपरि है, किन्तु बिना चारित्र के वह सम्यक्त्व मोक्ष का कारण नहीं हो सकता। सम्यक्त्वी जिस वीतरागता की चर्चा करता है, वह रागरहितपना चारित्र धारण किए बिना असम्भव है। राग चारित्रमोह का भेद है। जितना-जितना चारित्र का धारण होता है, उतना-उतना रागरहित भाव जागृत होता जाता है। सोमदेव सूरि ने बडी मार्मिक बात कही है—

> "सम्यक्त्वात्सुगति- प्रोक्ता ज्ञानात्कीर्तिरुदाहृता।
> वृत्तात्पूजामवाप्नोति त्रयाच्च लभते शिवम् ॥"

सम्यक्त्व से मनुष्य तथा देवगति मे जन्म प्राप्त होता है, ज्ञान के द्वारा कीर्ति मिलती है तथा चारित्र के द्वारा पूज्यता प्राप्त होती है। तीनो के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सम्यक्‌चारित्र का महत्त्व—आचरण के बिना श्रद्धा शोभायान नही होती। सम्यक् श्रद्धा तथा चारित्र का भोग मणि-काचन योग सदृश है। कुन्दकुन्द स्वामी ने *'रयणसार'* मे कहा है—

"णाणी खवेई कम्मं णाणबलेणेदि बोल्लए अण्णाणी।
वेज्जो भेसज्जमहं जाणे इदि णस्सदे वाही ॥"—रयणसार, गा ७२

ज्ञानी पुरुष ज्ञान के प्रभाव से कर्मो का क्षय करता है, यह कथन करने वाला अज्ञानी है। मैं वैद्य हूँ, मै औषधि को जानता हूँ, क्या इतने जानने मात्र से व्याधि दूर हो जाएगी?

केवल सम्यग्दर्शन से सुगति प्राप्त होती है तथा मिथ्यात्व से नियमत कुगति मिलती है—यह कथन कुन्दकुन्द स्वामी को भी सम्मत है, इससे वे कहते है—

"सम्मत्तगुणाइ सुग्गइ मिच्छादो होइ दुग्गई णियमा।
इदि जाण किमिह बहुणा जं ते रुचेइ तं कुणहो ॥"—रयणसार, गा ६६

सम्यक्त्व के कारण सुगति तथा मिथ्यात्व से नियमत दुर्गति होती है, ऐसा जानो। अधिक कहने से क्या प्रयोजन? जो तुझको रुचे, वह कर।

'प्रवचनसार' मे कहा है—

"ण हि आगमेण सिज्झदि सद्दहणं जदि वि णत्थि अत्थेसु।
सद्दहमाणो अत्थे असंजदो वा ण णिव्वादि ॥" —प्रवचनसार, गा २३७

यदि पदार्थो की सम्यक् श्रद्धा नहीं है, तो शास्त्रज्ञान के बल से मोक्ष नही होगा। कदाचित् पदार्थो की श्रद्धा भी है और सयम नही है, तो ऐसा असयमी सम्यक्त्वी भी मोक्ष नहीं पाएगा। अत अमृतचन्द्र सूरि कहते है—"तत सयमशून्यात् श्रद्धानात् ज्ञानाद्वा नास्ति सिद्धि ।" (पृ ३२८)

अयोगकेवली रूप सम्यक्त्वी के सर्वथा बन्ध का अभाव है। उपशान्त कषाय, क्षीण कषाय तथा सयोगी जिनके केवल सातावेदनीय का प्रकृति तथा प्रदेशबन्ध योग के कारण होता है। उससे नीचे चारो बन्ध होते है।

सम्यक्त्वी ही कुछ प्रकृतियों का बन्धक—कर्मो मे कुछ प्रकृतियॉ तो मिथ्यात्वी जीव बाँधता है और कुछ ऐसी प्रकृतियॉ जिनके लिए विशुद्धभाव कारण होने से सम्यक्त्वी ही बन्धक कहा गया है। इतना ही नहीं, शुक्लध्यानी, शुद्धोपयोगी मुनीन्द्र तक पुण्य कर्म रूप प्रकृतियो का बन्ध करते है। जिनके क्रोध, मान तथा माया कषाय का अभाव हो चुका है, ऐसे सूक्ष्म लोभ गुणस्थान वाले मुनिराज के उच्चगोत्र, यश कीर्ति रूप पुण्यप्रकृतियॉं उत्कृष्ट अनुभागबन्ध युक्त बॅधती है। *'महाबन्ध'* मे लिखा है—"आहारसरीर-आहारसरीरगोवगाण को बधको? को अबधको? अप्पमत्त-अपुव्वकरणद्धाए सखेज्जभाग गतूण बधो वोच्छिज्जदि। एदे बधा, अवसेसा अबधा"—आहारकशरीर तथा आहारकशरीरागोपाग का कौन बन्धक है, कौन अबन्धक है? अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि तथा अपूर्वकरण के काल मे सख्यातभाग व्यतीत होने पर बन्ध की व्युच्छित्ति होती है। उपर्युक्त गुणस्थान वाले बन्धक है, शेष अबन्धक है।

"तित्थयरस्स को बधको, को अबधो? असजदसम्माइट्ठि याव अपुव्वकरण० बधा०। अपुव्वकरणद्धाए सखेज्जभाग गतूण बधो वोच्छिज्जदि। एदे बधा, अवसेसा अबधा।—" तीर्थकर प्रकृतिका कौन बन्धक है, कौन अबन्धक है? असयतसम्यग्दृष्टि लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त बन्धक है। अपूर्वकरण के काल के सख्यातभाग व्यतीत होने तक बन्ध होता है। आगे बन्ध की व्युच्छित्ति हो जाती है। अत पूर्वोक्त बन्धक है तथा शेष अबन्धक है। (*'महाबन्ध'* प्रकृतिबन्ध, भाग १, ताम्र पत्र प्रति, पृ ५) जीव के भावो की विचित्रता का रहस्य सर्वज्ञ ज्ञानगम्य है। सकल सयम के धारक शुक्लध्यान मे निमग्न शुद्धोपयोग की उच्च स्थिति

को प्राप्त व्यक्ति के जब पुण्य प्रकृतियो का वन्ध होता है, तव नीचे की अवस्थावाले अविरत सम्यक्त्वी को बन्धरहित कहना सोचना, समझना तथा समझाना परमागम की देशना के विपरीत कथन करना है।

क्या सम्यक्त्वी के ज्ञानचेतना ही होती है?

शंका–सम्यक्त्वी के वन्धाभाव का समर्थन शकाकार अन्य प्रकार से करता हुआ कहता है। सम्यक्त्वी के ज्ञानचेतना होती है, इससे उस वन्ध का अभाव आगमाविरुद्ध है।

समाधान–मिथ्यात्वी के ज्ञान चेतना का अभाव सवको इष्ट है। सम्यक्त्वी के ज्ञान चेतना ही होती है, ऐसी बात नही है। चेतना के स्वरूपपर विशेष प्रकाश डालते हुए अमृतचन्द्रसूरि 'समयसार' की टीका म

(पृ ४८१) लिखते है–"ज्ञान से अन्यत्र मै 'यह' हूँ, इस प्रकार का चिन्तन अज्ञानचेतना है। वह कर्मचेतना, कर्मफल चेतना के भेद से दो प्रकार की है। ज्ञान से पृथक् मै 'यह' करता हूँ, यह चिन्तन कर्म चेतना है। ज्ञान से अन्य मै यह अनुभव करता हूँ, इस प्रकार का चिन्तन कर्मफल चेतना है। दोनो चेतनाएँ समान रसवाली है तथा ससार की कारण है। ससार का वीज अष्टविध कर्मो के वीजरूप होता है। अत मुमुक्षु को उचित है कि वह अज्ञान चेतना को दूर करने के लिए सम्पूर्ण कर्मो के त्याग की भावना तथा सम्पूर्ण कर्मफल त्याग की भावना को नृत्य कराकर आत्मस्वरूपवाली भगवती ज्ञान चेतना को ही नित्य नृत्य करावे।"

इस विषय को अधिक स्पष्ट करते हुए जयसेनाचार्य लिखते है–"मेरा कर्म है, मेरे द्वारा किया गया है, इस प्रकार अज्ञान भाव से मन-वचन-काय की क्रिया करना कर्म चेतना है। आत्मस्वभाव से रहित अज्ञानभाव द्वारा इष्ट अनिष्ट विकल्परूप से हर्ष, विषाद, सुख-दु ख का जो अनुभवन करना है, वह कर्मफल चेतना है। (पृ ४६०) कुन्दकुन्द स्वामी 'प्रवचनसार' मे कहते है–

> **"परिणमदि चेदणाए आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा।**
> **सा पुण णाणे कम्मे फलम्मि वा कम्मणो भणिदा ॥"** –गा १२३

–'चेतना की ज्ञानरूप परिणति ज्ञानचेतना है, कर्मरूप परिणति कर्म-चेतना तथा फलरूप परिणति कर्मफल-चेतना है।'

इससे यह प्रकट होता है कि ज्ञानचेतना में ज्ञातृत्व भाव है, कर्मचेतना मे कर्तृत्व परिणति है और कर्मफल चेतना मे भोक्तृत्व भाव है।

सम्यक्त्वी के कर्म तथा कर्मफल चेतना का सद्भाव

सम्यक्त्वी के ज्ञान चेतना ही पायी जाती है, इस भ्रम का निवारण करते हुए पचाध्यायीकार कहते है–

> **"अस्ति तस्यापि सद्दृष्टेः कस्यचित् कर्मचेतना।**
> **अपि कर्मफले सा स्यादर्थतो ज्ञानचेतना ॥"** –पचाध्यायी, २,२७५

–'किसी सम्यक्त्वी के कर्म तथा कर्मचेतना भी पायी जाती है। किन्तु परमार्थ से सम्यक्त्वी के ज्ञान चेतना पायी जाती है।'

यहाँ पूर्ण ज्ञान विशिष्ट सम्यक्त्वी को लक्ष्य मे रखकर उसके ज्ञानचेतना का परमार्थ रूप से सद्भाव प्रतिपादित किया है। अपूर्ण ज्ञानी की अपेक्षा कर्मचेतना तथा कर्मफल चेतना भी कही है।[1] इस दृष्टि का स्पष्टीकरण निम्नलिखित पद्य से होता है–

---

१ "सर्वे कर्मफल मुख्यभावेन स्यावरास्त्रसा । सकार्य चेतयन्तस्ते प्राणित्वाज्ज्ञानमेव च ॥" अन ध २/३५

"चेतनायाः फलं बन्धस्तत्फले वाऽथ कर्मणि।
रागाभावान्न बन्धोऽस्य तस्मात्सा ज्ञानचेतना ॥" –पचाध्यायी, २,२७६

–'कर्म तथा कर्मफलचेतना का फल वन्ध कहा है। उस सम्यक्त्वी के राग का अभाव होने से बन्ध नहीं है। अत उसके ज्ञानचेतना है।' यहाँ रागाभाव होने से वन्ध का अभाव कहा है। यह रागाभाव उपशान्तकषायादि गुणस्थान मे होगा, अत उसके पूर्व रागभाव का सद्भाव होने से वन्ध का होना स्वीकार करना होगा। यथार्थ ज्ञानचेतना केवलज्ञानी के होगी जिनके अज्ञान का अभाव हो गया है और छद्मस्थ अवस्था से अतीत हो गये है। कुन्दकुन्द स्वामी की यह गाथा इस विषय मे बहुत उपयोगी है।

"सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसादि कज्जजुदं।
पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा ॥" –पचास्तिकाय, गा ३९।

–"सम्पूर्ण स्थावर जीवो के कर्मफल चेतना है। त्रस जीवो मे कर्मफल के सिवाय कर्मचेतना भी पायी जाती है। प्राणी इस व्यपदेश को अतिक्रान्त-जीवन्मुक्त ज्ञानचेतना का अनुभवन करते है। यहाँ 'जीवन्मुक्त' शब्द का अर्थ अविरत सम्यक्त्वी नही, किन्तु केवली भगवान् है, कारण टीकाकार अमृतचन्द्र सूरि ने लिखा है कि सम्पूर्ण मोह कलक के नाशक, ज्ञानावरण-दर्शनावरण ध्वस करनेवाले, वीर्यान्तराय के क्षय से अनन्तवीर्य को प्राप्त करने वाले अत्यन्त कृतकृत्य केवली भगवान् ज्ञानचेतना को ही अनुभव करते है।

'पचास्तिकाय' टीका के ये शब्द महत्त्वपूर्ण है–"तत्र स्थावरा कर्मफल चेतयन्ते। त्रसा कार्य चेतयन्ते। केवलज्ञानिनो ज्ञान चेतयन्ते (पचास्तिकाय टीका, पृ १२) स्थावर जीव कर्मफलचेतना का अनुभवन करते है। त्रस जीव कर्मचेतना का अनुभव करते है। केवलज्ञानी ज्ञानचेतना का अनुभवन करते है।

'अनगारधर्मामृत' की सस्कृत टीका (पृ १०७ मे पण्डितप्रवर आशाधरजी लिखते है–*"जीवन्मुक्तास्तु मुख्यभावेन ज्ञानम्। गौणतया त्वन्यदपि। सा चोभय्यपि जीवन्मुक्तेर्गौणी बुद्धिपूर्वक कर्तृत्व-भोक्तृत्वयोरुच्छेदात्"* –जीवन्मुक्तो के मुख्यता से ज्ञान चेतना है। गौण रूप से उनके अन्य भी चेतनाएँ है। वे कर्म और कर्मफल चेतनाएँ जीवन्मुक्त मे मुख्य नही, किन्तु गौणरूप से है, कारण उनमे बुद्धिपूर्वक कर्तृत्व और भोक्तृत्व का अभाव हो चुका है।

इस विवेचन से यह विदित हो जाता है कि केवली भगवान् से नीचे के गुणस्थानवर्ती सम्यक्त्वी जीवो मे कर्म और कर्मफल चेतनाएँ भी पायी जाती है। अविरत सम्यक्त्वी के विचित्र कार्यो को बन्धरहित बताना और उसे सदा सजग ज्ञानचेतना का ही स्वामी कहना बडी आश्चर्यप्रद बात है। क्षायिक सम्यक्त्वी श्रेणिक महाराज ने आत्मघात करके प्राण परित्याग किये। परम धार्मिक सीता के प्रतीन्द्र पर्याय के जीवन ने तपश्चर्या मे निमग्न महामुनि रामचन्द्र को धर्म से डिगाने का मोहवश प्रयत्न किया, ताकि रामचन्द्रजी का सीता के स्वर्ग मे ही उत्पाद हो जाए। ये क्रियाएँ शुद्धचेतना के प्रकाश को नहीं बताती है। इन पर कर्म, कर्मफल चेतनाओ का प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है। चारित्रमोहोदयवश ये क्रियाएँ हुआ करती है। 'सदन-निवासी, तदपि उदासी तातें आस्रव छटाछटी-सी–यह सम्यक्त्वी गृहस्थ का चित्रण सम्पूर्ण आस्रव के निरोध को नहीं बताता है। मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी तथा असयम निमित्तक आस्रव के निरोध का ज्ञापक है। अत परमागम के प्रकाश से ज्ञात होता है कि सम्यक्त्वी के जघन्य अवस्था में ज्ञानचेतना के सिवाय कर्म और कर्मफल चेतनाएँ भी पायी जाती है। उनके कारण वह किन्ही प्रकृतियों का बन्ध नही करता है और किन्ही कर्म-प्रकृतियो का बन्ध भी करता है, इस प्रकार का स्याद्वाद है।

ग्रन्थ का विषय–*'महाबन्ध'* के इस *'पयडिबन्धाहियार'*–प्रकृतिबन्धाधिकार नामक खण्ड मे प्रकृतिसमुत्कीर्तन, सर्वबन्ध, नोसर्वबन्ध, उत्कृष्टबन्ध, जघन्यबन्ध, अजघन्यबन्ध, सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध, अध्रुवबन्ध, बन्धस्वामित्वविचय, बन्धकाल, बन्ध-अन्तर, बन्धसन्निकर्ष, भगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव तथा अल्पबहुत्व–इन चौबीस अनुयोग द्वारो से प्रकृति बन्ध पर प्रकाश डाला गया है।

इस कर्मबन्धन के कारण अनन्त ज्ञान-आनन्द शक्ति, आदि का अधिपति यह आत्मा दीनतापूर्ण जीवन बिता कष्ट उठाता है। इस आत्मा का यथार्थ कल्याण आत्मीय दोषो के निर्मूल करने मे है। समाधि की प्रचण्ड अग्नि द्वारा इस दोष-पुज का अविलम्ब क्षय होता है। सवर और निर्जरा रूप परिणति से उस स्वरूप की उपलब्धि हो जाती है, जिसको परम निर्वाण कहते है। इस पद का प्रधान कारण भेदज्ञान की प्राप्ति है। मेरा आत्मा एक है, ज्ञान-दर्शनमय है, शेष सर्व अनात्म भाव है। इस विद्या के प्रभाव से सिद्धत्व की अभिव्यक्ति होती है। बन्ध की विपत्ति से बचने के लिए योगीन्द्रदेव कहते है--

"अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय, अण्णु जि गुरुउ म सेवि।
अण्णु जि देउ म चिंति तुहुं, अप्पा विमलु मुएवि ॥" परमात्मप्रकाश, अ १, दो. ९५

"हे आत्मन्! तू दूसरे तीर्थो को मत जा, अन्य गुरु की शरण मे मत पहुँच, अन्य देव का चिन्तवन मत कर। अपनी निर्मल आत्मा को छोडकर अन्य का चिन्तन मत कर।"

जब आत्मा यह समझ लेता है कि मै कर्मो के बन्ध मे बद्ध हो गया हूँ, किन्तु मै इससे भिन्न स्वरूपवाला हूँ, तब उसे सच्चा प्रकाश प्राप्त हो जाता है। तत्त्व की बात तो इतनी है--

"भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥"

'जो जीव सिद्ध हुए है, वे सब अभेदरत्नत्रय स्वरूप भेद-विज्ञान से सिद्ध हुए है। जो अब तक ससार मे बद्ध हैं, वे उस निर्विकल्पज्ञान के अभाव से बँधे है।

भेदविज्ञान की लोकोत्तरता

भेदविज्ञान की उपलब्धि सरल कार्य नही है। उसके लिए ही सर्व उद्योग मुमुक्षु पुरुष किया करते है। विश्व के अतुलनीय साम्राज्य और विभूति का त्याग करके भी उसकी प्राप्ति दुर्लभ रहती है। भेदविज्ञान के पश्चात् अद्वैत भावना के अभ्यास द्वारा निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करके जब जीव एकत्व-वितर्क नाम के द्वितीय शुक्लध्यान को प्राप्त करता है, तब कर्मो का राजा मोहनीय क्षय को प्राप्त होता है। उस समय क्षण मात्र मे आत्मा अर्हन्त बनकर अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख तथा अनन्तवीर्य रूप अनन्त चतुष्टय से समलकृत होता है। उस प्राप्तव्य परम पदवी के लिए उपायरूप मार्गदर्शन गुणभद्राचार्य के इन शब्दो-द्वारा प्राप्त होता है--

"अकिंचनोऽहमित्यास्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवेः।
योगिगम्यं तव प्रोक्तं रहस्यं परमात्मनः ॥--आत्मानुशासन, श्लोक ११०

हे भद्र! 'अकिचनोऽह' 'मेरा कुछ नहीं है', इस भावना के साथ स्थित हो। ऐसा करने से तू त्रिलोकीनाथ बन जाएगा। मैने यह तुझको परमात्मा का रहस्य कहा है जो योगियो के ही अनुभवगम्य है।

सत्पथ--इस अकिचनपने की भावना के साथ सयमशील पुनीत जीवन भी आवश्यक है। वे मुनीश्वर यह मार्मिक बात कहते है--

"दुर्लभमशुद्धमपसुखमविदितमृतिसमयमल्पपरमायुः।
मानुष्यमिहैव तपो मुक्तिस्तपसैव तत्तपः कार्यम् ॥१११॥"

यह मनुष्य पर्याय दुर्लभ, अशुद्ध, सुखरहित है। इस पर्याय मे आगामी मरण कब होगा, यह अविदित है। अन्य पर्यायो की तुलना मे आयु भी थोडी है। यह विशेष बात है कि तप साधना इसी पर्याय मे सम्भव है। कर्मक्षयरूप मुक्ति उसी तप से प्राप्त होती है। इससे तप का आचरण भी करना चाहिए।

आचार्य वादीभसिहसूरि 'क्षत्रचूडामणि' मे कहते है--

"नटवन्नैकवेषेण भ्रमस्यात्मन्स्वकर्मतः।
तिरश्चि निरये पापाद्दिवि पुण्याद्द्वयान्नरे ॥" —क्षत्रचूडामणि, ११,३६

"हे आत्मन्! तू अपने कर्म के उदय से नाटक के नटके समान जगत् मे भ्रमण करता है। पाप के उदय से तिर्यच और नरक पर्याय पाता है। पुण्य के उदय से देव होता है तथा पाप और पुण्य के सयुक्त उदय से मनुष्य पर्याय पाता है।"

"त्वमेव कर्मणां कर्त्ता भोक्ता च फलसन्ततेः।
भोक्ता च तात किं मुक्तौ स्वाधीनायां न चेष्टसे ॥" —क्षत्रचूडामणि, ११,४५

हे आत्मन्! तू ही अपने कर्मो का बन्ध करता है और उसकी फलपरम्परा का भोक्ता भी तू है। तू ही कर्मो का क्षय करने मे समर्थ है। हे तात! मुक्ति तेरे स्वाधीन है, उसके लिए क्यो नही उद्योग करता है?

कवि कर्मो के कुचक्र से बचने के हेतु आत्मा को सचेत करता हुआ कहता है—भद्र! तू इन कर्माष्ट के दुष्कृत्यो पर दृष्टि देकर उनके विषय मे धोखा मत खा। इन कर्मो का ढग बडा अद्भुत है। क्षणभर मे ये तुझे सिहासन का अधिपति बनाकर दूसरे काल मे तुझे भिखारी भी बना सकते है। इन पर विश्वास मत कर—

"आठन की करतूति विचारहु कौन-कौन ये करते हाल।
कबहूँ सिर पर छत्र फिरावे, कबहूँ रूप करें बेहाल।
देव-लोक सुख कबहूँ भुगते, कबहूँ रंक नाज को काल।
ये करतूति करे कर्मादिक चेतन रूप तू आप सम्हाल ॥"

सार की बात

मोक्ष प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थी मानव को आत्मा और अनात्मा का पूर्णतया स्पष्ट अवबोध आवश्यक है। इसके पश्चात् जीव परम-यथाख्यात चारित्र के द्वारा कर्म-शैल के ध्वस करने मे समर्थ होता है। आचार्य कुन्दकुन्द की यह अमृतवाणी अमृत पथ को इन सारगर्भित शब्दो-द्वारा स्पष्ट करती है—

"बंधाणं च सहावं वियाणिदुं अप्पणो सहावं च।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्म—विमोक्खणं कुणदि ॥" —समयसार, गा २९३

जो विवेकी बन्ध का तथा आत्मा का स्वभाव सम्यक् प्रकार से अवगत कर बन्ध से विरक्त होता है, वह कर्मो का पूर्णतया क्षय करता है।[1]

'तत्त्वानुशासन' की तत्त्वदेशना अभिवन्दनीय है—

"कर्मजेभ्यः समस्तेभ्यः भावेभ्यो भिन्नमन्वहम्।
ज्ञ-स्वभावमुदासीनं पश्येदात्मानमात्मना ॥१६४॥"

मेरा आत्मा सम्पूर्ण कर्मजनित भावो से सर्वदा भिन्न है तथा वह ज्ञान स्वभाव एव उदासीनरूप (राग-द्वेषरहित) है, ऐसा अपनी आत्मा के द्वारा आत्मा का दर्शन करे।

---

१ Whoever with a clear knowledge of the nature of Karmic bondage as well as the nature of the Self, does not get attracted by bondage—that person obtains liberation from *karmas* (Samayasara by Prof A Chakravarti, P 189)

विषय-परिचय

'महाबन्ध' के प्रथम भाग का नाम--प्रकृतिबन्धाधिकार (पयडिबधाहियारो) है। इसमे प्रकृतिबन्ध का अधिकार है। प्रकृतियो के स्वरूप का निरूपण करना *'प्रकृति समुत्कीर्तन'* कहलाता है जो 'महाबन्ध' के प्रथम भाग का मूल विषय है, किन्तु ताडपत्र के त्रुटित होने से कुछ अश प्रकाशित नही हो सका है। प्रकृतिसमुत्कीर्तन के दो भेद है--मूलप्रकृतिसमुत्कीर्तन और उत्तरप्रकृतिसमुत्कीर्तन। अपने अन्तर्गत समस्त भेदो का सग्रह करनेवाली तथा द्रव्यार्थिकनय--निबन्धक प्रकृति का नाम मूल प्रकृति है। अलग-अलग अवयव वाली तथा पर्यायार्थिकनय निमित्तक प्रकृति को उत्तरप्रकृति कहते है। मूल मे जीव और कर्म स्वतन्त्र दो द्रव्य है। जीव अमूर्त है और कर्म मूर्तिक है। अनादि काल से जीव और कर्म का भावात्मक तथा द्रव्यात्मक सम्बन्ध है। 'प्रकृति' शब्द का अर्थ शील, स्वभाव है। निक्षेप की दृष्टि से विचार किया जाए, तो नामप्रकृति, स्थापनाप्रकृति, द्रव्यप्रकृति और भावप्रकृति ये चार भेद किये गये है। द्रव्यप्रकृति के भी दो भेद है--आगमद्रव्यप्रकृति और नोआगमद्रव्यप्रकृति। 'द्रव्य' का अर्थ यहॉ पर भव्य है। इसके दो भेद हैं--कर्मद्रव्यप्रकृति और नोकर्मद्रव्यप्रकृति। जैसे, घट, सकोरा आदि की प्रकृति मिट्टी है, पुद्गल की प्रकृति पूरन-गलन है, वैसे ही ज्ञानावरवादि आठ कर्मो की अपनी-अपनी प्रकृति है। ज्ञान जीव का स्वभाव है और ज्ञान का आवरण करना यह ज्ञानावरण कर्म का स्वभाव है। ज्ञानावरणकर्म की पॉच प्रकृतियॉ है--आभिनिबोधिकज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन पर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। मिथ्यात्व के उदय में होने वाले आभिनिबोधिक, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञान को कुज्ञान कहा जाता है। ज्ञान एक होने पर भी बन्धविशेष के कारण वह पॉच प्रकार का कहा गया है।

आभिनिबोधिकज्ञान पॉच इन्द्रियो और मनके निमित्त से अप्राप्त रूप बारह प्रकार के पदार्थो का अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा एव प्राप्त रूप उन बारह प्रकार के पदार्थो के स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्र इन्द्रियो के द्वारा मात्र अवग्रह रूप होता है, इसलिये इसके अनेक भेद हो जाते है। अर्थावग्रह रूप होता है, इसलिए इसके अनेक भेद हो जाते है। अर्थावग्रह व्यक्त वस्तु को ग्रहण करता है जो इन्द्रिय और मन के द्वारा होता है। ईहा, अवाय और धारणा ज्ञान भी पॉच इन्द्रियों और मन से होने के कारण अर्थावग्रहकी भॉति प्रत्येक छह-छह भेदवाला है। इस कारण व्यजनावग्रह के चार भेदो मे अर्थावग्रहादि के चौबीस भेदो को मिलाने से २८ भेद होते है। अतएव आभिनिबोधिकज्ञानावरण कर्म के भी २८ भेद हो जाते है। इसके बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, उक्त, अनुक्त, ध्रुव, अध्रुव, नि सृत, अनि सृत--इन बारह प्रकार के पदार्थो को विषय करने से प्रत्येक के बारह-बारह भेद हो जाते है। इस प्रकार २८ × १२=३३६ भेद मतिज्ञान या आभिनिबोधिकज्ञान के होते है। अत आभिनिबोधिक ज्ञानावरणकर्म के भी ३३६ भेद होते है।

ज्ञानका दूसरा भेद श्रुतज्ञान है। यह मतिज्ञानपूर्वक मन के आलम्बन से होता है। श्रुतज्ञान के शब्दजन्य तथा लिगजन्य दो भेद किये गये है। यथार्थ मे पदार्थ को जानकर उसके सम्बन्ध मे या उससे सम्बन्धित अन्य पदार्थ के सम्बन्ध मे विचार-धारा की प्रवृत्ति होना श्रुतज्ञान है। इस दृष्टि से श्रुतज्ञान अक्षरात्मक, अनक्षरात्मक अथवा द्रव्य--भाव के भेद से दो प्रकार का है। अत आचाराग, सूत्रकृताग आदि बारह अग, उत्पाद पूर्व आदि चौदह पूर्व और सामायिकादि चौदह प्रकीर्णक द्रव्यश्रुत है। द्रव्यश्रुत अँक्षरात्मक है। उसके सुनने-पढने से श्रुतज्ञान की पर्याय रूप जो उत्पन्न हुआ ज्ञान है, वह भावश्रुत है। वर्तमान परमागम नामसे द्रव्यश्रुत तथा परमागके आधार से उत्पन्न निर्विकार, स्वसवेदन (आत्मानुभव) ज्ञान रूप भावश्रुतज्ञान है। अत. आत्मविषयक उपयोग दर्शन कहा गया है। दर्शन ज्ञानरूप नही होता, क्योकि ज्ञान बाह्य अर्थो को विषय करता है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा से सीमित ज्ञान को अवधिज्ञान कहते है। इसको सीमाज्ञान भी कहते है। महास्कन्ध से लेकर परमाणु पर्यन्त समस्त पुद्गल द्रव्यो को, असख्यात लोकप्रमाण क्षेत्र, काल और भावो को तथा कर्म के सम्बन्ध से पुद्गलभावको प्राप्त हुए जीवो को जो प्रत्यक्ष रूप से जानता है, उसे अवधिज्ञान समझना चाहिए। जहाँ इस ज्ञान का विकास नहीं हो रहा है, वह अवधिज्ञानावरणीय कर्म है जो एक प्रकार का है। उसकी प्ररूपणा दो प्रकार की है। क्षयोपशम की दृष्टि से असख्यात प्रकार का होने पर भी अवधिज्ञान के मुख्य दो भेद कहे गये है—भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय। भवप्रत्यय अवधिज्ञान देवो, नारकियो और तीर्थकरो के होता है और गुणप्रत्यय अवधिज्ञान तिर्यचो तथा मनुष्यो के होता है। इन दोनो अवधिज्ञानो के अनेक भेद है—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि तथा हीयमान, वर्द्धमान, अवस्थित, अनवस्थित, अनुगामी, अननुगामी, सप्रतिपाती, अप्रतिपाती, एकक्षेत्र और अनेकक्षेत्र। इन सबका प्रतिबन्धक होने से अवधिज्ञानावरण कर्म कहा जाता है। इसकी असख्यात कर्म-प्रकृतियाँ है। काल की अपेक्षा अवधिज्ञान जघन्य से दो-तीन तथा उत्कर्ष से सात-आठ भवो का जानता है।

दूसरे के मन मे स्थित विषय को जो जानता है, वह मन पर्यय ज्ञान है। इसका जो आवरण करता है, वह मन पर्यय ज्ञानावरण कर्म है। मन पर्ययज्ञान के दो भेद है—ऋजुमति और विपुलमति। पैतालीस लाख योजन के भीतर के चित्तगत स्थित पदार्थ को मन पर्ययज्ञान जानता है। मन पर्ययज्ञान पराधीन ज्ञान नहीं है। वर्तमान काल मे जीवो के मन मे स्थित सरल मनोगत, वचनगत और कायगत पदार्थ को जो जानता है, वह ऋजुमति मन पर्ययज्ञान है। जिसकी मति विस्तीर्ण है, वह विपुलमति मन पर्ययज्ञान है। द्रव्य की अपेक्षा वह जघन्य रूप से चक्षु इन्द्रिय की निर्जरा को जानता है। कालकी अपेक्षा जघन्य से सात-आठ भवो को और उत्कृष्ट से असख्यात भवो को जानता है। श्रेत्र की अपेक्षा जघन्य से योजनपृथक्त्वप्रमाण (आठ-नौ घन योजन प्रमाण) क्षेत्र को जानता है। भाव की अपेक्षा जो भी द्रव्य इसे ज्ञात है उस—उसकी असख्यात पर्यायो को जानता है। ऋजुमति मे इन्द्रियो और मन की अपेक्षा होती है, किन्तु विपुलमति मे उनकी अपेक्षा नहीं होती है।

केवलज्ञान सम्पूर्ण तथा अखण्ड है। खण्डरहित होने से वह सकल है। पूर्ण रूप से विकास को प्राप्त होने से उसे सम्पूर्ण कहा गया है। कर्म-शत्रुओ का अभाव होने से वह असपत्न है। केवलज्ञान का विषय तीनो कालो और तीनो लोको के सम्पूर्ण पदार्थ माने गये है। यथार्थ मे केवलज्ञान की स्वच्छता का ऐसा परिणमन है कि तीनो लोको व तीनो कालो के जितने पदार्थ है वे सब एक साथ एक समय मे केवलज्ञान मे झलकते है। लोक मे ऐसा कोई ज्ञेय नहीं है जो केवलज्ञान का विषय न हो। अत ज्ञान का धर्म ज्ञेय को जानना है और ज्ञेय का स्वभाव ज्ञान का विषय होना है। इन दोनो मे विषय-विषयीभाव का सम्बन्ध है। लेकिन सर्वज्ञ का ज्ञान सम्पूर्ण सम्बन्धो से रहित परम स्वाधीन है। फिर, ज्ञान ज्ञान-चेतना से निकलकर बाहर जाता नही है और ज्ञेय कभी भी ज्ञान मे प्रवेश करता नहीं है। अतएव केवलज्ञान असहाय है, उसे मन और इन्द्रियो की तथा ज्ञेय द्रव्यो की सहायता लेने की आवश्यकता नहीं होती है। यही कारण है कि केवलज्ञानी का ज्ञान युगपत् (एक साथ) सब को जानता है, क्रमवार नही। लेकिन एक साथ तीनो लोको, तीनो कालो के सभी द्रव्यो, उनके गुणो और पर्यायो को जानने पर भी ज्ञान सीमित नहीं होता, बल्कि व्यापक हो जाता है।

कर्म की सामान्य प्रकृतियाँ १४८ है। इनके विशेष भेद किये जाये, तो अनन्त भेद हो जाते है। ओघसे ५ ज्ञानावरण तथा ५ अन्तराय की प्रकृतियो का सर्वबन्ध होता है। आयुकर्म को छोडकर सातो कर्मो की प्रकृतियो का निरन्तर बन्ध होता है। मिथ्यात्व, असयम, कषाय और योगो के निमित्त से कर्म उत्पन्न होते है और कर्मो के निमित्त से जाति, बुढापा, मरण और वेदना उत्पन्न होते है। शुभाशुभ कर्मो का विपाक प्रकृति, स्थिति, प्रदेश और अनुभाग इन चार भागो मे विभक्त है। जीवो को एक और अनेक जन्मो मे पुण्य तथा पाप कर्म का फल प्राप्त होता है।

धर्मध्यान कषायसहित जीवो के होता है। जिनदेव का उपदेश है कि असयत सम्यग्दृष्टि के धर्मध्यान

होता है। (षट्खण्डागम, वर्गणाखण्ड ५, ४, २६) प्रथमोपशम सम्यक्त्व मे मिथ्यात्व गुणस्थान सम्बन्धी १६ और सासादन गुणस्थान सम्बन्धी २५ प्रकृतियो का अभाव होने से वन्ध योग्य ७७ प्रकृतियाँ कही गयी है। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व मे सातवे गुणस्थान से ग्यारहवे पर्यन्त आरोहरण कर जव उतरकर चौथे गुणस्थान मे आता है, तब भी ७७ प्रकृतियो का बन्ध होता है तथा प्रथमोपशम सम्यक्त्व की भाँति मनुष्यायु और देवायु का अभाव होता है।

दर्शनावरण, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी, तिर्यचगति त्रिक का जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। 'कर्मस्थिति' शब्द से केवल दर्शनमोहनीय की सत्तर कोडाकोडी सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति का ग्रहण हुआ है। उस मे सब कर्मो की स्थिति सगृहीत है। (महाबन्ध, भा १, पृ. ६३) अनन्तानुवन्धी का सासादन पर्यन्त बन्ध होता है, किन्तु मिथ्यात्व का प्रथम गुणस्थान पर्यन्त।

'महाबन्ध' के प्रथम भाग का 'प्रकृतिबन्धाधिकार' पट्खण्डागमके वर्गणा खण्ड के अन्तर्गत वन्धनीय अर्थाधिकार में २३ पुद्गल वर्गणाओ की प्ररूपणा मे विवेचित है। मिथ्यादर्शन, असयमादि परिणाम विशेष से कार्मणवर्गणा के परमाणु कर्म रूप से परिणत होकर जीवप्रदेशो के साथ सम्बद्ध होते है जिसे 'प्रकृतिवन्ध' कहते है। इस प्रकृतिबन्ध की प्ररूपणा २४ अनुयोग द्वारो मे की गयी है जो इस प्रकार है—

१. प्रकृति समुत्कीर्तन—इस अनुयोगद्वार मे कर्म की मूल और उत्तर प्रकृतियों की प्ररूपणा है। महाबन्ध के इस भाग मे ज्ञानावरणीय की उत्तर तथा उत्तरोत्तर प्रकृतियो की प्ररूपणा अनुयोगद्वार के समान प्ररूपित है।

२-३ सर्वबन्ध-नोसर्वबन्ध—इन दो अनुयोगद्वारों मे ज्ञानावरणादि कर्म-प्रकृतियो के विषय मे सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध की प्ररूपणा की गयी है। जिस कर्म की जब अधिक से अधिक प्रकृतियाँ एक साथ बँधती है, तब उनके बन्ध को सर्वबन्ध कहते है। उदाहरण के लिए, ज्ञानावरण की पाँच प्रकृतियाँ और अन्तराय की पाँच प्रकृतियाँ दोनो अपनी बन्ध-व्युच्छित्ति होने तक सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान तक साथ-साथ बँधती है, इसलिए इन दोनो कर्मो का सर्वबन्ध है। दर्शनावरण की नौ प्रकृतियाँ दूसरे गुणस्थान तक साथ-साथ बँधती हैं, इसलिए उसका दूसरे गुणस्थान तक सर्वबन्ध है। दूसरे गुणस्थान मे निद्रानिद्रा, प्रचला-प्रचला तथा स्त्यानगृद्धि इन तीन की बन्ध-व्युच्छित्ति हो जाने से उसके बाद के अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग तक छह प्रकृतियाँ बँधती है, इसलिए उसका यह नोसर्वबन्ध है। इसी प्रकार प्रथम भाग मे निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियों के व्युच्छिन्न हो जाने पर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक उसकी चार प्रकृतियाँ बँधती है जो दर्शनावरण का नोसर्वबन्ध है। वेदनीय, आयु और गोत्र इन तीन कर्मो का नोसर्वबन्ध ही होता है। इसका कारण यह है कि एक समय मे इन कर्मो की एक प्रकृति का ही बन्ध सम्भव है।

४-७. उत्कृष्टबन्ध, अनुत्कृष्टबन्ध, जघन्यबन्ध और अजघन्यबन्ध ये प्रकृतिबन्ध मे सम्भव नहीं है।

८-९ सादि-अनादिबन्ध—किसी कर्मप्रकृति के बन्ध का अभाव हो जाने पर पुन उसका बन्ध होना सादिबन्ध कहा जाता है। जैसे कि ज्ञानावरण की ५ प्रकृतियो का बन्ध सूक्ष्मसाम्पराय तक होता है। जो जीव इस गुणस्थान मे बन्ध-व्युच्छित्ति करके उपशान्तकपाय हुआ है, उसके वहाँ उनके बन्ध का अभाव हो गया। परन्तु जब उपशान्तकषाय से गिरकर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान मे आता है, तब उन प्रकृतियो का पुन बन्ध होने लगता है। इसे सादिबन्ध कहते हैं।

जब तक जीव श्रेणि पर आरोहण नहीं करता, तब तक उसके अनादिबन्ध होता रहता है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक अनादिबन्ध कहा गया है। इसी प्रकार अन्य कर्मो के सम्बन्ध में भी सादि-अनादि बन्ध का विचार किया गया है।

१०-११ ध्रुव-अध्रुवबन्ध—अभव्य जीव के जो बन्ध होता है वह ध्रुवबन्ध है, क्योंकि उसके अनादिकाल से होने वाले उस कर्मबन्ध का कभी अभाव होने वाला नहीं है। किन्तु भव्य जीवो का कर्मबन्ध अध्रुवबन्ध है, क्योंकि उनके कर्मबन्ध का अभाव हो सकता है।

१२ बन्ध-स्वामित्वविचय—इस प्रकरण का ओघ तथा आदेश से दो प्रकार का निर्देश किया गया है।

ओघ की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि से लेकर अयोगकेवली पर्यन्त चौदह जीव-समास-गुणस्थान होते हैं। इन मे प्रकृतिबन्ध की व्युच्छित्ति कही गई है। बन्ध-व्युच्छित्ति प्राप्त प्रकृतियॉ इस प्रकार है–

मिथ्यात्व मे १६, सासादन मे २५, अविरत मे १०, देशविरत मे ४, प्रमत्तसयत मे ६, अप्रमत्तसयत मे १, अपूर्वकरण मे ३६, अनिवृत्तिकरण मे ५, सूक्ष्मसाम्पराय मे १६, सयोगकेवली मे १–इस प्रकार इन १० गुणस्थानो के जीव बन्धक है, शेष अबन्धक है।

मनुष्यगति मे मिथ्यात्व आदि चौदह गुणस्थान है। कर्म-बन्ध के योग्य १२० प्रकृतियॉ हैं। इनका वर्णन ओघवत् किया गया है। इनमे विशेष यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थान मे तीर्थकर, आहारक द्विकका बन्ध न होने से शेष ११७ प्रकृतियो का बन्ध होता है। सासादन गुणस्थान मे मिथ्यात्वादि १६ प्रकृतियो का बन्ध न होने से १०१ प्रकृतियो का बन्ध होता है। मिश्र गुणस्थान मे ६९ प्रकृतियो का बन्ध होता है। अविरत सम्यग्दृष्टि के देवायु तथा तीर्थकर का बन्ध प्रारम्भ हो जाने से ७१ प्रकृतियो का बन्ध होता है। देशविरत मे अप्रत्याख्यानावरण ४ का बन्ध न होने से ६७ प्रकृतियो का बन्ध होता है। प्रमत्त गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण ४ का बन्ध न होने से ६३ प्रकृतियो का बन्ध होता है। अप्रमत्तसयत के अस्थिर, असाता, अशुभ, अरति, शोक, अयश कीर्ति इन छह का बन्ध नही होता, किन्तु आहारकद्विकका बन्ध होने से ५९ प्रकृतियो का बन्ध होता है। अपूर्वकरण मे देवायु का बन्ध न होने से ५८ प्रकृतियो का बन्ध होता है। अनिवृत्तिकरण मे बन्ध योग्य २२ प्रकृतियॉ है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान मे अनिवृत्तिकरण की पुरुषवेद और ४ संज्वलन कषायो की बन्ध-व्युच्छित्ति हो जाने से १७ प्रकृतियो का बन्ध होता है। उपशान्तकषाय मे एक सातावेदनीय का ही बन्ध होता है। क्षीणकषाय और सयोगी जिन के एक सातावेदनीय का ही बन्ध कहा गया है। अयोगकेवली के कोई बन्ध नही होता।

इनके अतिरिक्त बारह अनुयोगद्वारो मे भी उल्लेख किया गया है। उन अनुयोगद्वारो के नाम इस प्रकार है–

१३ एक जीव की अपेक्षा काल-प्ररूपणा,
१४ एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम प्ररूपणा,
१५ सन्निकर्ष-प्ररूपणा,
१६ भगविचय-प्ररूपणा,
१७. भागाभागानुगम-प्ररूपणा,
१८ परिमाणानुगम-प्ररूपणा,
१९ क्षेत्रानुगम-प्ररूपणा,
२० स्पर्शनानुगम-प्ररूपणा,
२१ अनेक जीवो की अपेक्षा कालानुगम प्ररूपणा,
२२ नाना जीवो की अपेक्षा अन्तरानुगम प्ररूपणा,
२३. भावानुगम-प्ररूपणा,
२४ अल्पबहुत्वानुगम-प्ररूपणा

इस प्रकार चौबीस अनुयोगद्वारो मे कर्म की मूल और उत्तर प्रकृतियो की प्ररूपणा के समान प्रकृत प्रकृतिबन्धाधिकार (महाबन्ध) मे प्रकृति अनुयोगद्वार के समान ज्ञानावरणीय प्रकृतियों के प्रसग से उत्तर प्रकृतियो तथा उत्तरोत्तर प्रकृतियो की प्ररूपणा की गई है। प्रकृतिअनुयोगद्वार मे जिन गाथा-सूत्रो का उपयोग किया गया है, 'महाबन्ध' की इस पुस्तक मे भी आगे-पीछे वे ही प्रयुक्त है। (महाबन्ध, १, पृ २१-२३)

–देवेन्द्रकुमार शास्त्री

विषय-सूची

महाबंधस्स

पयडिबंधो

पढमो अत्थाहियारो

मंगल-स्मरणम्

बारह-अंगगिज्झा वियलिय-मल-मूढ-दंसणुत्तिलया ।
विविह-वर-चरण-भूसा पसियउ सुय-देवया सुइरं ॥ १ ॥



जयउ धरसेणणाहो जेण महाकम्मपयडि-पाहुडसेलो ।
बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ पुप्फयंतस्स ॥ २ ॥



पणमह कय-भूय-बलिं भूयबलिं केस-वास-परिभूय-बलिं ।
विणिहय-वम्मह-पसरं वड्ढाविय-विमल-णाण-वम्मह-पसरं ॥ ३ ॥



भूतबलिप्रणीतं तं बन्धतत्त्वप्रकाशकम् ।
महाधवलविख्यातं महाबन्धं नमाम्यहम् ॥ ४ ॥



सिद्धानां कीर्त्तनादन्ते यः सिद्धान्त-प्रसिद्ध-वाक् ।
सोऽनाद्यनन्तसंतानः सिद्धान्तो नोऽवताच्चिरम् ॥ ५ ॥



जिणवयणमोसहमिणं विसयसुह-विरेयणं अमिदभूयं ।
जर-मरण-वाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥ ६ ॥

जयउ सुय-देवदा

सिरि भगवंतभूदबलिभडारयपणीदो

महाबंधो

[पढमो पयडिबंधाहियारो]

[अनुवादकर्त्ताका मंगल]

महाधवल नामसे प्रसिद्ध इस महाबन्ध महाशास्त्रकी टीकानिर्माणका कठिन कार्य निर्दोष तथा निरन्तराय सम्पन्न हो, इस कामनासे वेदनाखण्डकी धवलाटीकाके प्रारम्भमें वीरसेनाचार्यकृत मंगलगाथाओं-द्वारा पंच-परमेष्ठीका पुण्य स्मरण किया जाता है—

सिद्धा दड्ढट्ठमला विसुद्धबुद्धीय लद्धसब्बत्था।
तिहुवण-सिर-सेहरया पसियंतु भडारया सब्वे[1] ॥ १ ॥

अर्थ—जिन्होंने ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकारके कर्ममलको दग्ध कर दिया है, जिन्होंने विशुद्ध बुद्धि-केवलज्ञान-द्वारा समस्त पदार्थोंकी उपलब्धि की है-उनका पूर्ण बोध प्राप्त किया है, जो त्रिभुवनके मस्तकपर मुकुटके समान विराजमान हैं, वे सम्पूर्ण सिद्ध भट्टारक प्रसन्न होवें।

भावार्थ—आत्माका सहज स्वभाव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य है। मोहनीय ज्ञानावरणादि कर्मोंका मल आत्मामें अनादिसे लगा हुआ है, जिससे यह संसारी आत्मा जगत्‌में परिभ्रमण किया करती है। सिद्ध भगवान्‌ने उस कर्ममलका ध्वंस कर दिया है। विशुद्धज्ञानके कारण समस्त पदार्थोंका बोध होता है। जिस प्रकार दर्पणके तलसे मल दूर होनेपर बाह्य वस्तुएँ स्वयमेव दर्पणकी निर्मलताके कारण उसमें प्रतिबिम्बित होती हैं, उसी प्रकार कर्ममलरहित आत्मामें स्वतः सर्व पदार्थ झलकते हैं।

निर्मल तथा पूर्णबोधयुक्त होनेसे तथा कर्ममलरहित होनेके कारण सिद्ध परमात्मा जगत्‌में श्रेष्ठ हैं। उनके द्वारा विश्व शोभित होता है। वे लोकके अग्रभागमें विद्यमान ईषत्प्राग्भार पृथ्वीके ऊपर अवस्थित हैं और ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो त्रिभुवनके मस्तकपर मुकुट ही हों। यहाँ लोककी पुरुषाकृतिको दृष्टिमें रखकर सिद्धोंको मुकुट कहा गया है।

सिद्ध परमात्माकी निवासभूमिके विषयमें तिलोयपण्णत्तिमें इस प्रकार कथन किया गया है, "सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक विमानके ध्वज-दण्डसे द्वादश योजन मात्र ऊपर जाकर आठवीं पृथ्वी स्थित है। उसके उपरिम और अधस्तन तलमें-से प्रत्येकका विस्तार पूर्व-पश्चिममें

---

१ "सिद्धा णट्ठट्ठमला विसुद्धबुद्धीय लद्धसब्भावा……"–प्रा० सिद्धभ० श्लो० ५।

रूपरहित एक राजू है। वेत्रासनके सदृश वह पृथ्वी उत्तर-दक्षिण भागमें कुछ कम सात राजू लम्बी तथा आठ योजन बाहुल्यवाली है। यह पृथ्वी घनोदधि, घनवात और तनुवात इन तीन वायुओंसे युक्त है। इनमें प्रत्येक वायुका बाहुल्य बीस हजार योजन प्रमाण है (८-६५४, ति० प०)।"

इसके बहुमध्य भागमें चाँदी तथा सुवर्णके समान नाना रत्नोंसे परिपूर्ण ईषत् प्राग्भार नामका क्षेत्र है। यह क्षेत्र ऊर्ध्वमुखयुक्त धवल छत्रके समान सुन्दर और पैंतालीस लाख योजन प्रमाण विस्तारसहित है। उसका मध्य बाहुल्य अष्ट योजन और अन्तमें एक अंगुल-मात्र है। अष्टम भूमिमें स्थित सिद्ध क्षेत्रकी परिधि मनुष्य क्षेत्रकी परिधिके समान है। (गाथा ६५२ से ६५८ पृ० ८६४ ति० प०)

त्रिलोकसारमें अष्टम पृथ्वीको ईषत्प्राग्भारा कहा है—

त्रिभुवन-मूर्धारूढा ईषत्प्राग्भारा धराष्टमी रुन्द्रा।
दीर्घा एक-सप्तरज्जू अष्टयोजन-प्रमितबाहुल्या॥ ५५६॥

त्रिलोकसारके शिखरपर स्थित ईषत्प्राग्भारा नामकी आठवीं पृथ्वी है। वह एक राजू चौड़ी, सात राजू लम्बी तथा आठ योजन प्रमाण बाहुल्य युक्त है।

उस पृथ्वीके मध्यमें जो सिद्धक्षेत्र छत्राकार कहा है, उसका वर्ण त्रिलोकसारमें चाँदीका बताया है।

तन्मध्ये रूप्यमयं छत्राकारं मनुष्यमही-व्यासम्।
सिद्धक्षेत्रं मध्येऽष्टवेधक्रमहीनं बाहुल्यम्॥ ५५७॥

इस सिद्धक्षेत्रके ऊपर तनुवातवलयमें अष्टगुणयुक्त तथा अनन्त सुखसे सन्तुष्ट सिद्ध त भगवान् रहते हैं। आठवीं पृथ्वीके ऊपर सात हजार पचास धनुष जाकर सिद्धोंका निवास है।

राजवार्तिकके अन्तमें लिखा है—

तन्वी मनोज्ञा सुरभिः पुण्या परमभासुरा।
प्राग्भारा नाम वसुधा लोकमूर्ध्नि व्यवस्थिता॥ १९॥
नृलोकतुल्यविष्कम्भा सितच्छत्रनिभा शुभा।
ऊर्ध्वं तस्याः क्षितेः सिद्धाः लोकान्ते समवस्थिताः॥ २०॥

त्रिलोकसारके मस्तकपर स्थित प्राग्भारा नामकी पृथिवी है जो तन्वी अर्थात् स्थूलता-रहित है, मनोज्ञ है, सुगन्धयुक्त है, पवित्र है तथा अत्यन्त देदीप्यमान है।

वह पृथ्वी नरलोक तुल्य विस्तारयुक्त है। श्वेत वर्णके छत्र समान तथा शुभ है। उस पृथ्वीके ऊपर लोकके अन्तमें सिद्ध भगवान् विराजमान हैं। सकलज्ञ सिद्धोंका निवास-स्थल ही यथार्थमें ब्रह्मलोक है। धवलवर्णयुक्त निर्वाण-स्थलमें महाधवल परणतियुक्त परमात्माका निवास पूर्णतया सुसंगत प्रतीत होता है।

सिद्ध भगवानने राग-द्वेष, मोहादि विभावोंका त्याग कर स्वभावकी उपलब्धि की है। वे वीतराग हो चुके हैं। किसीकी स्तुतिसे वे प्रसन्न नहीं होते और न निन्दासे खिन्न ही

होते हैं। वे राग-द्वेषकी दुविधाके चक्करसे परे पहुँच चुके हैं। ऐसी व्यवस्था होते हुए मंगलगाथामें सिद्ध परमात्मासे प्रसन्नताकी प्रार्थनाका क्या रहस्य है? यह विशेष विचारणीय है। यदि भगवान् यथार्थमें प्रसन्न हो गये, तो उनकी वीतरागता कहाँ रही और यदि वे प्रसन्न न हुए, तो प्रसन्नताकी प्रार्थना अप्रयोजनीक ठहरती है।

यथार्थ बात यह है कि प्रसन्न—निर्मलभावपूर्वक प्रभुकी आराधना करनेवाला भक्त उपचारसे प्रभुमें प्रसन्नताका आरोप करता है।

आचार्य विद्यानन्दी आप्तपरीक्षामें लिखते हैं—वीतरागमें क्रोधके समान सन्तोषलक्षण प्रसादकी भी सम्भावना नहीं है। अतः प्रसन्न अन्तःकरण-द्वारा प्रभुकी आराधना करना वीतरागकी प्रसन्नता मानी जाती है। इसी अपेक्षासे भगवान्‌को प्रसन्न कहते हैं, जैसे प्रसन्न अन्तःकरणपूर्वक रसायनका सेवन करके नीरोग व्यक्ति कहता है कि रसायनके प्रसादसे मैं नीरोग हुआ हूँ, उसी प्रकार प्रसन्न चित्तवृत्तिपूर्वक वीतराग प्रभुकी आराधनासे इष्टसिद्धि प्राप्त कर भक्त उपचारसे कहता है कि परमात्माके प्रसादसे मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है[1]।

इसी दृष्टिसे वीतराग सिद्ध परमात्मासे प्रसन्नताकी प्रार्थना की गयी है।

तिहुवण-भवणप्पसरिय-पच्चक्खवबोह-किरण-परिवेढो।
उइओ वि अणत्थवणो अरहंत-दिवायरो जयऊ[2] ॥ २ ॥

अर्थ—वे अरहन्त भगवान्‌रूपी सूर्य जयवन्त हों, जो तीन लोकरूपी भवनमें फैली हुई ज्ञानकिरणोंसे व्याप्त हैं, तथा जो उदित होते हुए भी अस्तको प्राप्त नहीं होते हैं।

भावार्थ—यहाँ अरहन्त भगवान्‌की सूर्यके साथ तुलना की है। सूर्य स्वपरप्रकाशक है। अरहन्त भगवान्‌का केवलज्ञान भी स्वपरप्रकाशक है। लोकप्रसिद्ध सूर्यकी अपेक्षा अरहन्त-सूर्यमें विशेषता है। लौकिक सूर्य जब कि मध्यलोकके थोड़े-से प्रदेशको आलोकित करता है, तब अरहन्त सूर्य सकल विश्वको प्रकाशित करता है। सूर्यका उदय और अस्त होता है, किन्तु केवलज्ञान सूर्यका उदय तो होता है, पर अस्त नहीं। जब कैवल्यका प्रकाश आत्मामें उत्पन्न हो चुका, तब उस सर्वज्ञ आत्माकी ज्ञानज्योतिको कर्मपटल पुनः कैसे ढाँक सकेंगे? अतः केवलज्ञानसूर्य उदययुक्त होते हुए भी अस्तरहित है। वह अनन्तकाल पर्यन्त प्रकाशित रहता है। अरहन्तसूर्यकी किरणें ज्ञानात्मक हैं, लौकिक सूर्यकी किरणें पौद्गलिक हैं।

ति-रयण-खग्ग-णिहाएणुत्तारिय-मोह-सेण्ण-सिर-णिवहो।
आइरिय-राउ पसियउ परिवालिय-भविय-जिय-लोओ ॥ ३ ॥

---

१. "प्रसादः पुनः परमेष्ठिनस्तद्विनेयानां प्रसन्नमनोविषयत्वमेव, वीतरागाणां तुष्टिलक्षणप्रसादासंभवात् कोपासंभववत्। तदाराधकजनैस्तु प्रसन्नेन मनसोपास्यमानो भगवान् प्रसन्न इत्यभिधीयते रसायनवत्। यथैव हि प्रसन्नेन मनसा रसायनमासेव्य तत्फलमाप्नुवन्तः सन्तो रसायनप्रसादादिदमस्माकमारोग्यादिफलं समुत्पन्नमिति प्रतिपद्यन्ते तथा प्रसन्नेन मनसा भगवन्तं परमेष्ठिनमुपास्य तदुपासनफलं श्रेयोमार्गाधिगमलक्षणं प्रतिपद्यमानास्तद्विनेयजनाः भगवत्परमेष्ठिनः प्रसादादस्माकं श्रेयोमार्गाधिगमः सम्पन्न इति समनुमन्यन्ते।"—आप्तप०, पृ० २,३। २. "नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ॥ नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके ॥"—भक्तामर० श्लो० १७।

अर्थ—जिन्होंने रत्नत्रयरूपी खड्गके प्रहारसे मोहरूपी सेनाके शिर-समूहका नाश कर दिया है तथा भव्य-जीव-लोकका परिपालन किया है वे आचार्य महाराज प्रसन्न होवें।

भावार्थ—यहाँ आचार्य महाराजकी राजासे तुलना की गयी है। जैसे कोई प्रतापी राजा अपनी प्रचण्ड तलवारके प्रहारसे शत्रुसैन्यका नाश करता है, उसी प्रकार आचार्य परमेष्ठी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूपी अजेय खड्गसे मोहरूपी सेनाके मस्तकोंका नाश करते हैं। जिस प्रकार राजा अत्याचारीका अन्त करके धर्मपरायण प्रजाका रक्षण करता है, उसी प्रकार आचार्य महाराज मोहका ध्वंस करके भव्यात्माओंका रक्षण करते हैं। मोहके कारण संसारमें भव्य जीव बहुत कष्ट पा रहे थे। आचार्य महाराजने रत्नत्रयसे अपनी आत्माको सुसज्जित करके अपनी पुण्य अभय वाणी तथा जीवनदात्री लेखनी-के द्वारा जो वीतरागताकी धारा बहायी, उससे भव्यात्माओंके अन्तःकरणमें जो मोहका आतंक था, वह दूर हुआ और उन्होंने अपने निज रूपकी उपलब्धि की। भव्यात्माओंको जब भी मोहका आतंक व्यथा पहुँचाता है, तब ही वे आचार्य परमेष्ठीके चरणोंका आश्रय ले अभय अवस्थाको प्राप्त होते हैं।

अण्णाणयंधयारे अणोरपारे भमंत-भवियाणं।
उज्जोवो जेहि कओ पसियंतु सया उवज्झाया ॥ ४ ॥[1]

अर्थ—जिसके ओर-छोरका पता नहीं है, ऐसे अज्ञान-अन्धकारमें भटकनेवाले भव्य-जीवोंको जिन्होंने प्रकाश प्रदान किया है वे उपाध्याय प्रसन्न होवें।

भावार्थ—यहाँ अज्ञानको अन्धकारकी उपमा दी गयी है। जिस प्रकार चक्षुष्मान् व्यक्ति प्रकाशरहित स्थलमें अन्धेकी भाँति आचरण करता है, उसी प्रकार सम्यक्ज्ञानज्योतिके अभावमें यह जीव परद्रव्यको स्व मानकर तथा आत्मतत्त्वको अनात्म पदार्थ मानकर अन्धेके समान प्रवृत्ति करता है। इस मिथ्याज्ञानरूप अन्धकारके आदि-अन्तका पता नहीं चलता है। वह अपार है। उसमें भव्य जीव भटक रहे हैं और परको अपना मानकर दुःखी हो रहे हैं। यह मिथ्याज्ञानका ही प्रभाव है कि जीव कल्याणके मार्गको न पाकर चौरासी लाख योनियोंमें परिभ्रमण करता फिरता है। जैसे अन्धकारमें भटकनेवाले जीवोंको प्रकाशका दर्शन होते ही हित-मार्ग सूझने लगता है, उसी प्रकार उपाध्याय परमेष्ठीके प्रसादसे सम्यक्-ज्ञानका प्रकाश प्राप्त होता है, जिससे यह मोहान्ध प्राणी पंच परावर्तनरूप संसारका परिभ्रमण छोड़कर शाश्वतिक शान्तिमय शिवपुरकी ओर उन्मुख हो जाता है।

उपाध्यायके समीप सविनय आकर भव्यात्माएँ आगमका अभ्यास करती हैं, और सम्यक्ज्ञानका लाभ करती हैं, इस कारण अज्ञान अन्धकार निवारण करनेवाले उपाध्याय परमेष्ठीसे प्रसन्नताकी प्रार्थना की गयी है।[2]

दुह-तिव्व-तिसा-विणदिय-तिहुवण-भवियाण सुहुराएण।
परिठविया धम्म-पवा सुअ-जल-वाणप्पयाणेण ॥ ५ ॥

---

१ "अण्णाणघोरतिमिरे दुरंततीरम्हि हिंडमाणाण। भवियाणुज्जोयपरा उवझाया वरमदिं देंतु ॥" –ति० प० गा० ४। २. "विनयेनोपेत्य यस्माद् व्रतशीलभावनाधिष्ठानादागमं श्रुताख्यमधीयते स उपाध्याय।"–त० रा०, पृ० ३४६।

अर्थ—दुःखरूप तीव्र प्याससे पीड़ित तीनलोकके भव्योंके प्रति प्रशस्त रागवश जिन्होंने श्रुतज्ञानरूपी जल पिलानेके लिए धर्मरूप प्रपा-प्याऊ स्थापित की है, वे उपाध्याय सदा प्रसन्न होवे।

भावार्थ—इस जगत्के प्राणियोंको विषयोंकी लालसासे जनित सन्ताप सदा दुःखी करता है। महान् पुण्यशाली देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि भी विषयतृष्णाके तापसे नहीं बच सके है। उनकी तृष्णाग्नि तो और अधिक प्रज्वलित रहती है। इस तृष्णाकी शान्तिके लिए यह जीव विषयोंका सेवन करता है, किन्तु इससे वेदना तनिक भी न्यून न होकर उत्तरोत्तर वृद्धिगत हुआ करती है। जिस प्रकार पिपासाकुल व्यक्तियोंकी तृषानिवृत्ति-निमित्त उदार पुरुष प्याऊकी व्यवस्था करते हैं, जिससे सबको मधुर शीतल जलकी प्राप्ति हो, उसी प्रकार उपाध्याय परमेष्ठीने परम करुणाभावसे विषयोंकी तृष्णासे सन्तप्त भव्योंके कल्याणार्थ श्रुतज्ञानरूप प्रपा स्थापित की है। उनके द्वारा शास्त्रका उपदेश होते रहनेसे तथा आगमका शिक्षण होनेसे भव्यात्माओंकी विषयतृष्णा कम होती जाती है और वे आत्मोन्मुख बनकर विषयोंकी आशा ही नहीं करती हैं। श्रुतज्ञान प्रपाके जलका पान करनेसे भोगोंकी अभिलाषारूप तृषा दूर होती है तथा आत्मा, स्वरूपको उपलब्धि कर, महान् शान्तिका लाभ करती है। द्वादशांगरूप महाशास्त्र-सिन्धुमें अवगाहन कर अपनी पिपासाकी शान्ति साधारण आत्माएँ नहीं कर पाती हैं,अतः उनके हितार्थ प्रपा बनायी गयी, जहाँ अपनी मन्दमतिरूपी चुल्लूमें श्रुतरूपी पानी भरकर आत्मा पिपासाकी शान्ति करती है। जितना-जितना यह जीव श्रुतज्ञानके रसका पान करता है और अपनी आत्माको तृप्त करता है, उतना-उतना वह सन्तापमुक्त हो शान्ति लाभ करता है।

---

१. शंका—राग परिणाम मोहनीय कर्मका भेद है। मोहनीय कर्म घातिया कर्मोंमें प्रमुख है। घातिया कर्म जब पाप प्रकृतियोंमें अन्तर्भूत हैं, तब रागभाव भी पापप्रकृति रूप स्वय सिद्ध होता है। अतएव पाप-प्रकृति रूप राग परिणामको 'सुट्ठु' (शुभ) रूप कहना कैसे उचित होगा ?

समाधान—इस विषयमें सन्देह निवारण हेतु महर्षि कुन्दकुन्द स्वामीके प्रवचनसारसे प्रकाश प्राप्त होता है। वहाँ ज्ञेयाधिकारमें रागभावके शुभ तथा अशुभ रूप भेद कहे गये हैं—"सुहो व असुहो हवदि रागो ॥ (१८०) उक्त ग्रन्थके चारित्र अधिकारमें लिखा है—"रागो पसत्थभूदो" (२५५) राग प्रशस्त रूप होता है। अत राग परिणाम प्रशस्त रूप भी होता है, यह कथन आगमके प्रतिकूल नहीं है। रागको शुभ या प्रशस्त कहनेका कारण यह है कि उसके द्वारा पुण्य कर्मका बन्ध होता है। जिस रागात्मक चित्त-वृत्तिके द्वारा पुण्य कर्मका बन्ध होता है उस पुण्यबन्धके उत्पादक राग भावको आगममें शुभ राग या प्रशस्त राग माना गया है। शुभ भाव पुण्यबन्धका कारण कहा गया है। कुन्दकुन्द स्वामीने लिखा है—

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावत्ति भणियमण्णेसु।
परिणामो णण्णगदो दुक्खक्खयकारणं समये ॥ १८१ ॥

—प्रवचनसार

शुभ परिणाम रूप रागभावसे पुण्यका बन्ध होता है और अशुभ भावसे पापका बन्ध होता है। अन्यमें रमण न करनेवाला शुद्धभाव आगममें समस्त दुःखोंके क्षयका कारण कहा गया है।

इस कारण शुभ रागभावसे प्रेरित होकर उपाध्याय परमेष्ठी दुःखी जीवोंका सन्ताप दूर करते हैं।

संधारिय-सीलहरा उत्तारिय-चिरपमाद-दुस्सीलभरा।
साहू जयंतु सव्वे सिवसुह-पह-संठिया हु णिग्गलियभया[1] ॥ ६ ॥

अर्थ—जिन्होंने शीलरूप हारको धारण किया है, चिरकालीन प्रमाद तथा कुशीलके भारको दूर कर दिया है, जो शिव-सुखके मार्गमें स्थित है तथा निर्भीक हैं, वे सर्व साधु जयवन्त हों।

भावार्थ—हारके धारण करनेसे कण्ठ शोभनीक मालूम पड़ता है, इसीलिए साधुओंने शीलरूप हारसे अपने कण्ठको भूषित किया है। कण्ठमें स्थित हार प्रत्येकके देखनेमें आता है, साधुओंकी दिगम्बर वृत्ति होनेके कारण उनके शीलरूपी हारको प्रत्येक व्यक्ति देख सकता है। प्रायः संसारी जन प्रमाद तथा कुशील (अनात्मभाव) में निमग्न रहा करते हैं किन्तु मुनिराज प्रमादोंका परित्याग करते हैं तथा ब्रह्मचर्यमें निमग्न रहनेके कारण कुशील रूप विकारी भावसे दूर रहते हैं। निरन्तर कर्मशत्रुओंका संहार करनेमें संलग्न रहनेके कारण उनके पास प्रमादका अवसर ही नहीं आता है। आत्मकल्याणमें वे सदा सावधान रहते है। महर्षि पूज्यपाद[2] के शब्दोंमें वे मुनिराज बोलते हुए भी मौनीके समान रहते है, गमन करते हुए भी नहीं गमन करते हुए सरीखे हैं, देखते हुए भी नहीं देखते हुए सदृश है, कारण उन्होंने आत्मतत्त्वमे स्थिरता प्राप्त की है। सम्पूर्ण परिग्रहका परित्याग करके तथा सकल संयमको अंगीकार करनेके कारण वे निराकुलतापूर्ण यथार्थ निर्वाण सुखके मार्गमें प्रवृत्त हैं। उन्हे जीवनकी न ममता है, न मृत्युका भय है। तिलतुषमात्र भी परिग्रह न रहनेसे किसी प्रकारकी भीति नहीं है। वे आत्माको अजर-अमर तथा अविनाशी आनन्दका भण्डार समझ भयमुक्त रहते है। ऐसी उज्ज्वल आत्माओंके प्रसादसे अनुवादक निर्विघ्न रूपसे ग्रन्थसमाप्तिके लिए मंगलकामना करता है।

[मूलग्रन्थका मंगल]

महाकर्म-प्रकृति-प्राभृतके प्रारम्भमें गौतम गणधर-द्वारा विरचित मंगलको वहाँसे उद्धृत कर भूतवलि आचार्य इस शास्त्रका मंगल मान ग्रन्थारम्भ करते हैं। द्रव्यार्थिक नयाश्रित भव्य[3] जीवोंके अनुग्रहार्थ गौतम स्वामी सूत्रका प्रणयन करते हुए कहते है—

णमो जिणाणं[4] ॥ १ ॥

अर्थ—जिन भगवान्को नमस्कार हो।

विशेषार्थ—'जिन' शब्दसे तात्पर्य उन श्रेष्ठ आत्माओसे है, जिन्होंने सम्पूर्ण आत्मप्रदेशोंमें निविड रूपसे निबद्ध घातियाकर्मरूप मेघपटलको दूर करके अनन्तज्ञान, अनन्त-

१ "धीरधरियसीलमाला ववगयराया जसोहपडहत्था। बहु-विणय-भूसियंगा सुहाइ साहू पयच्छंतु॥"—ति० प० गा० ५। २ "ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति। स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु पश्यन्नपि न पश्यति॥"—इष्टोप० श्लो० ४१। ३. "एव दव्वट्ठिय-जणाणुग्गहणट्ठं णमोक्कारं गोदमभडारओ महाकम्मपयडिपाहुडस्स आदिम्हि काऊण "—ध० टी०। ४. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं, णमो जिणाणं।"—म० क० य० १। "ॐ ह्रीं जिणाणं"—म० क० य० २।

दर्शन[1], अनन्त-दानादि नव केवल लब्धियोंको प्राप्त किया है, जिन्होंने अनेक विषम भवोंके गहन दुःख प्रदान करनेवाले कर्मशत्रुओंको जीता है—निर्जरा की है, वे जिन हैं। जिन्होंने घातिया कर्मोंका नाश किया है वे सकल अर्थात् पूर्णरूपसे जिन कहलाते हैं। उनमें अरहन्त और सिद्ध गर्भित हैं। आचार्य, उपाध्याय तथा साधु एकदेश जिन कहे जाते हैं।

शंका—इसपर विशेष प्रकाश डालनेकी दृष्टिसे सूत्रके टीकाकार वीरसेनाचार्य कहते हैं – यह सूत्र क्यों कहा गया ?

समाधान—मंगलके लिए कहा गया है। पुनः प्रश्न उठता है कि मंगल क्या है ? पूर्व-संचित कर्मोंका विनाश मंगल है।

शंका—यदि मंगलका यह भाव है, तो यह सूत्र निष्फल है। कारण, जिनेन्द्रके मुखसे विनिर्गत है अर्थ जिसका, जो अविसंवादसे केवलज्ञानके समान है तथा वृषभसेनादि गणधर देवोंके द्वारा जिनकी शब्दरचना की गयी है ऐसे सर्व सूत्रोंके पठन, मनन तथा क्रियामें प्रवृत्त सम्पूर्ण जीवोंके प्रतिसमय असंख्यात गुणश्रेणी रूपसे पूर्व संचित कर्मोंकी निर्जरा होती है। कदाचित् यह मंगलसूत्र सफल है, तो ग्रन्थरूप सूत्रका अध्ययन निष्फल है, क्योंकि उससे उत्पन्न कर्मक्षयकी उपलब्धि इसके ही द्वारा हो जायेगी।

समाधान—यह ठीक नहीं है। सूत्राध्ययन-द्वारा सामान्यरूपसे कर्मोंकी निर्जरा होती है, किन्तु इस मंगल सूत्रसे स्वाध्यायमें विघ्नकारक कर्मका नाश होता है। इस कारण मंगल सूत्रका प्रारम्भ हुआ।

शंका—तीव्र[2] कषाय, इन्द्रिय तथा मोहका विजय करनेसे सकल जिनोंका नमस्कार पापनाशक हो, कारण उनमें सम्पूर्ण गुणोंका सद्भाव पाया जाता है, किन्तु यह बात देशजिनोंमें नहीं पायी जाती। अतः 'णमो जिणाणं' सूत्र-द्वारा अरहन्त-सिद्धके सिवाय आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठीका नमस्कार मानना युक्तियुक्त नहीं है।

---

१. 'सकलात्मप्रदेश-निबिड-निबद्धघातिकर्ममेघपटलविघटनप्रकटीभूतानन्तज्ञानादिनवकेवललब्धिवान् जिनः।" –गो॰ जी॰ प्र॰। "अनेकविषमभवगहनदुःखप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयन्ति, निर्जरयन्तीति जिनाः॥" –गो॰ जी॰ म॰ प्र॰ टी॰। २ किमट्ठमिदं वुच्चदे? मंगलट्ठं। किं मंगलं? पुव्वसंचियकम्मविणासो। जदि एवं तो जिणवयणविणिग्गयत्थादो अविसंवादेण केवलणाणसमाणादो वसहसेणादिगणहरदेवेहि विरइयसद्दरयणादो सव्वसुत्तादो तप्पढण-गुणण-किरियावावदाणं सव्वजीवाणं पडिसमयमसंखेज्जगुणसेडीए पुव्वसंचिदकम्मणिज्जरा होदि त्ति णिप्फलमिदं सुत्तमिदि। अह सफलमिदं, णिप्फलं सुत्तज्झयणं, तत्तो समुप्पज्जमाणकम्मक्खयस्स एत्थेवोवलंभो त्ति। ण एस दोसो, सुत्तज्झयणेण सामण्णकम्मणिज्जरा कीरदे एदेण पुण सुत्तज्झयण–विग्घ–फल–कम्मविणासो कीरदि त्ति, भिण्णविसयत्तादो सुत्तज्झयणविग्घफलकम्मविणासो सामण्णकम्मविरोहिसुत्तब्भासादो चेव होदि त्ति मंगलसुत्तारंभो। जिणा दुविहा सयल–देसजिणभेएण। खवियघाइकम्मा सयलजिणा। के ते? अरिहंतसिद्धा। अवरे आइरिय–उवज्झाय-साहू देसजिणा, तिव्वकसाय-इंदियमोहविजयादो।" –ध॰ टी॰ वे॰। ३ "सयलासयलजिणट्ठियतिरयणाणं ण समाणत्तं, संपुण्णासंपुण्णाणं समाणत्तविरोहादो। असंपुण्ण–तिरयणकज्जमसंपुण्ण-तिरयणाणि ण करेंति, असमाणत्तादो त्ति। ण, दंसणणाण-चरणाणमुप्पण्णसमाणत्तुवलंभादो। ण च असमाणाणं कज्जं असमाणमेवेत्ति णियमो अत्थि, संपुण्णग्गिणा कीरमाणदाहकज्जस्स तदवयवेवि उवलंभादो। अमियघडसएण कीरमाण णिव्विसीकरणादिकज्जस्स अमिय–चुलुवेवि उवलंभादो वा। ण च तिरयणाणं देसजिणट्ठियाणं सयलजिणट्ठिएहि भेओ। एवं गोदमभडारओ महाकम्मपयडिपाहुडस्स पज्जवट्ठियणयाणुग्गहणट्ठमुत्तरसुत्ताणि भणदि।"–ध॰ टी॰ वेदना॰ प॰ ६२३।

समाधान—रत्नत्रयकी अपेक्षा पाँचों परमेष्ठी समान हैं, कारण सकल जिनोंके समान एकदेश जिनोंमें भी रत्नत्रय विद्यमान हैं। देवत्वके लिए रत्नत्रयके सिवाय अन्य कारण नहीं है। इससे सकल जिनोंके समान देशजिनोंका नमस्कार भी कर्मक्षयकारी जानना चाहिए।

शंका—सकल और असकल जिनोंके रत्नत्रयमें समानता नहीं पायी जाती है। सम्पूर्ण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय और असम्पूर्ण रत्नत्रयमें समानताका विरोध है। सम्पूर्ण रत्नत्रयका कार्य असम्पूर्ण रत्नत्रय नहीं करते, कारण वे असमान हैं। ज्ञान, दर्शन और चारित्रमें समानताकी उपलब्धि नहीं पायी जाती है ?

समाधान—असमानोंका कार्य असमान ही होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है। सम्पूर्ण अग्निके द्वारा क्रियमाण दाह-कार्यकी उपलब्धि उसके अवयवमें भी देखी जाती है। अमृतके शतघटों-द्वारा सम्पादित किया जानेवाला निर्विषीकरणरूप कार्य चुल्लू-भर अमृतमें भी पाया जाता है। रत्नत्रयकी अपेक्षा देश तथा सकल जिनोंमें भेद नहीं पाया जाता है।

अब पर्यायार्थिक नयाश्रित जीवोंके कल्याणार्थ गौतमस्वामी आगामी सूत्रोंको कहते हैं—

णमो ओहिजिणाणं ॥ २ ॥

अर्थ—अवधिज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—यहाँ 'जिन' शब्दकी अनुवृत्ति आगे भी करनी चाहिए। अवधिज्ञानी देव, नारकी, मनुष्य तथा तिर्यंच भी होते हैं। उन सबको नमस्कार करनेसे क्या कर्मोंकी निर्जरा हो सकती है ? उससे तो कर्मोंका बन्ध ही होगा। 'जिन' शब्दका ग्रहण करनेसे ऐसी आशंकाका निराकरण हो जाता है। इससे रत्नत्रयसे भूषित अवधिज्ञानियोंको नमस्कार करना यहाँ इष्ट है।

णमो परमोहिजिणाणं[1][2] **॥ ३ ॥**

अर्थ—परमावधिज्ञानधारी जिनोंको नमस्कार हो।

णमो[3] **सव्वोहिजिणाणं ॥ ४ ॥**

अर्थ—सर्वावधिज्ञानधारी जिनोंको नमस्कार हो।

णमो अणंतोहिजिणाणं[4][5] **॥ ५ ॥**

अर्थ—अनन्त अवधिवाले जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—अनन्त है अवधि-मर्यादा जिसकी, ऐसे केवलज्ञानधारक अनन्तावधि जिनोंको नमस्कार हो।

---

१. परमावधयश्च ते जिनाश्च परमावधिजिनाः तेभ्यो नमः। २. "ॐ ह्रीं अर्हं णमोहिजिणाण....." –भ०क०य०२। "ॐ ह्रीं अर्हं णमोहिबुद्धीण"–भ०क०य०१२। ३. 'ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहिजिणाणं ....'–भ०क०य०४। ४. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहिजिणाण"–भ०क०य०५। ५. अन्तश्च अवधिश्च अन्तावधिः। न विद्यतेऽन्तो यस्य स अनन्तावधिः। अभेदाज्जीवस्यापीयं संज्ञा। अनन्तावधयश्च ते जिनाश्च अनन्तावधिजिनाः तेभ्यो नमः। अणंतोहिजिणा णाम केवलणाणिणो।

णमो कोट्ठबुद्धीणं[1] ॥ ६ ॥

अर्थ—कोष्ठबुद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिस प्रकार किसी कोठेमे पृथक्-पृथक् तथा सुरक्षित बहुत-से धान्यके बीजों-का संग्रह रहता है, उसी प्रकार कोष्ठबुद्धिनामक ऋद्धिमें परोपदेशके बिना ही तत्त्वोंके अर्थ, ग्रन्थ तथा बीजोंका अवधारण करके पृथक्-पृथक् अवस्थान किया जाता है। इस बुद्धिमें कोष्ठके समान भिन्न-भिन्न बहुत तत्त्वोंकी अवधारणा रहती है (त०रा० अ०३, पृ० १४३)।

तिलोयपण्णत्तिमे कहा है कि उत्कृष्ट धारणासम्पन्न कोई पुरुष गुरुके उपदेशसे नाना प्रकारके ग्रन्थोंसे विस्तारपूर्वक लिंगसहित शब्दरूप बीजोंको अपनी बुद्धिसे ग्रहण करके बिना मिश्रणके अपनी बुद्धिरूपी कोठेमे धारण करता है, उसे कोष्ठबुद्धि कहते हैं (पृ० २७२)।

णमो बीजबुद्धीणं[2] ॥ ७ ॥

अर्थ—बीजबुद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जैसे सम्यक् प्रकार हल-बखरसे तैयार की गयी उपजाऊ भूमिमें योग्य काल-मे बोया गया एक भी बीज बहुत बीजोंको उत्पन्न करता है, उसी प्रकार नोइन्द्रियावरण, श्रुत-ज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशम-प्रकर्षसे एक बीज पदके ग्रहण-द्वारा अनेक पदार्थोंको जाननेवाली बीजबुद्धि है। (राजवा० पृ० १४३)।

तिलोयपण्णत्तिमें कहा है—नोइन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय इन तीन प्रकृतियोंके उत्कृष्ट क्षयोपशमसे विशुद्ध हुई किसी भी महर्षिकी जो बुद्धि, संख्यातस्वरूप शब्दोंके बीचमें-से लिंगसहित एक ही बीजभूत पदको परके उपदेशसे प्राप्त करके उस पदके आश्रयसे सम्पूर्ण श्रुतको विस्तार कर ग्रहण करती है, वह बीजबुद्धि है (पृ० २७२)।

णमो पदाणुसारीणं[3] ॥ ८ ॥

अर्थ—पदानुसारी ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—दूसरे व्यक्तिसे एक पदके अर्थको सुनकर आदि, मध्य तथा अन्तके शेष ग्रन्थार्थका निश्चय करना पदानुसारित्व है। यह अनुश्रोतृ, प्रतिश्रोतृ तथा उभयरूप तीन प्रकार है। तिलोयपण्णत्तिमे कहा है—जो बुद्धि आदि, मध्य अथवा अन्तमे गुरुके उपदेशसे एक बीज पदको ग्रहण करके उपरिम ग्रन्थको ग्रहण करती है वह अनुसारिणी बुद्धि है। गुरुके उपदेशसे आदि, मध्य अथवा अन्तमें एक बीज पदको ग्रहण करके जो बुद्धि अधस्तन ग्रन्थको जानती है, वह प्रतिसारिणी बुद्धि कहलाती है। जो बुद्धि नियम अथवा अनियमसे एक बीज शब्दको ग्रहण करनेपर उपरिम और अधस्तन ग्रन्थको एक साथ जानती है वह उभयसारिणी है। ये पदानु-सारित्वके तीन भेद हैं। (गा० ९८१-८३)।

णमो संभिण्णसोदाराणं[4] ॥ ९ ॥

अर्थ—सम्भिन्नश्रोतृत्व नामक ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।[5]

---

१ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठबुद्धीणं "—भ० क० य० ६। २ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीजबुद्धीणं "भ० क० य० ७। ३ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो पादानुसारीणं "—भ० क० य० ८। ४. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो संभिण्णसोदराणं "—भ० क० य० ९। ५ सम्यक् श्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमेन भिन्ना अनुविद्धा संभिन्ना.। संभिन्नाश्च ते श्रोतारश्च संभिन्नश्रोतारः।

विशेषार्थ– नौ योजन लम्बी, बारह योजन चौड़ी चक्रवर्तीकी सेनाके हाथी, घोड़ा, ऊँट तथा मनुष्यादिकोंके एक साथमें उत्पन्न अक्षरात्मक, अनक्षरात्मक अनेक प्रकारके शब्दोंको तपोबलविशेषके कारण सर्वजीव-प्रदेशोंमें कर्ण-इन्द्रियका परिणमन होनेसे सर्व शब्दोंका एक कालमें ग्रहण करना सम्भिन्नश्रोतृत्व ऋद्धि है।

तिलोयपण्णत्तिमें कहा है--श्रोत्रेन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम तथा अंगोपांग नाम कर्मके उदय होनेपर श्रोत्रेन्द्रियके उत्कृष्ट क्षेत्रसे बाहर दसों दिशाओंमें संख्यात योजनप्रमाण क्षेत्रमें स्थित मनुष्य एवं तिर्यंचोंके अक्षरात्मक-अनक्षरात्मक बहुत प्रकारके उत्पन्न होनेवाले शब्दोंको सुनकर जिससे उत्तर दिया जाता है वह सम्भिन्न-श्रोतृत्व है।

णमो उजुमदीणं[1] ॥ १० ॥

अर्थ—ऋजुमति मन.पर्यय ज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो।

णमो विउलमदीणं[2] ॥ ११ ॥

अर्थ—विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानी जिनोंको नमस्कार हो।

णमो दसपुव्वीणं[3] ॥ १२ ॥

अर्थ—दश पूर्वधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—महारोहिणी आदि विद्याओंके द्वारा अपने रूप, सामर्थ्य आदिका प्रदर्शन करनेपर भी अडिग चारित्रधारीका जो दशमपूर्व रूप दुस्तर-सागरके पार पहुँचना है, वह दशपूर्वित्व है। यहाँ जिन शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे अभिन्नदशपूर्वित्वका ग्रहण किया है[4]।

तिलोयपण्णत्तिमें कहा है—दशम पूर्वके पढनेमें रोहिणी आदि पाँच सौ महाविद्याओं तथा अंगुष्ठप्रसेनादिक सात सौ क्षुद्र विद्याओंके द्वारा आज्ञा माँगनेपर भी जो महर्षि जितेन्द्रिय होनेके कारण उन विद्याओंकी इच्छा नहीं करते हैं, वे 'विद्याधरश्रमण' या 'अभिन्नदशपूर्वी' कहलाते हैं। (पृ० २७४)।

णमो चोद्दसपुव्वीणं[5] ॥ १३ ॥

अर्थ—चौदह पूर्वधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जो सम्पूर्ण श्रुतकेवलीपनेको प्राप्त हैं, वे चतुर्दशपूर्वी कहलाते हैं।

---

१ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो ऋजुमदीण "–भ० क० य० १३। २ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउलमदीण " भ० क० य० १४। ३. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीण "–भ० क० य० १५। ४ "एत्थ दसपुव्विणो भिण्णाभिण्णभेएण दुविहा होंति। भिण्णदसपुव्वीण कथ पडिणियत्ती? जिणसद्दाणुवत्तीदो। ण च तेसिं जिणत्तमत्थि, भग्गमहव्वएसु जिणत्ताणुववत्तीदो।"–ध० टी०। ५ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीण "–भ० क० य० १६।

णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं[1] ॥ १४ ॥

अर्थ—अष्टाग महानिमित्त विद्यामें प्रवीण जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—[2]अन्तरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, छिन्न और स्वप्न—ये आठ महानिमित्त कहे जाते हैं। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, ताराओंके उदय, अस्त आदिसे भूत-भविष्यत्सम्बन्धी फलका ज्ञान करना अन्तरिक्षज्ञान है। पृथ्वीके घन, सुषिर, रूक्षतादिके ज्ञानसे अथवा पूर्वादि दिशाओंमे सूत्रनिवास करनेसे वृद्धि, हानि, जय, पराजय आदिका ज्ञान करना तथा भूमिमे छिपे हुए स्वर्ण, चॉदी आदिका परिज्ञान करना भौमज्ञान है। अग-उपागोंके देखने आदिसे त्रिकालवर्ती सुख-दुःखादिको जान लेना अंगज्ञान है। अक्षरात्मक या अनक्षरात्मक शुभ-अशुभ शब्दको सुनकर इष्ट-अनिष्ट फलको जान लेना स्वरज्ञान है। मस्तक, ग्रीवा आदिमें तिल, मशक आदि चिह्नोंको देखकर त्रिकालसम्बन्धी हित-अहितका जानना व्यंजनज्ञान है। श्रीवृक्ष, स्वस्तिक, भृंगार, कलश आदि लक्षणोंको देखकर त्रिकालवर्ती स्थान, मान, ऐश्वर्य आदिका विशेष ज्ञान करना लक्षण नामक निमित्तज्ञान है। वस्त्र, शस्त्र, छत्र, जूता, आसन, शयनादिकोंमे देव, मानुष, राक्षसादि विभागोसे शस्त्र, कण्टक, चूहा आदिकृत छेदनको देखकर त्रिकालसम्बन्धी हानि, लाभ, सुख, दुःखादिको सूचित करना छिन्न नामक ज्ञान है।[3] वात, पित्त, कफ दोषोंके उदयसे रहित व्यक्तिके रात्रिके पिछले भागमे, चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, समुद्र आदिका अपने मुखमें प्रवेश करना सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका उपगूहन आदि शुभ स्वप्न तथा घृत या तैललिप्त अपना शरीर देखना, गर्दभ, ऊँटपर चढ़े हुए इधर-उधर भटकते फिरना आदि अशुभ स्वप्नके दर्शनसे आगामी जीवन, मरण, सुख, दुःखादिका ज्ञान करना स्वप्नज्ञान है। इन महानिमित्तोंमे जो कुशलता है, वह अष्टांगमहानिमित्तता है। (त० रा० पृ० १४३)।

णमो विउव्वणपत्ताणं ॥ १५ ॥

अर्थ—वैक्रियिक ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ— विक्रियाको विषय करनेवाली ऋद्धिके अनेक भेद है। जैसे अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, अप्रतिघात, अन्तर्धान, कामरूपित्व आदि। शरीरको अत्यन्त छोटा करना 'अणिमा' है। इस ऋद्धिके प्रभावसे कमल-मृणालके छिद्रमें प्रवेश करके वहाॅ ठहरने तथा चक्रवर्तीके परिवारकी विभूतिको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होती है। अपने शरीरको मेरु पर्वतसे भी विशाल करना 'महिमा' ऋद्धि है। शरीरको वायुसे भी हल्का करना 'लघिमा' है। शरीरको वज्रसे भी अधिक भारी बनाना 'गरिमा' है। भूमिपर स्थित रहते हुए भी अंगुलीके कोनेसे मेरु-शिखर, सूर्य आदिका स्पर्शन करनेकी सामर्थ्यको 'प्राप्ति' कहते हैं। जलमे पृथ्वीके समान चलना, भूमिपर जलके समान तैरना 'प्राकाम्य' ऋद्धि है। तीन लोककी प्रभुता 'ईशित्व' है। सम्पूर्ण जीवोंको वश करनेकी सामर्थ्य 'वशित्व' है। पर्वतके भीतर भी आकाशमें गमनागमनके समान बिना रुकावटके आना-जाना 'अप्रति-

---

१ "ॐ ह्री अर्हं णमो अट्ठागमहाणिमित्तकुसलाणं"—भ० क० य० १७। २ "अग सरो वजणलक्खणाणि छिण्ण च भौम सुमिणतरिक्खं। एदे णिमित्ते हि पराहि णिच्चा जाणति लोयस्स सुहासुहाइ॥"—ध० टी० प० ६२७। ३ देव, दानव, राक्षस, मनुष्य और तिर्यचोके द्वारा छेदे गये शास्त्र एव वस्त्रादिक तथा भवन नगर और देशादि चिह्नोंको देखकर त्रिकालभावी शुभ, अशुभ, मरण, विविध प्रकारके द्रव्य और सुख-दुखको जानना यह चिह्न निमित्त ज्ञान है। यहाॅ 'छिन्न' का नाम 'चिह्न' दिया गया है।—ति० प०,पृ० २७६।

घात' है। अदृश्य रूप होनेकी सामर्थ्य 'अन्तर्धान' है। युगपत् अनेक आकार और रूप बनानेकी शक्ति 'कामरूपित्व' है।

यहाँ[1] जिन शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे अष्टगुण ऋद्धि होते हुए भी देवोंका ग्रहण नहीं किया गया है, कारण, देवोंमें संयमका अभाव है, अतः वे 'जिन' नहीं हैं।

णमो विज्जाहराणं ॥१६॥

अर्थ—विद्याधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—[3]विद्या तीन प्रकारकी होती हैं। मातृ पक्षसे प्राप्त जातिविद्या है। पितृपक्षसे प्राप्त कुलविद्या है। षष्ठ, अष्टम आदि उपवास करनेसे सिद्ध की गयी तपविद्या है। यहाँ देव तथा विद्याधरोंका ग्रहण नहीं किया गया है, कारण वे जिन नहीं हैं।

णमो चारणाणं[4] ॥ १७ ॥

अर्थ—चारणऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जल, जंघा, तन्तु, पुष्प, पत्र, अग्नि-शिखादिके आलम्बनसे गमन करना 'चारण' ऋद्धि है। कुँआ, बावड़ी आदिमें जलकायिक जीवोंकी विराधना नहीं करते हुए भूमिके समान चरणोंके उठाने-धरनेकी प्रवीणताको 'जलचारण' कहते हैं। भूमिसे चार अंगुल ऊँचे आकाशमें जंघाके उठाने-धरनेकी कुशलतासे सैकड़ों योजन गमन करनेकी प्रवीणता 'जंघाचारण' है। इसी प्रकार इस ऋद्धिके अन्य भेद हैं।

णमो पण्हसमणाणं[5] ॥ १८ ॥

अर्थ—[6]प्रज्ञाश्रमण जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—असाधारण प्रज्ञाशक्तिधारी प्रज्ञाश्रमण कहलाते हैं। अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्वार्थचिन्तनके प्रभावसे चौदह पूर्वोंके विषयमें पूछे जानेपर जो द्वादशांग, चतुर्दश पूर्वको बिना पढ़े हुए भी उत्कृष्ट श्रुतावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न असाधारण प्रज्ञाशक्तिके लाभसे स्पष्ट निरूपण करते हैं वे प्रज्ञाश्रमणधारी हैं।

तिलोयपण्णत्ति (पृ० २७७) में प्रज्ञाके चार भेद कहे हैं—औत्पत्तिकी, पारिणामिकी, वैनयिकी तथा कर्मजा। भवान्तरमें कृत श्रुतके विनयसे उत्पन्न होनेवाली औत्पत्तिकी, निज-निज जातिविशेषमें उत्पन्न हुई पारिणामिकी, द्वादशांगश्रुतकी विनयसे उत्पन्न वैनयिकी एवं उपदेशके बिना तपविशेषके लाभसे उत्पन्न कर्मजा कहलाती है।

---

१ "अट्ठगुणड्ढिजुत्ताणं देवाणं एसो णमोक्कारो किण्ण पावदे ? ण एस दोसो, जिणसद्दाणुवट्टणेण तण्णिराकरणादो। ण च देवाणं जिणत्तमत्थि। तत्थ संजमाभावादो॥"–ध० टी०। २ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराण"–भ० क० य० १९। ३. "तत्थ सगमादुपक्खादो लद्धविज्जाओ जादिविज्जाओ णाम। पिदुपक्खलद्धाओ कुलविज्जाओ। छट्ठट्ठमादिउववासविहाणेहि साहिदाओ तवविज्जाओ। एवमेदाओ तिविहाओ होंति।"–ध० टी०। ४. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाण"–भ० क० य० २०। ५. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्हसमणाण ···"–भ० क० य० २१। ६. "औत्पत्तिकी वैनयिकी कर्मजा पारिणामिकी चेति चतुर्विधा प्रज्ञा। प्रज्ञा एव श्रवण येषा ते प्रज्ञाश्रवणा.। असजदाण न पण्णसमणाण गहण जिणमद्दाणुवत्तीदो।" –ध० टी०।

यहाँ 'जिन' शब्दकी अनुवृत्ति रहनेसे असंयतोंका निराकरण हो जाता है।

णमो आगासगामीणं[1] ॥ १९ ॥

अर्थ—आकाशगामी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—पल्यंकासन वा कायोत्सर्ग आसनसे ही पैरोंको बिना उठाये-धरे आकाशमें गमन करनेकी विशेषताको आकाश-गमन ऋद्धि कहते हैं। यहाँ जिन शब्दकी अनुवृत्ति रहनेके कारण देव विद्याधरोंका निराकरण हो जाता है।

णमो आसीविसाणं[2] ॥ २० ॥

अर्थ—आशीविष ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

उग्र विषयुक्त आहार भी जिनके मुखमें जाकर निर्विष हो जाता है वा जिनके मुखसे निकले हुए वचनोंके श्रवणसे महाविषयुक्त व्यक्ति निर्विष हो जाता है, वे 'आस्याविष' ऋद्धिधारी हैं। महान् तपोबलसे विभूषित यतिजन जिसको कहें 'तू मर जा' वह तत्क्षण ही महाविषयुक्त हो मृत्युको प्राप्त हो जाता है. वह 'आस्यविष' ऋद्धि है। इस प्रकार 'आस्य अविष' तथा 'आस्य विष' दोनों प्रकारके अर्थ कहे गये हैं[3]।

णमो दिट्ठिविसाणं[4] ॥ २१ ॥

अर्थ—दृष्टिविष ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनके देखने मात्रसे अत्यन्त तीव्र विषसे दूषित भी प्राणी विषरहित हो जाता है वे 'दृष्टिविष' ऋद्धिधारी हैं। उग्र तपस्वी मुनिजन क्रुद्ध हो जिसे देख लें, वह उसी समय उग्र विषयुक्त हो मर जाता है। इसे भी दृष्टिविष ऋद्धि कहते हैं। यहाँ भी 'जिन' शब्दकी अनुवृत्ति है, अन्यथा दृष्टिविष सर्पोंको भी प्रणामका प्रसंग आता[5]। यद्यपि साधुजन तोष अथवा रोषसे मुक्त हैं, फिर भी तपस्याके कारण उनमें उपर्युक्त विशेष शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिसका उपयोग वीतराग ऋषिगण नहीं करते हैं।

णमो उग्गतवाणं[6] ॥ २२ ॥

अर्थ—उग्र तपवाले जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह दिन वा पक्ष मासादिके अनशन योगोंमें किसी भी रूपके उपवासको प्रारम्भ करके मरणपर्यन्त भी उस योगसे विचलित नहीं होना उग्रतप ऋद्धि है।

---

१. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामीणं"—भ० क० य० २२। २. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसीविसाणं"—भ० क० य० २३। ३. "अविद्यमानस्यार्थस्य आशंसनमाशीः, आशीर्विषं येषां ते आशीर्विषाः। तवोबलेण एवंविहसत्तिसंजुत्तवयणा होदूण जे जीवाणं णिग्गहाणुग्गहं ण कुणंति। ते आसीविसा त्ति घेत्तव्वा। कुदो ? जिणाणुउत्तीदो। ण च णिग्गहाणुग्गहेहि उवरिसिदरोसतोसाणं जिणत्तमत्थि विरोहादो।" —ध० टी०। ४. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं"—भ० क० य० २४। ५. "दृष्टिरिति चक्षुर्मनसोर्ग्रहणं।" "जिणाणमिदि अणुवट्टदे, अण्णहा दिट्ठिविसाणं सप्पाणं पि णमोक्कारप्पसंगादो।" —ध० टी०। ६. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गतवाणं"—भ० क० य० २५।

णमो दित्ततवाणं[1] ॥ २३ ॥

अर्थ—दीप्त तपवाले जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—महान् उपवास करनेपर भी जिनकी मन, वचन, कायकी शक्ति बढती हुई ही पायी जाती है, जो दुर्गन्धरहित मुखवाले, कमल—उत्पलादिकी सुगन्धके समान श्वास-वाले तथा शरीरकी महाकान्तिसे सम्पन्न है, वे दीप्ततपस्वी जिन है।

णमो तत्ततवाणं[2] ॥ २४ ॥

अर्थ—तप्त तपवाले जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—तप्त लोहेकी कढाईमें पतित जलकणके समान शीघ्र ही जिनका अल्प आहार शुष्क हो जाता है, उसका मल रुधिरादि रूपमें परिणमन नहीं होता वे तप्ततपस्वी हैं।

णमो महातवाणं[3] ॥ २५ ॥

अर्थ—महातपधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—सिंहनिष्क्रीडितादि महान् उपवासादिके अनुष्ठानमें परायण महातपस्वी कहलाते हैं।

णमो घोरतवाणं[4] ॥ २६ ॥

अर्थ—[5]घोर तपधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—वात, पित्त, कफकी विषमतासे उत्पन्न ज्वर, खाँसी, श्वास, नेत्रपीडा, कुष्ठ, प्रमेहादि रोगोंसे पीड़ित शरीरयुक्त होते हुए भी जो अनशन, कायक्लेशादि तपोंसे अविचलित रहते हैं तथा भयंकर श्मशान, पर्वत-शिखर, गुहा, दरी, शून्य ग्राम आदिमें, जहाँ अत्यन्त दुष्ट, यक्ष, राक्षस, पिशाच, बेताल भयंकर रूपका प्रदर्शन कर रहे हैं एवं जहाँ शृगालके कठोर शब्द, सिंह, व्याघ्र, सर्प आदिके भीषण शब्द हो रहे हैं, ऐसे भयंकर प्रदेशोंमें सहर्ष रहते हैं वे घोर तपस्वी हैं।

णमो घोरपरक्कमाणं[6] ॥ २७ ॥

अर्थ—घोर पराक्रमवाले जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त तपस्वी जब ग्रहण किये गये तपकी साधनामें वृद्धि करते हैं, तब वे घोर पराक्रमी कहलाते हैं।

तिलोयपण्णत्ति (पृ० २८१) में कहा है—जिस ऋद्धि के प्रभावसे मुनिजन अपनी अनुपम सामर्थ्यसे कण्टक, शिला, अग्नि, पर्वत, धूम्र और उल्का आदिके पात करनेमें तथा सागरके समस्त जलका शोषण करनेमें समर्थ होते हैं, वह घोर पराक्रम ऋद्धि है।

---

१. "ॐ ह्री अर्हं णमो दित्ततवाण....." –भ० क० य० २६। २. "ॐ ह्री अर्हं णमो तत्ततवाण ..." –भ० क० य० २७। ३. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो महातवाणं....."–भ० क० य० २८। ४ "ॐ ह्री अर्हं णमो घोरतवाणं ...." –भ० क० य० २९। ५. "घोरा रउद्दा गुणा जेसि ते-घोरगुणा। कथं चोरासीदि-लक्खगुणाण घोरत्त ? घोरकज्जकारिसत्तिजणणादो। तेसि घोरगुणाण णमो इदि उत्तं होदि।" –ध० टी०। ६. "ॐ ह्री अर्हं णमो घोरपरक्कमाणं ...." –भ० क० य० ३१।

णमो घोरगुणाणं ॥ २८ ॥[1]

अर्थ—घोर गुणवाले जिनोंको नमस्कार हो।

णमोऽघोरगुणबह्मचारीणं ॥ २९ ॥[2]

अर्थ—अघोर ब्रह्मचर्यधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—वीरसेनाचार्य कहते हैं—जिनमें तपोमाहात्म्यसे मारी आदि रोग, दुर्भिक्ष, वैर, कलह, वध, बन्धन आदिके प्रशमन करनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है, वे अघोर ब्रह्मचारी हैं[3]। देवांगनाओंके द्वारा आलिंगनादि किये जानेपर भी वे निर्विकार परिणाम-युक्त रहते है।

अकलंक स्वामी राजवार्तिक (पृ० १४४) में अघोरके स्थानमें घोर पाठ मानकर यह अर्थ करते हैं—जो चिरकालसे अखण्ड ब्रह्मचर्यके धारक हैं और चारित्रमोहके उत्कृष्ट क्षयोप-शमसे जिनके दुःस्वप्नोंका विनाश हो चुका है वे घोर ब्रह्मचारी है।

तिलोयपण्णत्तिकार (पृ० २८२) कहते हैं—जिस ऋद्धिसे मुनिके क्षेत्रमें चोरादिककी बाधा, दुष्काल तथा महायुद्ध आदि नहीं होते हैं, वह अघोर ब्रह्मचारित्व है, अथवा चारित्र-निरोधक मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेसे जो ऋद्धि दुःस्वप्नोंको दूर करती है वह अघोर ब्रह्मचारित्व है, अथवा जिस ऋद्धिके होनेसे महर्षिजन सब गुणोंके साथ अघोर अर्थात् अविनाशी ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, वह अघोरब्रह्मचारित्व है।

णमो आमोसहिपत्ताणं ॥ ३० ॥[4]

अर्थ—जिनका आम अर्थात् अपक्वाहार औषधिरूपताको प्राप्त हो, उन जिनोंको नमस्कार हो।

तिलोयपण्णत्तिमे इसे आमर्शौषधि कहा है। वहाँ लिखा है, जिस ऋद्धिके प्रभावसे जीव पासमें आनेपर ऋषिके हस्त व पादादिके स्पर्शसे ही नीरोग हो जाते हैं वह आम-र्शौषधि है (ति० प० पृ० २८३)।

णमो खेलोसहिपत्ताणं ॥ ३१ ॥[5]

अर्थ—क्ष्वेलौषधि प्राप्त जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनका निष्ठीवन (थूक) औषधिरूप अर्थात् रोगनिवारक होता है, वे मुनिराज क्ष्वेलौषधि प्राप्त है।

---

१ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणाण " "—भ० क० य० ३०। २ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर-गुणबमचारीण "—भ० क० य० ३२। घोरो दुर्धरो गुणो निरतिचारतालक्षणो यस्य तद्घोरगुणम, दिव्याङ्गनालिङ्गनादिभिरप्यक्षुभितचित्तम् —प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी पृ० ९४। ३ "ब्रह्म चारित्रं पञ्चव्रतसमितित्रिगुप्त्यात्मक शान्तिपुष्टिहेतुत्वात्। अघोरा अन्ता गुणा यस्मिन् तदघोरगुणम् अघोरगुण ब्रह्म चरन्तीति अघोरगुणब्रह्मचारिण। जेसिं तवोमाहप्पेण मारिदुब्भिक्खवैरकलहवधबंधणरोगादिपसमण-सत्ती समुप्पण्णा ते अघोरगुणबम्भचारिणो त्ति उत्त होदि। एत्थ अकारो किण्ण सुणिज्जदे ? सधिणि-द्देसादो।"—ध० टी०। ४ आमोऽपक्वाहार स एवौषधि ता प्राप्ता आमौषधिप्राप्ता —प्रतिक्र० पृ० ९४। ५ "ॐ ह्रीं अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताण।"—भ० क० य० ३४।

णमो जल्लोसहिपत्ताणं[1] ॥ ३२ ॥

अर्थ—जल्लौषधि ऋद्धिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—पसीनेसे मिले हुए धूलिसमूहरूप मलको जल्ल कहते हैं। जिन मुनियोंका जल्ल औषधिरूप होता है, वे जल्लौषधि प्राप्त जिन कहलाते हैं।

णमो विट्ठोसहिपत्ताणं[2] ॥ ३३ ॥

अर्थ—जिनका मल औषधिरूप परिणत हो गया है, उन जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनका मूत्र-पुरीषादि मल रोगनिवारक होता है, वे विष्ठौषधिप्राप्त हैं। महान् तपश्चर्याके प्रभावसे यह सामर्थ्य प्राप्त होती है।

णमो सव्वोसहिपत्ताणं[3] ॥ ३४ ॥

अर्थ—सर्वौषधि ऋद्धिप्राप्त जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिन ऋषियोंके अंग, प्रत्यंग, नख, दन्त, केशादि स्पर्श करनेवाले जल, पवनादि जीवोंके लिए औषधिरूप परिणत हो जाते हैं, वे सर्वौषधिप्राप्त जिन हैं।

णमो मणबलीणं[4] ॥ ३५ ॥

अर्थ—मनबलधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—नोइन्द्रियावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमके प्रकर्षसे अन्तर्मुहूर्तमें ही सम्पूर्ण श्रुतके अर्थ-चिन्तनमें प्रवीण मनोबली हैं।

णमो वचिबलीणं[5] ॥ ३६ ॥

अर्थ—वचनबली जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—मन, रसना तथा श्रुतज्ञानावरण एवं वीर्यान्तरायके क्षयोपशमके अतिशयसे जो अन्तर्मुहूर्तमें सम्पूर्ण श्रुतके उच्चारण करनेमें समर्थ हैं तथा निरन्तर उच्चस्वरसे उच्चारण करनेपर भी जो श्रमरहित एवं कण्ठके स्वरमें हीनतारहित हैं, वे ऋषि वचनबली हैं।

णमो कायबलीणं[6] ॥ ३७ ॥

अर्थ—कायबली जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न असाधारण शरीरबल होनेसे मासिक, चातुर्मासिक, वार्षिक आदि प्रतिमायोग धारण करते हुए भी जिन्हें खेद नहीं होता, वे मुनिवर कायबली हैं।

तिलोयपण्णत्ति (पृ० २८३) में कहा है—जिस ऋद्धिके बलसे वीर्यान्तरायका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेपर मुनिराज मास वा चातुर्मास आदि कायोत्सर्ग करते हुए भी श्रमरहित

---

१ "ॐ ह्रो अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताण"–भ० क० य० ३५। २. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो विट्ठोसहिपत्ताण"–भ० क० य० ३६। ३. "ॐ ह्रो अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताण" –भ० क० य० ३३–३७। ४. "ॐ ह्रो अर्हं णमो मणबलीण"–भ० क० य० ३८। ५. "ॐ ह्रो अर्हं णमो वचबलीण" –भ० क० य० ३९। ६. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायबलीण" –भ० क० य० ४०।

होते हैं तथा शीघ्र ही तीनों लोकोंको कनिष्ठ अंगुलीपर उठाकर अन्यत्र धरनेमें समर्थ होते हैं, वह कायबल नामकी ऋद्धि है।

णमो खीरसवीणं[1] ॥ ३८ ॥

अर्थ—क्षीरस्रवी ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—नीरस भोजन भी जिनके हस्त-पुटमें रखे जानेपर क्षीर-गुणरूप परिणमन करता है वा जिनके वचन क्षीण व्यक्तियोंको दुग्धके समान तृप्ति प्रदान करते है, वे क्षीरस्रवी हैं। तत्त्वार्थराजवार्तिक (पृ० १४५) में 'क्षीरास्रवी' पाठ ग्रहण किया है।

णमो सप्पिसवीणं ॥ ३९ ॥

अर्थ—घृतस्रवी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—रूक्ष भोजन भी जिनके कर-पात्रमें पहुँचते ही घृतके समान शक्तिदायक हो जाता है अथवा जिनका सम्भाषण जीवोंको घृत-सेवनके समान तृप्ति पहुँचाता है, वे घृतस्रवी है।

णमो महुसवीणं[2] ॥ ४० ॥

अर्थ—मधुस्रवी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनके हस्त-पुटमें रखा हुआ नीरस आहार भी मधुर रसपूर्ण तथा शक्ति-सम्पन्न हो जाता है, अथवा जिनके वचन दुःखी श्रोताओंको मधुके समान सन्तोष देते हैं, वे मधुस्रवी हैं। यहाँ 'मधु' शब्दका तात्पर्य मधुररसवाले गुड, खाँड़, शर्करा आदिसे है, कारण उन सबमें मधुरता पायी जाती है।[3]

णमो अमइसवीणं[4] ॥ ४१ ॥

अर्थ—अमृतस्रवी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—जिनके हस्त-पुटमें पहुँचकर कोई भी भोज्य वस्तु अमृतरूप हो जाती है, अथवा जिनकी वाणी जीवोंको अमृत तुल्य कल्याण देती है, वे अमृतस्रवी हैं।

णमो अक्खीणमहाणसाणं[5] ॥ ४२ ॥

अर्थ—अक्षीण महानस ऋद्धिधारी जिनोंको नमस्कार हो।

विशेषार्थ—लाभान्तरायके क्षयोपशमके उत्कर्षको प्राप्त मुनीश्वरोंको जिस पात्रसे आहार दिया जाता है, उससे यदि चक्रवर्तीका कटक भी भोजन करे, तो उस दिन अन्नकी कमी न पड़े यह अक्षीण महानस ऋद्धि है। तिलोयपण्णत्ति (पृ० २८५) मे कहा है—लाभान्तरायके क्षयोपशमसे संयुक्त मुनिराजके भोजनानन्तर भोजनशालाके अवशिष्ट अन्नमें-से जिस किसी भी प्रिय वस्तुका उस दिन चक्रवर्तीके कटकको भोजन करानेपर भी लेशमात्र क्षीण न होना अक्षीण महानस ऋद्धि है।

---

१. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीरसवीणं"—भ० क० य० ४२। २. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवीणं"—भ० क० य० ४३। ३. "महुवयणेण गुडखंडसक्करादीणं गहणं महुरसादं पडि एदासिं साहम्मुवलंभादो।" ध० टी०। ४. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमियसवीणं।" —भ० क० य० ४४। ५. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं।"—भ० क० य० ४५।

णमो सव्वसिद्धायदणाणं[1] ॥ ४३ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण सिद्धायतनों अर्थात् निर्वाणक्षेत्रोंको नमस्कार हो।

णमो वड्ढमाणबुद्धरिसिस्स[2] ॥ ४४ ॥

अर्थ—वर्धमान बुद्ध ऋषिको नमस्कार हो।

[प्रकृतिसमुत्कीर्तननिरूपणा]

[इस महाबन्ध अथवा महाधवल शास्त्रका प्रारम्भिक ताड़पत्र नं० २७।१ नष्ट हो गया है, उसकी उसी रूपमें पूर्ति होना असम्भव है। आगेके वर्णनक्रमके साथ सम्बन्ध मिलानेकी दृष्टिसे मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण तथा अवधिज्ञानावरणका संक्षेपमें वर्णन करते हैं, कारण ग्रन्थमें ज्ञानावरणपर आरम्भमें प्रकाश डाला गया है।]

जो त्रिकालवर्ती द्रव्य, गुण, पर्यायोंको नाना भेदोंसहित प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे जानता है, उसे ज्ञान कहते हैं।[3] उस ज्ञानका आवरण करनेवाला ज्ञानावरण कर्म है। यह ज्ञान जीवका स्वभाव है। इसके द्वारा जीव स्व तथा अपूर्व वस्तुका व्यवसाय निश्चय करता है। वस्तु सामान्य तथा विशेष धर्मोंसे समन्वित है। साकार उपयोग ज्ञान तथा निराकार उपयोग दर्शन कहलाते हैं।[4] ज्ञान तथा दर्शन जीवके पृथक्-पृथक् गुण हैं।[5] चित्-प्रकाशकी बहिर्मुख वृत्तिको भी ज्ञान कहते हैं और चित्-प्रकाशकी अन्तर्मुख वृत्तिको दर्शन कहते हैं। 'गोम्मटसार' जीवकाण्डमें लिखा है—सामान्य विशेषात्मक पदार्थोंके भेदको ग्रहण न करके जो सामान्यग्रहण-स्वरूपमात्रका अवभासन है, वह दर्शन है (४८२ गाथा)। इस दर्शनका आवरण करनेवाला कर्म दर्शनावरण है। जिसके[6] उदयसे देवादि गतियोंमें शारीरिक तथा मानसिक सुखकी प्राप्ति होती है, उसे साता कहते हैं, उसको जो भोगवावे तथा जिससे साताका वेदन करना, भोगना होता है, वह सातावेदनीय है। जिसके उदयका फल अनेक प्रकारके दुःख है, वह असाता है। जो उसे भोगवावे—अनुभवन करावे, वह असातावेदनीय है। जो जीवको मोहित करे, वह मोहनीय कर्म है। भव धारण करनेमें कारण आयु कर्म है। इस जीवकी नर-नारकादि विविध पर्यायोंमें कारण नाम कर्म है। कुल-परम्परासे प्राप्त जीवके उच्च अथवा नीच आचरणका कारण गोत्रकर्म है। इस जीवके दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्य (शक्ति) में जो अन्तराय—बाधा डालना है, वह अन्तराय कर्म है। इन आठ कर्मोंमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोह तथा अन्तरायको घातिया कर्म कहते हैं, कारण ये जीवके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य नामक गुणोंका

---

१ "सिद्धाना मुक्तात्मनामायतनानि निर्वाणस्थानानि तेषां नमः"—प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी, पृ० ६५। २. "ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाण "–भ० क० य० ४६। "ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वसाहूण महति महावीर-वड्ढमाण बुद्धिरिसीण " "–भ० क० य० ४८। "बुद्धश्च स्वहेयोपादेयविवेकसम्पन्न, ऋषिश्च प्रत्यक्षवेदी" प्र० ग्रन्थत्रयी पृ० ६५। ३. "जाणइ तिकालविसए दव्वगुणे पज्जए य बहुभेदे। पच्चक्खं च परोक्खं अणेण णाणे त्ति ण वेंति॥"–गो० जी०, गा० २९८। ४. 'साकारं ज्ञानमनाकारं दर्शनम्"—त० रा०, पृ० ८६। ५ "अन्तर्बहिर्मुखयोश्चित्प्रकाशयोर्दर्शनज्ञानव्यपदेशभाजोरेकत्व विरोधात्"–ध० टी०, भा० १, पृ० १४५। ६. "यदुदयात् देवादिगतिषु शारीरमानससुखप्राप्ति तत्सातम्। तद्वेदयति वेद्यते इति सातवेदनीयम्। यदुदयफलं दुःखमनेकविधं तदसातम्, तद्वेदयति वेद्यते, इत्यसातवेदनीयमिति—गो० क०, टीका पृ० २७।

घात करते हैं। ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य जीवके अनुजीवी गुण हैं। सिद्धोंके[1] अव्याबाध सुखका घात आठों ही कर्म करते हैं। प्रत्येक कर्मका कार्य जीवके विशेष गुणके घात करनेका है, किन्तु उन सबका सामान्य धर्म जीवके सुख गुणके भी विनाश करनेका पाया जाता है।

वेदनीय, आयु, नाम तथा गोत्र ये प्रतिजीवी गुणोंका नाश करते हैं। अनुजीवी गुणोंका घात न करनेके कारण इनको अघातिया कर्म कहते हैं। ये क्रमशः अव्याबाध, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व तथा अगुरुलघुत्व गुणोंका नाश करते हैं। चार घातियाका नाश करनेवाले अरहन्त भगवान्में गुणचतुष्टयकी अभिव्यक्ति होती है तथा सिद्धोंमें कर्माष्टकके ध्वंस करनेसे आठ गुण व्यक्त होते हैं।[2] कर्मोंके ध्वंसका अर्थ पुद्गलका अत्यन्त क्षय नहीं है, कारण सत्का अत्यन्त विनाश नहीं हो सकता। पुद्गलकी कर्मत्वपर्यायका नष्ट हो जाना अर्थात् आत्माके साथ उसका सम्बन्ध न रहना ही कर्मक्षय है।

ज्ञानावरण कर्मकी पाँच प्रकृतियाँ हैं—आभिनिबोधिकज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। ये आवरणपंचक आभिनिबोधिकज्ञान—श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान तथा केवलज्ञानरूप ज्ञानकी पाँच अवस्थाओंको आवृत करते हैं। मिथ्यात्वके उदयसे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञानको मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान तथा विभंगज्ञान कहते हैं। इन तीन ज्ञानोंको कुज्ञान भी कहते हैं।

इन्द्रिय[3] तथा मनकी सहायतासे अभिमुख तथा प्रतिनियत पदार्थको जाननेवाला आभिनिबोधिक या मतिज्ञान कहलाता है।[4] मतिज्ञान-द्वारा गृहीत अर्थसे जो अर्थान्तरका बोध होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं।[5] द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावकी अपेक्षा जिस प्रत्यक्षज्ञानके विषयकी अवधि या सीमा हो, उसे अवधिज्ञान या सीमाज्ञान कहते हैं। परकीय मनमें स्थित पदार्थको जो ज्ञान जानता है, उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं। त्रिकालगोचर सर्वद्रव्यों तथा उनकी समस्त पर्यायोंको ग्रहण करनेवाला केवलज्ञान है।

[आभिनिबोधिकज्ञानावरणप्ररूपणा]

जो आभिनिबोधिक ज्ञानावरण कर्म है, वह चार, चौबीस, अट्ठाईस तथा बत्तीस प्रकारका है। अवग्रह, ईहा, अवाय तथा धारणाका आवरण करनेवाला अवग्रहावरण, ईहावरण, अवायावरण तथा धारणावरण कर्म है। विषय और विषयीके सन्निपातके अनन्तर पदार्थका आद्य ग्रहण अवग्रह है। इसका आवरण करनेवाला अवग्रहावरण कर्म है। अवग्रहके द्वारा गृहीत अर्थके विषयमें विशेष जाननेकी इच्छाके बाद भवितव्यता प्रत्ययरूप ज्ञानको ईहा कहते हैं। उसका आवारक कर्म ईहावरण कर्म है। इसके अनन्तर भाषा, वेष आदिका विशेष ज्ञान होनेसे जो संशयादिका निराकरण करके निर्णयरूप ज्ञान होता है, वह अवाय है। इसका आवारक अवायावरण कर्म है। अवायज्ञानके विषयभूत पदार्थके कालान्तरमें स्मरणका कारण धारणाज्ञान है, उसका आवारक धारणावरण कर्म है।

---

१. 'कर्माष्टकं विपक्षि स्यात् सुखस्यैकगुणस्य च। अस्ति किंचिन्न कर्मैकं तद्विपक्षं ततः पृथक्॥' —पञ्चाध्यायी २।११५। २ "नात्मनो मलादेर्निवृत्तिः क्षयः। सतोऽत्यन्तविनाशानुपपत्तेः। तादृगात्मनोऽपि कर्मणो निवृत्तौ परिशुद्धिः।"—अष्टसह० पृ० ५३। ३. "तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्"—त० सू० १।१४। ४. 'अत्थादो अत्थंतरमुवलंभं तं भणंति सुदणाणं। आभिणिबोहियपुव्वं णियमेणिह सद्दजं पमुहं॥"—गो० जी०, ३१५। ५ "अवहीयदि त्ति ओही सीमाणाणेत्ति वण्णियं समये। भवगुणपच्चयविहियं जमोहिणाणे त्ति णं बेंति॥"—गो० जी०, ३६६।

अवग्रहावरण कर्मके अर्थावग्रहावरण तथा व्यंजनावग्रहावरण कर्म ये दो भेद हैं। अव्यक्त पदार्थका ग्रहण करना व्यंजनावग्रह है। यह इन्द्रियोंसे सम्बद्ध अर्थका होता है। इसके विपरीत स्वरूपवाला अर्थावग्रह है। व्यंजनावग्रहका आवारक व्यंजनावग्रहावरण कर्म है तथा अर्थावग्रहका आवारक अर्थावग्रहावरण कर्म है। व्यंजनावग्रह चक्षु तथा मनको छोड़कर शेष स्पर्शन, रसना, घ्राण तथा श्रोत्र इन्द्रियसे होता है। अतएव इसके स्पर्शनेन्द्रिय-व्यंजनावग्रहावरण कर्म, रसनेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरण कर्म, घ्राणेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरण कर्म तथा श्रोत्रेन्द्रियव्यंजनावग्रहावरण कर्म ये चार भेद होते हैं।

अर्थावग्रह व्यक्त वस्तुका ग्राहक होनेके कारण पाँच इन्द्रिय तथा मनके द्वारा होता है। इस कारण उसके आवारक स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रियावरण कर्म और नोइन्द्रियावरण कर्म हैं। ईहा, अवाय तथा धारणा ज्ञान भी पाँच इन्द्रिय तथा मनसे होनेके कारण अर्थावग्रहके समान प्रत्येक छह-छह भेदवाला है। इस कारण व्यंजनावग्रहके चार भेदोंमें अर्थावग्रहादिके चौबीस भेदोंको मिलानेसे २८ भेद होते हैं। अतएव मतिज्ञानावरण कर्मके भी २८ भेद हो जाते हैं। इसके बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, उक्त, अनुक्त, ध्रुव, अध्रुव, निःसृत, अनिःसृत—इन बारह प्रकारके पदार्थोंको विषय करनेके कारण प्रत्येकके द्वादश भेद हो जाते हैं। इस प्रकार २८×१२=३३६ भेद मतिज्ञानके हैं। अतएव मतिज्ञानावरण कर्मके भी ३३६ भेद होते हैं।

[श्रुतज्ञानावरणप्ररूपणा]

मतिज्ञानके द्वारा जाने गये पदार्थसे पदार्थान्तरका ग्रहण करना श्रुतज्ञान है। वह 'नित्य शब्दनिमित्तक है अथवा अन्य-निमित्तक है' ऐसी शंकाका निराकरणके लिए उस श्रुतज्ञानको मतिपूर्वक कहा है। यद्यपि श्रुतज्ञानपूर्वक भी श्रुतज्ञान होता है, फिर भी श्रुतज्ञानके मतिपूर्वकत्वमें बाधा नहीं आती है। श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है, इसका तात्पर्य इतना है कि प्रत्येक श्रुतज्ञानके प्रारम्भमें मतिज्ञान निमित्त हुआ करता है। पश्चात् मतिपूर्वकत्वका कोई नियम नहीं है।

उस श्रुतज्ञानके शब्दजन्य तथा लिंगजन्य ये दो भेद कहे गये हैं। अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक रूपसे भी उसके दो भेद कहे जाते हैं। श्रुतज्ञानको अक्षरात्मक या शब्दात्मक मानना उपचरित कथन है। [1]श्रुतज्ञानका कारण प्रवचन है, इससे प्रवचनको भी श्रुतज्ञान कह दिया है। अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके असंख्यात भेद हैं। अपुनरुक्त अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके संख्यात भेद हैं। पुनरुक्त अक्षरात्मक श्रुतज्ञानका प्रमाण-इससे कुछ अधिक है। ३३ व्यंजन, २७ स्वर तथा ४ अयोगवाह मिलकर कुल चौसठ मूलवर्ण होते है। इन चौसठ वर्णोंके संयोगसे १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ इन बीस अंक प्रमाण अपुनरुक्त अक्षर होते हैं। उपर्युक्त अक्षरों-में १६३४८३०७८८८ इन एकादश अंकप्रमाण अक्षरात्मक मध्यम पदका भाग देनेपर लब्धि-रूपमें प्राप्त संख्याप्रमाण अंगप्रविष्ट पद होते हैं जो द्वादशांग—आचारांगादिके नामसे ख्यात हैं।

---

१. "श्रुतज्ञानस्य कारणं हि प्रवचनं श्रुतमित्युपचर्यते। मुख्यस्य श्रुतज्ञानस्य भेदप्रतिपादनं कथमुपपन्नम्? तज्ज्ञानस्य भेदप्रभेदरूपत्वोपपत्ते। द्विभेदप्रवचनजनित हि ज्ञानं द्विभेदम्। अङ्गबाह्यप्रवचनजनितस्य ज्ञानस्याङ्गबाह्यत्वात् अङ्गप्रविष्टजनितज्ञानस्याङ्गप्रविष्टत्वात्।"—त० श्लो० पृ० २३६। "तत्थ अगबाहिरस्स चोद्दस अत्थाहियारा, अंगपविट्ठअत्थाधियारो बारमविहो।" —ध० टी० भाग १, पृ० ९६।

भाग देनेसे शेष बचे हुए अक्षरोंको अंगबाह्य कहते हैं। अंगबाह्यके सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्प्याकल्प्य, महाकल्प्य, पुण्डरीक, महापुण्डरीक तथा निषिद्धिका ये चौदह प्रकार हैं[१]। बुद्धिके अतिशय तथा ऋद्धिविशिष्ट गणधरदेवके द्वारा अनुस्मृत जो द्वादशांगरूप जिनवाणीकी ग्रन्थरचना है, वह अंगप्रविष्ट है। आचार्य अकलंकदेव उन गणधरदेवके शिष्य-प्रशिष्योंके द्वारा आरातीय आचार्योंके पाससे श्रुतज्ञानके तत्त्वको ग्रहण करके कालदोषसे अल्पमेधा, अल्पबल तथा अल्प आयुयुक्त प्राणियोंके अनुग्रहके लिए उपनिबद्ध संक्षिप्तरूपसे अंगोंके अर्थरूप वचन-विन्यासको अंगबाह्य कहते हैं। इस दृष्टिसे आचार्यपरम्परासे प्राप्त तथा जिनवाणीके तत्त्वका प्रतिपादन करनेवाले अन्य ग्रन्थान्तर अंगबाह्य श्रुतमें समाविष्ट होते हैं।

अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानका सबसे छोटा रूप पर्यायज्ञान कहलाता है। उससे कम ज्ञान किसी भी जीवके नहीं पाया जा सकता है। उस ज्ञानको नित्य प्रकाशमान तथा निरावरण कहा है।[२] सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव अपने योग्य सम्भवनीय ६०१२ भवोंमें परिभ्रमण कर अन्तके अपर्याप्तक शरीरको तीन मोड़ाओंसहित जब ग्रहण करता है, तब उसके प्रथम मोड़ाके समयमें सर्व जघन्य ज्ञान होता है।

[३]इस पर्यायज्ञानसे आगे पर्याय-समास, अक्षर, अक्षर-समास, पद, पद-समास, संघात, संघात-समास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिक-समास, अनुयोग, अनुयोग-समास, प्राभृत, प्राभृत-समास, प्राभृत-प्राभृत, प्राभृत-प्राभृत-समास, वस्तु, वस्तु-समास, पूर्व, पूर्व-समास भेद होते हैं।

[४]श्रुतज्ञानका विषयभूत अर्थ मनका विषय होता है। श्रुतज्ञानमें मानसिक व्यापार होता है। ऐसी स्थितिमें जिनके मन नहीं है, उन असंज्ञी पचेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंके श्रुतज्ञानका अभाव समझा जाना चाहिए था, किन्तु परमागममें कमसे-कम छद्मस्थोंके मति तथा श्रुत ये दो ज्ञान नियमतः कहे गये हैं। श्रुतज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होनेसे एकेन्द्रियादिके मन न होते हुए भी श्रुतज्ञानका सद्भाव आगममें वर्णित है। इसका कारण यह है कि असंज्ञी जीवोंमें जो कुछ ऐसी क्रियाएँ पायी जाती हैं, जिनसे उनके मनके सद्भावकी कल्पना होने लगती है उनका कारण मन नहीं है, किन्तु श्लोकवार्तिककार विद्यानन्दी स्वामीके शब्दोंमें मति-सामान्यके समान स्मृतिसामान्य, धारणासामान्य तथा उनके निमित्तरूप अवायसामान्य, ईहासामान्य, अवग्रहसामान्य पाये जाते हैं, जो कि अनादिभवाभ्यासके कारण उत्पन्न होते हैं। उनके क्षयोपशमनिमित्त भावमन नहीं है, कारण वह प्रतिनियत संज्ञी प्राणियोंके होता है। इसका भाव यह है कि पिपीलिका आदिमें योग्य आहारका ग्रहण, अनुसन्धान, अयोग्य-

१ "तत्राङ्गप्रविष्टमङ्गबाह्यं चेति द्विविधमङ्गप्रविष्टमाचारादिद्वादशभेदम्, बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तगणधरानुस्मृतग्रन्थरचनम्। आरातीयाचार्यकृताङ्गार्थ-प्रत्यासन्नरूपमङ्गबाह्यम्। तद्गणधरशिष्यैः प्रशिष्यैरारातीयैरधिगतश्रुतार्थतत्त्वैः कालदोषादल्पमेधायुर्बलानां प्राणिनामनुग्रहार्थमुपनिबद्धं संक्षिप्ताङ्गार्थवचनविन्यासं तदङ्गबाह्यम्।"–त० रा०, पृ० ५४। २. "सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि। हवदि हु सव्वजहण्णं णिच्चुग्घाडं णिरावरणं ॥३१९॥ सुहुमणिगोदअपज्जत्तगेसु सगसंभवेसु भमिऊण। चरिमापुण्णतिवक्काणादिमवक्कट्ठियेव हवे ॥३२०॥"–गो० जी०। ३ "पज्जायक्खरपदसंघादं पडिवत्तियाणिजोगं च। दुगवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थु पुव्वं च ॥ तेसिं च समासेहिं य वीसविहं वा हु होदि सुदणाणं। आवरणस्स वि भेदा तत्तियमेत्ता हवंति त्ति ॥"–गो० जी० ३१६, १७। ४. "श्रुतज्ञानविषयोऽर्थः श्रुतम्। स विषयोऽनिन्द्रियस्य। अथवा श्रुतज्ञानं श्रुतम्। तदनिन्द्रियस्यार्थः प्रयोजनमिति यावत्।"–स० सि०, पृ० १०५।

का परिहार आदि बातें पायी जाती है, उसका कारण मन न होकर स्मृतिसामान्य, धारणा-सामान्य, ईहासामान्य, अवायसामान्य आदि है।[1]

यहाँ श्रुतज्ञानकी प्ररूपणा की गयी है। इससे श्रुतज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा कैसे हो जायेगी ? इसके समाधानमें वीरसेनाचार्य[2] लिखते हैं—यह दोष नहीं है, आवरण किये जानेवाले ज्ञानके स्वरूपकी प्ररूपणाका ज्ञानावरणके स्वरूप-परिज्ञानके साथ अविनाभाव है। इस अविनाभावके कारण श्रुतज्ञानके स्वरूपनिरूपण-द्वारा श्रुतज्ञानावरणका परिज्ञान कराया गया है।

इस प्रकार श्रुतज्ञानावरणकी प्ररूपणा हुई।

[अवधिज्ञानावरणप्ररूपणा]

जो अवधिज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकारका है। उसकी दो प्रकारकी प्ररूपणा है। एक भवप्रत्यय अवधिज्ञान, दूसरा गुणप्रत्यय अवधिज्ञान। अवधिज्ञान सीमाज्ञान भी कहा जाता है, कारण यह द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावकी मर्यादासे रूपी पदार्थको विषय करता है। भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें भव निमित्त है। उस भवमें नियमसे क्षयोपशम होता ही है। जैसे[3] पक्षियोंकी पर्यायमें उत्पन्न होनेवाले जीवके गगन-गमन विषयक क्षयोपशम पाया जाता है। इसी प्रकार देव तथा नारकियोंकी पर्यायमें जानेवाले सम्पूर्ण जीवधारियोंको नियमसे अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाता है। तीर्थंकर भगवान्‌के भी जन्मसे जो अवधिज्ञान होता है, उसे भवप्रत्यय कहा है[4]।

सम्यग्दर्शनादि निमित्तोंके सन्निधान होते हुए शान्त तथा क्षीण कर्मवालोंके जो अवधिज्ञान होता है, उसे क्षयोपशमनिमित्तक या गुणप्रत्यय अवधि कहते हैं। यह जीवके विशेष प्रयत्नपर अवलम्बित रहता है, भवमात्र इसमें कारण नहीं है। गुण या क्षयोपशम निमित्तक होनेसे इसे क्षयोपशमनिमित्तक कहते हैं।

---

१. "न चामनस्कानां स्मरणसामान्याभावोऽनादिभवसंभूतविषयानुभवोद्भूतायाः सामान्यधारणायास्तद्धेतोः सद्भावात् आहारसंज्ञासिद्धेः प्रवृत्तिविशेषोपलब्धेः" "ततो नाममतिवदाहारादिसंज्ञातद्धेतुश्च स्मृतिसामान्यं धारणासामान्यं च तन्निमित्तमवायसामान्यमीहासामान्यमवग्रहसामान्यं च सर्वप्राणिसाधारणमनादिभवाभ्याससंभूतमभ्युपगन्तव्यम्, न पुनः क्षयोपशमनिमित्तं भावमनः, तस्य प्रतिनियतप्राणिविषयतयानुभूयमानत्वात् ॥"–त० श्लो० पृ० ३२६,३३०। २. सुदणाणस्स एयट्ठ परूवणा भणिस्समाणा कथं सुदणाणावरणीयस्स कम्मस्स परूवणा होज्ज ? ण एस दोसो, आवरणिज्जसरूवपरूवणाए तदावरणसरूवावगमाविणाभावितादो।"–ध० टी०,प० १२५५। ३ "यथाकाशे सति पक्षिणो गतिर्भवति तथा ज्ञानावरणक्षयोपशमेऽन्तरंगे हेतौ सत्यवधेर्भावः, भवस्तु बाह्यो हेतुः। कथं पुनर्भवो हेतुः ? इति चेत्, व्रतनियमाद्यभावात्। यथा तिरश्चां मनुष्याणां चाहिंसादिव्रतनियमहेतुकोऽवधिर्न तथा देवानां नारकाणां चाहिंसादिव्रतनियमाभिसंधिरस्ति। कुतो भवं प्रतीत्य कर्मोदयास्य तथाभावात्। तस्मात् तत्र भव एव बाह्यसाधनमुच्यते।"–त०रा०,पृ० ५४,५५। "यथोक्तसम्यग्दर्शनादिनिमित्तसन्निधाने सति शान्तक्षीणकर्मणां तस्य उपलब्धिर्भवति।"–त० रा०,पृ० ५६। ४ "देसोहिस्स य अवरं णरतिरिये होदि संजदम्हि वरं। परमोही सव्वोही चरमसरीरस्स विरदस्स।" पडिवादी देसोही अप्पडिवादी हवंति सेसाओ। मिच्छत्तं अविरमणं ण य पडिवज्जंति चरिमदुगे॥ दव्वं खेत्तं कालं भावं पडिह विजाणदे ओही। अवरादुक्कसोत्ति य वियप्परहिदो दु सव्वोही॥" गो० जी० ३७३–७५।

....

. ...[अत्र सप्तविंशतितमं ताडपत्रं त्रुटितम्] ... . ..

१. अयणं-संवच्छर-पलिदोपम-सागरोपमादया वि भवंति ।
ओगाहणा जहण्णा णियमा दु सुहुमणियोदजीवस्स ।
यद्देहो तद्देही जहण्णयं खेत्तदो ओघी ॥ १ ॥

अवधिज्ञानके देशावधि, परमावधि तथा सर्वावधि रूपसे तीन भेद भी है। भवप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधिके जघन्य भेदरूप होता है। गुणप्रत्यय तीनों भेदरूप होता है। गुण-प्रत्यय देशावधिका जघन्य असंयमी मनुष्य, तिर्यंचोंके पाया जा सकता है। इसके आगेके विकल्प संयमी मनुष्यके ही पाये जाते है। परमावधि, सर्वावधि चरमशरीरी मुनिराजके ही पाया जाता है। सर्वावधि जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट आदि भेदोंसे रहित है।

[1]सम्यक्त्वरहित अवधिज्ञानको विभंगावधि कहते है। अवधिज्ञानत्वकी अपेक्षा दोनोंमें विशेष अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व, मिथ्यात्वके सहचारवश उनमे नाममात्रका भेद है।

कालकी अपेक्षा अवधिज्ञानके समय, आवली, क्षण, लव, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग (पंचवर्ष), पूर्व (सत्तरकोटि छप्पनलक्ष, सहस्र कोटि वर्ष), पर्व (चौरासी लाख पूर्व प्रमाण), पल्योपम, सागरोपम आदि विधान जानना चाहिए।

महाबन्धके त्रुटित पत्रमें जो प्रथम पंक्ति है उसमे लिखा है—'अयन, संवत्सर, पल्योपम, सागरोपम आदि होते है।' धवला टीकाके प्रकरणसे तुलना करनेपर ज्ञात होता है कि यहाँ अवधिज्ञानसम्बन्धी कालका निरूपण चल रहा है।

१... "अयन,संवत्सर,पल्योपम,सागरोपम आदि होते हैं।

अवधिज्ञानके क्षेत्रकी प्ररूपणा करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तक निगोदिया जीवकी जघन्य अवगाहना है। जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र उसके शरीरप्रमाण है।

विशेषार्थ—सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक निगोदिया जीवके ऋजुगतिसे उत्पन्न होनेके तीसरे समयमें घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण सर्वजघन्य अवगाहना होती है। उस समय निगोदियाकी शरीराकृति वर्त्तुलाकार होनेसे सबसे कम क्षेत्रफल रहता है। उतना जघन्यावधिका क्षेत्र है।

---

१. "दोण्ण पि ओहिणाणत्त पडि भेदाभावादो। ण च सम्मत्त-मिच्छत्तसहचारेण कदणामभेदादो भेदो अत्थि अइप्पसंगादो। कालदो तात्र समयावलियखण-लव-मुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उदु- अयण-संवच्छर-जुग-पुव्व-पलिदोवम-सागरोवमादओ विधओ णादव्वा भवति।" —ध० टी०,प० १२५८।

[1]अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्जदो वि संखेज्जा ।
[2]अंगुलमावलियंतो आवलियं अंगुलपुधत्तं ॥ २ ॥
[3]आवलियपुधत्तं पुण हत्थोवथा (हत्थं तह) गाउदं मुहुत्तंतो ।
जोजण भिण्णमुहुत्तं दिवसंतो पण्णुवीसं तु ॥ ३ ॥
[4]भरदं च अद्धमासं साधियमासं [च] जंबुदीवं हि ।
वासं च मणुसलोगे वासपुधत्तं च रुजगंहि ॥ ४ ॥
[5]संखेज्जदिमे कालं दीवसमुद्दा हवंति संखेज्जा ।
कालं हि असंखेज्जो दीवसमुद्दा हवंति असंखेज्जा ॥५॥
तेजाकम्म-सरीरं तेजादव्वं च भासदव्वं च (भासमणदव्वं) ।
वोद्धव्वं असंखेज्जा दि(दी)वसमुदा(द्दा) य वासा य ॥६॥

अब क्षेत्र तथा कालकी अपेक्षा अवधिज्ञानसम्बन्धी १९ काण्डकोंका निरूपण करते हैं।

प्रथम काण्डकमें अंगुलका असंख्यातवाँ भाग जघन्य क्षेत्र है। आवलीका असंख्यातवाँ भाग जघन्य काल है। अंगुलका संख्यातवाँ भाग उत्कृष्ट क्षेत्र है, आवलीका संख्यातवाँ भाग उत्कृष्ट काल है। दूसरे काण्डकमे घनांगुलप्रमाण क्षेत्र है, कुछ कम आवलीप्रमाण काल है।

विशेषार्थ—यहाँ दूसरे,तीसरे आदि काण्डकोंमें उत्कृष्टकी अपेक्षा वर्णन किया गया है।

तीसरे काण्डकमे अंगुलपृथक्त्व क्षेत्र है, आवलीपृथक्त्वप्रमाण काल है ॥२॥

चतुर्थ काण्डकमें आवलीपृथक्त्व काल है, हस्तप्रमाण क्षेत्र है। पंचम काण्डकमें अन्तर्मुहूर्त काल है, एक कोश क्षेत्र है। छठेमे भिन्न मुहूर्त (एक समय कम मुहूर्त) काल है। एक योजन क्षेत्र है। सप्तममे कुछ कम एक दिन काल है, २५ योजन क्षेत्र है ॥३॥

अष्टममें अर्धमास काल है, भारतवर्ष क्षेत्र है। नवममें साधिक मास काल है, जम्बूद्वीप क्षेत्र है। दशममें वर्षप्रमाण काल है, मनुष्य लोकप्रमाण क्षेत्र है। ग्यारहवेंमे वर्षपृथक्त्व काल है, रुचक द्वीप क्षेत्र है ॥४॥

बारहवेंमे संख्यात वर्ष काल है, संख्यात द्वीप समुद्र क्षेत्र है। तेरहवेंमें असंख्यात वर्ष काल है, असंख्यात द्वीप-समुद्रप्रमाण क्षेत्र है ॥ ५ ॥

विशेष, आगामी पंच काण्डकोंका द्रव्यकी अपेक्षा कथन है।

चौदहवेंमे देशावधिके मध्यम विकल्परूप विस्रसोपचयसहित तैजस शरीररूप द्रव्य विषय है। पन्द्रहवेंमे विस्रसोपचयसहित कार्मण शरीर स्कन्ध विषय है। सोलहवेंमें विस्रसोपचयरहित केवल तेजोवर्गणा विषय है। सत्रहवेंमे विस्रसोपचयरहित केवल भाषावर्गणा विषय है। अठारहवेंमे विस्रसोपचयरहित केवल मनोवर्गणा विषय है।

---

१. गो० जी०,गा०,४०३। २. "सूक्ष्मनिगोदस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य जातस्य, ऋजुगत्या उत्पन्नस्य, उत्पत्तेस्तृतीयसमये वर्तमानस्य जीवस्य घनाङ्गुलासंख्येयभागमात्र सर्वजघन्यमवगाहन भवति" गो०जी०,गाथा ६४,संस्कृत टीका,पृ० २१५। ३. "आवलियपुधत्त पुण हत्थ तह ··"–गो० जी०,गा० ४०। ४ "भरहम्मि अद्धमास साहियमास च जंबुदीवम्मि "–गो० जी०,गा० ४०५। ५ "संखेज्जपमे वासे दीवसमुद्दा·· वासम्मि असखेज्जे····"–गो० जी०,गा०,४०६।

[1]कालो (काले) चदुणं वुड्ढी कालो भजिदव्वे खेत्तवुड्ढीए ।
उड्ढीयं दव्वपज्जयं भजिदव्वं खेत्तकालो य ॥७॥
[2]परमोधिमसंखेज्जा लोगामेत्ताणि समय-कालो दु ।
रूवगदं लभदि दव्वं खेत्तोवममगणि-जीवेहिं ॥८॥
[3]पणुवीसं जोण(य)णाणं ओधी वेंतरकुमारवग्गाणं ।
संखेज्जजोजणाणं जोदिसियाणं जहण्णोधी ॥९॥
[4]असुराणमसंखेज्जा जोजणकोडी सेसजोदिसंताणं ।
संखाती(दी)दसहस्सा उक्कस्सेणोधिविसे(स)यो दु ॥१०॥
[5]सक्कीसाणे पढमं दो चदु विदियं) सणक्कुमार-माहिंदे ।
तच्चदु (तदियं तु) वम्हलंतय सुक्कसहस्सारया चउत्थी ॥११॥
[6]आणदपाणदवासी तथ आरणआरणच्चुदा देवा ।
पस्संति पंचमखिदिं छट्ठी गेवेज्जया देवा ॥ १२ ॥

तेरहवें, चौदहवें आदि काण्डकोंमे असंख्यातगुणित क्षेत्र तथा असंख्यातगुणित काल है। अर्थात् बारहवे काण्डकके काल तथा क्षेत्रसे असंख्यातगुणित काल तथा क्षेत्र तेरहवे काण्डकमें है। इसी प्रकार आगे जानना चाहिए ॥६॥

विशेषार्थ—उन्नीसवें काण्डकमे एक समय कम पल्यप्रमाण काल है, सम्पूर्ण लोकाकाश क्षेत्र है।

[7]कालकी वृद्धि होनेपर द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भावरूप चारों वृद्धियाँ होती हैं। क्षेत्रकी वृद्धि होनेपर कालकी वृद्धि भजनीय है अर्थात् हो भी, न भी हो। द्रव्य और भाव (पर्याय) की वृद्धि होनेपर क्षेत्र, कालकी वृद्धि भजनीय है ॥७॥

परमावधिका काल एक समय अधिक लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण है, क्षेत्र असंख्यात लोकप्रमाण है, जो अग्निकायिक जीवोंकी संख्याप्रमाण है। एक प्रदेशाधिक लोकाकाशप्रमाण इसका द्रव्य है [8] ॥८॥

व्यन्तरों तथा भवनवासी देवोंमें जघन्य क्षेत्रपच्चीस योजन प्रमाण है, ज्योतिषी देवोंका जघन्य क्षेत्र संख्यात योजन है। असुरकुमारोंका उत्कृष्ट क्षेत्र संख्यात. कोटि योजन है। शेष नव भवनवासी तथा व्यन्तरों-ज्योतिषियोंका उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात हजार योजन है ॥९-१०॥

सौधर्मद्विकका क्षेत्र प्रथम नरकपर्यन्त है। सनत्कुमार, माहेन्द्रका दूसरे नरकपर्यन्त है। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्टवासियोंका तीसरे नरकपर्यन्त, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रारवाले चौथे नरकपर्यन्त जानते हैं॥ ११ ॥

आनत, प्राणत, आरण, अच्युत स्वर्गवासी पाँचवे नरक तक, नवग्रैवेयकवासी छठीं पृथ्वीपर्यन्त देखते हैं ॥ १२ ॥

---

१ "काले चउण्ण उड्ढी "—गो० जी०, गा० ४११। २ यह गाथा १६वें नम्बरपर भी पायी जाती है। वर्णनक्रमकी दृष्टिसे यह १६वें नम्बरपर विशेष उपयुक्त प्रतीत होती है। ३. गो० जी०, गा० ४२५। ४ गो० जी०, गा० ४३६। ५. "सक्कीसाणा पढम विदियं तु सणक्कुमारमाहिंदा। तदियं तु वम्हलातव "—गो० जी०, गा० ४२९। ६ गो० जी०, गा ४३०। ७ त० रा०, पृ० ५७। ८. त० रा०, पृ० ५७।

सव्वं पि लोगणालिं पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा ।
[1]संखेते (सक्खेत्ते) य सकम्मे रूवगदमणंतभागो य ॥ १३ ॥
तेजासरीरलंभो उक्कस्सेण दु तिरिक्खजोणीणं ।
गाउदजहण्णमोधी णिरयेसु य जोजणुक्कस्सं ॥ १४ ॥
उक्कस्समणुसे (स्से) सु य मणुस (स्स) तेरच्छिए जहण्होधी ।
उक्कस्सं लोगमेत्तं पडिवादी तेण परमप्पडिवादी ॥ १५ ॥
परमोधि असंखेज्जा लोगामेत्ताणि समय कालो दु ।

नव अनुदिश तथा पंच अनुत्तर विमानवासी देव सर्व त्रसनालीको देखते हैं ॥ १३ ॥

विशेषार्थ—सौधर्मादिकके देव अपने विमानकी ध्वजाके दण्डके शिखरपर्यन्त ऊपर जानते हैं। नव अनुदिश तथा पंच अनुत्तर विमानवासी देव अपने विमानके शिखरपर्यन्त ऊपर देखते हैं। नीचे बाह्य तनुवात वलयपर्यन्त सम्पूर्ण त्रसनालीको देखते हैं। अनुदिश विमानवाले कुछ अधिक तेरह राजू प्रमाण तथा अनुत्तर विमानवाले कुछ कम इक्कीस योजन-रहित चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रको देखते हैं। गाथाके उत्तरार्धमें अवधिके विषयभूत द्रव्यको जाननेका क्रम कहते हैं—अपने-अपने अवधिज्ञानावरण कर्मके द्रव्यमें एक बार ध्रुवहारका भाग देनेपर अपने क्षेत्रके प्रदेशमें-से एक-एक प्रदेश कम करते जाना चाहिए और यह कार्य तबतक करते जाना चाहिए, जबतक कि क्षेत्रके प्रदेशोंका प्रमाण घटते-घटते समाप्त न हो जाये। इस प्रकार करनेके अनन्तर जो अनन्तभाग प्रमाण द्रव्य अवशिष्ट रहेगा वहाँ-वहाँ उतना-उतना ही द्रव्यका प्रमाण समझना चाहिए।

[2]तिर्यंचगतिमें अवधिका उत्कृष्ट द्रव्य तैजस शरीरके द्रव्यप्रमाण है, क्षेत्र भी इतना ही है। अर्थात् तैजस शरीर द्रव्यके परमाणुप्रमाण आकाश प्रदेशोंसे जितने द्वीप, समुद्र व्याप्त किये जायें, उतना है। वह असंख्यात द्वीप समुद्रप्रमाण होता है ॥ १४ ॥

नरकगतिमें अवधिका जघन्य क्षेत्र एक कोस, उत्कृष्ट क्षेत्र एक योजन है।

उत्कृष्ट देशावधि मनुष्योंमें ही होता है। जघन्य देशावधि मनुष्य, तिर्यंचोंमें होता है। उत्कृष्ट देशावधिका क्षेत्र लोकप्रमाण है। यह प्रतिपाती होता है अर्थात् इसके धारकका मिथ्यात्वादिमें पतन सम्भव रहता है। परमावधि तथा सर्वावधि अप्रतिपाती होते हैं ॥ १५ ॥

[3]परमावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र लोकालोकप्रमाण असंख्यात लोक है। यह अग्निकायिक

---

१ "सक्खेत्ते य सकम्मे ..."–गो० जी०, गा० ४३१। २. "तिरश्चामुत्कृष्टदेशावधिरुच्यते' तैजसशरीरप्रमाण द्रव्यम्। कियच्च तत्? असख्येयसमुद्राकाशप्रदेशपरिच्छिन्नाभिरसंख्येयाभिस्तेज शरीर-द्रव्यवर्गणाभिर्निर्वर्तित तावदसख्येयस्कन्धाननन्तप्रदेशान् जानातीत्यर्थ.।"–त० रा०, पृ० ५७। ३. उत्कृष्ट-परमावधेः क्षेत्र मलोकालोकप्रमाणा असंख्येया लोका। कियन्तस्ते अग्निजीवतुल्या. ..."कालः प्रदेशाधिकलोकाकाशप्रदेशावधृतप्रमाणा अतिभागिन· समयास्ते चासख्याता मवत्सरा·।" "द्रव्य प्रदेशाधिक-लोकाकाश-प्रदेशावधृतप्रमाणम् ॥" त० रा०, पृ० ५७।

रूवगदं लभदि दव्वं खेत्तोपममगणिजीवेहिं ॥ १६ ॥

एवं ओधिणाणावरणीयस्स कम्मस्स परूवणा कदा भवदि ।

२. यं तं मणपज्जवणाणावरणीयं कम्मं बंधंतो (कम्मं) तं एयविधं । तस्स दुविधा परूवणा–उजुमदिणाणं चेव विपुलमदिणाणं चेव । यं तं उजुमदिणाणं तं तिविधं–उज्जुगं मणोगदं जाणदि । उज्जुगं वचिगदं जाणदि । उज्जुगं कायगदं जाणदि । [1]मयेण माणसं पडिविंदइत्ता परेसिं सण्णासदिमदिचिंतादि विजाणदि, जीविदमरणं लाभालाभं

जीवोंकी संख्याप्रमाण है। परमावधिका काल समयाधिक लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण है।यह असंख्यात वर्ष रूप है। इसका द्रव्य प्रदेशाधिक लोकाकाशके प्रदेश प्रमाण है ॥ १६ ॥

विशेष—अवधिज्ञानके जितने भेद कहे गये हैं, उतने ही अवधिज्ञानावरण कर्मके भेद हैं। अवधिज्ञानका अवधिज्ञानावरण कर्मके साथ अविनाभाव सम्बन्ध है। अतः श्रुतज्ञानके समान यहाँ भी अवधिज्ञानके वर्णन-द्वारा अवधिज्ञानावरणीय कर्मका वर्णन हुआ समझना चाहिए।

इस प्रकार अवधिज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा हुई।

[मनःपर्ययज्ञानावरणप्ररूपणा]

२. यह जो मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकारका है। उसकी दो प्रकारकी प्ररूपणा है। एक ऋजुमतिज्ञान है, दूसरा विपुलमति मनःपर्ययज्ञान है। जो ऋजुमतिज्ञान है, वह तीन प्रकारका है। वह सरल मनोगत पदार्थको जानता है। सरल वचनगत पदार्थको जानता है। सरल कायगत पदार्थको जानता है। यह ऋजुमतिज्ञान मनसे–मतिज्ञानसे अन्य जीवके मनको अथवा मनःस्थित पदार्थको ग्रहण करके मनःपर्ययज्ञानके द्वारा अन्यकी संज्ञा (प्रत्यभिज्ञान) स्मृति, मति, चिन्तादिको जानता है।

विशेषार्थ—मनसे अर्थात् मतिज्ञानसे मानसिक पदार्थको पर्यय—ग्रहण करना मनःपर्ययज्ञान है। मतिज्ञान मनःपर्ययमें अवलम्बनमात्र है, कारणरूप नहीं है। जैसे आकाशमें स्थित चन्द्रदर्शनके लिए वृक्षकी शाखादिकी सीधका अवलम्बनमात्र लिया जाता है[2], चन्द्रदर्शनमें कारण नेत्रकी शक्ति है। इसी प्रकार मनोगतादि भावोंका परिज्ञान करनेमें मनःपर्ययज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम कारण है। मन अथवा मतिज्ञान अवलम्बनमात्र है। विपुलमति मनःपर्ययज्ञान मनके द्वारा अचिन्तित अथवा अर्धचिन्तित पदार्थको भी ग्रहण करता है।

---

१. "परूवणा णाम किं उत्त होदि ? ओघादेसेहि गुणेसु जीवसमासेसु पज्जत्तीसु पाणेसु सण्णासु गदीसु इंदिएसु काएसु जोगेसु वेदेसु कसाएसु णाणेसु सजमेसु दंसणेसु लेस्सासु भविएसु अभविएसु सम्मत्तेसु सण्णिअसण्णीसु आहारि-अणाहारीसु उवजोगेसु च पज्जत्तापज्जतविसेसणेहि विसेसिऊण जा जीव-परिक्खा सा परूवणा णाम ।"–ध० टी०,भा० २, पृ० ४१२। २. "यथाऽभ्रे चन्द्रमस पश्येति अभ्रमपेक्षाकारणमात्र भवति, न च चक्षुरादिवन्निर्वर्तक चन्द्रज्ञानस्य। तथाऽन्यदीयमनोऽप्यपेक्षाकारणमात्र भवति। परकीयमनसि व्यवस्थितमर्थं जानाति मन पर्यय.। ततो नास्य तदायत्त प्रभव इति न मतिज्ञानप्रसग ।"–त० रा०,पृ० ५८।

सुखदुक्खं [1]णगरविणासं देह(देस)विणासं जणपदविणासं अदिवुट्ठि अणावुट्ठी-सुवुट्ठि-दुवुट्ठी सुभिक्खं दुब्भिक्खं खेमाखेमं भयरोगं उब्भमं विब्भमं संभमं वत्तमाणाणं जीवाणं, णो अवत्तमाणाणं जीवाणं जाणदि[2]। जहण्णेण गाउदपुधत्तं। उक्कस्सेण जोजणपुधत्तस्स अब्भंतरादो, णो बहिद्धा। जहण्णेण दो तिण्णि भवगहणाणि, उक्कस्सेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि गदिरागदिं पदुप्पादेति।

यह ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान 'वत्तमाणाणं'-व्यक्तमनवाले (संशय, विपर्यय, अनध्यवसायरहित मनयुक्त) अन्य जीवोंके एवं अपने अथवा 'वत्तमाणाणं'[3]-'वर्तमान' जीवोंके, वर्तमानमें मनःस्थित त्रिकालसम्बन्धी पदार्थको जानता है। अतीत अथवा अनागत मनोगत पदार्थको यह ऋजुमति नहीं जानता है। यह वर्तमान अथवा व्यक्तमनवाले जीवोंके जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, नगरविनाश, देशविनाश, जनपदविनाश, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्षेम, अक्षेम, भय, रोग, उद्भ्रम, विभ्रम तथा सम्भ्रमको जानता है। यह ऋजुमति जघन्यसे कोसपृथक्त्व, उत्कृष्टसे योजनपृथक्त्वके भीतर जानता है। बाहर नहीं जानता है। कालकी अपेक्षा जघन्यसे दो तीन[4]भव, उत्कृष्टसे सात आठ भव ग्रहणसम्बन्धी गति-आगतिका प्रतिपादन करता है।

---

१ "चतुर्गोपुरान्वितं नगरम्। अंगवंगकलिंगमगधादओ देसा णाम। देसस्स एगदेसो जणवओ णाम जहा सूरसेणकासिगांधारआवंति आदओ। सस्यसम्पादिका वृष्टिः सुवृष्टि। सालीवोहीजवगोधूमादिधण्णाणं सुलहत्तं सुभिक्खं णाम। अरादीणामभावो खेमं णाम। परचक्कागमादओ भयं णाम।"-ध० टी०,प० १२९६। २ उद्धृतमिदम्-"आगमे ह्युक्तं मनसा मनः परिच्छिद्य परेषां सज्ञादीन् जानातीति।"-त० राज०, पृ० ५८। "मणेण माणसं पडिविंदइत्ता परेसिं सण्णा-सदि-मदि-चिंता-जीविद-मरणं लाहालाहं सुहदुक्खं णयरविणासं देसविणासं जणवयविणासं खेडविणासं, कव्वडविणासं, मडंवविणासं, पट्टणविणासं दोणमुहविणासं अइवुट्ठि-अणावुट्ठि-सुवुट्ठि-दुवुट्ठि-सुभिक्खं दुभिक्खं खेमाखेम-भयरोगकालसजुत्ते अत्थे विजाणदि।"-ध०टी०,प० १२५८। "मणेण मदिणाणेण। कधं मदिणाणस्स मणववएसो? कज्जे कारणोवयारादो। मणम्मि भवं लिंगं माणसं। अथवा मणो चेव माणसो, पडिविंदइत्ता घेत्तूण पच्छा मणपज्जवणाणेण जाणदि।' मदिणाणेण परेसिं मणं घेत्तूण चेव मणपज्जवणाणेण मणम्मि ट्ठिदमत्थं जाणदि त्ति भणिदं होदि। एसो णियमो ण विउलमइस्स, अचिंतिदाणं पि अट्ठाणं विसईकरणादो"-ध० टी०। ३. "व्यक्तमनसां जीवानामर्थं जानाति, नाव्यक्तमनसाम्। व्यक्तः स्फुटीकृतोऽर्थश्चिन्तया सुनिर्वर्तितो यैस्ते जीवा व्यक्तमनसस्तैरर्थं चिन्तितं ऋजुमतिर्जानाति नेतरैः।" -त० रा०,पृ० ५८। ४ "वट्टमाणभवग्गहणेण विणा दोण्णि, तेण सह तिण्णि भवग्गहणाणि जाणदि त्ति।" -ध० टी०। धवला टीकामें वीरसेन स्वामी उपरोक्त दोनों दृष्टियोंका समन्वय करते हुए लिखते हैं-"व्यक्तं निष्पन्नं संशयविपर्ययानध्यवसायरहितं मनः येषां ते व्यक्तमनसः, तेषां व्यक्तमनसां जीवानां परेषामात्मनश्च सम्बन्धि वस्त्वन्तरं जानाति, नाव्यक्तमनसां जीवानां सम्बन्धि वस्त्वन्तरम्, तत्र तस्य सामर्थ्याभावात्। अथवा वर्तमानानां जीवानां वर्तमानमनोगतं त्रिकालसम्बन्धिनमर्थं जानाति, नातीतानागतमनोविषयमिति।"-ध० टी०, प० १२६६।

३. यं तं विपुलमदिणाणं तं छव्विधं–उज्जुगं मणोगदं जाणदि, उज्जुगं वचिगदं जाणदि, उज्जुगं कायगदं जाणदि, अणुज्जुगं मणोगदं जाणदि, एवं वचिगदं काय(गदं) च। एवं याव वत्तमाणाणं पि जीवाणं जाणदि। जहण्णेण जोजणपुधत्तं, उक्कस्सेण माणुसुत्तरसेलस्स अब्भंतरादो, णो बहिद्धा। जहण्णेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि, उक्कस्सेण असंखेज्जाणि भवग्गहणाणि गदिरागदिं पदुप्पादेदि। एवं मणपज्जवणाणावर०कम्मस्स परूवणा कदा भवदि।

विशेषार्थ—यदि वर्तमान भवको ग्रहण करते है तो तीन भव होते है। यदि वर्तमानको छोड दिया जाये, तो दो भव होते हैं। इस कारण दो भव या तीन भवसम्बन्धी कथनमें विरोधका सद्भाव नहीं रहता है। सात-आठ भवकी गति-आगतिके विषयमे भी यही समाधान है। वर्तमान भवको सम्मिलित करनेपर आठ भव, उसको छोड़नेपर सात भव होते हैं।

३ जो विपुलमति मनःपर्ययज्ञान है, वह छह प्रकारका है। वह सरल मनोगत पदार्थको जानता है, सरल वचनगत पदार्थको जानता है, सरल कायगत-पदार्थको जानता है, कुटिल मनोगत पदार्थको जानता है, कुटिल वचनगत पदार्थको जानता है, कुटिल कायगत पदार्थको जानता है। यह वर्तमान जीव तथा अवर्तमान जीवोंके अथवा व्यक्तमनवाले तथा अव्यक्त मनवाले जीवोंके द्वारा चिन्तित अचिन्तित सुख-दुःख लाभालाभादिको जानता है।[1]

इसका क्षेत्र जघन्यसे योजन पृथक्त्व है। यह उत्कृष्टसे मानुषोत्तर पर्वतके अभ्यन्तर जानता है। बाहर नहीं जानता है।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानका क्षेत्र ४५ लाख योजन वर्तुलाकार न होकर[2] विष्कम्भात्मक है, चौकोर रूप है। अत एव मानुषोत्तर पर्वतके बाहरके कोणमें स्थित विषयोंको भी विपुल-मतिज्ञानवाला जानता है।

कालकी अपेक्षा यह जघन्यसे सात आठ भव, उत्कृष्टसे असंख्यात भवोंकी गति आगतिका प्ररूपण करता है।[3]

विशेष—शंका–इस मनःपर्ययज्ञानावरण प्ररूपणामें मनःपर्ययज्ञानका निरूपण क्यों किया गया ? ज्ञानमे कर्मत्वका समन्वय कैसे होगा ?

समाधान–मनःपर्ययज्ञानावरणके द्वारा मनःपर्ययज्ञान आवृत होता है। यहाँ आवरण किये जानेवाले ज्ञानमे आवरण अर्थात् मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मका उपचार किया गया है।

इस प्रकार मनःपर्ययज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा की गयी।

---

१ "चिंतियमचिंतियं वा अद्धंचिंतियमणेयभेयगयं। ओहिं वा विउलमदी लहिऊण विजाणए पच्छा।" –गो०जी०,गा० ४४८। त०रा०,पृ० ५९। २ "णरलोएत्ति य वयणं विक्खंभणियामयं ण वट्टस्स। तम्हा तग्घणपदरं मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्ठं॥"–गो० जी०,गा० ४५५। ३. "दुगतिगभवा हु अवरं सत्तट्ठभवा हवंति उक्कस्सं। अडणवभवा हु अवरमसंखेज्जं विउलउक्कस्सं॥"–गो० जी०,गा० ४५६।

४. यं तं केवलणाणावरणीयं कम्मं तं एयविधं । तस्स परूवणा कादव्वा भवदि । सयं भगवं उप्पण्णणाणदरिसी सदेवासुरमणुसस्स लोगस्स अगदि-गदिं चयणोपवादं बंधं मोक्खं इड्ढिं जुदिं अणुभागं तक्कं कलं मणो-माण(णु)सिक-भुत्तं कदं पडिसेविदं आदिकम्मं अरहकम्मं सव्वलोगे सव्वजीवाणं सव्वभावे समं सम्मं जाणदि । एवं केवलणाणावरणीयस्स कम्मस्स परूवणा कदा भवदि ।

[केवलज्ञानावरणप्ररूपणा]

४. जो केवलज्ञानावरणीय कर्म है, वह एक प्रकारका है। उसकी प्ररूपणा की जाती है। जिनेन्द्र भगवान्को केवलज्ञान तथा केवलदर्शनकी उपलब्धि हो चुकी है। वे स्वयं स्वर्गवासी देव, असुर[1] अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देव, तिर्यंच तथा मनुष्यलोककी गति, आगति, चयन, उपपाद, बन्ध, मोक्ष, ऋद्धि, युति (जीवादि द्रव्योंका मिलना), अनुभाग, तर्क, पत्रच्छेदनादि कला, मनजनित ज्ञान, मानसिक विषय, राज्यादि एवं महाव्रतादिका पालन करना, रूप भुक्ति, कृत, प्रतिसेवित (त्रिकालमें पंचेन्द्रियोंके द्वारा सेवित), आदि कर्म अरह अर्थात् अनादि कर्मको सर्वलोकमें, सर्वजीवोंके सर्वभावोंको युगपत् सम्यक् प्रकारसे जानते है।

विशेषार्थ—"केवली भगवान् त्रिकालावच्छिन्न लोक-अलोकसम्बन्धी सम्पूर्ण गुण पर्यायोंसे समन्वित अनन्त द्रव्योंको जानते हैं। "ऐसा कोई ज्ञेय नहीं हो सकता है- जो केवली भगवान्के ज्ञानका विषय न हो। ज्ञानका धर्म ज्ञेयको जानना है और ज्ञेयका धर्म है-ज्ञानका विषय होना। इनमें विषयविषयिभाव सम्बन्ध है। जब मति और श्रुतज्ञानके द्वारा भी यह जीव वर्तमानके सिवाय भूत तथा भविष्यन् कालकी बातोंका परिज्ञान करता है, तब केवली भगवान्के द्वारा अतीत, अनागत, वर्तमान सभी पदार्थोंका ग्रहण करना युक्तियुक्त ही है। प्रतिबन्धक ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेपर आत्मा सकल पदार्थोंका साक्षात्कार कर लेता है। जैसे प्रदीपका प्रकाशन करना स्वभाव है, उसी प्रकार ज्ञानका भी स्वभाव स्व तथा परका प्रकाशन करना है। यदि क्रमपूर्वक केवली भगवान् अनन्तानन्त पदार्थोंको जानते तो सम्पूर्ण पदार्थोंका साक्षात्कार न हो पाता। अनन्तकाल व्यतीत होनेपर भी पदार्थोंकी अनन्त गणना अनन्त ही रहती। आत्माको असाधारण निर्मलता होनेके कारण एक समयमें ही सकल

---

१ "असुराश्च भवनवासिनः, देवासुरवचन देशामर्षकमिति ज्योतिषा व्यन्तराणा तिरश्चा ग्रहणं कर्तव्यम् ।"–ध० टी० । २ "जीवादिदव्वाण मेलण जुदी । पत्तच्छेद्यादि कला णाम । मणोजणिद णाण वा मणो वुच्चदे । रज्जमहव्वयादिपरिपालण भुत्ती णाम । पचहि इदिएहि तिसुवि कालेसु ज सेविद त पडिसेविद णाम । आद्यकर्म आदिकम्म णाम, अत्थवजणपज्जायभावेण सव्वेसि दव्वाणमादि जाणदि त्ति भणिद होदि । रहः अन्तरम् । अरह अनन्तरम् । अरह कर्म अरहस्कर्मं त जानाति । सुद्धदव्वट्ठियणयविसएण सव्वेसि दव्वाणमणादित्त जाणदि त्ति भणिद होदि ।" ध० टी०, प० १२७२ । ३ असुर व्यन्तरोंके भेदविशेषका ज्ञापक होते हुए भी यहाँ सुरोंसे भिन्न असुर इस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। इस कारण तिर्यंच भी असुर शब्दके द्वारा गृहीत हुए है ।–ध० टी० । ४. "सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ।"–त० सू० १।२९ । ५ "न खलु ज्ञस्वभावस्य कश्चिदगोचरोऽस्ति यन्न क्रमेत, तत्स्वभावान्तरप्रतिषेधात् । ज्ञो ज्ञेये कथमज्ञ स्यादसति प्रतिबन्धने । दाह्येऽग्निर्दाहको न स्यादसति प्रतिबन्धने ॥" –अष्टसह०, पृ० ४६।५० ।

५. दंसणावरणीयस्य कम्मस्स णव पगदीओ। वेदणीयस्स कम्मस्स दुवे पगदीओ। मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीसपगदीओ। आयुगस्स कम्मस्स चत्तारि पगदीओ।

पदार्थोंका ग्रहण होता है। 'जब ज्ञान एक समयमें सम्पूर्ण जगत्‌का या विश्वके तत्त्वोंका बोध कर चुकता है, तब आगे वह कार्यहीन हो जायगा' यह आशंका भी युक्त नहीं है, कारण काल द्रव्यके निमित्तसे तथा अगुरुलघुगुणके कारण समस्त वस्तुओंमें क्षण-क्षणमें परिणमन-परिवर्तन होता है। जो कल भविष्यत् था, वह आज वर्तमान बनकर आगे अतीतका रूप धारण करता है। इस प्रकार परिवर्तनका चक्र सदा चलनेके कारण ज्ञेयके परिणमनके अनुसार ज्ञानमें भी परिणमन होता है। जगत्‌के जितने पदार्थ हैं, उतनी ही केवलज्ञानकी शक्ति या मर्यादा नहीं है। केवलज्ञान अनन्त है। यदि लोक अनन्तगुणित भी होता, तो केवल-ज्ञानसिन्धुमें वह बिन्दुतुल्य समा जाता। इस केवलज्ञानकी प्राप्ति मुख्यतासे ज्ञानावरणके क्षयसे होती है; किन्तु ज्ञानावरणके साथ दर्शनावरण तथा अन्तरायका भी क्षय होता है। इन तीन घातिया कर्मोंके पूर्व मोहका क्षय होता है। मोहक्षय हुए बिना कैवल्यकी उपलब्धि नहीं होती है। उज्ज्वल तथा उत्कृष्ट ज्ञानोंकी प्राप्तिके लिए मोहका निवारण होना आवश्यक है। अनन्त केवलज्ञानके द्वारा अनन्त जीव तथा अनन्त आकाशादिका ग्रहण होनेपर भी वे पदार्थ सान्त नहीं होते हैं। अनन्त ज्ञान अनन्त पदार्थ या पदार्थोंको अनन्त रूपसे बताता है, इस कारण ज्ञेय और ज्ञानकी अनन्तता अबाधित रहती है। कोई-कोई व्यक्ति सोचते हैं, सर्वज्ञका भाव सकल पदार्थोंका अवबोध नहीं है, किन्तु केवल आत्माका ज्ञानप्राप्त व्यक्ति उपचारसे सर्वज्ञ कहलाता है, वास्तवमें सर्वज्ञ कोई नहीं है।

यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है। जब ज्ञान क्षायोपशमिक अवस्थामें रहता है, तब वह अनेक पदार्थोंका साक्षात्कार करता है, जब वह ज्ञान क्षायिक अवस्थाको प्राप्त करता है, तब उस ज्ञानको न्यून बताकर आत्माके ज्ञान रूपमें सीमित सोचना असम्यक् है। क्षायिक अवस्थामें आबाधक कारण दूर होनेपर ज्ञानकी वृद्धि स्वीकार न कर, उसे न्यून मानना अयोग्य है। शंकाकार यह सोचे कि किस कारणसे सुविकसित मति, श्रुत, अवधि तथा मनः-पर्ययरूप ज्ञानचतुष्टय क्षीण होकर कैवल्यकालमें आत्माके ज्ञानरूपमें सीमित हो जाते हैं। आत्माका स्वभाव ज्ञान है। प्रतिबन्धक सामग्रीके अभाव होनेपर ऐसी कोई भी सामग्री नहीं है जो आत्माकी सर्वज्ञताको क्षति पहुँचा सके, अतः जिनशासनमें आत्माकी सर्वज्ञताको काल्पनिक नहीं, किन्तु वास्तविक रूपमें मान्यता प्रदान की गयी है।

इस प्रकार केवलज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणा हुई।

[दर्शनावरणादिकर्मप्ररूपणा]

५. दर्शनावरण कर्मकी नव प्रकृतियाँ हैं—चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवल-दर्शनावरण, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला तथा स्त्यानगृद्धि।

वेदनीय कर्मकी साता तथा असाता—ये दो प्रकृतियाँ हैं।

मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियाँ हैं—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व, मिथ्यात्व, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद।

नरक, मनुष्य, तिर्यंच, देवायु ये आयु कर्मकी चार प्रकृतियाँ हैं।

णामस्स कम्मस्स बादालीसं बंध-पगदीओ। य तं गदिणामं कम्मं तं चदुविधं–णिरयगदि याव देवगदि त्ति। या(य)था पगदिभंगो तथा कादव्वो। गोदस्स कम्मस्स दुवे पगदीओ। अंतराइगस्स कम्मस्स पंच पगदीओ। एवं पगदिसमुक्कित्तणा समत्ता।

६. जो सो सव्वबंधो णोसव्वबंधो णाम तस्स इमो दुवि०–ओघेण आदेसेण य। ओघे णाणंतराइगस्स पंच पग० किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो? [सव्वबधो।] दंसणाव० किं सव्वबंधो णोसव्वबंधो? सव्वाओ पगदीओ बंधमाणस्स सव्वबंधो। तदूणबंधमाणस्स

नामकर्मकी बयालीस बन्ध प्रकृतियाँ हैं-गति, जाति, शरीर, बन्धन, संघात, संस्थान, अंगोपांग, संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, बिहायोगति, त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक-साधारण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुस्वर, आदेय-अनादेय, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति, निर्माण और तीर्थंकर।

इस नामकर्ममें जो गति नामका कर्म है, उसके चार भेद हैं-नरकगति, देवगति मनुष्यगति, तिर्यंचगति। इस प्रकार जिस प्रकृतिके जितने भेद हैं, उतने भेद समझ लेना चाहिए। अर्थात् षट्खण्डागम वर्गणाखंडान्तर्गत प्रकृति अनुयोगद्वारमें जिस प्रकार कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंका निरूपण किया गया है, तदनुसार यहाँ भी जानना चाहिए।

विशेषार्थ—गतिके सिवाय नामकर्मकी ये प्रकृतियाँ भी भेदयुक्त हैं। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रिय जाति। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण शरीर। औदारिकादि रूप पञ्च बन्धन तथा पंच संघात। समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, कुब्ज, स्वाति, वामन, हुण्डक-संस्थान। औदारिक-शरीरांगोपांग, वैक्रियिक-शरीरांगोपांग, आहारक-शरीरांगोपांग। वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलित, असम्प्राप्तासृपाटिका-संहनन। शुक्ल, कृष्ण, नील, पीत, लाल वर्ण। सुगन्ध, दुर्गन्ध। खट्टा, मीठा, चिरपिरा, कटु, कषायला रस। ठंडा, गरम, स्निग्ध, रूक्ष, हलका, भारी, नरम, कठोररूप-स्पर्श। नरक-तिर्यंच-मनुष्य-देवगति-प्रायोग्यानुपूर्वी। प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति। ये ६५ उत्तर प्रकृतियाँ है जो पिण्डरूपसे १४ कही गयी हैं। ६५ उत्तर भेदवाली पिण्ड प्रकृतियोंमें २८ भेदरहित अपिण्ड प्रकृतियोंको जोड़नेपर नाम कर्मकी ९३ प्रकृतियाँ होती हैं।

उच्चगोत्र, नीचगोत्रके भेदसे गोत्रकर्म दो प्रकारका है।

दान-लाभ-भोग-उपभोग तथा वीर्यान्तराय-ये अन्तरायकी पाँच प्रकृतियाँ हैं। सब प्रकृतियाँ १४८ होती हैं।

विशेष—इन कर्म-प्रकृतियोंके विशेष भेद किये जायें, तो अनन्त भेद हो जाते हैं।

इस प्रकार प्रकृति-समुत्कीर्तन समाप्त हुआ

[सर्वबन्धनोसर्वबन्धप्ररूपणा]

६. जो सर्वबन्ध तथा नोसर्वबन्ध है, उसका ओघ अर्थात् सामान्य और आदेश अर्थात् विशेषसे दो प्रकार निर्देश होता है।

ओघसे ५ ज्ञानावरण तथा ५ अन्तरायकी प्रकृतियोंका क्या सर्वबन्ध है या नोसर्वबन्ध? [इनका सर्वबन्ध होता है।]

विशेषार्थ—ज्ञानावरण अथवा अन्तरायके पांच भेदोंमें-से अन्यतमका बन्ध होनेपर

णोसव्वबंधो। एवं मोहणीय-णामाणं। वेयणी०-आयु-गोदा० किं सव्वबंधो णोसव्व-बंधो? णोसव्वबंधो। एवं याव अणाहारग त्ति, णवरि अणुदिसा० याव सव्वट्ठत्ति दंसणा०-णोसव्वबंधो। एदेण बीजेण णेदव्वं। एवं उक्कस्स-बंधो अणुक्कस्स-बंधोपि णेदव्वं। यो सो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो णाम तस्स इमो दु० णिद्देसो। ओघे० आदेसे०। ओघे० णाणंतराइगस्स पंचविहस्स किं जहण्णबंधो, अजहण्णबंधो? अजहण्ण-बंधो। दंसणावरणीय-मोहणीय-णामाणं वि किं जहण्णबंधो, अजहण्णबंधो? जहण्णबंधो वा अजहण्णबंधो वा। वेदणी०-आयु-गोदा० किं जह० अजह०? जहण्णबंधो। एवं याव आण (अणा)हारग त्ति णेदव्वं। यो सो [1]सादिय-बंधो अणादिय बंधो ४, तस्स

शेष चार भेदोंका नियमसे बन्ध होता है। सर्व भेदोंका बन्ध होनेके कारण इनका सर्वबन्ध कहा गया है।

प्रश्न—दर्शनावरण कर्मका सर्वबन्ध है या नोसर्वबन्ध है?

उत्तर—सम्पूर्ण प्रकृतियोंके बन्ध करनेवालेके सर्वबन्ध होता है। सर्व प्रकृतियोंमें-से न्यून प्रकृतियोंके बन्ध करनेवालेके नोसर्वबन्ध है।

मोहनीय तथा नाम कर्ममें दर्शनावरणके समान जानना चाहिए अर्थात् सर्व प्रकृतियोंके बन्ध करनेवालेके सर्वबन्ध और कुछ न्यून प्रकृतियोंके बन्ध करनेवालेके नोसर्वबन्ध होता है। वेदनीय, गोत्र तथा आयुकर्ममें क्या सर्वबन्ध है, अथवा नोसर्वबन्ध है? नोसर्वबन्ध है।

विशेषार्थ—साता, असाता वेदनीय, उच्च, नीच गोत्र इन युगलोंमें-से किसी एकका बन्ध होगा तथा अन्यका अबन्ध होगा। इसी प्रकार आयुचतुष्टयमें-से अन्यतमका बन्ध होगा, शेषका अबन्ध होगा। इसलिए वेदनीय, गोत्र तथा आयुका नोसर्वबन्ध कहा है।

आदेशसे यह क्रम अनाहारक पर्यन्त जानना चाहिए। विशेषता यह है कि अनु-दिशसे सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त देवोंमें दर्शनावरण तथा मोहनीयका नोसर्वबन्ध होता है। इस कथनको आगे भी अन्य मार्गणाओंमें सर्व नोसर्वबन्धका बीजभूत समझना चाहिए।

[उत्कृष्टबन्ध-अनुत्कृष्टबन्धप्ररूपणा]

इसी प्रकार उत्कृष्टबन्ध तथा अनुत्कृष्टबन्धमें भी जानना चाहिए।

विशेष—सर्वबन्ध नोसर्वबन्धमें ओघ तथा आदेशसे जैसा वर्णन किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए।

[जघन्यबन्ध–अजघन्यबन्धप्ररूपणा]

जो जघन्यबन्ध तथा अजघन्यबन्ध है, उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकारसे निर्देश करते हैं। ५ ज्ञानावरण, ५ अन्तरायका क्या जघन्यबन्ध है या अजघन्यबन्ध है? अजघन्यबन्ध है। दर्शनावरण, मोहनीय तथा नामकर्मका क्या जघन्यबन्ध है या अजघन्य-बन्ध? जघन्यबन्ध है तथा अजघन्यबन्ध है। वेदनीय, आयु तथा गोत्रका क्या जघन्यबन्ध है या अजघन्यबन्ध? जघन्यबन्ध है।

अनाहारक मार्गणापर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए।

---

1. 'सादि अणादी धुव अद्धुवो य बंधो दु कम्मछक्कस्स। तदियो सादिय सेसो अणादि धुव सेसगो आऊ॥'—गो० कर्म०, गा० १२२।

इमो दुवि० । ओघे० आदे० ।

७. ओघे० सादिय-बंधो णाम तत्थ इमं अट्ठपदं एक्का वा छा वा पगदीओ वोच्छिण्णाओ संतिओ भूयो बज्झदि त्ति । एसो सादियबंधो णाम ।

[सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवबन्धप्ररूपणा]

जो सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव बन्ध है, उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकारका निर्देश है ।

७ सादि बन्धका यह अर्थपद है कि एक कर्म अर्थात् आयु कर्मका, छह कर्मोंका अर्थात् वेदनीयको छोड़कर शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम, गोत्र तथा अन्तराय रूप छह कर्मोंका बन्ध व्युच्छिन्न होनेके पश्चात् पुनः बन्ध होना सादिबन्ध है ।

विशेषार्थ—आयुका निरन्तर बन्ध नहीं होता है । आयुका बन्ध होकर रुक जाता है, पुनः बन्ध होता है, अतएव इसको सादिबन्ध कहा है । सदा बन्ध न होनेके कारण अध्रुव भी है । आयुके विषयमें गोम्मटसार कर्मकाण्डमें लिखा है कि भुज्यमान आयुके उत्कृष्ट छह मास अवशेष रहनेपर देव तथा नारकी मनुष्यायु वा तिर्यंचायुका बन्ध करते हैं । भोग-भूमिया जीव छह मास अवशेष रहनेपर देवायुका ही बन्ध करते हैं । मनुष्य तथा तिर्यंच भुज्यमान आयुका तीसरा भाग अवशेष रहनेपर चारों आयुका बंध करते हैं । तेजकायिक तथा वातकायिक जीव एवं सप्तम पृथ्वीके नारकी तिर्यंच आयुको ही बाँधते हैं । एकेन्द्रिय वा विकलेन्द्रिय मनुष्यायु वा तिर्यचायु ही का बन्ध करते हैं ।

एक जीव एक भवमें एक ही आयुका बन्ध करता है । वह भी योग्यकालमें आठ बार ही बाँधता है । वहाँ सर्वत्र तीसरा-तीसरा भाग शेष रहनेपर बाँधता है ।

आठ अपकर्षके कालोंमें पहली बारके बिना द्वितीयादिक बारमें पूर्वमें जो आयु बाँधी थी, उसकी स्थितिकी वृद्धि, हानि व अवस्थिति होती है । पहली बार आयुकी जो स्थिति बाँधी थी, उसके पश्चात् यदि दूसरी बार, तीसरी बार इत्यादिक बन्ध योग्य कालमें पहली स्थितिसे यदि अधिक आयुका बन्ध हुआ है, तो पीछे जो अधिक स्थिति बँधी उसकी प्रधानता जाननी चाहिए । यदि पूर्वबद्ध स्थितिकी अपेक्षा न्यून स्थिति बँधी, तो पहली बँधी अधिक स्थितिकी प्रधानता जाननी चाहिए । आयुके बन्धको करते हुए जीवके परिणामोंके कारण आयुका अपवर्तन अर्थात् घटना भी होता है । इसे अपवर्तन घात कहते हैं ।

उदय प्राप्त आयुके अपवर्तनको कदलीघात कहते हैं । यह भी ज्ञातव्य है कि तीसरा भाग अवशेष रहने पर आगामी आयुका बन्ध होगा ही ; इस प्रकार का एकान्त नियम नहीं है । उस कालमें आयुके बन्ध होनेकी योग्यता है । वहाँ आयुका बन्ध होवे तथा न भी होवे । (गो० क० बड़ी टीका पृ० ८३६-८३८ गाथा ६३९—६४३) उपशान्त कषाय गुण-स्थानमें जब कोई जीव पहुँचता है, तब ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम, गोत्र तथा अन्तरायका बन्ध रुक जाता है, वहाँ केवल सातावेदनीयका ही बन्ध होता है । जब वह जीव गिरकर पुनः सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें आता है, तब ज्ञानावरणादिका बन्ध पुनः प्रारम्भ हो जाता है । इस कारण ज्ञानावरणादिका सादिबन्ध कहा गया है ।

१ "सादी अबंधबंधे सेढि अणारूढगे अणादी हु । अभवसिद्धम्हि धुवो, भवसिद्धे अद्धुवो बंधो ॥"

८. एवं मूलपगदि-अट्ठपदभंगो कादव्वो। एदेण अट्ठपदेण दुवि० ओघे० आदेसे०। ओघे० पंचणा०-णवदंसणा०-मिच्छत्तं सोलसकसा०-भयं-दुगुं०-तेजा-कम्म०-वण्ण०४-अगुरु०-उप०-णिमिण० पंचंतराइ० किं सादि० ४? सादियबंधो वा० ४। सादासादं सत्तणोकसाय-चदुआयु-चदुग०-पंचजा०-तिण्णिसरी०-छस्संठा०-तिण्णि-अंगो०-छस्संघड० चत्तारि आणुपु०-परघादुस्सास-आदावुज्जोवं दोविहायगदि-तसादि-दसयुगलं तित्थयरं णीचुच्चागोदाणं किं सादि०४? सादियअद्धुवबंधो। एवं अचक्खु०। भवसिद्धि० धुवरहिदं। एवं याव अणाहारग त्ति णेदव्वं।

९. यो सो बंधसामित्तविचयो णाम तस्स इमो णिद्देसो ओघे० आदे०। ओघे० चोद्दस-जीवसमासा णादव्वा भवंति। तं यथा मिच्छादिट्ठि याव अजोगिकेवलि त्ति। एदेसिं चोद्दस-जीवसमासाणं पगदिबंधवोच्छेदो कादव्वो भवदि।

---

८ इस प्रकार मूल कर्मप्रकृतिके अर्थपदभंग (प्रयोजनभूत पदोंके भंग) करना चाहिए। इस अर्थपदसे इस बातको लक्ष्यमें रखते हुए अर्थात् ओघ तथा आदेश-द्वारा दो प्रकार निर्देश करते हैं।

ओघका अर्थ सामान्य तथा आदेशका अर्थ विशेष है। ओघसे ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शना-वरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, वर्ण आदि ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके क्या सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव ये चारों बन्ध होते हैं? सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव बन्ध होते हैं।

साता, असाता, भय जुगुप्सा बिना ७ नोकषाय, ४ आयु, ४ गति, ५ जाति, ३ शरीर, ६ संस्थान, ३ आंगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रसादि दस युगल, तीर्थंकर, नीचगोत्र, उच्चगोत्र इनके क्या सादि आदि चार बन्ध होते हैं? सादि तथा अध्रुव बन्ध हैं।

ऐसा अचक्षु दर्शनमें जानना चाहिए। भव्यसिद्धिकोंमें ध्रुव भंग नहीं है। अनाहार-कपर्यन्त ऐसा जानना चाहिए।

[बन्धस्वामित्वविचयप्ररूपणा]

९. जो बन्धस्वामित्वविचय है–उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते हैं। ओघसे–मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगकेवली पर्यन्त चौदह जीवसमास–गुणस्थान होते हैं। इन चौदह जीवसमासों–गुणस्थानोंमें प्रकृतिबन्धकी व्युच्छित्ति कहनी चाहिए।

---

१. 'घादितिमिच्छकसायाभय-तेजगुरु-दुग-णिमिण-वण्णचओ। सत्तेतालधुवाणं चदुधा सेसाणयं च दुधा॥" —गो० क०, गा० १२३-१२४। २. "एत्तो इमेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाणं मग्गणट्ठदाए तत्थ इमाणि चोद्दस चेव ट्ठाणाणि णादव्वाणि भवंति। जीवाः समस्यन्ते एष्विति जीवसमासाः। तेषां चतुर्दशानां जीवसमासानां चतुर्दशगुणस्थानानामित्यर्थः।" —ध० टी०, भा० १, पृ० ९१, १३१।

१०. पंचणाणावरणीय-चदुदंसणावरणीय-जसगित्ति-उच्चागोद-पंच-अंतराइगाणं को बंधको, अबंधो० ? मिच्छादिट्ठिप्पहुदि याव सुहुमसंपराइयसुद्धिसंजदा त्ति बंधा। सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंज०दव्वाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा

गुणस्थान	बन्ध व्युच्छित्ति प्राप्त प्रकृतियाँ	विवरण
मिथ्यात्व	१६	मिथ्यात्व, हुण्डसंस्थान, नपुंसकवेद, असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आताप, सूक्ष्मत्रय, विकलेन्द्रिय, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु।
सासादन	२५	४ अनन्तानुबन्धी, स्त्यानत्रिक, दुर्भगत्रिक, संस्थान ४, संहनन ४, दुर्गमन, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, उद्योत, तिर्यचायु।
मिश्र	०	×
अविरत	१०	अप्रत्याख्यानावरण ४, वज्रवृषभसंहनन, औदारिकशरीर, औदारिक-आंगोपांग, मनुष्यद्विक तथा मनुष्यायु।
देशविरत	४	प्रत्याख्यानावरण ४।
प्रमत्तसंयत	६	अस्थिर, अशुभ, असाता, अयश:कीर्ति, अरति, शोक।
अप्रमत्तसंयत	१	देवायु।
अपूर्वकरण	३६	निद्रा-प्रचला ये प्रथम भागमें। छठेमें तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त-विहायोगति, पचेन्द्रिय, तैजस, कार्मण, आहारद्विक, समचतुरस्र संस्थान, सुरद्विक, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक आंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय। चरममें हास्य, रति, भय, जुगुप्सा।
अनिवृत्तिकरण	५	प्रथम भागमें पुरुषवेद, २रेमें सं० क्रोध, ३रेमें सं० मान, ४ थेमें सं० माया, ५ वेंमें सं० लोभ।
सूक्ष्मसाम्पराय	१६	५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, यश:कीर्ति, उच्चगोत्र
उपशान्तकषाय	०	×
क्षीणमोह	०	×
सयोगकेवली	१	सातावेदनीय।
अयोगकेवली	०	×
	१२०	गो० क० गा० ९४-१०२।

१० ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, यशस्कीर्ति, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका कौन बन्धक है, कौन अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतपर्यन्त बन्धक हैं। सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत द्रव्यके चरम समय तक पहुँचकर अन्तमें बन्धकी व्युच्छित्ति हो

अबंधा । थीणगिद्धितिगं-अणंताणुबंधि०४-इत्थिवे०-तिरिक्खायु०-तिरिक्खग०-चदुसंठा०-चदुसंघा०-तिरिक्खगदिपा० उज्जो० अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदा० को बंधो, को अबंधो? मिच्छादि० सासणसम्मादिट्ठिबंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा। णिद्दापयलाणं को बंधगो, को अबंधो? मिच्छादिट्ठिपहुदि याव अपुव्वकरणपविट्ठ-सुद्धिसंजदेसु उवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जदिभागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा अवसेसा अबंधा। सादावेद० को बंधो, को अबंधो? मिच्छादिट्ठिप्पभुदिं (हुडि) याव सयोगकेवली बंधा सजोगकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि एदे बंधा, अवसेसा अबंधा। असादावेद०-अरदि-सोग-अथिर-असुभ-अजसगित्ति को बं० को अबं०? मिच्छादिट्ठि पभुदि (हुडि) याव अपमत्त (पमत्त) संजदा त्ति बंधा। एदे बंधा अवसेसा अबंधा। - मिच्छत्त-णपुसंक०वेद-णिरयायु०-णिरयगदि-चदुजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघ०-णिरयगदिपाओग्गाणुपु०-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त - साधारण० को बंधो, को अबं०? मिच्छादिट्ठी बंधा अवसेसा अबं०। अपच्चक्खाणावर०४-मणुसगदि-ओरालियसरी०-ओरालि०-अंगो०-वज्जरिसभसंघ० - मणुसगदिपाओ० को बंधको० अबं०? मिच्छादिट्ठिपभुदि याव असंजद० बंधा। एदे बं० अवसेसा अबं०।

जाती है। इसलिए आदिके १० गुणस्थानवाले जीव बन्धक हैं; शेष अबन्धक हैं।

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, ४ संस्थान, ४ संहनन, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीच गोत्रके बन्धक-अबन्धक कौन है? मिथ्यादृष्टिसे सासादन सम्यक्त्वीपर्यन्त बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं।

निद्रा-प्रचलाका कौन बन्धक है, कौन अबन्धक है? मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरणप्रविष्ट शुद्धिसंयतोंमें उपशमकों तथा क्षपकोंपर्यन्त बन्धक है। अपूर्वकरणके कालमें संख्यातवें भाग बीतनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है। ये बन्धक है, शेष अबन्धक है।

सातावेदनीयका कौन बन्धक-अबन्धक है? मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवलीपर्यन्त बन्धक है। सयोगकेवलीके कालके अन्तिम समय व्यतीत होनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है। ये बन्धक हैं; शेष अबन्धक है।

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशस्कीर्तिके कौन बन्धक है? कौन अबन्धक हैं? मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयतपर्यन्त बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं।

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, ४ जाति, हुण्डकसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिक संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त तथा साधारणका कौन बन्धक, कौन अबन्धक है? मिथ्यादृष्टि बन्धक है; शेष अबन्धक हैं।

अप्रत्याख्यानावरण ४, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक आंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका कौन बन्धक है? कौन अबन्धक है? मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत सम्यक्त्वपर्यन्त बन्धक हैं; शेष अबन्धक है।

पच्चक्खाणावर०४ को बंधो, को अबं० ? मिच्छादिट्ठि याव संजदासंजदा बंधा। एदे बं० अवसेसा अबंधा। पुरिसवे०-कोध० संज० को बं० को अबं० ? मिच्छादिट्ठि याव अणियट्टिउवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए संखेज्जाभागं गंतूण वोच्छिज्जदि। एदे बंधा अवसेसा अबंधा। एवं माणमायसंज०। णवरि सेसे सेसे संखेज्जाभागं गंतूण बंधा। एदे बं० अवसेसा अबं०। एवं लोभसंज०। णवरि अणियट्टिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो०। एदे बं० अवसेसा अबं०। हस्स-रदिभयदुगुं० को बंधो ? मिच्छादिट्ठि याव अपुव्वकरणउवसमा खमा (खवा) बंधा। अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमयं गंतू० बंधो वो०। एदे बं० अवसेसा अबं०। मणुसायु० को बंध० को० [अबंधको] ? मिच्छादि०-सासणसम्मादि०-असंजद० बंधा। एदे बं० अवसेसा अबंधा। देवा० मिच्छादि० सासण० असंजदसं० संजदासंजद-पमत्तसंजद-अप्पमत्तसंजद०। अप्पमत्तसंजदद्धाए संखेज्जदिभागं [गंतूण] बंधो० [वोच्छिज्जदि]। एदे बंधा० अवसेसा [अबंधा]। देवगदि०

प्रत्याख्यानावरण ४ का कौन बन्धक, अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत-पर्यन्त बन्धक हैं। ये बन्धक हैं; शेष अबन्धक है।

पुरुषवेद, संज्वलन क्रोधका कौन बन्धक, अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरणमे उपशमक क्षपक पर्यन्त बन्धक हैं, अनिवृत्तिबादरके कालके सख्यात भाग बीतनेपर व्युच्छित्ति होती है। ये बन्धक हैं; शेष अबन्धक है।

मान-माया-संज्वलनमे भी यही बात जाननी चाहिए। विशेष यह है कि शेष शेषके संख्यात भाग बीतनेपर्यन्त बन्ध होता है। ये बन्धक हैं; शेष अबन्धक हैं।

इसी प्रकार संज्वलन लोभमें है। विशेष–अनिवृत्तिकरणके कालके चरम समयपर्यन्त बन्ध होता है। ये बन्धक हैं; शेष अबन्धक हैं।

हास्य, रति, भय, जुगुप्साका कौन बन्धक है ? मिथ्यात्वसे लेकर अपूर्वकरणके उपशमक तथा क्षपकपर्यन्त बन्धक हैं। अपूर्वकरणके चरम समयके बीतनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है। ये बन्धक हैं; शेष अबन्धक हैं।

मनुष्य आयुका कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टि, सासादन तथा असंयतसम्यक्त्वी बन्धक हैं। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं।

देवायुका कौन बन्धक, अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयतसम्यक्त्वी, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत बन्धक हैं। अप्रमत्तसंयतके कालके संख्यातवें भाग बीतनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है। ये बन्धक हैं; शेष अबन्धक है।

देवगति, पंचेन्द्रिय, वैक्रियिकशरीर, तैजस, कार्मण, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक आंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, [त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक,] स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माणका कौन बन्धक, अबन्धक है ? मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थानके उपशमक क्षपकपर्यन्त बन्धक हैं। अपूर्वकरणके संख्यातवें भाग बीतनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है। ये बन्धक है; शेष अबन्धक हैं।

पंचिंदि० वेगुव्वि० तेजाकम्म० समचदु० वेउ० अंगो०-वण्ण०४ देवाणुपु० - अगुरु०४ पसत्थवि० थीरा-(थिर,-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० णिमिणं को बंध० को अबं० ? मिच्छादि० याव अपुव्व० उवस० खवा बंधा० । अपुव्वकरण० संखेज्जाभागं गंतू० बंधो वोच्छे० । एदे बंधा अव० [अबंधा] । आहारस०-आहारस०अंगोवं० को बं० को अबं० ? अप्पमत्त-अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जाभागं गंतूण बंधो० [वोच्छिज्जदि] । एदे बंधा अवसेसा [अबंधा] । तित्थयरस्स को बं०, को अबं० ? असंज० याव अपुव्वकर० बंधा० । अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जाभागं गंतू० । एदे बं० अवसेसा अबंधा० । कदिहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामागोदकम्मं बंधदि ? तत्थ इमेणेहि सोलसकारणेहि जीवा तित्थयरणामागोदं कम्मं बंधदि । दंसणविसुज्झदाए, विणयसंपण्णदाए, सीलव्वदेसु णिरदिचारदाए, आवासएसु अपरिहीणदाए, खणलव-पडिमज्झ(बुज्झ) णदाए, लद्धिसंवेगसंपण्णदाए, यथा थामे(थामे) तथा तवे, साधूणं समाधिसंधारणदाए, साधूणं वेज्जावच्चयोगयुत्तदाए, साधूणं पासुगपरिचागदाए, अरहंत-भत्तीए, बहुस्सुदभत्तीए, पवयणभत्तीए, पवयणवच्छल्लदाए, पवयणपभावणदाए अभि-

---

आहारक शरीर, आहारक आंगोपांगका कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ? अप्रमत्त, अपूर्वकरणके सख्यातवे भाग व्यतीत होनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है । ये बन्धक हैं; शेष अबन्धक हैं ।

तीर्थंकरप्रकृतिका कौन बन्धक है ? कौन अबन्धक है ? असयत सम्यग्दृष्टिसे अपूर्वकरणपर्यन्त बन्धक है । अपूर्वकरणके संख्यात भाग बीतनेपर बन्धकी व्युच्छित्ति होती है । ये बन्धक हैं; शेष अबन्धक हैं ।

शंका—कितने कारणोंसे जीव तीर्थंकर नामगोत्र कर्मका बन्ध करता है ?

समाधान—इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थंकर नामगोत्र कर्मका बन्ध करता है । दर्शनविशुद्धता, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतेषु निरतिचारता, आवश्यकेषु अपरिहीनता, क्षण-लव-प्रतिबोधनता, लब्धिसंवेगसम्पन्नता, यथाशक्ति तप, साधुसमाधिसन्धारणता, वैयावृत्य-योगयुक्तता, साधु-प्रासुकपरित्यागता, अरहन्तभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचन-

---

1. धवला टीकामें जो षोडशकारणोके नाम गिनाये है, उनके क्रममें थोडा अन्तर है । यहाँ आठवें नम्बरपर 'साधुसमाधिसधारणता'के स्थानमें 'साधुप्रासुकपरित्यागता' पाठ है । ९वे नम्बरपर 'वैयावृत्य-योगयुक्तता'के स्थानमें 'समाधिसधारणता' पाठ है । न० १० में 'साधु प्रासुकपरित्यागता'के स्थानमे 'वैयावृत्य-योगयुक्तता' पाठ है । शेष पाठ समान है । तत्त्वार्थसूत्रमें इस प्रकार पाठभेद है—नं० ४ में अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, नं० ५ में संवेग, ६ में शक्तितः त्याग, न० १० में अर्हद्भक्ति, न० १४ मे आवश्यकापरिहानि, न० १६ मे प्रवचनवत्सलत्व पाठ है । तत्त्वार्थसूत्र तथा भूतबलिस्वामी-द्वारा कथित भावनाओंके नामोंमे भी कहीं-कहीं अन्तर है । तत्त्वार्थसूत्रमें 'सवेग', 'साधुसमाधि', 'शक्तित त्याग', 'मार्गप्रभावना' पाठ है, उसके स्थानमे क्रमशः 'लब्धिसवेगसम्पन्नता', 'साधु-समाधिसंधारणता', 'प्रासुकपरित्यागता', 'प्रवचनप्रभावनता' पाठ है । आचार्यभक्तिका 'महाबन्धमें पाठ नही है । एक नवीन भावना क्षणलवप्रतिबोधनता सम्मिलित की गयी है ।

क्खणं णाणोपयुत्तदाए। इदेहि सोलसेहि कारणेहि जीवो तित्थयरणामागोदं कम्मं बंधदि।

वत्सलता, प्रवचनप्रभावनता, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता, इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थंकर नामगोत्र कर्मका बन्ध करता है।

विशेषार्थ—यहाँ यह शंका उत्पन्न होती है कि जब अन्य कर्मोंके बन्धके कारण नहीं बताये गये, तब तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धके कारणोंका सूत्रकारने क्यों पृथक् रूपसे उल्लेख किया है?

इसके समाधानमें वीरसेनाचार्य धवला टीकामें लिखते हैं कि तीर्थंकरके बन्धके कारण ज्ञात न होनेसे उनका पृथक् उल्लेख करना उचित है। उसके बन्धका कारण मिथ्यात्व नहीं है, कारण मिथ्यात्वी जीवके तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। सम्यग्दृष्टिके ही तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होता है। असंयम भी बन्धका कारण नहीं है; क्योंकि संयमी जीव भी उसके बन्धक होते हैं। कषाय भी बन्धका कारण नहीं है, कारण कषायके होते हुए भी इसके बन्धका विच्छेद देखा जाता है अथवा बन्धका आरम्भ भी नहीं होता है। कदाचित् मन्द कषायको बन्धका कारण कहें, तो यह भी नहीं बनता है; कारण तीव्र कषाययुक्त नारकियोंमें भी तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध देखा जाता है। तीव्र कषाय भी उसका कारण नहीं है; क्योंकि मन्द कषायवाले सर्वार्थसिद्धिके देवों और अपूर्वकरणगुणस्थानवालोंमें भी उसका बन्ध होता है। बन्धका कारण कदाचित् सम्यक्त्वको कहें, तो यह भी ठीक नहीं है। सम्यग्दर्शन होते हुए भी बन्धका कहीं-कहीं अभाव देखा जाता है। यदि दर्शनकी निर्मलताको कारण कहें तो दर्शनमोहके क्षय करनेवाले सभी व्यक्तियोंके तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होना चाहिए था, किन्तु ऐसा भी नहीं है। अतः दर्शनकी शुद्धता भी कारण नहीं है। कार्यकारणभावका नियम तो तब बनता है, जब कारणके होनेपर नियमसे कार्य बन जाये। सब क्षायिक सम्यक्त्वी जीव तो तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध नहीं करते हैं। ऐसी स्थितिमें उत्पन्न होनेवाली शंकाके निराकरणके लिए भूतबली स्वामीने कहा है कि इन सोलह कारणोंसे जीव तीर्थंकर नामगोत्रका बन्ध करते हैं।

शंका—नामकर्मके भेद तीर्थंकरकी गोत्र संज्ञा क्यों की गयी?

समाधान—उच्चगोत्रके बन्धके अविनाभावी होनेसे तीर्थंकरप्रकृतिको भी गोत्र कहा है[1] (?)

तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ मनुष्यगतिमें ही होता है, इस बातका परिज्ञान करानेके लिए सूत्रमें 'तत्थ' शब्दका ग्रहण किया है।

शंका—[2]तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ अन्य गतियोंमें क्यों नहीं होता है?

समाधान—तीर्थंकरप्रकृतिमें सहकारी कारण केवलज्ञानसे उपलक्षित जीवद्रव्य है। उसके बिना बन्धका प्रारम्भ नहीं होता। मनुष्यगतिमें केवलज्ञानसे उपलक्षित जीव पाया जाता है। इससे मनुष्यगतिमें ही बन्धका प्रारम्भ कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्यगतिमें केवलज्ञान उत्पन्न होकर तीर्थंकरप्रकृति पूर्ण विकसित हो अपना कार्य कर सकती है; अन्य गतिमें यह बात नहीं है। अतः तीर्थंकरप्रकृतिका अंकुरारोपण मनुष्यगतिमें ही होता है।

---

१ कथ तित्थयरस्स णामकम्मावयवस्स गोदसण्णा? ण, उच्चगोदबंधाविणाभावित्तणेण तित्थयरस्सवि गोदत्तसिद्धीदो—बंधसामित्तविचय पृ० २८ ताम्रपत्रीय प्रति। २ "अण्णगदीसु किं ण पारंभो होदित्ति वुत्ते ण होदि केवलणाणोवलक्खियजीवदव्वसहकारिकारणस्स तित्थयर-णामकम्मबंधपारंभस्स तेण विणा समुप्पत्तिविरोहादो।"—ध० टी०, प० ५३६।

'गोम्मटसार' कर्मकाण्डकी संस्कृत टीकामें लिखा है कि तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध मनुष्य-गतिमें प्रारम्भ किया जाता है, क्योंकि अन्य गतियोंमें विशिष्ट विचार, क्षयोपशम आदि सामग्रीका अभाव है। इसी कारण मनुष्यगतिका सूचक 'णरा' यह पद ९३ गाथामें आया है। टीकाकारके ये शब्द महत्त्वपूर्ण हैं—"नरा इति विशेषणं शेषगतिज्ञानमपाकरोति, विशिष्ट-प्रणिधान-क्षयोपशमादिसामग्रीविशेषाभावात्" (पृ० ७८)।

किन्हीं आचार्योंका मत है कि इस तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें नहीं होता है, क्योंकि उसका काल स्तोक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। उसमें षोडशकारण भावनाएँ नहीं भायी जा सकतीं। महाबन्धकारका यह अभिमत नहीं है। यह बन्ध प्रत्यक्षकेवली, श्रुत-केवलीके चरणोंके समीप ही होता है, कारण अन्यत्र उस प्रकारकी विशिष्ट विशुद्धताका अभाव है।[1]

बन्धसामित्तविचय (मूल पृ० ७५) में लिखा है, "पारद्धतित्थयर-बंधादो तदियभवे तित्थयरसंतकम्मियजीवाणं मोक्खगमणणियमादो" तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धारम्भके भवसे तृतीय भवमें तीर्थंकर कर्मके सत्त्वयुक्त जीवोंके मोक्षगमनका नियम है। अतएव तीर्थंकर प्रकृतिका बन्धक तीन भवसे अधिक संसारमें नहीं रहता है।

पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा इस प्रकृतिके बन्धके कारण सोलह कहे गये हैं। द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेसे एक कारण भी इसके बन्धका हेतु है, दो भी कारण होते हैं; अतः सोलह ही होते हैं या नहीं, इस संशयके निवारणके लिए सोलह कारणोंकी गणना सूत्रमें की है।

इन भावनाओंके स्वरूपपर वीरसेनाचार्यने 'बंधसामित्त विचय' नामक तृतीय खण्डकी धवलाटीकामें विशद विवेचन किया है। उसका मर्म इस प्रकार है—

दर्शनविशुद्धता—यह भावना सोलह कारण भावनाओंमें प्रथम संगृहीत की गयी है। इसका भाव तीन मूढता तथा अष्टमलरहित निर्मल सम्यग्दर्शनका लाभ होना है।

शंका—यदि इस एक ही भावनासे तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध होता है, तो सभी सम्यक्त्वी जीव उसका बन्ध क्यों नहीं करते?

समाधान—शुद्ध नयसे मात्र तीन मूढता तथा अष्टमलोंसे व्यतिरिक्तपना ही दर्शन-विशुद्धता नहीं है, इसके साथ-ही-साथ साधु-प्रासुक-परित्यागता, साधु-समाधि-सन्धारणता, साधुवैयावृत्त्ययुक्तता, अरहन्तभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचनवत्सलता, प्रवचन-प्रभावनता, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता आदिका भी समावेश होना आवश्यक है। इस प्रकार अन्य भावनाओंका भी संग्रह करनेवाली दर्शनविशुद्धता तीर्थंकरका बन्ध करती है।

विनयसम्पन्नता भी तीर्थंकरकर्मको बाँधती है। विनयके ज्ञान, दर्शन तथा चारित्रकी अपेक्षा तीन भेद हैं। ज्ञानविनयमें अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता, बहुश्रुतिभक्ति और प्रवचनभक्ति संगृहीत है। दर्शनविनयका अर्थ है-प्रवचनोपदिष्ट सम्पूर्ण तत्त्वोंका श्रद्धान तथा त्रिमूढता और अष्टमलका त्याग करना। इसमें अरहन्त-सिद्धभक्ति, क्षणलवप्रतिबोधनता, लब्धिसंवेगसम्पन्नता तथा प्रवचनप्रभावनताका सद्भाव पाया जाता है। चारित्र विनयमें शीलव्रतेषु निरतिचारिता,

---

१. प्रथमोपशमसम्यक्त्वे शेषद्वितीयोपशम-क्षायोपशमिकक्षायिकसम्यक्त्वेषु च असंयताप्रमत्तान्तमनुष्या एव तीर्थकरबन्धं प्रारभन्ते, तेऽपि प्रत्यक्षकेवलि-श्रुतकेवलिश्रीपादोपान्त एव। अत्र प्रथमोपशमसम्यक्त्वे इति भिन्नविभक्तिकरण तत्सम्यक्त्वे स्तोकान्तर्मुहूर्तकालत्वात् षोडशभावनासमृद्धयभावात् तद्बन्धप्रारम्भो न इति केषांचित् पक्ष ज्ञापयति। केवलिद्वयान्ते एवेति नियम, तदन्यत्र तादृग्विशुद्धिविशेषासंभवात्, पृ० ७८।

आवश्यकेषु अपरिहीनता, यथाशक्तितप, साधु-प्रासुक-परित्यागता, साधु-समाधि-सन्धारणता, साधुवैयावृत्त्ययोगयुक्तता, प्रवचनवत्सलता संगृहीत है। इस प्रकार अनेक भावनाओंसे समन्वित एक विनयसम्पन्नता रूप भावना तीर्थंकर नामकर्मका बन्ध करती है। यह दर्शन तथा ज्ञानकी विनय देव तथा नारकियोंमें कैसे सम्भव हो सकती है? इससे इसे मनुष्योंमें ही कहा है।

शंका—जिस प्रकार यहाँ देव-नारकियोंके दर्शन और ज्ञान-विनयका अभाव कहा है, उसी प्रकार चारित्र-विनयका अभाव क्यों नहीं कहा है?

समाधान—ज्ञानदर्शन विनयका विरोधी चारित्र भी नहीं हो सकता। अर्थात् ज्ञान-दर्शन विनयके अभावमें चारित्र-विनयका भी अभाव होगा। यह बात प्रकट करनेको चारित्र-विनयका पृथक् उल्लेख नहीं किया है।

शीलव्रतेषु निरतिचारतासे भी तीर्थंकर नामकर्मका बन्ध होता है।[1] हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रहसे विरति होना व्रत है। व्रतका रक्षण करनेवाला शील कहलाता है। मद्यपान, मांसभक्षण, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुष-वेद, नपुंसक वेदका अपरित्याग अतिचार कहलाता है। इनका अभाव करना शीलव्रतेषु निर-तिचारता है। इससे तीर्थंकर कर्मका बन्ध होता है।

शंका—यहाँ शेष पन्द्रह कारण किस प्रकार सम्भव होंगे?

समाधान—सम्यग्दर्शन, क्षणलवप्रतिबोधनता, लब्धिसंवेगसम्पन्नता, साधुसमाधि-सन्धारणता, वैयावृत्त्ययोगयुक्तता, साधुप्रासुकपरित्यागता, अरहन्त-बहुश्रुत-प्रवचनभक्ति, प्रवचनप्रभावनताके बिना शीलव्रतेषु अनतिचारता सम्भव नहीं है। असंख्यात गुणश्रेणियुक्त कर्मनिर्जरामें जो हेतु है, उसे व्रत कहते हैं। सम्यक्त्वके बिना केवल हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म तथा परिग्रहके त्यागमात्रसे ही वह *गुणश्रेणी* निर्जरा नहीं हो सकती, कारण दोनोंके द्वारा होनेवाले कार्यका एकके द्वारा सम्पन्न होनेका विरोध है। षट्द्रव्य नवपदार्थके समूह रूप लोकको विषय करनेवाली अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तताके बिना शीलव्रतोंमें कारणभूत सम्यक्त्वकी अनुपपत्ति है। इस प्रकार उसमें सम्यग्दर्शनके समान सम्यग्ज्ञानका भी सद्भाव पाया जाता है। यथाशक्ति तप, आवश्यकापरिहीनता तथा प्रवचनवत्सलत्वरूप चारित्रविनयके बिना यह शीलव्रतेषु निरतिचारिता नहीं बन सकती है। इस प्रकार व्यापक अर्थयुक्त यह भावना तीर्थंकरनामकर्मके बन्धका कारण है।

आवश्यकेषु-अपरिहीनता—समता, स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान तथा व्युत्सर्गके भेदसे आवश्यक छह प्रकार कहा गया है। शत्रु-मित्र, मणि-पाषाण, सुवर्ण-मृत्तिका-में राग-द्वेषका अभाव समता है। अतीत अनागत तथा वर्तमान कालसम्बन्धी पंचपरमेष्ठियों-का भेद न करके 'णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं' इत्यादि द्रव्यस्तुतिका कारण नमस्कार स्तुति कहलाता है। वृषभादि चौबीस तीर्थंकर, भरतादि क्षेत्रोंके केवली, आचार्य, चैत्यालयादिकका पृथक्-पृथक् रूपसे नमस्कार करना अथवा गुणोंका अनुस्मरण करना वन्दना है। पंच महा-व्रतों तथा ८४ लाख उत्तरगुणोंमें लगे हुए कलंकोंका प्रक्षालन करना प्रतिक्रमण है। महाव्रतोंके

१ "हिंसालियचोज्ज-बंभ-परिग्गहेहिंतो विरदी वद णाम। वदपरिरक्खण सील णाम। सुरावाण-मांस-भक्खण कोह-माण-माया-लोह-हस्स-रइ-सोग-भय-दुगुंछित्थि-पुरिस-णउंसयवेदापरिच्चागो अदिचारो। एदेसिं विणासो णिरदिचारो सम्पुण्णदा, तस्स भावो णिरदिचारदा"—बन्धसामित्तविचय, पृ० ३० ।

विनाशके कारण अथवा उनमें मलिनता लगानेवाले दोषोंका जिस प्रकार अभाव होगा, उस प्रकार मैं करूँगा। इस प्रकार चित्तसे आलोचना करके ८४ लाख व्रतोंकी शुद्धिका प्रतिग्रह करना प्रत्याख्यान है। शरीर, आहारादिकसे मन वचनकी प्रवृत्तिको अलग करके ध्येयमें रोकनेको व्युत्सर्ग कहते हैं। इन छह आवश्यकोंकी अपरिहीनता—अखण्डताको आवश्यकापरिहीनता कहते हैं। इसके द्वारा तीर्थंकरधर्मका बन्ध होता है।

यहाँ शेष कारणोंका अभाव नहीं होता है। दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, व्रतशीलनिरतिचारता, क्षणलवप्रतिबोधनता, लब्धिसंवेगसम्पन्नता, यथाशक्ति तप, साधु-समाधि-सन्धारण, वैयावृत्त्ययोगयुक्तता, प्रासुकपरित्यागता, अरहन्त-बहुश्रुत-प्रवचनभक्ति, प्रवचन-प्रभावना, प्रवचनवत्सलता, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तताके बिना छह आवश्यकोंकी निरतिचारिता नहीं बन सकती है। अतः आवश्यकेषु अपरिहीनता तीर्थंकरनामकर्मका चतुर्थ कारण है।

क्षण[1]-लव-प्रतिबोधनता—'क्षणलव' शब्द कालविशेषका द्योतक है। उस कालविशेषमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, व्रत तथा शीलरूप गुणोंका उज्ज्वल करना अर्थात् कलंकका प्रक्षालन करना अथवा व्रतादिकी प्रदीप्ति अर्थात् वृद्धि करना प्रतिबोध है। उसका भाव प्रतिबोधनता है। क्षणलवोंकी प्रतिबोधनताको क्षणलवप्रतिबोधनता कहते हैं।[2] यह अकेली भावना भी तीर्थंकर-नामकर्मका बन्ध करती है। यहाँ भी पूर्वकी भाँति शेष कारणोंका अन्तर्भाव रहता है।

लब्धिसंवेगसम्पन्नता—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमें जीवके समागमका नाम लब्धि है। लब्धिके लिए जो संवेग है—वह लब्धिसंवेग[3] है। उसकी सम्पन्नताको लब्धिसंवेगसम्पन्नता कहते हैं। शेष कारणोंके अभावमें इसका सद्भाव नहीं बनता है, कारण उनके अभावका और लब्धिसंवेग-सम्पन्नताके सद्भावका विरोध है।

यथाशक्ति तप—बल-वीर्यको प्राकृतमें 'थाम' कहते हैं। अनशनादि बाह्य, विनयादि-अंतरंग द्वादश प्रकारके तप हैं। शक्तिके अनुसार तप करनेसे तीर्थंकरकर्मका बन्ध होता है। यह भावना ज्ञान, दर्शनके बलसे सम्पन्न धीर पुरुषके होती है तथा दर्शनविशुद्धतादिके अभावमें यह नहीं पायी जा सकती है। इससे अकेली इस भावनाको तीर्थंकरनामकर्मका कारण कहा है।

साधुप्रासुक-परित्यागता—जो अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, विरति, क्षायिक सम्यक्त्वकी साधना करता है उसे साधु कहते हैं। प्रासुकका एक अर्थ है 'वह वस्तु, जिससे जीव निकल गये हों', दूसरा अर्थ है निरवद्य-निर्दोष वस्तु। साधुओंको ज्ञान, दर्शन, चारित्र-का परित्याग अर्थात् दान प्रासुकपरित्यागता है। ज्ञानदर्शनचरित्रका परित्यागरूप दान गृहस्थोंमें सम्भव नहीं हो सकता, कारण वहाँ चारित्रका अभाव है। रत्नत्रयका उपदेश भी गृहस्थोंमें नहीं बन सकता है। कारण उनमें दृष्टिवादादि ऊपरके सूत्रोंके उपदेशका अधिकार नहीं है। अतः यह साधु-प्रासुकपरित्यागतारूप कारण महर्षियोंके होता है।

यहाँ भी शेष कारणोंका अभाव नहीं है। अरहन्तादिककी भक्ति, नवपदार्थोंका श्रद्धान, शीलव्रतोंमें निरतिचारिताके अभावमें ज्ञान, चारित्रका परित्याग अर्थात् दान असम्भव है,

---

१. "आवलि असंखसमया संखेज्जावलिसमूहमुस्सासो। सत्तुस्सासा थोवो सत्तत्थोवो लवो भणियो॥" —गो० जी०। २ "खणलवा णाम कालविसेसा। सम्मद्दंसणणाणवदसीलगुणाणमुज्जालणं कलंकपक्खालणं संधुक्खणं वा पडिबुज्झणं णाम। तस्स भावो पडिबुज्झणदा। खणलवाणं पडिबुज्झणदा खणलवपडिबुज्झणदा॥" —ध० टी०, पृ० ५५४। ३. "संवेगः परमोत्साहो धर्मे धर्मफले चित.।" —पञ्चा०।

यस्स इणं कम्मस्स उदयेण सदेवासुरमाणुसस्स लोगस्स अच्चणिज्जा पूजणिज्जा वंद-णिज्जा णमंसणिज्जा धम्मतित्थयरा जिणा केवली (केवलिणो) भवंति । एवं ओघभंगो पंचिंदियतस०२ भवसि० ।

कारण इसमें विरोध आता है । अतः केवल इस भावनासे भी तीर्थंकर कर्मका बन्ध होता है।

साधुसमाधिसन्धारणता—ज्ञान, दर्शन, चारित्रमें सम्यक् प्रकारसे अवस्थान होना समाधि है । भले प्रकार धारण करनेको सन्धारण कहते हैं । साधुओंकी समाधिका भले प्रकार धारण करना साधुसमाधिसन्धारण है । किसी कारणसे प्राप्त होनेवाली समाधिको देखकर सम्यक्त्वी प्रवचनवत्सलता, प्रवचनप्रभावना, विनयसम्पन्नता, शीलव्रतातिचारवर्जित अरहन्तादिकमें भक्तिवश जो धारण करता है, वह समाधिसन्धारण है । यहाँ भी शेष कारणों-का अभाव नहीं है; क्योंकि इसका सद्भाव उन कारणोंके अभावमें नहीं बन सकता है ।

वैयावृत्त्ययोगयुक्तता—जिस कारणसे जीव सम्यक्त्व, ज्ञान, अरहन्तभक्ति, बहुश्रुत-भक्ति, प्रवचनवत्सलतादिके द्वारा वैयावृत्त्यमें लगता है, उसे वैयावृत्त्ययोगयुक्तता कहते हैं । इस प्रकार अकेली इस भावनासे भी तीर्थंकरप्रकृतिका बन्ध होता है । यहाँ शेष कारणोंका यथासम्भव अन्तर्भाव जानना चाहिए ।

अरहन्त-भक्ति—घातिया कर्मोंके नाश करनेवाले, केवलज्ञानके द्वारा सम्पूर्ण पदार्थोंके देखनेवाले अरहन्त हैं । उनकी भक्तिसे तीर्थंकरनामकर्मका बन्ध होता है । यह भावना दर्शन-विशुद्धतादिके अभावमें नहीं पायी जाती है, कारण इसमें विरोध आयेगा ।

बहुश्रुतभक्ति—द्वादशांगके पारगामीको बहुश्रुत कहते हैं । उनमें भक्तिका अर्थ है-उनके द्वारा व्याख्यान किये गये आगमका अनुगमन करना अथवा अनुष्ठानका प्रयत्न करना बहुश्रुत भक्ति है । दर्शनविशुद्धतादिके बिना यह सम्भव नहीं है ।

प्रवचनभक्ति—सिद्धान्त अर्थात् बारह अंगोंको प्रवचन कहते हैं । 'प्रकृष्टस्य वचनं प्रवचनम्' श्रेष्ठ आत्माके वचनोंको प्रवचन कहा है । उनके प्रति भक्तिको प्रवचनभक्ति कहते हैं । इसमें भी शेष कारणोंका अन्तर्भाव रहता है ।

प्रवचनवत्सलता—महाव्रती, देशसंयमी तथा असंयत सम्यग्दृष्टिमें प्रेम रखना प्रवचन-वत्सलता है । इससे ही तीर्थंकरनामकर्मका बन्ध कैसे होता है—यह शंका नहीं करनी चाहिए, कारण महाव्रतादि आगमिक विषयोंमें गाढ़ानुरागका दर्शनविशुद्धतादिसे अविनाभाव है ।

प्रवचनप्रभावनता—प्रवचन अर्थात् आगमकी प्रभावना करनेका भाव प्रवचनप्रभा-वनता है । उत्कृष्ट प्रवचनप्रभावनाका दर्शनविशुद्धताके साथ अविनाभाव है ।

अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता—अभीक्ष्ण अर्थात् 'बहुबार' भावश्रुत अथवा द्रव्यश्रुतमें उपयोगको लगाना अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता है । इससे तीर्थंकरनामकर्मका बन्ध होता है । दर्शनविशुद्धतादिके बिना इसकी अनुपपत्ति है ।

इन सोलह कारणोंसे तीर्थंकरनामकर्मका बन्ध होता है । अथवा सम्यग्दर्शनके होनेपर शेष कारणोंमें-से एक-दो आदिके संयोगसे भी बन्ध होता है ।

इस कर्मके उदयसे सुर, असुर तथा मनुष्यलोकके द्वारा अर्चनीय, पूजनीय, वन्दनीय तथा नमस्करणीय धर्म तीर्थके कर्ता जिन केवली होते हैं ।

इस प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्तक तथा भव्यसिद्धिकोंमें ओघवत् भंग जानना चाहिए ।

११. आदेसेण णिरएसु पंचणाणा०-छदंसणा०-सादासादं बारसकसा० सत्त-णोक० मणुसग०-पंचिंदि०-ओरालियतेजाक०-समचदु०-ओरालिय० अंगोवंगवज्जरिस०-वण्ण०४ मणुसगदिपा०-अगुरुगलहु० ४ पसत्थवि० तस०४ थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्ति-णिमिणं उच्चागोदं पंचअंत० को बं०? सव्वे बंधा, अबंधा णत्थि। थीणगिद्धिआदि-पणुवीसं ओघं। मिच्छत्त-णपुंसकवे०-हुंडसंठाणं असंपत्तसे० को बं० ? मिच्छादि० बंधा। एदे बंधा अवसेसा अबं०। मणुसायु ओघं। तित्थयरं को बं० ? असंजदस०। एदे [बंधा] अवसे० अबंधा। एवं पढम-विदिय-तदि-यासु। चउत्थि-पंचमि-छट्ठीसु एवं चेव, णवरि तित्थगरं णत्थि। सत्तमाए छट्ठिभंगो, णवरि मणुसायु णत्थि। मणुसग०-मणुसग०पा०-उच्चा० को बं० ? सम्मामिच्छा०-असंज०। एदे बं०। अवसे० [अबंधा]। तिरिक्खायु० को बं० ? मिच्छादिट्ठी बंधा। एदे [बंधा] अवसे० अबंधा।

---

११. आदेशसे, नारकियोंमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असाता वेदनीय, अनन्तानुबन्धी ४ को छोड़कर शेष १२ कषाय, (स्त्रीवेद, नपुंसकवेद बिना) ७ नोकषाय, मनुष्य गति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, वज्रवृषभसंहनन, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायका कौन बन्धक है ? सर्व बन्धक हैं; अबन्धक नहीं हैं। स्त्यानगृद्धि आदि २५ प्रकृतियोंका ओघवत् जानना चाहिए अर्थात् सासादन गुणस्थान पर्यन्त बन्धक हैं। मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डक संस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहननका कौन बन्धक है ? मिथ्यादृष्टि बन्धक है। ये बन्धक हैं, शेष अबन्धक हैं। मनुष्यायुके बन्धकका ओघवत् जानना चाहिए, अर्थात् अविरत गुणस्थान पर्यन्त बन्धक हैं। तीर्थंकरप्रकृतिका कौन बन्धक है ? असंयत सम्यग्दृष्टि बन्धक है। ये बन्धक हैं; शेष अबन्धक हैं। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पृथ्वी पर्यन्त ऐसा ही जानना चाहिए। चौथी, पाँचवी तथा छठी पृथ्वियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ तीर्थंकर प्रकृति नहीं है। तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध तीसरी पृथ्वी पर्यन्त होता है।[1]

सातवीं पृथ्वीमें-छठी पृथ्वीके समान भंग है। विशेष, यहाँ मनुष्यायु नहीं है। मनुष्यगति, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी तथा उच्चगोत्रका कौन बन्धक है[2] ? सम्यग्मिथ्यात्वी तथा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव बन्धक हैं। ये बन्धक हैं; शेष अबन्धक हैं। तिर्यञ्चायुका कौन बन्धक है ? मिथ्यादृष्टि बन्धक है। ये बन्धक हैं; शेष अबन्धक हैं।

---

१. "विदियगुणे अणथीणति दुभगतिसंठाण संहदिचउक्कं। दुगमणिज्जोवं णीचं तिरियदुगुज्जोव तिरियाऊ ॥"—गो० क०, गा० ९६। २. "मिस्साविरदे उच्चं मणुवदुगं सत्तमे हवे बंधो ॥" —गो० क०,१०७।

१२. तिरिक्खेसु-पंचणाणावरणं छदंसणा० सादासादं अट्ठक०सत्तणोक०देवगदि० पंचिंदि० वेउव्विय-तेजा-क० समचदु० वेगुव्वि० अंगो०-वण्ण०४-देवगदिपा० अगुरुग०४-पसत्थवि०-तस०४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्ति-णिमि० उच्चागो० पंचंअंतराइ० को बं०? मिच्छादिट्ठि याव संजदासंजदा त्ति सव्वे बंधा, अबंधा णत्थि। थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधि०४-इत्थिवे०-तिरिक्खायु-मणुसायु-तिरिक्खगदि-मणुसगदि-ओरालिय० चदुसंठा० ओरालिय०अंगो०-पंचसंघड०-दोआणुपुव्वि० उज्जोवं अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा०को॰बं०? मिच्छादिट्ठि-सासण०। एदे बं०, अवसेसा अबं०। मिच्छत्तदंडओ ओघो। अपच्चक्खा०४ को बं०? मिच्छादि०याव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति। एदे बं०, अवसेसा [अबंधा]। देवायु०

विशेषार्थ—सातवीं पृथ्वीवाला मरकर नियमसे तिर्यञ्च होता है। इस कारण वहाँ मनुष्यायुका बन्ध नहीं बताया है[1]। मरण मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही होता है। तिर्यञ्चायुका बन्ध मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही होता है। मनुष्यद्विक तथा उच्चगोत्रका बन्ध मिश्र तथा अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमें ही होता है, नीचे नहीं होता है।

१२. तिर्यञ्चोंमें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता, असाता, प्रत्याख्यानावरण तथा संज्वलन रूप ८ कषाय, स्त्रीवेद नपुंसकवेद बिना सात नोकषाय, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस, कार्माण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४ (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक), स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका कौन बन्धक है? मिथ्यादृष्टिसे लेकर देशसंयमी पर्यन्त सर्वबन्धक हैं। अबन्धक नहीं हैं।

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, ४ संस्थान, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, ५ संहनन, दो आनुपूर्वी[2] (तिर्यञ्च, मनुष्यानुपूर्वी), उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय तथा नीच-गोत्रका कौन बन्धक है? मिथ्यादृष्टि तथा सासादन सम्यग्दृष्टि बन्धक हैं। ये बन्धक हैं। शेष अबन्धक हैं। मिथ्यात्व दण्डकमें ओघवत् जानना चाहिए।

विशेष—मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थानादि सोलह प्रकृतियाँ मिथ्यात्व दण्डकमें सम्मिलित हैं। उनके बन्धक मिथ्यादृष्टि होते हैं। वे बन्धक हैं; शेष अबन्धक हैं।

अप्रत्याख्यानावरण ४ का कौन बन्धक है? मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि पर्यन्त बन्धक हैं। ये बन्धक हैं। शेष अबन्धक हैं। देवायुका कौन बन्धक है? मिथ्यादृष्टि,

---

१. "छट्ठो त्ति य मणुआऊ चरिमे मिच्छेव तिरियाऊ ॥"–गो० क०,गा० १०६। २. वज्रवृषभ-संहनन, औदारिकद्विक, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु इन छह प्रकृतियोंकी "उवरिं छण्हं च छिदी सासणसम्मे हवे णियमा"—(गो० क०, १०८ गा०) के अनुसार सासादनमें बंधव्युच्छित्ति होती है, अतः असंप्राप्तासृपाटिकासंहननके बिना शेष ५ संहनन कहे गये हैं।

को बंध० ? मिच्छादि० सासणसम्मा० असंजद० संजदासंजदा त्ति बंधा। एदे बं० अवसेसा अबंधा। एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३। पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्त-पंच णाणा० णव दंस० सादासा० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-तिरिक्खमणुसायु-तिरिक्खमणुसगदि-पंचिंदि०(पंचजा०)-ओरालि० तेजाकम्म० छस्संठाणं ओरालिय-सरीर-अंगोवं० छस्संघड०-वण्ण०४-दोआणुपु०-अगुरुगलहुग०४-आदावुज्जो०-दोविहा०-तसादिदसयुगलं णिमिणं णीचुच्चागो०-पंचतरा० को ब०? सव्वे बंधा, अबंधा णत्थि। एवं सव्व-अपज्जत्ताणं सव्व-एइंदियाणं सव्वविगलिंदि०। ... ... [अत्र ताड़पत्रं त्रुटितम्।]

सासादन सम्यक्त्वी, असंयत सम्यक्त्वी तथा देश संयमी बन्धक है। ये बन्धक हैं। शेष अबन्धक है।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तक, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिमतीमें तिर्यञ्चोंके समान भंग जानना चाहिए।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें– ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, साता, असाता, मिथ्यात्व, १६ कषाय, ९ नोकषाय, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय-(जाति पंच जाति) औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, ६ संस्थान, औदारिक शरीरांगोपांग, ६ संहनन, वर्ण ४, मनुष्य-तिर्यञ्चानुपूर्वी, अगुरुलघु ४ (अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास), आताप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दस युगल (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति), निर्माण, नीचगोत्र, उच्चगोत्र, तथा ५ अन्तरायका कौन बन्धक है? सर्व बन्धक है; अबन्धक नहीं हैं।

सम्पूर्ण लब्ध्यपर्याप्तकों, सम्पूर्ण एकेन्द्रियों, सर्व विकलेन्द्रियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष—लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचोंमें नरकायु, देवायु तथा वैक्रियिक षट्कका अभाव रहनेसे इनकी गणना नहीं की गयी है। इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही पाया जाता है।

[ताड़पत्र नष्ट हो जानेसे इस प्रकरणका आगामी विषय नष्ट हो गया है। ग्रन्थके प्रकरणसे ज्ञात होता है कि आचार्य महाराजने मनुष्य गति आदि मार्गणाओंकी अपेक्षा 'बंध सामित्त-विचय' प्ररूपणाका वर्णन किया होगा। सम्बन्ध मिलानेकी दृष्टिसे श्री गोम्मटसार कर्मकाण्डके आश्रयसे कुछ प्रकाश डाला जाता है]

मनुष्यगति—यहाँ मिथ्यात्वादि चौदह गुणस्थान हैं। बन्ध योग्य १२० प्रकृतियाँ हैं। यहाँका वर्णन ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थानमें तीर्थंकर, आहारकद्विकका बन्ध न होनेसे शेष ११७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। सासादन गुणस्थानमें मिथ्यात्वादि १६ प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे बन्ध १०१ का होता है। मिश्र गुणस्थानमें ६९ का बन्ध होता है। यहाँ सासादन गुणस्थानमें बन्ध-व्युच्छिन्न होनेवाली अनन्तानुबन्धी आदि २५ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होगा। इसके सिवाय मनुष्यगति-द्विक, मनुष्यायु, वज्रवृषभनाराच संहनन, औदारिक शरीर, औदारिकशरीराङ्गोपाङ्ग इन छह प्रकृतियोंकी भी सासादन गुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्ति होती है। साधारणतया इनकी अविरतमें बन्धव्युच्छित्ति होती थी।

---

१. सुरणिरयाऊ अपुण्णे वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि॥ गो० क०, गा० १०९।

मिश्र गुणस्थानमें आयुका बन्ध न होनेसे देवायुका अबन्ध हो गया। इस प्रकार ३२ प्रकृतियोंके घटानेसे मिश्र गुणस्थानमें ६९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। अविरत सम्यक्त्वीके देवायु तथा तीर्थंकरका बन्ध प्रारम्भ हो जानेसे ७१ का बन्ध होता है। अप्रत्याख्यानावरण ४ का देशविरतमें बन्ध न होनेसे वहाँ ६७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। प्रमत्तगुणस्थानमें ६३ प्रकृतियोंका बन्ध है, कारण, यहाँ प्रत्याख्यानावरण ४ का बन्ध नहीं है। अप्रमत्तसयतके अस्थिर, असाता, अशुभ, अरति, शोक, अयशःकीर्ति इन छहका बन्ध नहीं होगा, किन्तु यहाँ आहारकद्विकका बन्ध होनेसे,५९ का बन्ध होता है। अपूर्वकरणमें ५८ का बन्ध है, कारण, यहाँ देवायुका बन्ध नहीं होता, देवायुकी बन्धव्युच्छित्ति अप्रमत्त गुणस्थानमें हो जाती है। अनिवृत्तिकरणमें बन्ध योग्य २२ हैं, कारण, अपूर्वकरण, गुणस्थानमें निद्रा, प्रचला, तीर्थंकर, आहारकद्विक आदि कुल ३६ प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जानेसे २२ प्रकृति ही बन्धके लिए शेष रहती हैं। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें १७ का बन्ध होता है, कारण, अनिवृत्तिकरणमें पुरुषवेद तथा ४ संज्वलन कषायोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है। उपशान्तकषायमें केवल एक सातावेदनीयका ही बन्ध होता है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय, यशःकीर्ति तथा उच्चगोत्रकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है। क्षीणकषाय तथा सयोगीजिनके एक सातावेदनीयका ही बन्ध होता है। अयोगकेवलीके बन्ध नहीं है, कारण यहाँ बन्धके हेतुओंका अभाव हो चुका है।

सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्तक, मनुष्यनीमें मनुष्यगतिके समान भंग है।

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यमें – तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु तथा वैक्रियिकषट्क इन ११ प्रकृतियोंको बन्धके अयोग्य कहा है। अतः उसके १०९ प्रकृतिका बन्ध होगा। इसके केवल मिथ्यात्व गुणस्थान होता है।

निर्वृत्यपर्याप्तक मनुष्यमें – चार आयु, नरकद्विक तथा आहारकद्विक इन आठ प्रकृतियोंको बन्धके अयोग्य कहा है,अतः उसके १२०–८=११२ बन्ध योग्य हैं। यहाँ मिथ्यात्व, सासादन, असंयतप्रमत्त तथा सयोगकेवली गुणस्थान होते हैं।

देवगति – यहाँ सूक्ष्मत्रय, विकलत्रय, सुरचतुष्क, नरकद्विक, नरकायु, देवायु, आहारकद्विक, इन सोलह प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य १२०–१६=१०४ कही हैं। देवगतिमें मिथ्यात्वादि चार गुणस्थान होते हैं। भवनत्रिक तथा कल्पवासी स्त्रियोंमें तीर्थंकरका अभाव होता है "भवणतिए णत्थि तित्थयर", "कप्पित्थीसु ण तित्थं"[1]। उनके १०३ प्रकृतियाँ बन्धयोग्य हैं। सौधर्म, ईशान स्वर्गवालोंके तीर्थंकरका बन्ध होता है;इससे १०४ प्रकृतियाँ बन्धयोग्य कही हैं। सनत्कुमारादि सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त एकेन्द्रिय स्थावर तथा आतापका बन्ध न होनेसे १०४–३=१०१ बन्धयोग्य हैं। आनत, प्राणत, आरण, अच्युत तथा नव ग्रैवेयकोंमें तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु, उद्योत इन शतारचतुष्क प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे १०१–४=९७ प्रकृतियोंको बन्धयोग्य कहा है। नव अनुदिश तथा पंच अनुत्तर विमानोंमें सम्यक्त्वी जीव ही उत्पन्न होते हैं, अतः उनके अविरत सम्यक्त्वीके बन्धयोग्य ७२ प्रकृतियाँ कही गयी हैं।

निर्वृत्यपर्याप्तक भवनत्रिक तथा कल्पवासिनियोंमें तिर्यंचायु तथा मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे १०३–२=१०१ बन्ध योग्य हैं। यहाँ मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थान होते

१ कप्पित्थीसु तित्थं सदरसहस्सारगो त्ति तिरियदुग।
तिरियाऊ उज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ ॥ गो० क०, ११२।

हैं। सम्यक्त्वी जीवकी उत्पत्ति भवनत्रिक तथा देवांगनाओंमें नहीं होती इससे यहाँ पूर्वोक्त दो गुणस्थान होते हैं। सौधर्मेन्द्रकी इन्द्राणीकी पर्यायमें भी सम्यक्त्वीका उत्पाद नहीं होता। जन्म धारणके पश्चात् पर्याप्त अवस्थामें सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका निषेध नहीं है। सौधर्म ईशान स्वर्गमे निर्वृत्यपर्याप्तावस्थामे तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होनेसे वहाँ बन्धयोग्य १०१+१=१०२ कही गयी हैं।

सनत्कुमारादि सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थामे मनुष्यायु तथा तिर्यंचायुका बन्ध न होनेसे ९९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। उनके पर्याप्त अवस्थामें १०१ का बन्ध कहा गया है। उसमें-से उक्त दो प्रकृतियाँ यहाँ घट जाती हैं।

आनतादि स्वर्गों तथा नव ग्रैवेयकोंमे पर्याप्त अवस्थामें ९७ का बन्ध होता था उसमें-से मनुष्यायुको घटानेसे ९६ का बन्ध निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामे कहा गया है।

नव अनुदिश तथा पंच अनुत्तर विमानोंमें पूर्वोक्त ७२ प्रकृतियोंमें-से मनुष्यायुको बन्धके अयोग्य होनेसे घटानेपर निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामें ७१ का बन्ध कहा गया है।

सौधर्मादि नव ग्रैवेयक पर्यन्त निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामें मिथ्यात्व, सासादन तथा असंयतमें तीन गुणस्थान होते है। आगे सम्यक्त्वी जीवका ही उत्पाद होनेसे चौथा गुणस्थान कहा है।

नरकगति—यहाँ मिथ्यात्व गुणस्थानमे बन्धव्युच्छित्तिवाली सोलह प्रकृतियोंमे-से मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थान, नपुंसक वेद तथा असम्प्राप्तासृपाटिकासंहननको छोड़कर शेष बारह प्रकृतियोंको बन्धके अयोग्य कहा है। इन बारह प्रकृतियोंके सिवाय देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, देवायु तथा आहारकद्विक इन सात प्रकृतियोंका भी बन्ध नहीं होनेसे १२+७=१९ प्रकृतियोंको १२० मे घटानेसे १०१ का बन्ध कहा गया है। यहाँ प्रथमसे चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त चार गुणस्थान कहे गये हैं।

चौथे, पाँचवे, छठे तथा सातवें नरकोंमे तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है। चौथी, पाँचवीं तथा छठी पृथ्वीमे १०१−१=१०० प्रकृति बन्ध योग्य कही हैं। सातवीं पृथ्वीमे मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता है। वहाँसे निकलकर जीव पशु पर्यायको ही प्राप्त करता है, अतः सातवीं पृथ्वीमे १००−१=९९ प्रकृतियोंको बन्ध योग्य कहा है।

पहली पृथ्वीमें निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामे मनुष्यायु तथा तिर्यंचायुका अभाव होनेसे १०१−२=९९ को बन्ध योग्य कहा है। यहाँ मिथ्यात्वादि चार गुणस्थान होते हैं।

दूसरे नरकसे छठे नरक पर्यन्त अपर्याप्तावस्थामे केवल मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। वहाँ तीर्थंकर, मनुष्यायु तथा तिर्यंचायु इन तीन प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे १०१−३=९८ को बन्ध योग्य कहा है।

सातवे नरकमे अपर्याप्त अवस्थामें मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। वहाँ अपर्याप्त अवस्थामें मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी तथा उच्च गोत्रका बन्ध न होनेसे ९८−३=९५ प्रकृतियोंको बन्ध योग्य कहा है।

तिर्यंचगति—तिर्यंचोंके सामान्य तिर्यंच, पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्ततिर्यंच तथा योनिमत् तिर्यंच इस प्रकार जो चार भेद कहे गये हैं, उनके पाँच गुणस्थान होते हैं। तिर्यंचोंमे तीर्थंकर तथा आहारकद्विक इन प्रकृतियोंके बन्धका अभाव रहनेसे १२०−३=११७ का बन्ध होता हैं। मनुष्यगतिके समान तिर्यञ्चोंमे भी वज्रवृषभनाराचसंहनन, औदारिकद्विक, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी तथा मनुष्यायुकी बन्धव्युच्छित्ति अविरतके बदलेमें सासादन गुणस्थानमें होती है।

निर्वृत्यपर्याप्तक तिर्यञ्चोंमें चार आयु तथा नरकद्विकका बन्धाभाव होनेसे बन्धयोग्य ११७−६=१११ प्रकृतियाँ हैं। इनके मिथ्यात्व, सासादन तथा असंयत ये तीन गुणस्थान होते हैं।

लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्चोंमें नरकायु, देवायु तथा वैक्रियिक षट्कका बन्ध न होनेसे ११७−८=१०९ का बन्ध होता है। यहाँ मिथ्यात्व गुणस्थानका सद्भाव कहा गया है।

इन्द्रिय मार्गणा—पर्याप्तक एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रियोंमें तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु तथा वैक्रियिकषट्क इन एकादश प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे १२०−११ =१०९ प्रकृतियोंका बन्ध कहा गया है। इनके प्रथम और द्वितीयगुणस्थान होते हैं।

पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें चौदह गुणस्थान कहे गये हैं।

पञ्चेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकोंमें आहारकद्विक, नरकद्विक तथा आयुचतुष्टय इस प्रकार आठ प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होनेसे १२०−८=११२ का बन्ध कहा है। इनके १, २, ४, ६ तथा तेरहवें गुणस्थान कहे है। आहारकमिश्रकाययोगावस्थामें जीव निर्वृत्यपर्याप्तक होता है। उस समय प्रमत्तसंयतावस्था पायी जाती है। केवली भगवान्‌के समुद्‌घातकालमें औदारिक मिश्रकायके समय निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्था पायी जाती है।

लब्ध्यपर्याप्तक पञ्चेन्द्रियोंमें तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु, वैक्रियिकषट्क इन ११ प्रकृतियोंको छोड़कर १२०−११=१०९ का बन्ध बताया गया है। गुणस्थान प्रथम ही होता है।

कायमार्गणा—पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकायवाले जीवोंमें मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थान होते हैं। इनकी १०९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

अग्निकायिकों, वायुकायिकोंमें मनुष्यद्विक, उच्चगोत्र तथा मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे १०९−४=१०५ का बन्ध है। गुणस्थान मिथ्यात्व ही होता है। गोम्मटसार कर्मकाण्डमें लिखा है—"ण हि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे।" ॥११५॥

लब्ध्यपर्याप्तकों, साधारण वनस्पतिकायिकों, सम्पूर्ण सूक्ष्मस्थावर जीवोंमें तथा तेजकायिक वायुकायिकोंमें सासादन गुणस्थान नहीं होता है। नारकी जीवोंमे भी अपर्याप्तावस्थामें सासादनका अभाव है।

योगमार्गणा—असत्य मन तथा असत्यवचनयोग, उभय मन तथा वचन योगोंमें मिथ्यात्वसे आदि क्षीण कषाय पर्यन्त द्वादश गुणस्थान पाये जाते हैं।

सत्य मन, सत्य वचन तथा अनुभय मन तथा अनुभय वचनमें सयोगी जिन पर्यन्त त्रयोदश गुणस्थान कहे गये हैं।

औदारिक काययोगमें त्रयोदश गुणस्थान कहे गये है। मनुष्यगतिके समान वर्णन जानना चाहिए। औदारिकमिश्र काययोगमें आहारक द्विक, नरकद्विक, नरकायु और देवायु इन छह प्रकृतियोंके बिना १२०−६=११४ का बन्ध होता है। यहाँ मिथ्यात्व, सासादन, असंयत तथा सयोगी जिन ये गुणस्थान पाये जाते है।

वैक्रियिक काययोगमें सौधर्म-ईशान स्वर्गके समान १०४ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। वैक्रियिक मिश्र काययोगमे मनुष्यायु तथा तिर्यंचायुका बन्ध न होनेसे १०४−२=१०२ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। यहाँ मिथ्यात्व, सासादन तथा असंयत गुणस्थान होते हैं।

आहारक काययोगमें छठा गुणस्थान होता है। यहाँ ६३ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। आहारक मिश्रयोगमें देवायुका बन्ध नहीं होनेसे ६३−१=६२ का बन्ध होता है।

कार्मण काययोगमे प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ तथा त्रयोदशम गुणस्थान पाये जाते है। यहाँ औदारिकमिश्रकाययोग सम्बन्धी ११४ प्रकृतियोंमें-से मनुष्यायु तथा तिर्यचायुको घटाने-पर ११२ का बन्ध होता है।

वेदमार्गणा – तीनों वेदोंमे प्रथमसे नवम गुणस्थान पर्यन्त गुणस्थान होते है। यहाँ तीनों वेदोंमे १२० प्रकृतियाँ बन्ध योग्य कही गयी हैं।

स्त्रीवेदीके निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामें प्रथम तथा द्वितीय गुणस्थान कहे गये है। यहाँ चार आयु, तीर्थंकर, आहारकद्विक, वैक्रियिकषट्क इन १३ प्रकृतियोको छोड़कर १२० – १३ = १०७ का बन्ध होता है।

नपुंसकवेदी निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामें मिथ्यात्व, सासादन तथा असंयतगुणस्थान कहे गये हैं। यहाँ चार आयु, आहारकद्विक, वैक्रियिकषट्क इन द्वादश प्रकृतियोंके बिना १०८ का बन्ध होता है। तीर्थंकर प्रकृतिका बन्धक जब नरकमे जाता है, तब उसके अपर्याप्तक दशामे तीर्थंकरका बन्ध होनेसे यहाँ १०८ का बन्ध कहा है। ऐसा स्त्रीवेदीमे नहीं होता है। सम्यक्त्वी जीव प्रथम नरक तो जाता है और वहाँ नपुंसकवेदी होता है, किन्तु वह स्त्रीवेदी नहीं होता है।

पुरुषवेदीके १२० प्रकृतियोंका बन्ध होता है। निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामे उसके आहारक-द्विक, नरकद्विक, तथा चार आयुको छोडकर १२० – ८ = ११२ का बन्ध होता है।

कषायमार्गणा—यहाँ १ से १० पर्यन्त गुणस्थान कहे गये हैं। यहाँ बन्ध १२० प्रकृतियो का होता है।

ज्ञानमार्गणा—कुमति, कुश्रुत तथा कुअवधि ज्ञानोंमे तीर्थंकर तथा आहारकद्विकको छोड़कर १२० – ३ = ११७ का बन्ध होता है। यहाँ मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थान कहे गये हैं। सुमति, सुश्रुत तथा सुअवधिज्ञानोंमे चौथेसे बारहवे पर्यन्त गुणस्थान होते हैं। यहाँ बन्धयोग्य ७९ प्रकृतियाँ कही गयी हैं।

मनःपर्यय ज्ञानमे प्रमत्तसंयतसे क्षीणकपायपर्यन्त गुणस्थान है। यहाँ ६५ प्रकृतियाँ कही गयी हैं।

मनःपर्यय ज्ञानमें प्रमत्तसंयतसे क्षीणकपाय पर्यन्त गुणस्थान है। यहाँ ६५ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। यहाँ आहारकद्विकका भी बन्ध होता है।[1] मनःपर्ययज्ञानीके आहारकद्विकके उदयका विरोध है। केवलज्ञानमे सयोगकेवली, अयोगकेवली गुणस्थान पाये जाते है। सयोग-केवलीके केवल सातावेदनीयका बन्ध होता है। अयोगी जिनके बन्धका अभाव है।

संयममार्गणा—असंयम मार्गणामें आदिके चार गुणस्थान है। यहाँ संयम अवस्थामें बँधनेवाली आहारकद्विकका बन्ध न होनेसे बन्ध योग्य १२० – २ = ११८ प्रकृतियाँ कही गयी है।

देशसंयमीके पाँचवाँ गुणस्थान होता है। सामायिक तथा छेदोपस्थापना संयममें ६, ७, ८, ९ पर्यन्त चार गुणस्थान होते हैं। यहाँ ६५ प्रकृति बन्ध योग्य है।

परिहार विशुद्धि संयममे छठवे, सातवे गुणस्थान होते है। यहाँ भी ६५ प्रकृतिका बन्ध होता है। इस संयमीके आहारकद्विकका बन्ध तो होता है; किन्तु उनका उदय नहीं होता है।

यथाख्यात संयम – यह ११वे से १४वे पर्यन्त होता है। उपशान्त कपायसे सयोगी जिन पर्यन्त केवल सातावेदनीय का बन्ध होता है। चौदहवे गुणस्थानमे बन्धाभाव है, क्योंकि वहाँ योगका अभाव हो जाता है।

दर्शनमार्गणा – चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शनमे १ से १२ पर्यन्त गुणस्थान होते है। यहाँ १२० प्रकृतिका बन्ध होता है।

१. अत्र आहारकद्वयोदय एव विरुध्यते, नाप्रमत्तापूर्वकरयोस्तद्बन्ध।

अवधिदर्शनमें ४थे से १२वें पर्यन्त गुणस्थान कहे गये हैं। यहाँ अवधिज्ञानवत् ७६ का बन्ध जानना चाहिए।

केवलदर्शन १३ तथा १४ ये दो गुणस्थान होते है। बन्धकी अपेक्षा सयोगी जिनके सातावेदनीयका ही बन्ध होता है।

लेश्यामार्गणा – कृष्ण, नील, तथा कापोत इन तीन लेश्याओंमें आदिके चार गुणस्थान होते हैं। अतः यहाँ आहारकद्विकके बिना १२० – २ = ११८ प्रकृतियोंका बन्ध कहा है।

पीत लेश्यामें १ से लेकर ७वे पर्यन्त गुणस्थान हैं। यहाँ सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, विकलत्रय, नरकायु तथा नरकद्विक इन ९ प्रकृतियोंका बन्ध न होनेसे बन्ध योग्य १२० – ९ = १११ कही गयी है।

पद्म लेश्यामे पूर्ववत् ७ गुणस्थान होते हैं। यहाँ एकेन्द्रिय, स्थावर तथा आतापका बन्ध न होनेसे १११ – ३ = १०८ बन्ध योग्य कही है।

शुक्ललेश्या – यहाँ सयोगी जिन पर्यन्त त्रयोदश गुणस्थान होते है। यहाँ पद्मलेश्या-सम्बन्धी १०८ प्रकृतियोंमे से तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु तथा उद्योत इन शतार-चतुष्कका अभाव होनेसे १०८ – ४ = १०४ का बन्ध होता है।

भव्यमार्गणा – भव्योंके चौदह गुणस्थान होते है। इनके १२० प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

अभव्य जीवोंके तीर्थंकर तथा आहारकद्विकको छोड़ ११७ का बन्ध होता है। इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है।

सम्यक्त्वमार्गणा – प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें मिथ्यात्व गुणस्थानसम्बन्धी १६ तथा सासादन गुणस्थान सम्बन्धी २५ प्रकृतियोका अभाव होने के साथ देवायु तथा मनुष्यायुका अभाव होता है, अतः १६+२५+२=४३ प्रकृतियोंको घटानेसे यहाँ १२०–४३ = ७७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। यहाँ चौथेसे सातवे पर्यन्त चार गुणस्थान कहे गये हैं। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमें चौथेसे ग्यारहवें पर्यन्त सात गुणस्थान कहे गये हैं। सातवे गुणस्थानसे ग्यारहवे पर्यन्त चढकर जब वह जीव नीचे उतरकर चौथे गुणस्थानमे आता है, तब उसके प्रथमोपशम सम्यक्त्वके समान ७७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। यहाँ भी मनुष्यायु तथा देवायुका अभाव कहा है। "**सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण**" (गो० कं० १२०)

'गोम्मटसार' कर्मकाण्डकी संस्कृत टीकामें लिखा है = अत्र प्रथमद्वितोयोपशमसम्यक्त्वयोरायुरबन्धात् आरोहकापूर्वकरणप्रथमसमये 'मरणोन' इति विशेषोऽनर्थकः ? इति न वाच्यम्, प्राग्बद्धदेवायुष्कस्यापि सातिशयप्रमत्तस्य श्रेण्यारोहणसंभवात् (११६ पृष्ठ) यहाँ यह प्रश्न किया है, प्रथमोपशम तथा द्वितीयोपशम सम्यक्त्वोंमें आयुबन्धका अभाव कहा है, तब श्रेणीका आरोहण करनेवाले अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथम समयमे 'मरणोन' मरणरहित ऐसा विशेषण निरर्थक रहा ? इसका समाधान यह है कि पहले देवायुका बन्ध करनेवाले सातिशय अप्रमत्तके श्रेणीका आरोहण सम्भव है। पूर्वमें आयुबन्ध करनेके अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सम्यक्त्वमे मरण नहीं होता है। इस प्रकार प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें तथा श्रेणी चढते अपूर्वकरणके प्रथम भागके अन्तर्मुहूर्तमे मरण नहीं होता है; अन्यत्र उपशम श्रेणीमें मरण होता है। (गो० क०, संस्कृत टी०, पृ० १२२)

क्षयोपशम अथवा वेदक सम्यक्त्व चौथेसे सातवें पर्यन्त कहा है। यहाँ प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी ७७ प्रकृतियोंमें मनुष्यायु तथा देवायुको जोड़नेसे ७९ का बन्ध कहा गया है।

[कालपरूवणा]

१३.······जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० दे० । तित्थ०-जह० चदुरासीदि-वाससहस्साणि, उक्क० तिण्णि साग० सादिरे० । पढमाए याव छट्ठित्ति पढमदंड-बंधकालो जह० दसवाससहस्साणि सागरोपम-तिण्णि-सत्त-दस-सत्तारस-सागरोप० सादिरे० । उक्क० अप्पप्पणो ट्ठिदी कादव्वो (दव्वा) । साद[दं] डगे तिरिक्खगदि-तिगं पविट्ठं जह० एयस० उक्क० अंतो० । थीणगिद्धिदंडओ णिरयोघो । णवरि अप्पप्पणो ट्ठिदी भा(भ)णिदव्वा । एवं मिच्छत्त-दंडओ । पुरिसवेददंडओ अप्पप्पणो ट्ठिदी० दे० । दो आयु० ओघं । तित्थयर० पढमाए जह० चदुरासीदि-वस्स-सहस्साणि, उक्क० सागरो० देसू० । बिदियाए जह० सागरो० सादिरे० । उक्क० तिण्णि सागरो० देसू० । तदियाए जह० तिण्णि साग० सादिरे० । उक्क० तिण्णि साग० सादिरे० । सत्तमाए णेरइ ओघो । णवरि दंसणतियं मिच्छत्तं अणंताणुबंधि०४ तिरिक्खपगदितियं च जह० अंतो० । मणुस० मणुसाणुपुव्वि० उच्चागो० जह० अंतो० । तित्थयर० णत्थि ।

क्षायिक सम्यक्त्वमें चौथेसे चौदहवें पर्यन्त गुणस्थान होते हैं। यहाँ भी ७९ का वन्ध होता है।

संज्ञी मार्गणा – संज्ञी जीवके १ से १२ पर्यन्त गुणस्थान कहे गये हैं। यहाँ १२० का वन्ध होता है।

असंज्ञीके प्रथम तथा द्वितीय गुणस्थान होते हैं। यहाँ तीर्थंकर तथा आहारकद्विकके बिना १२० – ३ = ११७ का वन्ध कहा गया है।

आहार मार्गणा – यहाँ १ से १३ गुणस्थान होते हैं। १२० प्रकृतिका वन्ध होता है।

अनाहारकोंके प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, तेरहवें गुणस्थान कहे गये हैं। यहाँ ४ आयु, आहारकयुगल, नरकद्विकके बिना १२० – ८ = ११२ का वन्ध कहा है।

कालप्ररूपणा

[ताड़पत्र नं० २८ नष्ट हो जानेके कारण इस प्ररूपणाका प्रारम्भिक अंश भी विनष्ट हो गया। प्रकरणको देखते हुए ज्ञात होता है कि यहाँ आदेशकी अपेक्षा नरकगतिका वर्णन चल रहा है और ओघका वर्णन नष्ट हो गया है]

विशेष – यहाँ एक जीवकी अपेक्षा वर्णन किया गया है।

१३ नरकगतिमें जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे देशोन तेतीस सागरोपम है। एक जीवकी अपेक्षा तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य वन्धकाल ८४ हजार वर्ष, तथा उत्कृष्ट साधिक तीन सागर प्रमाण है। प्रथम नरकसे छठे नरक पर्यन्त प्रथम दण्डकका वन्धकाल जघन्यसे दशहजार वर्ष, एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दस सागर, सत्रह सागरसे कुछ अधिक है तथा उत्कृष्ट अपने-अपने नरककी स्थिति प्रमाण जानना चाहिए। अर्थात् क्रमशः एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दस सागर, सत्रह सागर तथा बाईस सागर प्रमाण है। साता दण्डकमें तिर्यंच-गतित्रिकमें प्रविष्ट जीवका वन्धकाल जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। स्त्यानगृद्धि दण्डकका वन्धकाल नरक गतिकी ओघ रचनाके समान है। विशेष यह है कि यहाँ अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिए।

१४. तिरिक्खेसु पंचणाणा० छदंसण० मिच्छ० अट्ठक० भयदुगुंछ० तेजाक० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमिणं पंचंत० बंध० जह० खुद्दाभव०, उक्क० अणंतकालं असंखे० [पोग्गलपरियट्टं०]। एवं थीणगिद्धितिगं अणंताणु० आदि० (?) अट्ठकसाय ओरालिय०, णवरि जह० एगस०। सादासा०-छण्णोकसा०-दोगदि-चदुजादि-पंचसंठाणं ओरालिय० अंगो० छस्संघड०-दोआणुपु०-आदावुज्जोव० अप्पसत्थवि० थावरादि०४ थिरादि दो यु० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-जस० अजस० जह० एगस०, उक्क० अंतो०।

विशेष – ओघ रचनावाला ताडपत्रका अंश नष्ट हो गया, अतः ओघ रचना अज्ञात है।

मिथ्यात्व दण्डकमें इसी प्रकार जानना चाहिए। पुरुषवेद दण्डकमे अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण किन्तु कुछ कम बन्धकाल है।

दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) का बन्धकाल ओघके समान है। तीर्थंकर प्रकृतिका बन्धकाल प्रथम पृथ्वीमें जघन्यसे चौरासी हजार वर्ष है, उत्कृष्टसे देशोन एक सागर है।

विशेषार्थ – इस कथनसे विदित होता है कि तीर्थंकर प्रकृतिका बन्धक नरकमें कमसे कुल ८४ हजार वर्षकी आयुको प्राप्त करेगा। उदाहरणार्थ - श्रेणिक महाराजके जीवने नरकमें जाकर ८४ हजार वर्षकी आयु प्राप्त की है।

दूसरी पृथ्वीमें जघन्य बन्धकाल साधिक एक सागर, उत्कृष्ट किंचित् ऊन तीन सागर है। तीसरी पृथ्वीमे जघन्य साधिक तीन सागर, उत्कृष्ट साधिक तीन सागर बन्धकाल है।

विशेषार्थ – तीसरी पृथ्वीमे सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति पायी जाती है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ उत्पन्न होनेवाला जीव किंचित् ऊन सात सागर पर्यन्त सम्यक्त्वी रहनेसे उतने काल पर्यन्त तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करता है, किन्तु इस सम्बन्धमे यह आगम बताता है कि उस प्रकृतिका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक तीन सागर है। इससे अधिक बन्धकालकी कल्पना करना आगम बाधित होगा।

सातवीं पृथ्वीमे – नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है कि दर्शनावरण ३, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, तिर्यंचगतित्रिकका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्रका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। यहाँ तीर्थंकर प्रकृति नहीं है। [चौथी, पाँचवीं तथा छठी पृथ्वीमे भी तीर्थंकर प्रकृति नहीं है।]

१४. तिर्यंचोंमे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, ८ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायोंका जघन्यसे बन्धकाल क्षुद्रभव ग्रहण, उत्कृष्टसे अनन्तकाल असंख्यात पुद्गल परावर्तन है[1]। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी आदि आठ कषाय तथा औदारिक शरीरमे भी इसी प्रकार समझना चाहिए[2]। विशेष यह है कि यहाँ जघन्य बन्धकाल एक समय है। साता-असातावेदनीय, ६ नोकषाय, २ गति, ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त-विहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयश-

---

१. "तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं"–षट्खं०, का० ४८। २ "सासणसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।"–षट्खं०, का० ५, ७, ८।

पुरिसवे०-देवग०-वेउव्वि० समच० वेउव्वि० अंगो० देवाणुपु० पसत्थवि० सुभग० सुस्सर० आदेज्ज० उच्चागो० जह० एगस०। उक्क० तिण्णि पलिदो०। चदुआयु० तिरिक्खगदितिगं ओघं। पंचिंदिय० परघा० उस्सासं तस०४ जह० एग०। उक्कस्सेण तिण्णि पलिदो० सादिरे०।

१५. पंचिंदि० तिरिक्ख० ३ ओघं। पढमदंडओ जह० खुद्दा०। पज्जत्तजोणिणीसु [जहण्णेण] अंतो०। उक्क० तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुध०। एवं थीणगिद्धितिगं अट्ठकसा०। णवरि जह० एगस०। साददंडओ तिरिक्खोघं। णवरि तिरिक्खग-

---

कीर्तिका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, देवानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट तीन पल्य है। चार आयु और तिर्यंचगतित्रिकका ओघके समान जानना चाहिए। पचेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास, त्रस ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य प्रमाण है।

१५. पचेन्द्रिय-तिर्यंच, पचेन्द्रिय-तिर्यंचपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतीमें – ओघके समान जानना चाहिए। प्रथम दण्डकमे जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभव ग्रहण प्रमाण है। तिर्यंच-पर्याप्तक तथा योनिमतियोंमे (जघन्य) अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्वाधिक तीन पल्य प्रमाण बन्धकाल है।[1]

विशेषार्थ – एक देव,नारकी, मनुष्य अथवा विवक्षित पचेन्द्रिय तिर्यंचसे विभिन्न अन्य तिर्यंच मरकर विवक्षित पंचेन्द्रिय तिर्यंच हुआ। वहाँ संज्ञी स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेदोंमें क्रमसे आठ-आठ पूर्वकोटि काल व्यतीत करके तथा असंज्ञी स्त्री, पुरुष, नपुसकमे पूर्ववत् आठ-आठ पूर्व कोटि प्रमाण काल-क्षेप करके पश्चात् लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंज्ञी पर्याप्तकोंमे उत्पन्न होकर उनमे-के स्त्री, पुरुष, नपुसकवेदी जीवोंमे पुनः आठ-आठ पूर्वकोटि प्रमाण काल व्यतीत करके पश्चात् संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक स्त्री और नपुंसक वेदियोंमे आठ-आठ पूर्व कोटियाँ तथा पुरुष वेदियोंमें सात पूर्वकोटियाँ भ्रमण करके पश्चात् देवकुरु, वा उत्तरकुरुमे, तिर्यंचोंमें, पूर्वबद्धायुके वश पुरुष या स्त्री तिर्यंच हुआ तथा तीन पल्योपम काल व्यतीत करके मरा और देव हुआ। इस प्रकार पूर्वकोटि पृथक्त्व वर्ष अधिक तीन पल्य कहे हैं। (ध० टी०,का० पृ० ३६७, ३६७)[2]

इसी प्रकार स्त्यानगृद्धित्रिक तथा आठ कषायका भी जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ जघन्य एक समय है। साता दण्डकमें तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए।

---

१ "पंचिंदिय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।"–षट्खं०, का० ५७-५६। २ यहाँ बारह भवोंमें-से ११ भवोंमें पूर्वकोटिपृथक्त्ववर्ष अर्थात् आठ-आठ पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण परिभ्रमणका काल और अन्तके बारहवें भवमें सात पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण परिभ्रमण करनेका काल मिलकर ९५ पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण होता है। इस कालको 'पूर्वकोटिपृथक्त्व' शब्दसे ग्रहण किया है।

दितिगं ओरालियं च पविट्ठं । पुरिसवेददंडओ तिरिक्खोघं । णवरि जोणिणीसु देसू० । चदु आयु० ओघं । पंचिंदि० दंडओ तिरिक्खोघं ।

१६. पंचिंदिय-तिरि०-अप० पंचणाणा०-णवदं० मिच्छ०-सोलसक०-भयदुगुं० ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंचंत० जह० खुद्दा० । उक्क० अंतो० । दो आयु ओघं । सेसाणं जह० एगस० । उक्क० अंतो० । एवं सव्व-अपज्जत्ताणं तसाणं थावराणं च ।

१७. मणुस०३-पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदुगुं० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंच-(पंचंत०) जह० एग० । [उक्कस्सेण] तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुध० । एवं मिच्छ० । णवरि जह० खुद्दा० । पज्जत्त(०)मणुसिणि अंतो० । सादावे० चदुआयु ओघं । असाद०-छण्णोक०-तिण्णिगदि-चदु जाति(दि)-ओरालिय०-पंचसंठा०-ओरालिय-अंगो०छस्संघ०-तिण्णिआणु०-आदावुज्जो० अप्पस०-थावरादि०४-

तिर्यंचगतित्रिक तथा औदारिक शरीरमें विशेष जानना चाहिए। पुरुषवेद दण्डकका तिर्यञ्चोंके ओघवत् है। इतना विशेष है कि योनिमती तिर्यञ्चोंमें कुछ कम जानना चाहिए। चार आयुका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय दण्डकमें तिर्यञ्चोंके ओघवत् है।

१६. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें--५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा पञ्च अन्तरायोंका बन्धकाल जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है[1]।

मनुष्य, तिर्यंचायुका बन्धकाल ओघवत् है। शेषका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकार संपूर्ण अपर्याप्तक त्रसों तथा स्थावरोंमें जानना चाहिए।

१७. मनुष्य सामान्य, मनुष्य पर्याप्त तथा मनुष्यनियोंमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल एक समय, (उत्कृष्ट) पूर्वकोटि पृथक्त्वाधिक तीन पल्य प्रमाण है। इसी प्रकार मिथ्यात्वका भी बन्धकाल है। इतना विशेष है कि मनुष्य सामान्यमें जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभव ग्रहण प्रमाण है।[2] पर्याप्त मनुष्य तथा मनुष्यनीमें जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। सातावेदनीय, चार आयुका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। असातावेदनीय, ६ नोकषाय, तीन गति, चार जाति, औदारिक शरीर, पाँच संस्थान, औदारिक अंगोपांग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादि ४,

१. "पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।" - षट्खं०, का० १५, ६७।

२ "मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।"-षट्खं०, का०, ६८-७०।

यहाँ यह विशेष है कि मनुष्य मिथ्यात्वीके ४७ पूर्व कोटि अधिक तीन पल्य हैं, पर्याप्त मिथ्यात्वी मनुष्यके २३ पूर्वकोटियाँ अधिक हैं। मनुष्यनी मिथ्यादृष्टिके सात पूर्वकोटि अधिक है। यथा-"मणुसमिच्छादिट्ठिस्स च्चे य सत्तेतालपुव्वकोडीओ अहिया होंति, पज्जत्तमिच्छादिट्ठीण तेवीसपुव्वकोडीओ, मणुसिणि मिच्छादिट्ठीसु सत्त पुव्वकोडीओ अहियाओ।"-ध० टी०, का०, पृ० ३७३।

थिरादिदोयु० दूभग-दुस्स०-अणादे०-जस०-अज्जस०-णीचागो० जहण्णे० एग० । उक्क० अंतो० । पुरिस० देवग०४ समच० पसत्थ० सुभग० सुस्सर० आदेज्ज० उच्चागो० जह० एगस० । उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे० । मणुसिणीसु देसू० । पंचिंदिय० परघादु० तस०४ तिरिक्खोघं । आहार०२ जह० एग० । उक्क० अंतो० । तित्थ० जह० एग० । उक्क० पुव्वकोडिदेसू० ।

१८. देवेसु–पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदुगुं० ओरालिय० तेजाक०-वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय० णिमि० पंचंत० जह० दसवस्ससहस्सा० । उक्क० तेतीसं सा० । थीणगिद्धितिग० मिच्छ० अणंताणुबं०४ जह० एग० । [णवरि] मिच्छ० अंतो० । उक्क० एक्कत्तीसं सा० । सादासा० छण्णोक० तिरिक्ख० एइंदि०

स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा नीचगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । पुरुषवेद, देवगति ४, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य प्रमाण है[1] । विशेष यह है कि मनुष्यनीमें देशोन तीन पल्य है । पंचेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास, त्रस ४ का बन्धकाल तिर्यञ्चोंके ओघवत् है । आहारकद्विकका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । तीर्थंकरका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है ।

१८. देवोंमें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण तथा पञ्च अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस सागर प्रमाण है ।

विशेषार्थ – देवोंकी जघन्य तथा उत्कृष्ट आयुकी अपेक्षा यह वर्णन हुआ है ।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य बन्धकाल एक समय है । (इतना विशेष है कि) मिथ्यात्वका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है, किन्तु सबका उत्कृष्ट बन्धकाल ३१ सागर प्रमाण है ।

विशेष – कोई मिथ्यात्वी द्रव्यलिंगी मरकर ३१ सागरकी आयुवाले ग्रैवेयक वासी देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ उसने जीवन-भर मिथ्यात्वादिका बन्ध किया । इस अपेक्षा ३१

---

१ "असंजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि ।"–षट्खं०,का०,७२–८१ ।

"मणुस-मणुसपज्जत्तएसु सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि अण्णत्थ देसूणाणि ।"–ध० टी०,का०, पृ० ३७७ ।

पूर्वकोटि आयुके त्रिभागमें मनुष्यायुको बाँधनेवाले मनुष्यने अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्व प्राप्त किया तथा सम्यक्त्वसहित भोगभूमिमें तीन पल्य विताये और मरकर देव हुआ । इस प्रकार साधिक तीन पल्य हैं । कुछ कम तीन पल्य प्रमाणकाल मनुष्यनियोंमें है । कोई मिथ्यात्वी मनुष्य भोगभूमिमें तीन पल्यको स्थिति-वाला मनुष्य हुआ । ९ माह गर्भमें विताने, पश्चात् ४९ दिनमें सम्यक्त्व लाभ किया और सम्यक्त्वयुक्त शेष तीन पल्य पूर्ण कर मरा और देव हुआ । इस प्रकार ९ माह ४९ दिन कम तीन पल्य प्रमाणकाल हुआ । ध० टी०,का०,पृ० ३७८ ।

पंचसं० पंचसंघ० तिरिक्खगदिपाओ० आदावुज्जो०-अप्पसत्थवि०[थावर-]थिरादिदो-युग० दूभगदुस्सर०-अणादे०-जस०-अजस० णीचा० जह० एग०। उक्क० अंतो०। पुरिस० मणुस० पंचिंदि० समच० ओरालिय० अंगो० वज्जरिस० मणुसाणु० पसत्थवि० तस० सुभग० सुस्सर० आदेज्ज उच्चागो० जह० एगस०। उक्क० तेत्तीसं सा०। दो आयु ओघो (ओघं)। तित्थय० जह० वेसाग० सादि०। उक्क० तेत्तीसं सा०। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो द्विदिकालो णेदव्वो याव सव्वट्ठा त्ति। णवरि भवण-वा०-वाण-वेंत०-जोदिसि० तित्थय० णत्थि। सणक्कुमारादि पंचिंदियसंयुत्तं कादव्वं। एवं एइंदिय थावरि(रं) णत्थि। आणदादि० तिरिक्खायु-तिरिक्खगदि०३ णत्थि। मणुसगदि धुवं कादव्वं।

सागर प्रमाण बन्धकाल कहा है।[1]

साता-असाता वेदनीय, ६ नोकषाय, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, पञ्च संस्थान, पञ्च संहनन, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, नीचगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय है, उत्कृष्ट ३३ सागर है।

विशेषार्थ – यह उत्कृष्ट बन्धकालका कथन सर्वार्थसिद्धिके देवोंकी अपेक्षा है।

दो आयुका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य बन्धकाल साधिक दो सागर है, उत्कृष्ट ३३ सागर है।

विशेषार्थ – देवगतिकी अपेक्षा तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध कल्पवासी[2] देवोंमें होता है। सौधर्मद्विकमें आयु साधिक द्विसागरोपम है और सर्वार्थसिद्धिमें ३३ सागरोपम है। इस अपेक्षा यहाँ वर्णन किया गया है।

इस प्रकार सब देवोंमें अपनी-अपनी स्थिति-प्रमाण बन्धका काल सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त जानना चाहिए। इतना विशेष है कि भवनवासी, व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोंमें तीर्थंकर प्रकृति नहीं है। सनत्कुमारादि देवोंमें पंचेन्द्रियका संयोग करना चाहिए। वहाँ एकेन्द्रिय तथा स्थावर नहीं है।

विशेष – सौधर्मद्विकके आगे केवल पंचेन्द्रिय जातिका बन्ध होता है, एकेन्द्रिय, स्थावर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है।

आनतादि स्वर्गोंमें – तिर्यंचगतित्रिक अर्थात् तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी तथा उद्योतका बन्ध नहीं है। यहाँ मनुष्यगतिका ध्रुव रूपसे भंग करना चाहिए। (कारण, यहाँ मनुष्यगतिका ही बन्ध होता है)।

विशेष – शतारचतुष्टय नामसे ख्यात तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी तथा उद्योतका बन्ध शतार-सहस्रारसे ऊपर नहीं होता है।

---

१ "देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि।"–षट्खं०,का०,८७-८६।

२ "कप्पित्थीसु ण तित्थं "–गो० क०,गा० ११२। षट्० टी०,भा० १,पृ० ६१, १३१।

१६. एइंदिएसु–पंचणा० णवदंसणा० मिच्छ० सोलस० भयदुगुं० ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंचंतरा० जह० खुद्दा०। उक्क० अणंतकालम०। बादरे० अंगुल० असं०। सुहुमे असंखेज्जा लोगा। बादर-एइंदिय-पज्जत्ता० जह० अंतो०। उक्क० संखेज्जवस्ससहस्सा०। सुहुम-एइंदि० पज्जत्त जहण्णु० अंतो०। तिरिक्खगदितियं जह० एय०। उक्क० असंखेज्जा लोगा। एवं सुहुम बादरे अंगुलस्स असंखे०। पज्जत्ते संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। सुहुम-पज्ज० जह० एग० उक्क० अंतो०। सेसाणं सादादीणं जह० एय०। उक्क० अंतो०। दो आयु० ओघं। एवं सव्व-एइंदियाणं णेदव्वं। विगलिंदिया०–पंचणा०णवदंसणा०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं० ओरालियतेजाक०-वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंचंतरा० जह० खुद्दाभ० पज्जत्ते० अंतो०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। दो आयु ओघं। सेसाणं सा [दा] दीणं जह० एयस०। उक्क० अंतो०।

---

१६. एकेन्द्रियोंमे–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, पाँच अन्तरायका बन्धकाल क्षुद्रभव प्रमाण जघन्यसे है तथा उत्कृष्ट अनन्तकाल असंख्यात पुद्गल परावर्तन जानना चाहिए। बादर एकेन्द्रियमे उत्कृष्ट बन्धकाल अंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण है तथा सूक्ष्ममें असंख्यात लोक प्रमाण है।

विशेष–यहाँ 'अंगुलका असंख्यातवाँ भाग' यह क्षेत्रकी मर्यादाका द्योतक शब्द, कालके लिए प्रयुक्त हुआ है। इसका तात्पर्य यह है कि आकाशके उक्त प्रमाण क्षेत्रमे जितने प्रदेश आवे, उतनी संख्या-प्रमाण समय-समूहात्मक रूपकालको ग्रहण करना चाहिए।

[2]बादर-एकेन्द्रिय-पर्याप्तकमे जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट बन्धकाल संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है। [3]सूक्ष्म-एकेन्द्रिय-पर्याप्तकमें जघन्य बन्धकाल तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। तिर्यंचगतित्रिकका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे असंख्यात लोक प्रमाण है। इस प्रकार सूक्ष्मोंमे जानना चाहिए। बादर एकेन्द्रियोंमें अंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाणकाल है। किन्तु इनके पर्याप्तकोंमें संख्यात हजार वर्ष प्रमाण बन्धकाल है। सूक्ष्म-पर्याप्तकोंमे जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्य तथा तिर्यंचायुका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। इस प्रकार सम्पूर्ण एकेन्द्रियोंमे जानना चाहिए। विकलेन्द्रियोंमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभव प्रमाण है। किन्तु पर्याप्तकोंमें अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जघन्य बन्धकाल है। उत्कृष्ट बन्धकाल संख्यात

---

१ "इंदियाणुवादेण एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणतकालमसंखेज्जपोग्गल-परियट्टं।"–षट्खं०, का०,१०७ १०६। २ "बादरेंदियपज्जत्ता केवचिर कालादो होंति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।" –षट्खं०,का०, ११३-११५। ३ "सुहुमेंदियपज्जत्ता एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्त,"–षट्खं०,का०,१२२-१२४।

२०. पंचिंदि० तस०२–पंचणा०-णवदंस०-मिच्छत्त०-सोलसक०-भयदुगुं० तेजाक०-वण्ण०४-अगु०-उप० णिमिणं पंचंतरा० जह० खुद्दा० पज्जत्ते० अंतो०। उक्क० सागरोपमसह० पुव्वकोडिपुध०। पज्जत्ते सागरोपम-सद-पुध०। तसेसु–बेसाग० सहस्साणि पुव्वकोडिपुध०, पज्जत्ते बेसागरोपमसहस्साणि। सादावे० चदुआयु ओघं। असादा० छण्णोक० णिरयग०-चदुजा०-आहारदुगं पंचसंठाणं-पंचसंघ०-णिरयाणु०-आदावुज्जो०-अप्पस० थावर०४ थिरादिदोयुग० दूभग० दुस्सर० अणादेज्ज० जस० अज्ज० जह० एग०। उक्क० अंतो०। पुरिस० ओघं। तिरिक्खगदितिगं ओरालि० ओरालिय० अंगोवं० जह० एय०। उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। मणुसग० वज्जरि० मणुसाणु० जह० एग०। उक्क० तेत्तीसं सा०। देवग०४ जह० एय०। उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे०। पंचिंदि०

हजार वर्ष प्रमाण है[1]। मनुष्य तथा तिर्यंच आयुका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। शेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियोंका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त प्रमाण है।

२०. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रस, त्रस-पर्याप्तकोंमे –५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभव प्रमाण है। विशेष यह है कि पर्याप्तकोंमें जघन्य बन्धकाल अन्तमुहूर्त प्रमाण है।[2] इनका उत्कृष्टकाल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक सहस्र सागरोपम है। विशेष यह है कि पर्याप्तकोंमें सागरोपम शतपृथक्त्व प्रमाण है। त्रसोंमें दो हजार पूर्वकोटिपृथक्त्वाधिक है। इनके पर्याप्तकोंमे दो हजार सागरोपम प्रमाण बन्धकाल है[3]। सातावेदनीय तथा आयु ४ का बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। असातावेदनीय, ६ नोकषाय, नरकगति, ४ जाति, आहारकद्विक, पंच संस्थान, पंच संहनन, नरकानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयश कीर्तिका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त है। पुरुषवेदका बन्धकाल ओघकी तरह जानना चाहिए। तिर्यंचगतित्रिक, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांगका जघन्य बन्धकाल एक समय उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है। मनुष्यगति, वज्रवृषभ संहनन, मनुष्यानुपूर्वीका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट तेतीस सागर है। देवगति चतुष्कका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्योपम है।

१ "बीइंदिया-तीइंदिया-चउरिंदिया बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियपज्जत्ता केवचिर कालादो होंति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण, अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।"–षट्खं०, का०,१२८–१३०।

२. "पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होंति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि, सागरोवमसदपुधत्तं।"–षट्खं०, का०,१३४–१३६।

३ "तसकाइय–तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होंति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि बेसागरोवमसहस्साणि।" –षट्खं०, का०,१५२–१५७।

परघादुस्सास तस०४ जह० एग० । उक्क० पंचासीदि-सागरोवमसद० । समचदु० पसत्थवि० सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागो० जह० एग० । उक्क० बेछावट्ठि-साग० सादि० तिण्णि-पलिदो० देसू० । तित्थय० जह० अंतो० उक्क० तेत्तीसं सादि० सादिरेयाणि[1] । पंचकायाणं–पंचणा०णवदंस०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं०ओरालिय-तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतरा० जह० खुद्दा० । उक्क० असंखेज्जा लोगा अणंतकालं असंखेज्जा पो०, अड्ढादिज्ज पोग्गल०[2] । बादरेसु कम्मट्ठिदि अंगुलस्स असंखे० कम्मट्ठिदि० । बादरे पज्जत्ते जह० अंतो०, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससह० । सुहुमे [पज्जत्ते] सुहुमएइंदियभंगो । सेसाणं सादादीणं जह०

पंचेन्द्रिय, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येकका जघन्य बन्धकाल एक समय है। उत्कृष्टसे १८५ सागरोपम प्रमाण बन्धकाल है। समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट, बन्धकाल कुछ कम तीन पल्योपम अधिक दो छयासठ सागरोपम जानना चाहिए। तीर्थंकरका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। पंच कायोंमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा पाँच अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभव है, उत्कृष्ट असंख्यात लोक, अनन्तकाल, असंख्यात पुद्गलपरावर्तन, अढाई पुद्गल परावर्तन है।[3] बादरकायमें कर्मस्थिति अंगुलके असंख्यातवे भाग कर्मस्थिति है। बादर पर्याप्तकोंमें जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है।

विशेषार्थ–यहाँ 'कर्मस्थिति' शब्दसे केवल दर्शनमोहनीयकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम उत्कृष्ट स्थितिका ग्रहण हुआ है। दर्शनमोहनीय कर्मकी स्थितिको प्रधानता देनेका कारण यह है कि उसमे सर्व कर्मोंकी स्थिति संगृहीत है। (ध० टी०,का०,पृ० ४०५)

सूक्ष्म (पर्याप्तकोंमे) सूक्ष्म एकेन्द्रियके समान भंग है। शेष साता आदि प्रकृतियोंका

---

१ "असंजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।"–षट् खं०, का०,१३-१५।

२ "पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिर कालादो होति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण उक्कस्सेण असखेज्जा लोगा।"–षट् खं०, का० १३६–१४१। ३ "बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा केवचिर कालादो होंति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण, उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी।"–षट् खं०, काल० १४२–४४। "बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवाउकाइया बादरवणप्फदिकाइया-पत्तेयसरीर-पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण सखेज्जाणि वाससहस्साणि ।"–षट् खं०, काल०,१४५–४७।

शुद्ध पृथ्वीकायिक पर्याप्तकोकी आयु–स्थिति १२ हजार वर्ष है, खरपृथ्वीकायिक पर्याप्तकोकी २२ हजार है। जलकायिक पर्याप्तकोकी ७ हजार वर्ष है, तेजकायिक पर्याप्तकोकी तीन दिवस, वायुकायिक पर्याप्तकोकी ३ हजार वर्ष, वनस्पतिकायिक पर्याप्तक जीवोंकी स्थितिका प्रमाण दस हजार वर्ष है। इन आयुकी स्थितियोंमें सख्यात हजार बार उत्पन्न होनेपर संख्यात सहस्रवर्ष हो जाते है।–ध०टी०,का०पृ०४०४

एग० । उक्क० अंतो० । दो आयु ओघं । णवरि तेज० वाउका० मणुसगदि०४ वज्जरि० [वज्जं] तिरिक्खगदितिगं धुवभंगो ।

२१. पंचमण० पंचवचि०–सव्वपगदीणं बंधे (बंध)कालो जह० एग० । उक्क० अंतो० । एवं वेउव्विका० आहारका० । का [य] जोगि०–पंचणा० णवदंसण०-मिच्छत्त०सोलसक०भयदु०ओरालिय-तेजाकं० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमि० पंचंतरा० जह० एग० । उक्क० अणंतकालं असंखे०पोग्गलपरियट्टं । तिरिक्खगदितिगं ओघं । सेसाणं सादादीणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । ओरालियकायजोगीसु–पंचणा०णवदंसण०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं०ओरालिय - तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचतरा० जह० एग० । उक्क० बावीस-वस्स-सहस्साणि देसू० । तिरिक्खगदि-तिगं जह० एग० उक्क० तिण्णि-वस्स-सहस्साणि देसू० । सेसाणं सादादीणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । ओरालियमिस्स०–पंचणा०णवदंसण०मिच्छत्त० सोलसक०भयदुगुं० ओरालिय–तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उप० णिमिणं पंचंतरा जह०

जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यायु तथा तिर्यञ्चायुका ओघवत् जानना चाहिए। इतना विशेष है कि तेजकाय और वायुकायमें, मनुष्यगति, मनुष्यायु, मनुष्यानुपूर्वी तथा उच्चगोत्र रूप चतुष्क तथा वज्रर्षभनाराच संहननको (छोडकर) तिर्यञ्चगतित्रिकका ध्रुवभंग है।

२१. पाँच मनोयोग, पाँच वचनयोगमें–सर्व प्रकृतियोंका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। ऐसा ही वैक्रियिक काययोग तथा आहारक काययोगमें है। काययोग-में–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक–तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल असंख्यात पुद्गलपरावर्तन है। तिर्यञ्चगतित्रिकका ओघवत् है। शेष सातादि प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। औदारिक काययोगियों-में– ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक–तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम २२ हजार वर्ष है।

विशेषार्थ–एक तिर्यञ्च, मनुष्य या देव २२ हजार वर्षकी आयुवाले एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और जघन्य अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् उसने पर्याप्तियोंको पूर्ण किया। इससे अपर्याप्त दशामें औदारिकमिश्रके कालको घटाकर औदारिक काययोगका काल कुछ कम २२ हजार वर्ष रहा। अथवा देवका यहाँ एकेन्द्रियोंमें उत्पाद नहीं कहना चाहिए, कारण, उसके जघन्य अपर्याप्त काल नहीं होगा। (ध० टी०,का०,पृ० ४११)

तिर्यञ्चगति-त्रिकका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे तीन हजार वर्षसे कुछ कम है। शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है।

औदारिकमिश्रकाययोगमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक–तैजस–कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तराय-का जघन्य बन्धकाल तीन समय कम क्षुद्रभव प्रमाण है, उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है।

खुद्दा० तिसमऊ० उक्क० अंतो० । दो आयु ओघं । देवगदि०४ तित्थय० जहण्णु० अंतो० । सेसाणं सादासादादीणं जह० एय० उक्क० अंतो० । वेउव्वियमिस्स०-पंचणा०णवदंस०मिच्छत्त०सोलसक०भयदुगुं०ओरालियतेजाक० वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय०-णिमि०-तित्थय०पंचंत० जहण्णु० अंतो० । सेसाणं सादादीणं जह० एग० उक्क० अंतो० । आहारमिस्स०-पंचणा०छदंसण०-चदुसंजल०-पुरिस०-भयदु० देवगदि० पंचिं० वेउव्विय-तेजाक० समचदु० वेउव्विय-अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगु०४ पसत्थ०-तस०४-सुभग-सुस्स०-आदेज्ज-णिमिणं तित्थयं० (य०) उच्चागो० पंचंत० जहण्णु० अंतो० । णवरि तित्थय० जह० एग० उक्क० अंतो० ।

विशेषार्थ-एकेन्द्रिय जीव अधोलोकके अन्तमें तीन मोड़े करके क्षुद्रभव-प्रमाण आयुवाला सूक्ष्म वायुकायिक जीव हुआ। वहाँ ३ समय कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक लब्ध्य-पर्याप्तक हो जीवित रहकर मरा। पुनः विग्रह करके कार्मणकाययोगी हुआ। इस प्रकार तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण काल सिद्ध हुआ। उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण इस प्रकार जानना चाहिए कि कोई जीव लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर संख्यात भवग्रहण प्रमाण उनमें परावर्तन करके पुनः पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर औदारिककाययोगी बन गया। इन सब संख्यातभवोंका काल मिलकर भी अन्तर्मुहूर्तके अन्तर्गत ही रहता है। (ध० टी०,का० पृ० ४१६)

दो आयुमें ओघवत् जानना चाहिए। देवगति ४ और तीर्थंकरका जघन्य तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय तथा उत्कृष्ट बन्धकाल उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। वैक्रियिकमिश्र काययोगमें—५ ज्ञाना-वरण, ९ दर्शनावरण. मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थंकर तथा पाँच अन्तरायका जघन्य तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ-एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिमग्रैवेयकमें दो विग्रह करके उत्पन्न हो सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तमें पर्याप्तक हुआ अथवा एक भावलिंगी मुनि दो विग्रह करके सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुआ और सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तमें पर्याप्त हुआ। इस प्रकार वैक्रियिकमिश्र काययोगमें जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट बन्धकाल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण इस प्रकार है कि कोई मिथ्यात्वी जीव सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ और सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालके अनन्तर पर्याप्त हुआ। इसी प्रकार एक नरक-बद्धायुष्क जीव सम्यक्त्वी हो दर्शनमोहका क्षपण करके मरण कर सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्त कालमें पर्याप्तियोंकी पूर्णताको करता है। यहाँ दोनोंमें जघन्य कालसे दोनोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। (ध० टी०,का०,पृ० ४२८-४२६)

शेष साता आदि प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

आहारकमिश्र काययोगमें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक. तैजस- कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य तथा उत्कृष्ट

सेसाणं सादादीणं जह० एग० उक्क० अंतो० । कम्मइगका०-देवगदि०४ तित्थय० जह० एग०, उक्क० वेसम० । सेसाणं सव्वपगदीणं जह० एग० उक्क० तिण्णिसम० ।

२२. इत्थिवेद०-पंचणा०णवदंस०मिच्छत्तं० सोलसक० भयदुगुं० तेनाक० (तेजाक०) वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतरा० जह० एग०, उक्क० पलिदोपमसदपुधत्तं । णवरि मिच्छ० जह० अंतो० । सादासादा० छण्णंक० (छण्णोक०) दोगदि-चदुजादि-आहारदुगं पंचसंठाण-पंचसंघ दो-आणु० आदा-वुज्जो०-अप्पसत्थ० थावर०४ थिरादिदोयुग० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज० जस० अजस० णीचागो० जह० एग०, उक्क० अंतो० । पुरिस० मणुसगदि० पंचिंदि० समचदु० ओरालिय० अंगो० वज्जरिस० मणुसाणु-पसत्थ० तस-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० उच्चा०

बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है । विशेष यह है कि तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है । शेष सातादि प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । कार्मणकाययोगमे – देवगति ४, तीर्थंकरका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट दो समय प्रमाण बन्धकाल है । शेष सर्व प्रकृतियोंका जघन्य एक समय उत्कृष्ट तीन समय है ।

विशेषार्थ – सासादन या असंयतसम्यक्त्वी कार्मणकाययोगियोंका सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेका अभाव है । वृद्धि और हानिके क्रमसे विद्यमान लोकान्तमें भी इनकी उत्पत्ति नहीं होती । इससे उत्कृष्ट दो समय कहा है ।

तीन समय प्रमाण बन्धकाल इस प्रकार है--एक सूक्ष्म एकेन्द्रियजीव अधस्तन सूक्ष्म वायुकायिकोंमें तीन विग्रहवाले मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे छिन्नायुष्क होकर उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लगाकर तीन विग्रहोंमे तीन समय तक कार्मण-काययोगी रहकर तथा चौथे समयमें औदारिकमिश्र काययोगी हो गया । तीन विग्रह करनेकी दशा इस प्रकार है । ब्रह्मलोकवर्ती प्रदेशपर वाम दिशासम्बन्धी लोकके पर्यन्त भागसे तिरछे दक्षिणकी ओर तीन राजू प्रमाण जा, पुनः १०½ राजू नीचेकी ओर इषुगतिसे जाकर, पश्चात् सामनेकी ओर चार राजू प्रमाण जाकर कोणयुक्त दिशामें स्थित लोकके अन्तवर्ती सूक्ष्मवायुकायिकोंमें उत्पन्न होनेवालेके ३ विग्रह होते है । (ध० टी०,का० ४३४-४३५)

२२ स्त्रीवेदमें--५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट पल्योपम शतपृथक्त्व है । विशेष यह है कि मिथ्यात्वका बन्धकाल जघन्यसे अन्तमुहूर्त है । साता असाता वेदनीय, ६ नोकषाय, दो गति, ४ जाति, आहारकद्विक, पंच संस्थान, ५ संहनन, दो आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर४, स्थिरादि दोयुगल, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, नीचगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त है । पुरुषवेद, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक अंगोपाग, वज्रवृषभसंहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, सुभग,

---

१ "आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसजदा केवचिर कालादो होंति ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।"–षट्_खं०,काल०,२१३–१६ ।

जह० एग० । उक्क० पणवण्णं पलिदोवमं देसू० । चदुआयु ओघं । देवगदि०४ जह० एग० । उक्क० तिण्णिपलिदोप० देसू० । ओरालिय० परघादुस्सास० बादर-पज्जत्त-पत्तेय० जह० एग० । उक्क० पणवण्णं पलिदो० सादिरे० । तित्थय० जह० एग० । उक्क० पुव्वकोडिदेसू० । पुरिसवे०-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगुं० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतरा० जह० अंतो० । उक्क० सागरोपमसदपुध० । पुरिसवेद ओघं । मणुसगदिपंचगं जह० एग० । उक्क० तेत्तीसं सा० । देवगदि०४ जह० एग० । उक्क० तिण्णि पलिदोप० सादिरे० । पंचिंदिय-परघादुस्सा० तस०४ जह० एग० । उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं०(द०) । समचदु०पसत्थवि०-सुभग-सुस्सर० आदेज्ज० उच्चा० जह० एग० । उक्क० बेछावट्ठिसाग० सादि० तिण्णि

सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट देशोन ५५ पल्योपम प्रमाण है।

विशेषार्थ – एक जीव ५५ पल्य स्थितिवाली देवी रूपसे उत्पन्न हुआ। उसने छह पर्याप्ति पूर्ण की, अन्तर्मुहूर्त विश्राम किया, पश्चात् अन्तर्मुहूर्तमें विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त किया। पश्चात् जीवन पूर्ण करके मरण किया। अतः उसके तीन अन्तर्मुहूर्त कम ५५ पल्योपम प्रमाणकाल सम्यक्त्वयुक्त स्त्री-वेदका है, उसमे पुरुषवेदादिका बन्ध करनेके कारण उनका बन्धकाल देशोन ५५ पल्योपम कहा है।

चार आयुका ओघवत् जानना चाहिए। देवगति चतुष्कका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्योपम बन्धकाल है। औदारिक शरीर, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येकका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ५५ पल्योपम बन्धकाल है। तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है। पुरुषवेदमे–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण शरीर, वर्ण४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका बन्धकाल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे सागरोपम शत-पृथक्त्व है। पुरुषवेदका बन्धकाल ओघवत् है।

विशेष – इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि स्त्री और नपुंसकवेदी जीवोमे बहुत बार भ्रमण करता हुआ कोई एक जीव पुरुषवेदी हुआ, सागरोपम शत पृथक्त्वकाल पर्यन्त भ्रमण करके अविवक्षित वेदको प्राप्त हो गया। (ध० टी०,का० पृ० ४४१)

मनुष्यगतिपंचक अर्थात् मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, वज्रवृषभनाराच संहनन, औदारिक शरीर, औदारिक आंगोपांगका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ३३ सागर प्रमाण है। देवगति ४का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्योपम है। पंचेन्द्रिय, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट १६३ सागरोपम है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट बन्धकाल कुछ कम तीन पल्याधिक छयासठ सागरोपम जानना चाहिए।

---

१. "इत्थिवेदेसु असजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि । सासणसम्मादिट्ठी ओघं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ ।" षट् खं०,का०,५,७, २३०, २३४ ।

पलिदो० देसू०। सादादि ज० [एग० उक्क० अंतो०]। आयुगचदुक्ख(क्कं) इत्थिभंगो। तित्थयरं ओघं। णपुंसक०–पंचणा० णवदंसण० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगुं० ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतरा० जह० एग०, मिच्छत्तं खुद्दा०। उक्क० अणंतकालं-असंखे०। पुरिस० मणुस० समचदु० वज्जरिसभसंघ० मणुसाणु० पसत्थ० सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० जह० एग०। उक्क० तेत्तीसं सा० देसू०। तिरिक्खगदितिगं ओघं०। देवगदि०४ जह० एग० उक्क० पुव्वकोडिदेसू०। पंचिंदिय० ओरालिय अंगो० परघादुस्सा०-तस०४ जह० एग०। उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे०। सादादीणं जह० एग०। उक्क० अंतो०। तित्थय० जह० एग०। उक्क० तिण्णि सागरो० सादिरे०। अवगद०–पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पु० जस० उच्चागो० पंचंत० जह० एग०। उक्क० अंतो०। सादावे० ओघं। सुहुमसंप०–पंचणा०

सातादिकका जघन्यसे [एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है] आयुचतुष्कका स्त्रीवेदके समान भंग है। तीर्थंकरका ओघवत् है। नपुंसक वेदमें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा पाँच अन्तरायोंका बन्धकाल जघन्यसे एक समय है, किन्तु मिथ्यात्वका क्षुद्रभव प्रमाण है। इनका उत्कृष्ट बन्धकाल असंख्यात पुद्गल परावर्तन है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेयका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट बन्धकाल कुछ कम तेतीस सागर प्रमाण है।

विशेषार्थ– मोहनीयकी २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव मरण कर सप्तम पृथ्वीमें उत्पन्न हुआ। छह पर्याप्तियोंको पूर्ण कर तथा विश्राम ले, विशुद्ध होकर, सम्यक्त्वको प्राप्त किया, एवं आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर मिथ्यात्वको प्राप्त कर आगामी भवकी आयुका बन्ध किया। अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके मरण किया। उसके छह अन्तर्मुहूर्त कम ३३ सागरप्रमाण बन्धकाल होगा। (ध० टी०,काल०,४४३) तिर्यंचगतित्रिकका ओघके समान भंग है। देवगति ४ का जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट बन्धकाल कुछ कम पूर्व कोटि है। पंचेन्द्रिय, औदारिक आंगोपांग, परघात, उच्छ्वास, त्रस ४ का जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है। साता आदिक प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन सागर है। अपगत वेदमें–५ ज्ञानावरण, पंच निद्राओंका अभाव होनेसे शेष चार दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। साता वेदनीयका ओघवत् है। सूक्ष्मसाम्पराय संयममें–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, यश कीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है।

विशेषार्थ – उपशम श्रेणीकी अपेक्षा यह बन्धका काल कहा गया है। क्षपककी अपेक्षा

१. णवुंसयवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होंति? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।"–षट् खं०,का०,२४०–४२।

चदुदंस० सादा० जस० उच्चा० पंचंत० जह० एग० । उक्क० अंतो० । कोधादि०४–पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० जहण्णु० अंतो० । सेसाणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । णवरि माणे तिण्णि संज० । मायाए दोण्णि संज० । लोभे०–पंचणा० चदुदंस० लोभसंज० पंचंतरा० जहण्णु०–अंतो० । सेसाणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । अकसाई०–सादावे० ओघं । एवं यथाखादं । एवं चेव केवलणा० केवलदं० । णवरि जह० अंतो० ।

२३. मदि०-सुद०–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं सोलस० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० तिण्णि भंगो ओघं । तिरिक्खगदि-तिगं ओघं । मणुसग० मणुसाणुपु० जह० एग० । उक्क० एक्कतीसं० सादिरे० । देवगदि-वेउव्वियस० समचदु० वेउव्वि० अंगो० देवगदिपाओ० पसत्थ० सुभग-सुस्सर-

---

जघन्य और उत्कृष्ट दोनों अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है[1] ।

क्रोधादि चतुष्कमें–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अन्तरायका बन्धकाल जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है । विशेष यह है कि मानकषायमें तीन संज्वलन, माया कषायमे दो संज्वलनका बन्ध है । लोभकषायमें – ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, संज्वलन लोभ, ५ अन्तरायका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है । अकषायियोंमें--सातावेदनीयका ओघवत् बन्धकाल है । इसी प्रकार यथाख्यात संयममें जानना चाहिए । केवलज्ञान, केवलदर्शनमे भी ऐसा ही जानना चाहिए । इतना विशेष है कि यहाँ जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

२३. मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके तीन[2] भंग ओघवत् जानना चाहिए ।

विशेषार्थ-अभव्यसिद्धिक जीवकी अपेक्षा अनादि अपर्यवसित काल है । भव्यसिद्धिकके मिथ्यात्वका अनादि सपर्यवसित काल है । तीसरा भग सादि सान्तका है । इसी तीसरे भंगमें जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन प्रमाण बन्धकाल है । (ध० टी०,काल०,३२४-३२५)

तिर्यंचगति-त्रिकका ओघके समान है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वीका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३१ सागर प्रमाण बन्धकाल है । देवगति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, सुभग,

---

१ "चदुण्ह उवसमा केवचिरं कालादो होंति ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं, चदुण्ह खवगा एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।"–षट् खं०, काल०,२२-२८ ।

२ "एगजीवं पडुच्च अणादिओ सपज्जवसिदो, सादिओ सपज्जवसिदो । जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।"–षट् खं०,काल०, ३१०-३१३ ।

आदेज० उच्चा० जह० एग० । उक्क० तिण्णि पलिदो० देसू० । पंचिंदि० ओरालि० अंगो० परघादु० सा०(दुस्सा०) तस०४ जह० एग० । उक्क० तेत्तीसं सा० सादिरे० । ओरालियस्स० जह० एग० । उक्क० अणंतकालं असंखे० । आयु ओघं । सेसं जह० एग० । उ० अंतो० । एवं मिच्छादिट्ठि० अब्भवसिद्धि० एवं चेव । णवरि धुविगाणं अणादियो अपज्जवसिदो । विभंगे०–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं सोलसक० भयदुगुं० तिरिक्खगदि० पंचिंदि० ओरालिय-तेजाकम्म० ओरालिय० अंगो० वण्ण०४ तिरिक्खगदि-पाओ० अगु०४, तस०४ णिमिणं णीचा० पंचंत० जह० एग०, मिच्छत्तं० अंतो० । उक्क० तेत्तीसं सा० देसू० । मणुसग० मणुसाणु० जह० एग० । उक्क० एक्कत्तीसं देसू० । आयु ओघं । सेसाणं जह० एग० । उक्क० अंतो० । आभि० सुद० ओधिणा०–पंचणा० छदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० पंचिंदिय० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्स० आदे० णिमि०

सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट देशोन तीन पल्य प्रमाण है। पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक अंगोपांग, परघात, उच्छ्वास तथा त्रस ४ का जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। औदारिक शरीरका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल असंख्यात पुद्गलपरावर्तन है। आयुका ओघवत् है। शेषका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टिमे भी जानना चाहिए। अभव्यसिद्धिकोंमे भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है, कि अभव्योंमे ध्रुव प्रकृतियोंका बन्धकाल अनादि अपर्यवसित अर्थात् अनन्त काल है। विभंगावधिमें— ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यंचगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, नीचगोत्र और ५ अन्तरायोका जघन्य बन्धकाल एक समय है, किन्तु मिथ्यात्वका जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट बन्धकाल देशोन ३३ सागर है।

विशेषार्थ– एक मिथ्यात्वी सातवीं पृथ्वीमे उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्तमे पर्याप्तियोंको पूर्ण कर विभंगज्ञानी हुआ। आयुके ३३ सागर पूर्णकर मरण करके निकला, तब उसका विभंग ज्ञान नष्ट हो गया, कारण अपर्याप्त कालमे विभंग ज्ञानका विरोध है। इस प्रकार उत्कृष्ट बन्धकाल देशोन ३३ सागर प्रमाण है। (ध० टी०, काल०, पृ० ४५०)

मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वीका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन इकतीस सागर बन्धकाल है।

विशेषार्थ– एक द्रव्यलिंगी साधु मरण कर ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुआ। ३१ सागरकी आयु प्राप्त की। यहाँ अंतर्मुहूर्तमें पर्याप्त हो विभंगावधिको प्राप्त करके शेष ३१ सागर प्रमाण काल व्यतीत करके मरा। उसके अंतर्मुहूर्त कम ३१ सागर प्रमाण मनुष्यद्विकका बंधकाल होगा।

आयुका ओघके समान बंधकाल है। शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बंधकाल है।

आभिनिबोधिक श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानमे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५

उच्चा० पंचंत० जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठि० सागरोप० सादिरे० । सादासा० हस्स-रदि० अरदि० सो० आहारदुगं थिरादितिण्णियु० जह० एग० उक्क० अंतो० । अप्पच्च-क्खाणावर०४ तित्थयरं जह० अंतो० । उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । अपच्चक्खाणा० (पच्चक्खाणा०) ४ जह० अंतो० । उक्क० बादालीसं सा० सादि० । अथवा तेत्तीसं सा० सादिरे० परिज्ञदि । दो-आयु ओघं । मणुसगदि-पंचगं जह० अंतो० । उक्क० तेत्तीसं सा० । देवगदि०४ जह० एग० । उक्क० तिण्णि-पलिदो० सादि० । एवं ओधिदं० । एवं चेव सम्मादिट्ठि० । णवरि सादं ओघं । मणपज्जव०–पंचणा० छदंसण० चदुसंज० पुरिस० भयदु० देवगदि० पंचिंदि० वेउ० तेजाक० समचदु० वेउव्वि० अंगोवं० वण्ण०४ देवगदि-पाओ० अगु०४ पसत्थ० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० णिमि० तित्थ-यरं उच्चा० पंचंत० जह० एग० । उक्क० पुव्वकोडिदेसू० । सादासा० चदुणो० आहार-दुगं० थिरादि-तिण्णि-युग० जह० एग० । उक्क० अंतो० । देवायु ओघं ।

२४. एवं संजदासामाइ० छेदो० । णवरि संजदे सादं ओघं । परिहार-संजदा-

---

अन्तरायका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ६६ सागर प्रमाण है। साता. असाता वेदनीय, हास्य-रति, अरति-शोक, आहारकद्विक और स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है। अप्रत्याख्यानावरण ४, तीर्थंकरका जघन्य अन्त-र्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। प्रत्याख्यानावरण ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ४२ सागर प्रमाण है। अथवा कुछ अधिक तेतीस सागर बन्धकाल जानना चाहिए। दो आयुका ओघके समान है। मनुष्यगति-पंचकका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ३३ सागर है। देवगति ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य बन्धकाल है। अवधि-दर्शनमें इसी प्रकार जानना चाहिए। सम्यग्दृष्टियोमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि साता वेदनीयका ओघके समान भंग जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानमें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक-तैजस-कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, देवगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और ५ अन्तरायका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि बन्ध-काल है।

विशेषार्थ – एक कोटि पूर्वकी आयुवाले किसी मनुष्यने गर्भकालसे लेकर आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काल व्यतीत करके सकल संयमी बन मनःपर्ययज्ञानको उत्पन्न किया। जीवन भर मनःपर्ययसंयुक्त रहा, किन्तु मरणके अन्तर्मुहूर्त रहनेपर नीचेके गुणस्थानमें आकर मरण किया, इस प्रकार देशोनपूर्व कोटि काल है।

साता-असाता वेदनीय, ४ नोकषाय, आहारकद्विक, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है। देवायुका ओघके समान है।

२४. इस प्रकार संयत तथा सामायिक छेदोपस्थापना संयतमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि संयम मार्गणामें साता वेदनीयका ओघवत् जानना चाहिए।

परिहारविशुद्धिसंयतों तथा संयतासंयतोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

संजदाणं एवं चेव। णवरि धुविगाणं जह० अंतो०, असंजदे धुविगाणं मदिभंगो। पुरिस० पंचिंदि० समचदु० ओरालिय० अंगो० परघादुस्सा० पसत्थ० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे० उच्चा० जह० एग०। उक्क० तेत्तीसं सादिरे०। तिरिक्खगदि-तिगं मणुसग० वज्जरिस० मणुसाणु० देवगदि०४ आयु० तित्थयरं च ओघं। सेसाणं जह० एग०। उक्क० अंतो०। चक्खुदंस० तस-पज्जत्तभंगो। णवरि सादा० जह० एग०। उक्क० अंतो०। अचक्खुदं ओघं। णवरि साद० चक्खुदं० भंगो०।

२५. किण्ण० णील० काउ०--पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु०

परिहारविशुद्धि संयमके विषयमें 'खुद्दाबंध' में लिखा है, संजमाणुवादेण संजदा परिहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पुव्वकोडिदेसूणा (१४७, १४८, १४६ सूत्र)।

संयम मार्गणाके अनुसार संयत, परिहार शुद्धि संयत तथा संयतासंयत कितने काल-तक रहते है? कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त अन्तर है। उत्कृष्टसे कुछ कम पूर्व कोटि है। धवला टीकामें लिखा है- "गर्भसे लेकर आठ वर्षोंसे संयमको प्राप्त कर और कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक संयमका पालन कर व मरकर देवोंमे उत्पन्न हुए मनुष्यके कुछ कम पूर्व-कोटि मात्र संयमकाल पाया जाता है। इसी प्रकार परिहारशुद्धिसयतका भी उत्कृष्ट काल कहना चाहिए। विशेष इतना है कि सर्वसुखी होकर तीस वर्षोंको बिताकर पश्चात् वर्ष पृथक्त्वसे तीर्थंकरके पादमूलमे प्रत्याख्यान नामक पूर्वको पढकर पुनः तत्पश्चात् परिहार-शुद्धि संयमको प्राप्त कर और कुछ कम पूर्व कोटि वर्ष तक रहकर देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके उपर्युक्त काल प्रमाण कहना चाहिए। इस प्रकार अडतीस वर्षोंसे कम पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण परिहार शुद्धि संयमका काल कहा गया है। कोई आचार्य सोलह वर्षोंसे और कोई बाईस वर्षोंसे कम पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण कहते हैं। इसी प्रकार संयतासंयतका भी उत्कृष्ट काल जानना चाहिए। विशेष यह है कि अन्तर्मुहूर्त पृथक्त्वसे कम पूर्व कोटि वर्ष संयमासंयमका काल होता है। (क्षुद्रक बन्ध २, ७ पुस्तक, पृ० १६७)

खुद्दाबन्धका कथन – सामान्यतया संयम, परिहारविशुद्धि संयम, संयमासंयम, सामान्यकी अपेक्षा कहा गया है। महाबन्धका प्रतिपादन संयम, परिहारविशुद्धि संयम, संयमासंयममें बँधनेवाली कर्मप्रकृतियोंकी अपेक्षा किया गया है।

विशेष, ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है, किन्तु असंयतोंमें ध्रुव प्रकृतियोंका बन्धकाल मत्यज्ञानके समान है। पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक अगोपांग, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। तिर्यञ्चगति-त्रिक, मनुष्यगति, वज्रवृषभसंहनन, मनुष्यानुपूर्वी, देवगति, ४ आयु तथा तीर्थंकरका ओघके समान काल है। शेषका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। चक्षुदर्शनमें त्रस पर्याप्तकोंका भंग जानना चाहिए। विशेष यह है कि सातावेदनीयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बन्धकाल है। अचक्षुदर्शनमें ओघवत् है। यहाँ यह विशेष है कि साता वेदनीयका चक्षुदर्शन के समान भंग है।

२५. कृष्ण-नील-कापोत लेश्यामें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४ अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका

तेजाक॰ वण्ण॰४ अगु॰ उप॰ णिमि॰ पंचंत॰ जह॰ अंतो॰, उक्क॰ तेत्तीसं सत्तारस-सत्तसा॰ सादिरे॰। सादासा॰ छण्णोक॰ दोगदि॰ चदुजादि॰ वेउव्वि॰ पंचसं॰ वेउव्वि॰ अंगो॰ पंचसंघ॰ दो-आणु॰ आदाउज्जो॰ अपसत्थ॰ थावरादि॰४ थिरादि-दोण्णियुग॰ दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज॰ जह॰ एग॰। उक्क॰ अंतो॰। पुरिस॰ मणुस॰ समचदु॰ वज्जरिस॰ मणुसाणु॰ पसत्थवि॰ सुभग॰ सुस्स॰ आदेज्ज॰ उच्चा॰ जह॰ एग॰। उक्क॰ तेत्तीसं सत्तार [स] सत्त-साग॰ देसू॰। चदुआयु॰ जहण्णु॰ अंतो॰। तिरिक्खगदि–पंचिंदि॰ ओरालि॰ ओरालि॰ [अंगो॰] तिरिक्खाणुपु॰ परघादु॰ तस॰४ णीचा॰ जह॰ एग॰। उक्क॰ तेत्तीसं-सत्तारस-सत्तसागरो॰ सादिरे॰। णवरि

जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट बन्धकाल ३३ सागर है, १७ सागर है, सात सागर प्रमाण है।

विशेषार्थ – नीललेश्याधारी कोई जीव कृष्णलेश्यायुक्त हो, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण विश्राम कर मरण करके सातवीं पृथ्वीमें ३३ सागरप्रमाण कृष्णलेश्यासहित रहा। मरण कर अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त भावनावश वही लेश्या रही। इस कारण दो अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक ३३ सागरोपम कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल रहा। मिथ्यात्वादिका बन्धकाल भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकार पाँचवीं पृथ्वीमे उत्पत्तिकी अपेक्षा नीललेश्यामें साधिक १७ सागर तथा तीसरे नरककी अपेक्षा कापोत लेश्यामें साधिक सात सागर प्रमाण बन्धकाल कहा है। (ध॰ टी॰, काल॰, ४५७-४५८)

साता-असाता वेदनीय, ६ नोकषाय, दो गति, ४ जाति, वैक्रियिक शरीर, ५ संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, ५ संहनन, दो आनुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादिचतुष्क, स्थिरादि दो युगल, दुर्भग, दुस्वर, अनादेयका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल है। पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्रका बन्धकाल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे देशोन ३३ सागर, १७ सागर तथा ७ सागर है।

विशेषार्थ – कोई २८ मोहनीयकी सत्तायुक्त मिथ्यात्वी जीव तीसरी, पाँचवी तथा सातवीं पृथ्वीमे उत्पन्न हुआ। वहाँ पर्याप्ति पूर्ण करके दूसरे अन्तर्मुहूर्तमे विश्राम लिया। तथा तीसरेमे विशुद्ध होकर चौथे अन्तर्मुहूर्तमे वेदक सम्यक्त्व धारण किया और तीसरी तथा पाँचवीं पृथ्वीमे सात तथा १७ सागर प्रमाण क्रमशः पुरुषवेदादिका बन्ध किया, पश्चात् मरण किया। अतः सात तथा सत्रह सागरमें मिथ्यात्व दशाके तीन अन्तर्मुहूर्त कम होते हैं। सातवीं पृथ्वीमे ६ अन्तर्मुहूर्त कम होते हैं। कारण वहाँसे मिथ्यात्वके बिना निर्गमन नहीं होता है। मरणके एक अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ। दूसरे अन्तर्मुहूर्तमें आयुबन्ध किया, तीसरेमे विश्राम किया, बादमे निर्गमन किया। इस प्रकार पूर्वके तीन और पश्चात्के तीन इस प्रकार ६ अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर प्रमाण बन्धकाल है। (ध॰ टी॰, काल॰, ३५९, ३६२)

चार आयुका जघन्य तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। तिर्यंचगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, औदारिक [अंगोपांग], तिर्यंचानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, त्रस ४ तथा नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है, १७ सागर तथा ७ सागर

तिरिक्खगदि-तिगं णील० काउ० साद० भंगो। किण्ण० णील० तित्थय० जहण्णु० अंतो०। काउ० जह० अंतो०। उक्क० तिण्णि साग० सादिरे०। तेउ०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० पुरिसवे० भयदुगु० मणुसगदि० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० ओरालि० अंगो० वज्जरिस० वण्ण०४ मणुसाणु० अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सरादेज्ज० णिमि० तित्थयं० उच्चा० पंचंतरा० जह० अंतो०। थीणगिद्धितिगं० अणंताणुवं०४ एय०। उक्क० वेसागरोप० सादिरे०। णवरि केसिंच० जह० एगस०। तिण्णि आयु० देवगदि०४ जहण्णु० अंतो०। ओरालिय० जह० दसवस्स-सहस्साणि देसू० अथवा पलिदोपमं सादि०। उक० वेसागरोप० सादिरे०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०। पम्माए-पंचणा० णवदं० मिच्छत्तं सोलसक० पुरिस० भयदुगुं० मणुसग० पंचिंदि० तेजाकम्म० समचदु० वज्जरिस० वण्ण०४ मणुसाणु० अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० उच्चागो० तित्थय० पंचंतरा० जह० अंतो०। थीणगिद्धि० अणंताणु०४ एग्स०। उक्क० अट्ठारस० सादि०।

बन्धकाल है। विशेष यह है कि तिर्यंचगतित्रिकका नील तथा कापोत लेश्यामें साता वेदनीयकी भाँति बन्धकाल समझना चाहिए। कृष्ण-नील लेश्यामें तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। कापोत लेश्यामे जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक तीन सागर है। तेजोलेश्यामें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्मण, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक अंगोपाग, वज्रवृषभनाराचसहनन, वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य एक समय, तथा पूर्वोक्त ज्ञानावरणादि सबका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक दो सागर है। विशेष यह है कि किन्हीं आचार्यों के मतसे उपरोक्त जघन्य रूपसे अन्तर्मुहूर्त बन्धकालवाली ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय प्रमाण है।

विशेषार्थ—एक मिथ्यात्वी कापोतलेश्याके कालक्षयसे तेजोलेश्यावाला हो गया। उसमें अन्तर्मुहूर्त प्रमाण रहकर मरा। सौधर्म कल्पमें पल्योपमके असंख्यातवे भागसे अधिक दो सागर प्रमाण जीवित रहकर च्युत हुआ। उसकी तेजोलेश्या नष्ट हो गयी। इस प्रकार पूर्वके अन्तर्मुहूर्तसे अधिक सौधर्म कल्पकी स्थिति प्रमाण कापोतलेश्या रही। इस दृष्टिको लक्ष्यमें रखकर मिथ्यात्वादिका उत्कृष्ट बन्धकाल कहा गया है। (ध० टी०, काल०, पृ० ४६३)

तीन आयु, देवगति४ का जघन्य तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बन्धकाल है। औदारिक शरीरका जघन्य बन्धकाल कुछ कम १० हजार वर्ष अथवा साधिक पल्य है। उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक दो सागर हैं। शेषका जघन्य बन्धकाल एक समय तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। पद्मलेश्यामें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य एक समय, तथा पूर्वोक्त ज्ञानावरणादि

णवरि केसिंच एगस० । ओरालिय० ओरालिय० अंगो० जहण्णे० वेसाग० सादिरे०। उक्क० अट्ठारस० सादिरे० । सेसं तेउभंगो । णवरि एइंदि० आदाव-थावरं णत्थि । सुक्काए – पंचणा०छदंसण०(णा०)बारसक०पुरिसवे०भयदु०तेजाकम्म०समचदु०-वण्ण०४ अगु० पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० णिमिणं तित्थयरं० उच्चा० पंचंतरा० जह० एग० । धुविगाणं अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादिरे० । थीणगिद्धितिगं अणंताणु०४ जह० एग०, मिच्छ० अंतो० । उक्क० एक्कत्तीसं सादि० । दो आयु० सादादीणं च ओघं । मणुसग० ओरालिय० ओरालिय० अंगो० मणुसाणुपु० जह० अट्ठारस० सादिरे० उक्क तेत्तीसं० । वज्जरिसभ० जह० एग० । उक्क० तेत्तीसं० । सेसाणं

सबका उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है। विशेष, उपरोक्त ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका जघन्यकाल किन्हीं आचार्योंके मतमें अन्तर्मुहूर्तकी जगह एक समय प्रमाण है।

विशेषार्थ – वर्धमान तेजोलेश्यावाला कोई एक मिथ्यात्वी जीव अपने कालके क्षीण होनेपर पद्मलेश्यावाला हो गया। उसमे अन्तर्मुहूर्त रहकर मरा और शतार-सहस्रारस्वर्गवासी देवोंमे जाकर पल्योपमके असंख्यातवे भागसे अधिक १८ सागर जीवित रहकर च्युत हुआ, तब पद्मलेश्या नष्ट हो गयी। उसकी अपेक्षा इस लेश्यामें ज्ञानावरणादिका उत्कृष्ट बन्धकाल कहा है।

औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांगका जघन्य साधिक दो सागर, उत्कृष्ट साधिक १८ सागर बन्धकाल है। शेष प्रकृतियोंका बन्धकाल तेजोलेश्याके समान जानना चाहिए। विशेष यह है कि पद्मलेश्यामें एकेन्द्रिय, आताप और स्थावरका बन्ध नहीं है।

शुक्ललेश्यामे-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तैजस कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण,-तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल एक समय है। किन्तु ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। इन सबका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक ३३ सागर है।

विशेषार्थ – एक मनुष्य शुक्ललेश्यासहित अन्तर्मुहूर्त रहकर मरा और सर्वार्थसिद्धिमें ३३ सागर पर्यन्त शुक्ललेश्यायुक्त रहा। पश्चात् मरण किया। इस प्रकार शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर प्रमाण रहा। (ध० टी०,काल०,३४७, ४७३)

स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य बन्धकाल एक समय, मिथ्यात्वका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, तथा इनका उत्कृष्ट बन्धकाल साधिक ३१ सागर है।

विशेषार्थ – एक द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि साधु मरणके समीपमें अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त शुक्ल-लेश्या धारण कर मरा और द्रव्यसंयमके प्रभावसे उपरिम ग्रैवेयकमें शुक्ललेश्यायुक्त ३१ सागरकी आयुवाला अहमिन्द्र हुआ और अपनी स्थिति पूर्ण होनेपर उसी क्षण शुक्ललेश्या-रहित होकर च्युत हुआ। उसके प्रथम अन्तर्मुहूर्त अधिक ३१ सागर प्रमाण बन्धकाल होगा। (ध० टी०,काल०,पृ० ४७२)

दो आयु तथा साता आदिक प्रकृतियोंका बन्धकाल ओघके समान है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यानुपूर्वीका जघन्य बन्धकाल साधिक १८ सागर तथा उत्कृष्ट ३३ सागर है।

जह० एग०, उक्क० अंतो० । भवसिद्धिया ओघं । णवरि अणादिओ अपज्जवसिदो णत्थि ।

२६. खइगं–आभिणि०भंगो । णवरि धुविगाणं जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादिरे० । मणुसगदि-पंचगं जह० चदुरासीदि-वस्स-सहस्साणि, उक्क० तेत्तीसं सा० । सादावे० दो आयु० देवगदि०४ ओघं । वेदगसं०–धुविगाणं जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसागरो० । मणुसगदिपंचग जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० । देवगदि०४ जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि-पलिदोप० देसू० । सेसं ओधिभंगो । उवसम०–पंचणा० छदंस० बारसक० पुरिस० भयदुगुं० मणुसगदिपंचगं पंचिदिय० तेजाकम्म० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज णिमिणं तित्थयरं उच्चागो० पंचंत० जहण्णु० अंतो० । सेसाणं पगदी० जह० एग०, उक्क० अंतो० ।

वज्रवृषभसंहननका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ३३ सागर बन्धकाल है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। भव्यसिद्धिकोंमे – ओघके समान है। विशेष, यहाँ अनादि अनन्त रूप भंग नहीं है।

२६ क्षायिकसम्यक्त्वमें – आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भंग है। विशेष ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है[1]। मनुष्यगति ५ का जघन्य बन्धकाल ८४ हजार वर्ष और उत्कृष्ट ३३ सागर है। सातावेदनीय, २ आयु, देवगति ४ का ओघके समान है। वेदकसम्यक्त्वमे ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ६६ सागर है।

विशेष – वेदकसम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागर प्रमाण है। इससे ध्रुव प्रकृतियोंका बन्धकाल भी उतना ही कहा है।

मनुष्यगति ५ का जघन्य बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट ३३ सागर है। देवगति ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य है। शेष प्रकृतियोंका अवधिज्ञानके समान बन्धकाल है। उपशमसम्यक्त्वमे – ५ ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिकके बिना ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति ५, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर तथा उच्चगोत्र एवं ५ अन्तरायोंका जघन्य और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है[2]। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

---

१ "असजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? एगजीव पडुच्च -जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि । खइयसम्मादिट्ठीसु असजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघ ।"–षट् खं०,काल०,१४, १५, ३१७।

२ "उवसमसम्मादिट्ठीसु असजदसम्मादिट्ठी सजदासजदा केवचिर कालादो होति ? एकजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्त। पमत्तसजदप्पहुडि जाव उवसतकसायवीदरागछदुमत्थात्ति केवचिर कालादो होति ? एकजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्त।" –षट् खं०,काल०, ३१९–२४।

सासणे-पंचणा०णवदंसण०(णा०)सोलसक० भयदु० तिण्णिगदि० पंचिंदि० चदुसरी० समचदु० दो-अंगो० वण्ण०४ तिण्णि-आणुपुव्वि० अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमिणं णीचुच्चागो० पंचंतरा० जह० एग०, उक्क० छावलियाओ। तिण्णि-आयु० ओघं। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०। सम्मामि०-सादासादा० चदुणोक० थिरादि-तिण्णि युग० जह० एग०, उक्क० अंतो०। सेसाणं जहण्णु० अंतो०।

२७. सण्णि० – धुविगाणं जह० खुद्दाभ०, उक्क० सागरोपमसदपु०। सेसं पंचिंदिय-

---

विशेषार्थ – असंयतसम्यक्त्वी अथवा देशसंयमीकी अपेक्षा उपशमसम्यक्त्वका जघन्य और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। प्रमत्तसंयतसे लेकर उपशान्तकषाय वीतरागछद्मस्थ पर्यन्त एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। (ध० टी०,काल० ४८२-४८४)

सासादनसम्यक्त्वमें – ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तीन गति (नरकगतिरहित), पंचेन्द्रिय जाति, ४ शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो अंगोपांग, वर्ण ४, तीन आनुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, नीच उच्च-गोत्र तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल एक समय और उत्कृष्ट ६ आवली प्रमाण है।

विशेषार्थ–कोई उपशमसम्यक्त्वी उपशमसम्यक्त्वका एक समय शेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ, उसकी अपेक्षा सासादनका जघन्य काल एक समय प्रमाण है। कोई उपशमसम्यक्त्वी उपशमसम्यक्त्वका छह आवली प्रमाणकाल शेष रहनेपर सासादनमें आ गया। वहाँ छह आवली प्रमाण काल व्यतीत कर मिथ्यात्वमें पहुँचा। इस प्रकार जघन्य बन्धकाल एक समय और उत्कृष्ट छह आवली कहा है।

तीन आयुका ओघके समान काल है। विशेष – यहाँ नरकायुका बन्ध नहीं होता है।

शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्मिथ्यादृष्टिमे – साता, असाता वेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त बन्धकाल है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य तथा उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

विशेषार्थ – कोई मिथ्यात्वी विशुद्ध परिणामयुक्त हो मिश्र गुणस्थानमें सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त रहकर चतुर्थ गुणस्थानमे चला गया, अथवा कोई वेदकसम्यक्त्वी संक्लेशवश मिश्र गुणस्थानी हुआ, वहाँ सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत कर पुनः संक्लेशवश मिथ्यात्वी हुआ। इसी प्रकार कोई मिथ्यात्वी विशुद्ध परिणाम-युक्त हो उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण मिश्र गुणस्थानी रहा, बादमें मिथ्यात्वी हो गया अथवा कोई वेदकसम्यक्त्वी संक्लेशवश मिश्र गुणस्थानमें उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण काल व्यतीत करके पुनः अविरतसम्यक्त्वी हो गया। इनकी अपेक्षा मिश्र गुणस्थानका जघन्य, उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

संज्ञीमें –[२] ध्रुव प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभवग्रहण-प्रमाण है, उत्कृष्ट शत-

---

१ "एकजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ उक्कस्सेण छआवलियाओ।" –षट् खं०,काल०,७, ८।

२ "एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्त।" –षट् खं०,काल०, ३३०-३२।

पज्जत्तभंगो। णवरि सादि ओधिभंगो। असण्णीसु-पंचणा० णवदं० मिच्छ० सोलसक० भयदुगु० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगुरु० णिमिणं पंचंतरा० जह० खुद्दा०। उक्क० अणंतकालं, असंखे०। चदु-आयु० तिरिक्खगदि-तिगं ओरालि० ओघं। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०।

२८. आहारगे०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलक० भयदु० तिरिक्खगदि-ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ तिरिक्खगदिपाओ० अगुरु० उप० णिमिणं णीचा० पंचंत० जह० एग०। मिच्छत्तस्स खुद्दाभ० तिसमऊ०। उक्क० अंगुलस्स [असंखेज्जदि-भागो] असंखेज्जाओ ओस[प्पिणि-उस्सप्पिणीओ]। तित्थय० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सादि०। सेसा ओघं। अणाहार० कम्मइग-भंगो। एवं कालं समत्तं।

पृथक्त्व सागर है। शेष प्रकृतियोंका पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके समान भंग है। विशेष यह है कि साता वेदनीयमें अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए। असंज्ञीमें - ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, निर्माण, तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य बन्धकाल क्षुद्रभवग्रहण, उत्कृष्ट अनन्तकाल असंख्यात पुद्गलपरावर्तन है[1]। चार आयु, तिर्यंचगति-त्रिक, औदारिक शरीरका बन्धकाल ओघवत् जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

२८. आहारकोंमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यंचगति, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, तिर्यंचगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र, ५ अन्तरायोंका बन्धकाल जघन्य एक समय है। मिथ्यात्वका तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है। इनका उत्कृष्ट काल अंगुलका [असंख्यातवाँ भाग] असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण है[2]। तीर्थंकर प्रकृतिका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। शेष प्रकृतियोंका ओघवत् जानना चाहिए। [3]अनाहारकोंमें - कार्मण काययोगके समान जानना चाहिए।

इस प्रकार (एक जीवकी अपेक्षा) बन्धकालका वर्णन समाप्त हुआ।

---

१ "एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।" -षट् खं०, काल०, २३५-३६।

२ "आहाराणुवादेण - एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि उस्सप्पिणी।" -षट् खं०, का०, २३८-३९।

३. "अणाहारेसु कम्मइयकायजोगिभंगो।" -षट् खं०, का०, २४१।

[अंतराणुगमपरूवणा]

२९. अंतराणुग० दुवि० ओघे० आदे० । ओघे–पंचणा०-छदंसणा०-सादासा०-चदुसंज०-पुरिस० हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुं०-पंचिंदि०-तेजाकम्म०-समचदु०-

[अन्तरानुगम]

२९. अन्तरानुगममें यहाँ (एक जीवकी अपेक्षा) ओघ और आदेशसे दो प्रकारका निर्देश करते हैं।

विशेषार्थ – छक्खंडागम सुत्तके खुद्दाबन्ध (क्षुद्रकबन्ध) नामक दूसरे खण्डमें निम्नलिखित एकादश अनुयोगद्वार कहे हैं : "एकजीवेण सामित्तं, एकजीवेण कालो, एगजीवेण अंतरं, णाणाजीवेहि भंगविचओ, दव्वपरूवणाणुगमो, खेत्ताणुगमो, फोसणाणुगमो, णाणाजीवेहि कालो, णाणाजीवेहि अंतरं, भागाभागाणुगमो, अप्पाबहुगाणुगमो चेदि" २ (पृष्ठ २५) – एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल एक जीवकी अपेक्षा अन्तर, नानाजीवोंकी अपेक्षा भगविचय, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, नानाजीवोंकी अपेक्षा काल, नानाजीवोंकी अपेक्षा अन्तर, भागाभागानुगम और अल्पबहुत्व ।

महाबन्धके पयडिबन्धाहियारमें उक्त अनुयोगद्वारोंके सिवाय सण्णियास परूवणा (सन्निकर्ष प्ररूपणा) तथा भावानुगमका भी निरूपण किया गया है ।

शंका – काल प्ररूपणाके पश्चात् अन्तर प्ररूपणाका कथन क्यों किया गया ?

समाधान – 'कालपरूवणाए विणा अन्तर-परूवणाणुववत्तीदो' – कालकी प्ररूपणाके बिना अन्तर प्ररूपणाकी उपपत्ति नहीं बैठती । इस काल प्ररूपणाके पश्चात् अन्तर प्ररूपणा ही कहा जाना चाहिए, कारण एक जीवसे सम्बन्ध रखनेवाला अन्य अनुयोगद्वार नहीं है । वीरसेन स्वामीने कहा है "पुणो अंतरमेव वत्तव्वं, एगजीव संबंधिणो अण्णस्स अणिओगद्दारस्साभावा" (धवलाटीका क्षुद्रकबन्ध पृष्ठ २६)।

'अन्तर' शब्दके अनेक अर्थ हैं–उनमें-से यहाँ छिद्र, मध्य अथवा विरह रूप अर्थ लेना चाहिए। आचार्य अकलंकदेवने लिखा है "अन्तरशब्दस्यानेकार्थवृत्तेश्छिद्र-मध्य-विरहेष्वन्यतमग्रहण" (रा० वा०,पृ० ३०)[1]

ओघसे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असाता वेदनीय, ४ सञ्ज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति. अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्मण , समचतुरस्र-

---

१. बहुष्वर्थेषु दृष्टः प्रयोग , क्वचिच्छिद्रे वर्तते, 'सान्तरं काष्ठं सच्छिद्रमिति' । क्वचिदन्यत्वे 'द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्त' इति, क्वचिन्मध्ये हिमवत्सागरान्तर इति । क्वचित्सामीप्ये "स्फटिकस्य शुक्लरक्ताद्यन्तरस्थस्य तद्वर्णतेति शुक्लरक्तसमीपस्थस्येति गम्यते । क्वचिद्विशेषे" ।

वारि-वाजि-लोहाना काष्ठपाषाणवाससाम् ।
नारी-पुरुष-तोयानामन्तरं महदन्तरम् ॥ इति

महान् विशेष इत्यर्थ । क्वचिद्बहिर्योगे "ग्रामस्यान्तरे कूपा , इति, क्वचिदुपसंव्याने 'अन्तरे शाटका' इति, क्वचिद्विरहेऽभिप्रेतश्रोतृजनान्तरे मन्त्रं मन्त्रयते, तद्विरहे मन्त्रयते इत्यर्थ । तत्रेह छिद्र-मध्य-विरहेष्वन्यतमो वेदितव्य " त० रा०,पृ० ३० । अन्तरमुच्छेदो विरहो परिणामतरगमणं णत्थित्तगमण अण्णभावव्ववहाणमिदि एयट्ठो । एदस्स अंतरस्स अणुगमो अंतराणुगमो ॥ (खुद्दाबन्ध,पृ० ३, सूत्र १ टीका)

वण्ण०४ अगु०४ पसत्थ०-तस०४ थिरादि-दोण्णि-यु०-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणं-तित्थयरं-पंचंतरा० बंधंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जह० एग०, उक्क० अंतो०। णवरि णिद्दा-पचला जहण्णु० अंतो०। थीणगिद्धितिगं मिच्छत्तं अणंताणु०४ जह० अंतो०। उक्क० बेछावट्ठिसा० देसू०। अट्ठक० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू०।

संस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि २ युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायके बन्धका अन्तर कितने काल पर्यन्त होता है ? जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। विशेष यह है कि निद्रा और प्रचलाका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चारका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम दो छयासठ सागर है।

विशेषार्थ – कोई एक तिर्यंच या मनुष्य चौदह सागर स्थितिवाले लान्तव, कापिष्ठ देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ एक सागरोपम काल बिताकर द्वितीय सागरोपमके आरम्भमे सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, तथा तेरह सागर काल सम्यक्त्व सहित व्यतीत कर मरा और मनुष्य हुआ। वहाँ संयम अथवा संयमासंयमका पालन कर इस मनुष्यभव सम्बन्धी आयुसे कम बाईस सागरवाले आरण, अच्युत कल्पमे उत्पन्न हुआ। वहाँसे मरकर पुनः मनुष्य हुआ। संयमको पालन कर उपरिम ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुआ और मनुष्य आयुसे न्यून इकतीस सागरकी आयु प्राप्त की।

वहाँ अन्तर्मुहूर्त कम छयासठ सागर कालके चरम समयमें मिश्र गुणस्थानवाला हुआ। अन्तर्मुहूर्त विश्राम कर पुनः सम्यक्त्वी हुआ। विश्राम ले, चयकर मनुष्य हुआ। संयम या संयमासंयमको पालन कर इस मनुष्य भवकी आयुसे न्यून बीस सागरकी आयुवाले आनत-प्राणत देवोंमें उत्पन्न होकर पुनः यथाक्रमसे मनुष्यायुसे कम बाईस तथा चौबीस सागरके देवोंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त कम दो छयासठ सागर कालके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कम दो छयासठ सागर अर्थात् एक सौ बत्तीस सागर काल प्रमाण अन्तर हुआ। यह[1] क्रम अव्युत्पन्न लोगोंको समझानेको कहा है। परमार्थ-दृष्टिसे किसी भी तरह छयासठ सागरका काल पूर्ण किया जा सकता है। (ध० टी० अन्तरा० पृ० ६-७)

प्रत्याख्यानावरण तथा अप्रत्याख्यानावरण रूप आठ कषायका जघन्य बन्धान्तर अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम एक कोटि पूर्व है।

विशेषार्थ – कोई जीव मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तायुक्त एक कोटि पूर्व प्रमाण-आयुवाला मनुष्य उत्पन्न हुआ। गर्भसे आठ वर्ष पूर्ण होनेपर वेदकसम्यक्त्वी हो उसने सकलसंयमको प्राप्त किया। एक कोटि पूर्वके अन्तमें उसने मिथ्यात्वी होकर मरण किया। इस प्रकार सकलसंयमकी अपेक्षा देशोन एक कोटि पूर्वकाल कषायाष्टकका अन्तर कहलाया।

---

१. एसो उप्पत्तिकमो अउप्पण्ण-उप्पायणट्ठ उत्तो। परमत्थदो पुण जेण केण वि पयारेण छावट्ठी पूरेदव्वा। (ध० टी०, अं०, पृ० ७)

इत्थिवेदा० जह० एग०, उक्क० वेछावट्ठि-साग० सादिरे० । णपुंसक० पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागो० जह० एग०, उक्क० वेछावट्ठिसा० सादि० तिण्णि पलिदो० देसू० । णिरय-मणुस-देवायु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं-असंखेज्जा० । तिरिक्खायु० जह० अंतो, उक्क० सागरोवमसदपु० । णिरयगदि-देवगदि० वेउव्वि० वेउव्वि० अंगो० दोआणुपु० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं-असं० । तिरिक्खगदि० तिरिक्खगदिपाओ० उज्जोव० जह० एग०, उक्क० तेवट्ठिसागरोपम-सद० । मनुसगदि-मणुसाणु० उच्चा० जह० एग० उक्क० असंखेज्जा लोगा । चदुजादि-आदाव-थावरादि०४ जह० एग०, उक्क० पंचासीदिसागरोपमसदं । ओरालिय० ओरालिय० अंगो० वज्जरिसभ० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे० । [आहार०] आहार० अंगो० जह० अंतो०, उक्क० अद्धपोग्गल० देसू० ।

स्त्रीवेदका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सौ बत्तीस सागर है । नपुंसक वेद, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीच-गोत्रका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट किंचित् न्यून तीन पल्य अधिक एक सौ बत्तीस सागर प्रमाण है । नरकमनुष्य-देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्तकाल असंख्यात पुद्गलपरावर्तन है । तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट शतसागरपृथक्त्व है । नरकगति, देवगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, नरक-देवानुपूर्वीका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल—असंख्यात पुद्गलपरावर्तन है । तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योतका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एक सौ त्रेसठ सागरपृथक्त्व है । मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट असंख्यात लोक प्रमाण है । ४ जाति, आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एक सौ पचासी सागर प्रमाण है । औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभ संहननका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट कुछ अधिक तीन पल्य है । [आहारक शरीर] आहारक अंगोपांगका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम अर्धपुद्गलपरावर्तन अन्तर है ।

विशेषार्थ – एक अनादि मिथ्यादृष्टिजीवने अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण रूप तीन करण करके उपशमसम्यक्त्व तथा अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त होकर अनन्त संसारका छेद करके अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र किया । इस अप्रमत्त गुणस्थानमें अन्तर्मुहूर्त रहकर प्रमत्त हुआ और अन्तरको प्राप्त होकर मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरावर्तन काल व्यतीत कर अन्तिम भवमें सम्यक्त्व अथवा देशसंयमको प्राप्त कर दर्शन मोहनीय ३ और अनन्तानुबन्धी ४ अर्थात् ७ प्रकृतियोंका क्षय करके अप्रमत्तसंयत हो गया । इस प्रकार अप्रमत्तसयतका अनन्तर काल उपलब्ध हुआ । पुनः प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थानमें हजारों बार परावर्तन करके अप्रमत्तसंयत हुआ । पुनः अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीण-कषाय, सयोगकेवली अयोगकेवली होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ । इस प्रकार दस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है । यही अन्तर आहारक-द्विकके बन्धके विषयमें होगा । कारण, आहारकद्विकका बन्ध अप्रमत्तसंयतमें होता है । (ध० टी० अन्तरा० पृ० १७)

३०. आदेसे०–णेरइएसु पंचणा०-छदंसणा०-बारसक०-भय दुगुं०-पंचिं०-ओरालिय-तेजाकम्म०-ओरालिय०-अंगो०-वण्ण०४अगु०४तस०४णिमिण-तित्थय० - पंचंत०-णत्थि अंत० । थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणुबं०४ जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० देसू० । सादासा० पुरिस० चदुणो० समचदु० वज्ज०रिसभसं०, पसत्थवि० थिरादि-दोण्णि-युग०-सुभग-सुस्सर-आदे०जह० एग०, उक्क० अंतो० । इत्थिवे०-णपुंसय०-दोगदि० पंचसंठा० पंचसं० दो आयु० (आणुपु०) अप्पसत्थवि० उज्जोवं दूभग-दुस्सर अणादेज्ज०-णीचुच्चागो० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० देसू० । दो

३०. आदेशसे – नारकियोंमें – पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, पंचेंद्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, औदारिकशरीर अंगोपांग, वर्ण चार, अगुरुलघु चार, त्रस चार, निर्माण, तीर्थंकर और पाँच अन्तरायोंके बन्धका अन्तर नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चारका जघन्य अन्तर, अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर है।

विशेषार्थ – यहाँ नरकगतिके आश्रयसे बध्यमान प्रकृतियोंके अन्तरका कथन किया गया है। क्षुद्रक बन्धमें इस प्रकार विशेष कथनकी विवक्षाके स्थानमें सामान्य रूपसे प्रतिपादन किया गया है। जैसे नरकगतिमें नारकी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है, इस प्रश्नके उत्तरमें आचार्य जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्टसे अनन्तकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन कहते है। भूतबलि स्वामी रचित सूत्र इस प्रकार है, "**एग जीवेण अन्तराणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइयाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि? ॥१॥ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥२॥ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥३॥** इन पूर्वोक्त सूत्रोंपर धवलाटीकामें प्रकाश डालते हुए वीरसेन स्वामी लिखते हैं– नरकसे निकलकर गर्भोपक्रान्तिक तिर्यंच जीवोंमें अथवा मनुष्योंमें उत्पन्न हो, सबसे कम आयुके भीतर नरकायुको बाँध मरण कर पुनः नरकोंमें उत्पन्न हुए नारकी जीवके नरकगतिसे अन्तर्मुहूर्त मात्र अन्तर पाया जाता है। उत्कृष्ट अन्तरके सम्बन्धमें इस प्रकार स्पष्ट किया है– नारकी जीवके नरकसे निकलकर अविवक्षित गतियोंमें आवलीके असंख्यातवे भाग प्रमाण पुद्गल परिवर्तन परिभ्रमण करके पश्चात् पुनः नरकोंमें उत्पन्न होनेपर सूत्रोक्त अन्तरका प्रमाण पाया जाता है।

महाबन्धमें नारकियोंमें ज्ञानावरणादिके अन्तरका अभाव कहा है। स्त्यानगृद्धि आदिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट अन्तर देशोन तेतीस सागर कहा है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है: मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई मनुष्य या तिर्यंच नीचे सातवीं पृथ्वीके नारकियोंमें पैदा हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर अल्प आयुके शेष रहनेपर मिथ्यात्वको पुनः प्राप्त हुआ, (४) पुनः तिर्यंच आयुको बाँधकर (५) विश्राम लेकर (६) निकला। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर प्रमाणकाल मिथ्यात्वके अन्तरका है। यही अन्तर स्त्यानगृद्धित्रिक और अनन्तानुबन्धी चारका भी होगा।

साता-असाता वेदनीय, पुरुषवेद, चार नोकषाय, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभ-संहनन, प्रशस्त विहायोगति, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, दो गति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, दो आयु (आनुपूर्वी), अप्रशस्त विहायोगति, उद्योत, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, नीच, उच्च गोत्रका जघन्य

आयु० जह० अंतो०, उक्क० छम्मासं देसूणा। एवं पढमादि याव छट्टित्ति। धुविगाणं तित्थय० णत्थि अंत०। सादद्दंड० ओघं। णवरि मणुस० मणुसग०पाओ०-उच्चागोदं पविट्ठ०। सेसे णिरयोघं। णवरि अप्पप्पणो ट्ठीदी भाणिदव्वा। सत्तमाए पुढवीए णिरओघं। णवरि दोगदि-दो आणुपु०-दोगोदं० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं०देसूणा।

३१. तिरिक्खेसु-पंचणा० छदंस० अट्ठक०-भय-दु०-तेजा-कम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंचंरा०णत्थि अंत०। थीणगिद्धि३ मिच्छ०-अणंताणु०४ जह० अंतो०, उक्क०तिण्णि पलिदोव०देसू०। एवं इत्थि०। णवरि जह०एग०।

एक समय उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर है। विशेष-यहाँ 'दो आयु' के स्थानमें दो आनुपूर्वी पाठ उपयुक्त लगता है, कारण दो आयुका अन्तर आगे कहा गया है। दो आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम छह माह अन्तर है।

विशेषार्थ – नारकियोंमें भुज्यमान आयुके अधिकसे अधिक छह माह और कमसे कम अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर आगामी बध्यमान मनुष्य-तिर्यंच आयुका बन्ध होता है। किसी जीवने छह महीने जीवन शेष रहनेपर प्रथम अन्तर्मुहूर्तमें नरकगतिमें परभवकी आयुका बन्ध किया और पश्चात् मरणसमयमें पुनः बन्ध किया। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर होगा।

इस प्रकार प्रथमसे छठी पृथिवी पर्यन्त जानना चाहिए। यहाँ ध्रुव प्रकृतियों तथा तीर्थंकरका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ – तीर्थंकर प्रकृतिवाला जीव मिथ्यात्वसहित मरण कर मेघा नामकी तीसरी पृथ्वीसे नीचे नहीं जाता। इससे उसके बन्धका अन्तर तीसरी पृथ्वी तक जानना चाहिए, नीचेकी पृथिवियोंमें नहीं जानना चाहिए।

साताद्ण्डकका ओघके समान अर्थात् जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रमें प्रविष्टके विशेष जानना चाहिए।

शेष प्रकृतियोंमें नारकियोंके ओघके समान है। विशेष यह है कि यहाँ प्रत्येक नरकमें अपनी-अपनी स्थितिके समान अन्तर जानना चाहिए। सातवीं पृथ्वीमें सामान्य नरकके समान अन्तर है। इतना विशेष है कि दो गति, दो आनुपूर्वी, दो गोत्रका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर अन्तर है।

३१. तिर्यंचोंमें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायोंका बन्धका अन्तर नहीं है। क्योंकि इनका निरन्तर बन्ध होता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य है। इसी प्रकार स्त्रीवेदका अन्तर समझना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ जघन्य एक समय (और उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य) है।

---

१. "पढमादि जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवमं, तिण्णि, सत्त, दस, सत्तारस, बावीस, तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि"—षट्खं०, अन्तरा० २८-३०।

सादासाद-पंचणोक० पंचिं० समचदु० परघादुस्सा०-पसत्थवि० तस०४ थिरादि-दोण्णि-युग०-सुभग-सुस्सर-आदेज्जा० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अपच्चक्खाणाव०४-णपुंस०तिरिक्खगदि-चदुजादि-ओरालिय० पंचसंठा०-ओरालि०-अंगोवं०-छसंघ०-तिरिक्खाणु०-आदा०-उज्जोव अप्पसत्थवि०-थावरादि०४-दूभग०दुस्सर-अणादेज्ज०-णीचा०जह० एग० । अपचक्खाणा०४ जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू० । तिण्णि आयु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं दे० । तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडि०सादिरे० । वेउव्वियछक्क० जह० एग०, उक्क० अणंतकालं-असंखे० । मणुसग०-मणुसाणु० उच्चा०ओघं ।

३२. पंचिंदिय-तिरिक्ख तिग० धुविगाणं णत्थि अंत० । थीणगिद्धि०३ मिच्छ०

विशेषार्थ – एक मनुष्य या तिर्यंच, अट्ठाईस मोहनीयकी प्रकृतियोंकी सत्तावाला तीन पल्यकी आयुवाले मुर्गा, बन्दर आदिमें उत्पन्न हुआ । दो माह गर्भमें रहकर बाहर निकला। यहाँ आचार्य-परम्परागत दक्षिण-प्रतिपत्तिके अनुसार ऐसा उपदेश है कि तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ जीव दो माह और मुहूर्तपृथक्त्वके ऊपर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । उत्तर-प्रतिपत्तिके अनुसार तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ जीव तीन पक्ष,तीन दिन और अन्तर्मुहूर्तके ऊपर सम्यक्त्वको प्राप्त होता है । पश्चात् आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त कर मरण किया । इस प्रकार आदिके मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो मासोंसे और आयुके अन्तमें उपलब्ध दो अन्तर्मुहूर्तोंसे न्यून तीन पल्योपम काल मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर है । (ध० टी०,अन्तरा० पृ० ३२)

साता-असाता वेदनीय, ५ नोकषाय, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। अप्रत्याख्यानावरण ४, नपुंसकवेद, तिर्यंचगति, चार जाति, औदारिक शरीर, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावरादिचतुष्क, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीच-गोत्रका अन्तर जघन्य एक समय है किन्तु अप्रत्याख्यानावरण ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम एक कोटिपूर्व है ।

विशेषार्थ – कोई मिथ्यात्वी जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्छन पर्याप्तक एक कोटिपूर्वकी आयुवाले तिर्यंचमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर विश्राम ले, विशुद्ध हो, वेदक सम्यक्त्व तथा संयमासंयमको प्राप्त किया। मरणसमय देशसंयमसे च्युत हो गया। इस प्रकार उसके एक कोटि पूर्वमें कुछ कम कालपर्यन्त अप्रत्याख्यानावरण ४ का अन्तर होगा।

तीन आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर एक कोटि पूर्वके तीन भागोंमें-से कुछ कम एक भाग प्रमाण है। तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ अधिक एक कोटिपूर्व अन्तर है। वैक्रियिकषट्कका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल, असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन हैं। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका ओघके समान अन्तर जानना चाहिए।

३२. पंचेन्द्रिय-तिर्यंच, पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-पर्याप्त, पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-योनिमतीमें—ध्रुव प्रकृतियोंका अन्तर नहीं है,क्योंकि इनका निरन्तर बन्ध होता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व,

अणंताणु०४जह० अंतो०, इत्थिवेद०जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदोव०देसू० । सादासादं० पंचणोक० देवगदि०४ पंचिंदि० समचदु० परघादुस्सा०-पसत्थवि०-तसचदुरं थिरादिदोण्णि-युग०-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज उच्चा० जह० एग०, उक्क० अंतो० । अपच्चक्खाणा०४ जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू० । णपुंसय०तिगदि-चदुजादि-ओरालिय०-पंचसंठा०-ओरालिय०अंगो०-छस्संघ० तिण्णि आणपु०-अप्पसत्थ० आदाउज्जो०-थावरादि०४ दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचागो० जह० एग०, उक्क० पुव्वकोडिदे० । आयु-चत्तारि तिरिक्खोघं । पंचिदिय-तिरिक्ख-अपज्ज०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलस० भयदु० ओरालिय-तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उपघा० णिमिणं पंचंत० णत्थि अंत० । सादासाद० सत्तणोक० दोगदि-पंचजादि-छस्संठाण०-ओरालिय० अंगो छस्संघ० -दोआणु० परघादुस्सा०-आदा-वुज्जो०-दोविहा०-तसादिदस-युगल-णीचुच्चा०गोदाणं जह० एग०, उक्क० अंतो० । दोआयु० जहण्णु०अंतो० । एवं सव्व-अपज्जत्ताणं तसाणं थावराणं च ।

अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा स्त्रीवेदका जघन्य एक समय तथा इन सबका उत्कृष्ट कुछ कम ३ पल्य अन्तर है ।

विशेषार्थ – मोहनीय कर्मकी २८ प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले तिर्यंच अथवा मनुष्य तीन पल्योपमकी आयुवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिक कुक्कुट, मर्कट आदिमें उत्पन्न हुए वा दो माह गर्भमें रहकर निकले । मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुए और आयुके अन्तमे आगामी आयुको बाँधकर मिथ्यात्वसहित मरण किया । पुनः इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे तथा मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो मासोंसे न्यून तीन पल्योपम काल तीनों प्रकारके तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है । यही अन्तर मिथ्यात्व आदिका भी है ।

साता-असाता वेदनीय, ५ नोकषाय, देवगति ४, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, और उच्चगोत्रका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । अप्रत्याख्यानावरण ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटि अन्तर है ।

नपुंसकवेद, देवगतिके बिना ३ गति, ४ जाति, औदारिक शरीर, पाँच संस्थान, औदारिक अंगोपांग, छह संहनन, ३ आनुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति, आताप, उद्योत, स्थावरादि ४, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है । चार आयुका तिर्यंचोंके ओघ समान है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पंच अन्तरायोंका अन्तर नहीं है । साता-असाता वेदनीय, ७ नोकषाय, २ गति (मनुष्य-तिर्यंचगति), ५ जाति, ६ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि-दस-युगल, नीच-उच्च गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अन्तर है । दो आयुका जघन्य तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

३३. मणुस० ३–पंचणा०छदंसण०चदुसंज०भयदुगु०तेजाकम्म०वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमिण० तित्थय०-पंचंत० जहण्णु० अंतो०। थीणगिद्धितिग-दंडओ इत्थिदंडओ साददंडओ णपुंसदंडओ आयुदंडओ पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो। णवरि मणुसा० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिसादि०। आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० पुव्व-कोडिपुध०।

सभी अपर्याप्तक त्रस-स्थावरोंका इसी प्रकार अन्तर समझना चाहिए।

विशेषार्थ—सामान्य कथनकी अपेक्षा तिर्यंचोंका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्टसे सागरोपम-शत-पृथक्त्व कहा है। खुद्दाबंधकी टीकामें लिखा है तिरिक्खस्स तिरिक्खेहितो णिग्गयस्स सेसागदीसु सागरोवमसदपुधत्तादो उवरि अवट्ठाणाभावादो (पृ० १८२)—तिर्यंच जीवके तिर्यंचोंमें-से निकलकर शेष गतियोंमें सागरोपमशत पृथक्त्व कालसे ऊपर ठहरनेका अभाव है।

३३. मनुष्य-सामान्य, मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यिनीमें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अंतरायोंका जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर अंतर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धित्रिक-दंडक, स्त्रीदंडक, सातादंडक, नपुंसकदंडक, आयुदंडकमें पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-पर्याप्तकके समान अंतर है। विशेष मनुष्यायुका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक पूर्वकोटि है।

आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व है।[1]

विशेषार्थ—२८ मोहनीयकी प्रकृतियोंकी सत्तावाला अन्य गतियोंसे आकर कोई जीव मनुष्य हुआ। गर्भको आदि लेकर ८ वर्षका हुआ। सम्यक्त्व एवं अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ। (१) पुनः प्रमत्तसंयत हो अंतरको प्राप्त हुआ और ४८ पूर्वकोटियाँ परिभ्रमण कर अंतिम पूर्वकोटिमें देवायुको बाँधता हुआ अप्रमत्तसंयत हो गया। (२) इस प्रकार अंतर प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् प्रमत्तसंयत होकर (३) मरा और देव हुआ। ऐसे तीन अंतर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम ४८ पूर्वकोटियाँ उत्कृष्ट अंतर होता है। (ध० टी०,अंत०,पृ० ५२)

आहारकद्विकके बंधक अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती होते हैं। इस कारण यह वर्णन-क्रम उसमें भी सुघटित है।

'खुद्दाबंधमें मनुष्यों तथा पंचेन्द्रिय-तिर्यंचोंका जघन्य अंतर क्षुद्रभवग्रहण काल तथा उत्कृष्ट अंतर असंख्यातपुद्गल परिवर्तन प्रमाण अनंतकाल कहा है। सूत्रोंके शब्द इस प्रकार हैं– "पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोगिणी पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्ता मणुसगदीए मणुस्सा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण खुद्दाभवगहणं। उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा" (सूत्र ८, ९, १०,पृष्ठ १८९, १९०)।

---

१ संजदासंजदप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं। सूत्र ६७, ६८, ६९, अंत०,पृ० ५२। उत्कर्षेण पूर्वकोटिपृथक्त्वानि। स० सि०, १, ८।

३४. देवेसु–पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदुगुं० ओरालिय-तेजाक० वण्ण०-४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय०णिमिणं तित्थय०पंचंतरा०णत्थि अंत०। थीणगिद्धितिगं मिच्छत्तं अणंताणु०४ जह० अंतो०। इत्थि० णवुंसक० पंचसंठा० जह० एग०, उक्क० अट्ठारस-सा० सादिरेगाणि। एइंदिय-आदाव-थाव०जह० एग०, उक्क० बेसाग० सादिरे०। एवं सव्वदेवेसु अप्पप्पणो ट्ठिदिअंतरं कादव्वं। एइंदिएसु पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं सोलस० भयदुगुं० ओरालियतेजाक० वण्ण०४ जह० एग०, उक्क० अंतो०। *दोआयु० णिरयभंगो०। तिरिक्खगदि-तिरिक्ख० उज्जो० जह० एग०, उक्क० अट्ठारससा०सादिरेगाणि। एइंदिय-आदाव-थाव० जह० एग०, उक्क० बे साग० सादिरे०। एवं सव्वदेवेसु अप्पप्पणोट्ठिदि अंतरं कादव्वं।*

३४ देवोंमें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-शरीर, तैजस-कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी४ का जघन्य अंतर्मुहूर्त है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद तथा पाँच संस्थानका जघन्य अंतर एक समय, उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है। एकेन्द्रिय, आताप और स्थावरका जघन्य एक समय अंतर है, उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागर है। इसी प्रकार सम्पूर्ण देवोंमे अपनी-अपनी स्थितिका अंतर लगाना चाहिए।

विशेषार्थ–सौधर्म-ईशान स्वर्ग पर्यन्त एकेन्द्रिय, आताप तथा स्थावर प्रकृतियोंका बन्ध होता है। इनके बन्धका अन्तर देवगतिकी अपेक्षा साधिक दो सागर उक्त स्वर्ग-युगलकी अपेक्षा है।

दो आयुका नरकगतिके समान अन्तर है, जो जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम ६ माह है। तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योतका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है।

विशेष–शतार-सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तथा उद्योतका बन्ध होता है। इन स्वर्ग-युगलमें आयु साधिक १८ सागर प्रमाण कही है। इस दृष्टिसे यहाँ बन्धका अन्तर कहा है।

खुद्दाबन्धमें देवगति सामान्यको लक्ष्य कर यह कथन किया गया है – देवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है "जहण्णेण अंतोमुहुत्तं" सूत्र १२। इस पर 'धवला' टीकामें यह स्पष्टीकरण किया गया है, 'देवगतिसे आकर गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त तिर्यंचों व मनुष्योंमे उत्पन्न होकर पर्याप्तियाँ पूर्ण कर देवायु बाँध पुनः देवोंमें उत्पन्न हुए जीवके देवगतिसे अन्तर्मुहूर्त मात्र अन्तर पाया जाता है। (क्षु० २,७ पृ० १६०) इस कथनसे यह स्पष्ट होता है कि कोई-कोई जीव अल्पायु युक्त मनुष्य होनेसे गर्भावस्थामें ही मरण कर मंदकषायवश देवगतिको प्राप्त करते हैं।

देवोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल असंख्यात, पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा, "कारण धवला टीकामें लिखा है, देवगतिसे चयकर शेष तीन गतियोंमे अधिकसे अधिक आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र पुद्गलपरिवर्तन

* एतच्चिह्नान्तर्गत पाठोऽधिक प्रतिभाति।

परिभ्रमण कर पुनः देवगतिमें आगमन करनेमें कोई विरोध नहीं आता" (पृ० १९१)। भवन-त्रिक तथा सौधर्म ईशान स्वर्गोंमें पूर्वोक्त अन्तर है। सनत्कुमारादिमें इस प्रकार अन्तर कहा है: 'सणक्कुमार-माहिंदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण मुहुत्तपुधत्तं। उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं"। इस सूत्रकी व्याख्या करते हुए धवला टीकाकार कहते हैं; "तिर्यंच या मनुष्यायुको बाँधनेवाले सनत्कुमार-माहेन्द्र देवोंके तिर्यंच व मनुष्य भव सम्बन्धी जघन्य स्थितिका प्रमाण मुहूर्त-पृथक्त्व पाया जाता है। इसी मुहूर्त-पृथक्त्व प्रमाण जघन्य तिर्यंच व मनुष्यायुको बाँधकर तिर्यंचों या मनुष्योंमें उत्पन्न होकर परिणामोंके निमित्तसे पुनः सनत्कुमार-माहेन्द्र देवोंकी आयु बाँधकर सनत्कुमार-माहेन्द्र देवोंमें उत्पन्न हुए जीवोंका मुहूर्त पृथक्त्वप्रमाण जघन्य अन्तर होता है, ऐसा सूत्र-द्वारा बतलाया गया है।

आगेका सूत्र इस प्रकार है: 'बम्ह-बम्हुत्तर-लांतवकाविट्ठ-कप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण दिवसपुधत्तं।' सूत्र १८, १९

शंका – दिवस पृथक्त्वकी आयुमें तो तिर्यंच व मनुष्य गर्भसे भी नहीं निकल पाते और इसलिए उनमें अणुव्रत व महाव्रत भी नहीं हो सकते। ऐसी अवस्थामें वे दिवस पृथक्त्वमात्रकी आयुके पश्चात् पुनः देवोंमें कैसे उत्पन्न हो सकते हैं।

समाधान – परिणामोंके निमित्तसे दिवस-पृथक्त्वमात्र जीवित रहनेवाले तिर्यंच व मनुष्य पर्याप्तक जीवोंके देवोंमें उत्पन्न होनेमें कोई विरोध नहीं आता।

शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार स्वर्गवासी देवोंका देवगतिसे जघन्य अन्तर "जहण्णेण पक्खपुधत्तं"– पक्षपृथक्त्व कहा है। आनतादिका जघन्य अन्तरवाला सूत्र इस प्रकार है– "आणद-पाणद आरण-अच्चुदकप्पवासियदेवाणमंतर केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण मास-पुधत्तं" – सूत्र २४-२५। इसपर भाष्यकार महत्त्वपूर्ण शंका उत्पन्न कर समाधान भी करते हैं।

शंका – जब आनत आदि चार कल्पवासी देव मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, तब मनुष्य होकर भी वे गर्भसे आठ वर्ष व्यतीत हो जानेपर अणुव्रत व महाव्रतोंको ग्रहण करते हैं। अणुव्रतों व महाव्रतोंको ग्रहण न करनेवाले मनुष्योंकी आनतादि देवोंमें उत्पत्ति ही नहीं होती, क्योंकि वैसा उपदेश नहीं पाया जाता। अतएव आनत आदि चार देवोंका मास पृथक्त्व अन्तर कहना युक्त नहीं है। उनका अन्तर वर्ष पृथक्त्व होना चाहिये?

समाधान – शंकाका समाधान इस प्रकार है – अणुव्रत व महाव्रतोंसे संयुक्त ही तिर्यंच व मनुष्य (तिरिक्ख-मणुस्सा) आनत-प्रानत देवोंमें उत्पन्न हों, ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर तो तिर्यंच असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंका जो छह राजू स्पर्शन बतलानेवाला सूत्र है, उससे विरोध उत्पन्न हो जायेगा। (देखो, षट्खंडागम, जीवट्ठाण, स्पर्शानुगम सूत्र २८, पुस्तक ४, पृ० २०७)

आनत-प्राणत कल्पवासी असंयतसम्यग्दृष्टिदेव जब मनुष्यायुकी जघन्य स्थिति बाँधते हैं, तब वे वर्ष पृथक्त्वसे कमकी आयु-स्थिति नहीं बाँधते हैं, क्योंकि महाबन्धमें जघन्य-स्थितिबन्धके कालविभागमें सम्यग्दृष्टि जीवोंकी आयुस्थितिका प्रमाण वर्ष पृथक्त्वमात्र प्ररूपित किया गया है। सोधम्मीसाणे आयु० जह० ट्ठिदि० अंतो०, अंतोमु० आबा०। सणक्कुमारमाहिंदे मुहुत्त-पुधत्तं, बम्ह-बम्हुत्तर-लांतव-काविट्ठ० दिवसपुधत्तं। सुक्क-महासुक्क-सदारसहस्सार-कप्प० पक्खपुधत्तं, आणद-पाणद-आरणच्चुद० मासपुधत्तं, उवरि सव्वाणं वासपुधत्तं। सव्वत्थ अंतो० आबा० ॥ आभिणि० सुद ओधि-खवगपगदीणं ओघं। मणुसायु० जह० ट्ठिदि० वास-पुध०, अंतो०, आबा०। महाबन्ध ताम्रपत्रप्रति, स्थिति बन्धाधिकार, पृ० ७९, ८०। अतः

३५. एइंदिएसु–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं० सोलस० भयदुगुं० ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं पंचंत० णत्थि अंत०। सादासाद-सत्तणोक० तिरिक्खगदि-पंचजादि० छस्संठा० ओरालिय० अंगोवं०-छस्संघ० तिरिक्खाणु० परघादुस्सासं आदावुज्जो० दोविहाय० तसादि-दसयुगलं णीचा० जह० एग०, उक्क० अंतो०। तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० बावीसवस्ससहस्साणि सादिरे०। मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० सत्तवस्ससहस्साणि सादि०। मणुसगदि-मणुसाणु०उच्चागो० जह० एग०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। बादरेसु अंगुलस्स असंखे०। बादरपज्जत्ते० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। सुहुमे असंखेज्जा लोगा। सुहुम पज्जत्ते जह० एग०,

---

आनत-प्राणत कल्पवासी (आणद-पाणद-मिच्छाइट्ठिस्स) मिथ्यादृष्टि देवके मासपृथक्त्वमात्र मनुष्यायु बाँधकर फिर मनुष्योंमे उत्पन्न हो मास पृथक्त्व जीवित रहकर पुनः अन्तर्मुहूर्तमात्र आयुवाले संज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंचसम्मूर्छन पर्याप्त जीवोंमे उत्पन्न होकर संयमासंयम ग्रहण करके आनतादि कल्पोंकी आयु बाँधकर वहाँ उत्पन्न हुए जीवके सूत्रोक्त मास-पृथक्त्व प्रमाण जघन्य अन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए।

नवग्रैवेयक विमानवासियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट अन्तर "उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥२६॥" अनन्तकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन रूप है। अनुदिशादि अपराजित पर्यन्त विमानवासियोंका जघन्य अन्तर 'जहण्णेण वासपुधत्तं' ॥ ३१ ॥ कहा है। "उक्कस्सेण बे सागरोवमाणि सादिरेयाणि" ॥३२॥ उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो हजार सागरोपम है। इस विषयमे धवलाटीकामे इस प्रकार खुलासा किया गया है — अनुदिशादि देवके पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर एक पूर्व कोटि तक जीकर सौधर्म-ईशान स्वर्गको जाकर वहाँ अढ़ाई सागरोपमकाल व्यतीत कर पुन पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर संयमको ग्रहण कर अपने-अपने विमानमे उत्पन्न होनेपर उनका अन्तरकाल साधिक दो सागरोपम प्रमाण प्राप्त होता है। (पृष्ठ ११७)

सर्वार्थसिद्धिसे चयकर एक ही भवमे मुक्ति होती है, अतः वहाँ अन्तरका अभाव सूचक यह सूत्र कहा है—"सव्वट्ठसिद्धि-विमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णत्थि अन्तरं णिरंतरं" ॥३४॥ खु०,पृ० १९७॥

३५ एकेन्द्रियोंमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पॉच अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। साता-असाता वेदनीय, ७ नोकषाय, तिर्यंचगति, पंच जाति, ६ संस्थान, औदारिक शरीरांगोपांग, ६ संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि दसयुगल और नीचगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष कुछ अधिक अन्तर है। मनुष्यायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ अधिक ७ हजार वर्ष है। मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात लोक है। बादरोंमें अंगुलका असंख्यातवॉ भाग अन्तर है। बादर पर्याप्तकमे संख्यात हजार वर्ष है। सूक्ष्ममे असंख्यात लोक है। सूक्ष्मपर्याप्तकमे जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

उक्क० अंतो० । एवं पुढ० आउ० वणप्फदिका०-बादरवणप्फदि-पत्तेय-णियोदाणं च अप्पप्पणो-योगेहि० । णवरि मणुसगदितिगं सादभंगो । तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० बावीसं वस्ससहस्साणि, सत्त वस्ससहस्साणि, दस वस्ससहस्साणि सादि० । णियोदाणं अंतो० । मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० सत्त वस्ससहस्साणि, बे वस्ससहस्साणि तिण्णि वस्ससहस्साणि सादि० । णियोदाणं जहण्णु० अंतो० । तेउ० वाउ० एइंदियभंगो । णवरि मणुसगदिचदुक्कं वज्जं । तिरिक्खगदितिगं धुवभंगो कादव्वो । तिरिक्खायुगं जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि रादिंदियाणि, तिण्णि वस्ससह-

---

पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय, बादर वनस्पति, प्रत्येक तथा निगोद जीवोंका अपने-अपने योग्य अन्तर जानना चाहिए। इतना विशेष है कि मनुष्यगति-त्रिकमें साताके समान भंग जानना चाहिए। तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट साधिक बाईस हजार वर्ष, साधिक सात हजारवर्ष, साधिक दस हजार वर्ष तथा निगोदियोंमे अन्तर्मुहूर्त अन्तर है।

विशेष—खर पृथ्वीकायिकोंमे बाईस हजार, अप्कायिकोंमें सात हजार, वनस्पतिकायिकोंमे दस हजार और निगोदिया जीवोंकी अन्तर्मुहूर्त आयुको लक्ष्यमें रखकर तिर्यंचायुका अन्तर कहा गया है।

मनुष्यायुका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक सात हजार वर्ष, साधिक दो हजार वर्ष और साधिक तीन हजार वर्ष है। निगोदियोंका जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तेजकाय, वायुकायमें एकेन्द्रियके समान अन्तर जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ मनुष्यगतिचतुष्कको नहीं ग्रहण करना चाहिए। यहाँ तिर्यंचगतित्रिकका ध्रुव भंग जानना चाहिए। तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक तीन रात्रि-दिन और साधिक तीन हजार वर्ष अन्तर है।

विशेषार्थ—खुद्दाबन्धमें एकेन्द्रियोंका अन्तर 'जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं'—जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण काल प्रमाण है। "उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि" (सूत्र ३७, टीका, पृ० १९८) उत्कृष्टसे पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर है। इसपर धवला टीकामें इस प्रकार प्रकाश डाला गया है: एकेन्द्रिय जीवोंमे-से निकलकर केवल त्रसकायिक जीवोंमें ही भ्रमण करनेवाले जीवके पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपममात्र स्थितिसे ऊपर त्रसकायिकोंमे रहनेका अभाव है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस कालके व्यतीत होनेपर जीवको एकेन्द्रिय पर्याय धारण करनी पड़ेगी। एकेन्द्रिय पर्यायसे निकलकर यह जीव पुनः त्रसपर्यायको प्राप्त कर सकता है, किन्तु एकेन्द्रिय पर्यायमें पहुँचनेके पश्चात् त्रसपर्यायको प्राप्त करना शास्त्रकारोंने अत्यन्त कठिन बताया है। यदि जीवका संसार परिभ्रमण निकट आ चुका है, तो वह क्षुद्रभवग्रहण कालके पश्चात् पुनः त्रसपर्यायको प्राप्त कर सकता है। द्वीन्द्रियादिके जघन्य

---

१ "तत्र पृथ्वीकायिका. द्विविधा, शुद्धपृथ्वीकायिका खरपृथ्वीकायिकाश्चेति । तत्र शुद्धपृथ्वीकायिकानामुत्कृष्टा स्थितिर्द्वादशवर्षसहस्राणि । खरपृथ्वीकायिकाना द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि । वनस्पतिकायिकाना दशवर्षसहस्राणि । अप्कायिकाना सप्तसहस्राणि, वायुकायिकाना त्रीणि वर्षसहस्राणि । तेजःकायिकाना त्रीणि रात्रिंदिवानि ।" – त० रा०, पृ० १४६ ।

स्साणि सादरेयाणि । विगलिंदियेसु एइंदियभंगो । णवरि मणु ...देतिगं सादभंगो । तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक० बारसवस्ससहस्साणि (बारसवस्साणि) एगूणवण्णं रादिंदियाणि छम्मासाणि सादिरे० । मणुसायु० जह० अंतो०, उक० चत्तारि वस्साणि देसू०, सोलस रादिं० सादिरे०, बे मासाणि देसू० ।

३६. पंचिंदिय-तस-तेसिं चेव पज्जत्ता० पंचणा० छदंसणा० सादासा० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थ० तस०४ थिरादिदोण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणं तित्थयं० पंचंत० जह० एग०, उक० अंतो० । णवरि णिद्दापचलाणं जहण्णु० अंतो० । थीणगिद्धि३ मिच्छ० अणंताणु०४

उत्कृष्ट अन्तरको इन सूत्रों-द्वारा कहा गया है—"बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियाणं तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ४४, ४५, ४६ ॥" द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंका तथा उन्हींके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? कमसे कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक अन्तर होता है, उत्कृष्टसे अनन्तकाल, असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण अनन्तकाल तक उक्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका अन्तर होता है। इस सम्बन्धमें वीरसेन स्वामीका कथन है कि विवक्षित इन्द्रियोंवाले जीवोंमें-से निकलकर अविवक्षित एकेन्द्रिय आदि जीवोंमें आवलीके असंख्यातवें भाग पुद्गल परिवर्तनरूप भ्रमण करनेसे कोई विरोध नहीं आता (खु० बं०,पृ० २०१-२०२)।

विकलत्रयमें एकेन्द्रियके समान अन्तर है। यहाँ इतना विशेष है कि मनुष्यगतित्रिकका साताके समान भंग है। तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक बारह वर्ष, साधिक उनचास रात्रि-दिन, साधिक छह मास अन्तर है[1]। मनुष्यायुका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन चार वर्ष, कुछ अधिक सोलह रात्रि-दिन तथा कुछ कम दो माह अन्तर है।

३६. पंचेन्द्रिय, त्रसकाय तथा उनके पर्याप्तकोंमें[2]—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता, असाता वेदनीय, ४ सञ्ज्वलन, ७ नोकषाय, पंचेन्द्रियजाति, तैजस, कार्मण, समचतुरस्र संस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि २ युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर और पाँच अन्तरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। विशेष, निद्रा, प्रचलाका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है, स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानु-

१ "द्वीन्द्रियाणामुत्कृष्टा स्थितिर्द्वादशवर्षा, त्रीन्द्रियाणा एकान्नपञ्चाशद्रात्रिंदिवानि, चतुरिन्द्रियाणां षण्मासा ।"—त० रा०,पृ० १४६।

२ "पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं । असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं ।"—षट्खं०,अंतरा०,सूत्र ११४-१२१।

इत्थिवे० अंतो० । इत्थि० [जह०] एगस० उक्क० वे छावट्ठिसागरो० सादिरे० देसू० । अट्ठक० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू० । णपुंस० पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा० जह० एग०, उक्क०वे छावट्ठि० सादिरे०, तिण्णि पलिदोव० देसू० । तिण्णि आयु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोपमसदपु० । मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोपमसहस्साणि० पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भदियाणि । पज्जत्ते सागरोपमसदपु० । तसेसु–तिण्णि-आयु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोपमसदपुध० । मणुसायु० जह० अंतो०, उक्क० बेसागरोवमसह पुव्वकोडिपु० । पज्जत्ते बेसागरोपम० देसू० । णिरयगदि चदुजादि-णिरयाणुपुव्वि-आदाव-थावरादि०४ जह० एग० उक्क० पंचासीदि-सागरोपमसदं । तिरिक्खगदि-तिरिक्खग०पाओ० उज्जोव० जह० एग०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं । मणुस० मणुसाणु० उच्चा० देवगदि०४ जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादिरे० । ओरालि० ओरालि० अंगो वज्जरिसभसंघ० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरे० । आहारदुग० जह०अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी० ।

बन्धी ४ और स्त्रीवेदका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । विशेष—स्त्रीवेदका [जघन्य] एक समय है तथा इन सबका साधिक दो छयासठ सागरमें किंचित् न्यून उत्कृष्ट अन्तर है । आठ कषायका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है । नपुंसकवेद, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक दो छयासठ सागर कुछ कम तीन पल्य प्रमाण है । तीन आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सागर शतपृथक्त्व है । मनुष्यायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सहस्रसागरोपम पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक है । पर्याप्तकोंमें सागर शतपृथक्त्व है । त्रसोंमें—तीन आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागरोपम शतपृथक्त्व अन्तर है । मनुष्यायुका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे दो हजार सागरोपम पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक है । पर्याप्तकोंमें दो हजार सागरोपममें कुछ कम अन्तर है । नरकगति, ४ जाति, नरकानुपूर्वी, आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एकसौ पचासी सागरोपम है । तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी और उद्योतका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट एकसौ त्रेसठ सागरोपम है । मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र, देवगतिचतुष्कका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है । औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपाग, वज्रवृषभ संहननका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य अन्तर है । आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अपनी स्थिति प्रमाण अन्तर है ।

(१) "तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडि-पुधत्तेणब्भहियाणि वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि, असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ।"— षट्खं०, अंतरा०, सूत्र १३६–१४५ ।

३७. पंचमण० पंचवचि०–पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलस० भयदुगुं० चदुआयु० तेजाकम्म० आहारदुग० वण्ण०४ अगु० उपघा०-णिमिणं तित्थय० पंचंत० णत्थि अंत०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०। कायजोगीसु–पंचणा० छदंसणा०

---

३७ पाँच मनोयोग, पाँच वचनयोगमें[1] – ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ४ आयु, तैजस, कार्मण, आहारकद्विक, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

मनोयोगी, वचनयोगी जीवोंके योगोंके अन्तरपर खुद्दाबन्धमें यह कथन पाया जाता है, "जोगाणुवादेण पंचमणजोगि – पंचवचिजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं" – सूत्र ५९-६०। योगमार्गणाके अनुसार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है? कमसे कम अन्तर्मुहूर्त अन्तर है। महाबन्धमें जो ज्ञानावरणादि अन्तराय पर्यन्त प्रकृतियोंके सिवाय शेष प्रकृतियोंका अन्तर उक्त योगोंमें "जह० एगं०"–जघन्यसे एक समय कहा है। उसका भाव यह है कि उक्त योगोंमें बँधनेवाली प्रकृतियोंके बन्धका विरहकाल कमसे कम एक समय जानना चाहिए। क्षुद्रकबन्धमें सामान्य अपेक्षासे योगका अन्तर बताया है। एक योगसे अन्य योगको प्राप्त करनेके पश्चात् पुनः पूर्व-योगको प्राप्त करनेमें मध्यवर्ती काल कमसे कम अन्तर्मुहूर्त होगा। धवलाटीकामें यह शंका-समाधान आया है।

शंका – इन पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवोंका एक योगसे दूसरेमें जाकर पुनः उसी योगमें लौटनेपर एक समय प्रमाण अन्तर क्यों नहीं पाया जाता?

समाधान – नहीं पाया जाता; क्योंकि जब एक मनोयोग या वचनयोगका विघात हो जाता है या विवक्षित योगवाले जीवका मरण हो जाता है, तब केवल एक समयके अन्तरसे पुनः अनन्तर समयमें उसी मनयोग या वचनयोगकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

उक्त योगोंका उत्कृष्ट अन्तरका काल असंख्यातपुद्गल परिवर्तन प्रमाण अनन्तकाल है। सूत्रकार भूतबलि स्वामी कहते हैं–"उक्कस्सेण अणतकालमसंखेज्ज-पोग्गल-परियट्टं" (६१ सूत्र)। इसका स्पष्टीकरण धवला टीकामें इस प्रकार किया गया है – मनयोगसे वचन योगमें जाकर वहाँ अधिक काल तक रहकर पुनः काययोगमें जाकर और वहाँ भी सबसे अधिक काल व्यतीत करके एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गल परिवर्तन परिभ्रमण कर पुनः मनयोगमें आये हुए जीवके उक्त प्रमाण अन्तर पाया जाता है। शेष चार मनयोगी पाँच वचनयोगी जीवोंका भी इसी प्रकार अन्तर प्ररूपित करना चाहिए, क्योंकि इस अपेक्षासे उनमें कोई विशेषता नहीं है। (पृ० २०६, खु० बं०)

इस प्रकरणमें खुद्दाबंधका यह कथन ध्यान देने योग्य है – "कायजोगीणंमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं" सूत्र ६२, ६३, ६४। काययोगी

---

१. "जोगाणुवादेण—पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु, कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि–संजदासंजद–पमत्त–अप्पमत्तसंजद–सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं। सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं। चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। चदुण्हं खवगाणमोघं।"—षट्खं०, अंतरा०, सूत्र १५३, १५६–१५९।

सादासाद० चदुसंज० णवणोक० तिण्णिग०-पंचजादि-चदुसरी०-छसंठा०-दो अंगो०-छसंघ० वण्ण०४ तिण्णि-आणु० अगु०४ आदावुज्जो०-दोविहा० तसादि-दस-युगल-णिमिणं तित्थय० णीचा० पंचत० जह० एग०, उक्क० अंतो०। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त० बारसक० दोआयु० आहारदु० णत्थि अंत०। तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० बावीसवस्ससहस्साणि सादिरे०। मणुसा० ओघं०। मणुसगदितिगं ओघं। ओरालिय०-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगुं० दो आयु० आहारदुगं० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं तित्थय० पंचंत० णत्थि अंत०। दो आयु० जह० अंतो०, उक्क० सत्तवस्ससहस्सा० सादि०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०। ओरालिमि०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलक० भयदुगुं० देवगदि०४ ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० तित्थ० पंचंत० णत्थि अंत०। दो आयु० जहण्णु० अंतो०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०। वेउव्वियकायजो०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोल० भयदुगुं० ओरालिय० तेजा० वण्ण०४ अगुरु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमि० तित्थय० पंचंत० णत्थि अंत०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०। एवं

जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है? कमसे कम एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। इसपर वीरसेन स्वामीने इस प्रकार प्रकाश डाला है– काययोगसे मनयोग और वचनयोगमें क्रमशः जाकर और उन दोनों ही योगोंमें उनके सर्वोत्कृष्ट काल तक रहकर पुनः काययोगमें आये हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काययोगका अन्तर प्राप्त होता है।" जघन्य अन्तरके विषयमें धवलाटीकामें लिखा है, "काययोगसे मनयोगमें या वचनयोगमें जाकर एक समय रहकर दूसरे समयमें मरण करने या योगके व्याघातित होनेपर पुनः काययोगको प्राप्त हुए जीवके एक समयका जघन्य अन्तर पाया जाता है।

काययोगियोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असाता, ४ संज्वलन, ९ नोकषाय, ३ गति, ५ जाति, ४ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, वर्ण ४, ३ आनुपूर्वी, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसादि १० युगल, निर्माण, तीर्थंकर, नीचगोत्र और पाँच अन्तरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषाय, देव – नरकायु और आहारद्विकका अन्तर नहीं है। तिर्यंचायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक बाईस हजार वर्ष है। मनुष्यायुका ओघके समान है। मनुष्यगतित्रिकका भी ओघके समान है।

औदारिक काययोगमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, देव-नरकायु, आहार द्विक, तैजस, कार्मण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। दो आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक सात हजार वर्ष है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

औदारिकमिश्र काययोगमें – ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, देवगति चार, औदारिक, तैजस, कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। दो आयु अर्थात् मनुष्य-तिर्यंचायुको जघन्य

चेव वेउव्वियमि० । णवरि दो आयु० णत्थि । आहार० आहारमिस्स०–पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० पुरिस० भयदुगुं० तेजाक० देवायु० देवगदि० पंचिंदि० वेउव्वि० समचदु० वेउव्वि० अंगो० वण्ण०४ देवाणुपु० अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमिणं तित्थयर० उच्चा० पंचंत० णत्थि अंत० । सादासा०-चदुणोक०-

तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

औदारिक तथा औदारिक काययोगी जीवोंका अन्तर खुद्दाबन्धमें "जहण्णेण एक-समओ उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि" (६५, ६६, ६७ सूत्र) जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे साधिक तेतीस सागरोपम प्रमाण है। धवला टीकामें कहा है–

शंका – औदारिकमिश्र काययोगी तो अपर्याप्त अवस्थामे होता है, जब कि जीवके मनयोग और वचनयोग होता ही नहीं है, अत औदारिक मिश्र काययोगका एक समय अन्तर किस प्रकार हो सकता है?

समाधान—नहीं, हो सकता है। औदारिक मिश्र काययोगसे एक विग्रह करके कार्माण काययोगमें एक समय रहकर दूसरे समयमे औदारिकमिश्रमे आये हुए जीवके औदारिक-मिश्र काययोगका एक समय अन्तर प्राप्त हो जाता है। औदारिक काययोगका उत्कृष्ट अन्तर इस प्रकार जानना चाहिए–औदारिक काययोगसे चार मनयोगों व चार वचनयोगोंमें परि-णमित हो मरण कर तेतीस सागरोपम प्रमाण आयु स्थितिवाले देवोंमे उत्पन्न होकर वहाँ अपनी स्थितिप्रमाण रहकर, पुनः दो विग्रह कर मनुष्यमे उत्पन्न हो औदारिकमिश्र काययोग-सहित दीर्घकाल रहकर पुनः औदारिक काययोगमे आये हुए जीवके नौ अन्तर्मुहूर्तों व दो समयोंसे अधिक तेतीस सागरोपम प्रमाण औदारिक काययोगका अन्तर प्राप्त होता है।

औदारिकमिश्र काययोगका अन्तर अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरो-पम होता है, क्योंकि नारकी जीवोंमे-से निकलकर पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमे उत्पन्न हो औदारिकमिश्र काययोगको प्रारम्भ कर कमसे कम कालमे पर्याप्तियोंको पूर्ण कर औदारिक काययोगके द्वारा औदारिकमिश्र काययोगका अन्तर कर कुछ कम पूर्व कोटिकाल व्यतीत करके तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंमे उत्पन्न हो पुनः विग्रह करके औदारिकमिश्र काययोगमे जानेवाले जीवके सूत्रोक्त प्रमाण अन्तर पाया जाता है। (धवला टीका, खु० बं०, पृ० २०८)

वैक्रियिक काययोगमे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अन्तर है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगका समझना चाहिए। विशेष, यहाँ मनुष्य-तिर्यंचायु नहीं है। आहारक और आहारकमिश्रकाययोगमें[1] – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण-शरीर, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्णचतुष्क, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्च गोत्र और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। साता-असातावेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि

१. आहारककायजोगि-आहारकमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ७४, ७५, ७६ सूत्र, खु० बं०, पृ० २१०।

थिरादि-तिण्णि युग० जह० एग०, उक्क० अंतो० । कम्मइ० का०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलस० तिण्णिवे०-भयदु० तिण्णि ग०-पंचजा०-चदुसरी० छस्संठा० दोअंगो० छस्संघ० वण्ण० ४ तिण्णि आणु०-अगुरु० ४ दोविहा०-तसथावरादिचदुयुगल-सुभादि-तिण्णियुग०-णिमि०-तित्थय० णीचुच्चा०-पंचंत० णत्थि अंत० । सादासा० चदुणोक० आदाउज्जो०-थिराथिर-सुभासुभ० जस० अज्जस० जहण्णु० एगस० ।

३८. इत्थिवे०-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदुगुं० तेजाक० वण्ण० ४ अगु० उपघा०-णिमि० तित्थय० पंचंत० णत्थि० अंत० । थीणगिद्धि० ३ मिच्छ० अणंताणु० ४ जह० अंतो०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू० । सादासा० पंचणोक०

तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । कार्मण-काययोगियोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, ३ वेद, भय, जुगुप्सा, ३ गति (नरकगति छोडकर), ५ जाति, ४ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, वर्ण ४, ३ आनुपूर्वी, अगुरुलघु ४, दो विहायोगति, त्रसस्थावरादि ४ युगल, शुभादि ३ युगल, निर्माण, तीर्थंकर, नीच-उच्च गोत्र और पाँच अन्तरायोंका अन्तर नहीं है । साता-असाता वेदनीय, ४ नोकषाय, आताप, उद्योत, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशःकीर्ति, अयशःकीर्तिका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर एक समय है ।

विशेषार्थ— कार्मणकाययोगका उत्कृष्ट काल उत्कृष्टसे तीन समय प्रमाण है । तीन समयके बीचमें अन्तरका काल एक समयसे अधिक अथवा न्यून न होगा । एक समय बन्धका होगा, एक समय अबन्धका और एक समय पुनः बन्धका । इस कारण जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर एक समय प्रमाण कहा है ।

विशेषार्थ—खुद्दा बन्धमें कार्मण काययोगियोंके विषयमें ये सूत्र हैं —**कम्मइयकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ** (७७, ७८, ७९,) कार्मणकाययोगी जीवोंका कितने काल अन्तर होता है? जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण काल अन्तर है, उत्कृष्टसे अंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल होता है । इस संबन्धमें धवलाटीकाकारने इस प्रकार खुलासा किया है — तीन विग्रह करके क्षुद्रभव धारण करनेवाले जीवोंमें उत्पन्न हो, पुनः विग्रह करके निकलनेवाले जीवके तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणमात्र कार्मण-काययोगका अन्तर प्राप्त होता है ।

कार्मण-काययोगसे औदारिक मिश्र अथवा वैक्रियिकमिश्र काययोगमें जाकर असंख्यात-सख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाण अंगुलके असंख्यातवे भाग मात्र काल तक रहकर पुनः विग्रहगतिको प्राप्त हुए जीवके कार्मण-काययोगका सूत्रोक्त अन्तर काल पाया जाता है । (खु० भा० २ पृ० २१२-२१३)

३८. स्त्रीवेदमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम ५५ पल्य है ।

---

१. गो० क०, गा० ११६, ११९ ।

पंचिंदि० समचदु० परघादुस्सा० पसत्थ० तस०४ थिरादितिण्णियु० सुभग-सुस्सर-आदे० उच्चा० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अट्ठक० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू०। इत्थि० णवुंस० तिरिक्खग० एइंदिय० पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० आदावुज्जो० अप्पसत्थवि० थावर-दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा० जह० एग०, उक्क० पणवण्णं पलिदो० देसू०। णिरयायुजह० अंतो०। उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। तिरिक्खायु-मणुसायु जह० अंतो०। उक्क० पलिदोपमसदपुध०। देवायु० जह० अंतो०। उक्क० अट्ठावण्णं पलिदो० पुव्वकोडिपुध०। दोगदि० तिण्णि जा० वेउव्वि० वेउव्विय० अंगो० दोआणुपु० सुहुम-अपज्जत्त० साधार०जह०एग० उक्क०

विशेषार्थ—मोहनीयकी २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक पुरुषवेदी या नपुंसकवेदी जीव ५५ पल्योपमवाली देवीमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर,(१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर अन्तरको प्राप्त हुआ। आयुके अन्तमें आगामी भवकी आयुको बाँधकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और मरण किया। इस प्रकार कुछ कम ५५ पल्योपम स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकार मिथ्यात्वादिका अन्तर जानना चाहिए। (ध० टी०,अन्तरा० पृ० ६५)

साता-असाता वेदनीय, ५ नोकषाय, पंचेन्द्रियजाति, समचतुरस्र संस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिरादि तीन युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। आठ कषायोंका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि अन्तर है।

विशेषार्थ—मोहनीयकी २८ प्रकृतिकी सत्तावाला कोई जीव मरण कर भाव-स्त्रीवेदी किन्तु द्रव्य पुरुष हुआ। एक कोटिपूर्वकी आयु प्राप्त की। गर्भसे लेकर आठ वर्ष बीतनेपर सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके साथ-साथ सकलसंयमको भी प्राप्त किया। पश्चात् संक्लेशवश गिरकर अप्रत्याख्यानावरण तथा प्रत्याख्यानावरणरूप ८ कषायका बन्ध करके मरण किया। इस प्रकार अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण रूप आठ कषायोंके बन्धकका अन्तर कुछ कम एक कोटिपूर्व कहा है।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यंच गति, एकेन्द्रिय जाति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ५५ पल्य प्रमाण है। नरकायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम कोटिपूर्वका त्रिभाग है। तिर्यंचायु, मनुष्यायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पल्यशतपृथक्त्व है।

विशेषार्थ—कोई २८ मोहकी प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव स्त्रीवेदी था। मरणकर देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वी हुआ,(४) पश्चात् मिथ्यात्वी हो गया। तिर्यंच आयु अथवा मनुष्यायुका बन्ध कर मरण किया और पल्यशत पृथक्त्व कालप्रमाण परिभ्रमण कर तिर्यंचायु या मनुष्यायुका बन्ध कर सम्यक्त्वसहित हो मरण किया। इस प्रकार असंयत सम्यक्दृष्टि स्त्रीवेदी जीवकी अपेक्षा पल्यशत पृथक्त्व प्रमाण अन्तर होता है। (ध० टी०,अन्तरा० पृ० ९६)

देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ५८ पल्योपम पूर्वकोटि पृथक्त्व है। दो गति, तीन जाति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, दो आनुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारणका

पणवण्णं पलिदो० सादिरे० । मणुसग० ओरालिय० ओरालिय० अंगो० वज्जरिसभ-संघ० मणुसाणु० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलि० देसू० । आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० पलिदोवमसदपु० । पुरिस०-पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० णत्थि अंत० । थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ अट्ठक० । इत्थिवे० ओघं । णिद्दापयला ओघं । सादासा० सत्तणो० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थ० तस०४ थिरादिदोण्णियुग०-सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० तित्थय० उच्चा० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णपुंस० पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर० अणादे०णीचा० जह० एग०, उक्क० बेछावट्ठि-सादि० तिण्णि पलिदो०देसू० । णिरयायु० इत्थिवेदभंगो । दोआयु० जह० अंतो०, उक्क०सागरोपमसदपु० । देवायु० जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादि० । णिरयगदि-चदुजादि-णिरयाणुपु०-आदावुज्जो०-थावरादि०४ जह० एगस० उक्क० तेवट्ठिसाग० सदं० । एवं तिरिक्खगदिदुगं । मणुसगदिपंचगं जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि० । देवगदि०४ जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि० । आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० सागरोपमसदपु० । णपुंस०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० भयदुगु० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमि० पंचंत० णत्थि अंत० । थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणं-

---

जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ अधिक ५५ पल्य अन्तर है । मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्र-वृषभसंहनन, मनुष्यानुपूर्वीका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पल्यशत पृथक्त्व प्रमाण अन्तर है ।

पुरुषवेदमें-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सञ्ज्वलन, ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, ८ कषाय, स्त्रीवेदका ओघके समान जानना चाहिए । निद्रा, प्रचलाका भी ओघके समान है। साता-असाता वेदनीय, ७ नोकषाय, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्च गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । नपुंसकवेद, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य अधिक दो छ्यासठ सागर प्रमाण अन्तर है। नरकायुका स्त्रीवेदके समान जानना। मनुष्य, तिर्यंचआयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागरोपम शत-पृथक्त्व अन्तर है । देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है। नरकगति, ४ जाति, नरकानुपूर्वी, आताप, उद्योत, स्थावरादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट ६३ सागरोपम अन्तर है। तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वीमें इसी प्रकार जानना चाहिए। मनुष्यगतिपंचकका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य है। देवगति ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है। आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर शत-पृथक्त्व अन्तर है ।

नपुंसकवेदमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायोंमे अन्तर नहीं है । स्त्यानगृद्धित्रिक,

ताणु०४ इत्थि णपुंसक० तिरिक्खगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० उज्जोव० अप्पसत्थ० दूभग० दुस्सरअणादे० णीचा० जह० अंतो०, एगस०। उक्क० तेत्तीसं० देसू०। सादासादा० पंचणो० पंचिंदि० समचदु० परघादु०-पसत्थ० तस०४ थिरादि-दोण्णियु०-सुभ०-सुस्सर-आदे० जह० एग०, उक्क० अंतोमु०। अट्ठक० दोआयु० वेउव्वि० छक्क० मणुसगदितिगं आहारदुगं ओघभंगो। तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोपमसदपुध०। देवायु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। चदुजा० आदाव-थावरादि०४ जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० सादिरे०। ओरालिय० ओरालि०अंगो० वज्जरिसभ० जह० एक०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू०। तित्थय० जहण्णु० अंतो०। अवगद०-पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० जसगि० उच्चा० पंचंत० जहण्णु०

मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यंचगति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका जघन्य अन्तर्मुहूर्त अथवा एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तेतीस सागर है।[1]

विशेषार्थ–मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव मिथ्यात्वयुक्त हो, सातवे नरकमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त किया। आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको पुनः प्राप्त करके (४) आयुको बाँध, (५) विश्राम ले, (६) मरा और तिर्यंच हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम नपुंसकवेदी मिथ्यात्वीका उत्कृष्ट अन्तर रहा। (पृ० १०७) यही अन्तर मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंका होगा।

साता-असाता वेदनीय, ५ नोकषाय, पचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। ८ कषाय, २ आयु, वैक्रियिक षट्क, मनुष्यगतित्रिक, आहारकद्विकका ओघवत् जानना चाहिए। तिर्यंच आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर शतपृथक्त्व है। देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग है। जाति ४, आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर है। औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्र-वृषभसंहननका जघन्य एक समय उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है। तीर्थंकरका जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—खुद्दाबंधमे स्त्रीवेदीका जघन्य अन्तर क्षुद्रभव-ग्रहणकाल "जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं" (सूत्र ८१) कहा है। उत्कृष्ट अन्तर "उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं" (८२) असंख्यातपुद्गलपरावर्तन प्रमाण अनन्तकाल कहा है।

पुरुषवेदीका जघन्य अन्तर एक समय "जहण्णेण एगसमओ" (८५) कहा है। इसका खुलासा वीरसेन स्वामीने इस प्रकार किया है : पुरुषवेदसहित उपशम श्रेणीको चढकर अपगतवेदी हो, एक समय तक पुरुषवेदका अन्तर करके दूसरे समयमे मरणकर पुरुषवेदी जीवोंमे उत्पन्न होनेवाले जीव पुरुषवेदका अन्तर एक समय मात्र पाया जाता है। (खु०

---

१ "णउसगवेदेसु मिच्छादिट्ठीणमतर केवचिर कालादो होदि ? एगजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूण णि।" —षट् खं०, अंतरा० २०७-९।

अंतो० । सादावे० णत्थि अंत० ।

३६. कोध०–पंचणा० सत्तदंसणा० मिच्छ० सोलस० चदुआयु० आहारदुग० पंचंत० णत्थि अंत० । णिद्दा–पचला० जहण्णु० अंतो० । सेसाणं जह० एग०, उक्क०

बं० टीका पृ० २१४) इनका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरावर्तन प्रमाण अनन्तकाल है; "उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं" (सूत्र २३)

नपुंसक वेदीका जघन्य अन्तर "जहण्णेण अंतोमुहुत्तं" (८७) अन्तर्मुहूर्त है ।

शंका—नपुंसकवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण क्यों नहीं प्राप्त हो सकता ?

समाधान—क्षुद्रभवग्रहणमात्र आयुवाले अपर्याप्तक जीवोंमें नपुंसकवेदको छोड़कर स्त्री व पुरुषवेद नहीं पाया जाता और पर्याप्तकोंमें अन्तर्मुहूर्तके सिवाय क्षुद्रभवग्रहण काल नहीं पाया जाता ।

नपुंसकवेदीका उत्कृष्ट अन्तर "उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं" (८८) सागरोपमशत पृथक्त्व है । क्योंकि नपुंसकवेदसे निकलकर स्त्री और पुरुष वेदोंमें ही भ्रमण करनेवाले जीवके सागरोपम शत-पृथक्त्वसे ऊपर वहाँ रहना संभव नहीं है । पृ० २१५ ।

अपगत वेदमें–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायोंका जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । साता वेदनीयका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ—अपगतवेदीके "उवसमं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं" (९०) उपशमकी अपेक्षा अपगतवेदी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसका स्पष्टीकरण धवलाटीकामें इस प्रकार है, उपशम श्रेणीसे उतरकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्तमात्र सवेदी होकर, अपगत-वेदित्वका अन्तर कर, पुनः उपशमश्रेणीको चढ़कर अपगत वेदभावको प्राप्त होनेवाले जीवके अपगतवेदित्वका अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर पाया जाता है । उपशमकी अपेक्षा अपगतवेदी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर देशोन अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है–"उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं" (९१) । इसका स्पष्टीकरण वीरसेन आचार्यने इस प्रकार किया है : किसी अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों करण करके, अर्धपुद्गल परिवर्तनके आदि समयमें सम्यक्त्व और संयमको एक साथ ग्रहण किया और अन्तर्मुहूर्त रहकर उपशम श्रेणीको चढ़कर अपगतवेदी हो गया । वहाँसे फिर नीचे उतरकर सवेदी हो, अपगतवेदका अन्तर प्रारम्भ किया और उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण भ्रमण कर पुनः संसारके अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रहनेपर उपशमश्रेणीको चढ़कर अपगतवेदी हो अन्तरको समाप्त किया । पश्चात् फिर नीचे उतरकर क्षपकश्रेणीको चढ़कर अबन्धक भावको प्राप्त किया । ऐसे जीवके अपगतवेदित्वका कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण अन्तर-काल प्राप्त हो जाता है ।

३६. क्रोधमें–५ ज्ञानावरण, ७ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, ४ आयु, आहारकद्विक और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है । निद्रा, प्रचलाका जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—निद्रा, प्रचलाका बन्ध अपूर्वकरणके प्रथमभागपर्यन्त होता है । इन प्रकृतियोंका बन्धक जीव उपशमश्रेणीका आरोहण करके, उपशान्तकषाय पर्यन्त चढ़कर तथा

१. "अवगदवेदेसु अणियट्टि-उवसम-सुहुम-उवसमाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।" —षट्खं०, अंतरा०, २१४-२१७ ।

अंतो० । माणे-तिण्णि संजलणा० णत्थि अंत० । मायाए दोण्णि संज० णत्थि अंत० । सेसाणं कोधभंगो । लोभे-पंचणा० सत्तदंसणा० मिच्छ० बारसक० चदुआयु० आहारदु० पंचंत० णत्थि अंत० । सेसाणं जह० एग०, उक्क अंतो० । णवरि णिद्दापचला जहण्णु० अंतो० । अकसाई-साद० णत्थि अंत० । केवलणा०-यथाक्खाद० केवलदंस० एवं चेव ।

४०. मदि० सुद०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णत्थि अंत० । सादासा० छण्णोक० पंचिंदि० समचदु० परघादुस्सा० पसत्थवि० तस०४ थिरादिदोण्णियु०-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० जह० एग०, उक्क० अंतो० । णपुंस० ओरालियस० पंचसंठा० ओरालिय० अंगो० छस्संघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदोप० दे० । तिण्णि आयु० जह० अंतो०, उक्क० अणंतकालं असंखे० । तिरिक्खायु० जह० अंतो०, उक्क० सागरोपमसदपुध० । वेउव्वियछक्क० जह० एग०, उक्क०

उतरते हुए अपूर्वकरणके प्रथमभागमें पुनः बन्ध आरम्भ कर देता है । इस कारण इनका जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है ।

मानमें-३ संज्वलनका अन्तर नहीं है । मायामें-दो संज्वलनका अन्तर नहीं है । शेष प्रकृतियोंमें क्रोधके समान भंग जानना चाहिए । लोभकषायमें-५ ज्ञानावरण, ७ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, ४ आयु, आहारकद्विक और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है । शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । विशेष-निद्रा, प्रचलाका जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । अकषायीमें-सातावेदनीयका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ—सातावेदनीयका अप्रमत्तसे लेकर सयोगीकेवली पर्यन्त निरन्तर बन्ध होता है । इस कारण उपशान्तकषाय या क्षीणकषायमें साताका अन्तर नहीं बताया है ।

केवलज्ञान, यथाख्यात संयम, केवलदर्शनका अकषायकी तरह वर्णन जानना चाहिए ।

४०. मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणादिके अबन्धक उपशान्त कषायादि गुणस्थानमें होंगे । इन कुज्ञानयुगलमें आदिके दो गुणस्थान ही पाये जाते हैं । इससे ज्ञानावरणादिका अन्तर नहीं कहा ।

साता-असाता वेदनीय, ६ नोकषाय, पंचेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्‌वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि २ युगल, सुभग, सुस्वर, आदेयका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । नपुंसकवेद, औदारिक शरीर, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्य है । तीन आयु अर्थात् देव, नर, नरक आयुका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट अनन्तकाल असंख्यात पुद्गल परावर्तन है । तिर्यंच आयुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सागर-शत-पृथक्त्व अन्तर है । वैक्रियिक षट्कका जघन्य एक

अणंतकालं असंखे० । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु० उज्जोव० जह० एग०, उक्क० एकतीसं सादि० । मणुसगदितिग ओघं । चदुजादि० आदाव-थावरादि०४ जह० एगस०, उक्क० एकतीसं सादि० । एवं अब्भवसिद्धियमिच्छादिट्ठि० । विभंगे-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदुगु० णिरय० देवायु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उपघा० णिमि० पंचंत० णत्थि अंत० । दोआयु० देवोओघं । सेसाणं० जह० एग०, उक्क० अंतो । आभि० सुद० ओधि०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० सादासा० सत्तणोक० पंचिंदि० तेजाकम्म० समचतु० वण्ण०४ अगुरु०४ पसत्थवि०

समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल असंख्यात पुद्गल परावर्तन है। तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योतका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३१ सागर है। मनुष्यगतित्रिकमें ओघकी तरह जानना चाहिए। ४ जाति, आताप, स्थावरादि ४ का जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट साधिक ३१ सागर है। अभव्यसिद्धिकमिथ्यादृष्टिका भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेषार्थ—मति अज्ञानी, श्रुताज्ञानी जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। इसका स्पष्टीकरण धवला टीकामें इस प्रकार किया गया है: "मति अज्ञान तथा श्रुताज्ञानसे सम्यक्त्व ग्रहण कर मतिज्ञान व श्रुतज्ञानमे आकर कमसे कम कालका अन्तर देकर पुनः मति अज्ञान, श्रुताज्ञान भावमें गये हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है।

उक्त अज्ञानी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर "उक्कस्सेण बेछावट्ठि सागरोपमाणि" (९९) दो छ्यासठ सागरोपम अर्थात् एक सौ बत्तीस सागरोपमकाल है। इसपर वीरसेन स्वामीने इस प्रकार प्रकाश डाला है: किसी कुमति-कुश्रुतज्ञानी जीवके सम्यक्त्वग्रहण करके कुछ कम छ्यासठ सागरोपमकाल प्रमाण सम्यक्ज्ञानोंका अन्तर देकर पुनः सम्यक्त्व-मिथ्यात्वको जाकर मिश्रज्ञानोंका अन्तर देकर पुनः सम्यक्त्वग्रहण करके कुछ कम छयासठ सागरोपम-प्रमाण परिभ्रमण कर मिथ्यात्वको जानेसे दो छ्यासठ सागरोपम प्रमाण मतिश्रुत-अज्ञानोंका अन्तरकाल पाया जाता है।

शंका—दो छयासठ सागरोपमोंमे जो कुछ कम काल बतलाया है उसका क्या हेतु है ?

समाधान—इसका कारण यह है कि उपशम सम्यक्त्व कालसे दो छयासठ सागरोपमोंके भीतर मिथ्यात्वका अधिक काल पाया जाता है (जीवट्ठाण,अंतराणुगम सूत्र,४ की टीका)। सम्यग्मिथ्यादृष्टिज्ञानको मतिश्रुत अज्ञान रूप मानकर कितने ही आचार्य उपर्युक्त अन्तर-प्ररूपणामे सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर नहीं दिखाते, पर यह बात घटित नहीं होती; क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वभावके अधीन हुआ ज्ञान सम्यग्मिथ्यात्वके समान एक अन्य जातिका बन जाता है।अत. उस ज्ञानको कुमति कुश्रुत रूप माननेमे विरोध आता है।

विभंगावधिमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, नरक, देवायु, तैजस, कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, और ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। दो आयुका देवोंके ओघवत् जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तथा अवधिज्ञानमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, साता-असाता वेदनीय, ७ नोकषाय, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्मण, समचतुरस्रसंस्थान,

तस०४ थिरादि-दोण्णिजुग० सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि०तित्थय०उच्चा०पंचंत० जह० एग०, उक्क० अंतो०। अट्ठक० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिदेसू०। दोआयु० देवग०४ जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। मणुसगदिपंचगं जह० वासपुध०, उक्क० पुव्वकोडि०। आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसा० सादिरे०। एवं ओधिदं० सम्मादिट्ठित्ति।

मणपज्जवणा०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० देवगदि-पंचिंदि० चदुसरीर० समचदु० दोअंगो० वण्ण०४ देवाणुपु० अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमिण-तित्थय०-उच्चा०-पंचंत० जहण्णु० अंतो०। सादासा०-चदुणोक० थिरादितिण्णियु० जह० एग०, उक्क० अंतो०। देवायु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०।

वर्ण ४, अगुरुलघु४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका बन्धक जीव उपशमश्रेणीका आरोहण कर जब उपशान्तकषाय गुणस्थानमें पहुँचा, तब इन ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका बन्ध रुक गया। बादमें जैसे ही वह जीव नीचे गिरा कि इनका बन्ध पुनः प्रारम्भ हो गया। इस दृष्टिसे इन ज्ञानोंमें बन्धका अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा गया है।

आठ कषायोंका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटि है।

विशेषार्थ—एक मनुष्यने अविरत दशामें अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरणरूप कषायाष्टकका बन्ध किया। आठ वर्षकी अवस्थाके अनन्तर सम्यक्त्व तथा महाव्रतको एक साथ धारण कर एक पूर्व कोटिसे अवशिष्ट बची आयु प्रमाण महाव्रती रह मरणकालमें असंयमी बन पुनः ८ कषायोंका बन्ध किया। इस प्रकार देशोन पूर्व कोटि अन्तर होता है।

दो आयु, देवगति ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक ३३ सागर है। मनुष्य गतिपंचकका जघन्य वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्ट पूर्वकोटि है। आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक ६६ सागर है। अवधिदर्शन तथा सम्यक्त्वमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

मनःपर्ययज्ञानमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, ४ शरीर, समचतुरस्र संस्थान, दो अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रसचतुष्क, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और ५ अन्तरायका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—कोई मनःपर्ययज्ञानी उपशमश्रेणी चढ़कर उपशान्तकषाय गुणस्थानमें पहुँचा, तब अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका अबन्ध हो गया। पश्चात् वह सूक्ष्म-साम्परायादि गुणस्थानोंमें उतरा, तो पुनः उन प्रकृतियोंका बन्ध प्रारम्भ हो गया। इस प्रकार यहाँ अन्तर जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है।

साता-असातावेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि ३ युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग अन्तर है।

४१. एवं संजद०। एवं चेव सामाइ० छेदो० परिहार० संजदासंजदा०। णवरि धुविगाणं णत्थि अंत०। सुहुमसंप० सव्वपगदीणं णत्थि अंत०। असंजदे धुविगाणं णत्थि अंत०। थीण०३ मिच्छ० अणंताणु०४ इत्थि० णपुंस० तिरिक्खगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० अप्पसत्थ० उज्जो० दूभग-दुस्स०-अणादे० णीचागो० जह० एग० उक्क० तेत्तीसं० देसू० णवरि थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ जह० अंतो०। चदुआयु० वेउव्वियछक्क० मणुसगदितिगं च ओघं। एइंदिय-दंडओ तित्थयरं च णपुंसकवेदभंगो। चक्खुदंस० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खुदं० ओघं।

विशेषार्थ—कोई एक कोटिपूर्वकी आयुवाला जीव मनःपर्ययज्ञानी हुआ। आयुका त्रिभाग शेष रहनेपर देवायुका प्रथम अन्तर्मुहूर्तमें बन्ध किया। इसके अनन्तर मरणकाल आनेपर पुनः आयुका बन्ध किया। इस प्रकार कुछ कम पूर्वकोटिका त्रिभाग देवायुका अन्तर होगा।

विशेषार्थ—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्ययज्ञानवालोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। क्योंकि मति, श्रुत, और अवधिज्ञानी देव या नारकी जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त कर मति-अज्ञान, श्रुताज्ञान, व विभंगज्ञानके द्वारा अन्तर करके पुनः मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञानमें आनेपर उक्त ज्ञानोंका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त होता है।

इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानीका भी जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। यहाँ यह विशेषता है कि मनःपर्ययज्ञानी संयत जीव मनःपर्ययज्ञानको नष्ट करके अन्तर्मुहूर्त काल तक उस ज्ञानके बिना रहकर फिर उसी मनःपर्ययज्ञानमें लाया जाना चाहिए। (धवला-टीका,खु० बं०, पृ० २२०)

४१ संयममें भी इसी प्रकार है। सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि तथा संयतासंयतोंमें भी इस प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंमे अन्तर नहीं है। सूक्ष्मसाम्परायमें—सर्व प्रकृतियोंका अन्तर नहीं है। असंयतमें—ध्रुव प्रकृतियोंका अन्तर नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद, तिर्यंचगति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति, उद्योत, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीच गोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर है।

विशेषार्थ—कोई मनुष्य या तिर्यंच मोहनीयकी २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मरणकर सातवीं पृथ्वीमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर,(१) विश्राम ले,(२) विशुद्ध हो,वेदक-सम्यक्त्वी हुआ (३) उस समय मिथ्यात्वादि प्रकृतियोंका बन्ध रुका। इस प्रकारकी अवस्था आयुके अल्पकाल अवशेष रहने तक रही। पश्चात् वह जीव मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ (४) इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पुनः तिर्यंच आयुका बन्ध कर (५) विश्राम ले (६) निकला। इस प्रकार ६ अन्तर्मुहूर्त कम ३३ सागर प्रमाण मिथ्यात्वादिका बन्ध नहीं होनेसे उतना अन्तर रहा। (ध० टी० अन्तरा० पृ० १३४)

विशेष यह है कि स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। चार आयु वैक्रियिक षट्क, मनुष्यगतित्रिकका ओघवत् जानना चाहिए। एकेन्द्रिय दण्डक तथा तीर्थंकरका नपुंसकवेदके समान भंग जानना चाहिए। चक्षुदर्शनमें—त्रस पर्याप्तकोंका भंग जानना चाहिए। अचक्षुदर्शनमें—ओघवत् अन्तर जानना चाहिए।

४२. किण्णाए-पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० तित्थ०-पंचंत० दो-आयु० णत्थि अंत०। थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ जह० अंतो०। इत्थि० णपुंसक० दोगदि० पंचसंठा० पंचसंघ० दोआणु० उज्जो० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्स० अणादे० णीचुच्चागो० जह० एग०, उक्क० तेत्तीसं० दे०। दोआयुगस्स णिरयभंगो। वेउव्विय० वेउव्विय०अंगो० जह० एग०, उक्क० बावीसं सा० (१)। सेसाणं जह० एग०, उक्क अंतो०।

४३. एवं णील-काऊणं[1]। णवरि मणुसगदितिगं सादभंगो। वेउव्वि० वेउव्वि०-अंगो० जह० एग०, उक्क० सत्तारस-सत्तसागरो०।

खुद्दाबन्धमें चक्षुदर्शनी जीवोंका जघन्य अन्तर "जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं" (सूत्र ११९) क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है। इसपर धवलाटीकाकार इस प्रकार प्रकाश डालते हैं जो चक्षुदर्शनी जीव क्षुद्रभवग्रहण मात्र आयु स्थितिवाले किसी भी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, व त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अचक्षुदर्शनी होकर उत्पन्न होता है और क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल चक्षुदर्शनका अन्तर कर पुनः चतुरिन्द्रियादिक जीवोंमें चक्षुदर्शनी होकर उत्पन्न होता है, उस जीवके चक्षुदर्शनका क्षुद्रभवग्रहण मात्र अन्तरकाल पाया जाता है।

चक्षुदर्शनीका उत्कृष्ट अन्तर "उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं" (१२० सूत्र) असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अनन्तकाल है।

अचक्षुदर्शनी जीवोंके विषयमें 'णत्थि अंतरं णिरंतरं' (सूत्र १२२) अन्तर नहीं है, वे निरन्तर होते हैं। अचक्षुदर्शनीका अन्तर केवलदर्शनी होनेपर हो सकता है, किन्तु केवलदर्शनी होनेपर अचक्षुदर्शनकी उत्पत्तिका अभाव है। क्षायिक दर्शनके होनेपर क्षायोपशमिक दर्शनका अभाव हो जाता है।

४२. कृष्णलेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर, ५ अन्तराय तथा २ आयुका अन्तर नहीं है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त है [उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर अन्तर है]। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, २ गति, ५ संस्थान, ५ संहनन, २ आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्र, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ३३ सागर है। दो आयुका नरकगतिके समान भंग जानना चाहिए। वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक अंगोपांगका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट २२ सागर जानना चाहिए। शेषका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

४३. इसी प्रकार नील तथा कापोत लेश्यामें जानना चाहिए। विशेष, मनुष्यगतित्रिकमें सातावेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांगका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट सत्रह सागर तथा सात सागर अन्तर है।

---

[1] लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणमन्तरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ तेउलेस्सियं-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ —खुद्दाबंध, सूत्र १२५-१३०।

४४. तेउ०–पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० ओरालिय० आहारतेजाकम्म० आहार०-अंगो० वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमि०-तित्थय०-पंचंत० णत्थि अंत०। थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ जह० अंतो०। इत्थि० णपुंस० तिरिक्खगदि० एइंदि० पंचसंठाण० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० आदावुज्जो० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा० जह० एग०, उक्क० बेसाग० सादि०। सादासाद-पंचणोक० मणुस० पंचिंदि० समचदु० ओरालिय०-अंगो० वज्जरिस० मणुसाणु० पसत्थ० तस० थिरादिदोण्णियु०-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० उच्चा० जह० एग०, उक्क० अंतो। तिरिक्ख-मणुसायु० देवोघं। देवायुगं णत्थि अंतरं। देवगदि०४ जह० दसवस्ससह० अथवा पलिदो०-सादि०। उक्क० बेसागरो० सादि०।

४५. पम्माए–पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० पंचिंदिय० चदुसरी०-ओरालियअंगो० आहारस० अंगो० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमिणं तित्थय० पंचंत० णत्थि अंत०। सेसं तेउभंगो। णवरि सगट्ठिदी भाणिदव्वा। एइंदिय-आदाव-थावरं

विशेषार्थ—कृष्णलेश्याके समान नील तथा कापोतलेश्यायुक्त दो जीवोंने वैक्रियिक शरीर तथा वैक्रियिक अंगोपांगका बन्ध करके मरण किया और क्रमशः पाँचवें तथा तीसरे नरकमें जन्म धारण किया। वहाँ सत्रह सागर तथा सात सागरपर्यन्त उक्त दोनों प्रकृतियोंका बन्ध नहीं हो सका। पश्चात् मरण कर वे मनुष्य हुए, जहाँ उन प्रकृतियोंका पुनः बन्ध हो सका। इस प्रकार सत्रह तथा सात सागर प्रमाण अन्तर सिद्ध हुआ।

४४ तेजोलेश्यामें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, आहारक, तैजस, कार्मण शरीर, आहारक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, निर्माण, तीर्थंकर तथा ५ अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त [और उत्कृष्ट साधिक दो सागर] है।

विशेषार्थ—तेजोलेश्यावाले किसी मिथ्यात्वी जीवने सौधर्मद्विकमें उत्पन्न हो साधिक दो सागर प्रमाण स्थिति प्राप्त की। वहाँ छहों पर्याप्ति पूर्ण कर विश्राम ले, विशुद्ध हो, सम्यक्त्वको ग्रहण कर आयुके अन्तमें मिथ्यात्वी हो मरण किया। उसकी अपेक्षा यहाँ मिथ्यात्व आदिका उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागरोपम कहा है।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, आताप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीचगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक दो सागर है। साता-असाता वेदनीय, ५ नोकषाय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्र संस्थान, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यंचायु-मनुष्यायुका देवोंके ओघ समान है। देवायुका अन्तर नहीं है। देवगति ४ का जघन्य दस हजार वर्ष अथवा साधिक पल्यप्रमाण है। उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागर है।

४५ पद्मलेश्यामें–५ ज्ञानावरण ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, चार शरीर, औदारिक अंगोपांग, आहारकशरीर, अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, तीर्थंकर तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। शेषका तेजोलेश्या-

णत्थि। देवगदि०४ जह० बेसाग० सादि०, उक्क० अट्ठारस० सादिरे०।

४६. सुक्काए—पंचणा० छदंसणा० सादासाद० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिं-दि० तेजाकम्म० समचदु० वज्जरिस० वण्ण०४ अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ थिरादिदोण्णियु०-सुभग-सुस्स०-आदे० णिमि० तित्थय० उच्चा०-पंचंत० जह० एगस०, उक्क० अंतो०। णवरि णिद्दा-पचला ओघं। थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणु०४ जह० अंतो०। इत्थि० णपुंस० पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचा० जह० एगस०, उक्क० एक्कत्तीसं देसू०। अट्ठक० देवायु० मणुसग० ओरालिय० ओरालियअंगो० मणुसाणु० णत्थि अंतरं०। मणुसायु० देवोघं। देव-गदि०४ जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं सा० सादि०। आहारदुगं जहण्णु० अंतो०। भवसिद्धिया[1] ओघं।

के समान भंग जानना चाहिए। विशेष यह है कि अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण अन्तर ग्रहण करना चाहिए। यहाँ एकेन्द्रिय, आताप तथा स्थावरका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, आताप तथा स्थावरका बन्ध सौधर्मद्विक पर्यन्त होता है। वहाँ पीतलेश्या पायी जाती है। पद्मलेश्यामे इनका बन्ध नहीं है, अत अन्तर नहीं कहा है।

देवगति ४ का जघन्य अन्तर साधिक दो सागर तथा उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है।

विशेषार्थ—पद्मलेश्यावाले देवोंकी जघन्य स्थिति साधिक दो सागर है और उत्कृष्ट साधिक १८ सागर है। इनके देवगतिचतुष्कका बन्ध नहीं होगा। इस अपेक्षा उपरोक्त अन्तर कहा है।

४६ शुक्ललेश्यामे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असातावेदनीय, ४ संज्वलन, ७ नोकषाय, पचेन्द्रियजाति, तैजस-कार्मण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वज्रवृषभ-संहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा पंच अन्तरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। विशेष-निद्रा-प्रचलाका ओघवत् जघन्य, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अन्तर है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुवन्धी ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। [उत्कृष्ट कुछ कम इकतीस सागर है।]

विशेषार्थ—शुक्ललेश्यावाला द्रव्यलिंगी जीव ३१ सागरोंकी स्थितिवाले अन्तिम ग्रैवेयकमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंको पूर्ण कर, विश्राम ले, विशुद्ध हो, सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। आयुके अन्तमें पुन मिथ्यात्वको प्राप्त कर मरण किया। इस प्रकार देशोन ३१ सागर प्रमाण मिथ्यात्वीका उत्कृष्ट अन्तर हुआ। इस अपेक्षा मिथ्यात्व अनन्तानुवन्धी आदिका अन्तर उतना ही कहा गया है।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट कुछ कम ३१ सागर है। आठ कषाय, देवायु, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यानुपूर्वीका अन्तर नहीं है। मनुष्यायुका देवोंके ओघ समान है। देवगति ४ का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। आहारकद्विकका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। भव्यसिद्धिकोंमें-ओघवत् जानना चाहिए।

---

१. भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभवसिद्धियाणमंतर केवचिरं कालादो होदि ? णत्थि अंतरं, णिरंतरं॥ —खुद्दाबंध सूत्र,१३१-१३२ ,पृ. २३०

कुदो ? भवियाणमभवियाणं च अण्णोण्णसरूवेण परिणामाभावादो।—खुद्दाबंध टीका,पृ० २३०।

४७. खइगसम्मादिट्ठि धुविगाणं अट्ठकसायाणं च ओधिभंगो। मणुसायु देवोघं। देवायु० जह० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडितिभागं देसू०। मणुसगदिपंचगं णत्थि अंत०। देवगदि०४ आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० तेत्तीसं० सादि०। सादादीणं ओधिभंगो।

४८. वेदगे धुविगाणं तित्थयरस्स च णत्थि अंत०। अट्ठक० दोआयु० मणुसगदिपंचगं ओधिभंगो। देवगदि०४ जह० पलिदोप० सादि०, उक्क० तेत्तीसं सा०। आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० छावट्ठिसागरो० देसूणा, अथवा तेत्तीसं सादिरे०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०।

४९. उवसम०–पंचणा० चदुदंस० सादासाद० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ थिरादिदोण्णियु०

४७. क्षायिकसम्यक्त्वमें–ध्रुव प्रकृति तथा आठ कषायोंका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए। मनुष्यायुका देवोंके ओघ समान है। देवायुका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ कम पूर्व कोटिका त्रिभाग है।

विशेषार्थ—कोई क्षायिकसम्यक्त्वी जीव एक कोटिपूर्वकी आयुवाला मनुष्य उत्पन्न हुआ। आयुका त्रिभाग शेष रहनेपर उसने आगामी देवायुका बन्ध किया और आयुके पूर्ण होनेके पूर्व पुनः उसी आयुका बन्ध किया। इस प्रकार कुछ कम एक कोटि पूर्वका त्रिभाग देवायुका अन्तर रहा।

मनुष्यगतिपंचकमें अन्तर नहीं है। देवगति ४, आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक ३३ सागर है। सातादि प्रकृतियोंका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए।

४८. वेदकसम्यक्त्वमें ध्रुव प्रकृतियों तथा तीर्थंकर प्रकृतिका अन्तर नहीं है। आठ कषाय, (अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, दो आयु, मनुष्यगतिपंचकका अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए। देवगति ४ का जघन्य साधिक पल्य है तथा उत्कृष्ट ३३ सागर है।

विशेषार्थ—किसी वेदकसम्यक्त्वी मनुष्यने सुरचतुष्कका बन्ध करनेके अनन्तर मरण करके सौधर्मद्विक या सर्वार्थसिद्धिमें जन्म धारण किया। वहाँ सौधर्मद्विककी जघन्य आयु साधिक पल्यप्रमाण वेदकसम्यक्त्वी रहा और सुरचतुष्कका बन्ध नहीं हुआ। मरणके बाद पुनः मनुष्य हो उसका बन्ध प्रारम्भ कर दिया। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें तेतीस सागरप्रमाण वेदकसम्यक्त्वयुक्त रहकर सुरचतुष्कका बन्ध नहीं किया। मरण करके मनुष्य हो सुरचतुष्कका बन्ध पुनः प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार पूर्वोक्त बन्धका अन्तर जानना चाहिए।

आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट कुछ कम ६६ सागर है। अथवा साधिक तेतीस सागर है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

४९. उपशमसम्यक्त्वमें–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, साता-असाता वेदनीय, ४ संज्वलन, ७ नोकषाय, पंचेन्द्रियजाति, तैजस-कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४,

१ खइयसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णत्थि अन्तरं, णिरंतरं।' –खु० बंध २, पृ० २३२।
२ सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके अपरा पल्योपममधिकम्। –त० सूत्र, अ० ४

सुभ० सुस्स० आदे० णिमि० तित्थ० उच्चा० पंचंत० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णिद्दा-प० अट्ठक० देवगदि०४ आहारदुग० जहण्णु० अंतो०। मणुसगदिपंचगं णत्थि अंतरं।

५०. सासणे-पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदुगुं० तिण्णिआयु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० णत्थि अंत०। सेसाणं जह० एग०, उक्क० अंतो०।

५१. सम्मामि०-दो वेदणी०-चदुणो० थिरादितिण्णियु०- जह० एग० उक्क० अंतो०। सेसाणं णत्थि अंतरं।

५२. सण्णि-पंचिंदियपज्जत्तभंगो।[2] असण्णि-धुविगाणं णत्थि अंत०।[3]

प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र तथा पंच अन्तरायोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—किसी उपशमसम्यक्त्वी जीवने उपशमश्रेणीका आरोहण कर जब उपशान्तकषाय गुणस्थान प्राप्त किया, तब ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके बन्धकी व्युच्छित्ति हो गयी, पुनः नीचे गिरनेपर उन प्रकृतियोंका बन्ध प्रारम्भ हो गया। इस दृष्टिसे यहाँ अन्तर कहा है।

निद्रा-प्रचला, आठ कषाय, देवगति ४, आहारकद्विकका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—निद्रादिका बन्धक कोई उपशमसम्यक्त्वी उपशम श्रेणीमे चढा। वह जब अपूर्वकरणके अन्तिम भाग तथा आगेके गुणस्थानोंमे चढा, तब निद्रादिका बन्ध होना रुक गया। पश्चात् नीचे उतरनेपर पुनः बन्ध आरम्भ हो गया। इसका अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होगा।

मनुष्यगतिपचकका अन्तर नही है।

५० सासादनसम्यक्त्वमे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, नरकको छोड़ तीन आयु, पंचेन्द्रिय, तैजस- कार्मण वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण ५, अन्तरायोंका अन्तर नहीं है। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

५१. सम्यक्त्वमिथ्यात्वमे—दो वेदनीय, ४ नोकषाय, स्थिरादि तीन युगलका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंमे अन्तर नहीं है।

५२ सज्ञीमे—पचेन्द्रियपर्याप्तकका भंग जानना चाहिए। असंज्ञीमे-ध्रुव प्रकृतियोंका

---

१ सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-वेदकसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणमतर केवचिर कालादो होदि ? ॥१३३॥ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥१३४-१३५॥ —खुद्दाबंध २, पुस्तक ७, पृ० २३१।

२ सण्णियाणुवादेण सण्णीणमतर केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।

३ असण्णीणमतर केवचिर कालादो होदि ? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण, उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्त ॥ खुद्दाबंध सूत्र, १४२-१४७।

चदुआयु० वेउव्वियछक्क० मणुसगदितिगं च तिरिक्खोघं। सेसाणं जह० एग० स०, उक्क० अंतो०।

५३. आहारगे-पंचणा० छदंसणा० सादासाद० चदुसंज० सत्तणोक० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ थिरादि दोण्णियुग० सुभग-सुस्स०-आदे० णिमि० तित्थय०-पंचंत० जह० एग०, उक्क० अंतो०। णवरि णिद्दा-पचलाणं जहण्णु० अंतो०। तिण्णि आयु० आहारदुगं जह० अंतो०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०। एवं चेव वेउव्वियछक्क-मणुसगदितिगं च। णवरि जह० एग०। ओरालिय० ओरालि०-अंगो० वज्जरिस० जह० एग०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादि०। सेसाणं ओघं। अणाहार०[1] कम्मइगभंगो।

एवं अंतरं समत्तं।

अन्तर नहीं है। चार आयु, वैक्रियिकषट्क, मनुष्यगतित्रिकका तिर्यंचोंके ओघ समान जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अन्तर है।

५३. आहारकमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता-असातावेदनीय, संज्वलन ४, ७ नोकषाय, पंचेन्द्रियजाति, तैजस- कार्मण-शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर तथा पंच अन्तरायोंका जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। विशेष, निद्रा-प्रचलाका जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। ३ आयु, आहारकद्विकका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट अंगुलके असंख्यातवें भाग है। [2]इसी प्रकार वैक्रियिकषट्क, मनुष्यगतित्रिकका जानना चाहिए। विशेष, इनका जघन्य एक समय प्रमाण है। औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्र-वृषभसंहननका अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य है। शेष प्रकृतियोंका ओघवत् है।

अनाहारकोंमें— कार्मण काययोगके समान जानना चाहिए।

इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा अन्तर समाप्त हुआ।

---

१ कम्मइयकायजोगीणमंतर केवचिरं कालादो होदि ? ॥७७॥ जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं ॥७८॥ उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥७९॥ —खुद्दाबंध खंड २, पु० ७, पृ० २१२।

२ "आहाराणुवादेण सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ। असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥"— पु ५, पृ. १७३-७५, सूत्र ३८४-९०

[सण्णियासपरूवणा]

५४. सण्णियासो दुविधो सत्थाणसण्णियासो चेव परत्थाणसण्णियासो चेव। सत्थाणसण्णियासे पगदं। दुविधो णिद्देसो ओघे० आदेसे०।

५५. ओघे०–आभिणिबोधिय-णाणावरणीयं बंधंतो चदुण्णं णाणावरणीयाणं णियमा बंधगो। एवं एक्कमेक्कस्स बंधगो। णिद्दाणिद्दं बंधंतो अट्ठदंसणा० णियमा बंध०। एवं थीणगिद्धितियस्स। णिद्दं बंधं० थीणगिद्धितियं सिया बंधगो सिया अबंधगो, पंचदंसणा० णियमा बंधगो। एवं पचला०। चक्खुदंसणा० बंध० पंच-

---

[सन्निकर्षप्ररूपणा]

५४. सन्निकर्ष दो प्रकारका है, एक स्वस्थान सन्निकर्ष और दूसरा परस्थान सन्निकर्ष है। यहाँ स्वस्थान सन्निकर्ष प्रकृत है। उसका ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारसे निर्देश करते हैं।

विशेषार्थ—स्वस्थान सन्निकर्षमें एक साथ बँधनेवाली एकजातीय प्रकृतियोंका ग्रहण किया गया है। परस्थान सन्निकर्षमें एक साथ बँधनेवाली सजातीय एवं विजातीय प्रकृतियोंका ग्रहण किया गया है।

५५. ओघसे—आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका बन्ध करनेवाला शेष श्रुतादि ज्ञानावरण-चतुष्टयको नियमसे बाँधता है। इसी प्रकार एक प्रकृतिका बन्ध करनेवाला ज्ञानावरणकी शेष प्रकृतियोंका बन्धक है।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणकी मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञानावरणरूप किसी भी प्रकृतिका बन्ध होनेपर शेष चार प्रकृतियोंका भी नियमसे बन्ध होगा। ऐसा नहीं है कि अवधिज्ञानावरणका तो बन्ध होता रहे और मनःपर्ययज्ञानावरणादिका बन्ध न हो। पाँचों ज्ञानावरणके भेदोंका सदा एक साथ बन्ध होता रहता है।

निद्रानिद्राका बन्ध करनेवाला ८ दर्शनावरणका नियमसे बन्धक है। इसी प्रकार स्त्यानगृद्धित्रिकमें भी समझना चाहिए। निद्राका बन्धक स्त्यानगृद्धित्रिकका बन्धक है भी और नहीं भी है। किन्तु वह दर्शनावरणपंचक अर्थात् चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरण तथा प्रचलाका नियमसे बन्धक है।

विशेषार्थ—स्त्यानगृद्धित्रिकका बन्ध सासादन गुणस्थान तक होता है और निद्रा प्रकृतिका अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथमभागपर्यन्त बन्ध होता है, अतः निद्राका बन्ध होनेपर स्त्यानगृद्धित्रिकका बन्ध होना अनिवार्य नहीं है; हो भी सकता है, नहीं भी होवे।

निद्राके समान प्रचलाका भी वर्णन जानना चाहिए। चक्षुदर्शनावरणका बन्धक जीव निद्रादिक पाँच दर्शनावरणका कथंचित् बन्धक है, कथंचित् अबन्धक है, किन्तु अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरणका नियमसे बन्धक है। इसी प्रकार अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरणमें जानना चाहिए।

दंसणा० सिया बंधगो सिया अबंधगो, तिण्णि दंसणा० णियमा बंधगो। एवं तिण्णि दंसणा०। सादं बंधंतो असादस्स अबं०। असादं बंध० साद० अबं०।

५६. मिच्छत्तं बंधंतो सोलसक०-भयदुगुं० णियमा बंधगो। इत्थिवेदं सिया बंधगो, सिया अबंधगो। पुरिसवेदं सिया अबंधगो [बंधगो], सिया अबंधगो। णपुंस० सिया बंध० सिया अबंध०। तिण्णि वेदाणं एकतरं बंधगो, ण चेव अबंध०। हस्स-रदि सिया बंध० सिया अबंध०। अरदि-सोगा० सिया बंध० सिया अबंध०। दोण्णं जुगलाणं एकतरं बंधगो ण चेव अबंध०।

५७. अणंताणुबंधिकोधं बंधंतो मिच्छत्तं सिया बंध० सिया अबं०, पण्णारसक०-भयदुगुं० णियमा बंधगो। इत्थिवेदं सिया बं०, पुरिस० सिया बं०, णपुंस० सिया बं०। तिण्णि वेदाणं एकतरं बंधओ ण चेव अबंध०। हस्सरदि सिया बं०। अरदिसोगं सिया बंध०। दोण्णं जुगला० एकतरं बंध०, ण चेव अबं०। एवं तिण्णि कसायाणं।

विशेषार्थ—चक्षुदर्शनावरणका बन्ध सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानपर्यन्त होता है और पंच निद्राओंका अपूर्वकरणपर्यन्त होता है, इस कारण चक्षुदर्शनावरणके बन्धकके निद्रादिका बन्ध विकल्प रूपसे कहा है।

साताका बन्ध करनेवाला असाताका अबन्धक है। असाताका बन्धक साताका अबन्धक है।

विशेषार्थ—साता और असाता परस्पर प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ हैं। अतः एकके बन्ध होते समय दूसरीका अबन्ध होगा।

५६. मिथ्यात्वका बन्ध करनेवाला—सोलह कषाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्रीवेदका स्यात् (कथञ्चित्) बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। तीन वेदोंमें-से अन्यतमका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। हास्य, रतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। अरति-शोकका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। दोनों युगलोंमें-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है।

५७. अनन्तानुबन्धी क्रोधका बन्ध करनेवाला मिथ्यात्वका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। किन्तु शेष १५ कषाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है।

विशेषार्थ—अनन्तानुबन्धीका सासादनपर्यन्त बन्ध होता है, किन्तु मिथ्यात्वका प्रथम गुणस्थान पर्यन्त। अतः अनन्तानुबन्धीके बन्धकके साथ मिथ्यात्वका बन्ध हो भी और न भी हो।

स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है, पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है, नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है, तीनों वेदोंमें-से किसी एकका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। हास्य-रतिका स्यात् बन्धक है, अरति-शोकका स्यात् बन्धक है। दो युगलोंमें-से किसी एक युगलका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान, माया तथा लोभके बन्धकमें जानना चाहिए।

५८. अपच्चक्खाणं कोधं बंधंतो मिच्छत्त० अणंताणु०४ सिया बंधगो। सिया अबंध०। एक्कारसक०-भयदुगु० णियमा बंध०। इत्थिवे० सिया बंध०। पुरिसवं०[वे०] सिया बंध०। णपुंस० सिया बंध०। तिण्णि वेदाणं एक्कतरं बंधगो। ण चेव अबंध०। हस्सरदि सिया बंध०। अरदिसो० सिया बं०। दोण्णि युग० एक्कतरं बंधगो ण चेव अबंध०। एवं तिण्णि कसायाणं।

५९. पच्चक्खाणावर० कोधं बंधंतो मिच्छ० अट्ठकसा० सिया बं० सिया अबं०। सत्तक०-भयदु० णियमा बंधगो। इत्थि० सिया बं०। पुरिस० सिया बं०। णपुंस० सिया बं०। तिण्णि वेदाणं एक्कतरं बं०, ण चेव बंध० [अबंधगो]। हस्सरदि सिया बंध०। अरदिसोगाणं सिया बंधगो। दोण्णं युगलाणं एक्कतरं बंध०, ण चेव अबंध०। एवं तिण्णि कसायाण।

६०. कोधसंज० बंधं० मिच्छ० बारसक० भयदुगुं० सिया बंध० तिण्णि संज०

---

५८. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका बन्ध करनेवाला मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ का स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरणका बन्ध चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त होता है और मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी ४ का क्रमशः मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थान तक बन्ध होता है, इस कारण अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धके साथ मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकी अनिवार्यता नहीं है।

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा अप्रत्याख्यानावरण क्रोधको छोड़कर शेष ग्यारह कषाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है। पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है। नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीनों वेदोंमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। हास्य, रतिका स्यात् बन्धक है। अरति, शोकका स्यात् बन्धक है। दो युगलोंमें-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—हास्य-शोक, रति-अरति ये परस्पर विरोधी प्रकृतियाँ हैं। अत जब हास्य-रतिका बन्ध होगा, तब शोक-अरतिका बन्ध नहीं होगा।

अप्रत्याख्यानावरण मान, माया, लोभमें अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान जानना चाहिए।

५९. प्रत्याख्यानावरण क्रोधका बन्ध करनेवाला–मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी तथा अप्रत्याख्यानावरणरूप कषायाष्टकका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। शेष प्रत्याख्यानावरण ३ तथा संज्वलन ४ इस प्रकार ७ कषाय, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है। पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है। नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीन वेदोंमें-से किसी एकका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। हास्य-रतिका स्यात् बन्धक है। अरति-शोकका स्यात् बन्धक है। दो युगलोंमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मान, माया तथा लोभका भी वर्णन जानना चाहिए।

६०. संज्वलन क्रोधका बन्ध करनेवाला–मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्साका स्यात्

णियमा बंध० । इत्थि० सिया बं० । पुरिस० सिया बं० । णपुंस० सिया बं० । तिण्णि वेदाणं एकदरं बंध० । अथवा तिण्णं पि अबं० । हस्सरदि सिया बं० । अरदिसोग० सिया बं० । दोण्णं युग० एकतरं बं० अथवा दोण्णं पि अबं० । एवं तिण्णं संजलणाणं । णवरि माणं बं० मायालो० णियमा बंध० । तेरसक० भयदुगुं० सिया बं० । मायं बंधं० लोभं णियमा बंध० । चोद्दसक० भयदु० सिया बं० । लोभसंज० बंधं० पण्णारसक० भयदु० सिया [बंधगो] ।

६१. इत्थिवेदं बंधंतो मिच्छत्तं सिया [बं०] । सोलसक० भयदु० णियमा बं० । हस्सरदि सिया० । अरदिसोग० सिया० । दोण्णं युगलाणं एकतरं बंध० णव (?) चेव अबं० ।

६२. पुरिसवेदं बंधंतो मिच्छत्तं बारसक० भयदु० सिया बं० हस्सरदि सिया बं० अरदिसोग० सिया बं० । दोण्णं युगलाणं एकतरं बं० । अथवा दोण्णं पि अबं० । चदुसंज० णियमा बं० ।

बन्धक है, किन्तु शेष मान, माया, लोभरूप संज्वलनका नियमसे बन्धक है । स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है । पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है । नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है । तीनों वेदोंमें-से किसी एकका बन्धक है, अथवा तीनोंका भी अबन्धक है ।

विशेषार्थ—वेदका बन्ध अनिवृत्तिकरणके प्रथम भाग पर्यन्त है, किन्तु संज्वलन क्रोध-का बन्ध अनिवृत्तिकरणके अवेदभाग तक होता है । अतः संज्वलन क्रोधके बन्धकको वेदत्रय-का अबन्धक भी कहा है ।

हास्य-रतिका स्यात् बन्धक है । अरति-शोकका स्यात् बन्धक है । दो युगलोंमें-से किसी एक युगलका बन्धक है अथवा दोनों युगलोंका ही अबन्धक है ।

विशेषार्थ—अरति-शोकका प्रमत्त गुणस्थानपर्यन्त तथा हास्य-रतिका अपूर्वकरण पर्यन्त बन्ध है । अत संज्वलन क्रोधके बन्धकमें इनके बन्धका स्यात् सद्भाव है, स्यात् नहीं भी है ।

संज्वलन मान, माया, लोभमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि संज्वलन मानको बाँधनेवाला संज्वलन माया और लोभका नियमसे बन्धक है । तेरह कषाय अर्थात् संज्वलन मान-माया-लोभरहित शेष कषाय, भय तथा जुगुप्साका स्यात् बन्धक है । संज्वलन मायाको बाँधनेवाला संज्वलन लोभको नियमसे बाँधता है । शेष १४ कषाय तथा भय, जुगुप्साका स्यात् बन्धक है । संज्वलन लोभको बाँधनेवाला-१५ कषाय, भय, जुगुप्सा-का स्यात् बन्धक है ।

६१. स्त्रीवेदको बाँधनेवाला मिथ्यात्वका स्यात् बन्धक है, १६ कषाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है । हास्य-रतिका स्यात् बन्धक है । अरति-शोकका स्यात् बन्धक है । दोनों युगलोंमें-से एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदकी बन्धव्युच्छित्ति सासादन गुणस्थानके अन्तमें होती है, अत स्त्रीवेदके बन्धकके मिथ्यात्वका बन्ध विकल्प रूपसे कहा है ।

६२. पुरुषवेदको बाँधनेवाला-मिथ्यात्व, संज्वलन ४ को छोड़कर शेष १२ कषाय, भय, जुगुप्साका स्यात् बन्धक है ।

६३. णपुंसं बंधं० मिच्छत्त० सोलसक० भयदुगु० णियमा बं०। हस्सरदि सिया० [बं०] अरदिसोग० सिया बं०। दोण्णं युगलाणं एकतरं बं०, ण चेव अबं०।

६४. हस्सं बंधं० मिच्छत्त० बारसक० सिया बं०। चदुसंज० रदि-भय-दुगुं णियमा बं०। इत्थि० पुरिस० णपुंस० सिया बं०। तिण्णि वेदाणं एक्क० [बंधगो] ण चेव अबं०। एवं रदि।

६५. अरदिं बंधं० मिच्छ० बारसक० सिया [बं०]। चदुसंज० सोग-भयदुगु० णियमा बं०। इत्थि० पुरिस० णपुंस० सिया०। तिण्णं वेदाणं एक्कद० बंध०, ण चेव अबंध०। एवं सोगं।

६६. भयं बंधंतो मिच्छत्त-बारसक० सिया० [बंधगो]। चदुसंजल० दुगु० णियमा बं०। इत्थि० पुरिस० णपुंस० सिया०। तिण्णं वेदाणं एक्कद० [बंधगो]

विशेषार्थ—पुरुषवेदके बन्धकके संज्वलन ४ का अनिवृत्तिकरण गुणस्थान पर्यन्त नियमसे बन्ध होता है। अतः यहाँ संज्वलनचतुष्टयको छोड़कर बारह कषायोंका विकल्प रूपसे बन्ध कहा है।

हास्य-रतिका स्यात् बन्धक है। अरति-शोकका स्यात् बन्धक है। दोनो युगलोंमें-से किसी एक युगलका बन्धक है अथवा दोनोंकाही अबन्धक है। चार संज्वलनका नियमसे बन्धक है।

६३. नपुंसकवेदको बाँधनेवाला—मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। हास्य-रतिका स्यात् बन्धक है। अरति-शोकका स्यात् बन्धक है। दोनों युगलोंमे-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—नपुंसकवेद तथा स्त्रीवेदके बन्धकोंके १६ कषायोंका नियमसे बन्ध कहा है, किन्तु पुरुषवेदके बन्धकोंके संज्वलनको छोड़कर शेष १२ कषायोंका स्यात् बन्ध कहा है। इसका कारण यह है कि नपुंसकवेद तथा स्त्रीवेदके बन्धक क्रमशः मिथ्यात्व, सासादन तक होते है, वहाँ १६ कषायोंका बन्ध होता है। पुरुषवेदका बन्ध अनिवृत्तिकरणगुणस्थान पर्यन्त होता है, इस कारण पुरुषवेदके बन्धकोंके १२ कषायोंके कथंचित् बन्धका वर्णन किया गया है, किन्तु संज्वलन ४ का नियमसे बन्ध कहा है।

६४. हास्यका बन्ध करनेवाला—मिथ्यात्व तथा १२ कषायका स्यात् बन्धक है।

विशेषार्थ—हास्यका बन्ध अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यन्त होता है, किन्तु मिथ्यात्व एवं १२ कषायोंका उसके नीचे पर्यन्त बन्ध होता है। इस कारण हास्यके बन्धकके मिथ्यात्वादिका बन्ध विकल्प रूपसे बताया है।

चार संज्वलन, रति, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीनों वेदोंमे-से एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार रति प्रकृतिमे जानना चाहिए।

६५. अरतिका बन्ध करनेवाला—मिथ्यात्व, १२ कषायका स्यात् बन्धक है। ४ संज्वलन, शोक, भय, जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीनों वेदोंमे-से एक वेदका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार शोकमे जानना चाहिए।

६६. भयका बन्ध करनेवाला—मिथ्यात्व, १२ कषायका स्यात बन्धक है। ४ संज्वलन तथा जुगुप्साका नियमसे बन्धक है। स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीनों वेदोंमे-से

ण चेव अबं०। हस्सरदी सिया [बं०], अरदिसोग० सिया [बं०]। दोण्णं युग० एक्कद० ण चेव अबं०। एवं दुगु०।

६७. णिरयायुगं बंधंतो तिरिक्खायुगं मणुसायुगं देवायुगं अबंधगो। एवमण्णमण्णस्स अबंधगो।

६८. णिरयगतिं [दिं] बंधंतो पंचिंदि०वेउव्विय-तेजाक० हुंडसंठाणं वेउव्वि० अंगो० वण्ण०४ णिरयाणुपु० अगु०४ अपस० तस०४ अथिरादिछ० णिमिण० णियमा बं०। एवं णिरयाणुपुव्वि०।

६९. तिरिक्खगतिं बंधंतो ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ तिरक्खाणु० अगु० उप० णिमिण० णियमा बंध०। एइंदियजादि सिया०। एवं बेइं० तेइं० चदु० पंचिंदि० सिया [बंधगो]। पंचण्णं जादीणं एक्कदरं बंधगो, ण चेव अबंधगो। एवं छसंठा० एक्कतरं बंधगो। ण चेव अबंधगो। ओरालि० अंगो० परघादुस्सा० आदावुज्जो० सिया बं० सिया अबं०। छस्संघ० सिया०। दो विहाय० सिया०। दो सरं सिया बंधगो,

---

किसी एकका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। हास्य, रतिका स्यात् बन्धक है। अरति, शोकका स्यात् बन्धक है। दोनों युगलोंमें-से एक युगलका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। जुगुप्साका बन्ध करनेवालेके इसी प्रकार जानना चाहिए।

६७. नरकायुका बन्ध करनेवाला–तिर्यंचायु, मनुष्यायु तथा देवायुका अबन्धक है। इसी प्रकार किसी अन्य आयुका बन्ध करनेवाला शेषका अबन्धक है। जैसे तिर्यंचायुका बन्धक शेष तीन आयुओंका अबन्धक होगा। कारण एक समयमें बध्यमान एक ही आयु होगी।

६८ नरकगतिका बन्ध करनेवाला–पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस, कार्मण शरीर, हुंडक संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, नरकानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादिषट्क, निर्माणका नियमसे बन्धक है।

विशेषार्थ—नरकगतिमें संहननका अभाव होनेसे उसका बन्ध नहीं बताया है। कारण संहनन अस्थिबन्धन विशेषरूप है, वैक्रियिक शरीरमें अस्थिका अभाव है।

नरकानुपूर्वीका बन्ध करनेवालेके-नरकगतिके समान जानना चाहिए।

६९. तिर्यंचगतिका बन्ध करनेवाला–औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर, वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। एकेन्द्रिय जातिका स्यात् बन्धक है। इसी प्रकार दो, तीन, चार, पंचेन्द्रिय जातिका स्यात् बन्धक है। पंचजातियोंमें-से एकका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार छह संस्थानोंमें-से किसी एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। औदारिक अंगोपांग, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। ६ संहननोंका स्यात् बन्धक है।

विशेषार्थ—तिर्यंचगतिके बन्धकके ६ संहननका बन्ध अनिवार्य नहीं है, कारण एकेन्द्रियोंमें संहनन नहीं होता है। अस्थिबन्धनविशेषको संहनन कहते हैं। एकेन्द्रियोंके अस्थियाँ नहीं पायी जाती हैं। उनके द्वारा गृहीत आहारका मांस रुधिरादिरूप परिणमन नहीं होता है। इस कारण उनके संहननका अभाव कहा है।

सिया अबंधगो। अथवा छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबं०। तस० सिया०। थावरं सिया०। दोण्णं पगदी० एकतरं बं०, ण चेव अबं०। एवं अट्ठयुगलाणं। एवं तिरिक्खाणु०।

७०. मणुसगदिं बं० पंचिंदि० ओरालिय-तेजाक० ओरालि० अंगो० वण्ण०४ मणुसाणु० अगु० उप० तस-बादर-पत्ते० णिमि० णियमा [बंधगो]। छस्संठा० छस्संघ०पज्जत्ता० अपज्ज० थीरादि-पंच-युग० सिया बं०, सिया अबं०। एदेसिं एकतरं बं०, ण चेव अबं०। परघादुस्सा० तित्थय० सिया बं०, सिया अबं०। दो विहा० दो सर० सिया बंध०, सिया अ०। अथवा दोण्णं दोण्णं पि अबं०। एवं मणुसाणु०।

७१. देवगदिं बंधंतो पंचिंदि० वेउव्विय-तेजाक० समचदु० वेउव्वि० अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगु०४ पसत्थ० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० णियमा बं०। आहारदुग-तित्थय० सिया० [बं० सिया] अबं०। थिरादेतिण्णि यु० सिया बं०, सिया अबंध०। तिण्णि युगलाणं एकतरं बंध०, ण चेव अबं०। एवं देवाणपु०।

दो विहायोगतिका स्यात् बन्धक है। दो स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। अथवा ६ संहनन, दो विहायोगति, तथा दो स्वरोंका भी अबन्धक है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें संहननके समान विहायोगति तथा स्वरका अभाव है। इस कारण ६, २, २ का अबन्धक भी कहा है।

त्रसका स्यात् बन्धक है। स्थावरका स्यात् बन्धक है। दोनोंमें-से किसी एकका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभ, सुभग, आदेय, यश कीर्ति और स्थिर इनके आठ युगलोंका इसी प्रकार वर्णन समझना चाहिए अर्थात् प्रत्येक युगलमें-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। तिर्यंचानुपूर्वीका बन्ध करनेवालेके तिर्यंचगतिके समान भंग है।

७०. मनुष्यगतिका बन्ध करनेवाला—पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्धक है। ६ संस्थान, ६ संहनन, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिरादि पंचयुगलका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। इनमें-से किसी एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। परघात, उच्छ्वास, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। दो विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। अथवा दो विहायोगति, दो स्वरका भी अबन्धक है। मनुष्यानुपूर्वीमें मनुष्यगतिके समान जानना चाहिए।

७१. देवगतिका बन्ध करनेवाला—पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस-कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्त-विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। आहारकद्विक, तीर्थंकरका [स्यात् बन्धक] स्यात् अबन्धक है। स्थिरादि तीन युगलका स्यात् बन्धक स्यात् अबन्धक है। तीन युगलोंमें-से किसी एक युगलका बन्धक है, अबन्धक नहीं है।

देवानुपूर्वीमें देवगतिके समान जानना चाहिए।

७२. एइंदियं बंधंतो तिरक्खग० ओरालिय-तेजाक० हुंड० वण्ण०४ तिरिक्खाणु० अगु०उप० थावर-दूभग-अणा० णिमि० णियमा०। पर० उस्सा० आदावुज्जो० सिया बं०, सिया अबं०। बादरसुहुम० सिया [बं०]। दोण्णं० एक्कदरं बं०, ण चेव अबं०। एवं पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साधारण-थिराथिर-सुभासुभ-जस-अज० सिया एक्कतरं बं०, ण चेव अ०। एवं थावरं०।

७३. बीइंदि० बंध० तिरिक्खग० ओरालि० तेजाकम्म० हुंडसं० ओरालि० अंगो० असंपत्त० वण्ण०४ तिरिक्खाणुपु० अगु० उप० तस० बादरपत्ते० दूभग-अणा० णिमि० णियमा० [बंधगो]। परघादुस्सा० उज्जोव० अप्पसत्थ०-दुस्स० सिया [बं०] सिया अबं०। पज्जत्ता अपज्ज० सिया [बं०] सिया [अबं०]। दोण्णं युगजो० (?) एक्क० बं०, ण चेव अबं०। एवं थिरादि-तिण्णियुगलाणं एक्कतरं बं०, ण चेव अबं० एवं तीइंदि० चतुरिंदि०।

७४. पंचिंदिय-जादिणामं बंधंतो णिरयगदिं सिया बं०, सिया अबं०। एवं तिरिक्ख-मणुस-देवगदि०। चदुण्णं गदीणं एक्कदरं० बं०, णव चेव अबं०। एवं दो सरीरं० छस्संठा० दो-अंगो० चदुआणु० पज्जत्तापज्जत्त० थिरादि पंचयुगलाणं। आहारदुगं परघादुस्सा० उज्जो० तित्थय० सिया बं०, सिया अ०। तेजाक० वण्ण०४

---

७२. एकेन्द्रिय जातिका बन्ध करनेवाला—तिर्यंचगति, औदारिक-तैजस कार्मण शरीर, हुंडक संस्थान, वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, दुर्भग, अनादेय और निर्माणका नियमसे बन्धक है। परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। बादर, सूक्ष्मका स्यात् बन्धक है। दोमें-से एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक साधारण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिमें-से एकतरका स्यात् बन्धक है; अबन्धक नहीं है। स्थावरके विषयमें एकेन्द्रियके समान जानना चाहिए।

७३. दो इन्द्रियका बन्ध करनेवाला—तिर्यंचगति, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, हुंडक संस्थान, औदारिक अंगोपांग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक, दुर्भग, अनादेय तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति तथा दुस्वरका स्यात् बन्धक, स्यात् अबन्धक है। पर्याप्त-अपर्याप्तक स्यात् बन्धक, स्यात् अबन्धक है। दोनोंमें-से एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। स्थिरादि तीन युगलमें-से एकतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रियका बन्ध करनेवालेके इसी प्रकार जानना चाहिए।

७४. पंचेन्द्रिय जाति नामकर्मका बन्ध करनेवाला—नरकगतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। इसी प्रकार तिर्यंच-मनुष्य-देवगतिमें जानना चाहिए अर्थात् स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। चारों गतियोंमें-से एकका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। दो शरीर (औदारिक, वैक्रियिक), छह संस्थान, दो अंगोपांग, ४ आनुपूर्वी, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिरादि पंच युगलमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, उद्योत तथा

अगु० उप० तस-बादर-पत्ते० णिमि० णियमा [बंधगो]। छस्संघ० दोविहा० दोस० सिया बंधगो। छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एकदरं बं०, अथवा छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबं०।

७५. ओरालियसरीरं बंधं० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं णियमा बंध०। तिरिक्खमणुसगदि सिया [बं०]। दोण्णं एक्कदरं बंधगो, ण चेव अबं०। एवं भंगो पंचजादि-छस्संठाणं दो आणु० तसथावरादि-णव-युगलाणं। ओरालि० अंगो० परघादु० आदावुज्जो० तित्थय० सिया बं०, सिया अबं०। छस्संघ० दोविहा० दो सरं सिया बंध०, सिया अबं०। अथवा [छण्णं] दोण्णं दोण्णं पि अबंध०।

७६. वेगुव्वियस० बंधंतो पंचिंदि० तेजाक० वेगुव्विय० अंगो० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमिणं णियमा बं०, णिरयगदि-देवगदी० सिया बंध०। दोण्णं एकदरं बं०, ण चेव अबंध०। एवं समचदु० हुंडसंठा० दोण्णं आणुपु० दो विहाय०

तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। तैजस, कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, त्रस-बादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्धक है। ६ संहनन, दो विहायोगति तथा दो स्वरका स्यात् बन्धक है। इन, ६, २, २ में-से एकतरका बन्धक है, अथवा ६, २, २ का भी अबन्ध है।

७५. औदारिक शरीरका बन्ध करनेवाला – तैजस, कार्मण वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणका नियमसे बन्धक है। तिर्यंचगति, मनुष्यगतिका स्यात् बन्धक है। दोनोंमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—देवगति, नरकगतिका सन्निकर्ष वैक्रियिक शरीरके साथ है औदारिकके साथ नहीं है, इससे यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया गया है।

पाँच जाति, ६ संस्थान, दो आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगलमें भी तिर्यंच मनुष्यगतिके समान जानना चाहिए।

औदारिक अंगोपांग, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत और तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है।

विशेषार्थ—औदारिक शरीरको धारण करनेवाले एकेन्द्रियके औदारिक अंगोपांग नहीं पाया जाता है। इस कारण औदारिक अंगोपांगका बन्ध यहाँ विकल्प रूपसे कहा गया है।

छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। अथवा [६] २, २ का भी अबन्धक है।

७६. वैक्रियिक शरीरका बन्ध करनेवाला – पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्मण शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ और निर्माणका नियमसे बन्धक है।

विशेषार्थ—वैक्रियिक शरीरके साथ वैक्रियिक अंगोपांगका नियमसे बन्ध होता है। इस कारण यहाँ औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांगके समान विकल्प नहीं है।

नरकगति, देवगतिका स्यात् बन्धक है। दोमें-से एकका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। समचतुरस्र संस्थान, तथा हुंडक संस्थानमें इसी प्रकार जानना चाहिए अर्थात् इनमें अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं।

विशेषार्थ—वैक्रियिक शरीरधारी देवोंमें समचतुरस्र संस्थान होता है और नारकियोंमें हुंडक संस्थान पाया जाता है। अन्य संस्थानोंका वैक्रियिक शरीरके साथ सन्निकर्ष नहीं है।

थिरादि-छयुग० सिया एदेसिं एक्कदरं बंध० ण चेव अबं०। आहारदुगं सिया [बं०] तित्थयरं सिया [बं] एवं वेगुव्विय अंगो०।

७७. आहारसरीरं बंधंतो देवगदिपंचिदियजादि-तिण्णं सरीरं० समचदु० दो अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगुरु० पसत्थ० तस०४ थिरादिछ० णिमि० णियमा बं०। तित्थयरं सिया [बं०] एवं आहारंगोव०।

७८. तेजासरी० बं० चदुगदि० सिया बं०। चदुण्णं गदीणं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं०। पंचजादि-दोसरी० छसंठा० चदुआणु० तस-थावरादि-णवयुगलं गदि-भंगो। आहारदुगं पर० उस्सा० आदावुज्जोव-तित्थय० सिया बं०। दो अंगो० छसंघ० दो विहाय-दोस [र]० सिया बं० सिया अबं०। दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं०। अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबंधगो। एवं कम्मइय०।

७९. वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० समचदु० बंधंतो तिरिक्ख-मणुस-देवगदि

दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगलमें-से अन्यतरका स्यात् बन्धक है, अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—वैक्रियिक शरीरके साथ संहननका बन्ध नहीं होता है, कारण देव-नारकियोंके संहनन नहीं पाया जाता है।

आहारकद्विकका स्यात् बन्धक है। तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है। वैक्रियिक अंगोपांगका बन्ध करनेवालेके वैक्रियिक शरीरके बन्धकके समान जानना चाहिए।

७७. आहारक शरीरका बन्ध करनेवाला – देवगति, पंचेन्द्रियजाति तथा तैजस-कार्मण वैक्रियिक इन शरीरत्रयका नियमसे बन्धक है।

विशेषार्थ—औदारिक शरीरकी बन्धव्युच्छित्ति चतुर्थगुणस्थानमें हो जाती है, इस कारण सप्तम गुणस्थानमें बँधनेवाले आहारक शरीरके साथ औदारिक शरीरका सन्निकर्ष नहीं कहा है।

समचतुरस्र संस्थान, आहारक-वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि छह तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है। आहारक अंगोपांगका बन्धक करनेवालेके भी आहारक शरीरके समान भंग हैं।

७८. तैजस शरीरका बन्ध करनेवाला–४ गतिका स्यात् बन्धक है। चारों गतियोंमें-से किसी एकका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। ५ जाति, दो शरीर, छह संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि नव युगलोंका गतिके समान भंग है अर्थात् अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बन्धक है। दो अंगोपांग, ६ संहनन, दो विहायोगति, तथा २ स्वरका स्यात् बन्धक है अर्थात् कथंचित् बन्धक, कथंचित् अबन्धक है। इन २, ६, २, २ में-से अन्यतरका बन्ध करनेवाला है। अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है। कार्मण शरीरका बन्ध करनेवालेके तैजस शरीरके समान जाना चाहिए।

७९. वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणमें इसी प्रकार है। समचतुरस्र संस्थानका

सिया बंध० । तिण्णं गदीणं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं० । दोसरी० दोअंगो० तिण्णि-आणु० दो-विहा०-थिरादि छयुगलं गदिभंगो । पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० णियमा बं० । आहारदुगं तित्थयरं उज्जोवं सिया बं० ।छस्संघ० सिया बं० सिया अबं० । छण्णं संघ० एक्कदरं बं० । अथवा छण्णं पि अबंधगो । एवं पसत्थवि० सुभग-सुस्स० आदे० ।

८०. णग्गोह-सरीरं (संठाणं) बंधंतो तिरिक्ख-मणुसगदि सिया [बंधगो] सिया अबं० । दोण्णं गदीणं एक्कदरं बंध० । ण चेव अबं० । एवं गदिभंगो छस्संघ० दो आणु० दो विहा० थिरादिछयुगलं । पंचिं० तिण्णि-स० ओरालि० अंगो० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमिणं णियमा बं० । उज्जोवं सिया [बं०] । एवं सादि० खुज्ज० वामणसं० ।

८१. हुंडसंठा० बंधंतो तिण्णं गदिणामाणं सिया [बंधगो] । एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं पंचजा० दो-सरीर-तिण्णि-आणु० तसादिणवयुग० तेजाक० वण्ण०४

बन्ध करनेवाला तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगतिका स्यात् बन्धक है। तीन गतियोंमे-से एकका बन्धक है,अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—नारकियोंमे समचतुरस्र संस्थान नहीं पाया जाता है, इस कारण यहाँ नरकगतिका उल्लेख नहीं किया गया है।

दो शरीर, दो अंगोपाग, तीन आनुपूर्वी, दो विहायोगति तथा स्थिरादि छह युगलका गतिके समान भंग जानना चाहिए। अर्थात् एकतरका बन्धक है; अबंधक नहीं है। पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। आहारकद्विक,तीर्थंकर तथा उद्योतका स्यात् बन्धक है। छह संहननका स्यात् बन्धक, स्यात् अबन्धक है। छहमे-से किसी एकका बन्धक है अथवा छहोंका अबन्धक भी है।

विशेषार्थ—संहननका बन्ध तो चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त होता है और समचतुरस्र संस्थानका बन्ध अपूर्वकरण तक होता है। अतः यहाँ ६ संहननका अबन्धक भी कहा है।

प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर तथा आदेयका भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

८०. न्यग्रोध परिमण्डल संस्थानका बन्ध करनेवाला – तिर्यंचगति, मनुष्यगतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। दो गतियोंमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—देवगतिमे समचतुरस्रसंस्थान होता है और नरकगतिमें हुंडकसंस्थान पाया जाता है। इस कारण यहाँ उक्त दोनों गतियोंका वर्णन नहीं किया गया है।

छह संहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगलमें गतिके समान पूर्वोक्त भंग है। पंचेन्द्रिय जाति, ३ शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। उद्योतका स्यात् बन्धक है। स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थानके बन्ध करनेवालेमे इसी प्रकार जानना चाहिए।

८१ हुंडकसंस्थानका बन्ध करनेवाला – नरक-मनुष्य तिर्यंच गतियोंका स्यात् [बन्धक है।] अन्यतरका बन्धक है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—हुंडकसंस्थान देवगतिमे न होनेसे यहाँ उसका वर्णन नहीं किया गया है।

अगु० उप० णिमि० णियमा बं० । दो-अंगो०छस्संघ० दो-विहा० दो-सरं सिया बं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बंध० । अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अ० । परघादुस्सा० आदावुज्जो० सिया बं० सिया अबं० । एवं हुंडभंगो दूभग-अणादेज्ज० । ओरालिय० अंगोवंगं बंधंतो दो-गदि सिया बं सिया अबं० । दोण्णं गदीणं एक्कदरं [बंधगो] । ण चेव अबं० । एवं चदुजादि० छस्संठा० छस्संघ० दो आणु० पज्जत्ता-पज्जत्त० थिरादिपंचयुगलाणं । ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ अगुरु० उप० तस-बादर-पत्तेय० णिमि० णियमा बं० । परधादुस्सा० उज्जो० तित्थयरं सिया बं० । दो विहा० दो सरं सिया बं० । दोण्णं दोण्णं एक्कद० बं० । अथवा दोण्णं दोण्णं पि अबं० ।

८२. वज्जरिसभं बंधंतो दो-गदि सिया बं०, सिया अबं० । दोण्णं गदीणं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं छस्संठा० दो आणु० दो-विहा० थिरादिछयुग-लाणं । पंचिंदि० तिण्णि-सरी० ओरालि० अंगो० वण्ण०४ अगु०४, तस०४ णिमि० णियमा बं० । उज्जोव तित्थ० सिया [बंधगो] । एवं चदु-संघ० । णवरि तित्थयवज्जं ।

---

५ जाति, २ शरीर, ३ आनुपूर्वी (देवानुपूर्वी बिना) त्रसादि नव युगलमे इसी प्रकार वर्णन है । तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है । दो अंगोपांग, छह संहनन, दो विहायोगति तथा २ स्वरका स्यात् बन्धक है । इन २, ६, २, २ मे-से किसी एकका बन्धक है । अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है । परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक, स्यात् अबन्धक है ।

दुर्भग तथा अनादेयके बन्ध करनेवालेमे हुंडक संस्थानके समान भंग है ।

औदारिक अंगोपांगका बन्ध करनेवाला—दो गति (मनुष्य-तिर्यंचगति) का स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । दोमें-से एकका बन्धक है ; अबन्धक नहीं है । चार जाति, ६-संस्थान, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, स्थिरादि पंचयुगलमे इसी प्रकार जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियके अंगोपांगका अभाव होनेसे यहाँ एकेन्द्रिय जातिको छोड़कर चार जातियोंका कथन किया गया है ।

औदारिक तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है । परघात, उच्छ्वास, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है । दो विहायोगति. २ स्वरका स्यात् बन्धक है । दो दोमे-से किसी एकका बन्धक है अथवा दो दोका भी अबन्धक है ।

८२. वज्रवृषभसंहननका बन्ध करनेवाला—तिर्यंचगति, मनुष्यगतिका स्यात् बन्धक है; स्यात् अबन्धक है । दो गतियोंमे-से अन्यतरका बन्धक है ; अबन्धक नहीं है । इस प्रकार छह संस्थान, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगलमे जानना चाहिए । पंचेन्द्रिय जाति, तीन शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है; उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है ।

आदि तथा अन्तके संहननको छोड़कर शेष ४ संहननके बन्ध करनेवालेसे यहाँ यही

असंपत्तं बंधंतो दो-गदि सिया बंध० । दोण्णं गदीणं एक्कदरं ब० । ण चेव अबं० । एवं चदुजादि-छस्संठा० दो-आणु० पज्जत्तापज्ज० थिरादिपंचयुगलाणं । तिण्णिसरी० ओरालि० अंगो० वण्ण४ अगु० उप० तस-बादर-पत्ते० णिमि० णियमा बं० । परघा-दुस्सास० उज्जो० सिया [बंधगो०] । दो विहा० दो सरी० (सरं) सिया [बं०] । दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बंध० । अथवा दोण्णं दोण्णं पि अबं० ।

८३. परघादं बंधंतो चदुगदि सिया बं० सिया अबं० । चदुण्णं गदीणं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं० । एस भंगो पंच-जादि-दो-सरीरं छसंठा० चदु-आणु० तस-थावरादि-णवयुगलाणं पज्जत्तापज्जत्तवज्जं । तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० उस्सास-पज्ज० णिमिणं णियमा बंधगो । आहारदुगं आदा-वुज्जो० तित्थय० सिया बं० सिया अबं० । दो अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सर० सिया बं० सिया अबं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बं० अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबं० । एवं भंगो उस्सास पज्जत्त० थिर(?)सुभ(?)णामाणं च ।

क्रम है । विशेष यह है कि यहाँ तीर्थंकर प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ तीर्थंकर प्रकृतिका सन्निकर्ष न बतानेसे ज्ञात होता है कि संहनन चतुष्टयके साथ तीर्थंकरका बन्ध नहीं होता । वज्रवृषभ संहननके साथ तीर्थंकरका बन्ध हो सकता है । तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध सम्यक्त्वीमे होता है । अत मिथ्यात्व-सासादनमें बँधनेवाले असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन तथा वज्रवृषभको छोड़,शेष ४ संहननका अभाव होगा ।

असम्प्राप्तासृपाटिकासंहननका बन्ध करनेवाला—दो गति (मनुष्य-तिर्यंचगति) का स्यात् बन्धक है । दो गतियोंमें-से अन्यतरका बन्धक है ; अबन्धक नहीं है । ४ जाति, ६ संस्थान, २ आनुपूर्वी, पर्याप्तक-अपर्याप्तक, स्थिरादि पंचयुगलोंमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है । परघात, उच्छ्वास तथा उद्योतका स्यात् बन्धक है । दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बन्धक है । दो-दोमें-से अन्यतरका बन्धक है अथवा दो-दोका भी अबन्धक है ।

८३ परघातका बन्ध करनेवाला—४ गतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । इन चारोंमें-से अन्यतरका बन्धक है ; अबन्धक नहीं है । ५ जाति, औदारिक वैक्रियिक शरीर, ६ संस्थान ४ आनुपूर्वी, पर्याप्तक-अपर्याप्तक रहित त्रस-स्थावरादि ९ युगलमे भी इसी प्रकार है । अर्थात् इनमें-से एकतरका बन्धक है; अन्यका बन्धक नहीं है । तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, उच्छ्वास, पर्याप्त तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है । आहारकद्विक, आताप, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है , स्यात् अबन्धक है । दो अंगोपांग, ६ संहनन, दो विहायोगति तथा २ स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । इन २, ६, २, २ मे-से किसी एकका बन्धक है । अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है ।

उच्छ्वास, पर्याप्तक, नामकर्ममें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—स्थिर तथा शुभका वर्णन आगे किया गया है, इससे मूल पाठमे 'थिर-सुभ'-का उल्लेख अधिक पाठ प्रतीत होता है ।

८४. आदावं बंधं० तिरिक्खग० एइंदि० तिण्णि सरी० हुंडसंठा० वण्ण०४ तिरिक्खाणु० अगु०४ थावर-बादर-पज्जत्त-पत्तेय-दूभ० अणा० णिमि० णियमा बं०। थिरादि-तिण्णि युग० सिया बं०। तिण्णि युगलाणं एकदरं बं०, ण चेव अबं०।

८५. उज्जोवं बंधंतो तिरिक्खगदि० तिण्णं सरी० वण्ण०४ तिरिक्खाणु० अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमि० णियमा बंधगो। पंच-जादि-छस्संठा० तसथाव० थिराथिर सुभासुभ-सुभगदूभग-आदेज्जअणादेज्ज-जस०-अजस० सिया बं०। एदेसिं एक्कतरं बं०। ण चेव अबं०। ओरालिय० अंगो० सिया बं०। सिया अबं०। छस्संघ० दो विहा० दो सरीर (सरं) सिया बं०। छण्णं दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बं०। अथवा दोण्णं(?)छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबंध०।

८६. अप्पसत्थ-विहाय० बंधंतो तिण्णि गदि सिया बं०, तिण्णं गदीणं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं०। एवं भंगो चदुजादि० दो सरी० छस्संठा० दो अंगो० णिरय-

८४. आतापका बन्ध करनेवाला—तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय, तीन शरीर, हुंडक-संस्थान, वर्ण ४, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, स्थावर, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, दुर्भग, अनादेय तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। स्थिरादि तीन युगलका स्यात् बन्धक है। तीन युगलोंमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—आताप प्रकृतिका उदय सूर्यके विमानमें स्थित बादर पृथ्वीकायिक जीवोंके पाया जाता है। इससे यहाँ एकेन्द्रियका ही बन्ध कहा है। संहननके बन्धके अभावका कारण भी यही है, क्योंकि स्थावरोंमें संहनन नहीं होता है।

८५. उद्योतका बन्ध करनेवाला—तिर्यंचगति, ३ शरीर, वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति-का स्यात् बन्धक है। इनमें-से एकतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—उद्योत प्रकृति एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त पायी जाती है, इस कारण इसके बंधककी पंच जातियाँ कही है।

औदारिक अंगोपांगका स्यात् बन्धक है। स्यात् अबन्धक है। छह संहनन, २ विहायो-गति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है। इन ६, २, २ में-से एकतरका बन्धक है अथवा ६, २, २ का भी अबन्धक है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियकी अपेक्षा उद्योतके बन्धकको अंगोपांग, संहनन, विहायोगति तथा स्वरका अबन्धक भी कहा गया है। यहाँ यह विशेष बात ज्ञातव्य है कि शरीरका पूर्वमें कथन हो चुका है, अतः यहाँ 'दो शरीर' के स्थानमें 'दो सर' पाठ सम्यक् प्रतीत होता है।

८६. अप्रशस्त विहायोगतिका बन्ध करनेवाला—नरक-तिर्यंच-मनुष्यगतिका स्यात् बन्धक है। तीन गतियोंमें-से एकका बन्धक है; अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—देवोंमें अप्रशस्त विहायोगतिका अभाव है। अतः यहाँ उसका उल्लेख नहीं है। ४ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, नरक-तिर्यंच-मनुष्यानुपूर्वी, स्थिर,

१ "मूलुण्हपहा अग्गी आदावो होदि उण्हसहियपहा। आइच्चे तेरिच्छे उण्हूणपहा हु उज्जोवो॥" —गो० क०, गा० ३३।

तिरिक्ख-मणुसाणुपु० थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादे० जस० अज्जस० । तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० णियमा बं० । छस्संघ-सिया बं० । छण्णं एकदरं बंधगो । अथवा छण्णं पि अबं० । उज्जोव० सिया बं० सिया अबं० । एवं दुस्सर० ।

८७. तसं बंधंतो चदुगदि सिया बं० । चदुण्णं एकदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं भंगो चदुजादि-दोसरी० छस्संठा० दो अंगो० चदु-आणुपु० पज्जत्तापज्ज० थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-दूभग-आदेज्ज-अणादेज्ज-जस०-अज्जस० । आहारदुगं परघादु० उज्जोवं तित्थय० सिया बं०, सिया अबं० । तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० बादर-पत्ते०-णिमि० णियमा बं० । छस्संघ० दो विहा० दो सरं सिया बं० । छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एकदरं बं० । अथवा छण्णं दोण्णं दोण्ण पि अबं० ।

८८. बादरणामं बंधंतो चदुगदि सिया बं०, सिया अबं० । चदुण्णं गदीणं एकदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं गदिभंगो पंचजादि-दो सरी० छस्संठा० चदुआणुपु० तसादिणवयु० । आहारदु० परघादुस्सा० आदावुज्जो० तित्थय० सिया बं० सिया अबं० । दोण्णं अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सरं सिया बं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं

अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्तिमें पूर्ववत् है अर्थात् स्यात् बन्धक है, एकतरके बन्धक है; अबन्धक नहीं हैं। तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४ तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है, ६ संहननका स्यात् बन्धक है, ६ मे-से किसी एकका बन्धक है अथवा ६ का भी अबन्धक है।

विशेष—यहाँ नरकगति तथा एकेन्द्रियकी अपेक्षा संहननका अबन्धक भी कहा गया है।

उद्योतका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। दुस्वरमें ऐसा ही वर्णन जानना चाहिए।

८७ त्रसका बन्ध करनेवाला—चार गतिका स्यात् बन्धक है, ४ मे-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। ४ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ४ आनुपूर्वी, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्तिमे इसी प्रकार भंग जानना चाहिए। आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, बादर, प्रत्येक और निर्माणका नियमसे बन्धक है। ६ संहनन, दो विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है। इन ६, २, २ मे-से एकतरका बन्धक है अथवा ६, २, २ का भी अबन्धक है।

८८ बादर नामकर्मका बन्ध करनेवाला—४ गतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। चार गतियोंमे-से एकतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। ५ जाति, दो शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रसादि नवयुगलमें गतिके समान भंग जानना चाहिए। आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है। २, ६, २, २ मे-से किसी एकका बन्धक

दोण्णं पि एकदरं बं० । अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबं० । सेसं णियमा बंधगो । एवं पत्तेयसरी० ।

८९. सुहुमं बंधंतो तिरिक्खगदि-एइंदियजादि-तिण्णि सरी०-हुंडसं० वण्ण०४ तिरिक्खाणु० अगु० उप० थावर-दूभग-अणादेज्ज-अज्जस-णिमिणं णियमा बं० । पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय० साधारण-थिराथिर-सुभासुभ० सिया बं० । एदेसिं एकदरं बं० । ण चेव अबं० । परघादुस्सा० सिया बं० सिया अबं० । एवं साधारणं० । अपज्जत्तं बं० दो गदि सिया [बं०] । दोण्णं एकदरं बं० । ण चेव अबं० । तिण्णि सरीर-हुंडसंठा० वण्ण०४ अगु० उप० अथिर-असुभ-दूभग-अणादेज्ज० अजस० णिमिणं णियमा बं० । ओरालि० अंगो असंपत्तसेव० सिया बं० । पंचजादि-दो-आणु० तसथावरादि-तिण्णि युग० सिया बं० । एदेसिं एकदरं बं० ण चेव अबं० ।

९०. अथिरं बंधंतो चदुगदि-सिया बं० । [चदुण्णं गदीणं] एकदरं [बंधगो] । ण चेव अबं० । एवं पंचजादि दो सरीर० छस्संठा० चत्तारि आणुपुव्वि० तस-थावरादिअट्ठयुग० । तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं णियमा बं० । दो अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सरं सिया बं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एकदरं बं० ।

है अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है। शेष प्रकृतियोंका भी नियमसे बन्धक है।

प्रत्येक शरीरके बन्ध करनेवालेमें—इस प्रकार जानना चाहिए।

८९. सूक्ष्मका बन्ध करनेवाला—तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, हुंडक संस्थान, वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है।

विशेष—सूक्ष्म नामक कर्मका सन्निकर्ष एकेन्द्रिय जीवके साथ ही पाया जाता है, अतएव यहाँ एकेन्द्रिय जातिका ही ग्रहण किया गया है।

पर्याप्तक, अपर्याप्तक, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभका स्यात् बन्धक है। इनमें-से एकतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। परघात, उच्छ्वासका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है।

साधारणके बन्ध करनेवालेमें—इसी प्रकार जानना चाहिए।

अपर्याप्तकका बन्ध करनेवाला—दो गति (तिर्यंच तथा मनुष्यगति) का स्यात् बन्धक है। दोमें-से एकतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है।

औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, हुंडकसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। औदारिक अंगोपांग, असम्प्राप्तासृपाटिका संहननका स्यात् बन्धक है। ५ जाति, २ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि तीन युगलका स्यात् बन्धक है। इनमें-से एकतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है।

९०. अस्थिरका बन्ध करनेवाला—४ गतिका स्यात् बन्धक है। चार गतियोंमें-से एकतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ८ युगलोंमें जानना चाहिए। तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणका नियमसे बन्धक है। दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात्

अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबंधगो। परघादुस्सा० आदाउज्जो० तित्थयरं सिया [बं०], सिया अबंध०। एवं असुभ-अज्जसगित्ति।

६१. थिरं बंधंतो तिण्णि-गदि सिया बं०। तिण्णं गदीणं एकदरं बं०, ण चेव अबं०। एवं पंच-जादि दो सरीरं-छस्संठा-तिण्णि-आणु० तसथावरादि-दोण्णि युगलं सुभादि-चदुयुगलं सिया बं०। एदेसिं एकदरं बंधगो। ण चेव अबंध०। आहारदुगं आदाउज्जोव० तित्थयरं सिया बं०, सिया अ०। दो-अंगो० छस्संघ० दोवि० दो सरं सिया बं०। दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एकदरं बं०। अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबंध०। तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ पज्जत्त णिमि० णियमा बंधगो। एवं सुभ-जसगित्ति। णवरि जसगित्तीए सुहुम-साधारणं वज्जं।

६२. तित्थयरं बंधंतो दो-गदि सिया बंध०। दोण्णं गदीणं एकदरं बं०। ण चेव अबं०। एवं दो-सरीरं० दो अंगोवं० दो आणु० थिरादि-तिण्णि यु० एकदरं बंधगो। ण चेव अबंध०। पंचि तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु० ४ पसत्थ० तस०४ सुभग-सुस्स०-आदे० णिमिणं णियमा बं०। आहारदुगं वज्जरिसभसंघ० सिया [बंधगो]।

बन्धक है। २, ६, २, २ मे से एकतरका बन्धक है अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है। परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है।

अशुभ तथा अयशःकीर्तिके बन्ध करनेवालेमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

९१. स्थिरका बन्ध करनेवाला—३ गति (नरकको छोड़कर) का स्यात् बन्धक है। ३ गतिमें-से एकतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। ५ जाति, औदारिक, वैक्रियिक शरीर, ६ संस्थान, ३ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि दो युगल, शुभादिक चार युगलका स्यात् बन्धक है। इनमे-से एकतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। आहारकद्विक, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकर प्रकृतिका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। दो अंगोपांग, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बन्धक है। इन २, ६, २, २ मे-से एकतरका बन्धक है। अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है। तैजस-कार्मण, वर्ण४, अगुरुलघु ४, पर्याप्तक तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है।

शुभ तथा यशःकीर्तिके बन्ध करनेवालेमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि यशःकीर्तिके बन्धकके सूक्ष्म तथा साधारण प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए अर्थात् इनका बन्ध इसके नहीं होगा।

९२. तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करनेवाला—मनुष्य, देवगतिका स्यात् बन्धक है। दो गतियोंमें-से किसी एकका बन्धक है; अबन्धक नही है।

विशेष—तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध सम्यक्त्वीके ही होता है। अतः मिथ्यात्वमें बँधनेवाली नरकगति तथा सासादनमे बँधनेवाली तिर्यंचगतिका बन्ध इसके नहीं होगा।

दो शरीर, २ अंगोपांग, २ आनुपूर्वी. स्थिरादि तीन युगलमें-से एकतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा निर्माणका नियमसे बन्धक है। आहारकद्विक, वज्रवृषभसंहननका स्यात् बन्धक है।

९३. उच्चागोदं बंधंतो णीचागोदस्स अबंधगो। णीचागोदं बंधंतो उच्चागोदस्स अबंधगो।

९४. दाणंतराइगं बंधंतो चदुण्णं अंतराइगाणं णियमा बंधगो। एवमण्णमण्णस्स बंधगो।

९५. एवं ओघभंगो मणुस०३ पंचिंदि० तस तेसिं चेव पज्जत्ता पंचमण० पंचवचि० काजोगि-ओरालिय० इत्थि-पुरिस-णपुंस० कोधादि०४ चक्खुदं० अचक्खुदं० भवसिद्धि० सण्णि-आहारगित्ति, णवरि मणुस०३ ओरालिका० इत्थि० तित्थयरं बंधंतो देवगदि०४ णियमा बंधगो।

९६. आदेसेण णेरइ० एइंदिय-विगलिंदिय-संजुत्त-आहारदुगं वेगुव्वियछक्कं णिरय-देवायुगं च अपज्जत्तगं च वज्जं सेसं णेदव्वं। एवं सव्व-णेरइएसु। णवरि चउत्थी याव सत्तमा त्ति तित्थयरं वज्जं। सत्तमाए मणुसायुगं णत्थि।

९७. तिरिक्खेसु-आहारदुगं तित्थयरं वज्ज, सेसं ओघं। एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३। पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु वेगुव्वियछक्कं च णिरयदेवायुगं वज्ज-

---

९३. उच्चगोत्रका बन्ध करनेवाला—नीच गोत्रका अबन्धक है। नीच गोत्रका बन्ध करनेवाला उच्चगोत्रका अबन्धक है।

विशेष—दोनों गोत्र परस्पर प्रतिपक्षी हैं। अतः एक जीवके एक साथ दोनोंका बन्ध नहीं होता है। इस कारण नीचके बन्धकके उच्च अबन्ध होगा अथवा उच्चके बन्धकके नीचका अबन्ध होगा।

९४. दानान्तरायका बन्ध करनेवाला—लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्यान्तरायका नियमसे बन्धक है। एकका बन्ध करते समय अन्य चतुष्कका नियमसे बन्ध होता है। अर्थात् दानान्तरायके बन्ध होनेपर अन्य लाभान्तरायादिका नियमसे बन्ध होता है।

९५. मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, त्रस तथा पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रसपर्याप्त, ५ मनयोगी, ५ वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद, क्रोधादि ४ कषाय, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, भव्यसिद्धिक, संज्ञी, आहारक पर्यन्त इसी प्रकार अर्थात् ओघवत् जानना चाहिए।

विशेष यह है कि मनुष्यत्रिक, औदारिक काययोग तथा स्त्रीवेदमें तीर्थंकरका बन्ध करनेवाला देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक अंगोपांगका नियमसे बन्धक है।

९६. आदेशसे—नारकियोंमें एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय संयुक्त प्रकृति, आहारकद्विक, वैक्रियिकषट्क, नरकायु-देवायु तथा अपर्याप्तकको छोड़कर शेष प्रकृतियोंको जानना चाहिए। इसी प्रकार सम्पूर्ण नारकियोंमे जानना चाहिए। विशेष, चौथीसे सातवी पृथ्वी पर्यन्त तीर्थंकरका बन्ध छोड़ देना चाहिए। सातवीं पृथ्वीमें मनुष्यायुका बन्ध नहीं है।[1]

९७. तिर्यंचगतिमे—आहारकद्विक तथा तीर्थंकरका बन्ध नहीं होता है। शेषका ओघवत् वर्णन है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यंच, पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंचमे इसी

---

१ "घम्मे तित्थं बंधदि वंसा मेघाण पुण्णगो चेव। छट्ठोत्ति य मणुवाऊ ।"–गो० क०,गा० १०६।

सेसं तं चेव। एवं मणुस-अपज्जत्त-सव्वएइंदि० सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तस-अपज्ज-त्तसव्वपंचकायाणं। णवरि तेउ० वाउ० मणुसगदिचदुक्कं णत्थि।

९८. देवेसु णिरयभंगो। णवरि एइंदिय-तिगं जाणिदव्वं। एवं भवणवासिय याव सोधम्मीसाण त्ति। णवरि भवणादि याव जोइसिया त्ति तित्थयरं णत्थि। सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति णिरयोघं। आणद याव णवगेवेज्जा त्ति एवं चेव। णवरि तिरिक्खायुगं तिरिक्खग० तिरिक्खाणु० उज्जोवं णत्थि। अणुदिस याव सव्वट्ठा त्ति मिच्छत्तपगदीओ णत्थि। सेसं भाणिदव्वं।

९९. ओरालि०मिस्से-णिरयगदितिगं देवायुगं आहारदुगं णत्थि। सेसं ओघभंगो। वेगुव्वियका० देवगदिभंगो। एवं वेगुव्वियमि०। णवरि आयुगं णत्थि। आहार० आहारमि० असंजद-पगदीओ आहारदुगं णत्थि। कम्मइगका०

प्रकार जानना चाहिए।[1]

पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमे—वैक्रियिकषट्क, नरकायु, देवायुको छोड़कर शेष प्रकृतियोंका ओघवत् सन्निकर्ष जानना चाहिए। मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तक, सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय-त्रस-अपर्याप्तक तथा सम्पूर्ण पच कायोंमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि तेजकाय, वायुकायमे मनुष्यगतिचतुष्क नहीं है।

९८. देवगतिमे नरकगतिका भंग है। विशेष, देवोंमे एकेन्द्रिय,स्थावर,आतापका बन्ध होता है। यह बात भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, सौधर्म, ईशान स्वर्गपर्यन्त है। विशेष भव-नत्रिकमे तीर्थकर नहीं होते है।

विशेषार्थ—देवोंका एकेन्द्रियोंमे भी जन्म होता है, किन्तु नारकी जीव मरण कर नियमसे संज्ञी, पर्याप्तक कर्मभूमिज मनुष्य या तिर्यच होते हैं। इससे देवगतिमे विशेषता कही है। सानत्कुमारसे सहस्रार स्वर्गपर्यन्त नरकगतिके ओघ समान भंग हैं। आनतसे ग्रैवेयकपर्यन्त इसी प्रकार हैं। विशेष-तिर्यचायु, तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी तथा उद्योतका बन्ध नहीं होता है।

विशेष—आनतादि स्वर्गवासी देवोंका तिर्यंच रूपसे उत्पाद नहीं होनेके कारण तिर्यचायु आदि चतार चतुष्कका बन्ध नहीं कहा गया है।

अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त मिथ्यात्व सम्बन्धी प्रकृतियाँ नहीं हैं, [कारण वहाँ सभी सम्यक्त्वी ही होते हैं।] अतः शेष प्रकृतियोंको कहना चाहिए।

९९ औदारिकमिश्रकाययोगमे—नरकगतित्रिक, देवायु, आहारकद्विक नहीं है। शेष ११४ बन्ध योग्य प्रकृतियोंका ओघवत् वर्णन जानना चाहिए।[2]

वैक्रियिक काययोगमे—देवगतिके समान जानना चाहिए। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ आयुके बन्धका अभाव है।

आहारक-आहारकमिश्रयोगमे—असंयतसम्बन्धी प्रकृतियाँ तथा आहारकद्विकके बन्धका अभाव है। आहारककाययोगमे ६३ और आहारकमिश्र काययोगमे ६२ बन्धयोग्य प्रकृतियाँ है।

---

१ "ओराले वा मिस्से। णहि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं।"-गो० क०,गा० ११६।

आयुचदुक्कणिरयगादिदुगं आहारदुगं च णत्थि । सेसं ओघभंगो ।

१००. अवगदवेदे याओ पगदी [ओ] बज्झंति ताओ पगदीओ जाणिदूण भाणिदव्वाओ । मदि० सुद० विभंग० अब्भव० मिच्छादि० असण्णि० तिरिक्खोघो । आभिणि० सुद० ओधि० ओघभंगो । णवरि मिच्छत्त-सासण-पगदीओ णत्थि । एवं ओधिदं० सम्मा० खइय० । एवं चेव मणपज्जव-संजद० सामाइ० छेदो० परिहार० । णवरि असंजदपगदीओ णत्थि । अकसा० केवलणा० यथाखाद० केवलदंस० सण्णियासो णत्थि । सुहुमसंप० पंचणा० चदुदंस० पंचंतराइगाणमण्णमण्णस्स बंधदि ।

१०१. संजदासंजदा संजदभंगो । णवरि आहारदुगं णत्थि । पच्चक्खाणा०-४ अत्थि । असंजदेसु ओघभंगो । णवरि आहारदुगं णत्थि ।

विशेषार्थ—आहारकद्विकका बन्ध अप्रमत्त दशामें होता है और यह योग प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें होता है । अतः आहारकद्विकके बन्धका यहाँ अभाव कहा गया है ।

कार्मणाकाययोगमें–आयु ४ तथा नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वीका अभाव है । शेषका ओघवत् भंग जानना चाहिए ।

१००. अपगत वेदमें—जिन प्रकृतियोंका बन्ध होता है, उनको जानकर वर्णन करना चाहिए ।

विशेष—४ संज्वलन, ५ ज्ञानावरण, ५ अन्तराय, ४ दर्शनावरण, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र तथा सातावेदनीय इन २१ प्रकृतियोंका यहाँ बन्ध होता है ।

मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभंगावधि, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, असञ्ज्ञीका तिर्यंचोंके ओघवत् है । आभिनिबोधिक, श्रुत तथा अवधिज्ञानमें ओघवत् भंग है । विशेष – यहाँ मिथ्यात्वसम्बन्धी १६ और सासादनसम्बन्धी २५ प्रकृतियोंका अभाव है ।

इसी प्रकार अवधिदर्शन, सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्वमें जानना चाहिए । मनःपर्ययज्ञान, संयत, सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धिमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष, यहाँ असंयमगुणस्थानवाली प्रकृतियाँ नहीं हैं ।

अकषाय, केवलज्ञान, यथाख्यातसंयम, केवल दर्शनमें सन्निकर्ष नहीं है ।

विशेष—इन मार्गणाओंमें एक सातावेदनीयका ही बन्ध होता है । इस कारण यहाँ सन्निकर्षका वर्णन नहीं किया गया है । एक प्रकृतिमें सन्निकर्ष नहीं हो सकता है । किसका किसके साथ सन्निकर्ष कहा जायेगा ? अतः सन्निकर्ष नहीं बताया है ।

सूक्ष्मसाम्परायमें–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण (निद्रापंचकरहित) तथा ५ अन्तरायोंका एकके रहते हुए शेष अन्यका बन्ध होता है ।

विशेष—यद्यपि सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें सातावेदनीय, उच्चगोत्र तथा यशःकीर्तिका भी बन्ध होता है, किन्तु ये वेदनीय, गोत्र तथा नामकर्मकी अकेली ही प्रकृतियाँ हैं; इस कारण स्वस्थानसन्निकर्षकी दृष्टिसे इनका ग्रहण नहीं किया गया है ।

१०२. एवं तिण्णि लेस्सा० । णवरि किण्ण-णील० तित्थयरं बंधं० देवगदि०४ णियमा बंधगो। काऊए सिया देवगदि सिया मणुसगदि। तेऊए सोधम्मभंगो। णवरि देवायु देवगदि०४ आहारदुगं अत्थि। एवं पम्माए। णवरि एइंदियतिगं णत्थि। सुक्काए णिरयगदितिगं तिरिक्खगदिसंयुतं च णत्थि। सेसं ओघभंगो।

१०३. वेदगे० आभिणि०भंगो। एवं उवसम०। णवरि आयु णत्थि। सासणे मिच्छत्तसंयुतं तित्थयरं आहारदुगं च णत्थि। सेसं ओघभंगो। सम्मामि० उवसमसम्मा० भंगो। णवरि आहारदुगं तित्थयरं च णत्थि।

१०४. अणाहारा० कम्मइगभंगो।

एवं सत्थाणसण्णियासो समत्तो।

---

१०१. संयतासंयतोंमें—संयतोंका भंग जानना चाहिए। विशेष, यहाँ आहारकद्विक नहीं है। इनमें प्रत्याख्यानावरण ४ का बन्ध पाया जाता है। असंयतोंमें–ओघवत् भंग है।[1] विशेष आहारकद्विक नहीं है।

१०२. कृष्ण, नील तथा कापोत लेश्यामें—इसी प्रकार जानना चाहिए।[2] विशेष–कृष्ण-नील लेश्यामें–तीर्थंकरका बन्ध करनेवाला नियमसे देवगति ४ का बन्धक है। कापोत लेश्यामें–स्यात् देवगति, स्यात् मनुष्यगतिका बन्ध होता है। तेजोलेश्यामें–सौधर्म स्वर्गके समान भंग है। विशेष, देवायु, देवगति ४ तथा आहारकद्विकका बन्ध है।[3] पद्मलेश्यामें–इसी प्रकार है। विशेष, यहाँ एकेन्द्रिय, स्थावर, आतापका बन्ध नहीं है। शुक्ललेश्यामें–नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु तथा तिर्यंचगति संयुक्तका बन्ध नहीं है। शेष प्रकृतियोंका ओघवत् भंग है।

१०३. वेदक सम्यक्त्वमें–आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भंग है।[4]

उपशमसम्यक्त्वमें–इसी प्रकार है। विशेष, यहाँ आयुका बन्ध नहीं होता है।

सासादन सम्यक्त्वमें—मिथ्यात्वसम्बन्धी प्रकृतियाँ तीर्थंकर, तथा आहारकद्विकका बन्ध नहीं है। शेष प्रकृतियोंका ओघवत् भंग है। सम्यक्त्वमिथ्यात्वमें उपशमसम्यक्त्वीका भंग जानना चाहिए। विशेष, यहाँ आहारकद्विक तथा तीर्थंकरका बन्ध नहीं है।

१०४. अनाहारकमें–[5] कार्मण काययोगीके समान भंग है।

इस प्रकार स्वस्थानसन्निकर्ष पूर्ण हुआ।

---

१. "कम्मेव तित्थबंधो आहारदुगं पमत्तरहिदेसु।" –गो० क०, गा० ९२। २. "अयदोत्ति छल्लेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये। तत्तो सुक्का लेस्सा, अजोगिठाणं अलेस्सं तु॥" –गो० जी०, गा० ५३१। ३. "णिरयादिविगलयदं वारं णहि तेउ पउमेसु" –गो० क०, गा० १२०। "सुक्के सदरचउक्कं वामंतिमवारसं च ण व अत्थि।" –गो० क०, गा० १२। ४. "णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण।" –गो० क०, गा० १२०। ५. "कम्मेव अणाहारे।"–गो० क०, गा० १२१।

[परत्थाणसण्णियास-परूवणा]

१०५. परत्थाणसण्णियासे पगदं दुविधो ओघे० आदे० । ओघे० आभिणिबोधियणा० बंधंतो चदुणाणा० चदुदंसणा० पंचंत० णियमा [बंधगो] । पंचदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदुगुं० चदुआयु० आहारदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदावुज्जो० णिमिणं तित्थयरं सिया बं०, सिया अबं० । सादं सिया बं०, सिया अबं० । असादं सिया बं०, सिया अबं० । दोण्णं पगदीणं एकदरं बंधगो । ण चेव अबं० । इत्थि० सिया बं०, पुरिस० सिया [बं०], णपुंस० सिया० । तिण्णं वेदाणं एकदरं बं० । अथवा तिण्णंपि अबंधगो । वेदभंगो हस्सरदि-अरदि-सोग-दोयुगला० चदुगदि० पंचजादि-दोसरीर-छस्संठा० दोअंगो० छस्संघ० चदुआणु० दो विहा० तस-थावरादि-णवयुगलाणं । जस० अजस० दोगोदं सादभंगो । यथा आभिणिबोधियणा० तथा

[परस्थान सन्निकर्ष]

१०५. यहाँ परस्थान सन्निकर्ष प्रकृत है । उसका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते हैं । यहाँ सजातीय तथा विजातीय एक साथमें बंधनेवाली प्रकृतियोंकी प्ररूपणा की गयी है ।

ओघसे-आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका बन्ध करनेवाला-श्रुतादि ज्ञानावरण ४, दर्शनावरण ४ तथा अन्तराय ५ का नियमसे बन्धक है ।

विशेषार्थ—यशःकीर्ति उच्चगोत्रका नियमसे बन्ध न होनेके कारण यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया गया है ।

निद्रादि पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ४ आयु, आहारकद्विक, तैजस- कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । साताका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । असाताका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । दोनोंमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है ।

विशेषार्थ—दोनोंका अबन्धक अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती होगा, वहाँ मतिज्ञानावरण ही नहीं है । अतः दोनोंके अबन्धकका अभाव कहा है ।

स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है । पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है । नपुंसक वेदका स्यात् बन्धक है । तीनोंमें-से एकतरका बन्धक है अथवा तीनोंका भी अबन्धक है ।

विशेषार्थ—वेदका बन्ध नवमे गुणस्थान पर्यन्त होता है और मतिज्ञानावरणका सूक्ष्मसाम्पराय तक बन्ध होता है । अतः मतिज्ञानावरणके बन्धकके वेदका बन्ध हो तथा न भी हो । इससे यहाँ तीनोंका अबन्धक भी कहा है ।

हास्य-रति, अरति-शोक ये दो युगल, ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रस-स्थावरादि ९ युगलका वेदके समान भंग है । अर्थात् इनमें-से एकतरके बन्धक है अथवा सबके भी अबन्धक हैं । यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, दो गोत्रका सातावेदनीयके समान भंग है अर्थात् अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है ।

चदुणाणा० चदुदंस० पंचंतरा० ।

१०६. णिद्दाणिद्दं बंधंतो पंचणा० अट्ठदंसणा० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बं० । सादं सिया [बं०], असादं सिया [बं०] । दोण्णं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं० । एवं वेदणीयभंगो तिण्णि वे० हस्सरदि-अरदिसो० चदुगदि० पंच [जादि]-दोसरीर-छस्संठा-चदुआणु० तसथावरादि-णवयुगलं दोगोदाणं । मिच्छत्त-चदुआयुग परघादुस्सा० आदावुज्जो० सिया [बं०], सिया अबं० । दो-अंगो० छस्संघ० दो विहा० दोसरं सिया बं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं० । अथवा दोण्णं छण्णं दोण्ण दोण्णं पि अबं० । एवं पचलापचला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधि०४ ।

१०७. णिद्दं बंधंतो पंचणा० पंचदंसणा० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बं० । थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-बारस० चदु-आयु० आहारदुगं पर०उस्सा० आदावुज्जो० तित्थ० सिया० [बं०] सिया अबं० । सादं सिया बं०, असादं सिया [बंधगो] । दोण्णं पगदीणं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं तिण्णि वे० हस्सरदिदोयु० चदुग० पंचजा० दोसरी० छस्संठा० चदुआणु० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदाणं च । दोअंगो०छस्संघदोविहा० दोसरं सिया [बं०]

श्रुतादि ४ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायका आभिनिबोधिक ज्ञानावरणके समान भंग जानना चाहिए।

१०६. निद्रा-निद्राका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ८ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। साताका स्यात् बन्धक है। असाताका स्यात् बन्धक है। दोमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, ४ गति, ५ जाति, औदारिक, वैक्रियिक शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ६ युगल तथा दो गोत्रमें वेदनीयके समान भंग है अर्थात् एकतरके बन्धक है; अबन्धक नहीं हैं। मिथ्यात्व, ४ आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है। इन २, ६, २, २ मे-से अन्यतरका बन्धक है अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है। प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि तथा अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकका निद्रानिद्राके समान भंग है।

१०७ निद्राका बन्ध करनेवाला–५ ज्ञानावरण, ५ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस- कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषाय (४ संज्वलनको छोडकर), ४ आयु, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है। साता-वेदनीयका स्यात् बन्धक है, असाता वेदनीयका स्यात् बन्धक है। दोनोंमे-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, ४ गति, ५ जाति, औदारिक वैक्रियिक शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ६ युगल तथा २ गोत्रका इसी प्रकार जानना चाहिए। २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक

दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं एकदरं बं० । अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अबंधगो । एवं पचला० ।

१०८. सादं बंधंतो पंचणा० णवदंस० मिच्छत्तं सोलसक० भयदुगु० तिण्णि-आयु० आहारदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदावुज्जो० णिमिणं तित्थय० पंचंत० सिया बं० सिया अबं० । तिण्णि वे० हस्सादि-दोयुग० तिण्णिगदि-पंचजादि-दोसरीर-छस्संठा० दो अंगो० छस्संघ० तिण्णि आणु० दो विहा० तसादिदसयुग० दोगो० सिया बं० सिया अबं० । एदेसिं एकदरं बं०, अथवा एदेसिं अबंधगो । असादं बंधंतो-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदुगु०-तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बं० । थीणगिद्धि०४ (३) मिच्छ० बारसक० तिण्णिआयु परघा-दुस्सा० आदावुज्जो० तित्थय० सिया बं० सिया अबं० । तिण्णं वेदाणं सिया बं० । तिण्णं वेदाणं एकदरं बं० । ण चेव अबं० । हस्सरदि सिया बं० । अरदिसोग सिया बं० । दोण्णं युगलाणं एकदरं बंधगो । ण चेव अबं० । एवं चदुगदि-पंचजादि-दोसरी०-

---

है । इन २, ६, २, २ मे-से अन्यतरका बन्धक है अथवा २, [६,] २, २ का भी अबन्धक है । प्रचलाका बन्ध करनेवालेके निद्राके समान भंग है ।

१०८. साताका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, नरकायुको छोड़कर ३ आयु, आहारकद्विक, तैजस, कार्मणशरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर तथा ५ अन्तरायोंका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है ।

विशेष—साताका बन्धक सयोगी जिन पर्यन्त पाया जाता है, किन्तु ज्ञानावरणादिका बन्ध सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान पर्यन्त होता है|अतः साताके बन्धकके ज्ञानावरणादिका बन्ध हो, तथा न भी हो ।

तीन वेद, हास्यादि दो युगल, ३ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि दस युगल तथा दो गोत्रका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । इनमें-से किसी एकका बन्धक है अथवा इनका भी अबन्धक है ।

असाताका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण (स्त्यानगृद्धित्रिक बिना), ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषाय, ३ आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । तीन वेदोंका स्यात् बन्धक है तथा इनमें-से किसी एकका बन्धक है; अवन्धक नहीं है ।

विशेष—असाता प्रमत्तसंयत पर्यन्त बँधता है तथा वेदका अनिवृत्तिकरणपर्यन्त बन्ध होता है । अतः असाताके बन्धकको वेदोंका अबन्धक नहीं कहा है, कारण यहाँ वेदका बन्ध सदा होगा ।

हास्य, रतिका स्यात् बन्धक है । अरति, शोकका स्यात् बन्धक है। दो युगलोंमें-से अन्यतर युगलका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। ४ गति, ५ जाति, २ शरीर,

छस्संठा० चदुआणु० तसादिणवयुग० दोगोदं च। दो अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सरी० (सरं) सिया बं० सिया अबं०। दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एकदरं बं०। अथवा एदेसिं चेव अबं०। एवं अरदिसोग-अथिर-असुभ-अज्जसगित्तीणं।

१०६. मिच्छत्तं बंधंतो—पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदुगुं० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बंध०। सादं सिया बं० असादं सिया बं०। दोण्णं पगदीणं एक्कदरं बं०। ण चेव अबं०। एवं तिण्णं वेदाणं हस्सरदि० अरदिसो० दोयुग० चदुग० पंचजादि-दोसरी०-छस्संठा० चदुआणु० तसथावरादि-णवयुगल-दोगोदाणं च। चदुआयु० परघा०-उस्सा० आदावुज्जो० सिया बं०। दोण्णं अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सर० सिया बं०, सिया अबं०। दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एक्कदरं बं०, अथवा दोण्णं दोण्णं पि अबंधगो।

११०. अपच्चक्खाण० कोधं बं०—पंचणा० छदंसणा० एकारसक०-भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि०पंचंत० णियमा बं०। सेसं मिच्छत्तभंगो।

---

६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रसादि ६ युगल तथा २ गोत्रका भी इसी प्रकार वर्णन जानना चाहिए। दो अंगोपांग, ६ सहनन, २ विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। इन २, ६, २, २ मे से एकतरका बन्धक है अथवा इनका भी अवन्धक है।

[1]अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्तिका इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष—असाताके समान अरति शोकादिकी बन्धव्युच्छित्ति प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें होती है। इस कारण असाताके बन्ध करनेवालेके समान इनका भी वर्णन कहा है।

१०६. मिथ्यात्वका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण-शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। सातावेदनीयका स्यात् बन्धक है। असाताका स्यात् बन्धक है। दोनोंमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है।

३ वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, ४ गति, ५ जाति, दो शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा दो गोत्रका इसी प्रकार जानना चाहिए अर्थात् इनमें-से एकतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। चार आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है। दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति तथा २ स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। इन २, ६, २, २ में-से एकतरका बन्धक है अथवा २, ६, २, २ का भी अबन्धक है।

विशेष—एकेन्द्रियके अंगोपांग, संहनन, विहायोगति तथा स्वरका अभाव है। इससे एकेन्द्रियकी अपेक्षा इन प्रकृतियोंका अबन्धक कहा है।

११०. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ११ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। शेष प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके बन्धकके समान भंग जानना

---

१. "छट्ठे अथिर असुह असादमजस च अरदि सोगं च।"—गो क०, गा० ९८।

णवरि थीणगिद्धितिगं मिच्छत्तं अणंताणुबं०४ चदुआयु० पर०-उस्सा० आदावुज्जो० तित्थय० सिया बं० सिया अबं०। एवं तिण्णं कसाया०। पच्चक्खाणावरणी० कोध बं०-पंचणा० छदंस० सत्तक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बंधगो। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्तं अट्ठकसा० पर० उस्सा० चदु आयु० आदावुज्जो० तित्थय०सिया बं०, सिया अबं०। सेसं मिच्छत्तभंगो। एवं तिण्णं कसायाणं। कोधसंज० बंधंतो-पंचणा० चदुदंस० तिण्णं संज० पंचंतरा० णियमा [बंधगो]। पंचदंस० मिच्छत्तं बारसक० भयदु० चदुआयु० आहारदुगं तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदावुज्जो० णिमि० तित्थय० सिया बं० सिया अबं०। दोवेदणी० सिया बं०। दोण्णं एक्कद० [बंधगो]। ण चेव अबं०। एवं जस० अज्जस०. दोगोदाणं। इत्थिवे० सिया०, पुरिस० सिया० णपुंस० सिया बं०। तिण्णं वेदाणं एक्कदरं [बंधगो]। अथवा तिण्णंपि अबं०। एवं हस्सरदि-अरदिसोग-दोयुगला० चदुग०-

---

चाहिए। विशेष, स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, आयु ४, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। अप्रत्याख्यानावरण मान, माया, लोभका अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान वर्णन जानना चाहिए।

प्रत्याख्यानावरण क्रोधका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ७ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, ८ कषाय (अनन्तानुबन्धी ४, अप्रत्याख्यानावरण ४), परघात, उच्छ्वास, ४ आयु, आताप, उद्योत, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। शेष प्रकृतियोंके विषयमें मिथ्यात्वके बन्धकके समान वर्णन जानना चाहिए। प्रत्याख्यानावरण मान, माया तथा लोभका बन्ध करनेवालेके प्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान जानना चाहिए।

संज्वलन क्रोधका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ३ संज्वलन, ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। ५ दर्शनावरण (निद्रापंचक), मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, ४ आयु, आहारकद्विक, तैजस, कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। दो वेदनीयका स्यात् बन्धक है। दोमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा २ गोत्रोंका इसी प्रकार जानना चाहिए। अर्थात् इनमें-से अन्यतरके बन्धक हैं; अबन्धक नहीं हैं।

विशेष—संज्वलन क्रोधका अनिवृत्तिकरण गुणस्थान पर्यन्त बन्ध पाया जाता है तथा यशःकीर्ति, उच्चगोत्रका सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान पर्यन्त बन्ध होता है। इस कारण यहाँ इनका अबन्धक नहीं कहा गया है।

स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है। पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है। नपुंसकवेदका स्यात् बन्धक है। तीनमें-से एकतरका बन्धक है; तीनोंका भी अबन्धक है।

विशेष—वेदका बन्ध ९वे गुणस्थानके प्रथम भाग पर्यन्त होता है तथा संज्वलन क्रोधका बन्ध ९वे गुणस्थानके दूसरे भाग पर्यन्त होता है। इस कारण यहाँ वेदोंका अबन्धक भी कहा है।

पंचजादि-दो-सरी०-छस्संठा० दोअंगो० छस्संघ० चदुआणु० दो-विहा० तमादिणव-युगलाणं। एवं माणसंज०। णवरि दोसंज० णियमा बं०। एवं चेव मायासंज०। णवरि लोभसंज० णियमा बंध०। लोभसंजलणं बंधंतो-पंचणा० चदुदंस० पंचंत० णियमा बं०। मिच्छत्तं पण्णारसकसा० सिया बं०। सेसं कोधसंजलण० भंगो।

१११. इत्थिवेदं बंधंतो पंचणा० णवदंसणा० सोलसक० भयदुगुं० पंचिं० तेजाक० वण्ण०४ अगुरु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० णियमा बंध०। सादासादं सिया बं०। दोण्णं वेदणीयाणं एकदरं बं०। ण चेव अबं०। एवं हस्सरदि-अरदिसो-गाणं दोयुग० तिण्णि-गदि-दो-सरीर-छस्संठाणं दोअंगो० तिण्णिआणु० दोविहा० थिरादिछयुग० दोगोदाणं। मिच्छत्तं तिण्णि आयु० उज्जोव० सिया बं०, सिया अबं०। छस्संघ० सिया बं०। छण्णं एकदरं बं०। अथवा छण्णंपि अबं०।

११२. पुरिसवेदं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० णियमा बं०। पंचदंस० मिच्छत्तं बारसक० भयदुगु० तिण्णि आयु० पंचिंदि-आहारदु० तेजाक०

हास्य-रति, अरति-शोक इन युगलों, ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि नवयुगलका इसी प्रकार है अर्थात् एकतरका बन्धक है तथा अबन्धक भी है।

संज्वलन मानका बन्ध करनेवालेके संज्वलन क्रोधके समान भंग है। विशेष, संज्वलन माया तथा लोभका नियमसे बन्धक है। संज्वलन मायाका बन्ध करनेवालेके इसी प्रकार भंग है। विशेष, संज्वलन लोभका नियमसे बन्धक है। संज्वलन लोभका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। मिथ्यात्व, १५ कषायोंका स्यात् बन्धक है। शेष प्रकृतियोंका संज्वलन क्रोधके समान भंग है।

१११. स्त्रीवेदका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय, तैजस, कार्मणशरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। साता, असाताका स्यात् बन्धक है। दोमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। हास्य, रति, अरति, शोक, नरकगतिको छोड़कर शेष ३ गति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल, २ गोत्रोंमें एकतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। मिथ्यात्व, मनुष्य-तिर्यंच-देवायु, उद्योतका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। ६ संहननका स्यात् बन्धक है। इनमें-से अन्यतमका बन्धक है अथवा ६ का भी अबन्धक है।

११२. पुरुषवेदका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है।

विशेष—पुरुषवेदका बन्ध नवमे गुणस्थानके प्रथम भाग पर्यन्त होता है और ज्ञानावरणादिका इसके आगे तक बन्ध होता है, अतः पुरुषवेदके बन्धकको ज्ञानावरणादिका नियमसे बन्धक कहा है।

५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, नरकायु बिना ३ आयु, पंचेन्द्रिय,

वण्ण०४ अगु०४ उज्जोव-तस०४ णिमि० तित्थय० सिया बं० । सिया अबं० । सादं सिया बं० । असादं सिया बंध० । दोण्णं वेदणी० एकदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं जस० अज्जस० दोगोदाणं । हस्सरदि सिया० । अरदिसो० सिया बं० । दोण्णं युगलाणं एकद० । अथवा दोण्णं पि अबं० । एवं तिण्णिगदि-दोसरीर-छस्संठाणं दोअंगो० छस्संघ० तिण्णि आणु० दोविहा० थिरादिपंचयु० ।

११३. णपुंस० बंधंतो पंचणाणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलस० भयदुगु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० णियमा बं० । सादं सिया० बं । असादं सिया० । दोण्णं एकदरं बं० । ण चेव० [अबंधगो] । एवं हस्सरदि० अरदिसोगाणं दोयु० तिण्णिगदि-पंचजादि-दोसरी०-छसंठाण० तिण्णि आणु० तसथावरादि-णवयुगलाणं दोगोदाणं । तिण्णिआणु०[आयु०]परघादुस्सा० आदावुज्जो० सिया बं० सिया अबं० । दोअंगो० छस्संघ० दोविहा० दोसर० सिया बं० सिया अबं० । दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि एकदरं बं० । अथवा एदेसिं अबं० ।

आहारकद्विक, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, उद्योत, त्रस ४, निर्माण तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । साताका स्यात् बन्धक है । असाताका स्यात् बन्धक है । दोनोंमें-से अन्यतरका बन्धक है ; अबन्धक नहीं है । यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोंका वेदनीयके समान भंग है । हास्य, रतिका स्यात् बन्धक है । अरति, शोकका स्यात् बन्धक है । दो युगलोंमें-से अन्यतरका बन्धक है, अथवा दोनों युगलोंका भी अबन्धक है । नरकगतिको छोड़ शेष ३ गति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि पंच युगलका इसी प्रकार है अर्थात् इनमें-से एकतरका बन्धक है अथवा सबका भी अबन्धक है ।

११३. नपुंसकवेदका वन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है ।

विशेष—नपुंसकवेदका बन्ध मिथ्यात्व गुणस्थानमें होता है, इस कारण यहाँ मिथ्यात्वका भी नियमसे बन्ध कहा है ।

साताका स्यात् बन्धक है, असाताका स्यात् बन्धक है । दोनोंमें-से अन्यतरका बन्धक है ; अबन्धक नहीं है । हास्यरति, अरतिशोक ये दो युगल, देवगतिको छोड़कर ३ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, ३ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ९ युगल, दो गोत्रोंका इसी प्रकार भंग है । देवायुको छोड़कर शेष ३ आयु, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है । २, ६, २, २ में-से अन्यतर बन्धक है अथवा २, ६, २, २ का अबन्धक है ।

विशेष—यहाँ तीन आनुपूर्वीका पहले कथन आ चुका है, अतः पुनः आगत 'तिण्णि आणु०' के स्थानमें तीन आयुका द्योतक 'तिण्णि आयु' पाठ उपयुक्त जँचता है ।

११४. हस्सं बंधं० पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० रदिभयदु० पंचंत० णियमा [बंधगो]। पंचदंस० मिच्छत्त-बारसक० तिण्णिआयु० आहारदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० ४ आदावुज्जो० [णिमि०] तित्थय० सिया बं०, सिया अबंधगो। सादं सिया बं०, असादं सिया बं०। दोण्णं एक्कदरं०। ण चेव अबं०। एवं तिण्णि वेद० जस० अजस० दोगोदाणं। तिण्णिगदि सिया०, सिया अबं०। तिण्णं एक्कदरं बं० अथवा अबं०। एवं गदिभंगो पंचजादि-दोसरी०-छस्संठा० दोअंगो० छस्संघ० तिण्णि आणु० दो विहा० तसादिणवयुग०। एवं रदीए०।

११५. भयं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० दुगुं० पंचंत० णियमा बं०। पंचदं० मिच्छत्त-बारसक० चदुआयु० आहारदुगं तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु०४ आदावुज्जो० णिमि० तित्थय० सिया बं० सिया अबं०। सादं सिया०। असादं सिया०। दोण्णं एक्कदरं बंधगो, ण चेव अबं०। एवं तिण्णिवे०-जस-अज०-दोगोदं०। चदुगदि सिया बं०। चदुण्णं गदीणं एक्क०। अथवा चदुण्णंपि अबंध०। एवं गदिभंगो

---

११४. हास्यका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, रति, भय, जुगुप्सा, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, नरकायुको छोड़कर तीन आयु, आहारकद्विक, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, आताप, उद्योत [निर्माण] तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। साता वेदनीयका स्यात् बन्धक है, असाता वेदनीयका स्यात् बन्धक है, दो में-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। ३ वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और दो गोत्रोंमें वेदनीयके समान भंग है। ३ गति (नरक बिना) का स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। तीनमें-से अन्यतमका बन्धक है अथवा तीनोंका भी अबन्धक है।

विशेष—अपूर्वकरणके अन्तिम भाग तक हास्यका बन्ध होता है, किन्तु गतिका बन्ध अपूर्वकरणके छठवें भाग पर्यन्त होता है। इस कारण हास्यके बन्धकको गतित्रयका अबन्धक भी कहा है।

५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, ३ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि ९ युगलका गतिके समान भंग है अर्थात् एकतरके बन्धक है अथवा सबके भी अबन्धक है।

रतिका बन्ध करनेवालेके हास्यके समान भंग है।

११५. भयका बन्ध करनेवालेके—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, जुगुप्सा, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, ४ आयु, आहारकद्विक, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण तथा तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। साताका स्यात् बन्धक है, असाताका स्यात् बन्धक है। दोनोंमे-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। ३ वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोंका वेदनीयके समान जानना चाहिए। चार गतिका स्यात् बन्धक है। चारमे से एकतरका बन्धक है अथवा चारोंका भी अबन्धक है।

पंचजादि-दोसरीर छस्संठा० दोअंगो-छस्संघ० चदुआणु० दोविहा० तसादिणवयुगलं। एवं दुगुंच्छाए।

११६. णिरयायुं बंधंतो पंचणा० णवदंस० असादावे० मिच्छ० सोलसक० णपुंसक० अरदिसोगभयदु० णिरयगदि-पंचिं० वेगुव्विय० तेजाकम्म० हुंडसंठा० वेगुव्वि० अंगो० वण्ण०४ णिरयाणु० अगुरु०४ अप्पसत्थ० तस०४ अथिरादिछक्कं णिमिणं णीचागोदं पंचंत० णियमा बं०।

११७. तिरिक्खायुं बंधंतो पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदुगु० तिरिक्खगदि-तिण्णिसरी०-वण्ण०४ तिरिक्खाणु० अगु० उप० णिमिण० णीचागो० पंचंत० णियमा बंध०। सादं सिया बं०, असादं सिया बंध०। दोण्णं एक्कदरं बं०। ण चेव अबं०। एस भंगो तिण्णिवेद-हस्सादिदोयुग० पंचजा० छस्संठा० तस-थावरादिणव-युगलाणं०। मिच्छत्तं ओरालि० अंगो० परघाउस्सा० आदावुज्जो० सिया बं०। छस्संघ० दोविहा० दोसरं सिया बंध०। एदेसिं एक्कदर० बं० अथवा अबं०।

११८. मणुसायुगं बंधंतो पंचणा० छदंसणा० बारसक० भय-दुगुंछा०-मणुसग०

विशेष—गतिका बन्ध अपूर्वकरणके छठे भाग पर्यन्त होता है तथा भयका अपूर्वकरणके अन्तिम भाग तक बन्ध होता है। इस कारण भयके बन्धकको गतिचतुष्टयका अबन्धक भी कहा है।

५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि ९ युगलका गतिके समान भंग जानना चाहिए। जुगुप्साका बन्ध करनेवालेके भयके समान भंग जानना चाहिए।

११६ नरकायुका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, १६ कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक-तैजस-कार्मण शरीर, हुंडकसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपाग, वर्ण ४, नरकानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादिषट्क, निर्माण, नीचगोत्र, तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है।

११७. तिर्यंचायुका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यंचगति, ३ शरीर (औदारिक-तैजस-कार्मण), वर्ण ४, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, नीचगोत्र और ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। साता वेदनीयका स्यात् बन्धक है, असाताका स्यात् बन्धक है। दोमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। तीन वेद, हास्यादि दो युगल, ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगलमें वेदनीयके समान जानना चाहिए। अर्थात् एकतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। मिथ्यात्व, औदारिक अंगोपांग, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतका स्यात् बन्धक है। ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका स्यात् बन्धक है। इनमें-से एकतरका बन्धक है अथवा किसीका भी बन्धक नहीं है।

११८ मनुष्यायुका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय,

पंचिंदि० तिण्णिसरी० ओरालि० अंगो० वण्ण०४ मणुसाणु० अगु० उपघा० तस-बादर-पत्तेय०-णिमिण-पंचंत० णियमा बंध० । थीणगिद्धितिग-मिच्छत्तं अणंताणुबंधि०४ परघाउस्सा० तित्थय० सिया बंध०, सिया अबं० । सादं सिया० । असादं सिया० । दोण्णं एक्कद० बं० । ण चेव अबं० । एवं तिण्णिवे० हस्सादि-दो युग० छस्संठा० छस्संघ० पज्जत्तापज्ज० थिरादि-पंचयुग० दोगोदाणं० । दोविहाय० दोसरं सिया० । दोण्णं दोण्णं एक्कदरं बंध० । अथवा दोण्णं दोण्णंपि अबं० ।

११९. देवायुगं बंधंतो० पंचणा० छदंसणा० सादावे० चदुसंज० हस्सरदि-भयदुगु० देवगदि० पंचिंदि० तिण्णिसरीर०-समचदु० वेउव्वि० अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगु०४ पसत्थवि० तस०४ थिरादिछक्कं णिमि० उच्चागो० पंचंत० णियमा बं० । थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-बारसक० आहारदु० तित्थय० सिया० । इत्थि० सिया० । पुरिस० सिया० । दोण्णं वेदाणं एक्कदरं० । ण चेव अबं० ।

१२०. णिरयगदिं बंधंतो णिरयायुभंगो । णवरि णिरयायुं सिया बंधदि । एवं

जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, प्रत्येक, निर्माण तथा ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, परघात, उच्छ्वास, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। सातावेदनीयका स्यात् बन्धक है, असाताका स्यात् बन्धक है। दोनोंमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। ३ वेद, हास्यादि दो युगल, ६ संस्थान, ६ संहनन, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, स्थिरादि पाँच युगल तथा २ गोत्रोंका इसी प्रकार वर्णन है। अर्थात् एकतरके बन्धक हैं; अबन्धक नहीं है। दो विहायोगति, दो स्वरका स्यात् बन्धक है। दोनोंमें-से अन्यतरका बन्धक है अथवा २, २ का भी अबन्धक है।

११९ देवायुका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता, ४ संज्वलन, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, ३ शरीर (वैक्रियिक-तैजस-कार्मण), समचतुरस्र-संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, स्थिरादिषट्क, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। स्त्यान-गृद्धित्रिक मिथ्यात्व, बारह कषाय, आहारकद्विक, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक है। स्त्रीवेदका स्यात् बन्धक है, पुरुषवेदका स्यात् बन्धक है। दो वेदोंमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है।

१२०. नरकगतिका बन्ध करनेवालेके नरकायुके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, नरकायुका स्यात् बन्ध करता है।

विशेष—नरकायुके बन्धकके नियमसे नरकगतिका बन्ध होता है, किन्तु नरकगतिके बन्धकके नरकायुके बन्धका ऐसा कोई नियम नहीं है। नरकायुका बन्ध हो अथवा बन्ध न भी हो। गति बन्ध तो सदा होता रहता है, किन्तु आयुका बन्ध तो सदा नहीं होता है।

णिरयाणुपु० । तिरिक्खगदि तिरिक्खायुभंगो । णवरि तिरिक्खायु सिया० । एवं तिरिक्खाणु० । मणुसगदि मणुसायुभंगो । णवरि मणुसायुं सिया बं० । एवं मणुसाणुपु० । देवगदिं बंधंतो पंचणाणा० चदुदंस० चदुसंज० भयदु० उच्चा० पंचंत० णियमा बं० । सादं सिया० । असादं सिया० । दोण्णं वेदणी० एकदरं० । ण चेव अबं० । एवं हस्सरदि-अरदिसोगाणं दोण्णं युगलाणं । देवायु सिया०, सिया अबं० । हेट्ठा उवरि देवायुभंगो० । णामं सत्थाण०भंगो । एवं देवाणु० ।

१२१. एइंदियं बंधंतो पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० णपुंस० भयदुगुं० णीचा० पंचंत० णियमा बं० । सादासादं चदुणोकसाय० तिरिक्खगदिभंगो० । तिरिक्खायुं० सिया० । णामाणं सत्थाणभंगो । एवं आदाव-थावराणं । विगलिंदिय-सुहुम-अपज्ज० साधारणा हेट्ठा उवरि एइंदियभंगो । णामं (णामाणं) अप्पप्पणो

नरकानुपूर्वीका बन्ध करनेवालेके नरकगतिके समान भंग जानना चाहिए।

तिर्यंचगतिका बन्ध करनेवालेके तिर्यंचायुके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, तिर्यंचायुका स्यात् बन्धक है। तिर्यंचानुपूर्वीमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष—तिर्यंचायुके बन्धकके नियमसे तिर्यंचगतिका बन्ध होता है, किन्तु तिर्यंचगतिके बन्धकके तिर्यंचायुके बँधनेका कोई निश्चित नियम नहीं है। ऐसा ही मनुष्यगतिमें भी है।

मनुष्यगतिका बन्ध करनेवालेके मनुष्यायुके समान भंग है। विशेष, मनुष्यायुका स्यात् बन्धक है। मनुष्यानुपूर्वीमें भी इसी प्रकार है।

देवगतिका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। साताका स्यात् बन्धक है, असाताका स्यात् बन्धक है। दो वेदनीयमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। हास्य-रति, अरति-शोक इन दो युगलोंमें-से अन्यतर युगलका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। देवायुका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। अधस्तन उपरितन बँधनेवाली प्रकृतियोंमें देवायुका भंग जानना चाहिए। नाम-कर्मकी प्रकृतियोंमें स्वस्थान सन्निकर्षके समान भंग है।

विशेषार्थ—देवायुके बन्धकके तो देवगतिके बन्ध-सन्निकर्षका नियम है, किन्तु देवगतिके बन्धकके साथ देवायुके बन्धका ऐसा नियम नहीं है। दूसरी बात यह है कि देवायुका बन्ध अप्रमत्त संयत पर्यन्त है; जब कि देवगतिका अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त बन्ध होता है। इस कारण देवगतिके बन्धकके देवायुका अबन्ध भी कहा है।

देवानुपूर्वीमें देवगतिके समान भंग जानना चाहिए।

१२१. एकेन्द्रियका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, नपुंसकवेद, भय, जुगुप्सा, नीचगोत्र, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। साता, असाता, ४ नोकषायमें तिर्यंचगतिके समान भंग है। तिर्यंचायुका स्यात् बन्धक है। नाम कर्मकी प्रकृतिके बन्धके विषयमें स्वस्थान सन्निकर्षके समान भंग जानना चाहिए। आताप तथा स्थावरके बन्धकके इसी प्रकार भंग है। विकलेन्द्रिय, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारणमें अधस्तन,

सत्थाणभंगो कादव्वो। पंचिंदियं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० भयदु० पंचंत० णियमा बं०। पंचदंस० मिच्छत्त-बारसक० चदुआयु० सिया बं०। सिया अबं०। दोवेद० सत्तणोक० दोगोदा० सिया बं०, सिया अबं०। एदेसिं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं०। णामाणं सत्थाण०भंगो।

१२२. ओरालियं बं० पंचणा० छदंस० बारसक० भयदु० पंचतरा० णियमा बं०। दोवेदणी०-तिण्णि वे० हस्सरदि-दोयुग० दोगोदाणं सिया बं० सिया अबं०। एदेसिं एक्कदरं०। ण चेव०। थीणगिद्धिति० मिच्छ० अणंताणुबं०४ दो आयु० सिया०। णामाणं सत्थाण०भंगो।

१२३. वेगुव्विय बंधंतो हेट्ठा उवरि देवगदिभंगो। णवरि तिण्णि वेदं दोगोदं सिया०, सिया अबं०। एदेसि०एक्कदरं०। ण चेव अबं०। णिरय-देवायु० सिया०।

उपरितन बँधनेवाली प्रकृतियोंका एकेन्द्रियके समान भंग है। विशेष, नामकर्मकी प्रकृतियोंके विषयमें स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए।

पंचेन्द्रियका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, ४ आयुका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है।

विशेष—पंचेन्द्रिय जातिका बन्ध आठवें गुणस्थान तक होता है तथा निद्रादि दर्शनावरण ५ आदिका उसके नीचे तक होता है। इस कारण यहाँ स्यात् अबन्धक कहा है।

दो वेदनीय, सात नोकषाय, तथा २ गोत्रका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। इनमें-से एकतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। नामकर्मकी प्रकृतियोंके बन्धके विषयमें स्वस्थान सन्निकर्षके समान जानना चाहिए।

१२२. औदारिक शरीरका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण (स्त्यानगृद्धित्रिक रहित) १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है।

विशेष—औदारिक शरीरका बन्ध असंयत गुणस्थान पर्यन्त है। इससे उसके बन्धकके ६ दर्शनावरण, १२ कषायादिका नियमसे बन्ध कहा गया है।

दो वेदनीय, ३ वेद, हास्य-रति, अरति-शोक दो युगल, २ गोत्रका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। इनमें एकतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) का स्यात् बन्धक है। नाम कर्मकी प्रकृतियोंके बन्धके विषयमें स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए।

१२३. वैक्रियिक शरीरका बन्ध करनेवालेके उपरितन तथा अधस्तन बँधनेवाली प्रकृतियोंमें देवगतिके समान भंग है। विशेष, ३ वेद, २ गोत्रका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। इनमें-से एकतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—देवगतिमें पुरुषवेद, स्त्रीवेद, एवं उच्चगोत्रका ही सद्भाव है, किन्तु यहाँ वैक्रियिकशरीरके बन्धकोंके वेदत्रय, तथा गोत्रद्वयका वर्णन किया है. कारण वैक्रियिकशरीरके साथ देवगति या नरकगतिका बन्ध होता है। इसी दृष्टिसे नपुंसकवेद, और नीचगोत्रका भी बन्ध कहा है।

णामं (णामाणं) सत्थाण०भंगो। एवं वेगुव्विय० अंगो०।

१२४. आहारसरीरं बंधंतो पंचणा० छदंस० सादावे० चदुसंज० पुरिसवे० हस्सरदिअरदि (?) भयदु० उच्चा० पंचंत० णियमा बं०। देवायु० सिया बं०। णामाणं सत्थाणभंगो। एवं आहारस० अंगो०। पंचिंदिय० जादिभंगो तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ थिरादि पंचण्णं पगदीणं। हेट्ठा उवरि०। णामाणं अप्पप्पणो सत्थाण०भंगो। णवरि समचदु० पसत्थवि० थिरादिपंचण्णं पगदीणं णिरयायुगं णत्थि।

१२५. णग्गोदं बंधंतो पंचणा० णवदंस० सोलसक० भयदु० पंचंतरा० णियमा बं०। दोवेदणीय० सत्तणोक० दोगोदं सिया बं०। एदेसिं एक्कदरं बं०, ण चेव अबं०। मिच्छत्त-तिरिक्खमणुसायुगं सिया बं०। णामं (णामाणं) सत्थाण०भंगो। एसभंगो सादियसंठा० कुज्जसं० वामणसं० चदुसंघडणाणं।

नरकायु-देवायुका स्यात् बन्धक है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थानसन्निकर्षवत् भंग है।

वैक्रियिक अंगोपांगमें वैक्रियिक शरीरवत् भंग जानना चाहिए।

१२४. आहारकशरीरका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, साता वेदनीय, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। देवायुका स्यात् बन्धक है। नामकर्मकी प्रकृतियोंके विषयमें स्वस्थान सन्निकर्षमें वर्णित भंग है।

विशेष—आहारकशरीरका बन्ध अप्रमत्त दशामें होता है। अरति प्रकृतिकी बन्ध-व्युच्छित्ति प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें होती है, अतः आहारक शरीरके बन्धके साथ अरतिका सन्निकर्ष नहीं होगा। इस कारण मूल पाठमें 'अरदि' अयुक्त प्रतीत होती है।

आहारकशरीर-अंगोपांगके बन्ध करनेवालेके आहारक शरीरवत् भंग है।

तैजस-कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, स्थिरादि ५ प्रकृतियोंके बन्धकोंका उपरितन अधस्तन प्रकृतियोंके विषयमें पंचेन्द्रिय जातिके समान भंग है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए। विशेष, समचतुरस्र-संस्थान, प्रशस्तविहायोगति, स्थिरादि ५ प्रकृतियोंके बन्धकोंके नरकायुका बन्ध नहीं है।

१२५ न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। २ वेदनीय, ७ नोकषाय, दो गोत्रका स्यात् बन्धक है। इनमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। मिथ्यात्व, तिर्यंचायु, मनुष्यायुका स्यात् बन्धक है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग है।

स्वातिसंस्थान, कुब्जक संस्थान, वामनसंस्थान, वज्रवृषभनाराच तथा असम्प्राप्ता-सृपाटिका संहननको छोड़कर शेष ४ संहननके बन्धकके इसी प्रकार भंग जानना चाहिए।

विशेष—संस्थान ४ और संहनन ४ सासादन गुणस्थान पर्यन्त बँधते हैं। अतः इनका समान रूपसे वर्णन किया है।

हुंडसठाणं बं० पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० पंचंत० णियमा० । दोवेद० सत्तणोक० दोगोद० सिया० । सिया अबं० । एदेसिं एकदरं० ण चेव अबं० । तिण्णि आयु सिया० । णामाणं सत्थाणं०भंगो । एवं [असंपत्त०] दूभग० अणादे० । ओरालि० अंगो० वज्जरिसह० ओरालियसरीरभंगो । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

१२६. उज्जोवं बंधंतो हेट्ठा उवरिं तिरिक्खगदिभंगो । णामाणं सत्थाणभंगो । अप्पसत्थविहाय० बंधंतो हेट्ठा उवरि णग्गोधभंगो । णवरि णिरयायु० सिया बं० । णामाणं सत्थाणभंगो । एवं दुस्सरं । जसगित्तिं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० पंचंत० णियमा बं० । पंचदंसणा० मिच्छत्तं० सोलसक० भय-दुगुंच्छा०-तिण्णिआयु० सिया बं० । सिया अबं० । सादं सिया बं०, सिया अबं० । असादं सिया बं० [सिया अबं०]

हुण्डक संस्थानका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा तथा ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। दो वेदनीय, ७ नोकषाय, दो गोत्रका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। इनमें-से एकतरका बन्धक है ; अबन्धक नहीं है। नरक-मनुष्य तिर्यंचायुका स्यात् बन्धक है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षके समान भंग है।

[असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन] दुर्भग, अनादेयके बन्ध करनेवालोंके हुंडक संस्थानवत् भग जानना चाहिए। औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहननके बन्ध करनेवाले औदारिक शरीरके समान भंग है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए।

१२६. उद्योतका बन्ध करनेवालेके—उपरितन अधस्तन प्रकृतियोंका तिर्यंचगतिके समान भंग है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए। अप्रशस्त विहायोगतिके बन्ध करनेवालेके उपरितन अधस्तन बँधनेवाली प्रकृतियोंका न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, नरकायुका स्यात् बन्धक है। नामकर्मकी प्रकृतियोंमें स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग जानना चाहिए।

विशेषार्थ—अप्रशस्तविहायोगति तथा न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानका बन्ध सासादन गुणस्थान पर्यन्त होता है। इस कारण न्यग्रोधसंस्थानके समान अप्रशस्तविहायोगतिका वर्णन बताया है। इतना विशेष है कि नारकियोंमें न्यग्रोधसंस्थान नहीं है, किन्तु वहाँ दुर्गमनका सद्भाव पाया जाता है। इस कारण दुर्गमनके बन्धकके नरकायुका भी बन्ध कहा है।

दुस्वर प्रकृतिका बन्ध करनेवालेके इसी प्रकार भंग है। यशःकीर्तिका बन्ध करनेवाला ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है।

विशेषार्थ—यद्यपि कषायोंका उदय सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थान पर्यन्त होता है, किन्तु उनका बन्ध अनिवृत्तिकरण पर्यन्त होता है। अतः सूक्ष्मसाम्पराय पर्यन्त बँधनेवाले यशःकीर्तिके बन्धकके कषायोंके बन्धका नियम नहीं है। इससे यहाँ ज्ञानावरणादिके साथ कषायोंका वर्णन नहीं हुआ है।

दर्शनावरण ५ (निद्रापंचक), मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, नरकको छोड़ तीन आयुका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। साताका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है।

दोण्णं एक्कदरं० । ण चेव अबं० । एवं दोगोद० । तिण्णि वेदाणं सिया बं० । तिण्णं वेदाणं एक्कदरं बं० । अथवा अबं० । एवं चदुणोक० । णामाणं सत्थाणभंगो । तित्थयरं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० उच्चा० पंचंत० णियमा बं० । णिद्दा-पचला-अट्ठक० दो आयु सिया बं० सिया अबं० । सादं सिया बं०, असादं सिया बं० । दोण्णं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । एवं चदुणोक० । णामाणं सत्थाण०भंगो ।

१२७. उच्चागोदं बंधंतो पंचणा० चदुदंस० पंचंत० णियमा बं० । पंचदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० दोआयु० पंचिंदि० तिण्णिसरी०-आहार० अंगो० वण्ण० ४ [अगु०४] तस०४ णिमिणं तित्थयरं सिया बं० सिया अबं० । दो वेदणी० जस० अजस० सिया बं० । एदेसिं एक्कदरं बं० । ण चेव अबं० । तिण्णि वेदं सिया बं० सिया अबं० । तिण्णं वेदाणं एक्कदरं बं० । अथवा अबं० । एस भंगो चदुणोक० दोगदि० दोसरीरं छस्संठा० दो अंगो० छस्संघ० दो आणु० दो विहा० थिरादिपंच-युगलाणं । णीचागोदं बंधंतो थीणगिद्धिभंगो । देवायु-देवगदिदुगं उच्चागोदं वज्जं० ।

असाताका स्यात् बन्धक है [स्यात् अबन्धक है], दोमें-से अन्यतरका बन्धक है, अबन्धक नहीं है। दो गोत्रका वेदनीयके समान भंग है। तीन वेदका स्यात् बन्धक है। इनमें-से अन्यतमका बन्धक है अथवा तीनोंका भी अबन्धक है। हास्य, रति, अरति, शोकका भी इसी प्रकार जानना चाहिए। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग है।

तीर्थंकरका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायोंका नियमसे बन्धक है। निद्रा, प्रचला, अप्रत्याख्यानावरण तथा प्रत्याख्यानावरण रूप कषायाष्टक, देव-मनुष्यायुका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। सातावेदनीयका स्यात् बन्धक है, असाताका स्यात् बन्धक है। दोमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। हास्यादि ४ नोकषायोंका वेदनीयके समान भंग है। नामकर्मकी प्रकृतियोंका स्वस्थान सन्निकर्षवत् भंग है।

१२७. उच्चगोत्रका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, दो आयु (मनुष्य-देवायु), पंचेन्द्रिय जाति, तीन शरीर, आहारक अंगोपांग, वर्ण ४, [अगुरुलघु ४], त्रस ४, निर्माण, तीर्थंकरका स्यात् बन्धक, स्यात् अबन्धक है। दो वेदनीय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति-का स्यात् बन्धक है। इनमें-से अन्यतरका बन्धक है; अबन्धक नहीं है। तीन वेदका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है। तीन वेदोंमें-से अन्यतमका बन्धक है अथवा तीनोंका अबन्धक है। हास्यादि ४ नोकषाय, २ गति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि पांच युगलोंका इसी प्रकार भंग है।

नीचगोत्रका बन्ध करनेवालेके स्त्यानगृद्धिवत् भंग है। विशेष, यहाँ देवायु, देवगति-त्रिक तथा उच्चगोत्रको छोड़ देना चाहिए।

१२८. एवं ओघभंगो मणुस०३ पंचिंदिय तस०२ पंचमण० पंचवचि० कायजोगि-ओरालियकाजो० लोभ० चक्खु० अचक्खु० सुक्क० भवसि० सण्णि-आहारगत्ति। ओरालियमिस्स० सादं बंधंतो पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० दो आयु० देवगदि-चदुसरीर०-दो अंगो० वण्ण०४ देवाणु० अगुरु०४ आदावुज्जोव० णिमिणं तित्थय० पंचंत० सिया बं०, सिया अबं०। सेसाणं वेदादीणं सव्वाणं सिया बं०। एदाणं एक्कदरं बं०। अथवा अबं०। एवं कम्म०-अणाहारगेसु। [1]णवरि आयुवज्ज०। इत्थिवेद०। आभिणिबोधि० बंधंतो चदुणाणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० णियमा बं०। सेसाणं ओघभंगो। एवं पुरि० णपुंस० कोध-माणमाया०। णवरि माणे तिण्णि संजल०। मायाए दो संज०। सेसाणं ओघो। अवगदवेदे ओघं।

१२८. आदेशसे—मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य तथा मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्तक, त्रस, त्रस-पर्याप्तक, ५ मनोयोग, ५ वचनयोग, काययोग, औदारिककाययोग, लोभकषाय, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, संज्ञी, आहारक तक ओघवत् जानना चाहिए।

औदारिकमिश्रकाययोगमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, साताका बन्ध करनेवाला—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्य-तिर्यंचायु, देवगति, औदारिक-वैक्रियिक, तैजस-कार्मण शरीर, २ अंगोपांग, वर्ण ४, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर तथा ५ अन्तरायका स्यात् बन्धक है, स्यात् अबन्धक है।

विशेष—साताका सयोगीजिन पर्यन्त बन्ध है। ज्ञानावरणादिकां सूक्ष्मसाम्पराय पर्यन्त बन्ध है। इस कारण साताके बन्धकके ज्ञानावरणादिके बन्धका विकल्प रूपसे वर्णन किया गया है।

वेदादि शेष सर्व प्रकृतियोंका स्यात् बन्धक है। इनमें-से एकतरका बन्धक है अथवा सबका अबन्धक है।

[2]कार्माण काययोग तथा अनाहारकोंमें औदारिकमिश्रकाययोगके समान जानना चाहिए। विशेष — यहाँ आयुको छोड़ देना चाहिए। स्त्री वेदमें इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, आभिनिबोधिक ज्ञानावरणका बन्ध करनेवाला—४ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन तथा ५ अन्तरायका नियमसे बन्धक है। शेष प्रकृतियोंका ओघके समान भंग जानना चाहिए।

पुरुषवेद, नपुंसकवेद, क्रोध, मान, माया कषायोंमें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए। विशेष, मानमें, तीन संज्वलन और मायामें दो संज्वलन हैं। शेषका ओघवत् भंग जानना चाहिए।

अपगत वेदमें—ओघके समान भंग जानना चाहिए।

---

१. "ओराले वा मिस्से ण हि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं ॥"—गो० क०, गा० ११६।
२. "कम्मे उरालमिस्सं वा णाउदुगंपि णव छिदी अयदे।"—गो० क०, गा० ११९।

१२९. आभिणि० सुद० ओधिणा० मणपज्ज० संजद० समाइ० छेदो० परिहार० सुहुम० संजदासंजद० ओधिदं० सम्मादि० खइग० वेदग० उवसम० ओघभंगो। णवरि मिच्छत्त-असंजदपगदीओ वज्जं। ओरालिय० ओरालियमिस्स० इत्थिवे० किण्णणीलासु तित्थयरं देवगदिसंयुत्तं कादव्वं। पम्मसुक्क-लेस्सा० इत्थिवेदं बंधंतो ओरालियसरीरं धुवं बंधदि। सेसं णिरयादि याव असण्णित्ति ओघेण अप्पप्पणो सामित्तेण च साधूण भाणिदव्वं।

एवं परत्थाणसण्णियासो समत्तो।

---

१२९. आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधि, मन पर्ययज्ञान, संयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, संयतासंयत, अवधिदर्शन, सम्यक्त्वी, क्षायिक सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व, उपशम सम्यक्त्वमे ओघवत् भंग जानना चाहिए। विशेष, यहाँ मिथ्यात्व तथा असंयत सम्बन्धी प्रकृतियोंको छोड़ देना चाहिए। औदारिक, औदारिकमिश्र, स्त्रीवेद, कृष्ण और नील लेश्याओंमें—तीर्थंकरका बन्ध देवगति संयुक्त करना चाहिए।

पद्म, शुक्ल लेश्यामें—स्त्रीवेदका बन्ध करनेवाला औदारिक शरीरका नियमसे बन्ध करता है। नरक गतिसे लेकर असंज्ञी पर्यन्त ओघसे अपने-अपने स्वामित्वको जानकर शेष प्रकृतियोंका कथन करना चाहिए।

इस प्रकार परस्थानसन्निकर्ष समाप्त हुआ।

[भंगविचयाणुगम-परूवणा]

१३०. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो दुविधो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। ओघे० पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाकम्म० आहारदुगं वण्ण०४ अगुरु०४ आदावुज्जो० णिमिणं तित्थयरं पंचंत० अत्थि बंधगा अबंधगा च। सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं पगदीणं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। एवं वेदणीयभंगो सत्तणोक० चदुग० पंचजादि-दोसरीर-छस्संठा०दोअंगो०छस्संघ० चदुआणु० दोविहाय० तसादिदसयुगलं दोगोदाणं। दो अंगो०छस्संघ०दोविहा० दोसर० अत्थि बंधगा य अबंध०। अथवा दोण्णं छण्णं दोण्णं दोण्णं पि अत्थि बंधगा य अबंधगा य। णिरय-मणुस-देवायूणं सिया सव्वे अबंधगा, सिया अबंधगा य बंधगे (गो) य, सिया अबंधगा य बंधगा य। तिरिक्खायु अत्थि बंधगा य अबंधगा य। चदुण्णं आयुगाणं अत्थि बंधगा य अबंधगा य।

१३१. एवं ओघभंगो कायजोगि-ओरालियकायजोगि-भवसिद्धि० आहारगत्ति०।

[भंगविचयानुगम]

१३०. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमका ओघ और आदेशकी अपेक्षा दो प्रकारका निर्देश है।

विशेषार्थ—भंगविचयका अर्थ है अस्ति नास्ति रूप भंगोंका विचार। यहाँ कर्म-प्रकृतियोंके सद्भाव, असद्भावका विचार किया गया है।[1]

ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, आहारकद्विक, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आताप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक हैं।

साताके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक है। असाताके अनेक वन्धक और अवन्धक हैं। दोनों प्रकृतियोंके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक है। ७ नोकषाय (भय जुगुप्साको छोड़कर), ४ गति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपाग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रसादि १० युगल, २ गोत्रमे वेदनीयके समान भंग है। २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके नाना जीवोंकी अपेक्षा अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक हैं। अथवा २, ६, २, २ के अनेक वन्धक हैं, अनेक अवन्धक हैं। नरक, मनुष्य, देवायुके किसी अपेक्षा सव अवन्धक है, स्यात् अनेक अवन्धक, एक वन्धक है। स्यात् अनेक अवन्धक तथा अनेक वन्धक है। तिर्यंचायुके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक हैं। चारों आयुके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक हैं।

१३१. काययोगी, औदारिक काययोगी, भव्यसिद्धिक, आहारकमार्गणामे इसी प्रकार

[1] विचयो विचारणा। केसिं ? अत्थि णत्थि त्ति भगाण। — खुद्दाबंध,पृ० २३७, सूत्र १ की टीका।

णवरि भवसिद्धिय-सादं अत्थि वंधगा य अवंधगा य। असादं अत्थि वंधगा य अवंधगा य। दोण्णं वेदणी० सिया सव्वे सिं० वंधगा य। सिया वंधगा य अवंधगा य। सिया वंधगा य अवंधगा य। सेसाणं सादं अत्थि वंधगा य अवंधगा य। असादं अत्थि वंधगा य अवंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं सव्वे वंधगा; अवंधगा णत्थि (?)

१३२. आदेसेण णेर० पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदुगुं० पंचिंदि० ओरालिय० तेजाकम्म० ओरालि० अंगो० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० सव्वे वंधगा। अवंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छ० अणंताणुबंधि०४ उज्जोवं तित्थय० अत्थि वंधगा य अवंधगा य। सादस्स अत्थि वंधगा य अवंधगा य। असादस्स अत्थि बंधगा य अवंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं सव्वे वंधगा अवंधगा णत्थि। एवं वेदणीयभंगो सत्तणोक० दोगदि-छस्संठा० छस्संघ० दोआणु० दोविहा० थिरादिछयुग० दोगोदाणं। दो-आयुगाणं सिया सव्वे अवंधगा। सिया अबंधगा य वंधगो य। सिया अवंधगा य वंधगो य। एवं सव्व-णिरयाणं सणक्कुमारादि उवरिमदेवाणं।

ओघके समान भंग समझना चाहिए। विशेष, भव्यसिद्धिकमें—साताके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक है। असाताके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक हैं। दोनों वेदनीयोंके कदाचित् सर्व बन्धक है। कदाचित् अनेक वन्धक है। स्यात् अनेक अवन्धक हैं, स्यात् अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक हैं। शेषमें साताके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक हैं। असाताके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक है। दोनों वेदनीयोंके सब बन्धक है; अवन्धक नहीं है। (?)

विशेषार्थ—अयोगी जिनके वन्धके कारण योगका अभाव हो जानेसे वन्धका अभाव है। अतः यहाँ साता असाताके अवन्धक नहीं है यह कथन विचारणीय है।

१३२. आदेशकी अपेक्षा-नारकियोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण और ५ अन्तरायके सब वन्धक हैं; अबन्धक नहीं हैं। स्त्यान-गृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, ४ अनन्तानुबन्धी, उद्योत और तीर्थंकरके अनेक बन्धक और अनेक अवन्धक है। साताके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक है। असाताके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक है। दोनों वेदनीयोंके सब बन्धक हैं; अवन्धक नहीं हैं।

विशेष—नरकगतिमें आदिके ४ गुणस्थान होनेसे दोनों वेदनीयके अबन्धक नहीं पाये जाते हैं।

७ नोकषाय, २ गति, ६ संस्थान, ६ संहनन २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल तथा २ गोत्रोंमें वेदनीयका भंग जानना चाहिए। २ आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) के स्यात् (कदाचित्) सब अवन्धक है। कदाचित् अनेक अवन्धक और एक जीव वन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक और अनेक वन्धक है। इसी तरह सम्पूर्ण नरकोंमें जानना चाहिए। सनत्कुमारादि ऊपरके देवोंमें भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

१३३. तिरिक्खेसु णिरयभंगो। णवरि चदुआयु-दोअंगो० छस्संघ० दोविहा० दोसर० ओघं। एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३। णवरि चदुण्हं आउगाणं सिया सव्वे अबंधगा। सिया अबंधगा य, बंधगो य। सिया अबंधगा य।

१३४. पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तेसु–पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० ओरालियतेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० सव्वे बंधगा, अबंधगा णत्थि। ओरालिय० अंगो० परघादुस्सा० आदाउज्जो० अत्थि बंधगा य, अबंधगा य। छस्संघ० दोविहा० दोसर० ओघभंगो। सेसं णिरयभंगो।

१३५. एवं सव्व-अपज्जत्ताणं, सव्व-एइंदिय-विगलिंदिय-पंचकायाणं च। णवरि एइंदिय-पंचकायाणं आयूण दूण (साधेदूण) भाणिदव्वं।

१३६. मणुस०३ ओघं। णवरि सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं सिया सव्वे बंधगा। सिया बंधगा य, अबंधगो य। सिया बंधगो य अबंधगा य। चदुण्णं आयुगाणं सिया सव्वे अबंधगा। सिया अबंधगा य, बंधगो य। सिया अबंधगा य बंधगा य। एवं पंचिंदि० तस०२-

---

१३३. तिर्यंचोंमें–नरकके भंग समान समझना चाहिए। विशेष ४ आयु, २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका ओघके समान समझना चाहिए।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक-तिर्यंच और पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतीमे भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेषता यह है कि ४ आयुके स्यात् सब अबन्धक हैं। स्यात् अनेक अबन्धक हैं,एक जीव बन्धक है; स्यात् अनेक अबन्धक हैं।

१३४ पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-लब्ध्यपर्याप्तकोंमे—ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायके सब बन्धक हैं; अबन्धक नहीं हैं। औदारिक अंगोपांग, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योतके अनेक बन्धक हैं और अनेक अबन्धक हैं। ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका ओघके समान भंग समझना चाहिए। शेषका नरकवत् भंग समझना चाहिए।

१३५. इस तरह सम्पूर्ण लब्ध्यपर्याप्तक, सम्पूर्ण एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचकायोंके भंग समझना चाहिए। विशेष, एकेन्द्रिय और पंचकायोंमे आयुको जानकर कहना चाहिए, अर्थात् इनमें मनुष्य और तिर्यंच आयुका ही बन्ध होता है।

१३६. मनुष्यत्रिक अर्थात् सामान्यमनुष्य, पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यनीमें–ओघके समान है। विशेष, साताके अनेक बन्धक हैं, अनेक अबन्धक हैं। असाताके अनेक बन्धक हैं, अनेक अबन्धक हैं। दोनों वेदनीयोंके स्यात् सर्व बन्धक हैं। स्यात् अनेक बन्धक हैं और एक अबन्धक है। स्यात् एक जीव बन्धक और अनेक जीव अबन्धक हैं। चारों आयुके स्यात् सर्व अबन्धक हैं। स्यात् अनेक अबन्धक हैं तथा एक जीव बन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक और अनेक बन्धक हैं।

तिण्णिमण० तिण्णिवचि० संजद-सुक्कलेस्सियाणं। णवरि योगलेस्सासु दोण्णं वेदणी-याणं सव्वे बंधगा। अबंधगा णत्थि।

१३७. मणुस-अपज्जत्ते-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० ओरालिय-तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० सिया बंधगो य, सिया बंधगा य। अबंधगा णत्थि। सादं सिया अबंधगो। सिया बंधगो। सिया अबंधगा। सिया बंधगा। सिया अबंधगो य, बंधगो य। सिया अबंधगो य बंधगा य। सिया अबंधगा य, बंधगो य। सिया अबंधगा य बंधगा य। असादं सिया बंधगो। सिया अबंधगो। सिया बंधगा। सिया अबंधगा। सिया बंधगो य अबंधगो य। सिया बंधगो य अबंधगा य। सिया बंधगा य, अबंधगो य। सिया बंधगो (गा) य अबंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं सिया बंधगो। सिया बंधगा य। अबंधगा णत्थि। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-दोआयु० मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालिय-अंगो० छस्संघ० मणुसाणु० परघादुस्सा० आदावुज्जो० दोविहा० तस०४ थिरादिछक्क-

---

विशेष[1]—शंका-भंगविचयमें नानाजीवोंकी प्रधानतासे कथन करनेपर एक जीवकी अपेक्षा भंग कैसे बन सकते हैं ?

समाधान—एक जीवके बिना नानाजीव नहीं बन सकते हैं। इससे भंगविचयमें नाना जीवोंकी प्रधानता रहनेपर भी एक जीवकी अपेक्षा भी भंग बन जाते हैं।

इसी तरह पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रस, त्रस-पर्याप्तक, ३ मनोयोग, ३ वचनयोग, संयत और शुक्ल लेश्यावालोंके भी जानना चाहिए। विशेषता यह है कि योग और लेश्यामें-दोनों वेदनीयके सर्व बन्धक हैं; अबन्धक नहीं हैं।

१३७ मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर, ४ वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, और ५ अन्तरायका स्यात् एक बन्धक है, स्यात् अनेक बन्धक है; अबन्धक नहीं है। साताका स्यात् एक अबन्धक है, स्यात् एक जीव बन्धक है, स्यात् अनेक अबन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक है। स्यात् एक अबन्धक, एक बन्धक है। स्यात् एक अबन्धक, अनेक बन्धक हैं। स्यात् अनेक अबन्धक, एक बन्धक हैं। स्यात् अनेक अबन्धक, अनेक बन्धक हैं। असाताके-स्यात् एक बन्धक है, स्यात् एक अबन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक है, स्यात् अनेक अबन्धक हैं। स्यात् एक बन्धक तथा एक अबन्धक है। स्यात् एक बन्धक, अनेक अबन्धक हैं। स्यात् अनेक बन्धक, एक अबन्धक है; स्यात् अनेक बन्धक, अनेक अबन्धक हैं। दोनों वेदनीयों-का स्यात् एक बन्धक है, स्यात् अनेक बन्धक हैं; अबन्धक नहीं हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, दो आयु, मनुष्यगति, ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, ४ त्रस, स्थिरादिषट्क,

---

१. "णाणाजीवप्पणाए कधमेकभंगुप्पत्ती ? ण एगजीवेण विणा णाणाजीवाणुप्पत्तीदो।" –जयध०, पृ० ३२१।

दुस्सर उच्चागोदाणि। असादभंगो णवुंसकवे० अरदिसो० तिरिक्खगदि० एइंदिय० हुंडसंठाण-तिरिक्खाणुपु० थावरादि०४ अथिरादिपंच-णीचागोदाणं। तिण्णिवेद-हस्सादि-दोयुग० दोगदि० पंचजादि-छस्संठा० दोआणुपुव्वि-तसथावरादिणवयुगला० दोगोदाणं सिया बंधगो। सिया बंधगा। अबंधगा णत्थि। दोआयु-छस्संघ० दोविहा० दोसर० सादभंगो कादव्वो पत्तेगेण साधारणेण वि। एवं मणुस-अपज्जत्तभंगो वेउव्वियमिस्स० आहारकाय० आहारमिस्स० सासण० सम्मामिच्छ०। णवरि अप्पप्पणो धुविगाओ णादव्वाओ भवंति। वेउव्वियमिस्स मिच्छत्त असादभंगो। तित्थयरं सादभंगो। आहार० आहारमिस्स तित्थयरं सादभंगो। सासणे तिरिक्खगदि-संयुता असादभंगो। सेसाणं सादभंगो। सम्मामि० मणुसगदि-संयुताओ असादभंगो। सेसाणं सादभंगो।

१३८. देवेसु-भवणवासिय याव ईसाणत्ति णिरयभंगो। णवरि ओरालि० अंगो० आदावुज्जोवं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। छस्संघड० दो विहाय० दोसर० ओघ-भंगो। दोमण० दोवचि० पंचणा० छदंस० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० सिया सव्वे बंधगा। सिया बंधगा य अबंधगो य। सिया बंधगा य, अबंधगा य। थीणगिद्धितिय मिच्छत्त० बारसक० आहारदु० परघाउस्सा-

दुस्वर, उच्चगोत्रका साताके समान भंग जानना चाहिए। नपुंसकवेद अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय, हुंडक संस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, ४ स्थावरादि, अस्थिरादि पचक, नीच गोत्रका असाताके समान भंग है। ३ वेद, हास्यादि दो युगल, २ गति, ५ जाति, ६ संस्थान, २ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि नवयुगल और २ गोत्रके स्यात् एक बन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक हैं; अबन्धक नहीं है। २ आयु, ६ संहनन, २ विहायोगति और २ स्वरके प्रत्येकसे और सामान्यसे साताके समान भंग करना चाहिए।

वैक्रियिकमिश्र, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग, सासादनसम्यक्त्व, तथा सम्यक्त्वमिथ्यात्वगुणस्थानमें लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यकी तरह भंग है। विशेष, यहाँ अपनी-अपनी मार्गणामें सम्भवनीय ध्रुव प्रकृतियोंको जानना चाहिए। वैक्रियिक मिश्रमें—मिथ्यात्वका असाताके समान भंग होता है। तीर्थंकरका साताके समान भंग होता है। आहारक, आहारकमिश्रमें—तीर्थंकरका साताके समान भंग है। सासादनमें—तिर्यंचगति मिलाकर असाताके समान भंग है। शेषमें साताके समान भंग है। सम्यक्त्वमिथ्यात्वमें—मनुष्यगति मिलाकर असाताके समान भंग जानना चाहिए। शेषमें साताके समान भंग है।

१३८. देवोंमें—भवनवासियोंसे ईशान स्वर्ग पर्यन्त नरकगतिके समान भंग है। विशेष यह है कि औदारिक अंगोपांग, आतप, उद्योतके अनेक बन्धक तथा अनेक अबन्धक हैं। छह संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके ओघके समान भंग हैं।

दो मन-दो वचनयोगमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, ४ वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायके स्यात् सब बन्धक हैं। स्यात् अनेक बन्धक, एक अबन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक हैं, अनेक अबन्धक हैं। स्त्यान-

सआदावुज्जोव-तित्थयरं अत्थि बंधगा अबंधगा य। सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं सव्वे बंधगा। अबंधगा णत्थि। इत्थि० पुरिस० णपुंस० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। तिण्णं वेदाणं सिया सव्वे बंधगा। सिया बंधगा य अबंधगो य। सिया बंधगा य अबंधगा य। एवं तिण्णं-वेदाणं भंगो णिरयगदि-तिरिक्खगदि-मणुसगदि-देवगदि-पंचजादि-दोसरी०-छस्संठा० चदु-आणुपु० तस-थावरादि-णवयुगलं दोगोदाणं। सेसाणं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। एवं आभिणि० सुद० ओधि० मणपज्जव० चक्खुदं० अचक्खुदं० ओधिदं० त्ति।

१३६. ओरालियमिस्स–पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तिण्णिसरी०-वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० सिया सव्वे बंधगा। सिया बंधगा य अबंधगो य। सिया बंधगा य अबंधगा य। सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं सव्वे बंधगा। अबंधगा णत्थि। इत्थि० पुरिस० णपुंस० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। तिण्णि-वेदाणं सिया सव्वे बंधगा। सिया बंधगा य अबंधगो य। सिया बंधगा य अबंधगा य। एवं वेदाणं भंगो [हस्सादि] दोयुगल-तिण्णिगदि-पंचजादि छस्संठा०। दोआयु ओघं। देवगदि०४

गृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषाय, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत तथा तीर्थंकर प्रकृतिके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक है। साताके अनेक वन्धक, अनेक अवन्धक हैं। असाताके अनेक वन्धक अनेक अवन्धक हैं। दोनों वेदनीयके सर्व वन्धक हैं, अवन्धक नहीं हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदके अनेक वन्धक, अनेक अवन्धक हैं। तीनों वेदोंके स्यात् सर्व वन्धक है। स्यात् अनेक वन्धक हैं और एक अवन्धक है। स्यात् अनेक वन्धक हैं और अनेक अवन्धक है। नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति, ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ६ युगल, २ गोत्रोंके तीनों वेदोंके समान भंग हैं। शेष प्रकृतियोंके अनेक वन्धक, अनेक अवन्धक है।

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, और अवधिदर्शन, तथा संज्ञी मार्गणामे इसी प्रकार जानना चाहिए।

१३६. औदारिक मिश्रकाययोगमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ३ शरीर, ४ वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायके स्यात् सव वन्धक हैं। स्यात् अनेक वन्धक और एक अवन्धक हैं। स्यात् अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक हैं। साताके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक है। असाताके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक हैं। दोनों वेदनीयके सव वन्धक है; अवन्धक नही हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक-वेदके अनेक वन्धक और अनेक अवन्धक है। तीनों वेदोंके स्यात् सव वन्धक हैं। स्यात् अनेक बन्धक और एक अवन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक है और अनेक अवन्धक हैं। हास्य-रति, अरति-शोक ये दो युगल, ३ गति, ५ जाति, ६ संस्थानमें वेदके समान भंग है। दो आयु

तित्थय० सिया सव्वे अबंधगा। सिया अबंधगा य बंधगो य। सिया अबंधगा य बंधगा य। छस्संघ० दोविहा० दोसर० ओघभंगो।

१४०. एवं कम्मइगे। णवरि आयुगं णत्थि।

१४१. इत्थि० पुरिस० णवुंस० कोधादि०४ सामाइ० छेदो० धुवपगदीओ मोत्तूण सेसाणं दोण्णं मणभंगो।

१४२. अवगद०-पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० जसगित्ति उच्चा० पंचंत० सिया सव्वे अबंधगा। सिया अबंधगा य बंधगो य। सिया अबंधगा य बंधगो (गा) य। सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य।

१४३. अकसा०-सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। एवं केवलिणा० केवलिदं०।

१४४. मदि-सुद० विभंग० असंज० किण्ण-णील-काउ०-अब्भव० मिच्छादि० असण्णित्ति तिरिक्खभंगो। णवरि किंचि विसेसो जाणिदव्वाओ। परिहार-संजदासंजदेसु अप्पप्पणो पगदीओ णिरयभंगो।

(मनुष्य तिर्यंचायु) का ओघके समान भंग है। देवगतिचतुष्क और तीर्थंकरके स्यात् सर्व अबन्धक हैं। स्यात् अनेक अबन्धक तथा एक बन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक हैं और अनेक बन्धक हैं। ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरमें ओघवत् भंग जानना चाहिए।

१४०. इसी प्रकार कार्मणकाययोगमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ आयुका बन्ध नहीं है।

१४१. स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, क्रोधादि ४, सामायिक, छेदोपस्थापनासंयममें ध्रुव-प्रकृतियोंको छोड़कर शेष प्रकृतियोंका दो मनोयोगके समान भंग जानना चाहिए।

१४२. अपगतवेदमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और ५ अन्तरायोंके स्यात् सर्व अबन्धक हैं। स्यात् अनेक अबन्धक और एकजीव बन्धक है। स्यात् अनेक अबन्धक हैं, और एक जीव बन्धक है (?) विशेषार्थ—यहाँ अनेक अबन्धक तथा एक जीव बन्धक है, यह कथन हो चुका है, अतः पुनः आगत इस पाठमें यह संशोधन सम्यक् प्रतीत होता है कि अनेक बन्धक हैं और अनेक अबन्धक है।

साताके नाना जीव बन्धक हैं और अनेक अबन्धक हैं।

१४३. अकषायियोंमें—साताके अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक है। केवलज्ञान और केवलदर्शनमें—इसी प्रकार जानना चाहिए।

१४४. मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभंगावधि, असंयत, कृष्ण, नील, कापोतलेश्या, अभव्य-सिद्धिक मिथ्यादृष्टि तथा असंज्ञी जीवोंमें तिर्यंचोंके समान भंग जानना चाहिए। और इनकी जो कुछ विशेषता है वह भी जाननी चाहिए। परिहारविशुद्धि संयम और संयतासंयतोंमें—अपनी-अपनी प्रकृतियोंका नरकवत् भंग जानना चाहिए।

१४५. सुहुमसं० पंचणा० चदुदंस० साद० जस० उच्चागो० पंचंत० सिया बंधगो। सिया बंधगा य। अबंधगा णत्थि। यथाक्खादे-सादं सिया सव्वे बंधगा। सिया बंधगा य अबंधगो य। सिया बंधगा य अबंधगा य। तेउ० सोधम्मभंगो। पम्म० सणक्कुमारभंगो। णवरि किंचि विसेसो णादव्वो। सम्मादि० खइगसं० अप्पप्पणो पगदीओ ओघेण साधे(धे)दव्वा। वेदगस० परिहारभंगो। णवरि असंजद-संजदासंजद-पगदीओ णादव्वो। उवसमस्स-पंचणा० छदंसणा० बारसक० पुरिस० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिस० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणं तित्थय० उच्चा०-पंचंत०-अट्ठभंगो। सादासादादीणं परियत्तीणं सव्वाणं पत्तेगेण साधारणेण वि अट्ठभंगो। णवरि वेदणीयाणं साधारणेण सिया बंधगो य। सिया बंधगा। अबंधगा णत्थि।

---

१४५ सूक्ष्मसाम्परायमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायोंका स्यात् एक जीव बन्धक है। स्यात् अनेक जीव बन्धक हैं। अबन्धक नहीं है। यथाख्यातमें—सातावेदनीयके स्यात् सर्व बन्धक हैं। स्यात् अनेक बन्धक तथा एक अबन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक है और स्यात् अनेक अबन्धक हैं। तेजोलेश्यामें—सौधर्म स्वर्गके समान भंग जानना चाहिए। पद्मलेश्यामें—सनत्कुमारवत् भंग जानना चाहिए। इनका किंचित् विशेष भी जान लेना चाहिए।

विशेष—इस लेश्यामें एकेन्द्रिय, आताप, तथा स्थावरका बन्ध नहीं होता।

सम्यक्दृष्टि, क्षायिकसम्यक्दृष्टिमें—अपनी-अपनी प्रकृतियोंको ओघके समान जानना चाहिए।

वेदकसम्यक्त्वमें—परिहारविशुद्धिके समान भंग जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ असंयत और संयतासंयतकी प्रकृतियोंको भी जानना चाहिए।

उपशम सम्यक्त्वमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रियजाति, तैजस, कार्माण, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र, और ५ अन्तरायोंके आठ भंग जानना चाहिए। साता असातादिक सम्पूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोंके अलग-अलग और सम्मिलित रूपमें[1] आठ भंग होते हैं। विशेष यह है कि वेदनीययुगलके सामान्यसे स्यात् एक बन्धक है। स्यात् अनेक बन्धक हैं। अबन्धक नहीं है।

---

१ "णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण, आदेसेण य। तत्थ ओघेण पेज्ज दोसो च णियमा अत्थि। सुगममेदं। एवं जाव अणाहारए त्ति वत्तव्वं। णवरि मणुसअपज्जत्तएसु णाणेगजीव पेज्ज-दोसे अस्सिऊण अट्ठभंगा। तं जहा-सिया पेज्जं। सिया णोपेज्जं। सिया पेज्जाणि। सिया णोपेज्जाणि। सिया पेज्जं च णोपेज्जं च। सिया पेज्जं च णोपेज्जाणि च। सिया पेज्जाणि च णोपेज्जं च। सिया पेज्जाणि च णोपेज्जाणि च।" –जयध०,पृ० ३६०-३६१।

यहाँ आठ भंग इस प्रकार होंगे—१ एक बन्धक, २ एक अबन्धक, ३ अनेक बन्धक, ४ अनेक अबन्धक, ५ एक बन्धक एक अबन्धक, ६ अनेक बन्धक अनेक अबन्धक, ७ एक बन्धक अनेक अबन्धक, ८ अनेक बन्धक एक अबन्धक।

१४६. अणाहारगेसु-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० ओरालि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदावुज्जो० णिमि० तित्थय० पंचंत० अत्थि बंधगा य अबंधगा य। सादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। असादं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। दोण्णं वेदणीयाणं अत्थि बंधगा य अबंधगा य। एवं सेसाणं पगदीणं एदेण बीजेण साधेदूण भाणिदव्वं।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयं समत्तं



विशेषार्थ—वेदनीयके अबन्धक अयोगकेवली गुणस्थानमें पाये जाते है और उपशम सम्यक्त्व ११वे गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है इस कारण उपशमसम्यक्त्वमे साता असाता युगलके अबन्धकोंका अभाव कहा है।

१४६. अनाहारकोंमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस, कार्मण , वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर ५ अन्तरायोंके अनेक बन्धक है और अनेक अबन्धक हैं।

विशेष—सयोगकेवली और अयोगकेवली गुणस्थानोंमें भी अनाहारक जीव होते हैं उन गुणस्थानोंकी अपेक्षा ज्ञानावरणादिके अबन्धक कहे गये है।

सातावेदनीयके भी अनेक बन्धक तथा अनेक अबन्धक है। असातावेदनीयके भी अनेक बन्धक हैं तथा अनेक अबन्धक हैं। दोनो वेदनीयके भी अनेक बन्धक तथा अनेक अबन्धक है। इसी बीजसे अर्थात् इस दृष्टिसे शेष प्रकृतियोंके भी भग जानना चाहिए।

इस प्रकार नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय समाप्त हुआ।



[भागाभागाणुगम परूवणा]

१४७. भागाभागाणुग० दु०, ओ० आ० । त ओघे० पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजाकम्म० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? अणंता भागा । अबंधगा सव्वजीवाणं केव० ? अणंतभा० । सादबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्ज० भागो० । अबंध० सव्व० संखेज्जा भागा । असाद० [बंधगा] सव्वजी० केव० ? संखेज्जा० भागा । अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्ज० [भा] गो० (?) दोण्णं वेदणीयाणं बंध० सव्वजी० केव० ? अणंता भागा । अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो । एवं सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-चदु-जाति-पंचसंठा० तस०४ थिरादिपंचगं उच्चागोदं च । असादभंगो णपुंस० अरदिसोग-एइंदि०-हुंडसंठा० थावरादिचदु०४ अथिरादिपंचगं णीचागोदाणं च । सत्तणोक०

[भागाभागानुगम प्ररूपणा]

१४७. भागाभागानुगमका ओघ और आदेशसे दो प्रकारका निर्देश करते हैं ।

विशेषार्थ—भागाभागानुगमके शब्दार्थपर धवलाटीकामें इस प्रकार प्रकाश डाला गया है – "अनन्तवाँ भाग, असंख्यातवाँ भाग और संख्यातवाँ भाग इनकी भाग संज्ञा है । अनन्त बहुभाग, असंख्यात बहुभाग, संख्यात बहुभाग इनकी अभाग संज्ञा है । 'भाग और अभाग' इस प्रकार द्वन्द्व समास होकर भागाभाग पद निष्पन्न हुआ । उन भागाभागोंका जो ज्ञान है, वह भागाभागानुगम है ।"[1]

ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धक सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं । साता वेदनीयके बन्धक सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अबन्धक सर्व जीवोंके संख्यात बहुभाग हैं । असाताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । दोनों वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं ?

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, ४ जाति, ५ संस्थान, त्रस ४, स्थिरादि ५ तथा उच्चगोत्रका साताके समान भंग है । नपुंसकवेद, अरति, शोक, एकेन्द्रिय जाति, हुंडक संस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५, नीचगोत्रका असाताके समान भंग है । सात नोकषाय, ५ जाति,

१ अणंतभाग-असंखेज्जदिभाग-संखेज्जदिभागाणं भागसण्णा, अणंताभागा, असंखेज्जाभागा, संखेज्जाभागा एदेसिमभागसण्णा । भागो च अभागो च भागाभागा, तेसिमणुगमो भागाभागाणुगमो ।। —खु० बं०, टीका, पृ० ४९५ ।।

सव्वजादि छस्संठा० तसथावरादि-णवयुग० दोगोदाणं एदेसिं साधारणेण बंध० सव्व० केव० ? अणंता भागा। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। णिरयमणुसदेवायुगाणं बंधगा सव्व० केव० भागो ? अणं० भागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो (?)। तिरिक्खायुबंध० सव्वजीवाणं केव० ? संखेज्जभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा। चदु-आयु-बंधगा० सव्वजीवाणं केवडियो केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा। णिरयगदिदेवगदिबंध० सव्वजीवाण० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंता भागा। तिरिक्खगदिबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा। अबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। मणुसगदिबंध० सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा। चदुण्णं गदीणं बंध० सव्व० केव० ? अणंता भागा। अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। एवं चदुण्णं आणुपुव्वीणं। ओरालिय० बंधगा सव्व० केव० ? अणंता भागा। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतो भागो। वेउव्विय-आहारसरी० बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंध० सव्व० केव० ? अणंता भागा। तिण्णिसरीराणं बंध० सव्व० केव० ? अणंता भागा। अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। ओरालिय०-अं० बंध० सव्व० केव० ? संखेज्ज०। अबंध० सव्व० केव० ? संखेज्ज०।

६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल, तथा दो गोत्र इनके सामान्यसे बन्धक सर्व जीवोंके कितने-भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। नरकायु, मनुष्यायु तथा देवायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहु भाग है। तिर्यंचायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। चार आयुके बन्धक सब जीवोंके कितने भाग हैं। संख्यातवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग है। नरकगति-देवगतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग है। तिर्यंचगतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। मनुष्यगतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है। चारों गतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। इसी प्रकार चारों आनुपूर्वीका जानना चाहिए। औदारिक शरीरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग हैं। वैक्रियिक आहारक शरीरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। तीन शरीरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। औदारिक अंगोपांगके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं।

वेउव्विय-आहारसरी० अंगो० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंध० सव्व० केवडि० ? अणंता भागा। तिण्णि अंगो० बंध० सव्वजीवा० केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जा भा०। छस्संघ० परघादुस्सा० आदावुज्जो० दोविहा० दोसर० बंध० सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा। छस्संघ० दोविहा० दोसर० साधारणेण वि सादभंगो। तित्थयरं बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंता भागा।

१४८. आदेसेण णेरइगेसु० पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० पंचिंदि०-तिण्णिसरी०-ओरालि० अंगो० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। सादबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वणेरइगाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागा (?) सव्वणेरइगाणं केव० ? संखेज्जा भागा। असाद० सव्व० केव० ? अणं० भागो। सव्व-

---

विशेषार्थ—शंका – जब औदारिक शरीरके बन्धक सम्पूर्ण जीवोंके अनन्त बहुभाग हैं, तब औदारिक अंगोपांगके बन्धक सम्पूर्ण जीवोंके संख्यातवे भाग क्यों है ? समाधान – औदारिक शरीरके बन्धक अधिक हैं, तथा औदारिक अंगोपांगके बन्धक कम हैं। अंगोपांगका बन्ध केवल त्रसोंके साथ पाया जाता है तथा औदारिक शरीरका बन्ध त्रस-स्थावर दोनोंके साथ पाया जाता है।

वैक्रियिक-आहारक शरीरांगोपांगके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। तीनों अंगोपांगके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। छह संहनन परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति तथा २ स्वरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग है। सामान्यसे छह संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? तथा अबन्धक कितने भाग हैं ? इनका सातावेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। अर्थात् बन्धक संख्यातवे भाग हैं और अबन्धक संख्यात बहुभाग हैं। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं।

१४८. आदेशसे–नरकगतिमें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं।

साताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। सम्पूर्ण नारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं (?) सम्पूर्ण नारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं।

विशेष—असाताके बन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवें भाग कहे गये हैं, तब साताके अबन्धक भी सर्व जीवोंके अनन्तवें भाग होना चाहिए। अतः साताके अबन्धकोंमे अनन्तवे भाग पाठ उचित प्रतीत होता है।

णेरइगाणं केव० ? संखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो। सव्वणेरइगाणं केवडि० ? संखेज्जदिभागो। दोण्णं वेदणीयाणं बंध० केव० ? अणंतभा०। अबंधगा णत्थि। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्स-रदि-मणुसगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० मणुसाणु० उज्जोव० पसत्थ० थिरादिछक्कं उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदि-सोग० तिरिक्खग० हुंडसं० असंपत्तसेव० तिरिक्खाणु० अप्पस० अथिरादिछक्कं णीचागोदं च। सत्तणोक० दोगदि० छस्संठा० छस्संघ० दोआणु० दोविहा० थिरादिछक्कयुगलं दोगो० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त० अणंताणुबं०४ बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वणेरइगा० केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंध० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वणेरइगा० केवडि० ? असंखेज्जदिभा०। तिरिक्खायुबंधगा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? अणंतभा०। सव्वणेरइ० केव० ? संखेज्जदिभा०। अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभा०। सव्वणेरइगाणं केवडिओ० ? संखेज्जा भागा। मणुसायु-तित्थय० बंध० सव्व० केवडि० ? अणंतभा०। सव्वणेरइगा० केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभा०। सव्व-

---

असाताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वनारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। सर्वनारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग है।

विशेषार्थ—असाताके बन्धक भी सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग है तथा अबन्धक भी अनन्तवे भाग हैं। इसका कारण नारकी जीवोंकी संख्या है, वह इतनी है कि बन्धक भी बृहत् जीवराशिके अनन्तवे भाग होते हैं तथा अबन्धक भी इतने ही होते है।

दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नहीं हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्यगति, ५ संस्थान, ५ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, स्थिरादि षट्क तथा उच्चगोत्रमे साताके समान भंग जानना चाहिए। नपुंसकवेद, अरति, शोक, तिर्यंचगति, हुण्डकसंस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिरादि षट्क, तथा नीचगोत्रका असाताके समान भंग जानना चाहिए। सात नोकषाय, दो गति, ६ संस्थान, ६ सहनन, दो आनुपूर्वी, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगल तथा दो गोत्रोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं; अबन्धक नहीं हैं।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। सर्वनारकियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्वनारकियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग हैं। तिर्यंचायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। मनुष्यायु, तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं।

णेरइगाणं केव० ? असंखेज्जा भागा। दोण्णं आयुगाणं बंध० केव० ? अणंतभा०। सव्वणेरइगाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभा०। सव्वणेरइगाणं केव० ? संखेज्जा भागा। एवं पढमाए पुढवीए। बिदियादि याव छट्ठित्ति णिरयोघो। णवरि आयु मणुसायुभंगो। एवं सत्तमाए। णवरि तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु० णीचागोदं थीणगिद्धितिगभंगो। मणुसगदि-मणुसाणु०-उच्चागोदं मणुसायुभंगो। दोगदि-दोआणुपुव्वि-दोगोदा० बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि।

१४६. तिरिक्खेसु—पंचणा० छदंसणा० अट्ठक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वजीवाणं केवडियो ? अणंताभागा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितिगं मिच्छत्त० अट्ठक० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागा। सव्वतिरिक्खाणं केवडि० ? अणंतभागा। अबंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो। सव्वतिरिक्खाणं केवडि० ? अणंतभागो। सादबंध० सव्व० केवडि० ? संखेज्जदिभागो।

सर्व नारकियोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग है।

दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) के बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व नारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व नारकियोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग हैं।

इस प्रकार पहली पृथ्वीमें जानना चाहिए। दूसरी पृथ्वीसे छठी पृथ्वी पर्यन्त नारकियोंके सामान्यवत् जानना चाहिए। विशेष, आयुके विषयमें मनुष्यायुके समान भंग हैं। अर्थात् वन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग हैं। सर्व नारकियोंके असंख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग है। सर्व नारकियोंके असंख्यात बहुभाग हैं। सातवीं पृथ्वीमें इसी प्रकार है। विशेष, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, नीच गोत्रके विषयमें स्त्यानगृद्धित्रिकवत् भंग है।

विशेषार्थ—वन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग हैं। सर्व नारकियोंके असंख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग हैं तथा सर्व नारकियोंके असंख्यातवें भाग है।

मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, उच्चगोत्रका मनुष्यायुके समान भंग है। मनुष्य-तिर्यंचगति, २ आनुपूर्वी तथा दो गोत्रके वन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। अवन्धक नहीं है।

१४९. तिर्यंचगतिमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, (स्त्यानगृद्धित्रिक बिना) प्रत्याख्यानावरण ४ तथा संज्वलन चार रूप कषायाष्टक, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके वन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग है; अबन्धक नहीं हैं। स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, ८ कषाय (अनन्तानुवन्धी, अप्रत्याख्यानावरण) के बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहु भाग हैं। सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है ? सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। साता वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग है। सर्व तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें

सव्वतिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जदि० । अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा । सव्वतिरिक्खाणं केवडिओ भागो ? संखेज्जा भागा । असादबं० सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा । सव्वतिरिक्खाणं केव० ? संखेज्जा भागा । अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जदि-भागो । सव्वतिरिक्खाणं केव० ? संखेज्जदिभा० । दोण्णं वेदणीयाणं बंध० सव्व० केव० ? अणंता भागा । अबंधगा णत्थि । सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-चदुजादि-पंचसंठा० छस्संघ० पर०उस्सा० आदाबुज्जो० तस०४ थिरादिपंच-उच्चागोदं च । असादभंगो णपुंस० अरदिसो० एइंदि० हुंडसं० थावरादि०४ अथिरादिपंच-णीचागोदं च । सत्तणोक० पंचजादि छस्संठा० तसथावरादि-णवयुगल-दोगोदाणं बंध० सव्व० केव० ? अणंता भागा । अबंधगा णत्थि । चदुआयु-चदुगदि-दोसरी० दोअंगो०छस्संघ० चदुआणु० दोविहा० दोसर० ओघं । णवरि गदि-सरी० आणुपु० सव्वे बंधा । अबंधगा णत्थि । पंचिंदिय-तिरिक्खेसु-पंचणा० छदंस० अट्ठक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो । अबंधगा णत्थि । थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अट्ठकसा० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो । सव्व-पंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जाभा० । अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो । सव्व-पंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जदिभागो । सादावेद० बंध० सव्व० केव० ?

भाग हैं ? अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग है । सर्व तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग है । असाता वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग है । सर्व तिर्यचोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है । अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । सर्व तिर्यचोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । अबन्धक नहीं हैं ।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, ४ जाति, ५ संस्थान, ६ संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, त्रस ४, स्थिरादि ५ तथा उच्चगोत्रका साता वेदनीयके समान भंग है । नपुंसक-वेद, अरति, शोक, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५ तथा नीच गोत्रका असाता वेदनीयके समान भंग है । ७ नोकषाय, ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल, दो गोत्रके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । अबन्धक नहीं हैं ।

चार आयु, ४ गति, औदारिक, वैक्रियिक शरीर, दो अंगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, दो विहायोगति, दो स्वरका ओघवत् भंग है । विशेष, गति, शरीर तथा आनुपूर्वीके सब बन्धक है । अबन्धक नहीं हैं ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं, अबन्धक नहीं हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, ८ कषायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं ।

अणंतभागो। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जा भागो (गा)। असादं बंध० केव० ? अणंतभा०। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केवडिया भागा ? संखेज्जा भागा। अबंध० सव्वजी० केव० ? अणंतभा०। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जदिभागो। दोवेदणीयं बं० सव्व० केवडि० ? अणंता (त) भागो। अबंधगा णत्थि। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-चदुजादि-पंचसंठा० छस्संघ० पर० उस्सा०-आदावुज्जो० तस०४, थिरादिपंच-उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोगं० एइंदि० हुंडसं० थावरादि०४ अथिरादिपंचणीचागोदं च। सत्तणोक० पंचजादि-छस्संठा० तसथावरादिणवयुगल० दोगोदाणं बंध० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। तिण्णि आयुबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खा० केव० ? असंखेज्जदिभा०। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्व-पंचिंदिय-तिरिक्खाणं केव० ? असंखेज्जा भागा। तिरिक्खायुबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जदिभागो। अबंध० सव्व० केवडि० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केवडि० ? संखेज्जा भागा।

अवन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग है। सातावेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है।

असाताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग है। दो वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है। अनन्तवे भाग है; अबन्धक नहीं है।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य-रति, ४ जाति, ५ संस्थान, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, त्रस ४, स्थिरादि ५ तथा उच्चगोत्रका साता वेदनीयके समान भंग है। नपुंसकवेद, अरति, शोक, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५, नीचगोत्रका असाताके समान भंग है। ७ नोकषाय, ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा २ गोत्रके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं, अबन्धक नहीं है।

मनुष्य-देव-नरकायुके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग है। तिर्यंचायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? संख्यातवें भाग है। अवन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग है। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग हैं।

चदुण्णं आयुगा० बं० सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केव०? संखेज्जा भागा। णिरयगदिदेवगदिबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केव० ? असंखेज्जा भागा। तिरिक्खगदि० असादभंगो। मणुसगदि० सादभंगो। चदुण्णं गदीणं बंधगा सव्व० केवडि० ? अणंत-भागो। अबंधगा णत्थि। ओरालियस० बंधगा सव्वजी० केवडि० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजीव० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं केवडि० ? असंखेज्जदिभागो। वेगुव्वियस० देवगदिभंगो। दोण्णं सरीराणं बंधगा सव्व० के० ? अणंतभागा (गो)। अबंधगा णत्थि। ओरालियअंगो० सादभंगो। वेगुव्वियअंगो० देवगदिभंगो। दोण्णं अंगो० सादभंगो। छस्संघ० दोविहाय० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण सादभंगो।

१५०. एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु। णवरि णिरय-

---

चार आयुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं। अनन्तवें भाग हैं। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? संख्यातवें भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग है। नरकगति, देवगतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग हैं। तिर्यंचगतिका असाताके समान भंग है। मनुष्य गतिका साताके समान भंग है। चार गतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं, अबन्धक नहीं हैं। औदारिक शरीरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व पचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग हैं। वैक्रियिक शरीरका देवगतिके समान भंग है। औदारिक-वैक्रियिक शरीरोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं (?), अबन्धक नहीं है।

विशेष—यहाँ बन्धक सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग होना उचित जँचता है। पचेन्द्रिय तिर्यंच राशि ही जब सम्पूर्ण जीव राशिके अनन्त बहुभाग प्रमाण नहीं है, तब शरीरद्वयके बन्धक अनन्त बहुभाग कैसे होंगे ? अतः अनन्तवे भाग पाठ उचित प्रतीत होता है।

औदारिक-शरीर-अंगोपांगके विषयमे साताके समान भंग है। वैक्रियिक अंगोपांगका देवगतिके समान भग है। औदारिक-वैक्रियिक अंगोपांगोंका साताके समान भंग है। छह संहनन, २ विहायोगति तथा स्वरयुगलका प्रत्येक तथा सामान्य रूपसे साताके समान भग है।

१५०. पचेन्द्रिय-तिर्यंच-पर्याप्तक, पचेन्द्रिय-तिर्यंच-योनिमतियोंमे, इसी प्रकार है। विशेष,

मणुसायुबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्त जोणिणीणं केवडि० ? असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-तिरिक्खपज्जत्तजोणिणीणं केव० ? असंखेज्जदि० (?)। तिरिक्खदेवायूणं सादभंगो। चदुण्णंपि आयुगाणं सादभंगो। णिरयगदि असादभंगो। तिण्णं दिण्णं सादभंगो। चदुण्णं गदीणं बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभा०। अबंधगा णत्थि। एवं आणुपुव्वी०। चदुजादि सादभंगो। पंचिंदियजादीणं असादभंगो। पंचण्णं जादीणं बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। वेगुव्विय० वेगुव्वियअंगो० सादभंगो। दोण्णंपि असादभंगो। छस्संघ० आदावुज्जो० सादभंगो। परघादुस्सा० अप्पसत्थ० तस०४ अथिरादिछक्क-णीचागोदं च असादभंगो। तप्पडिपक्खाणं सादभंगो। दोविहा० दोसर० असादभंगो। तसादिणवयुगलं दोगोदं च वेदणीयभंगो। पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्तेसु–पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तिण्णिसरी० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमि० पंचंत० बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभा०। अबंधगा णत्थि। सेसाणं णिरयोघं। णवरि चदुजादि–ओरालि० अंगो० छस्संघ० परघादुस्सा०

यहाँ नरकायु-मनुष्यायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सम्पूर्ण पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक-योनिमतियोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग है। सर्व पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिय तिर्यंच-योनिमतियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग हैं।

विशेष—यहाँ 'असंख्यात बहुभाग' पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है।

तिर्यंच-देवायुका साताके समान भंग जानना चाहिए। चारों आयुका साताके समान भंग जानना चाहिए। नरकगतिका असाताके समान भंग है। शेष तीन गतियोंका साताके समान भंग है। चारों गतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। आनुपूर्वीका इसी प्रकार भंग जानना चाहिए। ४ जातियोंका साताके समान भंग है। पंचेन्द्रिय जातिका असाताके समान भंग है। पाँच जातियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं, अबन्धक नहीं है। वैक्रियिक शरीर तथा वैक्रियिक अंगोपांगका साताके समान भंग है। दोनोंका सामान्यसे असाताके समान भंग है। ६ संहनन, आतप, उद्योतका सातावत् भंग है। परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादि ६ तथा नीच-गोत्रका असाताके समान भंग है। इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंका जैसे प्रशस्त-विहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि ६, उच्चगोत्रका साताके समान भंग है। दो विहायोगति, दो स्वरका असाताके समान भग है। त्रसादि ९ युगल तथा २ गोत्रका वेदनीयके समान भंग है।

पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है, अबन्धक नहीं हैं। शेष प्रकृतियोंका नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष, ४ जाति, औदारिक-अंगोपांग,

आदावुज्जो० दोविहा० तस०४ थिरादि-छक्क-दुस्सर-उच्चागोदं० सादभंगो। एइंदियजादि-हुंडसंठा० थावरादि०४ अथिरादिपंचगं णीचागोदं च असादभंगो। पंचजादि-बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभा०। अबंधगा णत्थि। एवं तसथावरादिणवयुगलं दोगोदाणं। छस्संघ० दोविहा० दोसर० साधारणेण वि सादभंगो। एवं मणुस-अपज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तस-अपज्जत्त-सव्वपुढवि-आउ० तेउ० वाउ० बादरवणप्फदिपत्तेय०। णवरि तेउ० वाउ० मणुसगदिचदुक्कं णत्थि।

१५१. मणुसेसु–पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो। णवरि धुविगाण अबंध० अत्थि। दोवेदणीयाणं बंधगा सव्वजीव० केव० ? अणंतभागो। सव्वमणुसाणं केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्व० केव ? अणंतभागो। सव्वमणुयाणं केव० ? असंखेज्जदिभागो। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-तिरिक्खायु-मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ मणुसाणु० परघादुस्सा० आदावुज्जोव० दोविहा० तस०४ थिरादिछ०–दुस्सर उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोग० तिरिक्खगदि-एइंदि० हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावरादि०४ अथिरादिपंच णीचागोदं च। तिण्णिवेद-हस्सरदिदोयुग० पंचजादिछस्संठा० तसथावरा-

---

६ संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि ६, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका साताके समान भंग है। एकेन्द्रिय जाति, हुण्डक संस्थान, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५ तथा नीच गोत्रका असाताके समान भंग है। ५ जातिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं; अबन्धक नहीं है। त्रस, स्थावरादि ९ युगल तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए। छह संहनन, दो विहायोगति, २ स्वरका प्रत्येक तथा सामान्य रूपसे साताके समान भंग है।

मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तक, सर्व त्रिकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-त्रस-अपर्याप्तक, सम्पूर्ण पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, बादर वनस्पति, प्रत्येकमें–इसी प्रकार अर्थात् पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकके समान जानना चाहिए। विशेष, तेजकाय, वायुकायमे मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु तथा उच्चगोत्र नहीं हैं।

१५१. मनुष्योंमें–पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका भंग है। विशेष, यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अबन्धक भी पाये जाते हैं। दो वेदनीयोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सम्पूर्ण मनुष्योंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व मनुष्योंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग है।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यंचायु, मनुष्यगति, ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि-षट्क, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका साताके समान भग है। नपुंसकवेद, अरति-शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान, तिर्यचानुपूर्वी, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५ तथा नीचगोत्रका असाताके समान भंग है। तीन वेद, हास्यरति, अरतिशोक, पच जाति,

दिणवयुग०-दोगोदाणं च वेदणीयभंगो। तिण्णिआयु-आहारदु० वेउव्वियछक्कं तित्थय० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। मणुसाणं केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वमणुसाणं केवडि० ? असंखेज्जा भागा। ओरालिस० पत्तेयेण धुविगाणं भंगो। चदुगदि-दोसरी० चदुआणु० वेदणीयभंगो। दोअंगो० छस्संघ० दोविहा० दोसर० साधारणाणं सादभंगो।

१५२. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु - एसेव भंगो। णवरि ये असंखेज्जा भागा ते संखेज्जा कादव्वा। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-तिण्णिगदि-चदुजादि-दोसरीर-पंचसंठा० दोअंगो० तिण्णिआणु० आदावुज्जो० पसत्थ० थावरादि०४ थिरादिछक्क उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोग० णिरयगदि० पंचिंदि० वेगुव्वि० हुंडसं० वेगुव्वि० अंगो० णिरयाणु० पर० उस्सा० अप्पसत्थ० तस०४ अथिरादिछक्क० णीचागोदं च। सत्तणोक० चदुगदि-पंचजादि तिण्णिसरीर छस्संठा० तिण्णि अंगो० चदुआणु० दोविहा० तसथावरादि-दसयुगलं दोगोदाणं वेदणीयभंगो। चदु-आयु० छस्संघ० पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो।

१५३. देवेसु णिरयोघं। णवरि विसेसो। सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-

---

६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल तथा २ गोत्रोंका वेदनीयके समान भंग है। ३ आयु, आहारकद्विक, वैक्रियिकषट्क तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। सर्व मनुष्योंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं ? अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। सर्व मनुष्योंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं।

औदारिक शरीरका प्रत्येकसे ध्रुवप्रकृतिसदृश भंग है। चार गति, २ शरीर, ४ आनुपूर्वीका वेदनीयके समान भंग है। दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका साधारणसे साताके समान भंग है।

१५२. मनुष्य-पर्याप्तक मनुष्यनियोंमें मनुष्यके समान भंग है। विशेष, पूर्वमें जो असंख्यात बहुभाग कहे गये हैं, उनके स्थानमें 'संख्यात बहुभाग' कर लेना चाहिए। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, मनुष्य-तिर्यंच-देवगति, ४ जाति, दो शरीर, ५ संस्थान, दो अंगोपांग, नरकानुपूर्वीके बिना शेष तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि ६ तथा उच्चगोत्रका साताके समान भंग है। नपुंसकवेद, अरति-शोक, नरकगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, हुण्डकसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, नरकानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादिषट्क तथा नीच गोत्रका असाताके समान भंग है। ७ नोकषाय, ४ गति, ५ जाति, ३ शरीर, ६ संस्थान, ३ अंगोपांग, ४ आनुपूर्वी, दो विहायोगति, त्रस-स्थावरादि १० युगल और दो गोत्रोंका वेदनीयके समान भंग है। चार आयु, ६ संहननका प्रत्येक तथा सामान्यसे साताके समान भंग है।

१५३. देवगतिमें – नरकगतिके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष – स्त्रीवेद, पुरुषवेद,

तिरिक्खायु-मणुसगदि-पंचिंदियजादि-पंचसंठा० ओरालि०-अंगो० छस्संघ० मणुसाणु० आदावुज्जो० दोविहा० तस-थिरादिछक्क-दुस्सर-उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोगो तिरिक्खग०-एइंदि०-हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावर-अथिरादिपंच-णीचागोदं च। वेदणीय भंगो सत्तणोक० दोगदि-दोजादि०-छस्संठा० दोआणु० तसथावर०-थिरादिपंच-युगला०दोगोदाणं च.। छस्संघ० दोविहा० दोसरं० साधारणेण वि सादभंगो। एवं भवण-वा०-वें०-जोदिसि०। णवरि तित्थय० णत्थि। जोदिसिय-तिरिक्खायु-मणुसायुभंगो। सोधम्मीसाण जोदिसियभंगो, णवरि तित्थयरं अत्थि। सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति विदियपुढविभंगो। आणद याव णवके(गे)वज्जात्ति धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागा (गो)। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि३ मिच्छत्त० अणंताणुबं०४ तित्थयरं बंधा० सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वदेवाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वदेवाणं केव० ? संखेज्जा भागो (गा)। सादभंगो इत्थि० णपुंस० हस्सरदि-पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थवि० थिर-सुभग-(सुभ) दूभगदुस्सर-अणादेज्ज-जसगित्ति णीचागोदं च। असाद-

---

हास्य, रति, तिर्यंचायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपाग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थिरादि ६, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका साताके समान भंग है। नपुंसकवेद, अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, अस्थिरादि ५ तथा नीच गोत्रका असाताके समान जानना चाहिए। ७ नोकषाय, २ गति, २ जाति, ६ संस्थान, २ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावर, स्थिरादि ५ युगल तथा २ गोत्रका वेदनीयके समान भंग है। ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका साधारणसे भी साताके समान भंग है। भवनवासी, व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ तीर्थंकर प्रकृति नहीं है। ज्योतिषी देवोंमें तिर्यंचायुका मनुष्यायुके समान भंग है। सौधर्म और ईशानमे–ज्योतिषियोंके समान भंग है। विशेष, यहाँ तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध होता है। सानत्कुमारसे सहस्रार स्वर्गपर्यन्त—दूसरे नरकके समान भग है। आनत-प्राणतसे नव ग्रैवेयक पर्यन्त—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है (?), अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—'खुद्दाबन्धमें देवोंकी संख्या सर्व जीवोंके अनन्तवे भाग कही है—देवगदीए देवा सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? अणंतभागो (भागाभा० ८, ६)। अतः यहाँ अनन्त बहुभागके स्थानमे अनन्तवें भाग पाठ उचित प्रतीत होता है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ तथा तीर्थंकरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व देवोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्व देवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग है (?)।

विशेष—यहाँ 'संख्यात बहुभाग' पाठ उचित प्रतीत होता है।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, स्थिर,

भंगो पुरिस० अरदिसोग० चमचदु [समचदु०] वज्जरिसभ० पसत्थ० अथिर-असुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० अज्जस० उच्चागोदाणं च। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा सव्व० केव०? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। एवं सेसं (साणं) परियत्तमाणयाणं। आयु जोदिसियभंगो। अणुदिस याव सव्वट्ठत्ति अणाद (आणद) भंगो। णवरि सव्वट्ठे आयु माणुसिभंगो।

१५४. एइंदिएसु–पंचणा० णवदंसणा० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० ओरालि० तेजाक० वण्ण४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंध० सव्वजी० केव० ? अणंता भागो (भागा)। अबंधगा णत्थि। सेसं तिरिक्खोघं। बादरएइंदियपज्जत्तापज्जत्तेसु–धुविगाणं बं० सव्व० केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। सादबंध० सव्व० केव० ? असंखेज्ज-दिभागो। सव्वबादर-एइंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? असंखेज्जदिभागो। सव्वबादर-एइंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जा भाग। एवं असादं पडिलोमेण भाणिदव्वं। दोण्णं वेदणीयाणं बंध० सव्व०

सुभग[1], (शुभ)दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति, नीच गोत्रका साताके समान भंग है। पुरुषवेद, अरति, शोक, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, अस्थिर, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, अयशःकीर्ति तथा उच्चगोत्रका असाताके समान भंग है। दोनों वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक नहीं हैं। इस प्रकार परिवर्तमान शेष प्रकृतियोंमें जानना चाहिए। आयुओंमें ज्योतिषी देवोंका भंग है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त आनतके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, सर्वार्थसिद्धिमें आयुका भंग मनुष्यनीके समान हैं।

१५४. एकेन्द्रियोंमें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं (?); अबन्धक नहीं है।

विशेष—यहाँ 'अनन्तवे भाग' के स्थानमें 'अनन्त बहुभाग' पाठ जँचता है;क्योंकि एकेन्द्रिय सर्व जीवोंके अनन्त बहुभाग हैं।[2]

शेष प्रकृतियोंका तिर्यंचोंके ओघवत् वर्णन जानना चाहिए।

बादर, एकेन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्तोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके [बन्धक] सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग हैं; अबन्धक नहीं है। साता वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग हैं। सर्व बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्तकोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग है। सर्व बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग है। असाताके विषयमें इसी प्रकार प्रतिलोमक्रमसे जानना चाहिए। दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्व

---

१ यहाँ 'शुभ' पाठ उचित प्रतीत होता है। सुभगकी पुनः गणना आगे की गयी है।

२ इंदियाणुवादेण एइंदिया सव्वजीवाणं केवडियो भागो ? अणंता भागा। –खु० बं०,भागाभा०, ११, १२, पृ ४९९

केव० ? असंखेज्जदिभागो। अवंधगा णत्थि। सादभंगो इत्थि० पुरि० हस्सरदि-तिरिक्खायु-मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ० मणुसाणु० परघा-दुस्सा० आदावुज्जो० दोविहा० तस०४ थिरादिछक्कं दुस्सर-उच्चागोदं च। असादभंगो णपुंस० अरदिसोग-तिरिक्खग०-एइंदियजा०-हुंडसं०-तिरिक्खाणु० थावरादि०४ अथिरादिपंच-णीचागोदं च। मणुसायु-वंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वबादर-एइंदिय-पज्जत्ताअपज्जत्ताणं केव० ? अणंतभागो। अवंधगा सव्व० केव० ? असंखेज्जदि-भागो। सव्वबादर-एइंदिय-पज्जत्ताअपज्जत्ताणं केव० ? अणंतभागा। दोआयु० छस्संघ० दोविहा० दोसर० साधारणेण सादभंगो। सेसाणं परियत्ताणं युगलाणं वेदणीयभंगो।

१५५. सुहुमे०–धुविगाणं बंधगाण-सव्व० केव० ? असंखेज्जा भागा०। अवंधगा णत्थि। सादावंध० सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वसुहुमे-इंदियाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अवंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जा भा०। सव्वसुहुमाणं केव० ? संखेज्जा भा०। असादं पडिलोमे० भाणिदव्वं। दोवेदणीयाणं बंध० सव्व० केव ? असंखेज्जा भागा। अवंधगा णत्थि। एवं सव्वाओ परियत्तीओ वेदणीयभंगो। छण्णं

जीवोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग हैं; अवन्धक नहीं हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यंचायु, मनुष्यगति, ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि ६, दुस्वर, उच्चगोत्रका साताके समान भंग जानना चाहिए। नपुंसकवेद, अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, हुण्डकसंस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५, नीचगोत्रका असाताके समान भंग है। मनुष्यायुके वन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग है। सर्व बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्तकोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। अवन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग है। सर्व बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। दो आयु, छह संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके सामान्यसे साताके समान भंग हैं ? शेष परिवर्तमान युगलरूप प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए।

१५५. सूक्ष्म-एकेन्द्रियमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है। असंख्यात बहुभाग है; अवन्धक नहीं हैं। साता वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं। सर्व सूक्ष्मएकेन्द्रियजीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग हैं। अवन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग हैं। सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है। असाता वेदनीयका प्रतिलोम क्रमसे भंग है।

विशेषार्थ—असाताके बन्धक सर्व जीवोंके संख्यात बहुभाग है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके संख्यात बहुभाग है। अवन्धक सर्व जीवोंके संख्यातवें भाग है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके संख्यातवे भाग है।

दो वेदनीयके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग हैं। अवन्धक नहीं हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोंमे वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए।

दोण्णं दोण्णं पि पत्तगेण साधारणेण वि सादभंगो। तिरिक्खायु-सादभंगो। मणुसायु-बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुहुमएइंदिया० केव० ? अणंतभागो। अबंध० सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भा०। सव्वसुहुमेइंदि० केव० ? अणंता भागा। दोआयु० तिरिक्खायुभंगो। सुहुमएइंदिय-पज्जत्तेसु-धुविगाणं बंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जा-भा०। अबंधा णत्थि। सादासादं पत्तेगेण सुहुमोघं। साधारणेण दोवेदणीया० बंध० सव्व० केव० ? संखेज्जा भागा। अबंधगा णत्थि। एदेण कमेण णेदव्वं।

१५६. सुहुमअपज्जता० धुविगाणं बंध० सव्व० केवडि० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। सादबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वसुहुमएइंदियअपज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वसुहुमएइंदियअपज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जभा०। असादं बंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वसुहुमअपज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जा भागा। अबंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जदिभा०। सव्वसुहुमअपज्जत्ताणं केव० ? संखेज्जदिभा०। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। एवं सव्वाओ णादव्वाओ। णवरि तिरिक्खायु-

छह संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका प्रत्येक तथा सामान्य रूपसे साताके समान भंग है। तिर्यंचायुका साताके समान भंग है। मनुष्यायुके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग है। सर्व सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग है। (?)

मनुष्य-तिर्यंचायुके बन्धकोंका तिर्यंचायुके समान अर्थात् साताके समान भंग है।

सूक्ष्म-एकेन्द्रिय-पर्याप्तकोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातबहु भाग है ; अबन्धक नहीं हैं। साता असाता वेदनीयके पृथक् पृथक् रूपसे सूक्ष्म जीवोंके ओघवत् भंग है। सामान्यसे दो वेदनीयके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। शेष प्रकृतियोंमें यही क्रम जानना चाहिए।

१५६. सूक्ष्म-अपर्याप्तकोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग हैं ; अवन्धक नहीं है। सातावेदनीयके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। सर्वसूक्ष्म-एकेन्द्रिय-अपर्याप्तकोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है ? सर्वसूक्ष्म एकेन्द्रिय-अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं।

असाताके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। सर्व सूक्ष्मअपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवें भाग है। सर्वसूक्ष्म अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं। दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं ; अबन्धक नहीं है। इस प्रकार सब

१ सुहुमेइंदियपज्जत्ता सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? सखेज्जा भागा॥ -खु० बं०,सू०१७,१८।
२ सुहुमेइंदिय-अपज्जत्ता सव्वजीणाण केवडिओ भागो ? सखेज्जदिभागो। १६,२०।

सादभंगो। मणुसायुबंध० सव्व० केव० ? अणंता(त)भागो। सव्वसुहुमअपज्जत्ता० केव०? अणंतभागो। अबंध० सव्व० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वसुहुम-अपज्जत्ता० केव० ? अणंता भागा। दोआयु-तिरिक्खायुभंगो। एवं वणप्फति(दि)णियोदाणं।

१५७. पंचिंदिया मणुसोघं। पंचिंदियपज्जत्तेसु–पंचिंदिय-तिरिक्खपज्जत्तभंगो। णवरि धुविगाणं मणुसोघं। साधारणेण दोवेदणीयबंधा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदियपज्जत्त० केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वपंचिंदिय-पज्जत्ता० केव० ? असंखेज्जदिभागो। एवं सादभंगो इत्थि० पुरिस० हस्सरदि-तिरिक्खायु-देवायु-तिण्णिगदि-चदुजादि-ओरालि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ तिण्णिआणु० पसत्थवि० थावरादि४ थिरादिछक्क उच्चागोदं च। असाद-भंगो णपुंस० अरदिसोग० णिरयगदि-पंचजा०-वेउव्वि० हुंडसंठा०-वेउव्वि० अंगो० णिरयाणु० पर० उस्सा० अप्पसत्थवि० तस०४ अथिरादिछक्कं णीचागोदं। णिरयमणु-सायुआहारदुग० तित्थयरं बंधा सव्व० केव० ? अणंता भागा। सव्वपंचिंदि-

प्रकृतियोंके विषयमे भी जानना चाहिए। विशेष, तिर्यंचायुका साताके समान भंग है। मनुष्यायुके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? ? अनंतवे भाग है। सर्वसूक्ष्म अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं। सर्वसूक्ष्म-अपर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। मनुष्य-तिर्यंचायुका तिर्यंचायुके समान भंग हैं। वनस्पति कायिकों तथा निगोदोंमे—इसी प्रकार जानना चाहिए।

१५७ पंचेन्द्रियोंका–मनुष्योंके ओघवत् भग हैं। पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमे–पचेन्द्रिय तिर्यंच-पर्याप्तकोंके समान भंग है। विशेष, ध्रुव प्रकृतियोंमे मनुष्योंके ओघवत् जानना चाहिए। सामान्यसे दो वेदनीयके बंधक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। सर्वपचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। सर्वपंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यंचायु, देवायु, तिर्यंच-मनुष्य-देवगति, ४ जाति, औदारिक शरीर, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, ३ आनुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, स्थावरादि ४, स्थिरादि ६ और उच्चगोत्रमे साताके समान भग है। नपुंसकवेद, अरति, शोक, नरकगति, पंचजाति, वैक्रियिक शरीर, हुंडक संस्थान, वैक्रियिक अंगोपाग, नरकानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, अस्थिरादि ६, नीचगोत्रमे असाताके समान भंग है। नरक-मनुष्यायु, आहारकद्विक तथा तीर्थंकरके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं। अनन्त बहुभाग हैं (?)।

१ वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणता भागा ॥–खु० बं०,२५,२६।

२. पंचिदिय-तिरिक्खा पंचिदिय-तिरिक्खपज्जत्ता पंचिदिय-तिरिक्ख-जोणिणी पंचिदिय-तिरिक्खअपज्जत्ता मणुसगदीए मणुसा, मणुस-पज्जत्ता, मणुसिणी मणुस-अपज्जत्ता, सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणतभागो ॥ –खु० बं०,६. ७, पृ. ४८७।

यपज्जत्त० केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभा०। सव्व-पंचिंदियपज्जत्ता० केव ? असंखेज्जा भागा। साधारणेण सव्व-परियत्तीणं वेदणीयभंगो। णवरि चदुआयु-छस्संघ० सादभंगो। अंगो० विहाय० सरणामाणं सादभंगो। आदावुज्जो० सादभंगो।

१५८. तस० पंचिंदियभंगो। तसपज्जत्तेसु-धुविगाणं थीणगिद्धि-दण्डओ दोवेदणी० सत्तणोक० चदुआ० पंचिंदिय-पज्जत्तभंगो। सादभंगो तिण्णिगदि-चदुजादि-वेगुव्वियस०-पंचसंठा० दोअंगो० छस्संघ० तिण्णि०-आणु० पर०-उस्सा० आदावुज्जोव-दोविहाय० तस४ थिरादिछक्क० दुस्सर-उच्चागोदाणं च। असादभंगो तिरिक्खगदि-एइंदियजा० ओरालि० हुंडसं० तिरिक्खाणु० थावरादि०४ अथिरादिपंच-णीचागोदाणं च। साधारणेण दोवेदणीयभंगो। णवरि अंगो० संघड० विहाय० सरणामाणं सादभंगो। आहारदुगं तित्थयरं बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वतस०-पज्जत्ता० केव० ? असंखेज्जदिभा०। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्वतसपज्जत्ता० केव० ? असंखेज्जभा०।

१५९. पंचमण० तिण्णि-वचि०-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु०

विशेष—यहाँ तीर्थंकर आदिके बन्धक सर्व जीवोंके 'अनन्तवे भाग' पाठ सम्यक् प्रतीत होता है।

सम्पूर्ण पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग हैं। अवन्धक सर्व-जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वपंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग है। सामान्यसे सम्पूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भंग है। विशेष—४ आयु, ६ संहननका साताके समान भंग है। अंगोपांग, विहायोगति तथा स्वरनामकी प्रकृतियोंका साताके समान भंग है। आतप, उद्योतका साताके समान भंग है।

१५८. त्रसोंमें-पंचेन्द्रियके समान भंग है। त्रस-पर्याप्तकोंमें-ध्रुव प्रकृतिका स्त्यानगृद्धि, दण्डक, दो वेदनीय, ७ नोकषाय, ४ आयुका पंचेन्द्रिय-पर्याप्तकोंके समान भंग है। तीन गति, ४ जाति, वैक्रियिक शरीर, ५ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, ३ आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादिषट्क, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका सातावेदनीयके समान भंग है। तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, हुडकसंस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावरादि ४, अस्थिरादि ५ तथा नीचगोत्रका असाताके समान भंग जानना चाहिए। सामान्यसे दोनों वेदनीयके समान भंग है। विशेष, अंगोपांग, संहनन, विहायोगति तथा स्वर नामकी प्रकृतियोंका साताके समान भंग है। आहारकद्विक, तीर्थंकरके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सम्पूर्ण त्रस-पर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सम्पूर्ण त्रस-पर्याप्तकोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं।

१५९. पाँच मनोयोग, ३ वचनयोगमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६

---

१ जोगाणुवादेण पचमणजोगि-पचवचिजोगि-वेउव्वियकायजोगि-वेउव्वियमिस्सकायजोगि-आहारकाय-जोगि-आहारमिस्सकायजोगी सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणतो भागो ॥–खु० बं०,३५,३६।

तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ णिमि० पंचंत० बंध० सव्व० केव० ? अणंतभा० । पंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा । अबंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो० । पंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जदि० । दोवेदणीय-सत्तणोक० मणुसोघं । णवरि वेदणीयअबंधगा णत्थि । तिण्णिआयुबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो । सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० । असंखेज्जदि० । अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो । सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा । तिरिक्खायु सादभंगो । चदुआयु० साधारणेण सादभंगो । णिरयगदिबंधगा सव्व० केवडि० ? अणंतभागो । सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्ज० । अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो । सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा । तिरिक्खगदि असादभंगो । मणुसदेवगदि सादभंगो । चदुण्णं गदीणं बंध० सव्व० केव० ? अणंतभागो । सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भा० । अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो । सव्वपंचमण० तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जदिभागो । णिरयगदिभंगो तिण्णिजादि-आहारदुगं णिरयाणुपु० सुहुमअप० साधारण० तित्थयरं च । तिरिक्खगदिभंगो एइंदि० ओरालि० हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावर-अथिरादिपंच-णीचागोदाणं च । देवगदिभंगो पंचिंदिय० वेगुव्विय० पंचसंठाणं ओरालियअंगो०

कषाय, भय जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है । पाँच मनोयोगियों और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग है । अवन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग हैं । पाँच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग हैं । दो वेदनीय, ७ नोकषाय (भय-जुगुप्साको छोड़कर) का मनुष्योंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, यहाँ वेदनीयके अवन्धक नहीं है । नरक-मनुष्य-देवायुके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है । सम्पूर्ण पाँच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग हैं ? असख्यातवे भाग हैं । अवन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं ? सर्व पंच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग है । तिर्यंचायु-का साताके समान भंग जानना चाहिए । चार आयुका सामान्यसे साताके समान भंग है । नरकगतिके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं । सर्व पंच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग है ? असंख्यातवे भाग है । अवन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । सर्व पंच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग हैं । तिर्यंचगतिका असाताके समान भग है । मनुष्यगति, देवगतिका साताके समान भंग है । चारों गतिके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग हैं । सर्वपंच मनोयोगी और तीन वचनयोगियोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग है । अवन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है । सर्व पंचमनोयोगी और ३ वचनयोगियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । तीन जाति, आहारकद्विक, नरकानुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण, तीर्थंकरका नरकगतिके समान भंग है । एकेन्द्रिय, औदारिक शरीर, हुण्डकसस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, अस्थिरादि ५ तथा नीचगोत्रका तिर्यंचगतिके समान भग हैं । पंचेन्द्रिय

वेगुव्वि० अंगो० छस्संघ० दोआणु० आदाउज्जो० दोविहाय-तस-थिरादिछक्क-दुस्सर-उच्चागोदं च। बादरपज्जत्तपत्तेयसरीरं बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्व-पंचमण-तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागो। सव्व-पंचमण-तिण्णिवचि० केव० ? असंखेज्जदिभागो। साधारणेण पंचजादि-दोसरीर-छसंठा० चदुआणु० तस-थावरादि-णवयुगल-दोगोदाणं च गदीणं भंगो। दोअंगो० छसंघ-दोविहाय० दोसर० साधारणेण सादभंगो।

१६०. वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीणं तसपज्जत्तभंगो। णवरि साधारणेण वि वेदणीयभंगो। अबंधगा णत्थि। कायजोगि ओघं। किंचि विसेसो। वेदणीयाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो (गा)। अबंधगा णत्थि। ओरालियकायजोगि-धुविगाणं बंधगा सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा। सव्वजी० ओरालि० ? अणंतभागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वजी० ओरालि० केव० ? अणंतभागो। वेदणीयं एइंदियभंगो। इत्थि० पुरिस० पत्तेगेण सादभंगो। णवुंस० असादभंगो। तिण्णि वेदाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदि(ज्जा)भागा। सव्वजी० ओरालि

जाति, वैक्रियिक शरीर, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपाग, वैक्रियिक अंगोपाग, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस, स्थिरादिषट्क, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका देवगतिके समान भंग है। बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीरके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व पंच मनोयोगी और ३ वचनयोगियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं? अनन्तवे भाग है। सर्व पचमनोयोगी, तीन वचनयोगियोंके कितने भाग हैं ? असख्यातवे भाग हैं। सामान्यसे ५ जाति, २ शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि ६ युगल, और दो गोत्रोंका गतिके समान भंग है। दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरका सामान्यसे साताके समान भग है।

१६० वचनयोगियोंमे – असत्यमृषावचनयोगियोंमे – त्रस पर्याप्तकोंके समान भग है। विशेष, साधारणसे भी वेदनीयके समान भंग है; अबन्धक नही है। काययोगियोंमे – ओघवत् जानना चाहिए। कुछ विशेषता है। वेदनीयोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं; अबन्धक नहीं हैं।

विशेषार्थ—'अनन्त बहुभाग' पाठ उचित प्रतीत होता है, क्योंकि काययोगी सर्वजीवों-के अनन्त बहुभाग कहे गये हैं।[1]

औदारिक काययोगियोंमे[2] ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। सर्व औदारिक काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व औदारिक काययोगियोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। वेदनीयका एकेन्द्रियके समान भंग जानना चाहिए। प्रत्येकसे स्त्रीवेद, पुरुषवेदका साताके समान भंग है। नपुंसकवेदका असाताके समान भंग है। तीनों वेदोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग हैं। सर्व

१ कायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओभागो ? अणंता भागा ॥ –खु० बं०, भागाभा०,३७,३८।
२ ओरालियकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? संखेज्जा भागा। ३९,४०।

सरीरं० केव० ? अणंतभागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व० ओरालि० केव० ? अणंतभागो। एवं सव्वाणं पत्तेगेण तिरिक्खोघं भाणिदूण साधारणेण वेदभंगो कादव्वो।

१६१. ओरालियमिस्सं–धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वओरालियमिस्स केव० ? अणंतभागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वओरालिमिस्स केव० ? अणंतभागा (अणंतभागो)। वेदणीयं पत्तेगेण साधारणेण वि सुहुम-अपज्जत्तभंगो। इत्थि० पुरिस० पत्तेगेण सादभंगो। णवुंस० असादभंगो। साधारणेण धुविगाणं भंगो कादव्वो। देवगदि०४ तित्थयरं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व ओरालियमिस्साणं केव० ? अणंतभागो। अबंधा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वओरालियमिस्साणं केव० ? अणंतभागो (गा)। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदभंगो। दोआयुछस्संघ-दोविहा० पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो। णवरि मणुसायु सुहुम-अपज्जत्तभंगो। वेउव्वि० वेउव्वियमि० देवोघं। आहार०

औदारिक काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है। अनन्तवें भाग हैं। सर्व औदारिक काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रकृतियोंका प्रत्येकसे तिर्यंचोंके ओघवत् कहकर वेदके समान सामान्यसे भंग करना चाहिए।

१६१. औदारिकमिश्र काययोगियोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं (?) सर्व औदारिकमिश्र काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व औदारिक-मिश्र काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग (?) हैं।

विशेष–यहाँ 'अनन्तवें भाग' पाठ प्रतीत होता है।

प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदनीयका सूक्ष्म-अपर्याप्तकोंके समान भंग है। स्त्रीवेद, पुरुषवेदका प्रत्येकसे साताके समान भंग है। नपुंसकवेदका असाताके समान भंग है। सामान्यसे वेदोंका ध्रुव प्रकृतियोंके समान भंग है। देवगति ४ तथा तीर्थंकरके बन्धक सर्व-जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व औदारिकमिश्र काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। सम्पूर्ण औदारिकमिश्र काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं (?)।

विशेष–यहाँ 'अनन्तबहुभाग' पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है। कारण देवगति ४, तीर्थंकर-के अबन्धक जीव बन्धकोंकी अपेक्षा अधिक होंगे। इनके बन्धक जीव जब कि औदारिकमिश्र काययोगियोंके अनन्तवें भाग हैं, तब अबन्धकोंकी गणना इनसे अधिक अवश्य होनी चाहिए।

इस प्रकार प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदोंके समान भंग जानना चाहिए। दो आयु, ६ संहनन, दो विहायोगतिका प्रत्येक तथा साधारणसे भी सातावेदनीयके समान भंग है। विशेष मनुष्यायुका सूक्ष्म अपर्याप्तकोंके समान भंग है।

१ ओरालियमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? संखेज्जदिभागो ॥ –४१, ४२ खु० बं०।

आहारमि० सव्वट्ठभंगो । णवरि असंजदपगदीओ णत्थि ।

१६२. कम्मइ०–धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । सव्व-कम्मइ० केव० ? अणंतभागा । अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वकम्मइ० केव० ? अणंतभागो । सादबंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । सव्वकम्मइ० केव० ? संखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । सव्वकम्मइ० केव० ? संखेज्जदिभागो (संखेज्जा भागा) । असादं पडिलोमेण भाणिदव्वं । दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भागो (असंखेज्जदिभागो) । अबंधगा णत्थि । इत्थि० पुरिस० सादभंगो पत्तेगेण । णवुंस० असादभंगो । साधारणेण धुविगाणं भंगो । देवगदि०४ तित्थय० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वकम्मइ० केव० ? अणंतभागो । अबंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो । सव्वकम्मइ० केव० ? अणंतभागा । साधारणेण धुविगाणं भंगो कादव्वो । ओरालिय-

वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रकाययोगमे-देवोंके ओघवत् है। आहारक, आहारकमिश्र-काययोगमें-सर्वार्थसिद्धिके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, यहाँ असंयत अवस्थावाली प्रकृतियाँ नहीं हैं।

१६२. कार्मणकाययोगियोंमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग है।[1] सम्पूर्ण कार्मण काययोगियोंके कितने भाग है ? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व कार्मण काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। साता वेदनीयके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। सर्व कार्मण काययोगियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। सर्वकार्मण काययोगियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं (?)

विशेष—यहाँ अबन्धक सर्व कार्मण काययोगियोंकी संख्या 'संख्यात बहुभाग' उचित प्रतीत होती है।

असाता वेदनीयका सातासे विपरीत क्रम जानना चाहिए। दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग है; अबन्धक नहीं है।

विशेष—यहाँ कार्मण काययोगमें दोनों वेदनीयके बन्धक सम्पूर्ण जीवोंके 'असंख्यातवे भाग' उपयुक्त प्रतीत होते हैं। क्योंकि इस योगवालोंकी संख्या सर्वजीव राशिकी असंख्यातवें भाग कही गयी है।

स्त्रीवेद, पुरुषवेदमे प्रत्येकसे साताके समान भंग है। नपुंसकवेदमें असाताका भंग है। सामान्यसे वेदोंका ध्रुव प्रकृतियोंके समान भंग जानना चाहिए। देवगति ४, तीर्थंकरके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। सर्व कार्मण काययोगियोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। सर्व कार्मण काययोगियोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। सामान्यसे ध्रुव प्रकृतियोंके

१ कम्मइयकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? असखेज्जदिभागो । –खु० बं०, भा० ४३,४४ ।

अंगो० छसंघ० दोविहा० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो। सेसाणं परियत्तियाणं वेदभगो।

१६३ इत्थिवेदेसु-पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० वधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अवंधगा णत्थि। पंचदंस० मिच्छत्त-बारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व-इत्थिवेद० केव० ? असंखेज्जदि (ज्जा) भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व-इत्थिवेद० केव० ? असंखेज्जदिभागो। दोवेदणी० तिण्णिवेद-जस-अजस० दोगोदाणं पत्तेगेण साधारणेण वि पंचिंदिय-तिरिक्खिणीभंगो। आयुगाणं जोणिणीभंगो। हस्सरदि-तिण्णिगदि-चदुजादि-वेगुव्विय० पंचसंठा० दोअंगो० छसंघ० तिण्णि-आणु० आदाउज्जो० दोविहा० तस-सुहुम-अपज्जत्त-साधारण-थिरादि-पंच-दुस्सर-उच्चागोदं च पत्तेगेण साद-भंगो। अरदि-सोग-तिरिक्खगदि-एइंदिय-ओरालिय-हुंडसंठा०-तिरिक्खाणु० परघादुस्सा० थावर बादर-पज्जत्त-पत्तेय-सरीर-अथिरादि०४ णीचागोदं च असादभंगो। एवं पत्तेगेण साधारणेण पंचिंदियभंगो। आहारदुगं तित्थयरं च पंचिंदियभंगो। तिण्णिअंगो० छसंघ० दोविहा० सुस्सर-दुस्सर-साधारणेण सादभंगो। एवं पुरिसवेदस्स वि।

भंग है। औदारिक अंगोपांग, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धकोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे साता वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। शेष परिवर्तमान प्रकृतियोंका वेदके समान भंग है।

१६३. स्त्रीवेदमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अंतरायके बन्धक सर्व-जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं; अबन्धक नहीं है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं ? सर्वस्त्रीवेदियोंके कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्वस्त्रीवेदियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग हैं। दो वेदनीय, ३ वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा २ गोत्रके प्रत्येक तथा सामान्यसे पंचेन्द्रिय तिर्यंचिनीके समान भंग है। आयुओमें योनिमतीके समान भंग है। हास्य, रति, तीन गति, चार जाति, वैक्रियिक शरीर, ५ संस्थान, दो अंगोपाग, ६ संहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण, स्थिरादि पाँच, दुस्वर तथा उच्चगोत्रका प्रत्येकसे साताके समान भंग है। अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, हुंडक संस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, परघात उच्छ्वास, स्थावर, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, शरीर, अस्थिरादि ४ तथा नीच गोत्रके बन्धकके असाता वेदनीयके समान भंग है। प्रत्येक तथा सामान्यसे पचेन्द्रियके समान भंग है। आहारकद्विक तथा तीर्थंकरका पंचेन्द्रियके समान भंग है। तीन अंगोपांग, ६ सहनन, दो विहायोगति, सुस्वर, दुस्वरका सामान्यसे साताके समान भंग है।

पुरुषवेदमें—स्त्रीवेदके समान भंग है।

---

१ वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा अवगदवेदा सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणंतो भागो-॥-खु० बं०,भा० सू० ४५,४६।

१६४. णवुंसगवेदस्स–पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० बंधगा सव्व० केव० ? अणंतभागा। अबंधगा णत्थि। पंचदंस० मिच्छत्त० बारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागा। सव्वणवुंसगवेदाणं केव० ? अणंतभागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वणवुंसग० केव० ? अणंतभागो। दो-वेयणी० तिण्णिवेद० जस० अजस० दोगोदं च पत्तेगेण साधारणेण च तिरिक्खोघं। हस्सरदि-अरदिसोगाणं पत्तेगेण तिरिक्खोघं। साधारणेण थीणगिद्धिभंगो। आयुचत्तारि वि तिरिक्खोघं। एवं णाम-पगडीणं परियत्तमाणीणं पत्तेगेण तिरिक्खोघं। साधारणेण थीणगिद्धिभंगो। णवरि अंगोवं० संघड० विहाय० सरणामाणं सादभंगो।

१६५. अवगदवेदेसु–पंचणा० चदुदंसणा० सादावे० चदुसंज० जसगि० उच्चागो० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वअवगदवे० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व-अवगदवे० केव० ? अणंतभागा।

१६६. कोधे–पंचणा० चदुदंसणा० चदुसंज० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो देसूणो। अबंधगा णत्थि। पंचदंस० मिच्छ० बारसक० भयदुगुं० तेजाक०

१६४ नपुंसकवेदमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक नहीं है। ५ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। सम्पूर्ण नपुंसकवेदियोंके कितने भाग हैं। अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। सर्व नपुंसकवेदियोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग है। दो वेदनीय, तीन वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, २ गोत्रका प्रत्येक तथा सामान्यसे तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए। हास्य-रति, अरति-शोकमें प्रत्येकसे तिर्यंचोंके ओघवत् भंग है। सामान्यसे स्त्यानगृद्धिके समान भंग है। चार आयुका तिर्यंचोंके ओघ-समान भंग है। परिवर्तमान नामकर्मकी प्रकृतियोंका प्रत्येकसे तिर्यंचोंके ओघवत् भग है। सामान्यसे स्त्यानगृद्धिके समान भंग है। विशेष, अंगोपांग, संहनन, विहायोगति तथा स्वरका सातावेदनीयके समान भंग है।

१६५. अपगतवेदमें–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, ४ संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व अपगतवेदियोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। सर्व अपगतवेदियोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं।

१६६. क्रोधकषायमें–५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग है। अबन्धक नहीं हैं। ५ दर्शनावरण,

१ णवुमयवेदा सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणंता भागा। ४७,४८ खु० बं०। २ कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? चदुब्भागो देसूणा। –सू० ४९-५०।

वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो देसूणो । सव्वकोधेसु केव० ? अणंतभागा । अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वकोधेसु केव० ? अणंतभागो । सादबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सव्वकोधेसु केव० ? संखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सव्वकोधेसु केव० ? संखेज्जा भागा । असादबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सव्वकोधेसु केव० ? संखेज्जा भागा । अबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । सव्वकोधेसु केव० ? संखेज्जदिभागो । दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो देसूणो । अबंधगा णत्थि । एवं जस० अजस० दोगोदं च । इत्थि० पुरिस० पत्तेगेण सादभंगो । णवुंस० असादभंगो । साधारणेण तिण्णिवेदाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागा देसूणा । सव्वकोधेसु केव० ? अणंतभागा । अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वकोधेसु केव० ? अणंतभागो । एवं हस्सरदि-दोयुगलं पंचजादि-छस्संठा०-तसथावरादि-अट्ठयुगल० । तिण्णिआयु-बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । सव्वकोधेसु केव० ? अणंतभागो । अबंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो देसूणो । सव्वकोधेसु केव० ? अणंतभागो (गा) । एवं दोगदि-दोसरीर-दोअंगो०-दोआणु० । तित्थय०-तिरिक्खाउ० सादभंगो । चदुण्णं

मिथ्यात्व, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग हैं। सर्वक्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं ? सर्वक्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है। सातावेदनीयके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं? संख्यातवें भाग हैं। सर्व क्रोधियोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवें भाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग है। सर्वक्रोधियोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं। असातावेदनीयके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? संख्यातवें भाग है। सर्व क्रोधियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? सख्यातवें भाग हैं। सर्वक्रोधियोंके कितने भाग है ? संख्यातवें भाग हैं। दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग है; अबन्धक नहीं है। यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, दो गोत्रोंका इसी प्रकार भंग है। स्त्रीवेद, पुरुषवेदके प्रत्येककी अपेक्षा साताके समान भंग जानना चाहिए। नपुंसकवेदका असाताके समान भंग है। सामान्यसे तीन वेदोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग हैं। सर्वक्रोधियोंके कितने भाग है। ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्वक्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। हास्य-रति, अरति-शोकमें ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि आठ युगलमें वेदोंके समान भंग है। तीन आयुके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्वक्रोधियोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग है। सम्पूर्ण क्रोधियोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग है। विशेष—यहाँ अनन्त बहुभाग पाठ उचित प्रतीत होता है। दो गति, २ शरीर, दो अंगोपांग, दो आनुपूर्वीमें इसी प्रकार जानना चाहिए। तीर्थंकर तथा तिर्यंचायुका साताके समान भंग हैं। चारों

आयुगाणं तिरिक्खायुभंगो। तिरिक्खगदि-तिरिक्खगदिपाओ० असादभंगो। मणुसगदि-ओरालि० अंगो छस्संघड० मणुसाणु० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० दोसर० पत्तेगेण वि साधारणेण वि सादभंगो। चदुगदि-चदुआणु० साधारणेण वेदभंगो। ओरालिय० बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो देसूणो। सव्वकोधेसु केव० ? अणंता भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वकोधेसु केव० ? अणंतभागो। तिण्णिसरीराणं साधारणेण वेदभंगो। एवं माणमायावि। लोभेसु-पचणा० चदुदंसणा० पंचंतरा० बंधगा० सव्वजी० केव० ? चदुभागो सादिरेयो। अबंधगा णत्थि। पंचदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो सादिरेयो। सव्वलोभाणं केव० ? अणंता भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वलोभाणं केव० ? अणंतभागो। सादासादं पत्तेगेण कोधभंगो। साधारणेण दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो सादिरेयो। अबंधा (धगा) णत्थि। अथवा सादबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वलोभे केवडिओ भागो ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? चदुभागो [1]सादिरेयो। सव्वलोभे केव० ? संखेज्जदिभागो

आयुओंका तिर्यंचायुके समान भंग है। तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वीका असाताके समान भंग है। मनुष्यगति, औदारिक अंगोपाग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, दो स्वरका प्रत्येक तथा सामान्यसे साताके समान भंग है। चार गति, चार आनुपूर्वीका सामान्यसे वेदके समान भंग है। औदारिक शरीरके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? कुछ कम चार भाग है। सम्पूर्ण क्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सम्पूर्ण क्रोधियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। तीनों शरीरका साधारणसे वेदके समान भंग है ? मान तथा मायाकषायमें – क्रोधके समान भंग है। लोभकषायमें – ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक चार भाग हैं; अबन्धक नहीं है। पाँच दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक चार भाग हैं। सम्पूर्ण लोभियोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। साता-असाताका प्रत्येकसे क्रोधके समान भंग है। सामान्यसे दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक चार भाग हैं; अबन्धक नहीं हैं। अथवा साताके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक चार भाग हैं। सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं (?)।

विशेष – यहाँ अबन्धक सर्वलोभियोंकी संख्यामें 'संख्यात बहुभाग' उपयुक्त प्रतीत होती है।

---

1 लोभकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? चदुब्भागो सादिरेगो। –खु० बं०, ४१,४२।

(ज्जाभागा)। असादबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वलोमे केव० ? संखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्वलोमे केव० ? संखेज्जदिभागो। एवं जस० अजस० दोगोदं च। तिण्णिवे० [हस्सादि] दोयुगल० चदुआयु० चदुगदि-पंचजादि-सव्वसरीर-छस्संठा तिण्णिअंगो० छस्संघ० चदुआणु० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहाय० तसथावरादिणवयुगलाणं कोधभंगो। णवरि यं हि चदुभागे देसूणे तं हि चदुभागो सादिरेयो कादव्वो। एवं णाणत्तं कोधादू०। अकसाई-केवलि(ल)णा० केवलदंसणा० सादावे० अवगदवेदभंगो।

१६७. मदि० सुद०–धुविगाणं मिच्छत्तं वज्ज एइंदियभंगो। मिच्छत्तं सेसाणं च तिरिक्खोघं।

१६८. विभंगे–धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। मिच्छत्त-परघादुस्सास-बादरपज्जत्त-पत्तेयाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंत-भागो। सव्वविभंगा केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वविभंगे केव० ? असंखेज्जदिभागो। दोवेदणीय-तिण्णिवेदणीय (वेद) सव्वयुगलाणं

असाताके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। सर्वलोभियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार भंग हैं। तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, चार आयु, चार गति, ५ जाति, सर्व शरीर, ६ संस्थान, तीन अंगोपांग, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रसस्थावरादि ६ युगलका क्रोधके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, जहाँ पर देशोन चार भाग हो, वहाँ इसमें साधिक चार भाग कर लेना चाहिए। यही क्रोधसे यहाँ विशेषता है। अकषायी, केवलज्ञानी, केवलदर्शनीमें साता वेदनीयका अपगतवेदके समान भंग है।

१६७. मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमें–मिथ्यात्वको छोड़कर ध्रुव प्रकृतियोंका एकेन्द्रियके समान भंग है। मिथ्यात्व तथा शेष प्रकृतियोंका तिर्यंचोंके ओघवत् भंग है।

१६८. विभंगज्ञानमें ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं; अबन्धक नहीं हैं। मिथ्यात्व, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्वविभंग ज्ञानियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व विभंगज्ञानियोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। दो वेदनीय, तीन वेदनीय (वेद) तथा सर्व युगल प्रकृतियोंके प्रत्येक तथा सामान्यसे देवगतिके ओघवत् जानना चाहिए।

---

१. अकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतो भागो॥ ५३,५४ – खु० बं०। २. णाणाणुवादेण मदि-[illegible] सुदअण्णाणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंता भागा॥ ५५,५६ खु० बं०। ३. विभंग-[illegible] केवलणाणी [illegible] सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? [illegible] भागो॥ खु० ५७,५८ खु० बं०।

पत्तेगेण साधारणेण वि देवोघं। तिण्णिआयु-दोगदि-तिण्णिजादि-वेगुव्वियअंगोवंगदो-आणुपुव्वि० सुहुम-अपज्जत्त-साधारण० मणजोगीणं णिरयगदिभंगो। तिरिक्खगदि-एइंदिय-हुंडसंठाण-तिरिक्खाणुपुव्वि-थावर-अथिरादिपंच-णीचागोदाणं च असादभंगो। पंचिंदियजादि-ओरालिय० अंगो० छस्संघ० मणुसगदि० मणुसगदि पाओग्गाणुपु० आदाउज्जो० दोविहाय० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो। ओरालियसरीरस्स बादरभंगो। केण कारणेण देवगदि-बंधगाणं असंखेज्जदिभागो? असंखेज्जवासायुगेहु विभंगणाणिवा(रा)सिस्स असंखेज्जदिभागो विभंगे वट्टदि। तदो असंखेज्जवासायुगादो देवा असंखेज्जगुणा त्ति।

१६६. आभि० सुद० ओधिणा०–पंचणा० छदंस० बारसक० पुरिस० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिस० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण-उच्चागोद पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वजी० केव०? अणंतभागो। सव्वबंधगा आभि० सुद०-ओधि० केव०? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव०? अणंतभागो। सव्वआभिणि०-सुद०-ओधिणा० केव०? असंखेज्जदिभागो। दोवेदणीयं हस्सरदि-दोयुगलं थिरादि तिण्णियुगलं मणजोगिभंगो। दोआयु गदिचदुक्कं?

विशेष – यहाँ तीन वेदनीयके स्थानमे 'तीन वेद' पाठ संगत प्रतीत होता है।

३ आयु, २ गति, तीन जाति, वैक्रियिक अगोपांग, दो आनुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारणका मनोयोगियोंके नरकगतिके समान भंग है। तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुंडक-संस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, अस्थिरादि पंचक तथा नीच गोत्रका असाताके समान भंग है। पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति तथा दो स्वरका प्रत्येक तथा सामान्यसे भी साताके समान भंग है। औदारिक शरीरका बादरभंग है।

शंका – औदारिक शरीरका बादर भंग किस कारणसे देवगतिके बन्धकोंके असंख्यातवें भाग है?

समाधान – असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें विभंगज्ञानियोंकी राशिका असंख्यातवाँ भाग विभंग ज्ञानमें रहता है, इस कारण असंख्यात वर्षकी आयुवालोंसे देव असंख्यात-गुणे हैं।

१६९ आभिनिबोधिक – श्रुत – अवधिज्ञानमें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं? अनन्तवे भाग हैं। सम्पूर्ण आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानियोंके कितने भाग है? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं? अनन्तवे भाग हैं। सम्पूर्ण आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानियोंके कितने भाग हैं? असंख्यातवे भाग है। दो वेदनीय हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिरादि तीन युगलोंका मनोयोगियोंके समान भंग है। दो आयु, ४ गति,

आहारदुगं तित्थयरं विभंगणाणं च देवगदिभंगो। मणुसगदि-पंचगं धुविगाणं भंगो। पत्तेगेण साधारणेण वि गदिधुविगाणं भंगो। एवं दोसरीर दोअंगो० दोआणु०। एवं ओधिदं०। मणपज्जव०-मणुसिभंगो। णवरि वेदणीयस्स अबंधगा णत्थि। एवं संजदेपि। वेदणीयस्स अबंधगा अत्थि। सामाइ० छेदो०-पंचणा० चदुदंस० लोभसंजलग-उच्चागोद-पंचंतराइगाणं केवडिओ भागो? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। सेसं मणपज्जवभंगो। परिहार०-आहारकाजोगिभंगो। सुहुमसंप०-पंचणा० चदुदं० साद० जस० उच्चागो० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। यथाक्खाद०-सादबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वयथाक्खाद० केव ? संखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वयथाक्खाद० केव० ?

आहारकद्विक, तीर्थंकरके विभंगज्ञानियोंमें देवगतिके समान भंग हैं। मनुष्यगति ५ के ध्रुव प्रकृतियोंके समान भंग है। प्रत्येक तथा साधारणसे गतिका ध्रुव प्रकृतियोंके समान भंग है। दो शरीर, दो अंगोपांग, दो आनुपूर्वीका भी इसी प्रकार जानना चाहिए। अवधिदर्शनमें उपरोक्त ज्ञानत्रयके समान है।

मनःपर्ययज्ञानमें – मनुष्यनियोंके समान भंग है। विशेष, यहाँ वेदनीयके अबन्धक नहीं हैं। संयतोंमें इसी प्रकार है। विशेष, यहाँ भी वेदनीयके अबन्धक भी हैं।

सामायिक-छेदोपस्थापना संयममें – ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, लोभ-संज्वलन, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं। शेष प्रकृतियोंका मनःपर्ययज्ञानके समान भंग हैं।

परिहारविशुद्धिसंयममें – आहारककाययोगीके समान भंग हैं।

सूक्ष्म-साम्पराय-संयममें – ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, सातावेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक नहीं हैं।

यथाख्यात संयममें – साता वेदनीयके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व यथाख्यात संयमियोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व यथाख्यात संयमियोंके कितने भाग हैं? संख्यात बहुभाग हैं (?)

विशेष – यहाँ सर्व यथाख्यात संयमियोंमें अबन्धकोंकी गणना संख्यातवें भाग सम्यक् प्रतीत होती है।

---

१. दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी-ओहिदंसणी केवलदंसणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतभागो। अचक्खुदंसणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंता भागा ॥ —६३-६६ खु० बं० सू०।

२. संजमाणुवादेण संजदा सामाइय-छेदोवट्ठावण-सुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतभागो। असंजदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंता भागा ॥ —५९-६२ खु० बं० सू० पृ. ५९२-९३।

संखेज्जा भागा (संखेज्जदिभागो)। संजदासंजदस्स अणुत्तरभंगो। णवरि देवायुतित्थयरं च ओधिभंगो। असंजदा तिरिक्खोघं। तित्थयरं मूलोघं। चक्खुदंस० तसपज्जत्तभंगो। अचक्खुदं० कायजोगिभंगो।

१७०. किण्णाए–पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? तिभागो सादिरेयो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त० अणंताणु०४ बंधगा सव्वजी० केव० ? तिभागा सादिरेया। सव्वकिण्णाए केव० ? अणंता भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वकिण्णाए केव० ? अणंतभागो। एवं लोभभंगो पत्तेगेण साधारणेण वि। णवरि दुपगदीणं बंधगा सव्वजी० केव० ? तिभागो सादिरेयो। अबंधा (धगा) णत्थि। एवं परियत्तमाणीणं सव्वाणं। आयुगाणं अंगोवंग-संघडण-विहायगदिसरवज्जाणं पि। एदासिं पत्तेगेण साधारणेण वि सादभंगो। एवं णीलकाऊणं। णवरि तिभागो देसूणो। तेऊए–पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ बादरपज्जत्ते (?) णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा

संयमासंयममें – अनुत्तरवासी देवोंके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, देवायु और तीर्थंकरप्रकृतिका अवधिज्ञानके समान भंग है। असंयतोंमें – तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए। तीर्थंकरका मूलके ओघवत् भंग जानना चाहिए।

चक्षुदर्शनमें—त्रस-पर्याप्तकका भंग है। अचक्षुदर्शनमें काययोगियोंके समान भंग है।

१७० कृष्णलेश्यामें[1]—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक तीन भाग प्रमाण है; अबन्धक नहीं हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक त्रिभाग हैं। सर्व कृष्णलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व कृष्णलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। साता-असाताका प्रत्येक तथा सामान्यसे लोभकषायके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, साता-असातारूप दो प्रकृतियोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? साधिक त्रिभाग है; अबन्धक नहीं है। इस प्रकार परिवर्तमान सर्व प्रकृतियोंमे जानना चाहिए, किन्तु आयु, अंगोपांग, संहनन तथा विहायोगति तथा स्वरको छोड़ देना चाहिए। इनका प्रत्येक तथा सामान्यसे सातावेदनीयके समान भंग है।[2] नील तथा कापोतलेश्यामें – ऐसा ही जानना चाहिए। विशेष, यहाँ देशोन त्रिभाग जानना चाहिए।

२३६. तेजोलेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, [3]अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्त (प्रत्येक), निर्माण, ५ अन्तरायके

---

१. लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? तिभागो सादिरेगो। २. णीललेस्सिया काउलेस्सिया सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? तिभागो देसूणो॥ ३ तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणंतभागो। —खु० बं०, सू० ६७-७२।

णत्थि। दोआयु आहारदुगं० तित्थयरं च ओधिभंगो। बारसकसायाणं थीणगिद्धिभंगो। देवगदिचदुक्कं सादभंगो। सेसाणं देवोघं। पम्माए–पंचणाणावरणीय-छदंसणा० चदुसंजलण० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितयं मिच्छत्तं बारसक० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जदिभागो। दोवेदणी० हस्सादिदोयुगलाणं थिरादितिण्णियुगलाणं तेउभंगो। इत्थि० णवुंस० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जा भागा। पुरिस० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वपम्माए केव० ? असंखेज्जदिभागो। तिण्णिवेदाणं सव्व० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। एवं णवुंसगभंगो तिण्णि आयु-दोगदि-ओरालि०-पंचसंठा०-ओरालि० अंगो० छस्संघ०-दोआणु० उज्जोव० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचागो०। पुरिस० वेदभंगो देवगदि० वेगुव्वियस० समचदु०

बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग है; अबन्धक नहीं हैं। दो आयु, आहारकद्विक, तीर्थंकरका अवधिज्ञानके समान भग है। बारह कपायोंका स्त्यानगृद्धिके समान भंग जानना चाहिए। देवगतिचतुष्कका साता वेदनीयके समान भंग है। शेष प्रकृतियोंका देवोंके ओघवत् है।

पद्मलेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय-जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं; अबन्धक नहीं हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषायके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग है ? असख्यातवे भाग हैं। दो वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिरादि तीन युगलोंका तेजोलेश्याके समान भंग है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। अबन्धक सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग है। पुरुपवेदके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक सर्वपद्मलेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग है। तीन वेदोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं; अबन्धक नहीं हैं। तीन आयु, २ गति, औदारिक शरीर, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग ६ संहनन, २ आनुपूर्वी उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीच गोत्रका नपुंसक वेदके समान भग है। देवगति वैक्रियिक शरीर,

वेउव्वि० अंगो० देवाणुपु० पसत्थ० सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं च। आहारदुगं तित्थयरं देवायुभंगो। साधारणेण वि तिण्णिवेदाणं भंगो तिण्णिगदि-दोसरीर-छस्संठा० दोअंगो० तिण्णिआणु० दोविहाय० थिरादिछयुगलं दोगोदं च। तिण्णिआयु-छस्संघ० साधारणेण वि इत्थिभंगो। सुक्काए-पंचणा० छदंसणा० बारसक० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जदिभागो। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त अणंताणुबंधि०४ तित्थयरं बंधगा केव० ? अणंताभागो (अणंतभागो)। सव्वसुक्काए केव० ? संखेज्जदिभागा (गो)। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुक्काए केव० ? संखेज्जा भागा। दोवेदणी० हस्सादिदोयुगलं-थिरादितिण्णियुगलं च मणजोगिभंगो। इत्थि० णवुंस० पंचसंठा० पंचसंघ० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर अणादेज्ज णीचागोदं च थीणगिद्धि-भंगो। पुरिस० पसत्थवि० सुभग सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं असादभंगो। दोआयु-दोगदि-आहारदु० ओधिभंगो। मणुसगदि०४ बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसुक्काए केव० ? असंखेज्जदिभागो। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि तिण्णिवेद-दोगदि-

---

समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, देवानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका पुरुष वेदके समान भंग है। आहारकद्विक, तीर्थंकरका देवायुके समान भंग है। तीन गति, दो शरीर, ६ संस्थान, दो अंगोपांग, तीन आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि छह युगल, दो गोत्रका सामान्यसे वेदत्रयके समान भंग जानना चाहिए। तीन आयु, छह संहननका सामान्यसे स्त्रीवेदके समान भंग है।

शुक्ल लेश्यामें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण, ५ अन्तरायोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व शुक्ललेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ तथा तीर्थंकरके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग है ? संख्यातवे भाग है। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवे भाग है। सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग है ? संख्यात बहुभाग है। दो वेदनीय, हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिरादि तीन युगलका मनोयोगियोंके समान भंग जानना चाहिए। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, ५ संस्थान, ५ संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीच गोत्रका स्त्यानगृद्धिके समान भग है। पुरुष वेद, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रका असाताके समान भंग है। दो आयु, दो गति, आहारकद्विकका अवधिज्ञानके समान भंग है। मनुष्य गति ४ के बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्व शुक्ल लेश्यावालोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवे भाग हैं।

तिण्णिसरीरछस्संठाणदोअंगो छस्संघ० दोआणुपु० दोविहाय० सुभगादि-तिण्णि-युगल-दोगोदं आभिणि० भंगो। अट्ठपदं तेउ-लेस्सिग-तिरिक्ख-मणुसा० णवुंसगवेदं ण बंधंति। पम्माए० सुक्कले० इत्थि-णवुंसकवेदं ण बंधंति। भवसिद्धिया ओघभंगो।

१७१. अब्भवसि०-तिण्णिआयु० वेउव्वियछक्क० बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व-अब्भवसिद्धिया केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वअब्भवसिद्धिया केव० ? अणंतभागो (गा)। तिरिक्खायु सादभंगो। आयुचत्तारि तिरिक्खायुभंगो। धुवबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। सेसाणं पगदीणं पत्तेगेण साधारणेण वि पंचिंदियतिरिक्खभंगो।

१७२. सम्मादिट्ठि-खइगसम्मादिट्ठीसु-पंचणा० छदंसणा० बारसक० पुरिस० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिसह० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण-तित्थयर-उच्चागोद-पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वजी० केव०?

तीन वेद, २ गति, ३ शरीर, ६ संस्थान, २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, दो विहायोगति, सुभगादि तीन युगल, दो गोत्रका सामान्य तथा पृथक्से आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भंग है। अर्थ पद यह है कि तेजोलेश्यावाले तिर्यंच तथा मनुष्य नपुंसकवेदका बन्ध नहीं करते हैं। पद्म तथा शुक्ल लेश्यामें स्त्रीवेद तथा नपुंसकवेदका बन्ध नहीं करते हैं।

भव्यसिद्धिकोंमें ओघवत् भंग है।

१७१ अभव्यसिद्धिकोंमे—३ आयु, वैक्रियिकषट्कके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व अभव्यसिद्धिकोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व अभव्यसिद्धिकोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं (?)।

विशेष—यहाँ अबन्धक अभव्योंके 'अनन्त बहुभाग' होना उचित प्रतीत होता है।

तिर्यंचायुका साता वेदनीयके समान भंग है। ४ आयुका तिर्यंचायुके समान भंग जानना चाहिए। ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं; अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान भंग हैं।

विशेषार्थ—भूतबलि स्वामीने भव्यजीवोंको सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्तबहुभाग प्रमाण बताया है तथा अभव्य जीवोंके सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्तवें भाग कहा है। इससे अभव्य जीवोंकी न्यूनता स्पष्ट प्रमाणित होती है।

१७२. सम्यग्दृष्टि-क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय-जुगुप्सा. पंचेन्द्रिय जाति, तैजस- कार्मण, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर,

---

१ भवियाणुवादेण भवसिद्धिया सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणताभागा। २. अभवसिद्धिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतभागो ॥ —खु० बं०,७३-७६।

अणंतभागो। सव्वसम्मादिट्ठि-खइगसम्मादिट्ठि केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वसम्मादिट्ठि-खइगसम्मादिट्ठि केव० ? अणंतभागो(गा)। एवं सव्वपगदीणं पत्तेगेण साधारणेण वि एस भंगो कादव्वो। वेदगसम्मादिट्ठि-धुविगाणं बंधगा सव्वजी० के० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। सेसाणं पत्तेगेण-ओधिभंगो। साधारणेण धुविगाणं भंगो कादव्वो। उवसम०-ओधिभंगो। णवरि विसेसो जाणिदव्वो। सासणसम्मा०-धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। तिण्णि आयु० देवगदि०४ पत्तेगेण सुक्काए भंगो। सेसाणं पत्तेगेण ओधिभंगो। साधारणेण देवोघं। सम्मामिच्छा०-धुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा णत्थि। दोवेदणीयं हस्सादिदोयुगलं थिरादितिण्णियुगलं देवभंगो। मणुसगदिपंचगं देवगदि०४ सुक्काए भंगो। पत्तेगेण साधारणेण वेदणीयभंगो। मिच्छादिट्ठि मदिभंगो।

उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है। सर्वसम्यग्दृष्टि-क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं। अबन्धक सर्व सम्यग्दृष्टि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं (?)।

विशेष—अबन्धक सर्व सम्यग्दृष्टि-क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके 'अनन्त बहुभाग' पाठ उचित प्रतीत होता है।

सामान्य तथा प्रत्येकसे सर्व प्रकृतियोंका इसी प्रकार भंग है।

वेदकसम्यक्त्वीमें – ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? अनन्तवें भाग हैं; अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येकसे अवधिज्ञानके समान भंग है। सामान्यसे ध्रुव प्रकृतियोंका भंग जानना चाहिए।

विशेषार्थ—सब सम्यक्त्वियोंकी संख्या समस्त जीवोंके अनन्तवे भाग कही गयी है।

उपशमसम्यक्त्वीमें—अवधिज्ञानके समान भंग है। इसमें जो विशेषता है, वह जान लेनी चाहिए।

विशेष—जैसे मनुष्यायु तथा देवायुका बन्ध उपशमसम्यक्त्वमें नहीं होता है। तिर्यंचायु तथा नरकायुका बन्ध तो सम्यक्त्वी मात्रके नहीं होगा, कारण नरकायुकी बन्ध-व्युच्छित्ति मिथ्यात्वमें और तिर्यंचायुकी सासादनमें हो जाती है।

सासादनसम्यक्त्वीमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं; अबन्धक नहीं हैं। नरकायुको छोड़कर शेष ३ आयु, देवगति ४ का पृथक् रूपसे शुक्ललेश्याके समान भंग है। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येकसे अवधिज्ञानवत् भग है। सामान्यसे देवोंके ओघवत् है।

सम्यक्त्वमिथ्यात्वीमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग हैं; अबन्धक नहीं हैं। दो वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिरादि तीन युगलका देवके समान भंग है। मनुष्यगतिपंचक, देवगति ४ का शुक्ललेश्याके समान भंग है।

---

१. सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासण-सम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणंतो भागो। —वही, ७७-७८, पृ ५१६

णवरि मिच्छत्त-अबंधगा णत्थि। सण्णिमणजोगिभंगो। असण्णिधुविगाणं बंधगा सव्वजी० केव०? अणंता भागा। अबंधगा णत्थि। सेसाणं पगदीणं तिरिक्खोघं।

१७३. आहारगे-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भागा। सव्वआहारगेसु केव० ? अणंता भागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वआहारगेसु केव० ? अणंतभागो। साद-बंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जदिभागो। सव्व-आहारगेसु केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा। सव्वआहारगेसु केव० ? संखेज्जा भागा। एवं असादं पडिलोमं भाणिदव्वं। दोवेदणीय-बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भागा। अबंधगा णत्थि। इत्थि० पुरिस० सादभंगो। णवुंस० असादभंगो। तिण्णि वेदाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जा भागा। उवरि

प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदनीयके समान भंग है। मिथ्यादृष्टिमें[1]-मत्यज्ञानके समान भंग है। विशेष, यहाँ मिथ्यात्वके अबन्धक नहीं हैं।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वी जीवोंकी संख्या सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्त बहुभाग कही गयी है।

संज्ञीमें[2]-मनोयोगीके समान भंग है। असंज्ञीमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं; अबन्धक नहीं हैं। शेष प्रकृतियोंका तिर्यंचोंके ओघवत् भंग हैं।

विशेषार्थ—सभी जीवराशि सम्पूर्ण जीवोंके अनन्तवे भाग है तथा असंज्ञी जीव सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्तबहुभाग हैं।

१७३. आहारकमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं।[3] सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवे भाग है ? सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं। अनन्तवे भाग हैं। साताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं। सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। असाताके विषयमें प्रतिलोम क्रम है।

विशेषार्थ—असाताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवे भाग हैं।

दो वेदनीयके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग है; अबन्धक नहीं हैं। स्त्री, पुरुषवेदमें साता वेदनीयके समान भंग है। नपुंसकवेदमें असाता वेदनीयके समान भंग है। तीन वेदोंके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग है।

---

१. मिच्छाइट्ठी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंता भागा ॥ —७६, ८०, खु० बं० भा०।
२. सण्णियाणुवादेण सण्णी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणतभागो ॥ —८१, ८२। असण्णी सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणंता भागा १ —८३, ८४ खु० बं०। ३ आहाराणुवादेण आहारा सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? असखेज्जा भागा। —८५-८६।

णाणावरणीयभंगो। तिण्णि-आयु-वेउव्वियछक्कं आहारदुगं तित्थयरं बंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्व-आहार० केव० ? अणंतभागो। अबंधगा सव्वजी० केव०? असंखेज्जा भागा। सव्व० आहार० केव० ? अणंतभागो (गा)। एवं हस्सादीणं पत्तेगेण साधारणेण वेदभंगो कादव्वो। सव्व आयु० अंगोवंगं संघडणं आहार-गदि-सरं मोत्तूण। एदाणं पि सादभंगो पत्तेगेण साधारणेण वि। अणाहारगेसु--पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो। सव्व-अणाहारका० केव० ? अणंतभागा। अबंधगा सव्वजी० केव० ? अणंतभागो। सव्वअणाहार० केव० ? अणंतभागो। साद-बंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो। सव्वअणाहारगाणं केव० ? संखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वजी० केव० ? असंखेज्जदिभागो। सव्वअणाहारगेसु केव० ? संखेज्जा

आगे ज्ञानावरणके समान भंग है। तीन आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक, तीर्थंकरके बन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अबन्धक सवजीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। सर्व आहारकोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं (?)

विशेष—यहाँ अबन्धकोंका सर्व आहारकोंके 'अनन्त बहुभाग' पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है।

हास्यादि प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा साधारणसे वेदके समान भंग है। सर्व आयु, अंगोपांग, संहनन, आहारकद्विक, विहायोगति तथा स्वरके विषयमें वेदका पूर्वोक्त वर्णन नहीं लगाना चाहिए। इनका प्रत्येक तथा सामान्यसे साताके समान भंग है।

अनाहारकोंमें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग है ? असंख्यातवें भाग हैं।[1] सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग है। अबन्धक सर्वजीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। साताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। असाताका प्रतिलोम क्रम जानना चाहिए।

विशेषार्थ—असाताके बन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। अबन्धक सर्व जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। सर्व अनाहारकोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं।

---

१ अणाहारा सव्वजीवाण केवडिओ, भागो ? असंखेज्जदिभागो। —८७,८८–खु० बं०,भागाभा०।

भागा। असाद-पडिलोमं भाणिदव्वं। दोण्णं बंधगाणं णाणावरणीयभंगो। देवगदि०४ तित्थयराणं आहारभंगो। सेसाणि कम्माणि पत्तेगेण साधारणेण य कम्मइगभंगो।

एवं भागाभागं समत्तं।



असाता-साताके बंधकोंका ज्ञानावरणके समान भंग है। देवगति ४, तीर्थंकरका आहारके समान भंग है। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा साधारणसे 'कार्मण काययोगीके समान भंग है।

इस प्रकार भागाभाग-प्ररूपणा समाप्त हुई।



[परिमाणाणुगम-परूवणा]

१७४. परिमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण-पंचणाणावरण-णवदंसणावरण-मिच्छत्त-सोलसकसाय-भय-दुगंच्छा-तेजाकम्मइग-वण्ण०४ अगु०४ आदा-उज्जोव-णिमिण-पंचंतराइगाणं बंधगा अबंधगा केवडिया? अणंता। सादबंधगाबंधगा केव०? अणंता। असादबंधा(धगा) अबंधगा केव०? अणंता। दोण्णं वेदणीयाणं बंधा(धगा) अबंधगा अणंता। एवं सत्तणोक० पंचजादि-छसंठाणं छस्संघ दोविहाय० तसथावरादि-दसयुगलं दोगोदं च। तिण्णि-आयु-वेउव्वियछक्क-तित्थयरं बंधगा केव०? असंखेज्जा। अबंधगा केत्तिया? अणंता। तिरिक्खायु-दोगदि-

[परिमाणानुगम]

१७४. परिमाणानुगमका ओघ और आदेशसे दो प्रकार वर्णन करते हैं।

विविध मार्गणाओंमे स्थित जीवोंके किस प्रकृतिके बन्धकोंकी कितनी संख्या है, इस बातका ज्ञान परिमाणानुगम प्ररूपणा-द्वारा होता है। 'खुद्दाबन्ध'की धवलाटीकामें वीरसेनाचार्यने लिखा है-"एदाओ मग्गणाओ सव्वकालमत्थि, एदाओ च सव्वकालं णत्थित्ति णाणाजीवभंगविचयाणुगमेण जाणाविय संपहि मग्गणासु ट्ठिदजीवाणं पमाणपरूवट्ठं दव्वाणिओगद्दारमागदं (पृ० २४४)" ये मार्गणाएँ सर्वकाल हैं, ये मार्गणाएँ सर्वकाल नहीं हैं- इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयाणुगमसे कहकर अब उन मार्गणाओंमे स्थित जीवोंके प्रमाणके निरूपणार्थ द्रव्यानुयोग-द्वार प्राप्त होता है।

शंका—क्षेत्रानुगम-प्ररूपणाके पूर्व परिमाणानुगम-प्ररूपणाका कथन क्यों किया गया?

समाधान—"दव्वपमाणे अणवगदे खेत्तादिअणियोगद्दाराणमधिगमोवाओ णत्थित्ति दव्वाणिओगद्दारस्स पुव्वणिद्देसो कदो।' (खु० बं०,टीका पृ० २७) द्रव्य प्रमाणके जाने बिना क्षेत्रादि अनुयोग द्वारोंके जाननेका उपाय नहीं है। इससे द्रव्यानुयोगद्वारका पहले कथन किया है, क्षेत्रादिका कथन बादमें किया गया है।

ओघसे-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक और अबन्धक कितने हैं? अनन्त हैं[1]। साता वेदनीयके बन्धक और अबन्धक कितने हैं? अनन्त है। असाताके बन्धक-अबन्धक कितने हैं? अनन्त हैं। दोनों वेदनीयोंके बन्धक-अबन्धक अनन्त हैं। ७ नोकषाय (भय-जुगुप्साको छोड़कर), ५ जाति, ६ संस्थान, ६ संहनन, दो विहायोगति, त्रस स्थावरादि दस युगल और दो गोत्रके बन्धकों-अबन्धकोंका भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

नरक-देव-मनुष्यायु, वैक्रियिकषट्क तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक कितने हैं? असं-

---

१ "ओघेण मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? अणंता॥"-षट्खं०,द० सू० २।

ओरालिय० ओरालि० अंगो० दोआणुपुव्वीणं बंधगा अबंधगा केत्तिया ? अणंता। चदुआयु-चदुगदि-दोसरीर-दोअंगो०चदुआणुपुव्वीणं बंधगा अबंधगा केत्तिया ? अणंता। आहारदुगस्स बंधगा केत्तिया ? संखेज्जा। अबंधगा केत्तिया ? अणंता।

१७५. आदेसेण-णिरयेसु-धुविगाणं बंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितिग-मिच्छत्त-अणंताणुबंधि०४ तिरिक्खायु-उज्जोव-तित्थयराणं (?) बंधगा अबंधगा असंखेज्जा। सादासादबंधगा असंखेज्जा। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा। अबंधगा णत्थि। मणुसायुबंधगा केत्तिया ? संखेज्जा। अबंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा। सेसाणं परियत्तमाणियाणं वेदणीयभंगो कादव्वो। एवं सव्वणेरइगाण।

१७६. तिरिक्खेसु-धुविगाणं बंधगा केत्तिया ? अणंता। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितिग-मिच्छत्त-अट्ठकसाय-ओरालियसरीराणं बंधगा केत्तिया ? अणंता। अबंधगा असंखेज्जा। सादासादबंधगा-अबंधगा केत्तिया ? अणंता। दोण्णं वेदणीयाणं

ख्यात हैं। अवन्धक कितने है ? अनन्त है। तिर्यंचायु, दो गति (तिर्यंच-मनुष्यगति), औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपाग, २ आनुपूर्वी (तिर्यंच-मनुष्यानुपूर्वी) के बन्धक-अबन्धक कितने है ? अनन्त हैं। चार आयु, ४ गति, दो शरीर (औदारिक, वैक्रियिक), दो अंगोपांग (औदारिक वैक्रियिक अंगोपांग), ४ आनुपूर्वीके बन्धक-अवन्धक कितने हैं ? अनन्त है। आहारकद्विकके बन्धक कितने हैं ? संख्यात है। अबन्धक कितने है ? अनन्त है।

विशेष—[1]आहारकद्विकके बन्धक अप्रमत्त संयत होते है। उनकी संख्या संख्यात है।

१७५ आदेशसे—नरकगतिमे, ध्रुव[2] प्रकृतियोंके बन्धक कितने है ? असख्यात है। अवन्धक नहीं हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, तिर्यंचायु, उद्योत तथा तीर्थंकरके बन्धक अबन्धक कितने है ? असंख्यात है[3]। साता-असाताके बन्धक असंख्यात हैं। दोनों वेदनीयके बन्धक कितने है ? असंख्यात है। अवन्धक नहीं है। मनुष्यायुके बन्धक कितने हैं ? संख्यात हैं। अवन्धक कितने है ? असख्यात है।[4] शेष परिवर्तमान प्रकृतियोंमे वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। सम्पूर्ण नारकियोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए।

१७६ तिर्यंचगतिमे—ध्रुव[5] प्रकृतियोंके बन्धक कितने है ? अनन्त है। अबन्धक नहीं हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी४, अप्रत्याख्यानावरण ४, तथा औदारिक शरीरके बन्धक कितने है ? अनन्त है। अबन्धक असख्यात है। साता-असाताके बन्धक-

१ "अप्पमत्त-सजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? सखेज्जा॥" —षट्खं०, द० सू० ८। २ "घादितिमिच्छकसाया भयतेजगुरुदुगणिमिणवण्णचओ। सत्तेतालधुवाण चदुधा सेसाणय च दुधा॥" -गो० क०,गा० १२४। ३ "णिरयगईए णेरइएसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? असखेज्जा।"—षट्खं०,द० सू० १५। ४ दव्वपमाणाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया दव्वपमाणेण केवडिया ? असखेज्जा —खु० ब०, टीका, पृ० २४४, सूत्र १, २। ५ तिरिक्खगदीए तिरिक्खा दव्वपमाणेण केवडिया ? अणता —खु० ब०, सू० १४, १५।

बंधगा केत्तिया ? अणंता। अबंधगा णत्थि। तिण्णि-आयु० वेउव्वियछक्कं बंधगा केत्तिया ? असंखेज्जा। अबंधगा अणंता। एवं वेदणीय-भंगो सव्वाणं परियत्तमाणियाणं। णवरि चदुआयु-दो अंगो० छस्संघ० परघादुस्सा० दोविहा० दोसर०-बंधगा अबंधगा केत्तिया ? अणंता। एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३। णवरि असंखेज्जं कादव्वं।

१७७. पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तेसु-धुविगाणं बंधगा असंखेज्जा। अबंधगा णत्थि। सेसाणं पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो। एवं सव्वविगलिंदिय-सव्वपुढवि० आउ० तेउ० वाउ० बादरवणप्फदिपत्तेय। एइंदिय-वणप्फदि-णियोदाणं एवं चेव। णवरि अणंतं कादव्वं। णवरि मणुसायुबंधगा अबंधगा असंखेज्जा।

१७८. मणुसेसु-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० तेजाक०

अबन्धक कितने हैं ? अनन्त हैं। दोनों वेदनीयके बन्धक कितने हैं ? अनन्त हैं; अबन्धक नहीं हैं। तीन आयु (तिर्यंचायुको छोड़कर), वैक्रियिकषट्क (देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग) के बन्धक कितने हैं ? असंख्यात हैं; अबन्धक अनन्त हैं।

विशेष—आयुत्रिकमें यदि तिर्यंचायु सम्मिलित की जाती, तो बन्धक असंख्यात न होकर अनन्त हो जाते, अतः आयुत्रिकको तिर्यंचायु विरहित समझना चाहिए।

इस प्रकार सर्व परिवर्तमान प्रकृतियोंमें वेदनीयके समान भंग समझना चाहिए। विशेष यह है कि चार आयु, दो अंगोपांग, ६ संहनन, परघात, उच्छ्‌वास, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धक-अबन्धक कितने हैं ? अनन्त हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यंच तथा पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंचमें इसी प्रकार समझना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ अनन्तके स्थानमें 'असंख्यात' को ग्रहण करना चाहिए।[1]

१७७. पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक असंख्यात हैं अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंमें पंचेन्द्रिय-तिर्यंचोंके समान भंग समझना चाहिए। सम्पूर्ण विकलेन्द्रिय, सम्पूर्ण पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकमें ऐसा ही जानना चाहिए। एकेन्द्रिय, वनस्पति निगोदमें भी इसी प्रकार है। विशेष यह है कि असंख्यातके स्थानमें यहाँ 'अनन्त' कहना चाहिए। विशेष, मनुष्यायुके बन्धक, अबन्धक असंख्यात हैं।

विशेष—यह कथन सामान्यकी अपेक्षा है। तेजकाय, वायुकायमें मनुष्यायुके बन्धाभावका विशेष नियम यहाँ भी लागू रहेगा।

१७८. मनुष्योंमें[2]—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय-

१ पंचिंदियतिरिक्ख – पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त – पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी – पंचिंदियतिरिक्ख – अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा – खु० बं०, सू० १८, १९। २ "मणुसगईए मणुस्सेसु मिच्छादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा।" – षट्खं०, द० सू० ४०। "मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठी दव्वपमाणे

वण्ण०४अगु० उप० णिमि० पंचंतरा० बंधगा असंखेज्जा। अबंधगा संखेज्जा सादासाद-बंधगा अबंधगा असंखेज्जा। दोण्णं पगदीणं बंधगा असंखेज्जा। अबंधगा संखेज्जा। एवं परियत्तमाणियाणं सव्वाणं। णवरि दोआयु वेउव्वियछक्क०। आहारदुग-तित्थयराणं बंधगा संखेज्जा। अबंधगा असंखेज्जा। साधारणेण वेदणीयभंगो। छसंघ० दोविहा० दोसराणं बंधगा अबंधगा पत्तेगेण साधारणेण वि असंखेज्जा। परघादुस्सास-आदाउज्जोवाणं बंधगा अबंधगा असंखेज्जा। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वे भंगा संखेज्जा।

१७६. देवेसु णिरयोघं। णवरि भवणवासि याव सोधम्मीसाणा त्ति। एइंदि०

जुगुप्सा, तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक असंख्यात, अबन्धक संख्यात हैं। साता-असाताके बन्धक, अबन्धक असंख्यात हैं। दोनों प्रकृतियोंके बन्धक असंख्यात हैं, अबन्धक संख्यात हैं। सम्पूर्ण परिवर्तमान प्रकृतियोंमें इसी प्रकार है। दो आयु तथा वैक्रियिकषट्कके विषयमें विशेष है। आहारकद्विक तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक संख्यात हैं, अबन्धक असंख्यात हैं। सामान्यकी अपेक्षा वेदनीयके समान भंग है। ६ संहनन, दो विहायोगति, २ स्वरोंके बन्धक, अबन्धक प्रत्येक तथा सामान्यसे असंख्यात हैं। परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योतके बन्धक, अबन्धक असंख्यात हैं।

मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यनियोंमें—सम्पूर्ण भंग संख्यात हैं।

विशेषार्थ—[1]खुद्दाबन्धमें मनुष्य पर्याप्त तथा मनुष्यनीके प्रमाणपर इस प्रकार प्रकाश डाला गया है–"मणुस्सपज्जत्ता मणुसिणीओ दव्वपमाणेण केवडिया? कोडाकोडाकोडीए उवरि कोडाकोडा-कोडाकोडीए हेट्ठदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं हेट्ठदो" (सूत्र २८, २९)–मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियाँ द्रव्यप्रमाणसे कितनी हैं? कोड़ा-कोड़ाकोड़ीसे ऊपर और कोड़ाकोड़ा-कोड़ाकोड़ीके नीचे छह वर्गोंके ऊपर व सात वर्गोंके नीचे अर्थात् छठे और सातवें वर्गके बीचकी संख्या प्रमाण मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यनियाँ हैं।

'धवलाटीकामें लिखा है–यद्यपि इस प्रकार सूत्रमें सामान्य रूपसे ही कहा है, तथापि आचार्य परम्परागत अविरुद्ध गुरूपदेशसे पंचम वर्गके घन प्रमाण मनुष्य-पर्याप्त राशि है। इस प्रकार ग्रहण करना चाहिए। उसका प्रमाण इस प्रकार है–७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३३६। यह उनतीस अंक प्रमाण मनुष्य पर्याप्तकोंकी संख्या कही गयी है। (खु० बं० टीका, पृ. २५८)।

विशेष—यहाँ लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका वर्णन नहीं हुआ है, अतः प्रतीत होता है कि इस विषयमें पञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचोंके समान भंग होंगे।

१७९ देवगतिमें—नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए। [2]भवनवासियोंसे लेकर

केवडिया? कोडाकोडीए हेट्ठदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं हेट्ठदो। मणुसिणीसु सासणसम्माइट्ठिपहुडि जाव अजोगिकेवलित्ति दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।" – षट्खं०, द० सू० ४८-४९। १ मणुसगदीए मणुस्सा मणुसअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा। खु० बं०, सूत्र २२, २३। २. "भवणवासियदेवेसु मिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।" – षट्खं०, द० सू० ५७, पृ. २७०.

पंचिंदि० ओरालि० अंगो० छस्संघ० आदा-उज्जोव-दोविहाय० तसथावर-दोसराणं बंधगा अबंधगा असंखेज्जा। सेसाणं णिरयभंगो। सव्वट्ठे सव्वभंगा संखेज्जा।

१८०. पंचिंदि०-तस०२-पंचणा० छदंसणा० अट्ठकसाय० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा केत्तिया? असंखेज्जा। अबंधगा केत्तिया? संखेज्जा। थीणगिद्धितिय-मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं बंधगा अबंधगा केत्तिया? असंखेज्जा। एवं परघादुस्सास-आदाउज्जोव-तित्थयराणं। सादासाद-बंधगा अबंधगा केत्तिया? असंखेज्जा। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा केत्तिया? असंखेज्जा। अबंधगा संखेज्जा। एवं सेसाणं पगदीणं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदणीयभंगो। णवरि चदुआयु दो अंगो० छस्संघ० दोविहाय० दोसराणं पत्तेगेण साधारणेण वि बंधगा अबंधगा केत्तिया? असंखेज्जा। आहारदुगं मणुसोघं।

सौधर्म ईशान स्वर्ग तक विशेष जानना चाहिए। एकेन्द्रिय, पचेन्द्रिय जाति, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर तथा दो स्वरके बन्धक अबन्धक असंख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंमे नारकियोंके समान भंग है। सर्वार्थसिद्धिमें सम्पूर्ण भंग संख्यात[1] है।

विशेषार्थ—'धवलाटीकामें मनुष्यनियोंसे तिगुनी संख्या सर्वार्थसिद्धिके देवोंकी कही गयी है।'जीवट्ठाण'सूत्रमें यह संख्या संख्यात कही है।'खुद्दाबन्ध'की मुद्रित प्रतिके हिन्दी अनुवाद (पृ० २६७) में यह संख्या 'असंखेज्जा' कही है। प्रतीत होता है कि 'संखेज्जा' पाठ सम्यक् होगा। महाबन्धमें संख्या 'संख्यात' कही है।

१८०. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्तक, त्रस, त्रसपर्याप्तकोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय अर्थात् प्रत्याख्यानावरण तथा संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण[1], वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक कितने हैं? असंख्यात[3] हैं। अबन्धक कितने हैं? संख्यात हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, आठ कषायके बन्धक-अबन्धक कितने हैं? असंख्यात हैं। इसी प्रकार परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत तथा तीर्थंकरमें भी हैं। साता-असाताके बन्धक अबन्धक कितने हैं? असंख्यात हैं। दोनों वेदनीयके बन्धक कितने

१. "सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।"-षट्खं०,द० सू० ७३। २ देवगदीए देवा दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा। भवणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा। वाणवेंतरदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा। जोदिसिया देवा देवगदिभंगो। सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा। सणक्कुमार जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा सत्तमपुढवीभंगो। आणद जाव अवराइदविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा। -खुद्दाबन्ध। सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा। मणुसिणिरासीदो तिउणमेत्ता हवंति॥ - जीवट्ठाण, ताम्रपत्रप्रति पृ० २८६। ३ "पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।"-षट्खं०,द० सू० ८०। "तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा।" -षट्खं०, द० सू० ६८, पु ३, पृ ३६०

१८१. एवं पंचमण० पंचवचि० चक्खुदंस० सण्णित्ति। णवरि दोवेदणीएसु अबंधगा णत्थि। काजोगीसु–पंचणा० छदंसणा० अट्ठकसा० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा अणंता, अबंधगा संखेज्जा। थीणगिद्धितिय-मिच्छत्त-अट्ठकसाय-ओरालियसरीराणं बंधगा अणंता, अबंधगा असंखेज्जा। सादासाद-बंधगा अबंधगा अणंता। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा अणंता। अबंधगा णत्थि। तिण्णिआयु-वेगुव्वियछक्क-आहारदुग-तित्थयरं च ओघं। सेसाणं पत्तेगेण बंधगा अबंधगा अणंता। साधारणेण बंधगा अणंता। अबंधगा संखेज्जा। चदुआयु-दोअंगोवंग-छस्संघ० परघा-

---

हैं ? बन्धक असख्यात है, अबन्धक संख्यात है।

विशेष—अयोगकेवली गुणस्थानमे वेदनीययुगलके अबन्धककी अपेक्षा 'संख्यात' प्रमाण कहा है।

शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदनीयके समान पूर्ववत् भंग जानना चाहिए।

विशेष, ४ आयु, दो अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके प्रत्येक तथा साधारणसे बन्धक,अबन्धक कितने हैं ? असंख्यात हैं। आहारकद्विकके मनुष्योंके ओघवत् हैं अर्थात् बन्धक संख्यात, अबन्धक असंख्यात हैं।

१८१. पॉच मन, ५ वचनयोग, चक्षुदर्शन और संज्ञीमे इसी प्रकार है। विशेष, यहॉ दो वेदनीयोंमें अबन्धक नहीं होते हैं।

विशेष—वेदनीय युगलके अबन्धक अयोगकेवली होते है. वहॉ इन मार्गणाओंका अभाव है।

काययोगियोंमें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कपाय (प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन) भय, जुगुप्सा. तैजस-कार्मण , वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक अनन्त हैं, अबन्धक संख्यात हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, ८-कपाय (अनन्तानुबन्धी तथा अप्रत्याख्यानावरण) तथा औदारिक शरीरके बन्धक अनन्त हैं , अबन्धक असंख्यात हैं। साता-असाताके बन्धक और अबन्धक अनन्त हैं। दोनों वेदनीयोंके बन्धक अनन्त हैं; अबन्धक नहीं हैं।

विशेष—साता और असाता प्रतिपक्षी प्रकृतियॉ है। अतः एकके बन्धमें दूसरीका अबन्ध होगा इससे पृथक्-पृथक्के अबन्धक भी अनन्त बताये गये हैं। उभयके यहॉ अबन्धक नहीं होते हैं।

तीन आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक तथा तीर्थंकरके बन्धक अबन्धक ओघवत् जानने चाहिए। अर्थात् बन्धक असंख्यात हैं, आहारकद्विकके बन्धक संख्यात है; किन्तु अबन्धक अनन्त हैं। शेष प्रकृतियोंके प्रत्येकसे बन्धक,अबन्धक अनन्त हैं। सामान्यसे बन्धक

---

१. कायजोगि-ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-कम्मइकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? अणंता ॥ – खु० बं०सू० ९०-९१। २ इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? अणंता। बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय। तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा ॥ – खुद्दाबन्ध, दव्वपमाणाणुगम।वही, पृ. २६७-६९

दुस्सास-आद।उज्जोव-दोविहा० दोसराणं बंधगा अबंधगा अणंता। एवं ओरालियकाय-जोगि-अचक्खुदंसणी-आहारगत्ति। ओरालियमिस्सका०-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० ओरालिय० तेजाक० वण्ण०४ तित्थयराणं (?) [पंचंतराइगाणं] बंधगा अणंता। अबंधगा संखेज्जा। णवरि मिच्छत्त-अबंधगा असंखेज्जा। देवगदि०४ तित्थय० बंधगा संखेज्जा। अबंधगा अणंता। सेसं ओरालिय-काजोगिभंगो। एवं कम्मइगे। णवरि थीणगिद्धि३ मिच्छत्त-अणंताणु०४ अबंधगा असंखेज्जा। वेउव्विय-काजोगि-वेउव्वियमिस्स० देवोघं। णवरि वेउव्वियमिस्स० तित्थय० बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा। आहार० आहारमिस्स० मणुसभंगो। एवं मणपज्जव० संजद-

---

अनन्त हैं, अबन्धक संख्यात हैं। चार आयु, दो अंगोपांग, छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धक,अबन्धक अनन्त हैं।

औदारिक काययोगी, अचक्षुदर्शनी तथा आहारक पर्यन्त इसी प्रकार है।

औदारिकमिश्र काययोगियोंमे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, वर्ण ४ [तथा पंच अन्तराय] के बन्धक अनन्त, अबन्धक संख्यात हैं[1]।

विशेष—यहाँ मूलमे आगत 'तित्थयराण' पाठके स्थानमे '५अन्तराय' का पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है। कारण इसके बाद ही देवगति ४ के साथ तीर्थंकर प्रकृतिका पृथक् रूपसे वर्णन किया गया है। वहाँ तीर्थंकरके बन्धक संख्यात कहे हैं।

इतना विशेष है कि मिथ्यात्वके अबन्धक असंख्यात हैं। देवगति ४ (देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपाग) तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक संख्यात हैं, अबन्धक अनन्त हैं। शेष प्रकृतियोंका औदारिक काययोगीके समान भंग है।

कार्मण काययोगियोंमे इसी प्रकार है। इतना विशेष है कि स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक असंख्यात हैं।

वैक्रियिक काययोगी तथा वैक्रियिकमिश्र काययोगियोंमें—देवोंके ओघवत् भंग जानना चाहिए। विशेष, वैक्रियिकमिश्र काययोगियोंमें तीर्थंकरके बन्धक संख्यात, अबन्धक असंख्यात हैं।

[2]आहारक, [3]आहारकमिश्र काययोगमे—मनुष्यके समान भंग जानना चाहिए।

विशेषार्थ—आहारक काययोगी ५४ कहे गये हैं। आहारक मिश्रकाययोगी संख्यात कहे गये हैं। धवलाटीकामें लिखा है: "आइरिय-परंपरागद-उवदेसेण पुण सत्तावीसा जीवा होंति"–आचार्य परम्परासे प्राप्त उपदेश सत्ताईस जीव होते हैं॥ (खु० बं०,पृ० २८१)

---

१ "ओरालियमिस्सकायजोगीसु असंजदसम्माइट्ठी-सजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।" –षट्खं०,द० सू०-११२-१४। २ "आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? चदुवण्ण। आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।"–षट्खं०, द० सू० ११६–२०। ३ "आहारकायजोगीसु पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? चदुवण्ण। आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया? संखेज्जा।"षट्खं०, द० सू० ११९-२०।

सामाइय० छेदो० परिहार० सुहुमसंप० यथाक्खाद० ।

१८२. इत्थिवेदेसु-पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंतरा० बंधगा असंखेज्जा । अबंधगा णत्थि । सेसं पंचिंदियभंगो । णवरि दोवेदणीय-जस० अजस० दोगोदाणं बंधगा असंखेज्जा । अबंधगा णत्थि । तित्थयरकम्मस्स बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा । एवं पुरिसवेदे । णवरि तित्थयरस्स बंधगा अबंधगा असंखेज्जा । णवुंस०–पंचणा० चदुदंस० [चदुसंज०] पंचंतराइगाणं० अणंता । अबंधगा णत्थि । सेसं काजोगिभंगो । णवरि जस-अजस० दोगोदाणं अबंधगा णत्थि । एवं कोधादि०४ । णवरि अप्पप्पणो धुविगाणं णादव्वाओ ।

१८३. मदि० सुद०–धुविगाणं बंधगा अणंता । अबंधगा णत्थि । मिच्छत्तस्स बंधगा अणंता । अबंधगा असंखेज्जा । सेसं तिरिक्खोघं । एवं अब्भ० सिद्धि० मिच्छादि० असण्णि त्ति । णवरि मिच्छत्तस्स अबंधगा णत्थि । अवगदवेदेसु–पंचणा०

मनःपर्ययज्ञान, सयत, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यातसयतमे[2] इसी प्रकार जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—संयत सामायिक-छेदोपस्थापन-शुद्धिसंयत कोटि पृथक्त्व प्रमाण हैं। परिहारविशुद्धिसयत सहस्रपृथक्त्व है । सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धिसयत शतपृथक्त्व है। यथाख्यातविहारशुद्धिसयत शत सहस्र पृथक्त्व प्रमाण है।

१८२ स्त्रीवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन और ५ अन्तरायके बन्धक असंख्यात है, अबन्धक नहीं है । शेष प्रकृतियोंका पचेन्द्रियके समान वर्णन है। विशेष, दो वेदनीय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, दो गोत्रोंके बन्धक असंख्यात हैं, अबन्धक नहीं हैं। तीर्थंकर कर्मके बन्धक संख्यात है, अबन्धक असंख्यात है । पुरुषवेदमे इसी प्रकार है। विशेष, तीर्थंकरके बन्धक,अबन्धक असख्यात है । नपुंसकवेदमे—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण [४ संज्वलन] ५ अन्तरायके बन्धक अनन्त है; अबन्धक नहीं है । शेष प्रकृतियोंमें काययोगीके समान भंग है । विशेष यह है कि यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोंके अबन्धक नहीं है। क्रोधादि ४ में इसी प्रकार है । विशेष, अपनी ध्रुव प्रकृतियोंकी विशेषताको यहाँ जान लेना चाहिए ।

१८३ मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमे—ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धक अनन्त है; अबन्धक नहीं है। मिथ्यात्वके बन्धक अनन्त हैं, अबन्धक असंख्यात है ।

विशेष—अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंकी अपेक्षा यह गणना की गयी है ।

शेष प्रकृतियोंका तिर्यंचोंके ओघवत् भंग जानना चाहिए ।

अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, असज्ञीमे इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ

---

१ मणपज्जवणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ? सखेज्जा । केवलणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ? अणता ॥ –खु० ब० । २ सजमाणुवादेण सजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावण सुद्धि-सजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? कोडिपुधत्त । परिहारसुद्धिसजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? सहस्सपुधत्त । सुहुमसापराइयसुद्धिसजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? सदपुधत्त । जहाक्खादविहारसुद्धिसजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? सदसहस्सपुधत्त । सजदासजदा दव्वपमाणेण केवडिया ? पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो ॥ –खु० ब०, सू० १२८-१३७ ।

चदुदंस० चदुसंज० साद० जस० उच्चागोद० पंचंतराइगाणं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा अणंता। अकसाइ-सादबंधगा संखेज्जा, अबंधगा अणंता [एवं] केवलणा० केवलदंस० विभंग० पंचिंदिय-तिरिक्ख-भंगो। णवरि किंचि विसेसो जाणिदव्वो। आभिणि० सुद० ओधि०-पंचणा० छदंस० अट्ठकसाय-पुरिस० भयदु० पचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगुरु०४ पसत्थ० तस०४ सुभग० सुस्सर-आदेज्ज० णिमि० उच्चा० पंचंत० बंधगा० केत्तिया? असंखेज्जा। अबंधगा संखेज्जा। सादासादबंधगा अबंधगा असंखेज्जा। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा असंखेज्जा, अबंधगा णत्थि। चदुणोकसायाणं बंधगा अबंधगा असंखेज्जा। दोण्णं युगलाणं बंधगा असंखेज्जा। अबंधगा संखेज्जा। एवं दोगदि-दोसरीर-दोअंगोवंग-दोआणुपुव्वि० थिरादितिण्णियुगलाणं। मणुसायु-आहारदुगं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा। अपच्चक्खाणावरण०४ देवायु० वज्जरिसभ० तित्थयराणं बंधगा अबंधगा असंखेज्जा। एवं ओधिदं० उवसम०। णवरि उवसम० तित्थयराणं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा।

मिथ्यात्वके अबन्धक नहीं हैं। अपगतवेदमें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, साता वेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायोंके बन्धक संख्यात हैं। अबन्धक अनन्त हैं। अकषाय जीवोंमें – साताके बन्धक संख्यात हैं, अबन्धक अनन्त हैं। केवलज्ञान, केवलदर्शनमें इसी प्रकार है। विभगावधिमें – पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका भंग है। इसमें जो किंचित् विशेषता है, उसे जान लेना चाहिए।

आभिनिबोधिक, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस–कार्मण, समचतुरस्र संस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक कितने हैं? असंख्यात हैं। अबन्धक संख्यात हैं। साता तथा असाताके बन्धक, अबन्धक असंख्यात हैं। दोनों वेदनीयोंके बन्धक असंख्यात हैं; अबन्धक नहीं हैं। चार नोकषायों (हास्य-रति, अरति शोक) के बन्धक, अबन्धक असंख्यात हैं। इन दोनों युगलोंके बन्धक असंख्यात हैं, अबन्धक संख्यात हैं। इस प्रकार दो गति, २ शरीर, २ अंगोपांग, २ आनुपूर्वी तथा स्थिरादि तीन युगलोंमें जानना चाहिए। मनुष्यायु तथा आहारक-द्विकके बन्धक संख्यात, अबन्धक असंख्यात हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४, देवायु, वज्रवृषभ संहनन तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक, अबन्धक असंख्यात हैं। अवधिदर्शन और उपशम सम्यक्त्वमें इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, उपशम सम्यक्त्वमें तीर्थंकरके बन्धक संख्यात, अबन्धक असंख्यात हैं।

विशेषार्थ—कुछ आचार्योंका मत है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्वका काल अल्प होनेसे उसमें तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है, किन्तु द्वितीयोपशममें तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धके विषयमें मतभेद नहीं है।[1]

---

१ "पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि। तित्थयरबंधपारंभया णरो केवलिदुगंते॥" –गो० क०, गा० ९३। –प्रथमोपशमसम्यक्त्वे शेष-द्वितीयोपशम-क्षायोपशमिक-क्षायिक सम्यक्त्वेषु च असंयता-द्यप्रमत्तान्तमनुष्या एव तीर्थंकरबन्धं प्रारम्भन्ते तेऽपि प्रत्यक्षकेवलिश्रुतकेवलिश्रीपादोपान्त एव। अत्र प्रथमोपशम-

१८४. संजदासंजद–तित्थयराणं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा। सेसं बंधा० आयु दो प० असंखेज्जा (?)। असंजदेसु–धुविगाणं बंधगा अणंता, अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितियं मिच्छत्तं अणंताणुबं०४ ओरालियसरीरं बंधगा अणंता। अबंधगा संखेज्जा। तित्थयरं बंधगा असंखेज्जा, अबंधगा अणंता। सेसं तिरिक्खोघं। एवं किण्ण-णील-काऊणं। णवरि किण्ण० णील० तित्थयराणं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा अणंता। तेऊए–मणुसायु-आहारदुगं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा। पच्चक्खाणावरणीय०४ अबंधगा संखेज्जा। सेसाणं असंखेज्जा। एवं पम्माए। णवरि किंचि विसेसो जाणिदव्वो। सुक्काए-मणजोगिभंगो। णवरि दोआयु-आहारदुगं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा असंखेज्जा।

१८५. भवसिद्धिया०–कायजोगिभंगो। णवरि वेदणीयस्स अबंधगा संखेज्जा।

बन्धसामित्तविचयखण्डमे लिखा है कि तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धके भवको मिलाकर तीसरे भवमे तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्तावाला जीव मोक्ष जाता है, ऐसा नियम है। अर्थात् इससे अधिक वह ससारमे भवधारण नहीं करता है।

१८४. संयतासंयतोंमे—तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक सख्यात है, अबन्धक असंख्यात है।

विशेष—'सेसं बंधा० आयु दो० प०' असखेज्जा'—इस पंक्तिका स्पष्ट भाव समझमें नहीं आया, अतः नहीं लिखा।

असंयतोंमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक अनन्त है; अबन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, औदारिक शरीरके बन्धक अनन्त हैं, अबन्धक संख्यात हैं। तीर्थंकरके बन्धक असंख्यात है, अबन्धक अनन्त है। शेप प्रकृतियोंमे तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए। कृष्ण, नील, कापोत लेश्यामें इसी प्रकार है। विशेष, कृष्ण, नील लेश्यामें तीर्थंकरके बन्धक संख्यात तथा अबन्धक अनन्त हैं। तेजोलेश्यामे – [1]मनुष्यायु, आहारकद्विकके बन्धक सख्यात, अबन्धक असख्यात है। प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक सख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक,अबन्धक असख्यात हैं। पद्मलेश्यामें – इसी प्रकार है। इसमें जो कुछ विशेषता है उसे जान लेना चाहिए।

विशेष—इस लेश्यामे तेजोलेश्याकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, स्थावर तथा आतपका बन्ध नहीं होता है।

शुक्ललेश्यामे – मनोयोगीके समान भंग है। विशेष, दो आयु, आहारकद्विकके बन्धक सख्यात, अबन्धक असंख्यात हैं।

१८५ भव्यसिद्धिकोमे – काययोगीके समान भंग है। विशेष, यहाँ वेदनीयके अबन्धक सख्यात है।

विशेष—भव्यजीवोंमे अयोगकेवली गुणस्थान भी पाया जाता है, इस अपेक्षा वेदनीयके अबन्धक यहाँ कहे गये है।

सम्यक्त्वे इति भिन्नविभक्तिकरण तत्सम्यक्त्वे स्तोकान्तर्मुहूर्तकालत्वात् षोडशभावना-समृद्धयभावात् तद्बन्ध प्रारम्भो न इति केषाचित् पक्ष ज्ञापयति॥ –सस्कृतटीका,पृ० ७८। पारद्धतित्थयबधभवादो तदियभवे। तित्थयर सतकम्मियजीवाण मोक्खगमणनियमादो॥ –बधसामित्तविचय,ताम्रपत्र प्रति पृ० ७५।

१ मिच्छस्सतिमणवय वार णहि तेउपम्मेसु।" –गो० क०,गा० १२०।

सम्मादिट्ठि धुविगाणं बंधगा असंखेज्जा, अबंधगा अणंता। सेसाणं धुविगाणं भंगो। पत्तेगेण साधारणेण वि मणुसायुआहारदुगं बंधगा संखेज्जा। एवं खइगसम्मादिट्ठीणं। णवरि देवायुबंधगा संखेज्जा, अबंधगा अणंता। वेदग०–धुविगाणं बंधगा असंखेज्जा।

विशेषार्थ—भव्यसिद्धिक जीव द्रव्य प्रमाणसे कितने हैं? इसके उत्तरमें 'खुद्दाबन्ध' सूत्रमें आचार्य कहते हैं "अणंता" (१५६)। अभव्यसिद्धिक जीव भी 'अणंता' अनंत कहे गये हैं। 'धवला'टीकामें यह शंका-समाधान किया गया है:—

शंका– व्ययके न होनेसे व्युच्छित्तिको प्राप्त न होनेवाली अभव्यराशिके 'अनन्त' यह संज्ञा कैसे सम्भव है?

समाधान—नहीं, क्योंकि अनन्तरूपके केवलज्ञानके ही विषयमें अवस्थित संख्याके उपचारसे अनन्तपना माननेमें कोई विरोध नहीं आता।

यद्यपि अभव्य जीवराशि भव्य राशिके समान अनन्त कही गयी है, किन्तु उनमें बहुत अन्तर है। 'गोम्मटसार' जीवकाण्डमें लिखा है:

अवरो जुत्ताणंतो अभव्वरासिस्स होदि परिमाणं।
तेण विहीणो सव्वो संसारी भव्वरासिस्स ॥५६०॥

अभव्यराशिका परिमाण जघन्य युक्तानन्त है। उससे रहित संसारी जीवोंकी संख्या प्रमाण भव्य जीवराशि कही है।

अभव्यराशिको अनन्तगुणा किया जाये, तो सिद्ध राशिके अनन्तवें भाग प्रमाण संख्या आती है। उतना समय प्रबद्धका प्रमाण कहा गया है। कहा भी है:–

[1]सिद्धाणंतिमभागं अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव।
समयपबद्धं बंधदि जोगवसादो दु विसरित्थं ॥ गो० क०४ ॥

'धवला'टीकामें लिखा है– "सिद्धि-पुरक्कदा भविया णाम" सिद्धि पुरस्कृत जीवोंको भव्य कहते हैं। 'तव्विवरीया अभविया णाम'- इसके विपरीत जीवोंको अभव्य कहते हैं। "सिद्धा पुण न भविया, ण च अभविया तव्विवरीद-सरूवत्तादो" (खु० बं०,पृ० २४२) सिद्ध जीव न तो भव्य हैं और न अभव्य हैं, क्योंकि उनका स्वरूप भव्य तथा अभव्यसे विपरीत है। भव्योंकी राशि अक्षय अनन्त कही गयी है। भूतवलि स्वामी कहते हैं: "अणंताणंता हि ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण" (खु० बं०,सू० १५७) भव्यसिद्धिक जीव अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी प्रमाणकालसे अपहृत नहीं होते।

सम्यग्दृष्टियोंमें – ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धक असंख्यात हैं; अबन्धक अनन्त हैं। शेष प्रकृतियोंका ध्रुव प्रकृतिवत् भंग है। प्रत्येक तथा सामान्यसे मनुष्यायु तथा आहारकद्विकके बन्धक संख्यात हैं।

क्षायिक सम्यक्त्वियोंमें – इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, देवायुके बन्धक संख्यात, अबन्धक अनन्त है। वेदकसम्यक्त्वमें – ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक असंख्यात हैं,

---

२ सिद्धराश्यनन्तैकभाग, अभव्यसिद्धेभ्योऽनन्तगुण तु पुन योगवशाद् विसदृश समयप्रबद्ध बध्नाति। समये समये प्रबध्यते इति समयप्रबद्ध।

ण य जे भव्वाभव्वा मुत्तिसुहातीदणंतसंसारा।
ते जीवा णायव्वा णेव य भव्वा अभव्वा य ॥ –गो० जी०,५५६॥

अबंधगा णत्थि। सेसं पत्तेगेण ओधिभंगो। साधारणे अबंधगा णत्थि। आयुवज्ज-रिसहाणं ओधिभंगो। सासणे-मणुसायुबंधगा संखेज्जा। सेसभंगा असंखेज्जा। सम्मा-मिच्छे-सव्वभंगा असंखेज्जा। अणाहारगेसु-पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगुरु०४ आदाउज्जो० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा अबंधगा अणंता। सादासादबंधगा अबंधगा अणंता। एवं सेसाणं पि। णवरि देवगदिपंचगं बंधगा संखेज्जा, अबंधगा अणंता।

एवं परिमाणं समत्तं

अबन्धक नहीं हैं। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक रूपसे अवधिज्ञानके समान भग है। सामान्यसे अबन्धक नहीं हैं। आयु तथा वज्रवृषभसहननका अवधिज्ञानके समान भग जानना चाहिए। सासादनमे – मनुष्यायुके बन्धक संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके भंग असख्यात है। सम्यग्मिथ्या-दृष्टियोंमे – सर्व भग असंख्यात जानना चाहिए। अनाहारकोंमे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शना-वरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४ अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक अबन्धक अनन्त हैं। साता-असाताके बन्धक-अबन्धक अनन्त हैं। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंमें भी जानना चाहिए। विशेष यह है कि देवगति ५ के बन्धक संख्यात हैं, अबन्धक अनन्त हैं।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

---

१. आहाराणुवादेण आहारा अणाहारा दव्वपमाणेण केवडिया ? अणता। अणताणताहि ओमप्पिणि उस्सप्पिणीहि न अवहिरंति कालेण।

[खेत्ताणुगम-परूवणा]

१८६. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त-सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचतराइगाणं बंधा (बंधगा) केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। अबंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स

[क्षेत्रानुगम]

क्षेत्रानुगम ओघ तथा आदेशसे दो प्रकारसे निर्देश करते है।

विशेषार्थ—जीवादि द्रव्योंका वर्तमान आवासस्थल क्षेत्र हैं। यह नामक्षेत्र, स्थापना-क्षेत्र, द्रव्यक्षेत्र तथा भावक्षेत्रके भेदसे चार प्रकारका है। यहाँ द्रव्यक्षेत्रसे प्रयोजन है। इसके भेद तद्व्यतिरिक्त नोआगमका दूसरा भेद जो नोकर्मद्रव्य है, वह औपचारिक तथा पार-मार्थिक भेदयुक्त है। धान्यादिक्षेत्र औपचारिक क्षेत्र हैं, आकाशद्रव्य पारमार्थिक नोकर्म तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य-क्षेत्र है। वीरसेन स्वामीने धवलाटीका (जीवट्ठाण भाग ३ पृ० ७) में कहा है, "तत्थ ओवयारियं णोकम्मदव्वखेत्तं लोगपसिद्धं सालिखेत्तं वीहिखेत्तमेव-मादि। पारमत्थियं णोकम्मदव्वखेत्तं आगासदव्वं एदेसु खेत्तेसु केणं खेत्तेण पयदं णोआगमदो दव्वखेत्तेण पयदं।"

जिस प्रकारसे द्रव्य अवस्थित हैं, उस प्रकारसे उनको जानना अनुगम कहलाता है। क्षेत्रके अनुगमको क्षेत्रानुगम कहते हैं, 'जधा दव्वाणि ट्ठिदाणि तधाववोधो अणुगमो। खेत्तस्स अणुगमो खेत्ताणुगमो।' निर्देशका अर्थ है प्रतिपादन करना अथवा कथन करना, "णिद्देसो पदुप्पायणं कहणमिदि एयट्ठो" (पृ०६)। जीवादि द्रव्य आकाशके जितने भागमें पाये जाते हैं, उसे लोक कहते हैं। उसके सिवाय अवशिष्ट आकाशको अलोकाकाश कहते हैं। इस क्षेत्रानुगमका लोकाकाशसे सम्बन्ध है। अलोकाकाशमें आकाशके सिवाय अन्य द्रव्योंका अभाव होनेसे प्रस्तुत प्ररूपणामें उससे प्रयोजन नहीं है। 'पंचास्तिकाय'में कुन्दकुन्द स्वामीने इस अलोकाकाशको "अंतवदिरित्तं" अन्तरहित (अनन्त) कहा है। लोकाकाश तीन सौ तेतालीस घन राजू प्रमाण कहा गया है।

ओघसे – ५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक जीव कितने क्षेत्रमें हैं ? सर्वलोकमें।

विशेषार्थ—लोक शब्दका अर्थ है–"लोक्यंते उपलभ्यन्ते यस्मिन् जीवादि द्रव्याणि स लोकः तद्विपरीतो लोकः।" देशके भेदसे क्षेत्रके तीन भेद कहे हैं। वीरसेन स्वामीने लिखा है–"मंदरचूलियादो उवरिमुड्ढलोगो, मंदरमूलादो हेट्ठा अधोलोगो मंदर-परिच्छिण्णो मज्झलोगो त्ति" (जी० खे०,पृ० ६) – मंदराचल अर्थात् सुमेरु पर्वतकी चूलिकासे ऊपर ऊर्ध्वलोक है। मन्दरगिरिके मूलसे नीचेका क्षेत्र अधोलोक है। मन्दराचलसे परिच्छिन्न मध्य-लोक है। इस लोक-विभाजनमें सुमेरु गिरिकी प्रधानताको लक्ष्यमें रखकर आचार्य अकलंक-देव उसे लोकका मानदण्ड कहते हैं, "मेरुरयं त्रयाणां लोकानां मानदण्डः" (त० रा०)'सुदा-

बन्ध'सूत्रकी टीकामें लोकको पंचविध कहा है–"एत्थ लोगो पंचविहो उड्ढलोगो अधोलोगो तिरियलोगो मणुसलोगो सामण्णलोगो चेदि। एदेसिं पचण्ह पि लोगाणं लोगग्गहणेण गहणं कादव्वं" (पृ० ३०१) – यहाँ लोक ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक, मनुष्यलोक, सामान्य लोक इस प्रकार पंचभेदसहित है। लोकके ग्रहण करनेसे पाँचों लोकोंका ग्रहण करना चाहिए। मनुष्य लोकका तिर्यग्लोकमे अन्तर्भाव होनेसे लोकत्रयकी मान्यताका सर्वत्र प्रचार है। धवला-टीकाकारने पंचविध लोकोंको लक्ष्यमे रखकर तत्त्व-प्रतिपादन किया है। तीनसौ तेतालीस घनराजू प्रमाण सामान्य लोक है। एकसौ छ्यानवे घनराजू प्रमाण अधोलोक है, एकसौ सैंतालीस घनराजु प्रमाण ऊर्ध्वलोक है। एक लाख योजन ऊंचा, पूर्व पश्चिममें एक राजू चौड़ा तथा उत्तर दक्षिणमें सात राजू लम्बा तिर्यग्लोक है। पैतालीस लाख योजन लम्बे तथा चौड़े और एक लाख योजन ऊँचे क्षेत्रको मनुष्यलोक कहा गया है।

इस पंचविधलोकमे जीवका संचार होता है।'खुद्दाबन्ध'क्षेत्रानुगम प्ररूपणामें स्वस्थान, समुद्‌घात तथा उपपादकी अपेक्षा क्षेत्रका कथन किया है।'धवलाटीकामें यह महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी कथन किया गया है। स्वस्थान पद स्वस्थान-स्वस्थान तथा विहारवत्स्वस्थानके भेदसे दो प्रकार है। अपने-अपने उत्पन्न होनेके ग्रामादिकोंकी सीमाके भीतर परिभ्रमण करनेको स्वस्थान-स्वस्थान कहते है। इससे बाह्य प्रदेशमे घूमनेको विहारवत्स्वस्थान कहते है।

नेत्रवेदना, शिरोवेदना आदिके द्वारा जीवोंके प्रदेशोंका उत्कृष्टतः शरीरसे तिगुने प्रमाण विसर्पणको वेदना समुद्घात कहते हैं। क्रोध, भय आदिके द्वारा जीवके प्रदेशोंका शरीरसे तिगुने प्रमाण (शरीर-तिगुण) प्रसर्पणको कषाय समुद्घात कहा है। वैक्रियिक शरीरके उदयवाले देव और नारकी जीवोंका अपने स्वाभाविक आकारको छोड़कर अन्य आकारसे रहनेका नाम वैक्रियिक समुद्घात है। अपने वर्तमान शरीरको नहीं छोड़कर ऋजुगति-द्वारा या विग्रहगति-द्वारा आगे जिसमें उत्पन्न होना है ऐसे क्षेत्र तक जाकर शरीरसे तिगुने विस्तार-से अथवा अन्य प्रकारसे (शरीरतिगुण-बाहल्लेण अण्णहा वा) अन्तर्मुहूर्त तक रहनेको मारणान्तिक समुद्घात कहा है। मारणान्तिक समुद्घात निश्चयसे आगामी जहाँ उत्पन्न होना है, ऐसे क्षेत्रकी दिशाके अभिमुख होता है। अन्य समुद्घातोंमे दशों दिशाओंमे गमन पाया जाता है। जिसने आगामी भवकी आयु बाँध ली है, ऐसे बद्धायुष्क जीवके ही मारणान्तिक समुद्घात होता है। इस समुद्घातका आयाम अर्थात् विस्तार उत्कृष्टतः अपने उत्पद्यमान क्षेत्रके अन्त तक है, इतर समुद्घातोंमें यह नियम नहीं है।

तैजस शरीरके विसर्पणको तैजस समुद्घात कहते हैं। यह निस्सरणात्मक तथा अनि-स्सरणात्मक भेदसे दो प्रकारका है। निस्सरणात्मक तैजसके प्रशस्त तैजस, अप्रशस्त तैजस ये दो भेद हैं। अप्रशस्त-निस्सरणात्मक तैजसशरीर समुद्घात बारह योजन लम्बा, नौ योजन विस्तारवाला सूच्यंगुल संख्यातवे भाग मोटाईवाला, जपापुष्पके समान लालवर्णवाला, भूमि और पर्वतादिके दहन करनेमे समर्थ, प्रतिपक्षरहित, रोषरूप इन्धनवाला, बाये कन्धेसे उत्पन्न होनेवाला और इच्छित क्षेत्र प्रमाण विसर्पण करनेवाला होता है। जो प्रशस्त निस्सरणात्मक तैजसशरीर समुद्घात है, वह भी विस्तार आदिमें अप्रशस्त तैजसके ही समान है, किन्तु इतनी विशेषता है कि वह हंसके समान धवलवर्णवाला है। सीधे कन्धेसे उत्पन्न होता है। प्राणियों-पर अनुकम्पाके निमित्तसे उत्पन्न होता है। मारी रोग आदिके प्रशमन करनेमें समर्थ होता है। अप्रशस्त तैजसके विषयोंमें'राजवार्तिकमें लिखा है कि वह उग्र चारित्रवाले तथा अत्यन्त क्रुद्ध मुनिके निकलता है (यतेरुग्रचारित्रस्यातिक्रुद्धस्य)।

एक हस्तप्रमाण, सर्वांग सुन्दर, समचतुरस्र संस्थानयुक्त, हंसके समान धवल, रुधिर मांसादि सप्त धातुओंसे रहित, विष, अग्नि एवं शस्त्रादि समस्त बाधाओंसे मुक्त; वज्र, शिला, स्तम्भ, जल, व पर्वतमें-से गमन करनेमें दक्ष तथा मस्तकसे उत्पन्न हुए शरीरसे तीर्थंकरके पाद मूलमें जानेका नाम आहारक समुद्घात है। 'गोम्मटसार' जीवकाण्डमें आहारक शरीरको असंहणणं' - संहननरहित कहा है, क्योंकि इस देहमें अस्थिबन्धन विशेषका असद्भाव है। जीवकाण्डमें यह भी कहा है कि निजक्षेत्रमें केवली श्रुतकेवलीका अभाव हो और सुदूर क्षेत्रमें केवलिद्वय विद्यमान हों तथा तीर्थंकर भगवान्के तपादि कल्याणकत्रय हो तब असंयम परिहार हेतु, श्रुतज्ञानावरण तथा वीर्यान्तरायके क्षयोपशमकी मंदता होनेपर धर्मध्यानका विरोधी श्रुत (शास्त्र) के अर्थमें सन्देह उत्पन्न हो, उस सन्देह निवारणार्थ तथा 'जिण-जिणघर-वंदणट्ठ' जिन तथा जिन-मन्दिरकी वन्दनार्थ आहारक शरीर उत्पन्न होता है।[1] यह शरीर अव्याघाती होता है। कदाचित् पर्याप्ति पूर्ण होनेपर आयु क्षय होनेसे इस शरीरधारी मुनिका मरण भी होना सम्भव है। आहारक तथा तैजस समुद्घात मनुष्यनीके नहीं होते (मणुसिणीसु तेजाहारं णत्थि- खु० ब०)

वेदनीय कर्मके निषेकोंकी बहुलता हो तथा आयुकी स्थिति अल्प हो,तब आयु कर्मके समान शेष कर्मोंकी स्थिति करनेके लिए दण्ड, कपाट, प्रतर तथा लोकपूरणरूप केवलि समुद्घात होता है।

जिसकी अपने विष्कम्भसे कुछ अधिक तिगुनी परिधि है ऐसे पूर्व शरीरके बाहल्यरूप अथवा पूर्व शरीरसे तिगुने बाहल्य रूप दण्डाकारसे केवलीके जीव प्रदेशोंका कुछ कम चौदह राजू फैलनेका नाम दण्डसमुद्घात है। दण्डसमुद्घातमें कथित बाहल्य और आयामके द्वारा वात-वलयसे रहित सम्पूर्ण क्षेत्रके व्याप्त करनेका नाम कपाटसमुद्घात है। केवली भगवान्के जीव प्रदेशोंका वातवलयसे रुके हुए क्षेत्रको छोड़कर सम्पूर्ण लोकमें व्याप्त होनेका नाम प्रतर-समुद्घात है। घनलोक प्रमाण केवली भगवान्के जीव प्रदेशोंका सर्वलोकमें व्याप्त करनेको केवलिसमुद्घात कहते हैं।

उपपाद एक प्रकारका है। वह भी उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही होता है। उपपादमें ऋजुगतिसे उत्पन्न हुए जीवोंका क्षेत्र बहुत नहीं पाया जाता है, क्योंकि इसमें जीवके समस्त प्रदेशोंका संकोच होता है (संकोचिदासे सजीवपदेसादो)।

इस प्रकार स्वस्थानके दो भेद, समुद्घातके सात भेद तथा एक उपपाद इन दश विशेषणोंसे यथासम्भव विशेषताको प्राप्त क्षेत्रका निरूपण किया गया है।

अबन्धक कितने क्षेत्रमें है? लोकके असंख्यातवें भागमें अथवा असंख्यात भागोंमें या सर्वलोकमें रहते हैं।

विशेषार्थ—ज्ञानावरणादिके अबन्धक उपशान्तकषायादि गुणस्थानवर्ती जीवोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग है। सयोगी जिनके प्रतर-समुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यात बहुभाग हैं। क्योंकि यहाँ वातवलयोंमें जीव प्रदेश नहीं पाये जाते। लोकपूरण समुद्घातकी

---

१. आहारस्सुदएण य पमत्तविरदस्स होदि आहारं।
असजमपरिहरणट्ठ सदेहविणासणट्ठ च ॥२३५॥
णियखेत्ते केवलिदुगविरहे णिक्कमणपहुदिकल्लाणे।
परखेत्ते संवित्ते जिण-जिणघर वंदणट्ठ च ॥२३६॥ —गो० जी०

असंखेज्जदिभागे, असंखेज्जेसु वा भागेसु वा सव्वलोगे वा । सादासाद-बंधगा अबंधगा केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। अबंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। एवं सेसाणं पत्तेगेण वेदणीय-भंगो। साधारणेण धुविगाणं भंगो। णवरि तिण्णि-आयु-वेउव्वियछक्क-आहारदुगं तित्थयरं बंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अबंधगा सव्वलोगे। चदु-आयु-दो-अंगोवंग-छस्संघ०-दोविहायगदि-दोसराणं बंधगा अबंधगा केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। एवं परघादुस्सासाणं। एवं कायजोगि-कम्मइग०भवसिद्धिया-अणाहारगाणं। णवरि कम्मइगस्स यं हि केवलिभंगो तं हि लोगस्स असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा। एवं

अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्र कहा है।[1]

साता-असाताके बन्धक अबन्धक जीव कितने क्षेत्रमे रहते है ? सर्व लोकमे रहते हैं। दोनों वेदनीयके बन्धक कितने क्षेत्रमे रहते है ? सर्वलोकमे। अबन्धक कितने क्षेत्रमे रहते हैं ? लोकके असख्यातवे भागमे रहते है।

विशेष—दोनोंके अबन्धक अयोगी जिन हैं। इनकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग कहा है।

इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका पृथक्-पृथक् रूपसे वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। सामान्य रूपसे शेष प्रकृतियोंका ध्रुव प्रकृतिवत् भंग जानना चाहिए। विशेष, ३ आयु, वैक्रियिकषट्क, आहारकद्विक तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक कितने क्षेत्रमे रहते हैं ? लोकके असंख्यातवे भागमे रहते है। अबन्धक सर्वलोकमे रहते है।

४ आयु, २ अगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति और २ स्वरोंके बन्धक, अबन्धक कितने क्षेत्रमे रहते हैं ? सर्वलोकमे रहते हैं। इसी प्रकार परघात तथा उच्छ्वास प्रकृतिमें भी लगा लेना चाहिए।

इसी प्रकार काययोगी, कार्मण[2] काययोगी, भव्यसिद्धिकों तथा अनाहारकोंमे जानना चाहिए। विशेष यह है कि कार्मण काययोगीमे जो केवलीका भंग है, उसमे लोकका असंख्यात बहुभाग अथवा सर्वलोकप्रमाण क्षेत्र जानना चाहिए।

विशेषार्थ—कार्मण-काययोग चारों गतिसम्बन्धी विग्रहगतिमे, प्रतर-लोक-समुद्घात युक्त केवलीके होता है, "कार्माणकाययोगः स्यात् स चतुर्गतिविग्रहकाले सयोगस्य प्रतरलोक-पूरणकाले च भवति" [गो० जी०,टी० पृ० ११२५, गा० ६८४] प्रतर समुद्घातमे लोकका असंख्यात बहुभाग, लोकपूरण समुद्घातमे नामानुसार लोकपूर्णता होनेसे सर्वलोक क्षेत्र कहा है।

१. पदरसमुग्घादे लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु अवट्ठाणं होदि। वादवलएसु जीवपदेसाणामभावादो। लोगपूरणसमुग्घादे सव्वलोगे अवट्ठाणं होदि।—खु० ३११। २ "कम्मइगकायजोगिसु सजोगिकेवली केवडिखेत्ते लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु, सव्वलोगे वा।"— षट्खं०-खु० बं० ४०, ४२। भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। अणाहारगकेवडिखेत्ते ? सव्वलोए॥ १०७, १०८, १२३, १२४।

ओरालियसरीर-ओरालियमिस्स-अचक्खुदंसण-आहारग त्ति। णवरि केवलिभंगो णत्थि।

१८७. आदेसेण णेरइएसु–सव्वे भंगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे। एवं सव्वणेरइएसु, सव्वपंचिंदिय-तिरिक्ख-मणुस-अपज्जत्त-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-तस-अपज्जत्त-बादर-पुढवि० आउ० तेउ० बादरवणप्फदि-पत्तेय० पज्जत्ता-पंचमण० पंचवचि० [वेउव्विय] वेउव्वियमिस्स० आहार० आहारमिस्स० इत्थि० पुरिस० विभंग० आभिणि० सुद० ओधि० मणपज्जव० सामाइय० छेदोव० परिहार० सुहुमसंप० संजदासंज० चक्खुदं० ओधिदंसण-तेउलेस्सा-पम्मलेस्सा-वेदगसम्मा० उवसमसम्मा० सासण० सम्मामिच्छाइट्ठि सण्णि त्ति। तिरिक्खेसु–धुविगाणं बंधगा केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। अबंधगा

इसी प्रकार औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्र काययोगी, अचक्षुदर्शनी तथा आहारकमें जानना चाहिए। विशेष यह है कि इसमें केवलीका भंग नहीं है।[1]

विशेषार्थ—औदारिककाययोगी स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषाय तथा मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा सर्वलोकमें रहते हैं। विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवे भागमें, तिर्यग्लोकके संख्यातवे भागमे और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमे रहते हैं। वैक्रियिक समुद्घात, तैजससमुद्घात और दण्डसमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव चार लोकोंके असंख्यातवे भागमे और अढाई द्वीपसे असंख्यात गुणे क्षेत्रमे रहते हैं। इतना विशेष है कि तैजससमुद्घातको प्राप्त उक्त जीव मानुषक्षेत्रके संख्यातवे भागमे रहते हैं। यहाँ कपाटप्रतर तथा लोकपूरण और आहारक समुद्घात पद नहीं हैं। औदारिककाययोगीके उपपाद नहीं है।

१८७ [2]आदेशसे – नारकियोंमें सर्व भग लोकके असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं। इसी प्रकार सर्व नारकी जीवोंमें जानना चाहिए। सर्व पचेन्द्रिय-तिर्यंच-मनुष्यके अपर्याप्तक, संपूर्ण देव, सर्व विकलेन्द्रिय, त्रस, इनके अपर्याप्त, बादर-पृथ्वी-जल-अग्नि, बादर वनस्पति प्रत्येक, इनके पर्याप्तक, ५ मनयोगी, ५ वचनयोगी, [वैक्रियिक] वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र योगी, स्त्री-पुरुषवेद, विभंगज्ञान सुमति, सुश्रुत, अवधि-मन पर्ययज्ञान, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, संयतासंयत, चक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, तेज-पद्मलेश्या, वेदकसम्यक्त्वी, उपशमसम्यक्त्वी, सासादन सम्यक्त्वी, मिश्रसम्यक्त्वी तथा संज्ञीपर्यन्त इसी प्रकार है। अर्थात् यहाँ क्षेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग है।[3]

---

१ कायजोगी–ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोए। ओरालियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोए। उववादं णत्थि। अचक्खुदंसणी असजदभंगो। असंजदा णवुंसयभगो। णवुंसयवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोए। आहाराणुवादेण आहारा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते सव्वलोगे॥ —खुद्दाबंध,खेत्ताणुगम। २ "आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्माइट्ठित्ति केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। एव सत्तसु पुढवीसु णेरइया।" –ध० टी०,खे० सू० ५, ६,। ३ पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता-पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणी पंचिदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? (६) लोगस्स असखेज्जदिभागे (७)। मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। असंखेज्जेसु वा भाएसु सव्वलोगे वा। मणुस-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स

णत्थि। सादासादबंधगा अबंधगा केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। दोण्णं वेदणीयाणं

विशेषार्थ—'धवलाटीकामे लिखा है—"णेरइया सव्वपदेहि चदुण्णं लोगाणमसंखेज्जदि-भागे होंति माणुसलोगादो असंखेज्जगुणे" [खु० बं०,पृ० ३०१] नारकी जीव सर्वपदोंसे ऊर्ध्व-लोक, मध्यलोक, अधोलोक, सामान्यलोक रूप चार लोकोंके असंख्यातवे भागमे तथा मनुष्य-लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते है। इनमें वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समु-द्घात होते हैं। तैजस, आहारक तथा केवलसमुद्घात नहीं होते, क्योंकि उनका असंयमियोंमें असद्भाव है।

तिर्यंचोंमें[1]—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमे। अबन्धक नहीं हैं। साता और असाताके बन्धक,अबन्धक कितने क्षेत्रमे रहते हैं ? सर्वलोकमें।

असंखेज्जदिभागे। (८–१४)। देवगदीए देवा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। (१५,१६) बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय तस्सेव पज्जत्ता-अपज्जत्त सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे (२४,२५)। तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ता पंचिंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताण भंगो (५१)। पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे, असखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा। पंचिंदिय-अपज्जत्ता सत्थाणेण, समुग्घादेण, उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे (२६-३१)। बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरा, तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे (३४-३७)। जोगाणुवादेण पंचमणजोगि पंचवचिजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे (५२,५३) उववादं णत्थि, मणजोग-वचिजोगाण विवक्खादो — खु० बं०,ध० टी०,पृ० ३४१। वेउव्विमिस्सकायजोगी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। समुग्घात-उववादा णत्थि (६२, ६३, ६४)। आहारकायजोगी वेउव्वियकायजोगिभंगो। वेउव्वियकायजोगीसत्थाणेण केवडिखेत्त ? लोगस्स असखेज्जिदिभागे। उववादो णत्थि (६५, ५९—६१) आहारमिस्सकायजोगी वेउव्वियमिस्सभंगो (६६)। वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे (७०,७१) विभंगणाणि-मणपज्जवणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। उपवाद णत्थि (८२,८३) एदेसिं दोण्हं णाणाणामपज्जत्तकाले संभवाभावादो। आभिणिबोहियसुद-ओधिणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। (८४, ८५) सामाइयच्छेदोवट्ठावण-सुद्धिसजदा परिहार-सुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइय सुद्धिसजदा संजदासंजदा मणपज्जवणाणिभगो (९२)। दसणाणुवादेण चक्खु-दंसणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। (९४,९५) उववाद सिया अत्थि, सिया णत्थि। लद्धि पडुच्च अत्थि, णिव्वत्तिपडुच्च णत्थि। जदि लद्धि पडुच्च णत्थि केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। (९६,९७)। ओधिदंसणी ओधिणाणिभगो ॥९९॥ तेउ-पम्मलेस्सिया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे (१०२, १०३)। वेदगसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सासण-सम्माइट्ठी सत्थाणेण समुग्घाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। सम्मामिच्छाइट्ठी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे (११२-११५) सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। (११७, ११८) — खुद्दाबन्धसूत्राणि।

१. तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोए।

बंधगा सव्वलोगे। अबंधगा णत्थि। एवं सव्वाणं पगदीणं। णवरि तिण्णि आयु वेउव्वियछक्कस्स बंधगा केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अबंधगा सव्वलोगे। चदुआयु० दोअंगो० छस्संघ०परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० दोसराणं बंधगा अबंधगा केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। थीणगिद्धितियं मिच्छत्तं अट्ठकसा० ओरालि० बंधगा केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे। एवं मदि० सुद० असंज० तिण्णिलेस्सा-अब्भवसिद्धि० मिच्छादि० असण्णि त्ति।

१८८. मणुस०३-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तेजाक०

दोनों वेदनीयोंके बन्धक सर्वलोकमें रहते हैं, अबन्धक नहीं हैं। इसी प्रकार सर्व प्रकृतियोंमें जानना चाहिए। विशेष यह है कि ३ आयु, वैक्रियिकषट्कके बन्धक कितने क्षेत्रमें रहते है? लोकके असंख्यातवे भागमे रहते हैं; अबन्धक सर्वलोकमे रहते हैं। ४ आयु, २ अंगोपांग, ६ संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, २ स्वरके बन्धक, अबन्धक कितने क्षेत्रमें रहते है? सर्वलोकमें। स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, ८ कषाय तथा औदारिक शरीरके बन्धक कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्वलोकमे रहते हैं। अबन्धक लोकके असंख्यातवे भागमे रहते हैं।

विशेष—इनके अबन्धक देशसंयमी होंगे; उनका क्षेत्र यहाँ कहा है।[1]

विशेषार्थ—तिर्यंचोंमें स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत् स्वस्थान, वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद ये पद होते है; शेष नहीं होते हैं। तिर्यंचोंका क्षेत्र सर्वलोक कहा है, इसपर धवलाटीकाकार कहते हैं, सर्वलोकमे तिर्यंच रहते हैं, क्योंकि वे अनन्त हैं। अनन्त होनेसे वे लोकमें नहीं समाते ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि लोकाकाशमे अनन्त अवगाहन शक्ति सभव है। विहारवत्स्वस्थान क्षेत्र तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग और अढाई द्वीपसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि त्रस पर्याप्त तिर्यंचोका लोकके संख्यातवें भागमे विहार पाया जाता है।

वैक्रियिक समुद्घातका क्षेत्र चार लोकोंके असंख्यातवे भाग और मनुष्यक्षेत्रसे असंख्यातगुणा है, क्योंकि तिर्यंचोंमें विक्रिया करनेवाली राशि पल्योपमके असंख्यातवे भाग मात्र घनांगुलोंसे गुणित जगश्रेणी प्रमाण है, 'गुरूवदेसादो' क्योंकि ऐसा गुरुका उपदेश है। (खु० ध० पृ० ३०५)

मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, असंयम, कृष्णादि तीन लेश्या, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि तथा असंज्ञी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए।[2]

१८८. मनुष्यत्रिक (मनुष्यसामान्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनियों) में –५ ज्ञानावरण,

---

१ षट्खं०, खे० सू० ८। २. णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी णवुंसयवेदभंगो (सूत्र ८०) णवुंसयवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते? सव्वलोए (७१, ७२)। असंजदा णवुंसयभंगो (९३)। लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया असंजदभंगो (१०१)। भवियाणुवादेण भवसिद्धिया-अभवसिद्धिया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते? सव्वलोगे (१०६, १०७)। मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो (११६)। असण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। —सू० ११६, १२०, खु० बं०, पृ. ३६५।

आहारदुग० वण्ण०४ अगु०४ आदाउज्जो० णिमिणतित्थयर-पंचंतराइगाणं बंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे । अबंधगा केवलिभंगो कादव्वो । सादबंधगा केवलिभंगो । अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे । असादबंधगा लोगस्स असंखेज्जदि-भागे । अबंधगा केवलिभंगो । दोण्णं पगदीणं बंधगा- केवलिभंगो । अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो (गे) । इत्थि० पुरिस० णवुंसग-बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे । अबंधगा केवलिभंगो । एवं सव्वपगदीणं वेदभंगो कादव्वो । एवं पंचिंदिय-तस० तेसिं

९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भयद्विक, तैजस, कार्मण, आहारकद्विक, वर्ण ४, अगुरु-लघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर तथा पाँच अन्तरायोंके बन्धक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवे भागमे रहते हैं। अबन्धकोंमें केवलीके समान भंग जानना चाहिए अर्थात् लोकका असंख्यातवॉ भाग, असख्यात बहुभाग अथवा सर्वलोक है ।

विशेष—केवलीभंगमें लोकका असख्यातवॉ भाग क्षेत्र दंड तथा कपाटसमुद्घातकी अपेक्षा है। असख्यात बहुभाग क्षेत्र प्रतरसमुद्घातकी तथा सर्वलोक लोकपूरणसमुद्घातकी अपेक्षा है।

साता वेदनीयके बन्धकोंमें केवलीके समान भंग है। अबन्धकलोकके असंख्यातवे भागमे रहते है।

असाताके बन्धक लोकके असंख्यातवे भागमे रहते है। अबन्धकोंमें केवलीके समान भग है। दोनो प्रकृतियोके बन्धकोंमे केवलीके समान भंग है। अबन्धकोंमे लोकका असंख्या-तवॉ भाग भग है। स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेदके बंधक लोकके असंख्यातवे भागमे पाये जाते हैं। अबंधकोंमे केवलीके समान भंग जानना चाहिए। इस प्रकार सर्व प्रकृतियोंमे वेदके समान भग है।

विशेषार्थ—वेदना, कषाय, वैक्रियिक, तैजस, और आहारक समुद्घातको प्राप्त मनुष्य, मनुष्य-पर्याप्त तथा मनुष्यनी चार लोकोंके असंख्यातवे भागमे रहते है। इतना विशेष है कि मनुष्यनियोंमे तैजस तथा आहारक समुद्घात नहीं होते। मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त उक्त तीन प्रकारके मनुष्य तीन लोकोंके असंख्यातवे भागमे तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोकके असंख्यातगुणे क्षेत्रमे रहते है, क्योंकि यहॉ मनुष्य-अपर्याप्तकोंका क्षेत्र प्रधान है। इतना विशेष है कि मनुष्य-पर्याप्त और मनुष्यनियोंका मारणातिक क्षेत्र चार लोकोंके असंख्यातवे भाग तथा मानुष क्षेत्रसे असंख्यातगुणा है। इसी प्रकार दण्ड और कपाट क्षेत्रोंका भी प्रमाण कहना चाहिए। इतना विशेष है कि कपाट क्षेत्र तिर्यग्लोकके सख्यातवे भाग प्रमाण है। प्रतरसमु-द्घातकी अपेक्षा लोकके असख्यात बहुभागोंमे अवस्थान होता है, क्योंकि "वादवलएसु जीव-पदेसाणमभावादो' वातवलयोंसे जीवप्रदेशोंका अभाव रहता है। लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षा सर्वलोकमे अवस्थान होता है, क्योंकि इस अवस्थामे जीवप्रदेशोंसे रहित लोकाकाशके प्रदेशोंका अभाव है (जीवपदेस-विरहिद-लोगागास-पदेसा भावादो)। (खुद्दाबंध, टीका पृ० ३१०)।

१ मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदि-भागे । समुग्धादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे । असंखेज्जेसु वा भाएसु सव्वलोगे वा —सू० ८-१२, खु० बं०। २ ध० टी०, क्षे०, पृ० ४८।

चेव पज्जत्ता। एवं चेव अवगदवेद-अकसाइ० केवलणा० संजदा-यथाक्खाद० केवल-दंसण० सुक्कलेस्सा-सम्मादिट्ठि-खइगसम्मादिट्ठि त्ति।

१८९. एइंदिय-सव्वसुहुम० पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वणप्फदिणिगोद-तेसिं च सव्वसुहुम० मणुसा० बंधगा केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अबंधगा केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। सेसाणं सव्वे भंगा सव्वलोगे। बादर-एइंदिय-पज्जत्ता-अपज्जत्ता-पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तिण्णिसरीर-वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत० बंधगा सव्वलोगे। अबंधा (धगा) णत्थि। सादासाद-बंधगा अबंधगा केव० खेत्ते? सव्वलोगे। दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगे। अबंधगा णत्थि।

पचेन्द्रिय-त्रस तथा उन दोनोंके पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। अपगतवेद, अकषाय, केवलज्ञान, संयम, यथाख्यात, केवलदर्शन, शुक्ललेश्या, सम्यक्दृष्टि, क्षायिक-सम्यग्दृष्टि पर्यंत इसी प्रकार जानना चाहिए[1]।

१८९. एकेन्द्रिय, सर्वसूक्ष्म, पृथ्वी, जल, तेज, वायु (?) वनस्पति-निगोद तथा उनके सर्वसूक्ष्म जीवोंमें मनुष्यायुके बंधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। अबंधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्वलोकमें रहते हैं[3]। शेष प्रकृतियोंके संपूर्ण भंगोंमें सर्वलोक प्रमाण क्षेत्र जानना चाहिए। बादर-एकेन्द्रिय-पर्याप्तक तथा बादर-एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण,[4] मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, ३ शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बंधकोंका सर्वलोक क्षेत्र है। अबंधक नहीं हैं। साता-असाताके बंधक-अबधक कितने क्षेत्रमें पाये जाते है? सर्वलोकमें। दोनोंके बंधक सर्व-

---

१ पंचिदिय पंचिदियपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण केवडि-खेत्ते? लोगस्स असखेज्जदिभागे, असखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा (सू० २६-२९) तसकाइय-तसकाइय-पज्जत्त-अपज्जत्ता पंचिदिय पज्जत्त-अपज्जत्ताण भगो (सू० ५१)। अवगदवेदा सत्थाणेण केवडिखेत्ते? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण केवडिखेत्ते? लोगस्स असखेज्जदिभागे, असखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा। उववाद णत्थि (सू० ७३-७७)। अकसाई अवगदवेदभगो (७९)। केवलणाणी सत्थाणेण केवडिखेत्ते? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण केवडिखेत्ते? लोगस्स असखेज्जंदिभागे असखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा। उव-वाद णत्थि (सू० ८६-९०)। सजमाणुवादेण सजदा जहाक्खादविहार सुद्धिसजदा अकसाईभगो। (९१) केवलदसणी केवलणाणिभगो। (सू० १००)। सुक्कलेस्सिणा सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते? लोगस्स अस-खेज्जदिभागे समुग्घादेण लोगस्स असखेज्जदिभागे असखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा। (सू० १०४-१०६) सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्मादिट्ठी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समु-ग्घादेण लोगस्स असखेज्जदिभागे असखेज्जेसु वा भागेसु, सव्वलोगे वा (सू० १०९-१११)। २ "तेजकाय, वायुकायमे मनुष्यायुका बध नही होता।"—गो० क०, गा० ११४। ३ इदियाणुवादेण एइदिया सुहुमेइदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते? सव्वलोगे। —खु० बं०, सू० १८, १९। ४ बादरेइदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते? लोगस्स सखेज्जदिभागे समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते? सव्वलोए। —सू० २२, २३।

इत्थि-पुरिस० बंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स संखेज्जदिभागे। अबंधगा सव्वलोगे। णवुंस० बंधगा केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागे। तिण्णि-वेदाणं बंधगा सव्वलोगे। अबंधगा णत्थि। एवं इत्थिभंगो चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ० आदाउज्जो० दोविहा० तस-बादर-दोसर-सुभग-आदेज्ज-जसगित्ति। णवुंसगभंगो एइंदि० हुंडसंठा० थावर-दूभग-अणादेज्ज-अजसगित्ति। हस्सादि४ बंधगा अबंधगा सव्वलोगे। हस्सादिदोयुगलं बंधगा सव्वलोगे, अबंधगा णत्थि। एवं परघा-दुस्सास-पज्जत्ता-अपज्जत्त-पत्तेय-साधारण-थिराथिरसुभासुभा त्ति। तिरिक्खायु-बंधगा केवडिखेत्ते ? लोगस्स संखेज्जदिभागे। अबंधगा सव्वलोगे। मणुसायु-बंधगा केवडि-खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। अबंधगा सव्वलोगे। दोआयु तिरिक्खायु-भंगो। तिरिक्खगदितियं बंधगा सव्वलोगे। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे। मणुसगदितियं मणुसायुभंगो। दोगदि-दोआणुपुव्वि-दोगोदं बंधगा के० खेत्ते ? सव्वलोगे। अबंधगा णत्थि। सुहुमबंधगा सव्वलोगे। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदणीयभंगो। एवं बादरवाउ० बादरवाउ० अपज्जत्ताणं। एवं चेव बादर-

लोकमें पाये जाते है; अबंधक नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बंधक कितने क्षेत्रमे है। लोकके संख्यातवे भागमे। अबंधक सर्वलोकमे है। नपुंसकवेदके बंधक कितने क्षेत्रमे है ? सर्वलोकमें। अबधक लोकके संख्यातवे भागमे पाये जाते हैं। तीनों वेदोंके बंधक सर्वलोकमें पाये जाते हैं; अबंधक नहीं है। ४ जाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपाग, ६ संहनन, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, बादर, दो स्वर, सुभग, आदेय, यश:कीर्ति पर्यन्त स्त्रीवेदके समान भंग जानना चाहिए। एकेन्द्रिय जाति, हुडक संस्थान, स्थावर, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्तिमें नपुंसकवेदका भंग जानना चाहिए। हास्यादि चारके बंधक-अबंधक सर्वलोकमे पाये जाते हैं। हास्यादि दो युगलोंके बंधक सर्वलोकमे पाये जाते हैं; अबंधक नहीं हैं। इस प्रकार परघात, उच्छ्वास, पर्याप्तक, अपर्याप्तक, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ पर्यन्त जानना चाहिए। तिर्यंच आयुके बंधक कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके संख्यातवे भागमे। अबंधक सर्वलोकमें पाये जाते हैं। मनुष्य आयुके बंधक कितने क्षेत्रमे पाये जाते है ? लोकके असं-ख्यातवे भागमे; अबधक सर्वलोकमे पाये जाते हैं। दो आयुमे तिर्यंच आयुका भंग जानना चाहिए। तिर्यंचगतित्रिकके बंधक सर्वलोकमें और अबंधक लोकके असंख्यातवे भागमें पाये जाते हैं। मनुष्यगतित्रिकमे मनुष्य आयुके समान भंग जानना चाहिए। २ गति, २ आनुपूर्वी, २ गोत्रके बंधक कितने क्षेत्रमे हैं ? सर्वलोकमे हैं; अबंधक नहीं है। सूक्ष्मके बंधक सर्वलोकमें और अबंधक लोकके असंख्यातवे भागमे पाये जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक और साधारणसे वेदनीयके समान भग जानना चाहिए।

विशेषार्थ—बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक, अपर्याप्तक जीवोंका क्षेत्र लोकका संख्यात भाग कहा है, उसका स्पष्टीकरण 'धवला' टीकामे इस प्रकार किया गया है :—

मन्दर पर्वतके मूल भागसे ऊपर शतार-सहस्रार कल्प पर्यन्त पाँच राजू ऊँची सम-चतुष्कोण लोकवाली वायुसे परिपूर्ण है। उसमें उनचास प्रतर राजुओंका यदि एक जगप्रतर प्राप्त होता है, तो पाँच प्रतर राजुओंका कितना जगत् प्रतर प्राप्त होगा? इस प्रकार फलराशिसे

पुढवि० आउ० तेउ० बादरवणप्फदि पत्तेयाणं तेसिं चेव अपज्जत्ता, बादरवणप्फदिणिगोद-पज्जत्ता-अपज्जत्ता। णवरि यं हि लोगस्स संखेज्जदिभागो तं हि लोगस्स असंखेज्जदिभागो कादव्वो। बादरवाउकाइय-पज्जत्ते सव्वे भंगा लोगस्स संखेज्जदिभागे।

एवं खेत्तं समत्तं।

गुंजित इच्छाराशिको प्रमाणराशिसे अपवर्तित करनेपर दो वटे पाँच भाग कम उनहत्तर रूपोंसे घनलोकके भाजित करनेपर लब्ध एक भाग प्रमाण प्राप्त होता है। पुनः उसमें संख्यात योजन बाहल्य रूप जग-प्रतर प्रमाण लोक पर्यन्त स्थित वात क्षेत्रको, संख्यात योजन बाहल्य-रूप जग-प्रतर प्रमाण—ऐसे बादर जीवोंके आधारभूत आठ पृथिवी क्षेत्रको और आठ पृथिवियोंके नीचे स्थिति संख्यात योजन बाहल्य रूप जग-प्रतर प्रमाण वातक्षेत्रको लाकर मिला देनेपर लोकके संख्यातवे भाग मात्र अनन्तानन्त बादर एकेन्द्रिय-पर्याप्त व बादर एकेन्द्रिय-अपर्याप्त जीवोंसे परिपूर्ण क्षेत्र होता है। इस कारण ये तीनों ही बादर एकेन्द्रिय स्वस्थानसे तीन लोकोंके संख्यात भागमें एवं मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यात गुणे क्षेत्रमें रहते हैं, ऐसा कहा है। —खु० बं०, पृ० ३२२, ३२३।

[1]बादर वायुकायिक (पर्याप्तकों) और बादर वायुकायिक अपर्याप्तकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए।[2]बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, प्रत्येक तथा इनके अपर्याप्तकोंमें एवं[3]बादर वनस्पतिकायिक-निगोदके पर्याप्त-अपर्याप्त भेदोंमें इसी प्रकार जानना जाहिए। इतना विशेष है कि जहाँ लोकका संख्यातवाँ भाग कहा है, वहाँ लोकका असंख्यातवाँ भाग करना चाहिये।[4]बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमे सम्पूर्ण भंग लोकसे संख्यातवें भाग जानना चाहिए।

इस प्रकार क्षेत्र-प्ररूपणा समाप्त हुई।

---

१. बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे।

२. बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। बादरवाउकाइया तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे। समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे। [३.] वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोए। बादर-वणप्फदिकाइया बादर-णिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे। समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोए।—३४-४६ सूत्र, खु० बं०।

४. बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? लोगस्स सखेज्जदिभागे।

[फोसणाणुगमपरूवणा]

१६०. फोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण–

[स्पर्शनानुगम]

१६० ओघ तथा आदेशसे स्पर्शानुगमका दो प्रकार निर्देश करते हैं।

विशेषार्थ—स्पर्शनके छह भेद कहे हैं— णामफोसणं, ठवणफोसणं, दव्वफोसणं, खेत्त-फोसणं, कालफोसण, भावफोसणं चेदि छव्विहं फोसणं'– नाम स्पर्शन, स्थापना स्पर्शन, क्षेत्र स्पर्शन, काल स्पर्शन, भाव स्पर्शन ये स्पर्शनके छह प्रकार हैं। इन छह स्पर्शनोंमें-से यहाँ किस स्पर्शनसे प्रयोजन है ?

समाधान—"एदेसु फोसणेसु जीवखेत्तफोसणं पयदं"—इन स्पर्शनोंमें-से यहाँ जीव द्रव्य सम्बन्धी क्षेत्र स्पर्शन प्रकृत है। शेष द्रव्योंका आकाशके साथ जो संयोग है वह क्षेत्र स्पर्शन है।

शंका—अमूर्त आकाशके साथ शेष अमूर्त और मूर्त द्रव्योंका स्पर्श कैसे संभव है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अवगाह्य-अवगाहक भावको ही उपचारसे स्पर्श संज्ञा प्राप्त है। अथवा सत्त्व, प्रमेयत्व आदिके द्वारा मूर्त द्रव्यके साथ अमूर्त द्रव्योंकी परस्पर समानता होनेसे भी स्पर्शका व्यवहार बन जाता है। (जी० फो० टी०)

पूज्यपाद स्वामीने स्पर्शनको त्रिकाल गोचर कहा है, किन्तु 'धवला'-टीकाकारने लिखा है-'जो भूतकालमें स्पर्श किया गया और वर्तमानमें स्पर्श किया जा रहा है, वह स्पर्शन कह-लाता है। (अस्पर्शि, स्पृश्यत इति स्पर्शनम्)

सब द्रव्योंको निवासभूमि प्रदान करनेकी क्षमता आकाश द्रव्यमें है। यद्यपि एवंभूत-नयकी अपेक्षा सर्व द्रव्य स्वप्रतिष्ठ हैं, किन्तु धर्मादिका अधिकरण आकाश है यह कथन व्यव-हार नयसे किया गया है। जैसे कहा जाता है "क्व भवानास्ते ?" आप कहाँ रहते हैं ? 'आत्मनि' – मैं अपनी आत्मामें रहता हूँ, क्योंकि एक वस्तुकी अन्य वस्तुमें वृत्ति नहीं पायी जाती है। यदि एक वस्तुकी अन्य पदार्थमें वृत्ति हो, तो आकाशमें ज्ञानादिक तथा रूपादिककी वृत्ति हो जाये (स० सि० ५८)[1]

जो व्यक्ति एकान्त नयका पक्ष पकड़ता है, वह तत्त्वको नहीं समझ पाता है। पूज्यपाद स्वामी इन सप्त नयोंपर विवेचन करते हुए कहते हैं "एते गुणप्रधानतया परस्परतन्त्राः सम्यग्-दर्शनहेतवः स्वतन्त्राश्चासमर्थाः" (स० सि० पृ० ५९) ये नय मुख्य तथा गौणरूपता धारण करते हुए सम्यग्दर्शनके हेतु हैं। स्वतन्त्रता धारण करनेपर ये असमर्थ हो जाते हैं। इसीसे सर्व द्रव्योंको अवकाश देनेवाले आकाश द्रव्यके विषयमें कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं :

---

१ धर्मादीनां पुनरधिकरणमाकाशमित्युच्यते व्यवहारनयवशात्। एवभूतनयापेक्षया तु सर्वाणि द्रव्याणि स्वप्रतिष्ठान्येव तथा चोक्त क्व भवानास्ते ? आत्मनीति धर्मादीनि लोकाकाशान्न बहि सन्तीत्येतावदत्राधाराधेय-कल्पना साध्य फलम्। –स० सि०,पृ० १२९, अध्याय ५, सूत्र १२। यथा क्व भवानास्ते ? आत्मनीति कुतः ? वस्त्वन्तरे वृत्त्यभावात्। यद्यन्यस्यान्यत्र वृत्ति स्यात्, ज्ञानादीना रूपादीना चाकाशे वृत्ति स्यात्–(पृ० ५८, स० सि०,अ० १, सू० ३३)।

पंचणा० छदंसणा० अट्ठक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइ-गाणं बंधगेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो । अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदि-भागो, असंखेज्जा वा भागा वा, सव्वलोगो वा । सादबंधगा अबंधगा केवडि[यं]खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो । असादबंधगा अबंधगा केवडि खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो ।

सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पोग्गलाणं च ।

जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं ॥९०॥ पंचास्तिकाय ।

जो सर्व जीवोंको, पुद्गल आदि शेष द्रव्योंको स्थान देता है, वह समस्त आकाश इस लोकमें होता है ।

इस स्पर्शनानुयोगद्वारको लक्ष्य कर धवलाकार यह शंका-समाधान करते हैं :

शंका—यहाँ स्पर्शनानुयोग द्वारमें वर्तमानकाल सम्बन्धी क्षेत्रकी प्ररूपणा भी सूत्रनिबद्ध ही देखी जाती है, इसलिए स्पर्शन अतीत काल विशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला नहीं है ? किन्तु वर्तमान और अतीनकालसे विशिष्ट क्षेत्रका प्रतिपादन करनेवाला है ।

समाधान—यहाँ स्पर्शनानुयोगद्वारमें वर्तमानक्षेत्रकी प्ररूपणा नहीं की जा रही है, किन्तु पहले क्षेत्रानुयोगद्वारमें प्ररूपित उस उस वर्तमान क्षेत्रको स्मरण कराकर अतीतकाल विशिष्ट क्षेत्रके प्रतिपादनार्थ उसका ग्रहण किया गया है । अतएव स्पर्शनानुयोग द्वार अतीतकालसे विशिष्ट क्षेत्रका ही प्रतिपादन करनेवाला है यह सिद्ध हुआ । (जी० फो० टीका पृ० १४६)[1]

ओघसे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरणादि ८ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सर्वलोक स्पर्शन किया है । अबन्धकोंने लोकका असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग वा सर्वलोक स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—[2]ज्ञानावरणादिके अबन्धक उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय तथा अयोगकेवली-की अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन कहा है । सयोगकेवलीकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग है । प्रतरसमुद्घातगत सयोगकेवलीकी अपेक्षा लोकका असंख्यात बहुभाग तथा लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन है ।

सा(ता)के बन्धकों-अबन्धकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सर्वलोक । असाताके

---

१. त्रिकालविषयार्थोपश्लेषण स्पर्शन मतम् । क्षेत्रादन्यत्वभाग्वर्तमानार्थश्लेषलक्षणात् ॥४१॥" – त० श्लो०,पृ० १६० । 'एदेसु फोसणेसु जीवखेत्तफोसणेण पयद । अस्पर्शि स्पृश्यत इति स्पर्शनम् । फोसणस्स अणुगमो फोसणाणुगमो, तेण फोसणाणुगमेण । णिद्देसो कहण वक्खाणमिदि एयट्ठो । सो दुविहो जहा पयई । ओघेण पिंडेण अभेदेणेत्ति एयट्ठो । आदेसेण भेदेण विसेसेणेत्ति समाणट्ठो ।"– ध० टी०,फो०,पृ० १४४, १४५ । क्षेत्र निवासो वर्तमानकालविषय । तदेव स्पर्शन त्रिकालगोचरम् स० सि०,५-१० । निर्ज्ञातसरूपस्य निवासविप्रतिपत्ते क्षेत्राभिधानम् । अवस्थाविशेषस्य वैचित्र्यात् त्रिकालविषयोपश्लेप निश्चयार्थं स्पर्शनम् । अवस्थाविशेषो विचित्रस्त्र्यस्र – चतुरस्रादिस्तस्य त्रिकालविषयमुपश्लेषणं स्पर्शनम् । कस्यचित् क्षेत्रमेव स्पर्शनं कस्यचित् द्रव्यमेव, कस्यचिद्रज्जवः षडष्टौ वेति । एक-सर्वजीवसन्निधौ तन्निश्चयार्थं तदुच्यते—त० रा०,पृ० ३० । २. "पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली हि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । सजोगिकेवली हि केवडिय खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, असखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा ।"–षट्खं०,फो०,सू० १७०, १७२ । "पंदरगदो केवली केवडिखेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु । लोगपूरणगदो केवली केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे ।"–ध० टी०,फो०,पृ० ५०, ५४ ।

दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो, अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो। थीणगिद्धितिय-अणंताणु०४ बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागा वा केवलिभंगो। मिच्छत्त-बंधगा सव्वलोगो, अबंधगा अट्ठबारस-चोद्दसभागा वा केवलिभंगो वा। अपच्चक्खाणा० ४ बंधगा सव्वलोगो, अबंधगा छचोद्दसभागा वा केवलिभंगं च। इत्थि० पुरिस०

बन्धकों, अबन्धकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है? सर्वलोक। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंने सर्वलोक स्पर्श किया है। अबन्धकोंने लोकका असख्यातवॉ भाग स्पर्श किया है।

विशेष—दोनोंके अवन्धक अयोगकेवलियोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवॉ भाग है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुवन्धी ४ के बन्धकोंके सर्वलोक, अबन्धकोंके अष्ट चतुर्दश भाग अर्थात् ८/१४ अथवा केवली भंग है। अर्थात् लोकका असंख्यातवॉ भाग, असंख्यात बहु-भाग अथवा सर्वलोक है।

विशेषार्थ—स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनन्तानुबन्धी ४ के अवन्धक सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंकी अपेक्षा ८/१४ भाग कहा है। विहारवत्-स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक समुद्धातकी अपेक्षा मिश्र गुणस्थानवर्ती जीवोंने देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक समुद्धातकी अपेक्षा असंयतसम्य-ग्दृष्टियोंने ऊपर ६ राजू तथा नीचे दो, इस प्रकार देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। मिश्रगुण-स्थानमें मरणका अभाव होनेसे मारणान्तिक समुद्धातका वर्णन नहीं किया गया है। (ध० टी० पृ० १६६, १६७)।

मिथ्यात्वके बन्धकोंने सर्वलोक स्पर्शन किया है। अबन्धकोंमे ८/१४, १२/१४ अथवा केवली-भंग अर्थात् लोकका असंख्यातवॉ भाग, असंख्यात बहुभाग अथवा सर्व लोक है।[1]

विशेषार्थ—मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंने विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक समुद्धानकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्धातकी अपेक्षा १२/१४ भाग स्पर्श किया है। यह इस प्रकार है कि सुमेरु पर्वतके मूलभागसे लेकर ऊपर ईषत्प्राग्भार पृथ्वी तक सात राजू होते है और नीचे छठी पृथ्वी तक ५ राजू होते हैं। इस प्रकार १२/१४ भाग है। सातवीं पृथ्वीमे मिथ्यात्व गुणस्थानमे ही मरण होनेसे छठवी पृथ्वी तकका ही उल्लेख किया गया है। (ध० टी०, पृ० १६२)

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंने सर्वलोक, अबन्धकोंने ६/१४ भाग वा केवलीभंग प्रमाण क्षेत्र स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक देशसंयमी जीवोंने अतीत कालकी अपेक्षा मारणान्तिक समुद्धातकी दृष्टिसे देशोन ६/१४ भाग स्पर्श किया। यहॉ सुमेरुसे नीचेके एक हजार योजनसे और आरण-अच्युत विमानोके उपरिम भागसे कम करना चाहिए (पृ० १७०)

पूर्वमे वर्तमानकाल विशिष्ट क्षेत्रका प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यह सूत्र (८) अतीत काल सम्बन्धी है, यह बात जानी जाती है, किन्तु यह अनागत अर्थात् भविष्यकाल सम्बन्धी नहीं है; क्योंकि उसके साथ व्यवहारका अभाव है। अथवा पीछेके सभी सूत्र अतीत

---

१ ओघेण मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो। सासणसम्मादिट्ठीहिं केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठ बारह चोद्दसभागा वा देसूणा। सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा—जी०, फो०, सू० २-६।

णवुंसग० बंधगा अवंधगा सव्वलोगो। तिण्णं वेदाणं बंधगा सव्वलोगो, अबंधगा केवलिभंगो। वेदाणं भंगो हस्सादिदोयुगलं पंचजादि छस्संठा० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदं च। वेदणीयायु (?) आहारदुग-बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अबंधगा सव्वलोगो। तिरिक्खायुबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। मणुसायुबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठचोद्दसभागा वा सव्वलोगो वा। अबंधगा सव्वलोगो। चदुआयुबंधगा अबंधगा केव० खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो। णिरयदेवगदिबंधगा के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, छचोद्दसभागा वा। अबंधगा सव्वलोगो। तिरिक्खमणुसगदिबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। चदुगदिबंधगा सव्वलोगो। अबंधगे केवलिभंगो।

और अनागतकाल विशिष्ट क्षेत्रोंकी प्ररूपणा करनेवाले है, ऐसा निश्चय करना चाहिए, क्योंकि भूतकाल और भविष्यकालमें स्पर्शनकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है। धवलाटीकाके ये शब्द महत्त्वपूर्ण हैं-"अधवा अदीदाणागद काल विसिट्ठखेत्ताणं परूवणाणि पच्छिमसव्वसुत्ताणि त्ति णिच्छओ कायव्वो उभयत्थ विसेसाभावादो" ध० टी०,पृ० १६८। इस कथनने सर्वार्थसिद्धि आदिके आर्ष वाक्योंका समर्थन कर दिया है, जिनमें "स्पर्शनं त्रिकालगोचरम्" स्पर्शनको त्रिकालगोचर कहा गया है।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदके बन्धकों, अबन्धकोंने सर्वलोक स्पर्शन किया है। तीनों वेदोंके बन्धकोंने सर्वलोक स्पर्श किया है। इनके अबन्धकोंमें केवलीके समान भंग है।

विशेषार्थ—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदके अबन्धकोंका प्रत्येक वेदकी अपेक्षा अबन्धकोंके सर्वलोक स्पर्शन कहा है, कारण यहाँ एक वेदका अबन्ध होते हुए अन्य वेदका बन्ध हो जाता है। वेदत्रयके अबन्धक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानसे अयोगकेवली पर्यन्त हैं। उनकी अपेक्षा केवली भंग अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग अथवा सर्वलोक स्पर्श कहा है।

हास्य, रति, अरति, शोक, एकेन्द्रियादि पंच जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि नव-युगल तथा २ गोत्रमें वेदके समान भंग है। वेदनीय, आयु, आहारकद्विकके बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग है; अबन्धकोंके सर्वलोक है। तिर्यंचायुके बन्धकों-अबन्धकोंके सर्वलोक है। मनुष्यायुके बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग, ८/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके सर्वलोक है।

विशेष—यहाँ ऊपरके ६ राजू तथा नीचेके २ राजू; इस प्रकार ८/१४ राजू स्पर्शन है।

चार आयुके बन्धकों, अबन्धकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? सर्वलोक। नरकगति, देवगतिके बन्धकोंने कितना क्षेत्र स्पर्शन किया है ? लोकका असंख्यातवाँ भाग वा ६/१४ भाग है। अबन्धकोंके सर्वलोक है।

विशेष—यहाँ सप्तम नरकके स्पर्शनकी अपेक्षा नरकगतिका स्पर्शन ६/१४ है तथा सोलहवें स्वर्गके स्पर्शनकी अपेक्षा देवगतिका स्पर्शन ६/१४ कहा है।

तिर्यंचगति-मनुष्यगतिके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक है। चारों गतियोंके बन्धकोंका

---

१ 'असजदसम्माइट्ठीहि विहारवादसत्थाण-वेदणकसाय-वेउव्विय मारणंतियसमुग्घादगदेहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा उवरि छ रज्जू, हेट्ठा दो रज्जू त्ति।"-ध० टी०,फो०,पृ० १६७।

एवं चदुआणुपुव्वि०। ओरालि० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा बारहचोद्दसभागो वा, केवलिभंगं च। वेउव्वियस० बंधगा बारह०। अवंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अवंधगा केवलिभंगो। ओरालिय० अंगो० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। वेउव्विय० अंगो० बंधगा बारहभागा वा। अवंधगा सव्वलोगो। दोअंगो० बंधगा अवंधगा सव्वलोगो। छस्संघ० परघादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहा० दोसरबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। तित्थय० बंधगा अट्ठचोद्दसभागो वा। अबंधगा सव्वलोगो।

१६१. आदेसेण-णेरइएसु धुविगाणं बंधगा छचोद्दसभागो, अबंधगा णत्थि।

सर्वलोक है। अवन्धकोंका केवली भंग है। चार आनुपूर्वीमें इसी प्रकार जानना चाहिए। औदारिक शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है। अवन्धकोंके $\frac{12}{14}$ भाग, वा केवली भंग है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका $\frac{12}{14}$ भाग, अवन्धकोंका सर्वलोक है। दोनों शरीरोंके बन्धकोंका सर्वलोक है, अवन्धकोंका केवली भंग है।

विशेष—औदारिक शरीरका बन्ध चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त, वैक्रियिक शरीरका अपूर्वकरण छठे भाग पर्यन्त बन्ध होता है। दोनोंके अबन्धकोंके अयोगिकेवली पर्यन्त लोकका असंख्यातवाँ भाग है, सयोगी जिनकी अपेक्षा लोकका असंख्यात बहुभाग तथा सर्वलोक भी भंग है।

औदारिक अंगोपांगके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंका $\frac{12}{14}$ है, अबन्धकोंके सर्वलोक है। दोनों अंगोपांगोंके बन्धकों, अवन्धकोंका सर्वलोक है।

विशेष—वैक्रियिक शरीरके बन्धकों तथा औदारिक शरीरके अबन्धकोंका स्पर्शन $\frac{12}{14}$ कहा है, किन्तु उसी प्रकार वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकों तथा औदारिक अंगोपांगके अबन्धकोंका $\frac{12}{14}$ नहीं कहा है। इसका कारण यह है कि जिस प्रकार औदारिक शरीरका अबन्धक वैक्रियिक शरीरका बन्धक होता है अथवा वैक्रियिक शरीरका अबन्धक औदारिकका बन्धक होता है, वैसा नियम औदारिक अंगोपांग और वैक्रियिक अंगोपांगका नहीं है। एकेन्द्रियमें अंगोपांगका अभाव होनेसे शरीरके समान यहाँ व्याप्ति नहीं है।

छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धकों, अवन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$ है। अबन्धकोंका सर्वलोक है।

विशेष—तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक अविरतसम्यक्त्वीकी अपेक्षा $\frac{8}{14}$ कहा है। विहारवत् स्वस्थान, वेदना-कषाय वैक्रियिक-मारणान्तिक समुद्घात गत असंयतसम्यक्त्वी जीवोंमें मेरुके मूलसे ऊपर छह राजू तथा नीचे दो राजू प्रमाण स्पर्शन किया है (ध. टी., पृ. १६७)।[1]

१६१. आदेशसे-नारकियोंमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके $\frac{6}{14}$ हैं; अबन्धक नहीं है।

विशेष—मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपाद पदवाले मिथ्यादृष्टि नारकियोंने अतीत कालमें $\frac{6}{14}$ स्पर्श किया है। (पृ० १७५) सातवीं पृथ्वीके नारकीको मारणान्तिक समुद्घात अथवा उपपादकी अपेक्षा कर्मभूमिया संज्ञी मनुष्य या तिर्यंचपर्याप्तपर्याय प्राप्तिकी दृष्टिसे छ राजू

---

१ असंजदसम्माइट्ठीहि विहारवदिसत्थाण-वेदण-कसाय-वेउव्वियमारणंतिय समुग्घादगदेहि अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। उवरि छ रज्जू हेट्ठा दोरज्जु त्ति -ध० टी०, पृ० १६७।

थीणगिद्धितिय-अणंताणु०४ बंधगा छचोद्दसभागो, अबंधगा खेत्तभंगो। सादासाद-बंधगा-अबंधगा छचोद्दसभागो। दोण्णं पगदीणं बंधगा छचोद्दसभागो, अबंधगा णत्थि। एवं सत्तणोक० छस्संठा० छस्संघ० दोविहा० थिरादिछयुगलं। मिच्छत्तबंधगा छचोद्दसभागो, अबंधगा पंचचोद्दसभागो। दोआयु० खेत्तभंगो। अबंधगा छच्चोद्दसभागा। एवं तित्थयरं। तिरिक्खगदिबंधगा छच्चोद्दस०, अबंधगा खेत्तभंगो। मणुसगदिबंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा छच्चोद्दस०। दोण्णं पगदिबंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा णत्थि। एवं दोआणुपुव्वि दोगोदं च। उज्जोव० बंधगा अबंधगा छच्चोद्दस०। एवं सव्वणेरइयाणं।

स्पर्शन है। ध्रुव प्रकृतियोंका सभी नारकी बन्ध करते हैं, अतः ६/१४ ध्रुव प्रकृतिके बन्धकोंका स्पर्श कहा है।

स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंके ६/१४ भाग हैं, अबन्धकोंके क्षेत्रके समान भंग हैं। अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है[2]। साता, असाताके बन्धकों, अबन्धकोंके ६/१४ हैं। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंके ६/१४ हैं; अबन्धक नहीं है।

विशेष—नरकगतिमें साता अथवा असाताके पृथक्-पृथक् रूपसे अबन्धककी अपेक्षा ६/१४ भाग कहा है। इसका अर्थ यह है कि साताके अबन्धक, किन्तु असाताके बन्धक अथवा असाताके अबन्धक, किन्तु साताके बन्धक जीवोंका सप्तम पृथ्वीकी अपेक्षा ६/१४ भाग है।

भयद्विक बिना सात नोकषाय, छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, स्थिरादि छह युगलमें इसी प्रकार है। मिथ्यात्वके बन्धकोंके ६/१४ भाग है। अबन्धकोंके ५/१४ भाग है।[3]

विशेष—मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंकी अपेक्षा छठी पृथ्वीकी दृष्टिसे मारणान्तिक समुद्घातमें ५/१४ भाग है। सातवीं पृथ्वीमें मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही मरण करता है, अतः उसकी यहाँ अपेक्षा नहीं की गयी है।

दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) के बन्धकोंके क्षेत्रवत् भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है।[4] अबन्धकोंके ६/१४ भाग है। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग, अबन्धकोंके ६/१४ भाग है।

तिर्यंचगतिके बन्धकोंके ६/१४ भाग है। अबन्धकोंके क्षेत्रवत् भंग है। मनुष्यगतिके बन्धकोंके क्षेत्रसमान भंग है। अबन्धकोंके ६/१४ भाग है। दोनोंके बन्धकोंके ६/१४ भाग है। अबन्धक नहीं है। दो आनुपूर्वी (मनुष्य-तिर्यंचानुपूर्वी) तथा २ गोत्रोंमें भी इसी प्रकार भंग है। उद्योतके बन्धकों, अबन्धकोंका ६/१४ भाग है।

इस प्रकार सर्व नारकियोंमें जानना चाहिए। विशेष, अपना-अपना स्पर्शन निकाल लेना चाहिए।

---

१. 'णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, छ चोद्दसभागा वा देसूणा।"–षट्खं०, फो०, सू० ११, १२। २. "सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदि भागो।'–षट्खं०, फो०, सू० १३, १४, १५। ३. "विदियादि जाव छट्ठीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठिसासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। एग बे तिण्णि चत्तारि पंच चोद्दसभागा वा देसूणा।" –षट्खं०, फो०, सू० १६-१८। ४. णेरइएसु सव्वेभंगा लोगस्स असंखेज्जदिभागे।–खेत्ताणुगम०, पृ० १८७।

णवरि अप्पप्पणो फोसणं कादव्वं । सत्तमीए मिच्छत्तं अबंधगा खेत्तभंगो ।

१६२. तिरिक्खाणं धुविगाणं बंधगा सव्वलोगे । अबंधगा णत्थि । [थीण-गिद्धितिय] अट्ठकसा० बंधगा सव्वलोगो, अबंधगा छच्चोद्दस० । सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो । दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो । अबंधगा णत्थि । एवं तिण्णिवे० दोयुग० पंचजादिछसंठाणं तसथावरादिणवयुगल-दोगोदं । मिच्छत्त-बंधगा

विशेष—छठी पृथ्वीमे देशोन ५/१४, पाँचवीं पृथ्वीमे देशोन ४/१४, चौथीमें देशोन ३/१४, तीसरीमे देशोन २/१४, दूसरीमें देशोन १/१४ तथा पहली पृथ्वीमे लोकका असंख्यातवाँ भाग मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थानमें स्पर्शन कहा है। मिश्र तथा अविरत सम्यग्दृष्टियोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग बताया है। इस स्पर्शनको ध्यानमे रखकर भिन्न-भिन्न प्रकृतियोंके बन्धकों-अबन्धकोंके विषयमें यथायोग्य योजना करनी चाहिए।

सातवीं पृथ्वीमे[1]—मिथ्यात्वके अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वके बन्धकोंका स्पर्शन सातों पृथ्वियोंमे लोकका असंख्यातवाँ भाग भी कहा है। सातवीं पृथ्वीमें ६/१४ भाग देशोन भी स्पर्श है।

१६२. तिर्यंचोंमें— ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक सर्वलोकमे हैं; अबन्धक नहीं हैं। [स्त्यान-गृद्धित्रिक] अनन्तानुबन्धी ४ तथा अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धकोंका ६/१४ भाग है।

विशेषार्थ—कषायाष्टकके अबन्धक देशसंयत तिर्यंचोंके मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा अच्युत स्वर्गके स्पर्शनकी दृष्टिसे ६/१४ भाग कहा है।[3]

स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय, मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपाद पदोंसे अतीत कालमें तिर्यंच जीवों-द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है। क्योंकि वर्तमान कालके समान अतीत कालमें भी तिर्यंच जीवोंका सर्वलोकमें अवस्थान पाया जाता है। विहारकी अपेक्षा अतीत कालमें तीन लोकोंका असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवाँ भाग और मनुष्य क्षेत्रसे असंख्यात गुणा क्षेत्र स्पृष्ट है।

शंका—असंख्यात समुद्रोंके त्रसजीवोंसे रहित होनेपर वहाँ विहार करनेवाले त्रस जीवोंकी सम्भावना कैसे हो सकती है?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ पूर्व वैरी देवोंके प्रयोगसे विहार होनेमे कोई विरोध नहीं है। तत्थ पुव्व-वइरिय-देवाणं पओएण विहारे विरोहाभावादो (खु० बं०, टी० पृ० ३७५)

साता, असाताके बन्धकोंके सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंके सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। तीन वेद, हास्य-रति, अरति-शोक, ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ९ युगल

---

१ "सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो ।" –षट्खं०, फो०, सू० २२ । २ फोसणाणुगमेण गदियाणु-वादेण णिरयगदीए णेरइएहि सत्थाणेहि केवडिय खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । समुग्घाद-उववादेहि लोगस्स असखेज्जदिभागो छच्चोद्दसभागा वा देसूणा । पढमाए पुढवीए णेरइया सत्थाणसमुग्घाद-उववादपदेहि लोगस्स असखेज्जदिभागो विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया सत्थाणेहि लोगस्स असखेज्जदिभागो । समुग्घाद-उववादेहि य केवडि खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । एग वे तिण्णि चत्तारि पच छ चोद्दसभागा वा देसूणा । –खु० बं०, सू० १–११ । ३ "असजदसम्मादिट्ठि-सजदासंजदेहि केवडिय खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, छच्चोद्दसभागा वा देसूणा ।" –षट्खं०, फो०, सू० २७, २८ ।

सव्वलोगो। अबंधगा सत्तचोद्दसभागो वा। तिण्णि आयुखेत्तभंगो। मणुसायुबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा सव्वलोगो। चदुण्णं आयुबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। णिरयगदिदेवगदिबंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा सव्वलोगो। तिरिक्ख-मणुसगदिबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। चदुण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालिय० बंधगा० सव्वलोगो। अबंधगा बारहचोद्द०। वेउव्वि० बंधगा बारह-चोद्दसभागो वा। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालि० अंगो० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। वेउव्विय-अंगो० बंधगा बारहचोद्दसभागो। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। छस्संघ० दोविहा० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि खेत्तभंगो।

तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार है।[1] मिथ्यात्वके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका ७/१४ भाग है।[2]

विशेष—मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंके ७/१४ भाग स्पर्शन है।

नरक-तिर्यंच-देवायुका क्षेत्रके समान भंग है। मनुष्यायुके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग, वा सर्वलोक भंग है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। चारों आयुके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है। नरकगति, देवगतिके बन्धकोंका ६/१४ है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। तिर्यंचगति मनुष्यगतिके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक है। चारों गतियोंके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं हैं। औदारिक शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है, अबन्धकोंका १२/१४ भाग है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका १२/१४ है, अबन्धकोंका सर्वलोक है।

विशेष—वैक्रियिक शरीरके बन्धक तिर्यंचोंका अच्युत स्वर्ग तथा सप्तम नरकके स्पर्शनकी अपेक्षा १२/१४ भाग कहा है।

औदारिक-वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। औदारिक अंगोपांगके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंका १२/१४ भाग है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है।

विशेष—जिस प्रकार वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका १२/१४ है, उसी प्रकार वैक्रियिक अंगोपांगका भी वर्णन है, किन्तु औदारिक शरीरके समान औदारिक अंगोपांगका वर्णन नहीं है। कारण, एकेन्द्रियोंमें औदारिक अंगोपांगके अभावमें भी औदारिक शरीर पाया जाता है, किन्तु वैक्रियिक शरीरके साथ वैक्रियिक अंगोपांगका सदा सम्बन्ध पाया जाता है। इस कारण इनका स्पर्शन तुल्य है तथा औदारिक शरीर एवं औदारिक अंगोपांगका स्पर्शन समान नहीं कहा गया है।

छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरका प्रत्येक तथा सामान्यसे क्षेत्रवत् भंग है

---

१. तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो —खु० बं०,सू० १२,१३। २. "तिरिक्खेसु "सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्ज-दिभागो, सत्तचोद्दसभागो वा देसूणा।" —षट्खं०,फो०,सू० २३, २५।

आणुपुव्वि-गदिभंगो। परघादुस्सा० आदाउज्जो० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। पंचिंदिय तिरिक्ख०३-धुविगाणं बंधगा तेरह-चोद्दसभागा वा सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि-तियं अट्ठकसा० बंधगा तेरहचोद्दस०, सव्वलोगो वा। अबंधगा छचोद्दसभागो वा। मिच्छ० बंधगा तेरहचोद्दस० सव्वलोगो वा। अबंधगा सत्तचोद्दसभागो वा देसूणा। सादबंधगा सत्तचोद्दसभागो वा सव्वलोगो वा। अबंधगा तेरह-

---

अर्थात् बन्धकों तथा अबन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। आनुपूर्वीमें गतिके समान भंग है।

विशेष—नरक देवानुपूर्वीके बन्धकोंके 6/14 है। अबन्धकोंके सर्वलोक हैं।

परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योतके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है।

पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच-पर्याप्तक, पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-योनिमतीमें—ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धकोंका 13/14 भाग वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है।

विशेष—सातवीं पृथ्वीके नारकीने उपपाद-द्वारा पंचेन्द्रियतिर्यंचोंकी भूमि मध्यलोकका स्पर्श किया, पश्चात् तिर्यंचरूपसे काल व्यतीत कर लोकाग्रमें जाकर बादर, पृथ्वी, जल, वनस्पतिकायिकोंमें जन्म धारण किया. इस प्रकार 13/14 राजू हुए। सप्तम नरकके नारकी जीवने जब तिर्यंच पंचेन्द्रिय पर्यायके निमित्त प्रस्थान किया, तब तिर्यंचायुका उदय आ जानेसे वह जीव तिर्यंचसंज्ञाका पात्र हो गया।

स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनन्तानुबन्धी आदि ८ कषायके बन्धकोंके 13/14 भाग, वा सर्वलोक है; अबन्धकोंके 6/14 भाग है।[1]

विशेष—यहाँ अबन्धक देशव्रती तिर्यंचोंका अच्युत स्वर्ग पर्यन्त उत्पादकी अपेक्षा 6/14 कहा है।

मिथ्यात्वके बन्धकोंका 13/14 वा सर्वलोक है, अबन्धकोंका देशोन 7/14 है[2]।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन गुणस्थानवर्ती तिर्यंच 7/14 भाग स्पर्श करते हैं।[3] धवलाकार सासादन सम्यक्त्वीका एकेन्द्रियमें उत्पाद न मानकर मारणान्तिक समुद्घात स्वीकार करते हैं। अतः लोकाग्रके एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा 7/14 भाग कहा है।

शंका—ये सासादन गुणस्थानवर्ती तिर्यंच सुमेरुगिरिके मूलभागसे नीचे मारणान्तिक समुद्घात क्यों नहीं करते?

समाधान—सभावदो—स्वभावसे वे ऐसा नहीं करते हैं। पर्यायार्थिक नयकी विवक्षासे वे नारकियोंमें अथवा मेरुतलसे अधोभागवर्ती एकेन्द्रिय जीवोंमें मारणान्तिकसमुद्घात नहीं करते हैं। (धवलाटीका पृ० २०५)

साताके बन्धकोंका 7/14 भाग वा सर्वलोक है, अबन्धकोंका 13/14 वा सर्वलोक है।

---

१. "तिरिक्खेसु सासणसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, छचोद्दसभागा वा देसूणा।"–षट्खं०,फो०,सू० २७-२८। २. "सासणसम्माइट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सत्तचोद्दसभागा वा देसूणा"–षट्खं०,फो०,सू० २४-२५। ३. मारणंतिय-समुग्घादेहि सत्तचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा—२०४ ध० टीका, जीव० फो०।

चोद्दसभागा,सव्वलोगो। असादबंधगा तेरहभागो वा, सव्वलोगो। अबंधगा सत्तभागा वा सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा तेरस० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। एवं चदुणोक० थिराथिर-सुभासुभ०। इत्थिवे० बंधगा दिवड्ढचोद्दसभागा। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। पुरिस० बंधगा छचोद्दस०। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। णवुंस० बंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा छच्चोद्दस०। तिण्णिवेद० बंधगा तेरस० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। चदुण्णं आयु० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। णिरयगदि-देवगदिबंधगा छच्चोद्दसभागा। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। तिरिक्खगदिबंधगा सत्तचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा अबंधगा बारहचोद्दस०। मणुसगदि-बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा तेरहचोद्दस० सव्वलोगो। चदुण्णं गदीणं बंधगा तेरहचोद्दस० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एवं आणुपुव्वि०। एइंदि० बंधगा सत्तचोद्दस० सव्वलोगो। अबंधगा बारह०। तिण्णिजादीणं बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा

असाताके बन्धकोंका १३/१४ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंका ७/१४ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंका १३/१४ वा सर्वलोक है, अबन्धक नहीं हैं। हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभमें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए। स्त्रीवेदके बन्धकोंके १½/१४ भाग है। अबन्धकोंके १३/१४ वा सर्वलोक है।

विशेष—सौधर्मद्विक पर्यन्त देवियोंका उत्पाद होता है, अतः जिस तिर्यंचने मारणान्तिक समुद्घात-द्वारा सौधर्म, ईशानके प्रदेशका स्पर्शन किया, उसकी अपेक्षा १½/१४ भाग कहा है।[1]

पुरुषवेदके बन्धकोंका ६/१४, अबन्धकोंका १३/१४ वा सर्वलोक है।

विशेष—तिर्यंचोंका अच्युत स्वर्गपर्यन्त उत्पाद होता है। इस दृष्टिसे पुरुषवेदके बन्धकके ६/१४ कहा है।

नपुंसकवेदके बन्धकोंका १३/१४ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंके ६/१४ भाग है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं। चार आयुके बन्धकोंका क्षेत्रके समान सर्वलोक भंग है। अबन्धकोंका १३/१४ वा सर्वलोक है। नरकगति, देवगतिके बन्धकोंका ६/१४ भाग है, अबन्धकोंका १३/१४ वा सर्वलोक है।

विशेष—नरकगतिके बन्धक तिर्यंचका सप्तमपृथ्वीके स्पर्शनकी अपेक्षा ६/१४ है, इसी प्रकार देवगतिके बन्धकके अच्युत स्वर्गकी अपेक्षा भी ६/१४ भाग है।

तिर्यंचगतिके बन्धकोंके ७/१४ भाग वा सर्वलोक है, अबन्धकोंके १२/१४ है।

विशेष—तिर्यंचगतिके अबन्धकके अच्युत स्वर्ग तथा सप्तम नरक पर्यन्त, स्पर्शकी अपेक्षा १२/१४ भाग है। तिर्यंचगतिके बन्धक पंचेन्द्रिय तिर्यंचके मध्यलोकसे लोकान्तके एकेन्द्रियोंके क्षेत्रके स्पर्शनकी अपेक्षा ७/१४ है।

मनुष्यगतिके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। अबन्धकोंके १३/१४ वा सर्वलोक है। चारों गतियोंके बन्धकोंके १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं। आनुपूर्वीमें गतिके समान भंग हैं। एकेन्द्रियके बन्धकोंके ७/१४, सर्वलोक है; अबन्धकोंके १२/१४ भाग है।

१ सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा सत्थाणसमुग्घादगदं देवगदिभंगो। उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो दिवड्ढचोद्दसभागा वा देसूणा। —खु० बं०,सू० ३७-३८।

तेरह० सव्वलोगो। पंचिंदि० बंधगा बारह०। अबंधगा सत्तचोद्दस० सव्वलोगो। पंचजा० तेरह० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालिय० बंधगा सत्तचोद्दस०, सव्व-लोगो। अबंधगा बारह०। वेउव्विय० बंधगा बारह०, अबंधगा सत्तचोद्दस०, सव्व-लोगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा तेरह०, सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। समचदु० बंधगा छचोद्द०। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। चदुण्णं संठाणाणं बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। हुंडसंठाणस्स तेरह० सव्वलोगो। अबंधगा छचोद्दसभागो वा। छस्संठाणं बंधगा तेरह० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालिय-अंगो० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। वेउव्विय-अंगो० बंधगा बारह०। अबंधगा सत्तचोद्दस०, सव्वलोगो। दोण्णं अंगो० बंधगा बारह०। अबंधगा सत्तचो०, सव्व-

---

विशेष—लोकाग्र भागमे विद्यमान एकेन्द्रियोंमे उत्पन्न होनेकी अपेक्षा $\frac{7}{14}$ स्पर्शन है। एकेन्द्रियके अबन्धकोंका स्पर्शन सप्तम पृथ्वी पर्यन्त ६ राजू तथा अच्युत स्वर्ग पर्यन्त ६ राजू प्रमाण होनेसे $\frac{12}{14}$ कहा है।

दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय जातिके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। अबन्धकोंका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—विकलेन्द्रियके अबन्धकोंका लोकाग्रमे स्थित एकेन्द्रियका स्पर्शन तथा अधो-लोकमें सप्तम पृथ्वी पर्यन्त स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{13}{14}$ कहा है।

पंचेन्द्रिय जातिके बन्धकोंके $\frac{12}{14}$ है। अबन्धकोंके $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक है। पंच जातियोंके बन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं। औदारिक शरीरके बन्धकोंके $\frac{7}{14}$ है वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{12}{14}$ है।

विशेष—लोकाग्रके एकेन्द्रियोंके स्पर्शनकी अपेक्षा बन्धकोंके $\frac{7}{14}$ है। अबन्धकोंके वैक्रियिक शरीरकी अपेक्षा ऊपर ६ राजू तथा नीचे ६ राजू इस प्रकार $\frac{12}{14}$ है।

वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंके $\frac{12}{14}$ है। अबन्धकोंके $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक है। दोनों शरीरोंके बन्धकोंके $\frac{13}{14}$ भाग वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं। समचतुरस्र संस्थानके बन्धकोंके $\frac{6}{14}$ तथा अबन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—इस संस्थानके बन्धकोंके अच्युत स्वर्गके स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{6}{14}$ है। अबन्धकोंके अधोलोकके ६ तथा ऊर्ध्वके ७ राजू मिलाकर $\frac{13}{14}$ भाग कहा है।

चार संस्थान अर्थात् समचतुरस्र तथा हुण्डकको छोड़कर शेषके बन्धकोंका क्षेत्रवत् भंग है, अबन्धकोंका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। हुण्डक संस्थानके बन्धकोंका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{6}{14}$ भाग है। छह संस्थानोंके बन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। औदारिक अंगोपांगके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। अबन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंका $\frac{12}{14}$ है, अबन्धकोंका $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक भंग है।

विशेष—इसके बन्धकोंके ऊपर ६ राजू तथा नीचे ६ राजू, इस प्रकार $\frac{12}{14}$ भंग है। यह वैक्रियिक अंगोपांगके अबन्धकोंके लोकाग्रके एकेन्द्रिय जीवोंकी अपेक्षा $\frac{7}{14}$ कहा है।

दोनों अंगोपांगोंके बन्धकोंका $\frac{12}{14}$ तथा अबन्धकोंका $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक है।

लोगो। छस्संघ० पत्तेगेण साधारणेण वि खेत्तभंगो। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। परघादुस्सा० बंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। आदावस्स बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो। उज्जोवस्स बंधगा सत्तचोद्दस०। अबंधगा तेरह० सव्वलोगो वा। पसत्थवि० बंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा तेरह० सव्वलो० अप्पसत्थवि० बंधगा छच्चोद्दस०। अबं० सत्तचोद्द० सव्वलो०। दोण्णंपि बारह०। अबंधगा सत्तचोद्दस० सव्वलो०। एवं दूसर०। तसबंधगा बारह०। अबंधगा सत्तचो० सव्वलो०। थावरबंधगा सत्तचोद्दस० सव्वलोगो। अबंधगा बारहचोद्दस०। दोण्णंपि बंधगा तेरहचोद्दस० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। बादरं बंधगा तेरह०। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। सुहुमबंधगा लोगस्स असंखे०, सव्वलोगो वा। अबंधगा तेरह० चोद्दस०। दोण्णं पगदीणं बंधगा तेरह० सव्वलो०। अबंधगा णत्थि। पज्जत्त-पत्तेग० बंधगा तेरह० सव्वलो०। अबंधगा लोगस्स असंखे० सव्वलो०। अपज्जत्त साधारण-बंधगा लोग० असंखे०, सव्वलो०। अबंधगा तेरह० सव्वलो०। दोण्णं पगदीणं बंधगा तेरह० सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि।

छह संहननोंका पृथक्-पृथक् अथवा समुदाय रूपसे क्षेत्रके समान भंग है। अबन्धकोंका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। परघात, उच्छ्वासके बन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग है अथवा सर्वलोक है। आतपके बन्धकोंके क्षेत्रके समान है। अबन्धकोंके $\frac{13}{14}$ अथवा सर्वलोक भंग है। उद्योतके बन्धकोंका $\frac{7}{14}$, अबन्धकोंका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक भंग है। प्रशस्त विहायोगतिके बन्धकोंके $\frac{6}{14}$, अबन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—अच्युत स्वर्गके स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{6}{14}$ कहा है, कारण देवोंके प्रशस्त विहायोगति पायी जाती है। प्रशस्तविहायोगतिके अबन्धक अर्थात् अप्रशस्तविहायोगतिके बन्धक अथवा दोनोंके अबन्धककी अपेक्षा अधोलोकके ६ राजू तथा ऊर्ध्वके ७ इस प्रकार $\frac{13}{14}$ है।

अप्रशस्तविहायोगतिके बन्धकोंका $\frac{6}{14}$, अबन्धकोंका $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—सप्तम पृथ्वीके स्पर्शनकी अपेक्षा अप्रशस्तविहायोगतिके बन्धकोंके $\frac{6}{14}$ है। विहायोगतिके अबन्धककी अपेक्षा लोकाग्रके तिर्यंचोंके स्पर्शनकी दृष्टिसे $\frac{7}{14}$ भाग है, कारण एकेन्द्रियके साथ विहायोगतिके बन्धका सन्निकर्षपना नहीं पाया जाता है।

दोनों विहायोगतिके बन्धकोंके $\frac{12}{14}$, अबन्धकोंके $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक है। दो स्वरोंमें भी इसी प्रकार है। त्रसके बन्धकोंके $\frac{12}{14}$, अबन्धकोंके $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक है। स्थावरके बन्धकोंके $\frac{7}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{13}{14}$ है। दोनोंके बन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं हैं। बादरके बन्धकोंके $\frac{13}{14}$ है, अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। सूक्ष्मके बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{13}{14}$ भाग है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। पर्याप्तक तथा प्रत्येकके बन्धकोंका $\frac{13}{14}$ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अपर्याप्त, साधारणके बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग, सर्वलोक है। अबन्धकोंके $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है। पर्याप्त अपर्याप्त तथा प्रत्येक साधारणके बन्धकोंका $\frac{13}{14}$ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है।

सुभग-आदेज्ज-समचदु० भंगो । दूभग-अणादेज्जहुंडसंठाणभंगो । दोण्णं पगदीणं बंधगा तेरह० सव्वलो० । अबंधगा णत्थि । जसगित्तिस्स बंधगा सत्तचोद्दस० । अबंधगा तेरह० सव्वलोगो । अजस० बंध० तेरह० सव्वलो० । अबंधगा सत्तचोद्दस० । दोण्णं पगदीणं बंधगा तेरह० सव्वलोगो । अबंधगा णत्थि । दो गोदाणं संठाण-भंगो ।

१६३. पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता–पंचणा० णवदंस० मिच्छ० सोलसक० भयदु० तिण्णिसरीर-वण्ण०४ अगु० उप० णिमिण-पंचंतराइगाणं बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । अबंधगा णत्थि । दोवेदणी० हस्सादि० दोयुगल-थिरादि०४ बंधगा अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । दोण्हं पगदीणं बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा । अबंधगा णत्थि । इत्थि० पुरिस० बंधगा खेत्तभंगो । अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । णवुंस० बंधगा पडिलोमं भाणिदव्वं । तिण्णि वेदाणं बंधगा लोगस्स असंखे०, सव्वलोगो वा । अबंधगा णत्थि । इत्थिवेदभंगो दोआयु-मणुसगदि-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि०

हैं । सुभग तथा आदेयका समचतुरस्र संस्थानके समान भंग है । दुर्भग, अनादेयका हुण्डक-संस्थानके समान भंग है । सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेयके बन्धकोंका १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं । यशःकीर्तिके बन्धकोंके ७/१४ हैं, अबन्धकोंके १३/१४ वा सर्वलोक है । अयशःकीर्तिके बन्धकोंके १३/१४, सर्वलोक है; अबन्धकोंके ७/१४ है । यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिके बन्धकोंके १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं ।

विशेष—तिर्यंचोंमें तीर्थंकरका बन्ध न होनेसे यहाँ उसका वर्णन नहीं किया गया है ।

दो गोत्रोंके विषयमें संस्थानके समान भंग है ।

१६३. पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें–५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा-औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है । अबन्धक नहीं हैं । दो वेदनीय, हास्यादि दो युगल, स्थिरादि ४ के बन्धकों-अबन्धकोंका लोकके असंख्यातवें भाग वा सर्वलोक है । दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है । स्त्री-पुरुष वेदके बन्धकोंका क्षेत्र-भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है । अबन्धकोंका लोकके असंख्यातवें भाग वा सर्वलोक भंग है । नपुंसकवेदका प्रतिलोम क्रम है अर्थात् नपुंसकवेदके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक भंग है । अबन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग है । तीनों वेदोंके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है । दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु), मनुष्यगति, दोइंद्रियादि

---

*"पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा ?" षट्खं०,फो०,सू० ३२, ३३ । - पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणि-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता सत्थाणेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा —खु० बं०, सू० १४-१७ ।

अंगो० छस्संघ० मणुसाणु० आदाउज्जो० (?) दोविहा० [तस] सुभग-सुस्सर-आदेज्ज० उच्चागोदं च। णवुंसगवेद-भंगो तिरिक्खगदि-एइंदियजादि-हुंडसंठाण-तिरिक्खाणुपुव्वि-थावर-पज्जत्तापज्ज० पत्तेग-साधारण-दूभग-दूसर-अणादेज्ज-णीचागोदं च। दोआयु० छस्संघ० दोविहा० दोसर० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। गदि-जादि-संठाण-आणुपुव्वि-तसथावरादिसत्तयुगलदोगोदाणं बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। परघादुस्साणं बंधगा अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। उज्जोवस्स बंधगा सत्तचोद्दस-भागो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। एवं बादरजसगित्ति। तप्पडिपक्खं सुहुमं अजसगित्ति।

१६४. एवं मणुसापज्जत्त० सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तस-अपज्जत्त-बादरपुढवि० आउ० तेउ० वाउ० बादरवणप्फदि-पत्तेय-पज्जत्ता। णवरि बादरवाउपज्जत्ते जं हि लोगस्स असंखेज्जदिभागो तं हि लोगस्स संखेज्जदिभागो कादव्वो। मणुस०३-पंचणा०

चार जाति, हुण्डक विना ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, (?) २ विहायोगति, [त्रस] सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान भंग है।

विशेष—उद्योतका वर्णन आगे आया है, अतः यहाँ आतापके साथ उद्योतका पाठ अधिक प्रतीत होता है।

तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डक संस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका नपुंसकवेदके समान भंग है। दो आयु, ६ संहनन, २ विहायोगति, दो स्वरके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् सर्वलोक है।

विशेषार्थ—दो आयु, छह संहनन तथा दोविहायोगतिका पहले वर्णन आ चुका है कि इनमें स्त्रीवेदके समान भंग है। उनका फिरसे उल्लेख होना चिन्तनीय है।

अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक भंग है। गति, जाति, संस्थान, आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि सप्त युगल, २ गोत्रके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं। परघात, उच्छ्वासके बन्धकों-अबन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक भंग है। उद्योतके बन्धकोंका ७/१४, अबन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। बादर, यशःकीर्ति इसी प्रकार है। सूक्ष्म और अयशःकीर्तिमें इनका प्रतिपक्षी अर्थात् बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है, अबन्धकोंका ७/१४ है।

१६४. लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सर्व विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रस-अपर्याप्तक, बादर-पृथ्वी जल-तेज-वायु-बादरवनस्पति प्रत्येक-पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार भंग है। विशेष, बादर-वायुकायिक पर्याप्तकोंमें जहाँ लोकका असंख्यातवाँ भाग है, वहाँ लोकका संख्यातवाँ भाग जानना चाहिए।

णवदंस० सोलसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। मिच्छत्तस्स बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सत्तचोद्दसभागो वा केवलिभंगो। सादबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो केवलिभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। असाद-बंधगा लोगस्स असंखेज्जदि-भागो सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखे० भागो केवलिभंगो, दोण्णं पगदीणं

मनुष्यत्रिक अर्थात् मनुष्य, मनुष्य-पर्याप्त मनुष्यनीमें-५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, ५ अन्तरायके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धकोंका केवली-भंग है[2]। मिथ्यात्वके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा ७/१४ अथवा केवली-भंग है।

विशेष - मिथ्यात्वके बन्धकोंके मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपाद पदकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन कहा है। (ध० टी०,फो० पृ० २१७)

साताके बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा केवली-भंग है। अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। असाताके बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्व-लोक है। अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा केवली-भंग है। दोनों प्रकृतियोंके

---

१. "मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो सत्तचोद्दसभागा वा देसूणा। सम्मामिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। सजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो असखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा।"-पट्खं०,फो०,सू० ३४-४१। २ मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीओ सत्था-णेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादेण केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, असखेज्जा वा भागा, सव्वलोगो वा। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा--खु० बं०,सू० १८-२३। मणुस-अपज्जत्ताण पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्ताण-भगो पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणि-पंचिंदियतिरिक्ख अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादउववादेहि केवडिय खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा--सू० १४-१७। बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताण सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादउववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा (५५-५८)। पंचिंदिय-अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादेहि-उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। (६५ ६९)। तसकाइय-तसकाइय पज्जत्ता-अपज्जत्ता पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त अपज्जत्तभगो (९८)। बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घादउववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा (७७ ८१)। बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। समुग्घाद उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स सखेज्जदिभागो (८७-९० , पृ. ३८२-४११)

बंधगा केवलिभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो। इत्थि० पुरिस० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा केवलिभंगो। णवुंस० असादभंगो। तिण्णं वेदाणं बंधगा लोगस्स असंखे० भागो सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। इत्थिभंगो चदुआयु-तिण्णिगदि-चदुजादि-वेउव्वि०-आहार० पंचसंठा० तिण्णिअंगो० छस्संघ० तिण्णि-आणु० आदाव० दोविहा० तस-सुभग० दोसर (?) [दुस्सर] आदे० उच्चागोदं च। णवुंसकवेदभंगो हस्सरदि-अरदिसोग-तिरिक्खगदि-एइंदियजादि-ओरालि० हुडसंठा० तिरिक्खाणु० थावर-पज्जत्त-अपज्जत्त० पत्तेय साधारण० थिराथिर-सुभासुभ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदं च। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदभंगो। परघादुस्सासं हस्सभंगो। उज्जोवस्स बंधगा सत्तचोद्दसभागो। अबंधगा केवलिभंगो। एवं बादरजसगित्ति। सुहुम बंधगो लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। अजसगित्तिस्स बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा सत्तचोद्दसभागो केवलिभंगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। तित्थयरस्स बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो केवलिभंगो।

वन्धकोंका केवली-भंग है। अवन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग है।

विशेष – दोनोंके अवन्धक अयोगकेवलीकी अपेक्षा असंख्यातवाँ भाग कहा है।

स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है। अवन्धकोंका केवली-भंग है। नपुंसकवेदका असाताके समान भंग है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक भंग है। अवन्धकोंका केवली-भंग है। चार आयु, तीन गति, ४ जाति, वैक्रियिक, आहारक शरीर, ५ संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन, तीन आनुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर (?) [सुस्वर], आदेय तथा उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान भंग है।

विशेषार्थ – यहाँ 'दोसर' (दो स्वर) के स्थान मे सुस्वर पाठ सम्यक् प्रतीत होता है, कारण आगे दुस्वरका उल्लेख किया है। सुस्वर मे स्त्रीवेदके समान भंग है। दुस्वर में नपुंसकवेद के समान भंग है।

हास्य, रति, अरति, शोक, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, हुण्डक संस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्रका नपुंसकवेदके समान भंग है। प्रत्येक तथा सामान्यसे भी वेदके समान भंग है।

परघात, उच्छ्वासका हास्यके समान भंग है। अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अवन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा केवली-भंग है। उद्योतके बन्धकोंका $\frac{7}{14}$ है। अवन्धकोंका केवली-भंग है। बादर तथा यशःकीर्तिमे इसी प्रकार है। सूक्ष्मके बन्धकों-का लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक स्पर्शन है। अवन्धकोंका केवली-भंग है। अयश-कीर्तिके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अवन्धकोंका $\frac{7}{14}$ वा केवली-भंग है। बादर, सूक्ष्म तथा यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अवन्धकोंका केवली-भंग है। तीर्थंकरके बन्धकोंका क्षेत्रवत् भंग है अर्थात् लोक-का असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन है। अवन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा केवलीभंग है।

१६५. देवेसु–धुविगाणं बंधगा अट्ठ-णव-चोद्दसभागो वा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितिय-अणंताणु०४ बंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो वा। अबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो

१६५ देवोंमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके ८/१४, ९/१४ भाग है; अबन्धक नहीं हैं।

विशेषार्थ—विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातसे परिणत मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थानवर्ती देवोंने अतीतमें देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातगत मिथ्यात्वी तथा सासादन सम्यक्त्वी देवोंने ९/१४ भाग स्पर्श किया है (ध० टी०,फो० पृ० २२५)।

'खुद्दाबंध' टीकामें देवोंका सामान्य रूपसे स्पर्शन इस प्रकार कहा है। देवोंका वर्तमानकालिक स्पर्शन क्षेत्रप्ररूपणाके समान है। देवों-द्वारा स्वस्थानकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवाँ भाग तथा अढाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है।

शंका—तिर्यग्लोकका संख्यातवाँ भाग कैसे घटित होता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है। क्योंकि चन्द्र, सूर्य, बुध, बृहस्पति, शनि, शुक्र, मंगल, नक्षत्र, तारागण और आठ प्रकारके व्यन्तर विमानोंसे रुद्ध क्षेत्र तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण पाये जाते हैं। विहारकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है। मेरु मूलसे ऊपर छह राजूमात्र और नीचे दो राजूमात्र क्षेत्रमें देवोंका विहार है, इससे ८/१४ भाग कहा है।

शंका—ये आठ बटे चौदह भाग किससे कम हैं "केण ते ऊणा"?

समाधान—तृतीय पृथ्वीके नीचे एक सहस्र योजनसे कम हैं।

प्रश्न—देवों-द्वारा समुद्घातकी अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है?

उत्तर—समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह वा नौ बटे चौदह भाग (८/१४, ९/१४ भाग) स्पृष्ट हैं। लोकका असंख्यातवाँ भाग यह कथन वर्तमान क्षेत्र प्ररूपणाकी अपेक्षासे है। अतीतकालकी अपेक्षा वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा ८/१४ भाग स्पृष्ट है। क्योंकि विहार करनेवाले देवोंके अपने विहार क्षेत्रके भीतर वेदना, कषाय, और वैक्रियिक समुद्घात रूप पद पाये जाते हैं। मारणान्तिककी अपेक्षा ९/१४ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि मेरुमूलसे ऊपर सात और नीचे दो राजूमात्र क्षेत्रके भीतर सर्वत्र अतीत कालमें मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त देव पाये जाते हैं।

प्रश्न—उपपादकी अपेक्षा देवों-द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है?

उत्तर—वर्तमान क्षेत्रकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग तथा अतीत काल सम्बन्धी उपपादकी अपेक्षा देशोन ६/१४ भाग स्पृष्ट है। कारण "आरणच्चुदकप्पोत्ति तिरिक्ख-मणुस-असंजदसम्मादिट्ठीणं संजदासंजदाणं च उववादुवलंभादो"—आरण अच्युत कल्प पर्यन्त तिर्यंच व मनुष्य असंयत सम्यग्दृष्टियों और संयतासंयतोंका उपपाद पाया जाता है (खु० बं०,टीका पृ० ३८२-३८४)

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका ८/१४, वा ९/१४ भाग है, अबन्धकोंका ८/१४ भाग है।[2]

---

१. "देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असंखेज्जदि-भागो, अट्ठणवचोद्दसभागा वा देसूणा।"—षट्खं०, फो०, सू० ४२, ४३। २. "सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजद सम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा।"—षट्खं०, फो०,सू० ४४, ४५।

वा। एवं णवुंस० तिरिक्खगदि० एइंदि० हुंडसंठा० तिरिक्खाणु० थावर० दूभग-अणादेज्ज-णीचागोदं च। मिच्छत्तस्स बंधगा अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो वा। एवं उच्चागो० (?) सादासादबंधगा अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो वा। दोण्णं पगदीणं बंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो वा। अबंधगा णत्थि। एवं हस्सादिदोयुगलं थिरादि-तिण्णि-युगलं च। इत्थि० पुरिस० बंधगा अट्ठचोद्दसभागा। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो वा। तिण्णं वेदाणं अट्ठणव-चोद्दस०। अबंधगा णत्थि। इत्थिभंगो दोआयुमणुसगदि-पंचिंदि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ० मणुसाणु० आदाव० दोविहाय० तस-सुभग-आदेज्ज० दोसर० तित्थयर० उच्चागोदं च (?) एवं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदभंगो। णवरि आयुभंगो छस्संघ० दोविहाय० दोसर० पत्तेगेण साधारणेण वि। एवं सव्वदेवाणं अप्पप्पणो फोसणं कादव्वं।

विशेष—यहाँ स्त्यानगृद्धि आदिके अबन्धक सम्यग्मिथ्यात्वी, अविरतसम्यक्त्वी जीवोंके विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा ८/१४ भाग स्पर्शन है। यह विशेष है कि अविरत सम्यक्त्वी देवोंमें मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा भी ९/१४ भाग है।

नपुंसकवेद, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, दुर्भग, अनादेय तथा नीचगोत्रका इसी प्रकार है। मिथ्यात्वके बन्धकों, अबन्धकोंका ८/१४ वा ९/१४ है। इसी प्रकार उच्चगोत्रमें भी है। साता तथा असाताके बन्धकों, अबन्धकोंका ८/१४ वा ९/१४ भाग है। साता-असाता इन दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंका ८/१४ वा ९/१४ भाग है; अबन्धक नहीं हैं।

विशेष—देवोंमें आदिके चार गुणस्थान ही होते हैं, अतः अयोगकेवलीमे अबन्ध होनेवाले इन साता-असाता युग्मका अबन्धक यहाँ नहीं कहा है। असाताका प्रमत्तसंयत तक तथा साताका सयोगी जिन पर्यन्त बन्ध होता है, इसी कारण देवोंमें इनके अबन्धक नहीं हैं।

हास्यादि दो युगल तथा स्थिरादि तीन युगलमें इसी प्रकार है। स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंके ८/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४ वा ९/१४ है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका ८/१४ वा ९/१४ है; अबन्धक नहीं हैं।

विशेष—जब देवोंमें वेदोंके अबन्धक नहीं है, तब स्त्रीवेद, पुरुषवेदके अबन्धकोंका तात्पर्य नपुंसकवेदके बन्धकोंसे है। नपुंसकवेदका बन्ध मिथ्यात्वी जीवोंके ही होगा, अतः उनके ८/१४ वा ९/१४ कहा है।

तिर्यंच-मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, आदेय, दो स्वर, तीर्थंकर और उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान भंग है। अर्थात् बन्धकोंके ८/१४ तथा अबन्धकोंके ८/१४ वा ९/१४ है।

विशेष—उच्चगोत्रका पहले कथन आया है। यहाँ पुनः उसका वर्णन किया गया है। इनमें-से एक पाठ अशुद्ध होना चाहिए। यह विषय चिन्तनीय है।

इस प्रकार प्रत्येक तथा साधारणसे भी वेदोंके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरका प्रत्येक तथा साधारणसे दो आयु (तिर्यंच-मनुष्यायु) के समान भंग जानना चाहिए।

विशेष—छह संहनन, दो विहायोगति तथा दो स्वरका पहले स्त्रीवेदके समान भंग

बताया है। पश्चात् उनका आयुके समान भंग कहा है। यह विषय चिन्तनीय है।

इस प्रकार सर्व देवोंमे अपना-अपना स्पर्शन निकाल लेना चाहिए।

विशेष—भवनत्रिकमे मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग, $\frac{3\frac{1}{2}}{14}$, $\frac{8}{14}$ वा $\frac{9}{14}$ भाग है।[1] ये विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, विक्रियापदके द्वारा उपरोक्त लोकका स्पर्शन करते हैं। मेरुतलसे दो राजू नीचे तथा सौधर्मस्वर्गके विमान-ध्वजदण्ड पर्यन्त ऊपर डेढ़ राजू इस प्रकार $\frac{3\frac{1}{2}}{14}$ स्वयमेव विहार करते हैं। ऊपरके देवोंके प्रयोगसे $\frac{8}{14}$ भाग स्पर्शन है, कारण उपरिम देवोंके द्वारा ले जाये गये वे $4\frac{1}{2}$ राजू तथा स्वनिमित्तसे $3\frac{1}{2}$ जाते है। इस प्रकार $\frac{8}{14}$ हैं। मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा $\frac{9}{14}$ स्पर्शन करते हैं, क्योंकि मेरुमूलसे नीचे दो राजूमात्र मार्ग जाकर स्थित भवनवासी आदि देवोंका घनोदधि वातवलयमें स्थित जलकायिक जीवोंमे मारणान्तिक समुद्घात करते समय $\frac{9}{14}$ भाग स्पर्शन पाया जाता है (खु० बं०, टीका पृ० ३८७)।[2] सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत सम्यग्दृष्टि देवोंमे अतीत-अनागत कालकी अपेक्षा $\frac{3\frac{1}{2}}{14}$ वा $\frac{8}{14}$ भाग स्पर्शन है। उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग भवनत्रिकका स्पर्शन है।[3] सौधर्मद्विकके देवोंका विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिकपदकी दृष्टिसे आदिके दो गुणस्थानोंमे $\frac{8}{14}$ हैं। मारणान्तिकपदसे परिणत उक्त गुणस्थानोंमें $\frac{9}{14}$ भाग है। अतीत उपपादकी अपेक्षा $\frac{1\frac{1}{2}}{14}$ हैं। मिश्र तथा अविरत गुणस्थानमें $\frac{8}{14}$ है। अविरत सम्यक्त्वीके मारणान्तिककी अपेक्षा देशोन $\frac{6}{14}$ तथा अतीत उपपादकी अपेक्षा $\frac{1\frac{1}{2}}{14}$ है। वर्तमानकालकी अपेक्षा उपपाद पद लोकका असंख्यातवाँ भाग कहा है (खु० बं०)।

[4] सनत्कुमारादि पाँच कल्पोंमे स्वस्थान स्वस्थानपदपरिणत देवोंने अतीतकालमे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। वर्तमानकालकी अपेक्षा भी लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा $\frac{8}{14}$ है। उपपाद परिणत सनत्कुमार, माहेन्द्र कल्पवासी देवोंने देशोन $\frac{3}{14}$, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरवासी देवोंने देशोन $\frac{3\frac{1}{2}}{14}$, लान्तव-कापिष्ठवासी देवोंने $\frac{4}{14}$, शुक्र-महाशुक्रवासी देवोंने $\frac{4\frac{1}{2}}{14}$, शतारसहस्रारवासी देवोंने $\frac{5}{14}$ भाग स्पर्श किया है। विशेष, मिश्रगुणस्थानवर्ती देवोंके मारणान्तिक तथा उपपाद पद नहीं होते हैं।[5] आनत, प्राणत, आरण, अच्युतवासी देवोंका विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा देशोन $\frac{6}{14}$ भाग स्पर्शन है। मिश्रगुणस्थानमे मारणान्तिक तथा उपपादपद नहीं होते हैं। आनत-प्राणत-कल्पके

---

१. "भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अद्धुट्ठा वा अट्ठणवचोद्दसभागा वा देसूणा।"–षट्खं०, फो०, सू० ४६-४७। २. "सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अद्धुट्ठा वा अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।"–षट्खं०, फो०, सू० ४८-४९। ३. "सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठित्ति देवोघं।"–सू० ५०। ४. "सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदारसहस्सारकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।"–सू० ५१-५२। ५ "आणद जाव आरणच्चुदकप्पवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा। णवगेवेज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।"–सू० ५३-५६।

१६६. एइंदिएसु–धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। सादासादबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एवं सव्वाणं वेदणीयभंगो। णवरि मणुसायुबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा सव्वलोगो। तिरिक्खायुबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं आयुगाणं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। एवं छस्संघ०ओरालि० अंगो० परघादुस्सासआदाउज्जोव-दोविहाय-दोसर०।

१६७. एवं सव्वसुहुम-एइंदिय-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वणप्फदि-णिगोद एदेसि० सव्वसुहुमाणं च।

उपपाद परिणत असंयत सम्यग्दृष्टि देवोंने देशोन $\frac{6}{14}$ भाग स्पर्श किये हैं। आरण-अच्युतवाले देवोंने उपपादसे $\frac{6}{14}$ भाग स्पर्श किया है, कारण वैरी देवोंके सम्बन्धसे सर्व द्वीपसागरोंमें विद्यमान असंयतसम्यग्दृष्टि तथा संयतासंयत तिर्यंचोंका आरण-अच्युतकल्पमें उपपाद पाया जाता है। नव ग्रैवेयकवासी देवोंका मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान पर्यन्त लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन है। अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त असंयत सम्यक्त्वी देवोंके स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक तथा उपपाद-रूप परिणमनकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन है। सर्वार्थसिद्धिमें मारणान्तिक तथा उपपादपदोंको छोड़ शेष पदोंकी अपेक्षा मानुषक्षेत्रका संख्यातवाँ भाग स्पर्शन है (खु० बं०, पृ० ३६२)।[1]

१६६. एकेन्द्रियोंमें–[2] ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं।

विशेषार्थ–स्वस्थान-स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक तथा उपपादकी अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवोंने अतीत-अनागत कालमें सर्वलोक स्पर्श किया है। 'खुद्दाबंध' टीकामें लिखा है वैक्रियिक समुद्घात पदसे लोकका संख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। इतना विशेष है कि सूक्ष्म जीवोंके वैक्रियिक समुद्घात नहीं होता। "णवरि सुहुमाणं वेउव्वियं णत्थि।" (३६३ पृ०)।

साता-असाताके बन्धकों-अबन्धकोंका स्पर्शन सर्वलोक है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है; अबन्धक नहीं है। इस प्रकार सर्व प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भंग है। विशेष, मनुष्यायुके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। तिर्यंचायुके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है। दोनों आयुके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है। छह संहनन, औदारिक अंगोपांग, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति तथा दो स्वरमें इसी प्रकार भंग है।

१६७. सर्वसूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें इसी प्रकार है। पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोद, इनके सर्वसूक्ष्म भेदोंमें भी इसी प्रकार है।[3]

---

१. "णवगेवज्ज जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा सत्थाणउववाद-तव्वादेहि केवडियं खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो"– खु० बं०, सू० ४७-४८। २ "इंदियाणुवादेण एइंदिय बादर-सुहुम-पज्जत्ता-पज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो।"–षट्खं०, फो०, सू० ५७। ३. "बादरपुढविकाइय-पज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा।"–सू० ६७-६८।

१६८. बादरेइंदिय-पज्जत्तापज्जत्त–धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो । अबंधगा णत्थि । सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो । दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो । अबंधगा णत्थि । एवं चदुणोकसा० परघादुस्सा० थिराथिरसुभासुभाणं । इत्थि० पुरिस० बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वलोगो । णवुंस० बंधगा सव्वलोगो । अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो । एवं इत्थिभंगो तिरिक्खायु-चदुजादि-पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ० आदा० दोविहाय० तस-सुभग-दोसर-आदेज्ज० । णवुंसक-भंगो एइंदिय हुंडसंठा० थावर-दूभग-अणादेज्ज० । मणुसायु-बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । दो-आयु-बंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो । अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा । एवं छस्संघ० दोविहा० दोसर० । तिरिक्खगदिबंधगा सव्वलोगो । अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो । मणुसगदिबंधगा [लोगस्स] असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वलोगो । दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो । अबंधगा णत्थि । एवं दो-आणु० दो-गोदाणं । उज्जोवस्स बंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो, सत्तचोद्दसभागो वा । अबंधगा सव्वलोगो । एवं बादर-जस० । पज्जत्ता-अपज्जत्त-पत्तेगं

---

१६८ बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं। साता-असाताके बन्धकों-अबन्धकोंके सर्व लोक स्पर्शन है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंके सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं। हास्यादि चार नोकषाय, परघात, उच्छ्वास, स्थिर-अस्थिर शुभ-अशुभमें इसी प्रकार जानना चाहिए। स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग अबन्धकोंके सर्वलोक है। नपुंसकवेदके बन्धकोंके सर्वलोक है तथा अबन्धकोंके लोकका संख्यातवाँ भाग है।[2] तिर्यंचायु, चार जाति, पाँच संस्थान, औदारिक अंगोपांग, छह संहनन, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, दो स्वर तथा आदेयमें स्त्रीवेदका भंग जानना चाहिए। एकेन्द्रिय, हुण्डकसंस्थान, स्थावर, दुर्भग तथा अनादेयमें नपुंसकवेदका भंग जानना चाहिए। मनुष्यायुके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन है। अबन्धकोंका लोकका संख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। मनुष्य-तिर्यंचायुके बन्धकोंका लोकका संख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंका[3] लोकका संख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। छह संहनन, दो विहायोगति तथा दो स्वरमें इसी प्रकार है। तिर्यंचगतिके बन्धकोंके सर्वलोक है। अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग है। मनुष्यगतिके बन्धकोंके [लोकका] असंख्यातवाँ भाग है, अबन्धकोंके सर्वलोक है। मनुष्यगति तिर्यंचगतिरूप दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंके सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं। मनुष्य-तिर्यंचानुपूर्वी तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार है। उद्योतके बन्धकोंका लोकका संख्यातवाँ भाग वा $\frac{7}{14}$ भाग है। अबन्धकोंके सर्वलोक है। बादर तथा

---

१. बादरेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स संखेज्जदिभागो। समुग्घादउववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो।–(५१-५४ सू०,खु० बंध)। २. "बादरवाउपज्जत्तएहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स संखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा।"–षट्खं०, फो०, सू० ६६, ७२। ३. "मारणंतियउववादपरिणदेहि सव्वलोगो फोसिदो। एवं बादरतेउकाइयपज्जत्ताण पि वत्तव्वं। णवरि वेउव्वियस्स तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो वत्तव्वो।"–ध० टी०, फो०, पृ० २५२।

साधारणं वेदणीय-भंगो। सुहुम अजस० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा लोगस्स संखेज्जदिभागो, सत्तचोद्दसभागो वा। दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एवं बादर-वाउ० अपज्जत्ताति। बादर पुढवि-आउ० तेउ०-तेसिं च अपज्जत्ता बादर-वणप्फदि णिगोद-पज्जत्ता-अपज्जत्ता बादर-वणप्फदि० पत्तेय तस्सेव अपज्जत्त बादरएइंदिय-भंगो। णवरि यं हि लोगस्स संखेज्जदिभागो तं हि लोगस्स असंखेज्जदिभागो कायव्वो।

१९९. पंचिंदिय-तस-तेसिं पज्जत्ता–पंचणा० छदंस० अट्ठक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंत बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठ-तेरह-चोद्दसभागो वा सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। थीणगिद्धि०३ अणंताणु०४ बंधगा अट्ठतेरह०, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो केवलिभंगो। [साद०

यशःकीर्तिमें इसी प्रकार जानना चाहिए। पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारणमें वेदनीयके समान भंग हैं। सूक्ष्म तथा अयशःकीर्तिके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका लोकका संख्यातवाँ भाग वा ७/१४ है। बादर-सूक्ष्म तथा यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है। बादरवायुकायिक, बादरवायुकायिक अपर्याप्तकोंमें इसी प्रकार है। बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर तेजकायिक, बादर-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक, बादर-अप्कायिक अपर्याप्तक, बादर-तेजकायिक-अपर्याप्तक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक, बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक, बादर निगोद पर्याप्तक, बादर-निगोद-अपर्याप्तक, बादर वनस्पति प्रत्येक, बादर वनस्पति प्रत्येक अपर्याप्तमें बादर एकेन्द्रियके समान भंग है। विशेष, जहाँ लोकका संख्यातवाँ भाग है, वहाँ लोकका असंख्यातवाँ भाग करना चाहिए।

विशेषार्थ—स्वस्थान पदों-द्वारा लोकके संख्यात भाग स्पर्शके विषयमें 'खुद्दाबन्ध' टीकामें कहा है। वायुकायिक जीवोंसे परिपूर्ण पाँच राजू बाहल्यरूप राजूप्रतर बादर एकेन्द्रिय जीवोंसे परिपूर्ण सात पृथिवियों, उन पृथिवियोंके नीचे स्थित बीस-बीस हजार योजन बाहल्यरूप तीन-तीन वातवलय क्षेत्रों तथा लोकान्तमें स्थित वायुकायिक क्षेत्रको एकत्रित करनेपर तीनों लोकोंका संख्यातवाँ भाग और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणा क्षेत्र विशेष उत्पन्न होता है। इसलिए अतीत व वर्तमान कालोंमें लोकका संख्यातवाँ भाग प्राप्त होता है। (खु० ब० पृ० ३९३)।

१९९. [1] पंचेन्द्रिय, त्रस, पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रस-पर्याप्तकोंमें–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, आठ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धक लोकके असंख्यातवें भाग, ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोकका स्पर्शन करते हैं। अबन्धकोंका केवली-भंग है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके ८/१४ भाग वा केवलीके समान भंग जानना चाहिए।

---

१ "पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा। सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।"–षट्खं०, फो०, सू० ६०-६२। "तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं।" –सू० ७२।

बंधगा अट्ठ-तेरह-चोद्दस० केवलि-भंगो।] अबंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। असाद-बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठतेरह-चोद्दस० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० चोद्दसभागो केवलिभंगो। दोण्णं अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो। मिच्छत्तस्स बंधगा अट्ठतेरह०, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वस्थान पदकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्श करते हैं। देवोंके विहारका आश्रय कर कुछ कम ८/१४ भाग स्पर्शन है। समुद्घातोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग, देशोन ८/१४, संख्यात बहुभाग अथवा सर्वलोक स्पृष्ट होता है। वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंकी अपेक्षा ८/१४ भाग स्पर्शन है, क्योंकि विहार करनेवाले देवोंके उक्त समुद्घातोंके विरोधका अभाव है। तैजस और आहारक समुद्घात पदोंसे चार लोकोंका असंख्यातवाँ भाग और मानुष लोकोंका संख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। दण्ड तथा कपाट समुद्घातोंको प्राप्त जीवों-द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवाँ भाग और मानुष क्षेत्रसे असंख्यात गुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। इतना विशेष है कि कपाट समुद्घातमें तिर्यग्लोकसे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। प्रतर समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यात बहुभाग क्षेत्र स्पृष्ट है। क्योंकि इस अवस्थामें वातवलयोंको छोड़कर सम्पूर्णलोकमें जीवोंके प्रदेश व्याप्त होते हैं। मारणान्तिक तथा लोक पूरण समुद्घात पदोंसे सर्वलोक स्पृष्ट है।

उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग अथवा सर्वलोक स्पृष्ट[1] है। सर्वलोकमें स्थित सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंमें-से पंचेन्द्रिय जीवोंमें आकर उत्पन्न होनेवाले प्रथम समयवर्ती जीवोंके सर्वलोकमें व्याप्त देखे जानेसे उपपादकी अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट कहा गया है। (खुद्दा बंध,टीका पृ० ३९६—३९९)।

सप्तम पृथ्वीके नारकी मारणान्तिक कर मध्य लोकको स्पर्श करते हैं। मध्य लोकसे जीव लोकाग्रमें जाकर बादर पृथ्वी कायिकों आदिमें उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार छह और सात राजू मिलकर तेरह राजू स्पर्शन कहा है। [2]जीवट्ठाणकी धवला टीकामें लिखा है— मारणान्तिक समुद्घात पद परिणत वैक्रियिक काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंने देशोन १३/१४ भाग स्पर्श किये हैं जो मेरुतलसे नीचे छह राजू और ऊपर सात राजू जानना चाहिए।

[साता वेदनीयके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली-भंग है।] अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। असाताके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्व लोक है। अबन्धकोंका ८/१४ १३/१४ वा केवली-भंग है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली-भंग है। दोनोंके अबन्धकोंका लोकके असंख्यातवें भाग है।

विशेष—[3]दोनोंके अबन्धक अयोगकेवलीका स्पर्शन लोकका असंख्यातवाँ भाग कहा है।

मिथ्यात्वके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली-भंग

---

१. विविक्खिदण्णकायपढमपज्जत्तिपत्ति उववाद —गो० जी०,१९९ पृ० ४४४। २ मारणंतियपरिणदेहि तेरह चोद्दसभागा फोसिदा। हेट्ठा छ, उवरि सत्त रज्जू।—जीव०,फो०,पृ० २६६। ३ पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।—सू० ९।

अपच्चक्खाणा०४ बंधगा अट्ठतेरह०, सव्वलोगो वा। अबंधगा छचोद्दसभागो केवलिभंगो। इत्थि० पुरिस० बंधगा अट्ठ-बारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। णवुंस० बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारह० केवलि-भंगो। तिण्णि वेदाणं बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। इत्थिभंगो पंचसंठा० छस्संघ० सुभग-दोसर-आदे०। णवुंसकभंगो हुंडसंठा० दूभग० अणादे०। साधारणेण वेदभंगो। णवरि संघडणसरणामाणं बंधगा अट्ठ-बारह-चोद्दसभागो वा। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दस० सव्वलोगो वा। हस्सरदि-अरदि-सोग-बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-तेरह० भागो, केवलिभंगो। चदुण्णं बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। एवं थिराथिरसुभासुभ०। दो-आयु तिण्णिजादि। आहारदुगं खेत्तभंगो। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। दो-आयु० मणुसगदि-आदाव-तित्थय० बंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठ-तेरह० केवलिभंगो। चदु-आयुबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो।

है। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अवन्धकोंका ६/१४ वा केवली-भंग है।

विशेष—[1]अप्रत्याख्यानावरण ४ के अवन्धक देशसंयमीके अच्युत स्वर्गपर्यन्त मारणान्तिककी अपेक्षा ६/१४ कहा है। (ध० टी०,फो० पृ० १७०)

स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है, अवन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवलीभंग है।

विशेष—मेरुतलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू इस प्रकार ८/१४ है। ७वीं पृथ्वीके नारकी मारणान्तिक कर मध्यलोकका स्पर्श करते है। अच्युत स्वर्गके देवोंने मध्यलोकका स्पर्शन किया, इस प्रकार १२/१४ राजू स्त्री-पुरुषवेदके बन्धकोंके हुए।

नपुंसकवेदके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अवन्धकोंका ८/१४, १२/१४ वा केवली-भंग है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका ८/१४,१३/१४ वा सर्वलोक है; अवन्धकोंका केवली-भंग है। ५ संस्थान, ६ संहनन, सुभग, दो स्वर, आदेयका स्त्रीवेदके समान भंग है। हुंडक संस्थान, दुर्भग, अनादेय-का नपुंसक वेदके समान भंग है। इनका सामान्यसे वेदके समान भंग है। विशेष, संहनन, स्वर नामक प्रकृतियोंके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ भाग है, अवन्धकोंके ८/१४,९/१४ वा सर्वलोक भंग है।

विशेष— तीसरी पृथ्वीमे विक्रिया-द्वारा पहुँचा हुआ देव मारणान्तिक-द्वारा लोकाग्रका स्पर्श करता है,इस प्रकार ९/१४ भाग होता है।

हास्य-रति, अरति-शोकके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक स्पर्श है। अवन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली-भंग है। सामान्यसे हास्यादि ४ के बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अवन्धकोंका केवली भंग है। स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, में इसी प्रकार जानना चाहिए।

दो आयु, ३ जाति तथा आहारकद्विकमे क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है, अवन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली भंग है। दो आयु; मनुष्यगति, आतप तथा तीर्थंकरके बन्धकोंका ८/१४ है; अवन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवलीभंग है। चार आयुके बन्धकोंका

1. "संजदासंजदेहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा"—सू० ७, ८।

अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। दोगदि बंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। तिरिक्खगदि बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-बारह० केवलिभंगो। चदुण्णं गदीणं बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलि-भंगो। एवं आणुपुव्वीणं। एइंदिय० बंधगा अट्ठ-णव-चोद्दस० सव्वलोगो वा अबंधगा। अट्ठ-बारह० केवलिभंगो। पंचिंदि० बंधगा अट्ठ-बारह०। अबंधगा अट्ठ-णवचोद्दस० केवलिभंगो। पंचण्णं जादीणं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। ओरालि० बंधगा अट्ठ-तेरह०, सव्वलोगो वा। अबंधगा बारस० केवलिभंगो। वेउव्विय० बंधगा बारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलि-भंगो। दोण्णं बंधगा धुविगाणं भंगो। ओरालि० अंगो० अट्ठबारह-चोद्दस०। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। वेउव्वि० अंगो० बंधगा बारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगाणं अट्ठबारह-भागो। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो केवलिभंगो। परघादुस्सा० बंधगा अट्ठ-तेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। उज्जोवस्स बंधगा अट्ठतेरह०। अबंधगा अट्ठतेरह-भागो केवलिभंगो। पसत्थ-अप्पसत्थविहायगदिबंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा० अट्ठ-तेरह० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठ-णव-चोद्दस० केवलिभंगो। तसबंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठणवचोद्दस० केवलिभंगो। थावर-

---

८/१४ है, अवन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। नरकगति-देवगतिके वन्धकोंका ६/१४ है, अव-न्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा केवली भंग है। तिर्यंचगतिके वन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अव-न्धकोंका ८/१४, १२/१४ वा केवली-भंग है। चारों गतिके वन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अवन्धकोंमे केवली-भंग है। आनुपूर्वियोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए।

एकेन्द्रियके वन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है; अवन्धकोंके ८/१४ १२/१४ वा केवली-भंग है। पंचेन्द्रियके वन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है; अवन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा केवली-भग है। पचजातियों-के वन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है, अवन्धकोंके केवली-भंग है। औदारिक शरीरके वन्धकों-के ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अवन्धकोंके १२/१४ वा केवली-भंग है।

विशेष—औदारिक शरीरके अवन्धकों अर्थात् वैक्रियिक शरीरके वन्धकोंके मेरुतलसे ऊपर अच्युत पर्यन्त ६ राजू तथा सप्तम पृथ्वी पर्यन्त ६ राजू, इसी प्रकार १२/१४ हैं।

वैक्रियिक शरीरके वन्धकोंके १२/१४, अवन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा केवली-भंग है। दोनोंके वन्धकोंके ८/१४, १३/१४, लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक स्पर्शन ध्रुव प्रकृतियोंके वन्धकोंके समान है; अवन्धकोंके केवली-भंग है। औदारिक अंगोपागके वन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अव-न्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली-भंग है। वैक्रियिक अंगोपांगके वन्धकोंका १२/१४ है। अवन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली-भंग है। दोनोंके वन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अवन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा केवली-भंग है। परघात, उच्छ्वासके वन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अवन्धकोंके केवली-भंग जानना चाहिए। उद्योतके वन्धकोंका ८/१४, १३/१४-है; अवन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली भंग है। प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्तविहायोगतिके वन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अवन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा केवली-भंग है। दोनोंके वन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अवन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा केवली भग है।

विशेष—एकेन्द्रिय जातिके साथ विहायोगतिका सन्निकर्ष नहीं पाया जाता है, अत.

बंधगा अट्ठ-णव-चोद्दस० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-बारह० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। बादर-बंधगा अट्ठ-तेरह०। अबंधगा केवलिभंगो। पज्जत्त-पत्तेय० बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। सुहुम-अपज्जत्त-साधारणबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-तेरह० केवलिभंगो। बादर-सुहुम-बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। जसगित्ति उज्जोव (?) बंधगा, अजस० बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-तेरह० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा केवलिभंगो। उच्चागोदं मणुसायुभंगो। णीचागोदं बंधगा अट्ठ-तेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठ-तेरह० केवलिभंगो।

३००. पंचमण० पंचवचि०। णवरि केवलिभंगो णत्थि। वेदणीयस्स अबंधगा णत्थि। कायजोगि-ओघो। णवरि वेदणी० अबंधगा णत्थि।

विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा ऊपर ६ भाग तथा नीचे ६ भागकी अपेक्षा कुछ कम तथा केवलीके कुछ कम सात भाग तथा नीचे छह भाग, इस प्रकार कुछ कम भाग जानना चाहिए।

त्रसके बन्धकोंका ८, १२ है; अबन्धकोंके कुछ ८, १२ वा केवली-भंग है। स्थावरके बन्धकोंका ८, १२ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंका ८, १२ वा केवली-भंग है। दोनोंके बन्धकोंका ८, १२ अथवा सर्वलोक है; अबन्धकोंका केवली-भंग है। बादरके बन्धकोंका कुछ ८, १३ है। अबन्धकोंके केवली-भंग है। पर्याप्त, प्रत्येकके बन्धकोंका ८, १३ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंका केवली-भंग है। सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है।[1] अबन्धकोंके ८, १३ वा केवली-भंग है। बादर, सूक्ष्मके बन्धकोंके कुछ ८, १३ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंके केवली-भंग है। यशःकीर्ति, उद्योत (?) के बन्धकों, अयशःकीर्तिके बन्धकोंके ८, १३ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंके ८, १३ वा केवली-भंग है। दोनोंके बन्धकोंके ८, १३ वा सर्वलोक भंग है; अबन्धकोंके केवली-भंग है।

विशेष—यहाँ यशःकीर्तिके साथ उद्योतका पाठ अधिक है, कारण पश्चात्, उच्छ्वासके बन्धकोंके अनन्तर उद्योतका वर्णन किया जा चुका है।

उच्चगोत्रका मनुष्यायुके समान भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग, ८ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंका सर्वलोक है। नीच गोत्रके बन्धकोंका कुछ ८, १३ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंके कुछ ८ वा केवली-भंग है।

३००. पंच मन, पंच वचनयोगियोंमें—इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ केवली-भंग नहीं है। वेदनीयके अबन्धक नहीं हैं।

विशेषार्थ—पंच मनोयोगी, पंच वचनयोगियोंने स्वस्थान पदोंसे वर्तमानकालकी अपेक्षा, लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन है। विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षा कुछ कम ८ भाग स्पर्श किया है, क्योंकि मनोयोगी और वचनयोगी जीवोंका विहार आठ राजू प्रमाण त्रसनाडीमें पाया जाता है।

---

१. "पंचिदियअपज्जत्ता... केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा, सव्वलोगो वा।" —खु० बं०, खे० सू० ३०, ३१।

२०१. ओरालियकायजोगीसु–पंचणा० छदंसणा० अट्ठकसा० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो। सेसाणं तिरिक्खोघो कादव्वो। णवरि अबंधा धुविगाणं भंगो आयु-संघड-विहायगदिसरं मोत्तूण।

२०२. ओरालियमिस्स-वेगुव्वियमिस्सआहार० आहारमिस्स खेत्तभंगो। णवरि ओरालियमिस्स-मणुसायुबंधगा लोगस्स असं खेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा सव्वलोगो।

२०३. वेगुव्विय-कायजोगीसु–पंचणा० छदंस० बारसक० भयदु० ओरालि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त० पत्तेय-णिमिण-पंचंतराइगाणं बंधगा अट्ठ-

समुद्घातकी अपेक्षा वर्तमानकालकी स्पर्शनामें लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। आहारक और तैजस समुद्घात पदोंकी अपेक्षा चार लोकोंका असंख्यातवाँ भाग और मानुष क्षेत्रका संख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात पदोंसे कुछ कम आठ भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि आठ राजू आयत लोक नालीमें सर्वत्र अतीत कालकी अपेक्षा वेदना कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घात पाये जाते हैं। मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है। इन योगोंमें उपपाद पद नहीं होता, क्योंकि उपपाद पदमें मन योग व वचन योगका अभाव है। (खुद्दा बंध,टीका पृ० ४११–४१३)।

काययोगीमें—ओघके समान है। यहाँ वेदनीयके अबन्धक नहीं हैं।

२०१. औदारिक काययोगियोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरण ४ तथा संज्वलन ४ का कषायाष्टक, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंके सर्वलोक है। अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग है। शेष प्रकृतियोंका तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष, आयु, संहनन, विहायोगति तथा स्वरको छोड़कर अबन्धकोंमें ध्रुव प्रकृतियोंका भंग जानना चाहिए।

२०२. [1]औदारिक मिश्र, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारकमिश्रमें क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवाँ भाग जानना चाहिए। विशेष, औदारिक मिश्र काययोगमें–मनुष्यायुके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक स्पर्शन है; अबन्धकोंके सर्वलोक है।

२०३. [2]वैक्रियिक काययोगियोंमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, अप्रत्याख्यानावरणादि १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक-तैजस-कार्माण शरीर, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्त,

१. कायजोगी-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो – (खु०बं० पृ० ४१३)। २. "ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं (सव्वलोगो)। सासणसम्मादिट्ठि प्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।–षट्खं०, फो०,सू० ८१–८३। ३. "वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी-सासणसम्मादिट्ठी-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।"–सू० ९४। "आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।"–सू० ९५। "ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघं।"–सू० ८८। "सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।"–सू० ८९। ४. "वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठ-तेरह चोद्दसभागा वा देसूणा।"–सू०–९० ।

तेरहभागो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त० अणंताणु०४ बंधगा अट्ठ-तेरह०। अबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। णवरि मिच्छत्तस्स बंधगा अट्ठबारहभागो। सादा-

---

प्रत्येक निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ है। अबन्धक नहीं हैं।

विशेषार्थ—काययोगी और औदारिक मिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदोंसे सर्वलोकका स्पर्शन करते है। वर्तमान तथा अतीत कालोंमें उन जीवोंके सर्वत्र गमनागमन और अवस्थानमे कोई विरोध नहीं है। औदारिक मिश्रकाय योगमे विहारवत् स्वस्थान, वैक्रियिक समुद्घात, तैजस समुद्घात और आहारक समुद्घात नहीं होते।

औदारिक काययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घातकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन करते हैं। यहाँ उपपाद पद नहीं होता।

वैक्रियिक काययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते है। अतीत कालेकी अपेक्षा कुछ कम ८/१४ भाग स्पर्श करते है। समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते है। अतीत कालकी अपेक्षा वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात पदोंसे उक्त वैक्रियिक काययोगी जीवोंने ८/१४ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातसे कुछ कम १३/१४ भाग स्पर्श किये है, क्योंकि मेरु मूलसे ऊपर सात और नीचे छह राजू आयामवाली लोक नालीको पूर्ण कर वैक्रियिक काययोगके साथ अतीत कालमे मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त जीव पाये जाते है। इस योगमे उपपाद नही है।

वैक्रियिक मिश्र काययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते है। इनके विहारवत् स्वस्थान नहीं होता। इस योगमे समुद्घात और उपपाद पद नहीं होते।

आहारक काययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते है। अतीत कालकी अपेक्षा स्वस्थान-स्वस्थान, विहारवत् स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदोंसे आहारक काययोगी जीवोंने चार लोकोंके असंख्यातवे भाग और मानुष क्षेत्रके संख्यातवे भागका स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातसे चार लोकोंके असंख्यातवे भाग और मानुष क्षेत्रसे असंख्यात क्षेत्रका स्पर्श किया है। यहाँ उपपाद पदका अभाव है।

आहारक मिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते है। उनके विहारवत् स्वस्थान पद नहीं होता है। समुद्घात और उपपाद पद भी नहीं होते है। (खुद्दाबंध, टीका, पृष्ठ ४१३-४१९)।

विशेष—मिथ्यादृष्टि वैक्रियिक काययोगियोंने विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिकसमुद्घात पद परिणत जीवोंने ऊपर ६ राजू तथा मेरुतलसे नीचे २ राजू इस प्रकार ८/१४ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा ऊपर ७ तथा नीचे ६ राजू, इस प्रकार १३/१४ भाग स्पर्श किया है। (ध० टी०, फो०, टी०, २६६)।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ है, अबन्धकोंका ८/१४ है। विशेष, मिथ्यात्वके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है।

विशेष—स्त्यानगृद्धित्रिकादिके अबन्धक सम्यग्मिथ्यादृष्टि तथा अविरत सम्यक्त्वी विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक परिणत जीवोंके ८/१४ स्पर्शन किया है। मिश्र गुणस्थानमें मारणान्तिक नहीं है। (ध० टी०, फो०, पृ० २६७)।

सादस्स बंधगा अबंधगा अट्ठ-तेरहभागो। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह०। अबंधगा णत्थि। एवं हस्सादि-दोयुगलं, थिरादि-तिण्णियुगलं। इत्थि० पुरिसवेदाणं बंधगा अट्ठबारह-भागो। अबंधगा अट्ठतेरहभागो। णवुंसग-वेदस्स बंधगा अट्ठ-तेरहभागो। अबंधगा अट्ठ-बारहभागो। तिण्णि वेदाणं अट्ठतेरहभागो। अबंधगा णत्थि। इत्थिभंगो पंचसंठा० ओरालि० अंगो०छस्संघ० सुभग० आदेज्ज०। णवुंसगवेदभंगो हुंडसंठा० दूभग० अणादे०। साधारणेण वेदभंगो। दोआयु० मणुसग० मणुसाणु० आदावं तित्थयरं उच्चागोदं बंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरहभागो। तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु० णीचा-गोदं बंधगा अट्ठ-तेरहभागो। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० भागो। अबंधगा णत्थि। एवं दोण्णं आउ० (णु०) (?) दोगोद०। एइंदि० बंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठबारहभागो। पंचिंदियबंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरहभागो। अबंधगा णत्थि। एवं तस-थावर०। उज्जोव-बंधगा-अबंधगा अट्ठतेरह-चोद्दसभागो वा। पसत्थवि० बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठ-तेरहभागो अप्पसत्थवि० बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठतेरह-

---

साता, असाताके बन्धकों, अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ है। दोनोंके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ है; अबन्धक नहीं हैं। हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिरादि तीन युगलमें इसी प्रकार जानना चाहिए। स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ है। नपुंसकवेदके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। तीनों वेदोंके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ है; अबन्धक नहीं हैं। ५ संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, सुभग, आदेयमें स्त्रीवेदका भंग है। हुंडक संस्थान, दुर्भग, अनादेयमें नपुंसकवेदके समान भंग है। सामान्यसे वेदके समान भंग है। मनुष्य-तिर्यंचायु, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, आतप, तीर्थंकर तथा उच्चगोत्रके बन्धकोंका ८/१४ है; अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ भाग है।

विशेष—वैक्रियिक काययोगी अविरतसम्यक्त्वी विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समुद्घात-द्वारा ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू, इस प्रकार ८/१४ स्पर्शन करता है। तीर्थंकर आदि प्रकृतियोंके अबन्धक मिथ्यात्वी जीवने मेरुतलसे नीचे ६ राजू तथा ऊपर ७ राजू, इस प्रकार १३/१४ भाग स्पर्श किया है।

तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी तथा नीचगोत्रके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ भाग है, अबन्धकोंके ८/१४ भाग हैं। दोनों गतियोंके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ हैं, अबन्धक नहीं हैं। दोनों आनुपूर्वी तथा दोनों गोत्रोंका इसी प्रकार वर्णन जानना चाहिए। एकेन्द्रियके बन्धकोंके ८/१४, ९/१४ है, अबन्धकोंके ८/१४, १२/१४ हैं। पचेन्द्रिय जातिके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है, अबन्धकोंके ८/१४, ९/१४ है। दोनोंके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ भाग है, अबन्धक नहीं है।

विशेष—वैक्रियिक काययोगियोंके विकलत्रयका बन्ध नहीं होनेसे दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय जातिका वर्णन नहीं किया गया है।

त्रस, स्थावरोंका इसी प्रकार जानना चाहिए। उद्योतके बन्धकों, अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ है। प्रशस्तविहायोगतिके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है, अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ है। अप्रशस्तविहायो-

भागो। दोण्णं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। एवं ओरालिय० अंगो० छस्संघ०(?) दोसर०।

२०४. कम्मइगस्स–पंचणा० छदंस० बारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा लोगस्स असं० असंखेज्जा वा भागा वा सव्वलोगो वा। थीणगिद्धि०३ अणंताणु०४ बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा छच्चोद्दसभागो, केवलिभंगो। सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। मिच्छत्तस्स बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा

गतिके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ हैं, अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ हैं। दोनों बन्धकोके ८/१४, १२/१४ भाग हैं, अबन्धकोंके ८/१४ भाग हैं। औदारिक अंगोपाग (?), ६ संहनन (?), दोस्वरमे इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष—औदारिक अंगोपांग तथा ६ संहननका ५ संस्थान, सुभगादिके साथ वर्णन पूर्वमे हो चुका है। यहाँ पुनः उसका वर्णन किस दृष्टिसे किया गया, यह चिन्तनीय है।

२०४ कार्मण काययोगीमे—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। अबन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग वा सर्वलोक है।[1]

विशेष— कार्मण काययोगमे ज्ञानावरणादिके अबन्धक सयोगकेवलीके लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श 'धवला' टीकामें नहीं कहा है, किन्तु यहाँ ज्ञानावरणादिके अबन्धकोंके लोकका असंख्यात भाग कहा है। प्रतर समुद्धातगत केवलीके कार्मण काययोगमे लोकके असंख्यात बहुभाग स्पर्श कहा है। कारण लोक पर्यन्त स्थित वातवलयोंमे केवली भगवान्‌के आत्मप्रदेश प्रतर समुद्धातमें प्रवेश नहीं करते थे। लोकपूरण समुद्धातमे सर्वलोक स्पर्श है। कारण चारों ओरसे व्याप्त वातवलयोंमें भी केवलीके आत्म-प्रदेश प्रविष्ट हो जाते हैं। (ध० टी०,फो० पृ० २७१)।

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंके सर्वलोक है, अबन्धकोंके ६/१४ वा केवली-भंग है।

विशेष—इस योगमें एक उपपाद पद होता है।[2] यहाँ स्त्यानगृद्धि आदिके अबन्धक असंयतसम्यक्त्वी तिर्यंच मेरुतलसे ऊपर छह राजू जा करके उत्पन्न होते है। मेरुतलसे नीचे ५ राजू प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र नही पाया जाता है, कारण नारकी असंयतसम्यक्त्वी जीवोंका तिर्यंचोंमें उपपाद नहीं होता है। (पृ० २७१)।

साता-असाता वेदनीयके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोका सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। मिथ्यात्वके बन्धकोंका सर्वलोक है, अबन्धकोंका

---

१ "कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी ओघ (सव्वलोगो)। सजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जा भागा सव्वलोगो वा।" पदर-गद-केवलीहि लोगस्स असखेज्जा भागा फोसिदा। लोग पेरतट्ठिदवाद वलएसु अपविट्ठजीवपदे सत्तादो। लोगपूरणे सव्वलोगो फोसिदो, वादवलयेसु विपविट्ठजीवपदे सत्तादो। —ध० टी०, फो०, पृ० .२७१, सू० ९६, १०१। २ एत्थ वि उववादपदमेक्क चेव। —ध० टी०,फो०,पृ० २७१।

एक्कारहभागो, केवलिभंगो। इत्थि० पुरिस० णवुंस० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। तिण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा केवलिभंगो। एवं तिण्णं वेदाणं भंगो चदुणोक० पंचजादि-छस्संठा०तसथावरादिणवयुगलं दोगोदं च। तिरिक्खगदि-मणुसगदिबंधगा अबंधगा सव्वलोगो। देवगदिबंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो। तिण्णं गदीणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा केवलिभंगो। एवं तिण्णि आणु०। ओरालि० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदि० वा भागा वा सव्वलोगो वा। वेउव्वियबंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा केवलिभंगो। ओरालि० अंगोवंगस्स बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। वेउव्विय० अंगो खेत्तभंगो। दो-अंगोवंगाणं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। एवं छसंघ० परघादुस्सास-आदाउज्जो० दोविहा० दोसर०। तित्थय० बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो।

२०५. इत्थिवेदे-पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंतराइगाणं बंधगा अट्ठतेरह०

११/१४ अथवा केवली-भंग है।

विशेष—उपपाद पदमे वर्तमान मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीव मेरुके मूल भागसे नीचे पाँच राजू और ऊपर अच्युत कल्प तक छह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन करते हैं,इससे ११/१४ भाग प्रमाण स्पर्श किया हुआ क्षेत्र हो जाता है। (ध० टी०,फो० पृ० २७०)।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदके बन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका सर्वलोक है ; अबन्धकोंका केवली-भंग है। हास्यादि ४ नोकषाय, ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि नवयुगल तथा २ गोत्रका वेदत्रयके समान भंग है। तिर्यंचगति मनुष्यगतिके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक स्पर्श है। देवगतिके बन्धकोंका क्षेत्रके समान अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग भंग है ; अबन्धकोंका सर्वलोक है। तीन गतिके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका केवली-भंग है। तीन आनुपूर्वियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष—कार्मण काययोगमे नरकगति तथा नरकगत्यानुपूर्वीका बन्ध न होनेसे यहाँ तीन ही गतियोंका उल्लेख किया है।[1]

औदारिक शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है ; अबन्धकोंका लोकके असंख्यात बहुभाग वा सर्वलोक है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका क्षेत्र समान भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है ; अबन्धकोंका सर्वलोक है। दोनों शरीरोंके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंके केवली-भंग है। औदारिक अंगोपांगके बन्धकों,अबन्धकोंका सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपांगका क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग, अबन्धकोंका सर्वलोक है। दोनों अंगोपांगोंके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक है। छह संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरमे ऐसा ही है। तीर्थंकरके ,बन्धकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवाँ भंग है। अबन्धकोंके सर्वलोक है।

२०५. स्त्रीवेदमे-५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अन्तरायके बन्धकोंका

---

१ "कम्मे उरालमिस्सं वा।" —गो० क०,गा० ११६। "ओराले वा मिस्से णहि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं।" — गो० क०,गा० ११६।

सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ अणंताणु०४ बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। णिद्दापयला [पच्चक्खाणावरण४] भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। सादबंधगा अट्ठ-णवचोद्दस० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। असादबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठणवचोद्दस० सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। मिच्छत्तस्स बंधगा अट्ठतेरह-चोद्दस० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो। अपच्चक्खाणा०४ बंधगा

८/१४, १३/१४ भाग वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं।[1]

विशेष—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात परिणत देवोंमें आठ राजू बाहुल्यवाले राजू प्रतर प्रमाण क्षेत्रमें भ्रमण करनेकी शक्ति होनेसे ८/१४ स्पर्शन कहा है। मारणान्तिक तथा उपपाद परिणत उक्त जीव सर्वलोकको स्पर्श करते हैं, कारण मारणान्तिक और उपपाद परिणत मिथ्यात्वी स्त्री, पुरुषवेदी जीवोंके अगम्य प्रदेशका अभाव है। ऊपर सात राजू तथा नीचे छह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शनकी अपेक्षा अतीत-अनागत कालकी दृष्टिसे १३/१४ भाग है। (२७२) स्त्रीवेदमें तैजस तथा आहारक समुद्घात नहीं होते।[2]

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है;[3] अबन्धकोंके ८/१४ है।

विशेष—स्त्यानगृद्धि ३ तथा अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक सम्यग्मिथ्यात्वी वा अविरत-सम्यक्त्वी जीवोंने अतीत-अनागत कालकी अपेक्षा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय वैक्रियिक, मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा ऊपर छह और नीचे दो इस प्रकार ८/१४ स्पर्शन किया है। मिश्र गुणस्थानमें उपपाद पद तथा मारणान्तिक समुद्घात नहीं होते हैं। स्त्रीवेदी जीवोंमें असंयत सम्यक्त्वीका उपपाद नहीं होता है।[4] (२७४)

निद्रा-प्रचला, प्रत्याख्यानावरण४, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्मण वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंका क्षेत्रके समान है अर्थात् लोकके असंख्यातवे भाग है[5]। साता वेदनीयके बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। असाताके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। मिथ्यात्वके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ है।[6]

---

१ "वेदाणुवादेण इत्थिवेदपुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा।"–षट्खं०, फो०, सू० १०२, १०३। २ इत्थिवेदे तदुभय (तेजाहारसमुग्घादा) णत्थि —खु० बं०, टी० पृ० ४२१। ३ "सम्मामिच्छादिट्ठि-असजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा।" –सू० १०६। ४. इत्थिवेदेसु असजदसम्मादिट्ठीण उववादो णत्थि—ध० टी०, पृ० २७४। ५. "सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठणचोद्दसभागा देसूणा।" – षट्खं०, फो०, सू० १०४, १०५। ६. "संजदासंजदेहि केवडिय खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा देसूणा।"–सू० १०८।

अट्ठ-तेरह०, सव्वलोगो वा। अबंधगा छच्चोद्दसभागो। इत्थि० पुरिस० बंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो। णवुंस० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। तिण्णं वेदाणं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। हस्सरदि सादभंगो। अरदिसोगं असादभंगो। दोण्णं युगलाणं बंधगा अट्ठ-तेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। एवं थिराथिर-सुभासुभ०। णिरय-देवायु-तिण्णिजादि० (गदि) आहारदुगं तित्थयरं बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा अट्ठ-तेरह-भागो सव्वलोगो वा। दोआयु-मणुसगदि-मणुसाणुपुव्वि-आदाउज्जोवं दोगोदं (?) बंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। दोगदि-दोआणुपुव्वि-बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणु-

---

विशेष—मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंने विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा $\frac{८}{१४}$ भाग स्पर्श किया है, कारण ८ राजू बाहल्यवाले राजू प्रतरके भीतर देव, स्त्री, सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंके गमनागमनके प्रति प्रतिषेधका अभाव है। मारणान्तिक समुद्घात परिणत उक्त जीवोंने नीचे दो और ऊपर ७ राजू अर्थात् $\frac{९}{१४}$ भाग स्पर्श किये हैं। (२७२)

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक स्पर्श है, अबन्धकोंके $\frac{६}{१४}$ है।

विशेष—अप्रत्याख्यानावरणके अबन्धक देशव्रती जीवोंने मारणान्तिक-द्वारा $\frac{६}{१४}$ भाग स्पर्श किये, कारण अच्युत कल्पके ऊपर संयतासंयत तिर्यंचोंका उत्पाद नहीं होता है। (२७५)[1]

स्त्रीवेद-पुरुषवेदके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$ है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। हास्य-रतिमें साता वेदनीयके समान है अर्थात् $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अरति शोकमें असाता वेदनीयके समान भंग है। अर्थात् बन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है। हास्य-रति, अरति-शोक इन दो युगलोंके बन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक हैं। अबन्धकोंके क्षेत्रके समान भंग है। अर्थात् लोकके असंख्यातवे भाग है। स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभमें इसी प्रकार है। नरकायु, देवायु, तीन जाति (?) (गति) आहारकद्विक और तीर्थंकरके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। विशेष, यहाँ जातिके स्थानमें गतिका पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है। जातिका वर्णन आगे किया गया है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। मनुष्यायु, तिर्यंचायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत तथा दो गोत्र (?) के बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$ है; अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है।

विशेष—गोत्रका कथन आगे आया है। अतः यहाँ 'दोगोद' पाठ अधिक प्रतीत होता है।

नरकगति, देवगति, नरकानुपूर्वी, देवानुपूर्वीके बन्धकोंका $\frac{६}{१४}$ है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$,

---

[1] "पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसामग-खवएहि केवडियं खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्ज-दिभागो।" —सू० ११०।

पुव्विबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारहभागो। चदुण्णं गदीणं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। एवं आणुपुव्वीणं। एइंदियबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारहभागो। पंचिंदियं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। पंचण्णं जादीणं बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। ओरालियसरीरं बंधगा अट्ठ-णव-चोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। [अबंधगा] अट्ठबारहभागो। वेउव्वियं बंधगा बारह-भागो। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। पंचसंठाणं इत्थिभंगो। हुंडसंठाणं णवुंसगवेदं साधारणेण वि वेदभंगो। णवरि अबंधगाणं खेत्तभंगो। ओरालिय-अंगोवंगबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो, अबं० अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। वेउव्वियसरीर-अंगोवंगबंधगा बारह-भागो। अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। छस्संघडणं बंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। एवं साधारणेण वि। परघादुस्सासं बंधगा अट्ठ-बारहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। उच्चागोदं (?) बंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो वा। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा।

१३/१४ वा सर्वलोक है। तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वीके बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। चार गतियोंके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। चारों आनुपूर्वीमें इसी प्रकार जानना चाहिए। एकेन्द्रियके बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। पंचेन्द्रियके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है, अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। पाँचों जातियोंके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंके क्षेत्रके समान भंग हैं। औदारिक शरीरके बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। [अबन्धकोंका] ८/१४, १२/१४ है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। दोनों शरीरोंके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। ५ संस्थानोंमे स्त्रीवेदके समान भंग है। हुंडक संस्थानका नपुंसकवेदके समान भंग है। ६ संस्थानोंका सामान्यसे वेदके समान भंग है। विशेष, अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। औदारिक अंगोपांगके बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंका १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। दोनों अंगोपांगोंके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। छह संहननके बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। सामान्यसे भी छह संहननका इसी प्रकार जानना चाहिए। परघात, उच्छ्वासके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ अथवा सर्वलोक है। अबन्धकोंका लोकके असंख्यातवें भाग वा सर्वलोक है। उच्चगोत्रके बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है।

विशेष—यहाँ उच्चगोत्रका पाठ असंगत प्रतीत होता है, कारण इसका कथन आगे किया गया है।

पसत्थविहायगदिं बंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अप्पसत्थविहायगदिं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो सव्वलोगो वा। एवं दोसराणं। तस-बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। थावर-बंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारहभागो। दोण्णं पगदीणं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। बादर-बंधगा अट्ठतेरहभागो। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। सुहुम-बंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठतेरहभागो। दोण्णं पगदीणं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। एवं पज्जत्तापज्जत्तपत्तेय-साधारणं च। सुभग-आदेज्जाणं बंधगा अट्ठचोद्दसभागो, [अबंधगा] अट्ठ-तेरहभागो, सव्वलोगो वा। दूभग-अणादेज्जाणं बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। दोण्णं पगदीणं बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा खेत्तभंगो। जसगित्तिस्स बंधगा अट्ठणव-चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरहचोद्दस-भागो, सव्वलोगो वा। अजसगित्तिस्स बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। उच्चागोदं बंधगा अट्ठभागो, अबंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। णीचागोदं बंधगा

प्रशस्तविहायोगतिके बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अप्रशस्त विहायोगतिके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। दोनों-के बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। दो स्वरोंमें विहायोगतिके समान है। त्रस प्रकृतिके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। स्थावरके बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान है। बादरके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ है। अबन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। सूक्ष्मके बन्धकोंका लोकका असंख्या-तवाँ भाग वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्व-लोक है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान स्पर्शन है। पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारणमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

सुभग, आदेयके बन्धकोंका ८/१४ है। [अबन्धकोंका] ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। दुर्भग, अनादेयके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका ८/१४ है। सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेयके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका क्षेत्रवत् भंग है। यशःकीर्तिके बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अयश:कीर्तिके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है।

विशेष—दोनोंके अबन्धक उपशान्त कषायादिमें होते हैं अतएव अवेदमें अबन्धकोंका अभाव बताया है।

उच्चगोत्रके बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। नीच गोत्रके

अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठभागो। दोण्णं गोदाणं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि।

२०६. एवं पुरिसवेदस्स। णवरि तित्थयरं बंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा।

२०७. णवुंसगवेद०–धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि-तियं अणंताणुबंधिचदुक्कं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा छच्चोद्दसभागो। णिद्दा-पयला-पच्चक्खाणाव०४ भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा खेत्तभंगो। सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एवं जस-अजसगित्ति-दोगोदाणि (?) मिच्छत्तं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा बारहभागो। अपच्चक्खाणावरण-चउक्कं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा

बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$ है। दोनों गोत्रोंके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है।

२०६. पुरुषवेदमे इसी प्रकार है। विशेष, तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$ है। अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है।[1]

२०७. नपुंसकवेदमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका सर्वलोक है, अबन्धकोंका $\frac{६}{१४}$ है।

विशेष—मारणान्तिक पद परिणत असयत सम्यक्त्वी नपुंसकवेदीका अच्युत कल्पके स्पर्शनकी अपेक्षा $\frac{६}{१४}$ भाग कहा है (पृ० २७८)।

निद्रा, प्रचला, प्रत्याख्यानावरण ४, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवाँ भाग है। साता-असाताके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। दोनोंके बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, दोनों गोत्रोंमें (?) इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष—दो गोत्रोंका वर्णन आगे आया है। इससे यहाँ उनके उल्लेखका पाठ अधिक प्रतीत होता है।

मिथ्यात्वके बन्धकोंका सर्वलोक है।

विशेषार्थ—'खुद्दाबन्ध' टीकामें लिखा है,[2] नपुंसकवेदी जीवोंने स्वस्थान समुद्घात और उपपाद पदोंसे सर्वलोक स्पर्श किया है। इसका भाव यह है कि स्वस्थान, वेदना-कषाय-मारणान्तिक समुद्घातों और उपपाद पदोंसे अतीत व वर्तमानकालकी अपेक्षा नपुंसकवेदियों-ने सर्वलोक स्पर्श किया है। तैजस व आहारक समुद्घात नपुंसकवेदियोंके नहीं होते। विहार-वत्स्वस्थान और वैक्रियिक समुद्घात पदोंसे वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्र प्ररूपणाके समान है। अतीतकालकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवे भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अढाई द्वीपसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है। इतनी विशेषता है

---

१. "सम्मामिच्छादिट्ठि–असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा।" — षट्खं०, फो०, सू० १०६। २ णवुसयवेदा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्त फोसिद ? सव्वलोगो। — खु० बं०, सू० १३८, १३९।

छच्चोद्दसभागो। इत्थि० पुरिस० णवुंसग-वेदाणं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। तिण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। हस्सादि०४ बंधगा अबंधगा। [एवं] दोण्णं युगलाणं बंधगा अबंधगा खेत्तभंगो। एवं पंचजादि-छस्संठा०तसथावरादि-अट्ठयुगलं दो-आयु० आहारदुगं तित्थयरं खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो। तिरिक्खायु-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। मणुसायुबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा सव्वलोगो। चदुण्णं आयुगाणं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। एवं छस्संघ० दोविहा० दोसर०। दोगदि० दोआणु० बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबं० सव्वलोगो। दोगदि० दोआणु० बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। चदुगदि-चदुआणु० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा खेत्तभंगो। ओरालियसरीरस्स बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा बारह०। वेउव्विय० बंधगा बारह०। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा

कि वैक्रियिक पदसे तीन लोकोंके संख्यातवें भाग तथा मनुष्य लोक और तिर्यग्लोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है क्योंकि विक्रिया करनेवाले वायुकायिक जीवोंके ८/१४ भाग स्पर्शन पाया जाता है (खु० बं०, टी० पृ० ४२२)।

अबन्धकोंका १२/१४ भाग है।[1]

विशेष—मारणान्तिक पद परिणत मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंने १२/१४ भाग स्पर्श किया, कारण नारकियोंसे ५ राजू तथा तिर्यंचोंके ७ राजू इस प्रकार १२ राजू बाहल्यवाला राजू प्रतर प्रमाण स्पर्शन क्षेत्र है (२७७)।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धकोंका ६/१४ है।[2]

विशेष—मारणान्तिक पद परिणत संयतासंयतोंने ६/१४ स्पर्श किया है, कारण अच्युत कल्पके ऊपर संयतासंयत तिर्यंचोंके गमनका अभाव है (२७८)।

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदके पृथक्-पृथक् रूपसे बन्धकों और अबन्धकोंका सर्वलोक स्पर्शन है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। हास्यादि चारके पृथक्-पृथक् रूपसे बन्धकों, अबन्धकोंका इसी प्रकार है। दोनों युगलोंके बन्धकों, अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। इसी प्रकार पाँच जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि ८ युगल तथा २ आयुमें जानना चाहिए। आहारकद्विक तथा तीर्थंकरका क्षेत्रवत् भंग है; अबन्धकोंके सर्वलोक है। तिर्यंचायुके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक है। मनुष्यायुके बन्धकोंका लोकका असंख्यातवाँ भाग है, वा सर्वलोक है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। चारों आयुके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक है। छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वर, इसी प्रकार है। दो गति, दो आनुपूर्वीके बन्धकोंका ६/१४ भाग है; अबन्धकोंका सर्वलोक है। दो गति, २ आनुपूर्वीके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक है। चार गति, चार आनुपूर्वीके बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। औदारिक शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है। अबन्धकोंका १२/१४ है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका १२/१४ है। अबन्धकोंका सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंका सर्वलोक है। अब-

---

1. "सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। बारह चोद्दसभागा वा देसूणा।" — षट्खं०, फो०, सू० ११२, ११३। 2. "पंचिंदियतिरिक्खेसु असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, छच्चोद्दसभागा देसूणा।" — सू० ११५।

खेत्तभंगो । ओरालिय-अंगोवंगं बंधगा, अबंधगा सव्वलोगो । वेउव्विय-अंगोवंगं, बंधगा बारहभागो, अबंधगा सव्वलोगो । दोण्णं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो । परघादुस्सासं आदावुज्जोवं बंधगा अबंधगा सव्वलोगो । एवं णीचुच्चागोदाणं । अवगदवेदे खेत्त-भंगो । एवं अकसाइ० केवलिणा० संज० सामाइ० छेदो० परिहा० सुहुमं प० (सुहुम-संप०) यथाक्खाद० केवलदंसण त्ति । कोधादि०४ ओघभंगो । णवरि धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो । अबंधगा णत्थि । यं हि अबंधगा अत्थि तं हि लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।

न्धकोंका क्षेत्रके समान है । औदारिक अंगोपांगके बन्धकों और अबन्धकोंका सर्वलोक है । वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंका $\frac{12}{14}$ है; अबन्धकोंका सर्वलोक है । दोनोंके बन्धकों, अब-न्धकोंका सर्वलोक है । परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योतके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक है । इसी प्रकार नीच गोत्र, उच्च गोत्रका है ।

अपगतवेदमें क्षेत्रके समान भंग है ।[1]

विशेषार्थ—अपगतवेदी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है । दण्ड, कपाट वा मारणान्तिक समुद्घातोंको प्राप्त अपगत वेदियों-द्वारा चार लोकों-का असंख्यातवाँ भाग, अढाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र अतीत और वर्तमानकालकी अपेक्षा स्पृष्ट है । विशेष, कपाट समुद्घातगत अपगतवेदियों-द्वारा तिर्यग्लोकका संख्यातवाँ भाग अथवा संख्यातगुणा (तिरियलोगस्स संखेज्जदिभागो संखेज्जगुणो वा फोसिदो) क्षेत्र स्पृष्ट है । प्रतर समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यात बहुभाग तथा लोकपूरण समुद्घात अपगत वेदियोंकी अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट है । इनमें उपपाद पदका अभाव है । (खु० बं०,टीका,पृ० ४२३-४२५) ।

अकषाय, केवलज्ञान, संयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म-साम्पराय, यथाख्यात, केवलदर्शनमें इसी प्रकार है ।

विशेषार्थ—पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करनेपर संयत जीव अकषायी जीवोंके तुल्य नहीं है । क्योंकि अकषायी जीवोंमें अविद्यमान वैक्रियिक-तैजस और आहारक समुद्घात पद संयतोंमें पाये जाते हैं ।

पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करनेपर सामायिक-छेदोपस्थापना शुद्धिसंयत जीव मनः-पर्ययज्ञानियोंके तुल्य होते हैं, क्योंकि मनःपर्ययज्ञानियोंमें तैजस तथा आहारक समुद्घातपदों-का अभाव है, किन्तु सूक्ष्मसाम्परायी मनःपर्ययज्ञानियोंके तुल्य नहीं होते । सूक्ष्म साम्पराय संयमियोंमें वैक्रियिक पदका अभाव है । (खु० बं०,टीका,पृ० ४३१-४३२) ।

क्रोधादि ४ कषायमें-ओघके समान भंग है । विशेष, ध्रुव प्रकृतियों के बन्धकोंका सर्व-लोक है; अबन्धक नहीं है । जहाँ अबन्धक है वहाँ लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन है ।

---

१ "अपगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलिति ओघ । सजोगिकेवली ओघं ।"—षट्खं०, फो०,सू० ११८, ११९ । अवगदवेदा सत्थाणेहि केवडिय खेत्तं फोसिद ?-लोगस्स असंखेज्जदिभागो । समुग्घाद-गदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । असंखेज्जा वा भागा । सव्वलोगो वा । उववादं णत्थि । अकसाई अवगदवेदभंगो । केवलणाणी अवगदवेदभंगो । संजमाणुवादेण संजदा जहाक्खादविहारसुद्धि-संजदा अकसाइभंगो । सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद-सुहुमसांपराइयसंजदाणं मणपज्जवणाणिभंगो । केवल-दंसणी केवलणाणिभंगो —खु० बं०,सू० ।

२०८. मदि० सुद०–धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। सादा-साद-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। एवं तिण्णिवे० हस्सादि-दोयुगलं पंचजादि-छस्संठा० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदाणं च। मिच्छत्तं बंधगा सव्वलोगो। अबं० अट्ठबारह०। दो-आयुबंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो तिरिक्खायुबंधगा अबं० सव्वलोगो। मणुसायु-बंधगा अट्ठबारह० सव्वलोगो। अबंधगा सव्वलोगो। चदुआयुबंध० अबं० सव्वलोगो। एवं छस्संघ०दोविहा० दोसर०। णिरयगदि-णिरयाणु० बंधगा छच्चोद्दस०। अबं० सव्वलोगो। दोगदि० दोआणु० बंध० अबं० सव्वलोगो। देवगदि-देवगदिपाओ० बंधगा पंच-चोद्दस०। अबं०सव्व-लोगो। चदुगदि-चदुआणु० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालि० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा एक्कारहभागो। वेउव्वियाणु० (?) (वेउव्विय) बंधगा एक्कार-हभागो। अबंधगा सव्वलोगो। दोण्णं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। ओरालिय०

---

२०८. मत्यज्ञानी श्रुताज्ञानीमें–ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं। साता, असाताके[1] बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं। तीन वेद, हास्यादि दो युगल, ५ जाति, ६ संस्थान, त्रस-स्थावरादि नव युगल तथा २ गोत्रोंमें इसी प्रकार है। मिथ्यात्वके बन्धकोंका सर्वलोक है, अबन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है।

विशेष—मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन सम्यक्त्वी जीवोंकी अपेक्षा विहारवत्-स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक पदोंमें ८/१४ भाग है। मारणान्तिककी अपेक्षा १२/१४ भाग है। (पृ० २८२)।

देव-नरकायुके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है; अबन्धकोंका सर्वलोक है। तिर्यंचायुके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक है। मनुष्यायुके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ वा सर्वलोक है; अब-बन्धकोंका सर्वलोक है। चार आयुके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक है। छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरमें इसी प्रकार है। नरकगति, नरकानुपूर्वीके बन्धकोंके ६/१४ है। अब-न्धकोंके सर्वलोक है। मनुष्यगति-तिर्यंचगति, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वीके बन्धकों, अब-न्धकोंका सर्वलोक है।

विशेषार्थ—'खुद्दाबन्धकी टीकामें लिखा है—स्वस्थान-स्वस्थान वेदना, कषाय, मार-णान्तिक समुद्घात तथा उपपाद पदोंसे अतीत व वर्तमानकालकी अपेक्षा मति-श्रुत-अज्ञानी जीवोंने सर्वलोक स्पर्श किया है; क्योंकि ऐसा स्वभावसे है। विहारवत् स्वस्थानपदसे अतीत व वर्तमानकालकी अपेक्षा यथाक्रमसे ८/१४ भाग व तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। वैक्रियिक पदकी अपेक्षा वर्तमानकी प्ररूपणा क्षेत्रके समान है। अतीतकालकी अपेक्षा ८/१४ भाग स्पृष्ट है (पृ० ४२६)।

देवगति, देवगत्यानुपूर्वीके बन्धकोंका ५/१४, अबन्धकोंके सर्वलोक है। ४ गति, ४ आनु-पूर्वीके बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं।

---

1 णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी सत्थाण-समुग्घादउववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद? सव्वलोगो वा। –खु. ब.०,सू० १४९-१५०

अंगोवंगं बंधगा, अबंधगा सव्वलोगो। वेगुव्विय० अंगोवंगं बंधगा [अबंधगा] वेगुव्विय० भंगो। दोण्णं बंधगा अबं० सव्वलोगो।

२०६. एवं अब्भवसिद्धि० मिच्छादिट्ठिम्हि [वि] भंगे धुविगाणं बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। सादासाद० बंधगा अबंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। एवं चदुणो०४ (?) थिराथिर-सुभासुभाणं। मिच्छत्त-बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारहभागो। इत्थि० पुरिस० बंधगा अट्ठबारह-चोद्दस०। अबं० अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। णवुंस० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। अबंधगा अट्ठबारह०। तिण्णं वेदाणं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। इत्थिवेदभंगो पंचिंदिय-जादि पंचसंठा० छस्संघ० तससुभग० आदेज्ज०। णवुंसगभंगो एइंदिय-हुंडसंठा० थावरदूभग-अणादेज्जाणं। णवरि एइंदिय-थावर-बंधगा अट्ठणव० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठबारहभागो। पत्तेगेण साधारणेण वेदभंगो। दोआयु० तिण्णिजादि-बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। दोआयु० मणुसगदि० मणुसाणु० आदाव० उच्चा-

---

औदारिक शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धकोंका $\frac{११}{१४}$ है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका $\frac{११}{१४}$ है; अबन्धकोंका सर्वलोक है।

विशेष—उपपादकी अपेक्षा नीचेके ५ राजू तथा ऊपरके छह राजू इस प्रकार $\frac{११}{१४}$ भाग स्पर्शन है। (२८२)।

दोनों शरीरके बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। औदारिक अंगोपांगके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकों [अबन्धकों] का वैक्रियिक शरीरके समान है अर्थात् बन्धकोंका $\frac{११}{१४}$, अबन्धकोंका सर्वलोक भंग है। दोनोंके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक है।

२०६. अभव्यसिद्धिकोंमें और मिथ्यादृष्टियोंमें इसी प्रकार है।

विभंगज्ञानमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है।

विशेष—मेरुतलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे २ राजू इस प्रकार $\frac{८}{१४}$ है तथा मेरुतलसे ऊपर ७ राजू तथा नीचे ६ राजू इस प्रकार $\frac{१३}{१४}$ भाग है।

साता-असाताके बन्धकों, अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। हास्य, रति, अरति, शोक ये ४ नोकषाय, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभमें इसी प्रकार है। मिथ्यात्वके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है, अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है। स्त्रीवेद-पुरुषवेदके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है; अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। पंचेन्द्रिय जाति, ५ संस्थान, ६ संहनन, त्रस, सुभग, आदेयमें स्त्रीवेदका भंग है। एकेन्द्रिय हुंडक संस्थान, स्थावर, दुर्भग तथा अनादेयमें नपुंसकवेदका भंग है। विशेष, एकेन्द्रिय, स्थावरके बन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{९}{१४}$ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंके $\frac{८}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ है। प्रत्येक तथा सामान्यसे वेदके समान भंग है। दो आयु, तीन जातिके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है, अबन्धकोंका $\frac{८}{१४}$, $\frac{१३}{१४}$ वा सर्वलोक है।

गोदं बंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। णिरयगदिबंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। तिरिक्खगदि० णीच० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा अट्ठेकारस०। णवरि णीचा० अट्ठभागो। देवगदि-बंधगा पंचचोद्दस०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। चदुण्णं गदीणं बंधगा अट्ठ-तेरहभागो, सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। एवं चेव आणुपुव्वि-णीचुच्चागो०। ओरालिय-सरीरं बंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। अबंधगा एक्कारहभागो। वेउव्विय-बंधगा एक्कारह०। अबंधगा अट्ठतेरहभागो [सव्वलोगो वा]। दोण्णं वे० (बं०) अट्ठतेरह० सव्वलो०। अबंधगा णत्थि। ओरालि० अंगो० बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। वेउव्विय० अंगो० बंधगा एक्कारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। दोण्णं बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठणवचो० सव्वलोगो वा। परघादुस्सा० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। उज्जोव-बंधगा अट्ठतेरहभागो, अबंधगा अट्ठतेरहभागो सव्वलोगो वा। एवं जसगित्ति०। पसत्थविहायगदिं बंधगा अट्ठबारहभागो। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। अप्पसत्थवि० बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। दोण्णं बंधगा अट्ठबारह०। अबं० अट्ठणवचोद्दसभागो, सव्वलोगो वा। एवं दोसर० बादरबंधगा अट्ठतेरह०। अबंधगा लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। तव्विवरीदं सुहुमं। दोण्णं बंध०

दो आयु, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, आतप तथा उच्चगोत्रके बन्धकोंके ८/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। नरकगतिके बन्धकोंके ६/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। तिर्यंच गति, नीच गोत्रके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंके ८/१४, ११/१४ है। विशेष, नीच गोत्रका ८/१४ है। देवगतिके बन्धकोंके ५/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। चारों गतियोंके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार आनु-पूर्वियों तथा नीच, उच्च गोत्रोंमें जानना चाहिए।

औदारिक शरीरके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंका ११/१४ है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंका ११/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। औदारिक अंगोपांगके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंका ११/१४; अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। दोनों अंगोपांगोंके बन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। परघात, उच्छ्वासके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। उद्योतके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। यशःकीर्तिमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

प्रशस्त विहायोगतिके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अप्रशस्त-विहायोगतिके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४, ९/१४ वा सर्वलोक है। इसी प्रकार दो स्वरके विषयमें जानना चाहिए। बादरके बन्धकोंके ८/१४, १३/१४ है; अबन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा

अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबं० णत्थि। पज्जत्त० पत्तेग० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबं० लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा। तव्विवरीदं अपज्ज० साधारण०। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि। अजस० बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलो०। अबं० अट्ठतेरह०। दोण्णं बंधगा अट्ठतेरह० सव्वलोगो वा। अबंधगा णत्थि।

२१०. आभि० सुद० ओधि०—पंचणा० छदंस० अट्ठकसा० पुरिस० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० समचदु० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थ० तस०४ सुभगादि-तिण्णि णिमिण-उच्चागोदं-पंचंतराइगाणं बंधगा अट्ठचो०। अबं० खेत्तभंगो।

सर्वलोक है। सूक्ष्मके विषयमें विपरीत क्रम है अर्थात् बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है; अबन्धकोंका ८/१४, वा १३/१४ है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं। पर्याप्त प्रत्येकके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंमें लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है। अपर्याप्त तथा साधारणमें इसके विपरीत क्रम है अर्थात् बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग वा सर्वलोक है; अबन्धकोंके ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। अयशःकीर्तिके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है; अबन्धकोंका ८/१४, १३/१४ है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, १३/१४ वा सर्वलोक है। अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—खुद्दाबन्धमें विभंगज्ञानीके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है — विभंगज्ञानी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा उनने देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। स्वस्थान पदोंसे विभंगज्ञानी जीवोंने तीन लोकोंका असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवाँ भाग और अढाई द्वीपसे असंख्यातवाँ गुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। समुद्घातकी अपेक्षा विभंगज्ञानी जीवोंने लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा उनने देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। विहार करनेवाले विभंगज्ञानियोंने वेदना कषाय और वैक्रियिक समुद्घात पदोंसे देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक पदका आश्रय कर सर्वलोक स्पर्श किया है; क्योंकि विभंगज्ञानी तिर्यंच और मनुष्योंके मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा अतीत कालमें सर्वलोक स्पर्श पाया जाता है। देव तथा नारकियोंके मारणान्तिक समुद्घातका आश्रय कर १३/१४ भाग होते हैं। इनके उपपाद पदका अभाव है।

२१० आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानियोंमें-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ८ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय, तैजस-कार्मण, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त-विहायोगति, त्रस ४, सुभगादि ३, निर्माण, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धकोंके ८/१४, अबन्धकोंमें क्षेत्रके समान भंग है। अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है।

विशेष—अतीत कालकी अपेक्षा विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समुद्घातगत सम्यक्त्वी जीवोंने ८/१४ भाग स्पर्शन किया, जो कि मेरुके मूलसे ६ राजू ऊपर तथा नीचे दो राजू प्रमाण है। (१६७)[2]

१. विभंगणाणी सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा। समुग्घादेण केवडिय खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा। सव्वलोगो वा। उववाद णत्थि। — खुद्दा बंध, सू० १५१-१५८। २ सजदासजदेहि केवडिय खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। —षट्खं०,फो०,सू० ७।

सादासाद-बंधगा अबंधगा अट्ठचोद्दस० । दोण्णं बंधगा अट्ठचोद्दस० । अबं० णत्थि । अप्पचक्खाणा०४ वज्जरिसह० बंधगा अट्ठचो० । अबं० छचोद्दस० । हस्सरदि-अरदि-सोगाणं बंधगा अबंधगा अट्ठचोद्दस० । दोण्णं युगलाणं बंधगा अट्ठचो० । अबं० खेत्तभंगो । एवं थिराथिर-सुभासुभ-जसअजसगित्तीणं । मणुसायुतित्थयरं बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो । देवायु० आहारदुग० बंधगा खेत्तभंगो । अबं० अट्ठचो० । दोण्णं आयुगाणं बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दस० । मणुसगदि०४ बंधगा अट्ठचोद्दस० । अबं० छचोद्दस० । देवगदि०४ बंधगा छच्चोद्दस० । अबं० अट्ठचोद्दस० । दोण्णं बं० अट्ठ-चोद्दसभागो । अबंधगा खेत्तभंगो । एवं दोसरी० दोअंगो० आणु० । एवं ओधिदं० ।

साता-असाताके बन्धकों, अबन्धकोंका ८/१४ है। दोनोंके बन्धकोंका ८/१४ है; अबन्धक नहीं हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४. वज्रवृषभसंहननके बन्धकोंका ८/१४, अबन्धकोंका ६/१४ है।

विशेष—मारणान्तिकसमुद्घातगतसंयतासंयतोंने अच्युतकल्प पर्यन्त ६/१४ भाग स्पर्श किया है।

हास्य-रति, अरति-शोकके बन्धकों, अबन्धकोंका ८/१४ है। दोनों युगलोंके बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है। इस प्रकार स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिमे भी जानना चाहिए। मनुष्यायु तथा तीर्थंकरके बन्धकों, अबन्धकोंके ८/१४ है।[2] देवायु तथा आहारकद्विकके बन्धकोंका क्षेत्रवत् भग है अर्थात् लोकके असंख्यातवें भाग है; अबन्धकोंके ८/१४ है।

दो आयुके बन्धकों, अबन्धकोंका ८/१४ है। मनुष्यगति ४ के बन्धकोंका ८/१४ है। अब-न्धकोंका ६/१४ है। देवगति ४ के बन्धकोंका ६/१४ है; अबन्धकोंका ८/१४ है।

विशेष—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांगके अबन्धक देशव्रतीकी अपेक्षा ६/१४ कहा है।

मनुष्यगति, देवगतिके बन्धकोंका ८/१४ है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवाँ भाग है। दो शरीर, दो अंगोपांग तथा दो आनुपूर्वीमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

अवधिदर्शनमे – ऐसा ही जानना चाहिए।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी तथा अवधिज्ञानी जीवोंने स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे वर्तमान कालकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। उक्त तीन ज्ञानवाले जीवोंने स्वस्थान पदोंसे तीन लोकोंका असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवाँ भाग तथा अढाई द्वीपसे असंख्यात गुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है। तैजस और आहारक समुद्घातकी अपेक्षा क्षेत्रके समान निरूपण है। विहारवत् स्वस्थान वेदना, कषाय वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात पदोंसे देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है।

---

१. पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । –षट्खं०,फो०,सू० ९ । २. असंजदसम्माइट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदिभागो । अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा –सू० ५–६ ।

मणपज्ज० संजद० सामा० छेदो० परिहार० सुहुमसंप० खेत्तभंगो।

२११. संजदासंजद–धुविगाणं बंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा णत्थि। सादा-साद-बंधा अबंधगा छच्चोद्दस०। दोण्णं पगदीणं बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा णत्थि। एवं चदुणोक० थिरादि-तिण्णियुगल०। देवायु-तित्थयरं बंधगा खेत्तभंगो। अबं० छच्चोद्दसभागो। असंजदेसु–धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितियं अणंताणुबं०४ बंधगा सव्वलो०। अबंधगा अट्ठचोद्दस०। मिच्छत्त-

---

उपपाद पदसे लोकका असंख्यातवाँ भाग तथा अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम ६/१४ भाग स्पर्श किया है। आरण, अच्युत आदिके देवोंमे उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच असंयत सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवोंका उपपाद क्षेत्र देशोन ६/१४ भाग है।

शंका—नीचे दो राजू मात्र मार्ग जाकर स्थित अवस्थामें आयुके क्षीण होनेपर मनुष्यमें उत्पन्न होनेवाले देवोंका उपपाद क्षेत्र क्यो नहीं ग्रहण किया?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रथम दण्डसे कम उसका ६/१४ भागोंमें ही अन्तर्भाव हो जाता है तथा मूल शरीरमें जीव प्रदेशोंके प्रवेश बिना उस अवस्थामे उनके मरणका अभाव भी है। (खु० बं०,टी० पृ० ४२८-४३०)[1]

[2]मनःपर्ययज्ञानी, संयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्परायमें-[3]क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवाँ भाग है।

विशेष—संयम, सामायिक छेदोपस्थापना तथा सूक्ष्मसाम्परायका वर्णन पहले अपगतवेदके साथ आ चुका है। यहाँ पुनः उनका कथन चिन्तनीय है।

२११ संयतासंयतोंमे – ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका ६/१४ है; अबन्धक नहीं है। साता-असाताके बन्धकों, अबन्धकोंका ६/१४ है। दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंका ६/१४ है; अबन्धक नहीं है। हास्य-रति, अरति-शोक तथा स्थिरादि तीन युगलोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। देवायु तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकोंका क्षेत्रके समान है; अबन्धकोंका ६/१४ है।

विशेषार्थ—संयतासंयत जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। धवला टीकामें लिखा है कि वर्तमान कालकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण क्षेत्र प्ररूपणाके समान है। अतीत कालमे तीन लोकोंके असंख्यातवे भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग, और अढाई द्वीपसे असंख्यात गुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है।

शंका—विहारवत् स्वस्थान पदकी अपेक्षा उपर्युक्त स्पर्शनका प्रमाण भले ही ठीक हो, क्योंकि वैरी देवोंके सम्बन्धसे अतीत कालमे सर्वद्वीप, समुद्रोंमे संयतासंयत जीवोंकी सम्भावना है, किन्तु स्वस्थान पदकी अपेक्षा उक्त स्पर्शन नहीं बनता। कारण स्वस्थानमे स्थित संयतासंयत जीवोंका सर्वद्वीप समुद्रोंमे अभाव है।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यद्यपि सर्वत्र संयतासंयत जीव नहीं है, तथापि तिर्यग्लोकके संख्यातवे भाग प्रमाण स्वयंप्रभ पर्वतके पर भागमे स्वस्थान स्थित

---

१ आभिणिबोहिय – सुद ओहिणाणी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा देसूणा। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। छचोद्दस-भागा देसूणा। –खु० बं०,सूत्र १५६–१६४। २ मणपज्जवणाणी सत्थाणसमुग्घादेहि केवडिय खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। उववाद णत्थि।—खु० बं०,१६५–१६६। ३ पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्त फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। –षट्खं०,फो०,सू० ६।

बंधगा सव्वलोगो। अबं० अट्ठबारह०। वेउव्विय-छक्कं आयुचदुक्कं तित्थयरं च ओघं। सेसं मदि-अण्णाणिभंगो। चक्खुदं० तस-पज्जत्त-भंगो। णवरि केवलिभंगो णत्थि। अचक्खुदं० ओघं। णवरि केवलिभंगो णत्थि।

संयतासंयत पाये जाते हैं।

समुद्घातोंकी अपेक्षा संयतासंयतोंने लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा देशोन ६/१४ भाग स्पर्श किया है। वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात पदोंसे तीन लोकोंके असंख्यातवे भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवे भाग और अढाई द्वीपसे असंख्यात गुणे क्षेत्रको स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घातसे देशोन ६/१४ भागोंका स्पर्श किया है, क्योंकि तिर्यंचोंमें-से अच्युत कल्प तक मारणान्तिक समुद्घातको करनेवाले संयतासंयत जीवोंके उपर्युक्त स्पर्शन पाया जाता है। संयतासंयत गुणस्थानके साथ उपपादका विरोध होनेसे यहाँ उपपाद पद नहीं होता।[1]

असंयतोंमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धक नहीं हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धकोंका ८/१४ है। मिथ्यात्वके बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धकोंका ८/१४, १२/१४ है। वैक्रियिकषट्क, आयु ४ तथा तीर्थंकरका ओघवत् भंग है। शेष प्रकृतियोंका मत्यज्ञानके समान भंग है। चक्षुदर्शनमे – त्रस-पर्याप्तके समान भंग है। विशेष, केवली भग नहीं है। अचक्षुदर्शनमे ओघवत् जानना चाहिए। विशेष, केवलीभंग नहीं है।

विशेषार्थ—चक्षुदर्शनी जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। इन जीवोंने स्वस्थानसे तीन लोकोंके असख्यातवे भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवे भाग, और अढाई द्वीपसे असंख्यात गुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीवों-द्वारा देशोन ८/१४ भाग स्पृष्ट है। क्योंकि आठ राजू बाहल्यसे युक्त राजूप्रतरके भीतर चक्षुदर्शनी जीवोंके विहारका कोई विरोध नहीं है।

चक्षुदर्शनी जीवों-द्वारा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। अतीत कालकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पृष्ट है; क्योंकि विहार करनेवाले देवोंमे उत्पन्न वेदना कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंसे स्पर्श किया जानेवाला ८/१४ भाग प्रमाण क्षेत्र देखा जाता है। मारणान्तिक-समुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शन सर्वलोक प्रमाण है, देव व नारकियों-द्वारा मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा १३/१४ भाग स्पृष्ट है; क्योंकि लोकनालीके बाहर इनके उत्पादका अभाव होनेसे मारणान्तिक समुद्घातके द्वारा गमन नहीं होता। तिर्यंच व मनुष्योंके द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है, क्योंकि लोकनालीके बाहर और भीतर मारणान्तिक समुद्घातसे इनका गमन पाया जाता है।

इन चक्षुदर्शनी जीवोंमे उपपाद कथंचित् पाया जाता है, कथंचित् नहीं भी पाया जाता है (उववादं सिया अत्थि, सिया णत्थि)। चक्षु-इन्द्रियावरणके क्षयोपशम रूप लब्धिकी अपेक्षा उपपाद है, वह अपर्याप्त कालमे भी पाया जाता है। गोलकरूप चक्षुकी निर्वृत्तिका

---

१ संजदासंजदा सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा। उववाद णत्थि। –खु० बं०,सू० १७१–१७६।

२१२. किण्ह-णील-काउ – धुविगाणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि३ अणंताणु०४ बंधगा अबंधगा खेत्तभंगो। मिच्छत्तबंधगा सव्वलोगो। अबंधगा पंच-चत्तारि-बे-चोद्दसभागो वा। दो आयु-देवगदि-देवाणु० तित्थयर-बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा सव्वलोगो।

नाम निवृत्ति है। वह अपर्याप्त कालमें नहीं है। इसलिए – "लद्धि पडुच्च अत्थि, णिव्वत्ति पडुच्च णत्थि।" (सू० १८६ खु० बं०)। लब्धिकी अपेक्षा उपपाद पदसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। यह वर्तमान कालकी अपेक्षासे है। अतीत कालकी अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट है।

चक्षुदर्शनी तिर्यंच और मनुष्योंमें-से चक्षुदर्शनियोंमें उत्पन्न हुए देव व नारकियों-द्वारा $\frac{8}{14}$ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि लोकनालीके बाहर चक्षुदर्शनी जीवोंका अभाव है, तथा आनतादि उपरिम देवोंका तिर्यंचोंमें उत्पाद भी नहीं है। यह वा शब्दसे सूचित अर्थ है। एकेन्द्रिय जीवोंमें-से चक्षु-इन्द्रिय सहित जीवोंमे उत्पन्न हुए जीवों-द्वारा प्रथम समयमे सर्वलोक स्पृष्ट है; क्योंकि वे अनन्त है तथा सर्व प्रदेशोंसे उनके आगमनकी सम्भावना भी है। (खु० बं० सू० ४३४-४३७)।[1]

अचक्षुदर्शनीमें असंयतके समान भंग है। पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर अचक्षुदर्शनी जीवोंकी प्ररूपणा असंयत जीवोंके तुल्य नहीं है, क्योंकि अचक्षुदर्शनियोंमे तैजस तथा आहारक समुद्घात पद पाये जाते हैं।

विशेषार्थ—कृष्णादि लेश्यात्रयमे असंयतोंके समान भंग है। असंयतोंमें नपुंसक वेदके समान भंग है। नपुंसक वेदमे स्वस्थान, समुद्घात तथा उपपादसे सर्वलोकस्पृष्ट है।

२१२. कृष्ण-नील-कापोत लेश्यामे – ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके सर्वलोक है; अबन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकों, अबन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है। मिथ्यात्वके बन्धकोंका सर्वलोक है; अबन्धकोंका $\frac{5}{14}$, $\frac{4}{14}$, $\frac{2}{14}$ है।[3]

विशेष—मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपाद-पद-परिणत छठे नरकके नारकी सासादन गुणस्थानीने कृष्णलेश्यायुक्त हो $\frac{5}{14}$, नील लेश्यावाले ५वीं पृथ्वीवालोंने $\frac{4}{14}$ तथा कापोत लेश्यावाले तीसरी पृथ्वीके नारकी सासादनसम्यक्त्वी जीवोंने $\frac{2}{14}$ भाग स्पर्श किया है (पृ० २६१)।

देवायु, नरकायु, देवगति, देवानुपूर्वी तथा तीर्थंकरके बन्धकोका क्षेत्रके समान लोक-

---

१ दंसणाणुवादेण चक्खुदसणी सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसूणा। समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा देसूणा। सव्वलोगो वा उववाद सिया अत्थि सिया णत्थि। लद्धि पडुच्च अत्थि, णिव्वत्ति पडुच्च णत्थि। जदि लद्धि पडुच्च अत्थि, केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। सव्वलोगो वा। –खु० बं०, सू० १७८–१८६। अचक्खुदसणी असजदभगो। सू० १९०। असजदाण णवुंसयभगो १७७। णवुसयवेदा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडिय खेत्तं फोसिद ? सव्वलोगो –सू० १३८, १३९। –सू० १९३, खु० बं०।

२ लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाण असजदभगो

३ सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठबारहचोद्दसभागा वा देसूणा। सू० ३–४। सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्तं फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। पचचत्तारिबेचोद्दस-भागा वा देसूणा। सू० – १४७, १४८।

तिरिक्ख-मणुसायु० णवुंसगभंगो। चदुआयु-बंधगा अबंधगा सव्वलोगो। णिरयगदिदुगं वेगुव्वियदुगं बंधगा छ-चोद्दस-चत्तारिबे०। अबंधगा सव्वलोगो। ओरालि० बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा छचुत्तारि-बेचोद्दस०। दोण्णं सरीराणं बंधगा सव्वलोगो। अबंधगा णत्थि। सेसाणं असंजदभंगो। तेउलेस्साए-पंचणा० छदंस० चदुसंज० भयदुगुं० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय० णिमि० पंचंत० बंधगा अट्ठणवचो०। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधि०४ बंधगा अट्ठणवचो०। अबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। सादासाद-बंधगा अट्ठणवचो०। दोण्णं बंधगा अट्ठणवचो०। अबंधगा

का असख्यातवॉ भाग है; अबन्धकोंका सर्वलोक है। तिर्यंचायु, मनुष्यायुका नपुसकवेदके समान भग है। चारों आयुके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वलोक जानना चाहिए।

नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंके ६/१४, ४/१४, २/१४ है; अबन्धकोंके सर्वलोक हैं।

विशेष—इन प्रकृतियोंके बन्धक मनुष्य तथा तिर्यंच ही होंगे। देव तथा नारकी इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं करते हैं। सातवे नरकमे मारणान्तिककी अपेक्षा कृष्ण लेश्यामे ६/१४ है। नील लेश्यामे ५वीं पृथ्वीकी अपेक्षा उपपाद या मारणान्तिकके द्वारा ४/१४ है। कापोत लेश्यामे तीसरी पृथ्वीकी अपेक्षा २/१४ है।

औदारिक शरीरके बन्धकोंके सर्वलोक है। अबन्धकोंके ६/१४, ४/१४, २/१४ है। दोनों शरीरोंके बन्धकोंके सर्वलोक है, अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंका असंयतोंके समान भंग है।

विशेष—औदारिक शरीरके अबन्धक नारकियोंमें मारणान्तिककी अपेक्षा सातवीं, पॉचवीं तथा तीसरी पृथ्वीकी दृष्टिसे ६/१४, ४/१४, २/१४ भाग कहा है।

तेजोलेश्यामे–५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ है; अबन्धक नहीं है।[1]

विशेषार्थ—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक पद परिणत मिथ्यात्वी जीवोंने ८/१४ भाग, मारणान्तिक समुद्घात परिणत जीवोंने ९/१४ भाग स्पर्श किया है। (२६५)

'खुद्दाबन्ध' टीकामे लिखा है–तेजो लेश्यावाले जीवों-द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असख्यातवॉ भाग स्पृष्ट है। अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह (८/१४) भाग स्पृष्ट है। विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा कुछ कम ८/१४ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि विहार करते हुए तेजोलेश्यावाले देवोंके इतना स्पर्शन पाया जाता है।

समुद्घातकी अपेक्षा इस लेश्यावाले जीवोंके द्वारा लोकका असंख्यातवॉ भाग स्पृष्ट है। अतीत कालकी अपेक्षा वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदोंसे परिणत तेजोलेश्यावाले जीवों-द्वारा ८/१४ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि विहार करते हुए देवोंके ये तीनों पद सर्वत्र पाये जाते हैं। मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा ९/१४ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि मेरु मूलसे दो राजुओंके साथ ऊपर सात राजु स्पर्शन पाया जाता है।

---

१ "तेउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदि-भागो। अट्ठणवचोद्दसभागा वा देसूणा।" –षट्खं०, फो०, सू० १५१–१५२।

णत्थि । एवं चदुणोक० थिरादि-तिण्णि-युगलं । मिच्छत्त-उज्जोव-बंधगा अट्ठणवचोद्दस० । अपच्चक्खाणावरण०४ बंधगा अट्ठणवचो० । अबंधगा दिवड्ढचोद्दसभागो । पच्चक्खाणावरण०४ बंधगा अट्ठणवचो० । अबंधगा खेत्तभंगो । इत्थि० पुरिस० बंधगा अट्ठचोद्दस० ।

उपपादकी अपेक्षा वर्तमान कालकी दृष्टिसे लोकका असंख्यात भाग स्पर्शन है । अतीत-कालकी अपेक्षा कुछ कम डेढ़ बटे चौदह १½/१४ भाग स्पृष्ट है; क्योंकि मेरु मूलसे डेढ़ राजू मात्र ऊपर चढकर प्रभा पटलका अवस्थान है ।

शंका—सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंके प्रथम इन्द्रक विमानमे स्थित तेजोलेश्यावाले देवोंमें उत्पन्न करानेपर १½ राजूसे अधिक क्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सौधर्म कल्पसे थोड़ा ही ऊपर जाकर सानत्कुमार कल्पका प्रथम पटल अवस्थित है । ऐसा न माननेपर उपर्युक्त १½ राजू क्षेत्रमे जो कुछ न्यूनता बतलायी है, वह बन नहीं सकती ।[1] (खु० बं०,टीका पृ० ४३८-४४०)

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ है । अबन्धकोंका ८/१४ है ।[2]

विशेष—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक पद परिणत मिश्र तथा अविरत सम्यक्त्वी जीवोंने पीत लेश्यामें ८/१४ स्पर्शन किया है । विशेष, मिश्र गुण-स्थानमें मारणान्तिक नहीं होता है । उपपादपरिणत अविरत सम्यक्त्वी जीवोंके १½/१४ भाग होता है ।[3] (२६६)

साता, असाताके बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ है । दोनोंके बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ है; अबन्धक नहीं है । हास्यरति, अरतिशोक, स्थिरादि तीन युगलमे इसी प्रकार जानना चाहिए । मिथ्यात्व तथा उद्योतके बन्धकोंके ८/१४, ९/१४ है; अबन्धकोंके १½/१४ है । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंके ८/१४, ९/१४ है; अबन्धकोंके १½/१४ है ।

विशेष—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक पदसे परिणत मिथ्यात्वी तथा सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंने ८/१४, मारणान्तिक समुद्घात परिणत उक्त जीवोंने ९/१४ तथा उपपाद परिणत उन जीवोंने १½/१४ स्पर्श किया है । मिश्र तथा अविरत गुणस्थानमे भी ८/१४, ९/१४ भाग है । विशेष, मिश्रमें मारणान्तिक नहीं होता है । उपपाद परिणत अविरत सम्यक्त्वी जीवोंने १½/१४ स्पर्श किया है ।

प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका ८/१४, ९/१४ है । अबन्धकोंका क्षेत्रके समान लोकका

---

१. तेउलेस्सियाण सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा । समुग्घादगदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा । उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । दिवड्ढ-चोद्दसभागा वा देसूणा –खु० बं०, सू० १९४-२०२ । २ सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा । –षट्खं०,फो०,सू० १५२-१५३ । ३ उववादगदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । दिवड्ढचोद्दसभागा वा देसूणा । –सू० १५४-१५५ ।

अबंधगा अट्ठणवचो० । णवुंस० बंधगा अट्ठणवचो० । अबंधगा अट्ठचोद्दस० । तिण्णि वेदाणं बंधगा अट्ठणवचो० । अबंधगा णत्थि । इत्थिभंगो दोआयु-मणुसगदिदुगं पंचिंदि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ० आदा० दोविहा० तस-सुभग-आदे० तित्थयरं उच्चागोदं च । णवुंसगभंगो तिरिक्खगदिदुगं एइंदि० हुंडसंठा० थावर-दूभग-अणादे० णीचागोदं च । देवायु-आहारदुगं बंधगा खेत्तभंगो । अबंधगा अट्ठणवचोद्दस० । देवगदि०४ बंधगा दिवड्ढ-चोद्दसभागो । अबंधगा अट्ठणवचो० । ओरालियसरीरं बंधगा अट्ठणवचो० । अबंधगा दिवड्ढचोद्दसभागो । एवं पत्ते० साधारणेण वि । सव्वपगदीणं बंधगा अट्ठणवचोद्दसभागो । अबंधगा णत्थि । आयु० अंगोवंग-संघडण-विहाय० [एवं] । पम्माए-पंचणा० छदंसणा० चदुसंजल० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमिण-पंचंतराइयाणं बंधगा अट्ठ० । अबंधगा णत्थि ।

असंख्यातवाँ भाग है । स्त्रीवेद, पुरुषवेदके बन्धकोंका ८/१४, अबन्धकोंके ८/१४, ९/१४ है । नपुंसकवेदके बन्धकोंके ८/१४, ९/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४ है । तीनों वेदोंके बन्धकोंके ८/१४, ९/१४ है; अबन्धक नहीं हैं । मनुष्य-तिर्यंचायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय, पंच संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, आदेय, तीर्थंकर तथा उच्चगोत्रका स्त्रीवेदके समान जानना चाहिए । तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, हुण्डकसंस्थान, स्थावर, दुर्भग, अनादेय तथा नीचगोत्रका नपुंसकवेदके समान भंग है । देवायु, आहारकद्विकके बन्धकोंके क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवाँ भाग है । अबन्धकोंका ८/१४, ९/१४ है । देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंके १½/१४, अबन्धकोंके ८/१४, ९/१४ है । औदारिक शरीरके बन्धकोंके ८/१४, ९/१४ है, अबन्धकोंके १½/१४ है । प्रत्येक तथा सामान्यसे भी इसी प्रकार है । शेष सर्व प्रकृतियोंके बन्धकोंके ८/१४, ९/१४ है; अबन्धक नहीं हैं । आयु, अंगोपांग, संहनन तथा विहायोगतिमें (इसी प्रकार जानना चाहिए) ।

पद्मलेश्यामें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय-जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंके ८/१४ है; अबन्धक नहीं हैं ।

विशेष—पद्मलेश्यावाले मिथ्यात्वसे अविरत सम्यक्त्वी पर्यन्त जीवोंने विहारवत्-स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिककी अपेक्षा ६ राजू ऊपर तथा नीचे दो राजू, ८/१४ भाग स्पर्श किया है । उपपाद परिणत उक्त जीवोंने ५/१४ स्पर्श किया है । विशेष, मिश्र गुणस्थानमें उपपाद मारणान्तिकपनेका अभाव है । (पृ० १९८) ।[1]

'खुद्दाबन्ध' टीकामें लिखा है, पद्मलेश्यावाले जीवोंने स्वस्थान और समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है । अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम ८/१४ भाग स्पर्श किये हैं । स्वस्थान पदकी अपेक्षा तीन लोकोंके असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोकके संख्यातवें भाग और अढाई द्वीपसे असंख्यात गुणे क्षेत्रका स्पर्श किया है । विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात पदोंसे परिणत इन जीवों-द्वारा कुछ कम ८/१४

---

१ "पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अट्ठचोद्दसभागो वा देसूणा ।" –षट्खं०, फो०, सू० १५४-१५५ ।

थीणगिद्धितियं मिच्छत्त० अणंताणु०४ बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। एवं दोआयु० उज्जोवं तित्थयरं च। सादासादाणं बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। दोण्णं बंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अबंधगा णत्थि। एवं बंधगा (?) वेदणीयभंगो। सेसाणं पत्तेगेण साधारणेण। णवरि देवायु-बंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। तिण्णं आयु० बंधा अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। देवगदि०४ बंधगा पंचचोद्दस०। अबंधगा अट्ठचोद्दसभागो। अपच्चक्खाणा०४ ओरालियस० ओरालिय० अंगो० बंधगा (?). छस्संघ० साधारणेण अबंधगा पंचचोद्दस०। पच्चक्खाणा०४ बंधगा अट्ठचोद्दस०। अबंधगा खेत्तभंगो। आहारदुगं देवायुभंगो। सुक्काए—पंचणा० छदंस० अट्ठकसा०

भाग स्पृष्ट है, क्योंकि पद्मलेश्यावाले देवोंके एकेन्द्रिय जीवोंमें मारणान्तिक समुद्घातका अभाव है। उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम $\frac{5}{14}$ भाग स्पृष्ट है। क्योंकि मेरु मूलसे पाँच राजू मात्र मार्ग जाकर सहस्रार कल्पका अवस्थान है।[1]

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकों, अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$ है। मनुष्य तिर्यंचायु, उद्योत तथा तीर्थंकरका इसी प्रकार है। साता, असाताके बन्धकों, अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$ है। दोनोंके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$ है; अबन्धक नहीं हैं। शेष प्रकृतियोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे इसी प्रकार वेदनीयका भंग है। विशेष, देवायुके बन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है अर्थात् लोकका असंख्यातवाँ भाग है; अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$ है। तीन आयु (नरकायु बिना) के बन्धकों, अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$ है। देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंका $\frac{5}{14}$ है; अबन्धकोंका $\frac{8}{14}$ है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, ६ संहननके बन्धकों, अबन्धकोंका सामान्यसे $\frac{5}{14}$ है।

विशेष—देशसंयमी पद्मलेश्यावाले जीवोंके मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा शतार, सहस्रार कल्पके स्पर्शनकी दृष्टिसे $\frac{5}{14}$ कहा है।[2]

प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका $\frac{8}{14}$ है। अबन्धकोंका क्षेत्रके समान लोकका असंख्यातवाँ भाग भंग है।

विशेष—प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक प्रमत्तसंयतोंकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग कहा है।[3]

आहारकद्विकका देवायुके समान भंग है अर्थात् बन्धकोंके लोकका असंख्यातवाँ भाग है, अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$ है।

शुक्ल लेश्यामें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, प्रत्याख्यानावरणादि ८ कषाय, भय-

१. पम्मलेस्सिया सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। पंचचोद्दसभागा वा देसूणा। खु० बं०, सू० २०३–२०८। २ "संजदासंजदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। पंचचोद्दसभागा वा देसूणा।" –षट्खं०, फो०, सू० १५९–१६०। ३. 'प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः।" –स० सि० १।८।

भयदु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमिण-पंचंतराइयाणं बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा केवलिभंगो। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अट्ठकसा० मणुसायु-तित्थयरं बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा छच्चोद्दसभागो, केवलिभंगो। साद-बंधगा छच्चोद्दसभागो केवलिभंगो। अबंधगा छच्चोद्दसभागो। असाद-बंधगा छच्चोद्दसभागो। अबंधगा छच्चोद्दस० केवलिभंगो। दोण्णं बंधगा छच्चोद्दसभागो केवलिभंगो। अबंधगा णत्थि। देवगदि०४ बंधगा छच्चोद्दस०। अबंधगा छच्चोद्दस० केवलिभंगो०। एवं णेदव्वं। भवसिद्धि ओघं।

जुगुप्सा, पचेन्द्रिय, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण तथा ५ अन्तरायके बन्धकोंका ६/१४ है।[1] अबन्धकोंके केवली-भग है।[2]

विशेष—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र तथा असंयत सम्यक्त्वी शुक्ललेश्यावालोंने विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक पद परिणत जीवोंने ६/१४ स्पर्श किया है। स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक पद परिणत संयतासंयतोंने लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। मारणान्तिक पद परिणत शुक्ल-लेश्यावालोंने ६/१४ भाग स्पर्श किया है। कारण तिर्यंच सयतासंयतोंका शुक्ललेश्याके साथ अच्युत कल्पमे उपपाद पाया जाता है। मिश्रगुणस्थानमे उपपाद तथा मारणान्तिक पद नही होते हैं। (पृ० ३००)

स्त्यानगृद्धि ३, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि ८ कषाय, मनुष्यायु, तीर्थंकरके बन्धकोंके ६/१४ भाग हैं; अबन्धकोंके ६/१४ वा केवली-भंग है। साताके बन्धकोंके ६/१४ भाग तथा केवली-भग है; अबन्धकोंके ६/१४ हैं। असाताके बन्धकोंके ६/१४ है। अबन्धकोंके ६/१४ वा केवली-भग है। दोनोंके बन्धकोंके ६/१४ वा केवली-भग है, अबन्धक नही हैं। देवगति ४ के बन्धकोंके ६/१४ है; अबन्धकोंके ६/१४ तथा केवली-भंग है। शेष प्रकृतियोका इसी प्रकार निकालना चाहिए।

भव्यसिद्धिकोंमे[3] ओघवत् भग है।

विशेषार्थ—भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवों-द्वारा स्वस्थान, समुद्घात एवं उपपाद पदोंसे सर्वलोक स्पृष्ट है। स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपाद पदोंसे अतीत व वर्तमान कालमे भव्यसिद्धिक एव अभव्यसिद्धिक जीवो-द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है। विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा वर्तमानकालमे क्षेत्रके समान प्ररूपणा है। अतीत कालमें ८/१४ भाग स्पृष्ट है। वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा तीन लोकोंका असंख्यातवाँ भाग और मनुष्य लोक व तिर्यग्लोकसे असंख्यात गुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। भव्यसिद्धिक जीवोंमे शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्शनका निरूपण ओघके समान है। (खु० वं०,टी० पृ० ४४५)।

---

१ "सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजदासजदेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा।" –सू० १६२–१६३। २ शुक्कलेस्सिया सत्थाण-उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा। समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। छचोद्दसभागा वा देसूणा। असखेज्जा वा भागा। सव्वलोगो वा। –खु० वं० सू० २०९–२१६। ३ "भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलित्ति ओघ।" –षट्खं०,फो०,सू० १६५। भवियाणुवादेण भवसिद्धिय अभवसिद्धिय सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? सव्वलोगो –खु० वं०,सू० २१७-२१८, पृ ४४४-४५

२१३. सम्मादिट्ठि ओधिभंगो। णवरि केवलिभंगो कादव्वो। खइग-सम्मादिट्ठि० पंचणा० छदंस० बारसक० पुरिस० भयदु० पंचिंदि० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइगाणं बंधगा अट्ठचोद्दस०। अबंधगा केवलिभंगो। एवं सेसाणं पगदीणं सम्मादिट्ठि-भंगो। णवरि मणुसगदिपंचगं अबंधगा, देवगदि०४ बंधगा खेत्तभंगो।

२१३. सम्यक्त्वियोंमें[1] अवधिज्ञानके समान भंग है। विशेष, यहाँ केवली-भंग करना चाहिए।

विशेष—सम्यक्त्वमार्गणामें चतुर्थसे लेकर चौदहवे गुणस्थानका सद्भाव है। इस कारण यहाँ केवली-भंग भी कहा है।

क्षायिक सम्यक्त्वीमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धकोंका ८/१४ है; अबन्धकोंका केवली-भंग है।

विशेषार्थ—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक तथा मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा अविरत गुणस्थानवर्ती क्षायिक सम्यक्त्वीने ८/१४ भाग स्पर्श किया है। (ध० टी०, फो० पृ० ३०२)।

विशेषार्थ—क्षायिक सम्यक्त्वी जीवोंमे स्वस्थानपदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा कुछ कम ८/१४ भाग स्पर्श किया है (यह कथन विहारवत् स्वस्थानकी अपेक्षा है)।

समुद्घात पदोंसे क्षायिक सम्यग्दृष्टियों-द्वारा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। अतीतकालकी अपेक्षा कुछ कम ८/१४ भाग स्पृष्ट है। इनके द्वारा वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात पदोंसे देशोन ८/१४ भाग स्पृष्ट है। प्रतर समुद्घातगत केवलीकी अपेक्षा वातवलयको छोड़कर शेष समस्त लोकमें व्याप्त जीव प्रदेश पाये जाते है। दण्डसमुद्घातगत केवलियोंके द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवाँ भाग, और अढाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। कपाट समुद्घातगत केवलियोंके द्वारा तीन लोकोंका असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोकका संख्यातवाँ भाग और अढाई द्वीपसे असंख्यात गुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्शन है।

उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है[2] (खु० बं० टीका पृ० ४४६–४५१)।

इस प्रकार शेष प्रकृतियोका सम्यग्दृष्टिके समान भंग है। मनुष्यगति ५ के अबन्धकोंमें तथा देवगति ४ के बन्धकोंमें क्षेत्रके समान भंग है।

---

१ "सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलित्ति।" –सू० १६७।
२. खइयसम्मादिट्ठी सत्थाणेहि केवडिय खेत्त फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। समुग्घादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। असखेज्जा वा भागा । सव्वलोगो वा। उववादेहि केवडिय खेत्त फोसिद ? लोगस्स असखेज्जदिभागो। –खु० बं०, सू० २३०–२३९।

२१४. वेदगे ओधिभंगो पत्तेगेण साधारणेण। अबंधगा णत्थि। उवसमस० खइगसम्मादिट्ठिभंगो। णवरि केवलिभंगो णत्थि। तित्थयरं बंधगा खेत्तभंगो। सासणे धुविगाणं बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा णत्थि। सादासादबंधगा अबंधगा अट्ठबारह०। दोण्णं बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा णत्थि। एवं चदुणोक०। थिरादि-तिण्णि-युगलं। इत्थि० पुरिस० बंधगा अबंधगा अट्ठएक्कारसभागो०। दोण्णं बंधगा अट्ठएक्कारस०। अबंधगा णत्थि। एवं पंचसंठा० पंचसंघ० (?) दो विहाय० दोसर०। दो आयु-

२१४. वेदकसम्यक्त्वमे—अवधिज्ञानके समान प्रत्येक तथा सामान्यसे भंग है। यहाँ अबन्धक नहीं हैं।

विशेषार्थ—वेदक सम्यक्त्वियोंने स्वस्थान तथा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीतकालकी अपेक्षा देशोन $\frac{8}{14}$ भाग स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक पदोंसे देशोन $\frac{8}{14}$ भाग स्पृष्ट है।

उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग अथवा देशोन $\frac{6}{14}$ भाग स्पृष्ट है। तिर्यंच और मनुष्योंमेसे देवोंमें उत्पन्न होनेवाले वेदक सम्यग्दृष्टियों-द्वारा $\frac{6}{14}$ स्पृष्ट है[1]।

उपशमसम्यक्त्वमे–क्षायिकसम्यक्त्वीके समान भंग है। विशेष, यहाँ केवली-भंग नहीं है। तीर्थंकरके वन्धकोंका क्षेत्रके समान भंग है।

विशेषार्थ—उपशम सम्यक्त्वियों-द्वारा स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। अतीतकालकी अपेक्षा देशोन $\frac{8}{14}$ भाग स्पृष्ट है। उपपाद तथा समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन है। मारणान्तिक समुद्घात व उपपाद पदोंसे परिणत उपशम सम्यक्त्वियों-द्वारा चार लोकोंका असंख्यातवाँ भाग और अढ़ाई द्वीपसे असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि मानुष क्षेत्रमे ही मरणको प्राप्त होनेवाले उपशम सम्यग्दृष्टि पाये जाते हैं (**माणुसखेत्तम्मि चेव मरंताणं उवसमसम्माइट्ठीणमुवलंभादो**)।

शंका—वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा उपशम सम्यग्दृष्टि देवोंमें $\frac{8}{14}$ भाग यहाँ क्यों नहीं कहा?

समाधान—ऐसा निरूपण करनेपर सासादन सम्यग्दृष्टिके मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा भी $\frac{8}{14}$ भाग होते है, ऐसा सन्देह न हो अतः उसके निराकरणके लिए यह निरूपण नहीं किया गया है। (पृ० ४५४, खु० बं०)[2]

सासादनमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ है; अबन्धक नहीं है। साता, असाताके वन्धकों, अवन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ है। दोनोंके बन्धकोंका $\frac{8}{14}$, $\frac{12}{14}$ है; अबन्धक नहीं है। इस प्रकार हास्यादि चार नोकषाय तथा स्थिरादि तीन युगलमें जानना चाहिए। स्त्रीवेद, पुरुषवेदके वन्धकों, अबन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{11}{14}$ है। दोनोंके बन्धकोंके $\frac{8}{14}$, $\frac{11}{14}$ है; अबन्धक नहीं है। ५ संस्थान (हुण्डक बिना), ५ संहनन (असम्प्राप्तासृपाटिका बिना), दो विहायोगति तथा दो

१ वेदगसम्मादिट्ठी सत्थाणसमुग्घादेहि केवडियं खेत्त फोसिद? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। उववादेहि केवडिय खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। छच्चोद्दसभागा वा देसूणा —खु० बं०, सू० २४०-२४५। २ उवसमसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडिय खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। समुग्घादेहि उववादेहि केवडियं खेत्त फोसिदं? लोगस्स असखेज्जदिभागो। —खु० बं०, सू० २४६-२५०।

मणुसगदिदुगं उच्चागोदं बंधगा अट्ठचोद्दस०। अबंधगा अट्ठबारह०। देवायुबंधगा खेत्तभंगो। अबंधगा अट्ठबारह०। तिण्णि आयु-बंधगा अट्ठचोद्दस०। अबंधगा अट्ठबारहभागो। तिरिक्खगदिदुगं णीचागोदं च बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठचोद्दस-भागो। देवगदि०४ बंधगा पंचचोद्दस०। अबंधगा अट्ठबारहभागो। तिण्णं गदीणं बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा णत्थि। ओरालि० ओरालि० अंगो पंचसंघ० (?) बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा पंचचोद्दसभागो। उज्जोवं बंधगा अबंधगा अट्ठबारह-भागो। सुभग-आदे० बंधगा अट्ठचोद्दस०। अबंधगा अट्ठबारहभागो। दूभग-अणादे० बंधगा अट्ठबारह०। अबंधगा अट्ठचोद्दस० दोण्णं बंधगा वेदणीयभंगो।

स्वरमें इसी प्रकार है।

विशेष—पंच संहननका कथन आगे भी आया है, अतः यह पाठ अधिक प्रतीत होता है। तिर्यंच-मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, उच्चगोत्रके बन्धकोंके ८/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४ तथा १२/१४ है। देवायुके बन्धकोंमें क्षेत्रवत् भंग है। अबन्धकोंमें ८/१४, १२/१४ है। तीन आयु (नरक बिना) के बन्धकोंके ८/१४, अबन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी नीचगोत्रके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४ है। देवगति ४ के बन्धकोंके ५/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। तीनों गतियोंके (नरक बिना) बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है, अबन्धक नहीं है। औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, ५ संहननके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है; अबन्धकोंके ५/१४ है। उद्योतके बन्धकों, अबन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। सुभग, आदेयके बन्धकोंके ८/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है। दुर्भग, अनादेयके बन्धकोंके ८/१४, १२/१४ है; अबन्धकोंके ८/१४ है। सुभग, दुर्भग तथा आदेय-अनादेयके बन्धकोंमे वेदनीयके समान भंग है।

विशेषार्थ—सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंने स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीतकालमें विहारवत्स्वस्थान पदसे परिणत सासादन गुणस्थानी जीवोंने देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। उसने समुद्घात पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालकी अपेक्षा वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंसे देशोन ८/१४ भाग स्पृष्ट है। मारणान्तिक समुद्घातसे देशोन १२/१४ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि मेरु मूलसे नीचे पाँच राजू और ऊपर सात राजू आयामसे मारणान्तिक समुद्घात पाया जाता है।

उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। अतीतकालकी अपेक्षा देशोन ११/१४ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि सासादन गुणस्थानके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेवाले छठी पृथ्वीके नारकियोंके ५/१४ भाग उपपादसे प्राप्त होते है तथा देवोंसे तिर्यंचोंमे उत्पन्न होने-वाले जीवोंके ६/१४ भाग प्राप्त होते हैं। इन दोनोंके जोड़ रूप ११/१४ भाग प्रमाण स्पर्शन होता है।

प्रश्न—ऊपर ७/१४ भाग क्यों नहीं प्राप्त होते है?

समाधान—नहीं, क्योंकि सासादन सम्यक्त्वियोंकी एकेन्द्रियोंमें उत्पत्ति नहीं है।

प्रश्न—एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घातको प्राप्त हुए सासादन सम्यग्दृष्टि जीव उनमें क्यों नहीं उत्पन्न होते?

समाधान—नहीं, क्योंकि आयुके नष्ट होनेपर उक्त जीव मिथ्यात्व गुणस्थानमें आ जाते

२१५. सम्मामिच्छादिट्ठि धुविगाणं बंधगा अट्ठ-चोद्दस०। अबंधगा णत्थि। देवगदि०४ बंधगा खेत्त-भंगो। अबंधगा अट्ठ-चोद्दसभागो। मणुसगदिपंचगं बंधगा अट्ठ-चोद्दस०। अबंधगा खेत्त-भंगो। सेसाणं पत्तेगेण बंधगा अबंधगा अट्ठ-चोद्दस-भागो। साधारणेण धुविगाणं भंगो। सण्णी मणजोगिभंगो। असण्णी खेत्त-भंगो। णवरि

हैं। अतः मिथ्यात्वमे आकर सासादन गुणस्थानके साथ उत्पत्तिका विरोध है (खु० बं०,टीका पृ० ४२५-४२७)[1]

२१५. सम्यग्मिथ्यादृष्टिमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका ८/१४ है; अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव स्वस्थान पदोंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग वर्तमानकी अपेक्षा स्पर्श करते है। अतीतकी अपेक्षा मिश्रगुणस्थानवाले जीवोंने विहारवत्-स्वस्थानसे देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। इनके समुद्घात तथा उपपादपद नहीं होते। क्योंकि इस गुणस्थानमें मरणका अभाव है।

शंका—वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातोंकी यहाँ प्ररूपणा क्यों नहीं की गयी?

समाधान—नहीं, क्योंकि उनकी प्रधानता नहीं है।[2]

विशेष—विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातकी अपेक्षा मेरुतलसे ऊपर ६ राजू तथा नीचे दो राजू, ८/१४ भाग है। (ध० टी०,फो० पृ० १६७)

देवगति ४ के बन्धकोंके क्षेत्रके समान भग है; अबन्धकोंके ८/१४ है। मनुष्यगति ५ के बन्धकोंके ८/१४ है; अबन्धकोंके क्षेत्रके समान है। शेष प्रकृतियोंके प्रत्येकसे बन्धकों,अबन्धकोंका ८/१४ है। सामान्यसे ध्रुव प्रकृतियोंका भंग है।

संज्ञीमें—मनोयोगियोंका भंग है।

विशेषार्थ—संज्ञी जीवोंने स्वस्थानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग, विहारवत्-स्वस्थानसे देशोन ८/१४ भाग स्पर्श किया है। समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अतीत कालमे वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातोंकी अपेक्षा देशोन ८/१४ भाग स्पृष्ट है। सर्वलोक स्पृष्ट है। यह कथन मारणान्तिककी अपेक्षा है। त्रसकायिक संज्ञी जीवोंमे मारणान्तिक करनेवाले संज्ञी जीवोंकी अपेक्षा देशोन १२/१४ भाग स्पृष्ट है।

उपपादकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग अथवा अतीतकालकी दृष्टिसे सर्वलोक स्पृष्ट है। संज्ञी जीवोंमें उत्पन्न हुए असंज्ञी जीवोंके सर्वलोक स्पर्श पाया जाता है। किन्तु संज्ञियोंमें उत्पन्न हुए असंज्ञी जीवोंका स्पर्शन १२/१४ भाग है। सम्यक्त्वी-संज्ञियोंका उपपाद क्षेत्र ६/१४ भाग है।[3]

---

१. सासणसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडिय खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठ-बारह-चोद्दसभागा वा देसूणा। उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। एक्कारहचोद्दसभागा वा देसूणा —खु० बं०,सू० २५१-२५६। २. सम्मामिच्छाइट्ठीहि सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा। समुग्घाद उववादं णत्थि। —खु० बं०,सू० २६०-२६३। समुग्घाद उववाद णत्थि। कुदो? सम्मामिच्छत्त- गुणेण मरणाभावादो वेयण-कसाय-वेउव्वियसमुग्घादाणमेत्थ परूवणं किण्ण कद? ण, तेसिं पहाणत्ताभावादो। —खु० बं०, टी० पृ० ४५८। ३. सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा फोसिदा। समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा सव्वलोगो वा। उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो, सव्वलोगो वा। —खु० बं०,सू० २६५-२७४।

एइंदियपगदीणं एइंदियभंगो। आहारादि (१) (आहार०) ओघं। णवरि केवलि-भंगो णत्थि। अणाहार० कम्मइगभंगो। णवरि वेदणीयं साधारणेण ओघं।

एवं फोसणं समत्तं

असंज्ञीमें—क्षेत्रके समान भंग है। विशेष, एकेन्द्रियादि प्रकृतियोंका एकेन्द्रियके समान भंग है।[1]

आहारकोंमें[2] ओघवत् भंग है; किन्तु केवलिभंग नहीं है।

विशेषार्थ—यहाँ स्वस्थान उपपाद समुद्घात पदोंसे सर्वलोक स्पर्शन है। विहारवत्-स्वस्थानसे $\frac{८}{१४}$ भाग है। वैक्रियिक समुद्घातसे तीनों लोकोंका संख्यातवाँ भाग है। (खु० बं०,टी० पृ० ४६१)

विशेष—मिथ्यादृष्टि जीवके सर्वलोक है, सासादनके लोकका असंख्यातवाँ भाग, $\frac{८}{१४}$, $\frac{१२}{१४}$ भाग है। मिश्र तथा अविरत सम्यक्त्वीके लोकका असंख्यातवाँ भाग, $\frac{८}{१४}$ है। देशसंयतके असंख्यातवाँ भाग वा $\frac{६}{१४}$ है। प्रमत्तसंयतसे सयोगि जिनपर्यन्त लोकका असंख्यातवाँ भाग है। विशेष, सयोगकेवलीके प्रतर तथा लोकपूरण समुद्घात आहारक अवस्थामें नहीं होते।

अनाहारकोंमें—कार्मण काययोगवत् है। विशेष, वेदनीयका सामान्यसे ओघवत् भंग है[3]।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

---

१. असण्णी मिच्छाइट्ठिभंगो। –खु० बं०,सू० २७५। २ "आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठि ओघं। सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा ओघं। पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।" –षट्खं०,फो०,सू० १८१-१८३। ३ "अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोकः स्पृष्टः। सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासंख्येयभागः, एकादश चतुर्दशभागा वा देशोनाः। सयोगकेवलिना लोकस्यासंख्येयभागः सर्वलोको वा। अयोगकेवलिना लोकस्यासंख्येयभागः।" –स० सि० १-८। "अणाहारएसु कम्मइयकायजोगिभंगो। णवरि विसेसो। अजोगिकेवलीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।" –सू० १८४-१८५। अणाहारा केवडियं खेत्तं फोसिदं? सव्वलोगो वा –खु० बं०,सू० २७८-२७९।

[कालाणुगम-परूवणा]

२१६. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य ।

२१७. तत्थ ओघेण पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त सोलसक० भयदु० तेजाक० आहारदुगं वण्ण०४ अगु०४ आदाउज्जो० णिमिण० तित्थयर-पंचंतराइगाणं बंधगा अबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा । सादासादाणं बंधा-अबंधगा० सव्वद्धा । दोण्णं बंधगा-अबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा । एवं सेसाणं पगदीणं

[कालानुगम]

२१६ कालानुगमका (नानाजीवोंकी अपेक्षा) ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते हैं ।

विशेषार्थ—यहाँ 'केवचिरं कालादो होंति' कितने काल तक रहते है; इसका अर्थ 'धवला' टीकाकार इस प्रकार करते है–'क्या नरकगतिमें नारकी जीव अनादि अपर्यवसित हैं ? क्या अनादि सपर्यवसित है ? क्या सादि अपर्यवसित है ? क्या सादि सपर्यवसित हैं ?' इस शंकाका यहाँ उद्दीपन किया गया है । इसके उत्तरमें कहा है–नाना जीवोंकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकी जीव सर्वकाल रहते है अर्थात् नारकी जीव अनादि—अपर्यवसित हैं, शेष तीन विकल्पोंमे नहीं है । जिस प्रकार नारकियोंका सामान्यसे अनादि—अपर्यवसित संतान काल कहा है, उसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें ही नारकियोंका सन्तानकाल अनादि-अपर्यवसित है । "पादेक्कं संताणस्स वोच्छेदो ण होदि त्ति वुत्तं होदि"—इस सूत्रका यह अभिप्राय है कि प्रत्येक सन्तानका व्युच्छेद नहीं होता ।

२१७. ओघसे—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, आहारकद्विक, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर, ५ अन्तरायोंके बन्धक, अबन्धक कितने काल तक होते हैं[2] ? नानाजीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं । साता असाताके बन्धक अबन्धक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते हैं । दोनोंके बन्धक, अबन्धक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते हैं ।

विशेषार्थ—यहाँ मूलमें 'आगतं बन्धा' का अर्थ बन्धक है । 'बन्धसामित्तविचय'

---

१. केवचिर कालादो होति त्ति एदस्सत्थो—णिरयगदीए णेरइया किमणादि-अपज्जवसिदा, किमणादि-सपज्जवसिदा, किं सादि-अपज्जवसिदा किं सादि-सपज्जवसिदा त्ति सिस्सस्स आसकुद्दीवणमेदेण कय । अणादि-अपज्जवसिदा होति सेस तिसु वियप्पेसु णत्थि जहा णेरइयाण सामण्णेण अणादिओ अपज्जवसिदो सताणकालो वुत्तो तधा सत्तसु पुढवीसु णेरइयाण पि । पादेक्क सताणस्स वोच्छेदो ण होदि त्ति वुत्त होदि । –खुद्दाबन्ध, टीका, पृ० ४६२, ४६३, सूत्र १, २ । २ "ओघेण मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । सव्वकाल णाणाजीवे पडुच्च मिच्छादिट्ठीण वोच्छेदो णत्थि त्ति भणिद होदि ॥"–ध० टी०, का० पृ० ३२३ । "सासणसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होनि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो ।" –षट्खं०, का० सू० ५, ६ ।

वेदणीय-भंगो। णवरि तिण्णिआयु-बंधगा केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। तिरिक्खायु-बंधाबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा। एवं चदुआयुगाणं। एवं ओघभंगो कायजोगीसु ओरालियकायजोगी० भवसिद्धि० आहारगत्ति। णवरि भवसिद्धिये दोवेदणीयस्स अबंधगा केव० कालादो होंति ? साधारणेण जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। सेसाणं मग्गणाणं वेदणीयस्स साधारणेण अबंधगा णत्थि। णवरि कायजोगि-ओरालियका० तिण्णं आयुगाणं जहण्णेण एगसमओ।

२१८. आदेसेण णेरइयेसु धुविगाणं बंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि-तियं मिच्छत्त-अणंताणु०४ उज्जोव-तित्थयराणं ओघं। तिरिक्खायु-बंधगा केव० कालादो होंति ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। मणुसायु-बंधगा केव० जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

तृतीय खण्डमे पंचम सूत्रमें आगत शब्द "को बन्धो को अबन्धो ?" की टीकामें वीरसेन आचार्य कहते हैं "बंधो बंधगोत्ति भणिदं होदि।" (पृ० ७)—बन्धका भाव बन्धक है।

शेष प्रकृतियोंका वेदनीयके समान भंग है। विशेष, ३ आयुके बन्धक कितने काल तक होते हैं ? जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग तक है। अबन्धकोंका सर्वकाल है। तिर्यंचायुके बन्धक,अबन्धक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते हैं। इसी प्रकार चार आयुका जानना चाहिए।

[1]काययोगी, औदारिककाययोगी, भव्यसिद्धिक तथा आहारक मार्गणामें ओघवत् जानना चाहिए। इतना विशेष है कि भव्यसिद्धिकोंमें दो वेदनीयके[2] अबन्धक कितने काल तक होते हैं ? सामान्यकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है।

विशेष—दोनों वेदनीयके अबन्धक अयोगी जिनकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त काल कहा है।

शेष मार्गणाओंमें सामान्यसे वेदनीयके अबन्धक नहीं हैं। विशेष, काययोगियों, औदारिक काययोगियोंमें तीन आयुके बन्धक कितने काल तक होते हैं ? जघन्यसे एक समय पर्यन्त होते हैं।

२१८. आदेशसे—नारकियोंमें ध्रुवप्रकृतियोंके बन्ध कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते हैं; अबन्धक नहीं हैं।[3] स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४, उद्योत और तीर्थंकरके बन्धकोंमें ओघके समान सर्वकाल जानना चाहिए। तिर्यंचायुके बन्धक कितने काल तक होते हैं ? जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवें भाग होते हैं। अबन्धक सर्वकाल होते हैं। मनुष्यायुके बन्धक कितने काल तक होते हैं ? जघन्य तथा उत्कृष्टसे

---

१ जोगाणुवादेण कायजोगी ओरालियकायजोगी-केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा —खु० बं०, सू० १६, १७। भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया केवचिर कालादो होंति ? सव्वद्धा (४२, ४३) आहारा अणाहारा केवचिर कालादो होंति ? सव्वद्धा (५४, ५५)। २ "चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।"—षट्खं०,का०,सू० २६।
३. "णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।—षट्खं०,का०,३३।

अवंधगा सव्वद्धा। दो-आयु वंधगा केवचिरं ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोव-मस्स असंखेज्जदिभागो। अवंधगा सव्वद्धा। सेसाणं पत्तेगेण सव्वे विगप्पा सव्वद्धा। साधारणेण अबंधगा णत्थि। एवं सव्वणेरइगाणं।

२१६. तिरिक्खेसु-चदुआयु ओघं। सेसाणं सव्वे विगप्पा सव्वद्धा। एवं एइंदि० पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वणप्फदि-पत्तेय० तेसिं बादर-बादर-अपज्जत्त-सव्वसुहुम० वणप्फदि-णिगोद-मदि० सुद० असंजद० तिण्णि लेस्सा० अब्भवसि० मिच्छादिट्ठि-असण्णित्ति।

२२०. पंचिंदिय-तिरिक्खेसु चदुआयु जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण पलिदोव-मस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। सेसाणं सव्वे भंगा सव्वद्धा।

अन्तर्मुहूर्त होते हैं। अवन्धक सर्वकाल होते हैं। दो आयु अर्थात् मनुष्य-तिर्यंचायुके बन्धक कितने काल तक होते है ? जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवें भाग होते है। अबन्धक सर्वकाल होते है। शेष प्रकृतियोंमे सर्व विकल्प पृथक्-पृथक् रूपसे सर्वकालरूप होते हैं। साधारणसे अबन्धक नहीं हैं। इसी प्रकार सर्व नारकियोंमें जानना चाहिए।

२१६. [1]तिर्यंचगतिमें चार आयुके बन्धक, अबन्धक कितने काल तक होते हैं ? ओघके समान जानना चाहिए। शेष सर्व विकल्प सर्वकाल प्रमाण हैं।[2] एकेन्द्रिय, पृथ्वी-कायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पति, प्रत्येक तथा इनके बादर तथा बादर अपर्याप्तकोंमे, सर्व सूक्ष्मोंमें, वनस्पतिनिगोदोंमें, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णादि-लेश्यात्रय, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि असंज्ञी पर्यन्तमे पूर्ववत् जानना चाहिए।

२२०. पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमे-चार आयुके बन्धक जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असख्यातवें भाग पर्यन्त होते है, अबन्धक सर्वकाल होते हैं। शेष प्रकृतियोंके सर्व विकल्प सर्वकाल जानना चाहिए।[3]

---

१ "तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।"[1] –षट्खं०,का० ४७। २ "एइंदिया केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" –सू० १०७। "पुढविकाइया-आउकाइया-तेउकाइया-वाउकाइया केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" –सू० १३९। 'बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-अपज्जत्ता केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।" (१४८) "सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउ-काइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा सुहुमेइंदिय पज्जत्तअपज्जत्ताण भंगो।' –सू० १५१। "णाणाणुवादेण मदि अण्णाणि-सुदअण्णाणीसु मिच्छादिट्ठी ओघ।" (२६०) "असजदेसु मिच्छा-दिट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्मादिट्ठि ओघ।" (२७५)। "किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" (२८३)। "अभवसिद्धिया केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" (३१५)। "मिच्छादिट्ठी ओघ।" (३२९)। "असण्णी केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" (३३४)। ३ तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदिय, तिरिक्खा पंचिंदियतिरि-क्खपज्जत्ता पंचिंदिय तिरिक्खजोणिणी पंचिंदिय तिरिक्ख अपज्जत्ता...केवचिर कालादो होंति ? सव्वद्धा। (४,५)

२२१. एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तजोणिणीसु । पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्ज०-दो आयुबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वद्धा । एवं सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-तस० अपज्जत्त-बादर-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ-बादरवणप्फदिपत्तेय-पज्जत्ताणं ।

२२२. मणुसेसु सादासादबंधगा सव्वद्धा । दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा सव्वद्धा । अबंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । दोआयु० बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वद्धा । दोआयु० बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अबंधगा सव्वद्धा । चदुआयुबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । अबंधगा सव्वद्धा । सेसाणं सव्वे भंगा सव्वद्धा ।

२२३. एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि चदुआयु पत्तेगेण साधारणेण य बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अबंधगा केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा ।

---

२२१. पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिमतियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । पंचेन्द्रिय तिर्यंचलब्ध्यपर्याप्तकोंमे दो आयु (नर-तिर्यंचायु) के बन्धक जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवे भाग होते है । अवन्धक सर्वकाल होते हैं। सर्वविकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय त्रस इनके अपर्याप्तकोंमें बादर-पृथ्वी-जल-अग्नि-वायुकायिक, बादर बनस्पति प्रत्येक तथा इनके पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए।[1]

२२२. मनुष्योंमें-साता-असाता वेदनीयके बन्धकोंका सर्वकाल है ।[2] दोनों वेदनीयके बन्धकोंका सर्वकाल है । अवन्धकोंका जघन्य-उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ।[3]

विशेष—दोनों वेदनीयके अबन्धक अयोगिजिनोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कहा गया है।

दो आयुके बन्धक जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवे भाग होते हैं; अवन्धक सर्वकाल होते हैं । दो आयुके बन्धक जघन्य-उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त होते हैं; अबन्धकोंका सर्वकाल है । चारों आयुके बन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवें भाग होते हैं; अबंधक सर्वकाल होते हैं। शेष प्रकृतियोंके सवभंग सर्वकाल जानना चाहिए।

२२३. मनुष्य पर्याप्तकों, मनुष्यनियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि चार आयुके प्रत्येक तथा सामान्यसे बन्धक जघन्य और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त होते हैं । अबन्धक कितने काल तक होते हैं ? सर्वकाल होते हैं।

---

१. इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया । तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिर कालादो होति ? सव्वद्धा । १२, १३। कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादर वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता तसकाइय-पज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिर कालादो होति ? सव्वद्धा -१४,१५, खु० बं० । २ मणुसगदीए मणुसा मणुस-पज्जत्ता मणुसिणी केवचिर कालादो होति ? सव्वद्धा (४,५) । ३ "चदुण्ह खवगा अजोगिकेवली केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।"–षटखं०,का०,२६ ।

२२४. मणुस-अपज्जत्तगेसु-धुविगाणं बंधगा केव० कालादो होंति ? जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। सादासाद-बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। दोण्णं बंधगा जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। दो-आयु० पत्तेगेण साधारणेण य बंधगा-अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। ओरालि० अंगो०छस्संघड० परधादुस्सा० आदाउज्जो० दोविहाय० दोसरं बंधगा-अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि। सेसाणं वेदणीयभंगो।

२२५. देवाणं णिरयभंगो। णवरि एइंदियपयडि जाणिदूण भाणिदव्वं।

२२६. पंचिंदिय-तस० तेसिं पज्जत्ता वेदणीयं साधारणेण अबंधगा जहण्णुक्क-

---

२२४. मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकों[1] में-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धक कितने काल तक होते हैं ? जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण काल, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवें भाग पर्यन्त होते हैं; अबन्धक नहीं हैं। साता-असाता वेदनीयके बन्धक, अबन्धक जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवें भाग होते हैं। दोनोंके बन्धक जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहण पर्यन्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवें भाग होते हैं, अबन्धक नहीं हैं। दो आयु (मनुष्य-तिर्यंचायु) के बन्धक-अबन्धक प्रत्येक साधारणसे जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं। औदारिक अंगोपांग, छह संहनन, परघात-उच्छ्वास-आतप, उद्योत, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धक, अबन्धक जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं। सामान्य तथा प्रत्येकसे इसी प्रकार जानना चाहिए। शेषका वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। अर्थात् जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है।

२२५ देवोंमें-नारकियोंके समान भंग[2] है। विशेष यह है कि यहाँ एकेन्द्रिय प्रकृतिको भी जानकर कहना चाहिए।

विशेष—नारकी जीव मरणकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक मनुष्य या तिर्यंच होते हैं, किन्तु देवोंकी उत्पत्ति एकेन्द्रियोंमें भी होती है। अतः देवगतिमें एकेन्द्रिय जातिके बन्धका भी उल्लेख है।

२२६. पचेन्द्रिय त्रस तथा इनके पर्याप्तकोंमें-साधारणसे वेदनीयके अबन्धकोंका

---

१ "मणुस-अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।" –षट्खं०, का० ८३-८४। खुद्दाबंध, सू० ६, ७, ८। २ "णेरइएसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा। सासणसम्मादिट्ठी-सम्मामिच्छादिट्ठी ओघ।" –षट्खं०, का०, ३६। देवगदीए देवा केवचिर कालादो होंति ? सव्वद्धा। –खु० बं०, सू० ९, १०। "सासण-सम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।" (५, ६)। "सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।" (९, १०) असजदसम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।"–षट्खं०, का०, १३।

स्सेण अंतोमुहुत्तं, चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। सेस-भंगा सव्वद्धा।

२२७. एवं तिण्णि-मण० तिण्णि-वचि०। णवरि वेदणीयस्स साधारणेण अबंधगा णत्थि। चदुआयु० बंधगा जहण्णेण एगस०, उक० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। दोमण० दोवचि० पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिण० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगसमओ, उक० अंतोमुहुत्तं। सादासादाणं बंधगा-अबंधगा सव्वद्धा। दोण्णं बंधगा सव्वद्धा, अबंधगा णत्थि। इत्थि० पुरिस० णवुंसगवेदाणं बंधगा-अबंधगा सव्वद्धा। तिण्णं वेदाणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगसमओ, उक० अंतोमुहुत्तं। एवं दोयुगलचदुगदि-पंचजादि-दोसरीरछस्संठाण-चदुआणुपुव्वि० तस-थावरादि-णवयुगलं दोगोदं च। आहारदुगं दो-अंगो० छस्संघ० परघादुस्सास-आदाउज्जो० दो विहाय० दोसर० तित्थय० पत्तेगेण साधारणेण बंधगा-अबंधगा सव्वद्धा। चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जह० एगस०, उक०, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा।

२२८. एवं चक्खुदं० अचक्खुदं० सण्णि त्ति। णवरि चक्खुदं० सण्णि० आयु०

जघन्य, उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त है। चार आयुके बन्धकोंका जघन्यसे अन्तमुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। शेष भग सर्वकाल है।

२२७. तीन मनोयोग, तीन वचनयोगमे इसी प्रकार है। इतना विशेष है कि वेदनीयके सामान्यसे अबन्धक नहीं है। चार आयुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग काल है। दो मन तथा दो वचनयोगमे-पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा पाँच अन्तरायोंके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त है। साता-असाताके बन्धकों-अबन्धकोंका काल सर्वकाल है। दोनोंके बन्धकोंका सर्वकाल है; अबन्धक नहीं हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेदके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वकाल है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त है। हास्यादि दो युगल, चार गति, पाँच जाति, दो शरीर, छह संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि नव युगल तथा दो गोत्रोंमे भी इसी प्रकार जानना, अर्थात् अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त है तथा बन्धकोंका सर्वकाल है। आहारकद्विक, २ अंगोपांग, ६ संहनन, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, २ स्वर तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकों,अबन्धकोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे सर्वकाल है। चार आयुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है; अबन्धकोंका सर्वकाल है।[1]

२२८. चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन तथा संज्ञी जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष,

---

१ जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरालियकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा –खु० बं०,१६, १७।

तस-भंगो। अचक्खुदं० आयु० ओघं।

२२९. ओरालिमि०-धुविगाणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगसमओ। उक्कस्सेण संखेज्जसमया। सादासाद-बंधगा-अबंधगा सव्वद्धा। दोण्णं बंधगा सव्वद्धा, अबंधगा णत्थि। इत्थि० पुरिस० णवुंसगवेदाणं बंधगा-अबंधगा सव्वद्धा। तिण्णं वेदाणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगस०। उक्क० संखेज्जसमया। एवं दोण्णं युगलाणं। दोआयु ओघं। देवगदि०४ तित्थय० बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा सव्वद्धा। दोगदिबंधगा-अबंधगा सव्वद्धा। तिण्णं गदीणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगसमओ। उक्क० संखेज्जसमया। मिच्छत्तबंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगस०, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। थीणगिद्धि-तियं अणंताणुबंधि० ४ ओरालि० बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगसमओ। उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं

चक्षुदर्शन, एवं संज्ञी जीवोंमे आयुका त्रसके समान भंग है। आयुका अचक्षुदर्शनमें ओघवत् जानना चाहिए।[1]

२२९. औदारिकमिश्र काययोगमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वकाल है, अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे संख्यात समय प्रमाण है[2]। साता-असाताके बन्धकों-अबन्धकोंका सर्वकाल है। दोनोंके बन्धकोंका सर्वकाल है; अबन्धक नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदके बन्धकों,अबन्धकोंका सर्वकाल है। तीनों वेदोंके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे संख्यात समय है। इस प्रकार दो युगलोंमे जानना चाहिए। दो आयुमे ओघवत् जानना चाहिए। देवगति ४, तीर्थंकरके बन्धकोंका जघन्यसे, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त काल है[3], अबन्धकोंका सर्वकाल है। दो गतिके बन्धकों,अबन्धकोंका सर्वकाल है। तीन गतिके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे संख्यात समय है। मिथ्यात्वके बन्धकोंका सर्वकाल है।[4] अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ तथा औदारिक शरीरके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। इसी

---

१. दमणाणुवादेण चक्खुदसणी अचक्खुदसणी ओहिदसणी केवलदसणी केवचिर कालादो होति? सव्वद्धा –३८, ३९ सू०, खु० ब०। सण्णियाणुवादेण सण्णी असण्णी केवचिर कालादो होंति? सव्वद्धा। –४२, ४३, खु० ब०,सू०। २ "दड समुद्घातसे कपाटको प्राप्त होकर वहाँ एक समय रहकर प्रतर समुद्घातको प्राप्त हुए केवलियोंके यह एक समय प्रमाण काल होता है। अथवा रुचकसे कपाटसमुद्घातको प्राप्त होकर और एक समय रहकर दण्डसमुद्घातको प्राप्त होनेवाले केवलियोंके एक समय काल होता है। कपाटसमुद्घातके आरोहण-अवरोहणरूप क्रियामें सलग्न क्रमश दण्ड,प्रतररूप पर्याय परिणत सख्यात समयोकी पक्तिमें स्थित सख्यातकेवलियोंके द्वारा अविकृत अवस्थामें सख्यात समय पाये जाते है।" –ध० टी०, का० ४२४। "सजोगिकेवली केवचिर कालादो होंति? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण सखेज्जसमय"–षट्खं०,का०,१९३-९४। ३ "असजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होंति? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त उक्कस्सेण अतोमुहुत्त।"–षट्खं०,का० १८९-९०। ४ "सासणसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होंति? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो।"–षट्खं०, का०, १८५-८६।

सव्वाणं णेदव्वं।

२३०. एवं कम्मइयका०। णवरि थीणगिद्धितिगं मिच्छ० अणंताणु०४ बंधगा सव्वद्धा, अबंधगा जह० एगसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो। देवगदि०४ तित्थयरं बंधगा जह० एगस०। उक० संखेज्जसमया। अबंधगा सव्वद्धा। ओरालिय-बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जह० एगसमओ। उक्कस्सेण संखेज्जसमया।

२३१. वेउव्विकायजोगिस्स देवोघं। वेउव्वियमिस्स० धुविगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितिगं मिच्छत्त अणंताणुबंधि०४ बंधगा-अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। णवरि मिच्छत्त-अबंधगा जहण्णेण एगसमओ। दोवेदणीय-बंधगा-अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। दोण्णं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। एवं तिण्णं वेदाणं दोण्णं युगलाणं दोगदि-दोजादि-छस्संठाण-दोआणुपुव्वि-तसथावरादि-पंच-युगल-दोगोदाणं च। ओरालि-अंगोवंग-छस्संघडण-

---

प्रकार सर्व प्रकृतियोंका जानना चाहिए।

२३०. कार्मण काययोगियोंमें—इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे आवलीका असंख्यातवाँ भाग है। देवगति ४, तीर्थंकरके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे संख्यात समय है। अबन्धकोंका सर्वकाल है। औदारिक शरीरके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट संख्यात समय है।

२३१. वैक्रियिक काययोगियोंमें—देवोंके ओघवत् जानना चाहिए। वैक्रियिकमिश्र काययोगियोंमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवे भाग है; अबन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चारके बन्धकों, अबन्धकोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवे भाग है। [1]विशेष यह है कि मिथ्यात्वके अबन्धकोंका जघन्य काल एक समय है। दोनों वेदनीयके बन्धकों, अबन्धकोंका काल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्यका असंख्यातवाँ भाग है। दोनोंके बन्धकोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यका असंख्यातवाँ भाग है; अबन्धक नहीं है। तीनों वेदों, हास्यादि दो युगलों, २ गति, २ जाति, ६ संस्थान, दो आनुपूर्वी, त्रस-स्थावरादि पचयुगल तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, दो विहायोगति

---

१ "सासणसम्मादिट्ठी असजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण आवलियाए असखेज्जदिभागो।"षट्खं०,का०,२२०-२१। २ "वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीअसजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो।"–षट्खं०,का०,२०१–२०२। ३. "सासणसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो।" –षट्खं०, का०, २०५-२०६।

दोविहायगदि-दोसराणं बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। तित्थयरं बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। आहारका०-धुविगाणं बंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा णत्थि। सेसाणं बंधगा अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। आहारमि०-धुविगाणं बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा णत्थि। वेदणीय-बंधगा-अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। दोण्णं बंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा णत्थि। आयु० तित्थय० सादभंगो।

२३२. इत्थिवे०-पं णा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंत० बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-बारसक० आहारदुग-परघादुस्सास-आदा-उज्जोव-तित्थयराणं बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। णिद्दापचल(ला)-भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। सादासाद-बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। दोण्णं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा णत्थि। एवं

तथा दो स्वरोंके बन्धकों-अबन्धकोंका काल जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। तीर्थंकरके बन्धकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है।

आहारककाययोगियोंमे[1] ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है; अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंके बन्धकों,अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है।

आहारकमिश्रमे[2]—ध्रुव प्रकृतियोके बन्धकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। अबन्धक नहीं है। वेदनीयके बन्धकों अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। दोनोंके बन्धकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है; अबन्धक नहीं है। आयु तथा तीर्थंकरमे साताके समान भंग है।

२३२. स्त्रीवेदमें[3]—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, ५ अन्तरायके बन्धकोंका सर्वकाल है; अबन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषाय, आहारकद्विक, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत तथा तीर्थंकरके बन्धकों,अबन्धकोंका सर्वकाल है।[4] निद्रा-प्रचला, भय-जुगुप्सा, तैजस कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है[5]। साता असाता वेदनीयके बन्धकों

---

१ "आहारकायजोगीसु पमत्तसजदा केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त।" –षट्खं० का० २०६-२१०। २ "आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसजदा केवचिरं कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।" –षट्खं० का० २१३-१४। ३ "इत्थिवेदेसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" –षट्खं० का० २२७। "वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुसयवेदा अवगदवेदा केवचिर कालादो होति ? सव्वद्धा।" – २७, २८ खु० बं०। ४ "असजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा।" –षट्खं० का० २३२। ५ "चदुण्णं उवसमा केवचिर कालादो होंति ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त।" –षट्खं० का० २२-२३।

तिण्णि-वेद-जस०-अजस० दोगोदं च। हस्सरदि-अरदि-सोगं बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। दोण्णं युगलाणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। सेसाणं पत्तेगेण साधारणेण वि हस्सरदीणं भंगो। चदुआयुगाणं बंधगा पत्तेगेण जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। साधारणेण चदुआयुगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा सव्वद्धा। एवं पुरिसवेदस्स वि। एवं चेव णवुंसगवेद-कोधादितिण्णं कसायाणं। णवरि तिरिक्खायुबंधगा अबंधगा सव्वद्धा। साधारणेण चदुआयुगाणं अबंधगा सव्वद्धा। एवं चेव लोभे वि। णवरि पंचणा० चदुदं० पंचंतराइगाणं बंधगा सव्वद्धा। अबंधगा णत्थि। अवगदवेदेसु–सादस्स बंधाबंधगा सव्वद्धा। सेसाणं बंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा सव्वद्धा। अकसाइगेसु–सादस्स बंधगा अबंधगा सव्वद्धा। एवं केवलणा० केवलदंस०।

२३३. विभंगे पंचिंदिय-तिरिक्ख-भंगो। णवरि मिच्छत्त-अबंधगा जहण्णेण एग-

---

अबन्धकोंका सर्वकाल है। दोनोंके बन्धकोंका सर्वकाल है; अबन्धक नहीं है। तीन वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति तथा दो गोत्रोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। हास्य-रति, अरति-शोकके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वकाल है। दोनों युगलोंके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंमें प्रत्येक तथा सामान्यसे हास्य-रतिके समान भंग जानना चाहिए। चार आयुके बन्धकोंका प्रत्येकसे जघन्यकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त काल है, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंका सर्वकाल है। सामान्यसे चार आयुके बन्धकोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंका सर्वकाल है।

पुरुषवेदमें–इसी प्रकार जानना चाहिए। नपुंसकवेदमें भी इसी प्रकार है। क्रोध-मान-मायाकषायमें भी इसी प्रकार है। विशेष यह है कि तिर्यंच आयुके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है। सामान्यसे चार आयुके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वकाल है। लोभकषायमें–इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंका सर्वकाल है; अबन्धक नहीं है।

अपगत वेदमें–सातावेदनीयके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है। शेष प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। अबन्धकोंका सर्वकाल है।

अकषायियोंमें–साता वेदनीयके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वकाल है। केवलज्ञान, केवलदर्शनमें इसी प्रकार जानना चाहिए।

२३३. विभंगज्ञानमें[3]–पचेन्द्रिय तिर्यंचके समान भंग जानना चाहिए। विशेष यह है

---

१. "कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाई केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा" –खु० बं०, सू० २८, २९। २ "णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीमणपज्जवणाणी केवलणाणी केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा" –खु० बं० सू० ३१, ३२। ३. "विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठी केवचिर कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।"–षट्खं० का० २६२। "सासणसम्मादिट्ठी ओघं (२६५) णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।" ५-६।

समओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेजदिभागो ।

२३४. आभि० सुद० ओधि०–धुविगाणं बंधगा सव्वद्धा । अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अट्ठकसा० आहारदु० वज्जरिसभ० तित्थय० बंधाबंधगा सव्वद्धा । सेसाणं दोण्णं मणजोगीणं भंगो । णवरि मणुसायु० मणुसिभंगो । देवायु० ओघं ।

२३५. एवं ओधिदंस० । एवं चेव मणपज्जव० सामा० छेदो० । णवरि देवायु० मणुसिभंगो । संजदा मणुसिभंगो ।

२३६. परिहार–धुविगाणं बंधगा सव्वद्धा । अबंधगा णत्थि । दोवेदणीयाणं बंधाबंधगा सव्वद्धा । दोण्णं पगदीणं बंधगा सव्वद्धा । अबंधगा णत्थि । देवायु० मणुसिभंगो । सेसं वेदणीयभंगो ।

२३७. एवं संजदासंजदाणं । देवायु० ओघं । सुहुम० सव्वाणं बंधगा जहण्णेण

कि मिथ्यात्वके अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है ।

२३४. [1]आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानमें–ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वकाल है । अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त है । आठ कषाय, आहारकद्विक, वज्रवृषभसंहनन, तीर्थंकरके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वकाल है । शेष प्रकृतियोंका दो मनोयोगियोंके समान भंग है । अर्थात् बन्धकोंका सर्वकाल है । अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है । विशेष यह है कि मनुष्यायुका मनुष्यनियोंके समान भंग है । देवायुके विषयमें ओघवत् जानना चाहिए ।

२३५. इसी प्रकार अवधिदर्शनमें जानना चाहिए । मनःपर्ययज्ञान, सामायिक, छेदोपस्थापना, संयममें इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह [2]है कि देवायुके बन्धकोंमें मनुष्यनीका भंग जानना चाहिए । संयतोंमें मनुष्यनीका भंग है ।

२३६ परिहारविशुद्धिसंयममें–ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वकाल है, अबन्धक नहीं है । दोनों वेदनीयोंके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वकाल है । दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वकाल है, अबन्धक नहीं हैं । देवायुका मनुष्यनीके समान भंग है । शेष प्रकृतियोंमें वेदनीयका भंग है ।

२३७ संयतासंयतोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । देवायुका ओघवत् भंग जानना

---

१ "आभिणिबोहियणाणि-सुदणाणि-ओधिणाणीसु असजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्थात्ति ओघ ।"–सू० २६६ । "असजदसम्मादिट्ठी केवचिर कालादो होति ? णाणाजीव पडुच्च सव्वद्धा । सजदासजदा"""" सव्वद्धा । पमत्त-अप्पमत्तसजदा " सव्वद्धा । चउण्ह उवसमा णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त । चदुण्ह खवगा अजोगिकेवली " ""जहण्णेण अतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अतोमुहुत्त ।" –सू० १३, १६, १९, २२. २३, २६, २७ । २ "मणपज्जवणाणी ' केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा"–खु० बं०,३१, ३२ । "संजमाणुवादेण । सजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसजदा परिहारसुद्धिसंजदा जहाक्खादाविहारसुद्धिसंजदा संजदासजदा असजदा केवचिर कालादो होंति ? सव्वद्धा ।"

एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा णत्थि।

२३८. तेऊ देवोघं। एवं पम्माए वि। सुक्काए धुविगाणं बंधाबंधगा सव्वद्धा। सेसं मणुस-पज्जत्तभंगो।

२३९. सम्मादि० दोआयु ओधिभंगो। सेसं सव्वद्धा। एवं खइग-सम्मा०। दोआयु सुक्कभंगो। वेदगे०–धुविगाणं बंधा सव्वद्धा, अबंधगा णत्थि। सेसं ओधिभंगो। णवरि साधारणेण अबंधगा णत्थि।

२४०. उवसमसम्मा०–धुविगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

चाहिए। [1]सूक्ष्मसाम्परायसंयममें सर्व प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्यकाल एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—उपशान्तकषाय वा अनिवृत्ति बादर साम्पराय-प्रविष्ट जीवोंके सूक्ष्म साम्परायिक गुणस्थानको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें मरणकर देवोंमें उत्पन्न होनेपर एक समय जघन्यकाल पाया जाता है। उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है, उसमें संख्यात अन्तर्मुहूर्तोंका समावेश है। (खु० बं०, टीका, पृ० ४९३, ४७४)

२३८. [2]तेजोलेश्यामें–देवोंके ओघ समान है। पद्मलेश्यामें–इसी प्रकार है। [3]शुक्ललेश्यामें–ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका सर्वकाल है। शेष प्रकृतियोंका मनुष्यपर्याप्तकके समान भंग है।

२३९. सम्यग्दृष्टियोंमें–दो आयुके बन्धकों अबन्धकोंका ओघके समान भंग है। शेष प्रकृतियोंमें सर्वकाल भंग है। क्षायिकसम्यक्त्वियोंमें–इसी प्रकार है। दो आयुका शुक्ललेश्याके समान भंग है। वेदकसम्यक्त्वियोंमें–ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धकोंका सर्वकाल है। अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंका अवधिज्ञानके समान भंग है। विशेष यह है कि सामान्यसे अबन्धक नहीं है।

२४०. [5]उपशमसम्यक्त्वियोंमें–ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्यके असंख्यातवें भाग हैं। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है।

---

१ "सुहुमसांपराइयसुद्धिसजदेसु सुहुमसापराइयसुद्धिसजदा उवसमा खवा ओघं।" –२७२। २. "तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठी असजदसम्मादिट्ठी··· सव्वद्धा" –षट्खं०, का०, २९१। "सासणसम्मादिट्ठी ओघ।" –२९४। "सम्मामिच्छादिट्ठी ओघ।" –२९५। "सजदासजदपमत्तअप्पमत्त-संजदा···सव्वद्धा।"–२९६। ३ "सुक्कलेस्सिएसु चदुण्हमुवसमा चदुण्ह खवगा सजोगिकेवली ओघ।"–३०८। ४ "सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी मिच्छाइट्ठी केवचिर कालादो होति ? सव्वद्धा" –खु० बं०, सू० ४४, ४५। ५ "उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठी सजदासंजदा केवचिर कालादो होति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।" –षट्खं०, का० सू० ३१९–२०। "उवसमसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिर कालादो होति ? जहण्णेण अंतोमुहुत्त। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो" –खु० बं०, कालाणुगम-सू० ४६-४८। "पमत्तसजदप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीदरागछदुमत्था त्ति केवचिरं कालादो होति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण अंतोमुहुत्त।" –३२३–२४।

अपच्चक्खाणा०४ बंधगा-अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। पच्चक्खाणा०४ बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। [1]सादासाद-बंधगा-अबंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। दोण्णं वेदणीयाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। मणुसगदि-पंचगं बंधगा-अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। देवगदि०४ बंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं अबंधगा। णवरि जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। आहारदुगं बंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। अबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं तित्थयरस्स। चदुणोकसायाणं बंधगा-अबंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। दोण्णं युगलाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। एवं थिरादितिण्णियुगलाणं। सासणे-धुविगाणं बंधगा जह० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। एवं वेदणीयं पत्तेगेण बंधगा-अबंधगा। साधारणेण बंधगा-अबंधगा जहण्णेण एग-

---

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकों,अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवे भाग है। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंका जघन्य तथा उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। साता-असाताके बन्धकों,अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग जानना चाहिए। दोनों वेदनीयोंके बन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है; अबन्धक नहीं है। मनुष्यगतिपंचकके बन्धकों,अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। देवगति ४ के बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। इसी प्रकार अबन्धकोंका जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। आहारकद्विकके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। तीर्थंकरका इसी प्रकार जानना चाहिए। चार नोकषायोंके बन्धकों, अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। दोनों युगलोंके बन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। स्थिरादि तीन युगलोंमे इसी प्रकार जानना चाहिए।

सासादनमें— ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है; अबन्धक नहीं है। वेदनीयके बन्धकों, अबन्धकोंमें प्रत्येकसे इसी प्रकार है। सामान्यसे बन्धकों,अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय है, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ

---

१. 'सासणसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।"–षट्खं०,का०,५-६।

समओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। एवं सव्वाणं। दोआयु० बंधाबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। मणुसायुबं० देवभंगो। अबंधगा जह० एगस० उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। एवं साधारणेण वि।

२४१. सम्मामि० धुविगाणं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। सादासादाणं बंधगा० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो। दोण्णं बंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अबंधगा णत्थि। एवं परियत्तमाणियाणं सव्वाणं। मणुसगदिपंचगं देवगदि०४ बंधाबंधगा जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उकस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं साधारणेण वि। अबंधगा णत्थि।

२४२. अणाहारे धुविगाणं बंधगा-अबंधगा सव्वद्धा। देवगदिपंचगं बंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण संखेज्जा समया। अबंधगा सव्वद्धा। सेसाणं बंधाबंधगा सव्वद्धा।

एवं कालं समत्तं।

भाग है; अबन्धक नहीं है। शेष प्रकृतियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। दो आयुके बन्धकों, अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। मनुष्यायुके बन्धकोंमें देवोंके समान भंग है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। इसी प्रकार सामान्यसे भी जानना चाहिए।

२४१. सम्यक्त्वमिथ्यात्वमें—ध्रुव[1] प्रकृतियोंके बन्धकोंका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है, अबन्धक नहीं है। साता-असाताके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। दोनोंके बन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है; अबन्धक नहीं है। परिवर्तमान सर्वप्रकृतियोंमें इस प्रकार जानना चाहिए। मनुष्यगतिपंचक, देवगति ४ के बन्धकों, अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टसे पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। इस प्रकार सामान्यसे भी भंग जानना चाहिए; अबन्धक नहीं है।

२४२. अनाहारकोंमें—ध्रुव[2] प्रकृतियोंके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वकाल है। देवगतिपंचकके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे संख्यात समय है। अबन्धकोंका सर्वकाल है। शेष प्रकृतियोंके बन्धकों, अबन्धकोंका सर्वकाल है।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा कालप्ररूपणा समाप्त हुई।

---

१. "सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालदो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।" –६-१०। २ "आहारा अणाहारा केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा" – खु० बं०, सू० ५४, ५५।

[अंतराणुगम-परूवणा]

२४३. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य।

२४४. तत्थ ओघेण–पंचणा० णवदंस० मिच्छत्त० सोलसक० भयदु० आहारदुगं तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ आदाउज्जो० णिमिण-तित्थयर-पंचंतराइगाणं बंधा-अबंधगा णत्थि अंतरं, णिरंतरं। तिण्णि आयु० बंधगा जहण्णेण एगसमओ उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं। अबंधगा णत्थि। तिरिक्खायुबंधाबंधगा णत्थि अंतरं। चदुआयु बंधा-अबंधगा णत्थि अंतरं। सेसविगप्पाणं बंधगा अबंधगा णत्थि अंतरं। एवं काजोगि (?)।

२४५. ओघभंगो काजोगि-ओरालियकाजोगि-भवसिद्धि-आहारगत्ति। णवरि भवसिद्धि०।

[अन्तरानुगम]

[अन्तर शब्द छिद्र, मध्य, विरह आदि अनेक अर्थोंका द्योतक है। यहाँ अन्तर शब्द विरहकालका द्योतक है। एक वस्तु अवस्थाविशेषमे कुछ समय रहकर कुछ कालके लिए अवस्थान्तर रूप हो गयी और बादमे वह उस अवस्थाविशेषको पुन: प्राप्त हो गयी। इस मध्यवर्ती कालको अन्तर कहते हैं। यहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा वर्णन किया गया है।[1]]

२४३ यहाँ ओघ तथा आदेशकी अपेक्षा अन्तरका दो प्रकारसे निर्देश करते हैं।

२४४ ओघसे ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, आहारकद्विक, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर और ५ अन्तरायोंके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है, निरन्तर बन्ध है।

विशेषार्थ—धवलाटीकामे लिखा है "निर्गतमन्तरमस्माद्राशेरिति णिरंतरं", जिस राशिमें अन्तरका अभाव है वह निरन्तर है। 'णत्थि अन्तरं'–अन्तर नहीं है यह प्रसज्य प्रतिषेध हैं, क्योंकि यहाँ विधिकी प्रधानताका अभाव है। 'णिरंतरं' निरन्तर हैं यह पर्युदास प्रतिषेध है, कारण यहाँ प्रतिषेधकी प्रधानता नहीं है। इस प्रकार प्रसज्य और पर्युदास रूप अभाव युगलका कथन किया गया है। (खु० बं० अं० पृ० ४७९-४८०)

नरक-मनुष्य-देवायुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त अन्तर है। अबन्धक नहीं है। तिर्यंचायुके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है। चार आयुके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है। शेष प्रकृतियोंके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है।

२४५. काययोगी, औदारिक काययोगी, भव्यसिद्धिक तथा आहारकमे ओघकी तरह अन्तर जानना चाहिए। भव्यसिद्धिकोंमे विशेष जानना चाहिए।

---

१ "अन्तरशब्दस्यानेकार्थवृत्तेश्छिद्रमध्यविरहेष्वन्यतमग्रहणम्। –त० रा० पृ० ३०। "अन्तरमुच्छेदो विरहो परिणामान्तरगमणं णत्थित्तगमणं अण्णभावव्ववहाणमिदि एयट्ठो।" –ध० टी० अन्तरा० पृ० ३।

२४६. आदेसेण णेरइगेसु–दो-आयुबंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं, अडदालीसं मुहुत्तं, पक्खं, मासं, वेमासं, चत्तारि मासं, छम्मासं, बारसमासं। एवं सव्वणेरइगाणं। सेसं पगदीणं णत्थि अंतरं।

२४७. तिरिक्खेसु–आयु० ओघं। सेसं णत्थि अंतरं। एवं एइंदिय-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० तेसिं चेव बादरअपज्ज० सव्वसुहुम-सव्ववणप्फदि-णिगोद-बादर-वणप्फदि-पत्तेय तस्सेव अपज्जत्त-मदि० सुद० असंज० तिण्णिले० अब्भवसिद्धि-मिच्छादिट्ठि याव असण्णित्ति। एदेसिं च किंचि विसेसं ओघादो साधेदूण णेदव्वं। पंचिंदिय तिरिक्ख०४ तिण्णि आयु० ओघं। तिरिक्खायु-बंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। पज्जत्तजोणिणीसु चउव्वीसं मुहुत्तं। चदु-आयु-तिरिक्खायुभंगो। पंचिंदिय-

२४६. आदेशसे–नारकियोंमे मनुष्य-तिर्यंचायुके बन्धकोंका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त, ४८ मुहूर्त, पक्ष, मास, दो मास, चार मास, छह मास तथा बारह मास अन्तर है। इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंका अन्तर नहीं है, कारण उनका निरन्तर बन्ध होता है।

२४७ तिर्यंचोंमें—आयुके बन्धकोंका अन्तर ओघवत् जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंके बन्धकोंका अन्तर नहीं है।[1] इसी प्रकार एकेन्द्रिय, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु तथा इनके बादर अपर्याप्तक भेदोंमे, सम्पूर्ण सूक्ष्म, सर्व वनस्पतिनिगोद, बादरवनस्पति—प्रत्येक तथा उनके अपर्याप्तकोंमे एवं[2] मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान[3], असंयम,[4] तीन लेश्या[5], अभव्यसिद्धिक[6], मिथ्यादृष्टिसे असंज्ञी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए। इनमें पायी जानेवाली विशेषताओंको ओघ-वर्णनसे जानकर निकालना चाहिए।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंचअपर्याप्त तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतोंमें—तीन आयुका ओघवत् है। तिर्यंचायुके बन्धकोंका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। पर्याप्तक योनिमती तिर्यंचोंमें अन्तर २४ मुहूर्त है। चार आयुके बन्धकोंमे तिर्यंचायुके समान भंग है।

---

१ इंदियाणुवादेण एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदय-पंचिंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतर केवचिर कालादो होदि? णत्थि अंतर, णिरंतरं (१५-१७) कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइय-पज्जत्ता-अपज्जत्तणमंतर केवचिर कालादो होदि? णत्थि अंतर।" १८,१९, २ "णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणि-आभिणिबोहिय-सुदओहिणाणिमणपज्जवणाणि-केवलणाणीणमंतर केवचिर कालादो होदि? णत्थि अंतर णिरंतर" (३६-३८)। ३ "संजमाणुवादेण संजदा''' संजदासंजदा-असंजदाणमंतर ' णत्थि अंतर णिरंतर" (३९-४१)। ४ "लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाणमंतर केवचिर कालादो होदि? णत्थि अंतर णिरंतर (४८-५०) भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभव-सिद्धियाणमंतर केवचिर कालादो होदि? णत्थि अंतर णिरंतर (५१-५३)। ५ "सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठि-वेदगसम्माइट्ठि-मिच्छाइट्ठीणमंतर केवचिर कालादो होदि? णत्थि अंतर णिरंतर" (५४-५६)। ६ "सण्णियाणुवादेण सण्णि-असण्णीणमंतर केवचिर कालादो होदि? णत्थि अंतरं णिरंतर–खु० बं० सूत्र ६३-६५ अन्तराणुगम।

तिरिक्ख-अपज्ज० तिरिक्खायु० जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। मणुसायु ओघं। दो-आयु० तिरिक्खायुभंगो। सेसं णत्थि अंतरं। एवं पंचिंदिय-तस-अपज्ज० विगलिंदिय-बादर-पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० बादर-वणप्फदि-पत्तेय-पज्जत्ताणं। णवरि तेउ० आयु चउव्वीसं मुहुत्तं।

२४८. मणुसेसु—चदु-आयुबंधगा जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्त। दो वेदणी० अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण छम्मास०। मणुसिणीसु वासपुधत्तं। सेसं णत्थि अंतरं। मणुस-अपज्ज० सव्वाणं जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

२४९. देवाणं-णिरयभंगो। णवरि सव्वट्ठे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकों मे तिर्यंचायुका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यायुका ओघवत् अन्तर है। दो आयुके बन्धकोंका तिर्यंचायुके समान भंग है। शेष प्रकृतियोंमे अन्तर नहीं है।

इसी प्रकार पचेन्द्रिय-त्रस-अपर्याप्तक, विकलेन्द्रिय, बादर पृथ्वी, बादर अप्, बादर तेज, बादर वायु, बादर वनस्पति प्रत्येक पर्याप्तको मे जानना चाहिए। विशेष, तेजकायमे आयुका २४ मुहूर्त अन्तर है।

२४८ मनुष्यगतिमे—चार आयुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त अन्तर है। दो वेदनीयके अबन्धकोंका जघन्यसे अन्तर एक समय, उत्कृष्टसे छह माह है।[1]

विशेष—साता-असातायुगलके अबन्धक अयोगकेवली होंगे। उनका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है, उत्कृष्ट अन्तर छह मास है।

मनुष्यनियोंमें[2]—दोनों वेदनीयोंके अबन्धकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व है। शेषका अन्तर नहीं है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमे—सर्व प्रकृतियोंका जघन्यसे अन्तर एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमका असख्यातवाँ भाग है।

विशेषार्थ—शंका—इस इतनी महान् राशिका अन्तर किसलिए होता है?

समाधान—यह तो राशियोंका स्वभाव ही है और स्वभावमे युक्तिवादका प्रवेश नहीं है, क्योंकि उसका भिन्न विषय है। (ध० जी० अन० टीका० पृ० ५६)

२४९ देवोंमे—नरकके समान भंग है।[3] विशेष इतना है कि सर्वार्थसिद्धिमे पल्योपमके संख्यातवे भाग प्रमाण अन्तर है।

---

१ "चदुण्ह खवग-अजोगिकेवलीणमतर केवचिर कालादो होदि? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण छम्मास।" –षट्खं०,अंतरा० १६, १७। "उत्कृष्टेन षण्मासा।" –स० सि० १, ८। २ 'मणुस-मणुसपज्जत्त–मणुसिणीसु चदुण्हमुवसामगाणमतरं केवचिर कालादो होदि? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त।"–७०, ७१। "मणसु–अपज्जत्ताणमतर केवचिर कालादो होदि? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।" ७८। मणुस अपज्जत्ताणमतर केवचिर कालादो होदि? जहण्णेण एगसमओ/ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो—खु० ब०,अ०सू०८–१०। "किमट्ठ-मेदस्स एम्महतस्स रासिस्स अंतर होदि? एसो सहाओ एदस्स। ण च सहावे जुत्तिवादस्स पवेसो अदिप्पसंगादो।" –ध० टी०,अ० पृ० ५६। "उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।"–८६। ३ देवगदीए देवाणमतर केवचिर कालादो होदि? णत्थि अन्तर णिरतर (११-१३) भवणवासिय जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा देवगदिभगो १४–खु० ब०,अंतरा०।

पंचिंदियतस०२ तिण्णि आयु-बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं। तिरिक्खायु-बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। पज्जत्ते चउव्वीसं मुहुत्तं। सेसं मणुसोघं। तिण्णि-मण० तिण्णि-वचि०-चदुआयु० बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण चउव्वीसं मुहुत्तं। सेसं णत्थि अंतरं।

२५०. दोमण० दोवचि०-चदुआयु० तिण्णि मणभंगो। पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगा णत्थि अंतरं। अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण छम्मासं। सेसं पत्तेगेण साधारणेण य बंधगा णत्थि अंतरं। अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण छम्मासं। णवरि थीणगिद्धितिगं मिच्छत्त-बारसक० दोअंगो० छस्संघ० परघादुस्सासं आहारदुगं आदाउज्जोवं दो-विहाय० दोसरं बंधगा-अबंधगा णत्थि अंतरं।

२५१. एवं चक्खु० अचक्खु० सण्णि त्ति। णवरि अचक्खुदंस० आयु० ओघं। ओरालियमिस्स०-धुविगाणं बंधगा णत्थि अंतरं। अबंधगा जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण

पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-पर्याप्त, त्रस, त्रस-पर्याप्तकोंमें—तीन आयुके बन्धकोंका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त है। तिर्यंचायुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त अन्तर जानना चाहिए। पर्याप्तकोंमें २४ मुहूर्त है। शेष प्रकृतियोंमे मनुष्योंके ओघवत् जानना चाहिए।

तीन मनोयोगी, तीन वचनयोगीमें—४ आयुका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त अन्तर है; शेष प्रकृतियोंमें अन्तर नहीं है।[1]

२५०. दो मनयोगी, दो वचनयोगीमें—४ आयुके अन्तरका तीन मनोयोगीके समान भंग है। अर्थात् जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे २४ मुहूर्त है। पाँच ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, तैजस-कार्माण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह मास अन्तर है। शेषके बन्धकोंका सामान्य तथा प्रत्येक रूपसे अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ६ माह अन्तर है। विशेष यह है कि स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, १२ कषाय, दो अंगोपांग, ६ संहनन, परघात, उच्छ्वास, आहारकद्विक, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, दो स्वरोंके बन्धकों अबन्धकोंका अन्तर नहीं है।

२५१. इसी प्रकार अचक्षुदर्शनसे संज्ञी पर्यन्त जानना चाहिए। विशेष यह है कि अचक्षुदर्शनमें आयुका ओघवत् अन्तर है।

औदारिक मिश्रकाययोगमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका अन्तर नहीं है; अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है।[2]

विशेष—इस योगमें ध्रुव प्रकृतियोंके अबन्धक सयोगकेवली होंगे। वहाँ नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। कारण, कपाट

१. जोगाणुवादेण पचमणजोगि-पचवचिजोगि अतर केवचिर कालादो होदि ? णत्थि अतर णिरतर (२१-२३) २ "सजोगिकेवलीणमतरं केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त।"–षट्खं० अंतरा० १६६-६७।

वासपुधत्तं। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अणंताणुबंधि०४ ओरालि० बंधगा णत्थि अंतरं। अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण मासपुधत्तं। दोआयु० छस्संघ० दोविहाय० दोसर० बंधा-अबंधगा णत्थि अंतरं। णवरि मणुसायु ओघं। तित्थयर० बंधगा जह० एगस०। उक्कस्सेण वासपुधत्तं। अबंधगा णत्थि अंतरं। सेसाणं पत्तेगेण साधारणेण य णत्थि अंतरं। अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण वासपुधत्तं।

२५२. वेउव्वियका०–देवोघं। वेउव्वियमिस्स-धुविगाणं बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण बारस मुहुत्तं। अबंधगा णत्थि अंतरं। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अणंताणुबं०४ अबंधगा, तित्थय० बंधगा ओरालियमिस्सभंगो। सेसाणं बंधाबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्क० बारसमुहुत्तं। णवरि एइंदिय०३ चउव्वीस मुहुत्तं।

समुद्घात रहित केवली जघन्यसे एक समय तथा उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व पर्यन्त होते हैं।–ध० टी०,अन्तरा० पृ० ६१।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ तथा औदारिक शरीरके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे मासपृथक्त्व अन्तर है। दो आयु, ६ संहनन और २ विहायोगति, २ स्वरके बन्धकों,अबन्धकोंका अन्तर नहीं है। विशेष यह है कि मनुष्यायुके विषयमें ओघवत् जानना।[1] तीर्थंकरके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है, अबन्धकोंका अन्तर नहीं है।

विशेष—इस योगमें तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव होंगे। उनका जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तर कहा है।

शेष प्रकृतियोंके बन्धकोंका प्रत्येक तथा सामान्यसे अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है।

२५२. वैक्रियिक काययोगमें—देवोंके ओघवत् जानना चाहिए। वैक्रियिक मिश्रकाययोगमें ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट १२ मुहूर्त अन्तर है।[2]

विशेषार्थ—सर्व वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंके पर्याप्तियोंको पूर्ण कर लेनेपर एक समयका अन्तर होता है। देव तथा नारकियोंमें न उत्पन्न होनेवाले जीव यदि बहुत अधिक काल तक रहते हैं तो बारह मुहूर्त तक ही रहते हैं। यह कैसे जाना?

समाधान—जिण-वयण-विणिग्गय-वयणादो—जिनेन्द्रके मुखसे निकले हुए वचनोंसे जाना जाता है। (खु० बं०,टीका,पृ० ४८५)

अबन्धकोंका अन्तर नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धकोंका तथा तीर्थंकरके बन्धकोंका औदारिक मिश्रकाय योगके समान भंग जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंके बन्धकों,अबन्धकोंका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट १२ मुहूर्त अन्तर है। विशेष यह है कि एकेन्द्रियत्रिकका अन्तर २४ मुहूर्त जानना चाहिए।

---

१ "असजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण वासपुधत्तं।"–१६३-६४। २ "वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण बारसमुहुत्तं।" –षट्खं०,अंतरा० १७०–१७१।

२५३. आहार० आहारमिस्स०-धुविगाणं बंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं । अबंधगा णत्थि अंतरं । सेसाणं बंधाबंधगा जह० एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।

२५४. कम्मइग-कायो ओरालियमिस्स भंगो ।

२५५. इत्थिवेदे-धुविगाणं बंधगा णत्थि अंतरं । अबंधगा णत्थि । णिद्दा-पचला-भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ उप० णिमिणं बंधगा णत्थि अंतरं । अबंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं अंतरं । थीणगिद्धि०३ मिच्छत्तं बारसकसा० दोअंगो० छस्संघ० आहारदु० परघादुस्सा० आदाउज्जोव-दोविहाय० दोसर० बंधगा० णत्थि अंतरं । अबंधगा णत्थि अंतरं । एवं वेदणीय-तिण्णिवेद-जस० अजस० तित्थय० दोगोदाणं । सेसाणं पत्तेगेण बंधाबंधगा णत्थि अंतरं । साधारणेण बंधाबंधगा णत्थि अंतरं । अबंधगा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण वासपुधत्तं अंतरं ।

२५६. एवं पुरिसवेदं णवुंसगवेदं । णवरि पुरिसे यं हि वासपुधत्तं, तं हि वासं सादिरेयं । इत्थि० पुरिस० चदुआयु० पंचिंदिय-पज्जत्तभंगो । णवुंसगे ओघं ।

---

२५३ आहारक तथा मिश्रकाययोगमे—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तर है[1]। अबन्धकोंमें अन्तर नहीं है। शेष प्रकृतियोंके बन्धकों, अबन्धकोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तर है।

२५४ कार्मण काययोगमे—औदारिक मिश्रकाययोगके समान भंग जानना चाहिए।

२५५. स्त्रीवेदमें—ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। इनके अबन्धक नहीं है। निद्राप्रचला, भय, जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, उपघात, निर्माणके बन्धकोंका अन्तर नहीं है।[2] अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, बारह कषाय, दो अंगोपांग, ६ संहनन, आहारकद्विक, परघात उच्छ्वास, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, २ स्वरके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका भ। अन्तर नहीं है। इसी प्रकार वेदनीय, ३ वेद, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तीर्थंकर तथा २ गोत्रका जानना। शेष प्रकृतियोंके बन्धकों, अबन्धकोंका प्रत्येकसे अन्तर नहीं है। सामान्यसे भी इनका अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है।

२५६ पुरुषवेद नपुंसकवेदमे इस प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि पुरुषवेदमें[4] वर्ष-पृथक्त्वके स्थानमे साधिकवर्ष जानना चाहिए।

विशेष—पुरुषवेदके द्वारा अपूर्वकरण क्षपक गुणस्थानको प्राप्त हुए सभी जीव ऊपरके गुणस्थानोंको चले गये, अतः अपूर्वकरण गुणस्थान अन्तर युक्त हो गये। पुनः ६ मास व्यतीत

---

१ "आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसजदाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण वासपुधत्त।" –१७४–१७५। २ "इत्थिवेदेसु दोण्हमुवसामगाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णुक्कस्समोघ।" –षट्खं०, अंतरा० १८७। ३. "णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त।" –षट्खं०, अंतरा० १२, १३। ४. "पुरिस वेदएसु दोण्हं खवाणमतरं केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण वास सादिरेय।" –षट्खं०, अंतरा० १९२, २०४, २०५।

२५७. कोधादिसु तिसु पुरिसभंगो। णवरि तिरिक्खायु ओघं। एवं लोभे, णवरि छम्मासं।

२५८. अवगदवेदेसु सादबंधा अबंधगा णत्थि अंतरं। सेसं बंधगा जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण छम्मासं। अबंधगा णत्थि अंतरं।

२५९ अकसाइगेसु साद-बंधा अबंधगा णत्थि अंतरं। एवं केवलदंसणा०। विभंगे पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो।

२६०. आभि० सुद० ओधि० दो-आयु० बंधगा जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण मासपुधत्तं अंतरं। सेसाणं दो-मणभंगो। ओधिणा० वासपुधत्तं।

२६१. एवं मणपज्जव० ओधिदं०। णवरि मणपज्जव० देवायु० वासपुधत्तं।

होनेपर सभी जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणीपर आरूढ हो गये। पुनः ४, ५ मासका अन्तर करके नपुंसकवेदके उदयसे कुछ जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़े। पुन १, २ मासका अन्तर कर कुछ जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणी पर चढ़े। इस प्रकार संख्यात वार स्त्रीवेद और नपुसकवेदके उदयसे ही क्षपकश्रेणीपर आरोहण करा करके पश्चात् पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी चढ़नेपर साधिक वर्ष प्रमाण अन्तर हो जाता है। क्योंकि निरन्तर ६ मासके अन्तरसे अधिक अन्तरका होना असम्भव है। इसी प्रकार 'पुरुषवेदी' अनिवृत्तिकरण क्षपकका भी अन्तर जानना चाहिए। कितनी ही सूत्र पोथियोंमे पुरुषवेदका उत्कृष्ट अन्तर ६ मास पाया जाता है।[1] (जीवट्ठाण अन्तरा० पृ० १०६)

स्त्रीवेद, पुरुषवेद तथा ४ आयुके बन्धकों, अबन्धकोंमे पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान भग जानना चाहिए। नपुंसकवेदमे–ओघवत् जानना चाहिए।

२५७ क्रोध-मान-मायाकषायमे–पुरुषवेदके समान भंग है। विशेष इतना है कि तिर्यंचायुके बन्धकों, अबन्धकोंका अन्तर ओघवत् जानना चाहिए। लोभकषायमे–इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष, यहाँ अन्तर छह मास जानना चाहिए।

२५८. अपगतवेदमे–साताके बन्धकों, अबन्धकोंमे अन्तर नहीं है। शेष प्रकृतिके बन्धकोंमे जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह माह अन्तर है; अबन्धकोंका अन्तर नहीं है।

२५९. अकषायियोंमे—साताके बन्धकों, अबन्धकोंमे अन्तर नहीं है। केवलज्ञान, केवलदर्शनमे इसी प्रकार जानना। विभंगावधिमे पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंका भंग जानना चाहिए।

२६० आभिनिबोधिक श्रुत तथा अवधिज्ञानमे–दो आयु अर्थात् मनुष्य—देवायुके बन्धकोंका[2] जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे मासपृथक्त्व अन्तर है। शेष प्रकृतियोंमे दो मनयोगियोंके समान भग है। अवधिज्ञानियोंमे वर्षपृथक्त्व अन्तर है।

२६१ मनःपर्ययज्ञान, अवधि दर्शनमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि मनःपर्ययज्ञानमे देवायुका अन्तर वर्षपृथक्त्व है।[3]

१ केसुवि सुत्तपोत्थएसु पुरिसवेदमतर छम्मासा – जी०, अंत० पृ० १०६। २ "आभिणिबोहिय-सुदओहिणाणीसु चदुण्हमुवसामगाणमतर केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण मासपुधत्त।" –षट्खं०, अंतरा० २३२, २४१, २४२, २४५। ३ "मणपज्जवणाणीसु चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिर कालादो होदि ? णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय उक्कस्सेण वासपुधत्त।" –२४६, २४९, २५०।

२६२. एवं परिहारे संजदु० (?) तं चेव, णवरि मास-पुधत्तं। एवं सामाइ० छेदोप०। संजदासंजदा० सुहुमसं० सव्वाणं बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण छम्मासं अंतरं। अबंधगा णत्थि। यथाक्खाद०-सादबंधगा णत्थि अंतरं। अबंधगा जहण्णेण एगस० उक्कस्सेण छम्मास० (सं)।

२६३. तेउपम्माणं-तिण्णि-आयु० बंधा जह० एगस०। उक्कस्सेण अडदालीसं मुहुत्तं, पक्खं।

२६४. सुक्काए-दो आयु० मासपुधत्तं।

२६५. सम्मादिट्ठि आभिणिभंगो। खइगसम्मा० वासपुधत्तं। सेसाणं णत्थि अंतरं। वेदगसम्मा० आयु० आभिणिभंगो। सेसं णत्थि अंतरं।

२६६. उवसमसम्मा०-पंचणा० छदंस०चदुसंज० पुरिस० भयदु० पंचिदि० तेजाक० समचदु० वज्जरिसभ० वण्ण०४ अगु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-

२६२. परिहारविशुद्धिमे इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वर्षपृथक्त्व-के स्थानमें मासपृथक्त्व अन्तर जानना चाहिए। इसी प्रकार सामायिक,छेदोपस्थापना संयममें जानना चाहिए। संयतासंयत और सूक्ष्मसाम्पराय संयममें सर्व प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे छह मास अन्तर है[1]; अबन्धक नहीं है।

विशेषार्थ—सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंके विना जघन्यसे एक समय देखा जाता है। उत्कृष्टसे अन्तर छह मास होता है; कारण क्षपकश्रेणी आरोहणका छह मासोंसे अधिक उत्कृष्ट अन्तर नहीं पाया जाता है। (खु० बं०,टी०,पृ० ४८९)।

यथाख्यातसंयममें-साता वेदनीयके बन्धकोंका अन्तर नहीं है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्ट छह मास अन्तर जानना चाहिए।[2]

विशेष—साता वेदनीयके अबन्धकोंका इस संयममें अयोगकेवली गुणस्थान है। उसका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट अन्तर छह मास है।

२६३ तेजोलेश्या-पद्मलेश्यामें-तीन आयुके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ४८ मुहूर्त तथा पक्षप्रमाण अन्तर है।

२६४ शुक्ललेश्यामें-दो आयुके बन्धकोंका मासपृथक्त्व अन्तर है।

२६५ सम्यग्दृष्टियोंमे-आभिनिबोधिक ज्ञानके समान भंग है। क्षायिक सम्यक्त्वीमें दो आयुके बन्धकोंका वर्षपृथक्त्व अन्तर है[3]; शेष प्रकृतियोंका अन्तर नहीं है। वेदक सम्यक्त्वियोंमे-आयुके बन्धकोंका आभिनिबोधिक ज्ञानके समान है; शेष प्रकृतियोंमें अन्तर नहीं है।

२६६. उपशमसम्यक्त्वियोंमे-५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, पचेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्माण, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४,

१. सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण छम्मासाणि –खु० बं०,सू० ४२–४४। २ 'चदुण्हं खवगअजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण छम्मासं।" –१६, १७। ३ "चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण वासपुधत्तं।" –षट्खं०,अं० सू० ३४३, ४४।

आदेज्ज-णिमिण-उच्चागोदं पंचंतराइगाणं बंधगा जहण्णेण एगस० उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। [अबंधगा] जहण्णेण एगस०, उक्कस्सेण वासपुधत्तं। णवरि वज्जरिस० अबंधगा सत्तरादिंदियाणि। मणुसगदि०४ वज्जरिसभ-भंगो। दोवेदणी० बंधा-अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। दोण्णं बंधगा जहण्णे० एगस०। उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। अबंधगा णत्थि। चदुणोक० बंधा-बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। दोण्णं युगलाणं बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि। अबंधगा जहण्णेण एगस०। उक्क० वासपुधत्तं। एवं परियत्ति [माणि] याणं। अपच्चक्खाणावरण०४ बंधगा जहण्णेण एगस०। उक्क० सत्तरादिंदियाणि। अबंधगा जह० एगस०। उक्क० चोद्दसरादिंदियाणि। पच्चक्खाणावरण०४ बंधगा जह० एगस०। उक्क० सत्तरादिंदि०। अबंधगा जह० एगस०। उक्क० पण्णारसरादिंदि०। आहारदुगं तित्थयरं बंधगा जह० एगस०। उक्क० वास-

अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात रात-दिन है[1]।

विशेषार्थ—रात्रिदिव शब्द द्वारा दिवसका ग्रहण किया गया है, क्योंकि सम्मिलित दिन तथा रात्रिमें दिवसका व्यवहार देखा जाता है। (खु० बं० टीका पृ० ४६२)

[अबन्धकोंका] जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है।

विशेष—इन प्रकृतियोंके अबन्धक उपशान्तकषायी होंगे, उनका जघन्य अन्तर एक समय, उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व है।

विशेष यह है कि वज्रवृषभनाराचके अबन्धकोंका अन्तर सात दिन-रात है। मनुष्य-गति ४ के बन्धकोंका अन्तर वज्रवृषभनाराचसंहननके समान है। दो वेदनीयके बन्धकों, अबन्धकोंका अन्तर जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात दिन-रात है। साता-असाताके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात दिन-रात है; अबन्धक नहीं है। चार नोकषायों अर्थात् हास्यादिचतुष्कके बन्धकों, अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिन-रात अन्तर है। दोनों युगलोंके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिन-रात अन्तर है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व है। परिवर्तमान प्रकृतियोंमें इसी प्रकार भंग जानना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे सात दिनरात अन्तर है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे १४ दिन-रात है[2]। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिनरात अन्तर है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे १५ दिनरात है। आहारकद्विक तथा तीर्थंकरके

१. "उवसमसम्मादिट्ठीसु सव्वंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि।" –षट्खं०, अं० सू० ३५६, ३५७। रादिंदियमिदि दिवसस्स सण्णा। अहोरत्तेहि मिलिएहि दिवसववहारदंसणादो। एत्थ उवसंहारगाहा – सम्मत्ते सत्त दिणा विरदाविरदीए चोद्दस हवंति। विरदीसु अ पण्णरसा विरहिदकालो मुणेयव्वो॥ –खु० बं०, टी० पृ० ४६२।
२. "संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण चोद्दसरादिंदियाणि।" –षट्खं०, अं० सू० ३६०, ३६१। ३ "पमत्तअप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं उक्कस्सेण पण्णारसरादिंदियाणि।" –३६४, ६५।

पुधत्तं । अबंधगा जह० एगस० । उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि ।

२६७. सासणे-सव्वे विगप्पा जहण्णेण एगस० । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एवं सम्मामि० ।

२६८. अणाहारे—धुविगाणं बंधा-अबंधगा णत्थि अंतरं । एवं सेसाणं । णवरि देवगदि०४ बंधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण मासपुधत्तं अंतरं । तित्थयरं बंधगा जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण वासपुधत्तं अंतरं । अबंधगा णत्थि ।

एवं अंतरं समत्तं ।

बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व है। अबन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे ७ दिनरात है।

२६७. [1]सासादनमें सर्व विकल्प जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग हैं। इसी प्रकार सम्यङ्मिथ्यात्वमें जानना।

२६८. अनाहारकोंमें[2]—ध्रुवप्रकृतियोंके बन्धकों, अबन्धकोंका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंमें भी जानना चाहिए। विशेष, देवगति चारके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे मासपृथक्त्व अन्तर है। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकोंका जघन्यसे एक समय, उत्कृष्टसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है; अबन्धक नहीं हैं।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

---

१ "सासणसम्मादिट्ठी-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।" –३७५, ७६। २ आहाराणुवादेण आहार-अणाहाराणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णत्थि अंतरं, णिरंतरं। –खु० बं०, सू० ६६-६८, पृ० ४६४

[भावाणुगम-परूवणा]

२६६. भावाणुगमेण दुविहो णिद्देसो। ओघेण आदेसेण य।

[भावानुगम]

२६६ भावानुगमका ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश करते हैं।

विशेषार्थ—यहाँ नाम, स्थापना, द्रव्य तथा भाव रूप चतुर्विध निक्षेप रूप भावोंमें-से नोआगम भाव रूप भावनिक्षेपका अधिकार है। वीरसेन स्वामीने 'धवलाटीकामें भावानुगमपर प्रकाश डालते हुए लिखा है—"एदेसु चदुसु भावेसु केण भावेण अहियारो? णोआगमसब्भावेण।"

शंका—यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—"णामादि-सेस-भावेहि चोद्दस-जीवसमासाणमणप्पभूदेहि इह पओजणा-भावा" – चौदह जीव समासोंके लिए अनात्मभूत नामादि शेष भावनिक्षेपोंसे यहाँपर कोई प्रयोजन नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि यहाँ नोआगमभाव – भावनिक्षेपसे ही प्रयोजन है।

भावप्राभृतका ज्ञाता तथा उपयोग विशिष्ट जीव आगमभावरूप भावनिक्षेप है। नोआगमभाव – भावनिक्षेप औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक तथा पारिणामिकके भेदसे पंच प्रकार है। कर्मोदयजनित औदयिक भाव है। कर्मोंके उपशमसे उद्भूत औपशमिक भाव है। कर्मोंके क्षयसे प्रकट होनेवाला जीवका भाव क्षायिक है।[1] कर्मोदय होते हुए भी जो जीवके गुणका खण्ड (अंश) प्राप्त होता है, वह क्षायोपशमिक भाव है। पूर्वोक्त चार भावोंसे व्यतिरिक्त जीव तथा अजीवगत भाव पारणामिक नाम युक्त है।

ये पाँचों भाव जीवमें पाये जाते हैं। पुद्गल द्रव्योंमें औदयिक तथा पारिणामिक भाव पाये जाते हैं – "पोग्गलदव्वेसु ओदइय-पारिणामियाणं दोण्हं चेव भावाणमुवलंभा।" धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल द्रव्योंमें पारिणामिक भाव है।

भावका क्या स्वरूप है, इसपर धवला टीकाकार इस प्रकार प्रकाश डालते हैं—"भावो णाम जीवपरिणामो तिव्व-मंद-णिज्जराभावादिरूवेण अणेयपयारो" (जीवट्ठाण, भावाणुगम ध० टी०, पृ० १८४, १८६) – भाव नाम जीवके परिणामका है। वह तीव्र, मंद, निर्जराभाव आदिके रूपसे अनेक प्रकारका है।

अभव्य जीवोंके असिद्धता, धर्मास्तिकायमें गमनहेतुता, अधर्म द्रव्यमें स्थितिहेतुता, आकाशमें अवगाहनत्व, कालमें परिणमनहेतुता आदि अनादि-निधन भाव हैं। भव्यमें असिद्धता, भव्यत्व, मिथ्यात्व, असंयम आदि अनादि-सान्त भाव हैं। केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि सादि-अनन्त भाव हैं। सम्यक्त्व और संयमको धारण कर पीछे आये हुए जीवके मिथ्यात्व तथा असंयम आदि सादि-सान्त भाव हैं।

---

१ "कम्मोदए संते वि जं जीवगुणक्खंडमुवलंभदि सो खओवसमिओ भावो णाम" – जी०, भाव० टीका, पृ० १८५।

२७०. तत्थ ओघेण-पंचणा० छदंसणा० मिच्छ० (?) सोलसक० (चदुसंज०) भयदुगुं० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमिणपंचंतराइगाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा। थीणगिद्धितिगं. बारसकसा० बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। मिच्छत्त-बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? उवसमिओ वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिगो वा। साद-बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ?

---

२७० ओघसे – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, मिथ्यात्व(?), १६ कषाय, (४ संज्वलन). भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और ५ अन्तरायोंके बन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव हैं।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वका वर्णन आगे आया है,अतः यहाँ उसका पाठ असंगत प्रतीत होता है। बारह कषायोंका वर्णन आगे किया गया है,अतः सोलह कषायके स्थानमें चार संज्वलनका पाठ सम्यक् प्रतीत होता है।

अबन्धकोंके कौन भाव हैं ? औपशमिक भाव वा क्षायिकभाव हैं।

विशेष—इन प्रकृतियोंका अबन्ध उपशान्त कषाय अथवा क्षीणमोहमें होगा, अतएव उपशम श्रेणीकी अपेक्षा औपशमिक और क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा क्षायिकभाव है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, १२ कषायके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंमें कौन भाव है ? औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है।

विशेष—इनके अबन्धकोंका प्रमत्तसंयत गुणस्थान होगा। वहाँकी अपेक्षा तीन भाव कहे गये हैं।

मिथ्यात्वके बन्धकोंमें कौन-सा भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंमें कौन-सा भाव है ? औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक या पारिणामिक।

विशेष—मिथ्यात्वके अबन्धकोंमें पारिणामिकभाव सासादन गुणस्थानकी अपेक्षा कहा गया है।

शंका—सासादन गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके उदयकी अपेक्षा औदयिक भाव क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यहाँ दर्शनमोहनीयकर्मके सिवाय अन्य कर्मोंके उदयकी विवक्षा नहीं की गयी है।[1]

---

१ "मिच्छे खलु ओदइओ बिदिए पुण पारणामिओभावो।
मिस्से खओवसमिओ अविरदसम्मम्हि तिण्णेव ॥ ११ ॥
एदे भावा णियमा दसणमोहं पडुच्च भणिदा हु।
चारित णत्थि जदो अविरदअंतेसु ठाणेसु ॥ १२ ॥" गो० जी०।

ओदइगो वा खइगो वा [असाद-बंधगात्ति को भावो ?] ओदइ० । [अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा] खइगो वा खयोवसमिगो वा। दोण्णं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? खइगो भावो। इत्थि० णवुंस० बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगात्ति को भावो । ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। णवरि णवुंस० पारिणामिगो भावो। पुरिसवे० बंधगात्ति ओदइगो भावो । अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा।

सातावेदनीयके बन्धकोंमें कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंमे कौन भाव है ? औदयिक या क्षायिक है।

विशेष—सातावेदनीयकी बन्धव्युच्छित्तिवाले अयोगकेवली गुणस्थानमें क्षायिकभाव है, किन्तु असाताके बन्धक किन्तु साताके अबन्धकके औदयिक भाव है, कारण साता और असाताके परस्पर प्रतिपक्षी होनेसे असाताके बन्धकालमें साताका अबन्ध होगा। इस दृष्टिसे औदयिक भावका निरूपण किया है।

[असाता वेदनीयके बन्धकोंके कौन-सा भाव है ?] औदयिक है। [अबन्धकोंके कौन-सा भाव है ? औदयिक] या क्षायिक या क्षायोपशमिक है।[1]

विशेष—असाताकी बन्धव्युच्छित्ति प्रमत्तसंयतमें होती है, अतएव अप्रमत्त गुणस्थान-की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है।

दोनोंके बन्धकोंमें कौन-सा भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंमें कौन-सा भाव है ? क्षायिकभाव है।।

विशेष—यहाँ दोनोंके अबन्धक अयोगकेवलीकी अपेक्षा क्षायिकभाव कहा है।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके बन्धकोंमे कौन सा भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंमें कौन-सा भाव है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक या क्षायोपशमिक है। इतना विशेष है कि नपुंसकवेदके अबन्धकोंमे पारिणामिक भाव भी पाया जाता है।

विशेष—यहाँ स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके अबन्धकोंमें औदयिक भावका निरूपण पुरुषवेदके बन्धककी अपेक्षासे किया है। नपुंसकवेदके अबन्धक सासादन गुणस्थानमे होते है। वहाँ दर्शनमोहनीयके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमका अभाव होनेसे पारिणामिक भाव कहा है।

पुरुषवेदके बन्धकोंमे कौन-सा भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंमे कौन-सा भाव है ? औदयिक, औपशमिक वा क्षायिक है।

विशेष—पुरुषवेदके अबन्धक अनिवृत्तिकरणके अवेद भागमे होंगे। वहाँ चारित्र मोहनीयके उपशम अथवा क्षयमें तत्पर जीवोंकी अपेक्षा औपशमिक तथा क्षायिक भाव है। पुरुषवेदके अबन्धक किन्तु स्त्री-नपुंसकवेदके बन्धककी अपेक्षा औदयिक भाव होगा।

---

१ देसविरदे पमत्ते इदरे य खओवसमियभावो दु।
सो खलु चरित्तमोह पडुच्च भणिय तहा उवरि ॥ १३ ॥
तत्तो उवरि उवसमभावो उवसामगेसु खवगेसु।
खइओ भावो णियमा अजोगिचरमोत्ति सिद्धे य ॥ १४ ॥

तिण्णं वेदाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? खइगो वा उवसमिगो वा। इत्थि णवुंसकभंगो [अरदिसोग] चदु-आयु-तिण्णिगदि-चदुजादि-ओरालि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ० तिण्णि आणु०-आदावुज्जो० अप्पसत्थवि० थावरादि०४ अप्पसत्थवि० (अथिरादिछक्कं) उच्चागोदं (णीचागोदं) च। पुरिसभंगो हस्सरदि-देवगदि-पंचिंदि० वेउव्वि० आहार० समचदु० दोअंगो० देवाणु० परघादुस्सा० पसत्थविहाय० तस०४ थिरादि-छक्कं तित्थयरं [उच्चागोदं च]। पत्तेगेण साधरणेण चदुआयु-दो-अंगो० छस्संघ०२ विहाय० दोसराणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा। णवरि चदुआयु० छस्संघ० अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। दो युगल-चदुगदि-पंचजादि-दोसरीर०छस्संठा० चदुआणु० तसथावरादिणवयुगलं दोगोदं च बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा। एवं ओघभंगो मणुसगदि (?) तिगं

तीनों वेदोंके बन्धकोंमे कौन-सा भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन-सा भाव है ? क्षायिक या औपशमिक है।

विशेष—वेदत्रयके अबन्धकके अनिवृत्तिकरणके अवेद भागमें क्षायिक तथा औपशमिक भाव कहे हैं।

[अरति शोक] ४ आयु, देवगतिको छोड़कर तीन गति, ४ जाति, औदारिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थानको छोड़कर शेष पाँच संस्थान, औदारिक अंगोपांग, ६ संहनन, देवानुपूर्वीके बिना तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावरादि ४, अप्रशस्त विहायोगति(?) तथा उच्च गोत्रके(?) बन्धकोंमें स्त्रीवेद और नपुंसक वेदके बन्धकोंके समान भाव जानना चाहिए अर्थात् बन्धकोंके औदयिक भाव हैं तथा अबन्धकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है।

विशेष—यहाँ अप्रशस्त विहायोगतिका दो बार उल्लेख आया है। प्रतीत होता है, अस्थिरादिषट्कके स्थानमे अप्रशस्तविहायोगतिका पुनः उल्लेख हो गया है। यहाँ उच्चगोत्रके स्थानमे नीचगोत्रका पाठ उचित प्रतीत होता है।

हास्य, रति, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, समचतुरस्र-संस्थान, वैक्रियिक तथा आहारक-अंगोपांग, देवानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, स्थिरादि ६, तीर्थंकर प्रकृति, [उच्च गोत्र] के बन्धकोंमें पुरुषवेदके समान भंग है अर्थात् बन्धकोंमें औदयिक भाव है, अबन्धकोंमें औदयिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। प्रत्येक तथा सामान्यसे ४ आयु, २ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरोंके बन्धकोंमें कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक, औपशमिक तथा क्षायिक भाव हैं। विशेष, ४ आयु, ६ संहननके अबन्धकोंमें कौन भाव हैं ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव हैं। हास्य रति युगल, ४ गति, ५ जाति, औदारिक, वैक्रियिक शरीर, ६ संस्थान, ४ आनुपूर्वी, त्रसस्थावरादि ९ युगल और दो गोत्रोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औपशमिक या क्षायिक भाव है।

पंचिंदिय-तस०२ पंचमण० पंचवचि० कायजोगि-ओरालिय का० चक्खु० अचक्खु० सुक्कले० भवसिद्धि० सण्णि-अणाहारग (?) त्ति। णवरि जोगादिसु (अजोगिसु) वेदणीय बंधगा णत्थि।

२७१. आदेसेण णेरइगेसु-धुविगाणं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धितिगं अणंताणुबंधि०४ बंधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। सादासादबंधगा अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। दोण्णं बंधगा त्ति० ? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। एवं चदुणोकसा० थिरादि-तिण्णियुगलं०। मिच्छत्तं बंधगा

विशेष—गोत्रादिके अबन्धक उपशान्तकषाय या क्षीणकषाय गुणस्थानमे होंगे, वहाँ औपशमिक क्षायिक भाव कहे है।

मनुष्यत्रिक (मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त तथा मनुष्यनी), पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, त्रस, त्रसपर्याप्तक, पच मनोयोगी, पंच वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यक, भव्यसिद्धिक, संज्ञी तथा अनाहारकोंमे (?) ओघके समान भंग हैं। इतना विशेष है कि (अ)योगादिकोंमे वेदनीयके बन्धक नहीं है (?)।

विशेष—अनाहारकोंका कथन आगे पृष्ठ २७८ पर आया है, अतः यहाँ आहारकोंका पाठ सम्यक् प्रतीत होता है। वेदनीयके अबन्धक, अयोगकेवली होते है। इस दृष्टिसे 'जोगादिसु'के स्थानपर 'अजोगी' पाठ सगत प्रतीत होता है।

२७१ आदेशसे-नारकियोंमे ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। साता-असाताके बन्धकों,अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है।

विशेष—नरक गतिमे साताका बन्धक असाताका अबन्धक होगा, असाताका बन्धक साताका अबन्धक होगा,इसलिए अन्यतरके बन्धककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है।

दोनोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है; अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार चार नोकषाय, स्थिरादि तीन युगलमें जानना चाहिए। मिथ्यात्वके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है।

विशेषार्थ—इस प्रसंगमे 'धवलाटीकामे महत्त्वपूर्ण शंका-समाधान किया गया है।

शका—मिथ्यात्वके बन्धक मिथ्यादृष्टिके सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षयसे, उनके सद्वस्थारूप उपशमसे तथा सम्यक्त्व प्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षयसे, उनके सद्वस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदय रूप उपशमसे और मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे मिथ्यादृष्टिरूप भाव उत्पन्न होता है। अतः उसके क्षायोपशमिक भाव क्यों नहीं माना जाये?

समाधान—सम्यक्त्व और सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतियोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षय अथवा सद्वस्थारूप उपशम अथवा अनुदयरूप उपशमसे मिथ्यादृष्टि भाव नहीं होता। कारण, ऐसा माननेमे दोष आता है। जो जिससे नियमतः उत्पन्न होता है, वह उसका कारण होता है। ऐसा न माननेपर अनवस्था दोष आयेगा। कदाचित् यह कहा जाये कि मिथ्यात्वके

त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिगो वा । इत्थि० णवुंस-बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा । णवरि णवुंस० अबंधगात्ति पारिणामियो वि । पुरिस बंधा-अबंधगा त्ति ओदइगो भावो । तिण्णि वेदाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगा णत्थि । एवं इत्थि-णवुंसभंगो तिरिक्खायु-तिरिक्खगदि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु०उज्जोव-अप्पसत्थवि०दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदं च । पुरिसभंगो मणुसायु-मणुसगदि-समचदु०-वज्जरिसभ० मणुसाणु० पसत्थवि० सुभग० सुस्सर० आदे० तित्थय० उच्चागोदं

उत्पन्न होनेके कालमे जो भाव विद्यमान हैं, वे उसके कारणपनेको प्राप्त होते है, तो फिर ज्ञानदर्शन,असंयम आदि भी मिथ्यात्वके कारण हो जायेंगे, किन्तु ऐसा नहीं है, कारण इस प्रकारका व्यवहार नहीं पाया जाता। अतएव यह सिद्ध होता है कि मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यादृष्टि भाव होता है,कारण इसके बिना मिथ्यात्व भावकी उत्पत्ति नहीं होती (ध० टी०, भा० पृ० २०७) । इससे मिथ्यात्वके बन्धकोंके औदयिक भाव कहा है ।

मिथ्यात्वके अबन्धकोंके कौन भाव है ? औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक है।[1]

स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक है ।

विशेष—यहाँ उक्त वेदद्वयके अबन्धक, किन्तु पुरुषवेदके बन्धककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है ।

यहाँ इतना विशेष है कि नपुंसकवेदके अबन्धकोंमें पारिणामिक भाव भी पाया जाता है।

पुरुषवेदके बन्धकों,अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है ।

विशेष—नरक गतिमें आदिके चार ही गुणस्थान होते है और पुरुषवेदकी बन्धव्युच्छित्ति नवे गुणस्थानमें होती है, तब पुरुषवेदके अबन्धकका भाव अन्य वेदोंके बन्धका समझना चाहिए। अन्य वेदोंका बन्ध होते हुए पुरुषवेदका बन्ध न होना यहाँ पुरुषवेदका अबन्धकपना है । इस अपेक्षासे अबन्धकके औदयिक भाव कहा है ।

तीन वेदोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है ; अबन्धक नहीं है ।

तिर्यंच आयु, तिर्यंचगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्त-विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, तथा नीच गोत्रमें स्त्रीवेद तथा नपुंसक वेदके समान भंग जानना चाहिए। अर्थात् बन्धकोंके औदयिक भाव है, अबन्धकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक व क्षायोपशमिक हैं। मनुष्यायु, मनुष्यगति, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभसंहनन, मनुष्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, तीर्थंकर तथा उच्चगोत्रमें पुरुषवेदके समान भंग है, अर्थात् बन्धकों,अबन्धकोंके औदयिक भाव है। शेष प्रकृ-

---

१ अणताणुबंधीणमुदएणेव सासणसम्मादिट्ठी होदि त्ति ओदइयो भावो किण्ण उच्चदे ? आइल्लेसु चदुसु वि गुणट्ठाणेसु चारित्तावरणतिव्वोदएण पत्तासजमेसु दसणमोहणिबधणेसु चारित्तमोहविवक्खाभावा । अप्पिदस्स दसणमोहणीयस्स उदएण उवसमेण, खएण, खओवसमेण वा सासणसम्मादिट्ठी ण होदित्ति पारणामिओ भावो । –ध० टी०,भा०,पृ० २०७ ।

च । पत्तेगेण साधारणेण सेसाणं सव्वाणं बंधगा ओदइगो भावो । अबंधगा णत्थि । एवं पढमाए। विदियाए याव सत्तमा त्ति एवं चेव । णवरि खइगं णत्थि । सत्तमाए मिच्छत्त-तिरिक्खायु बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामियो वा । णवरि मिच्छत्त-अबंधगात्ति को भावो ? ओदइगो णत्थि ।

तियोंके बन्धकोंमे प्रत्येक तथा साधारणसे औदयिक भाव है अबन्धक नहीं हैं । इस प्रकार पहली पृथ्वीमे जानना । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथ्वी पर्यन्त इसी प्रकार जानना । विशेष यह है कि द्वितीय आदि पृथ्वियोंमे क्षायिक भाव नहीं है ।[1] [कारण क्षायिकसम्यक्त्वी जीवका प्रथम पृथ्वीपर्यन्त उत्पाद होता है ।] सातवीं पृथ्वीमे मिथ्यात्व तथा तिर्यंचायुके बन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है । अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक हैं । विशेष, मिथ्यात्वके अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव नहीं है अर्थात् यहाँ औपशमिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक भाव है।

विशेष—[2]सासादन गुणस्थानकी अपेक्षा पारिणामिक भाव है, मिश्र गुणस्थानकी अपेक्षा क्षायोपशमिक है तथा अविरत सम्यक्त्वीकी अपेक्षा औपशमिक तथा क्षायोपशमिक भाव है ।

'धवलाटीकामे नारकीके औपशमिकभावके सम्बन्धमे लिखा है—दर्शन मोहनीयके उदयाभाव लक्षणवाले उपशमके द्वारा उपशम सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होता है, इससे वह औपशमिक है ।

शंका—यदि उदयाभावको भी उपशम कहते हैं, तो देवपना भी औपशमिक होगा, क्योंकि वह देवपना नरकादि शेष तीन गतियोंके उदयाभावसे उत्पन्न होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ तीनों गतियोंका[3] स्तिबुक-संक्रमणके द्वारा उदय पाया जाता है अर्थात् स्तिबुक संक्रमणके द्वारा अनुदय प्राप्त तीनों गतियोंका संक्रमण होकर विपाक होता है । (तिण्हं गईणं त्थिउक्कसंकमेण उदयस्सुवलभा) अथवा देवगति नामकर्मका उदय होनेसे देवगतिको औपशमिक नहीं कहा है । (पृ०२१०)

क्षायोपशमिक भावके विषयमे यह कथन ध्यान देने योग्य है—दर्शन मोहनीयकी सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे जो चल, मलिन तथा अगाढ सम्यक्त्व होता है, वह वेदक सम्यक्त्व है ।'जीवकाण्ड गोम्मटसारमे लिखा है :

"दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
चल-मलिणमगाढं तं वेदयसम्मत्तमिदि जाणे ॥६४९॥"

---

१ "विदियादिसु पुढवीसु खइयसम्मादिट्ठीणमुप्पत्तीए अभावा।" – जीव० भा० टी० पृ० २११।

२ "आदेसेण गइयाणुवादेण णिरयगईए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, ओदइओ भावो । सासणसम्माइट्ठि त्ति को भावो, पारिणामिओ भावो । सम्मामिच्छाइट्ठि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो । असजदसम्माइट्ठि त्ति को भावो ? उवसमिओ वा खइयो वा खओवसमिओ वा भावो ।" – जी० भावाणु०, सूत्र १०-१४।

३. "पिंडपगईण जा उदयसगया तीए अणुदयगयाओ ।
संकामिऊण वेयइ जं एसो थिवुकसकामो ॥" – पंच०सं०, संक्रम, ८०॥

—पिंड प्रकृतियोंमें से किसीके उदय आनेपर अनुदय प्राप्त शेष प्रकृतियोंका उस प्रकृतिमें संक्रमण होकर उदय आनेको स्तिबुक संक्रमण कहते हैं ।

'धवलाटीकामें सम्यक्त्व प्रकृतिको 'वेदगसम्मत्तफद्दय'–वेदक-सम्यक्त्व स्पर्धक कहा है। वहाँ कहा है–"दर्शन मोहनीयकी अवयव स्वरूप देशघाती लक्षणवाले वेदक सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है।

वेदकसम्यक्त्व प्रकृतिके स्पर्धकोंकी क्षय संज्ञा है, क्योंकि उसमें सम्यग्दर्शनकीप्रतिबन्धक शक्तिका अभाव है। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनोंके उदयाभावको उपशम कहते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त क्षय तथा उपशम इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न होनेसे सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है।

'गोम्मटसार'जीवकाण्डकी संस्कृत टीकामें लिखा है–"एवं सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमनुभवतो जीवस्य जायमानं तत्त्वार्थश्रद्धानं वेदकसम्यक्त्वमित्युच्यते। इदमेव क्षायोपशमिक-सम्यक्त्वं नाम दर्शनमोहसर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणक्षये देशघातिस्पर्धकरूपसम्यक्त्व-प्रकृत्युदये तस्यैवोपरितनानुदयप्राप्तस्पर्धकानां सदवस्थालक्षणोपशमे च सति समुत्पन्नत्वात्" (पृ० ५०) –इस प्रकार सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयका अनुभव करनेवाले जीवके उत्पन्न होनेवाला तत्त्वार्थका श्रद्धान वेदक सम्यक्त्व कहा जाता है। इसे ही क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहा है, क्योंकि दर्शन-मोहके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयका अभाव लक्षणक्षय होनेसे तथा देशघाति स्पर्धक रूप सम्यक्त्व प्रकृतिके उदय होनेपर तथा उसके आगेके अनुदय अवस्थाको प्राप्त स्पर्धकोंका सदवस्था लक्षण उपशम होनेपर यह उत्पन्न होता है।

आचार्य पूज्यपाद भी क्षायोपशमिक भावके लक्षणमें देशघाति स्पर्धकोंका उदय, सर्वघातिस्पर्धकोंका उदय क्षय तथा उनका सदवस्था रूप उपशम कहते हैं। उन्होंने'सर्वार्थसिद्धिमें लिखा है.–"सर्वघातिस्पर्धकानामुदयक्षयात्तेषामेव सदुपशमात् देशघातिस्पर्धकानामुदये क्षायोपशमिको भावो भवति (स० सि०,अ०२, सू० ५ की टीका,पृ० ६३)'तत्त्वार्थराजवार्तिकमें आचार्य अकलंकदेवने सर्वार्थसिद्धिकी उपरोक्त परिभाषाको स्वीकार कर उसपर भाष्य लिखकर स्पष्टीकरण किया है। (रा० वा०,पृ० ७४,सू० ५, अ० २)।

इस समस्त विवेचनको दृष्टिमें रखनेपर यह ज्ञात होता है कि 'धवला'टीकामें क्षयोपशमकी भिन्न प्रकार व्याख्या की गयी है। वहाँ आचार्य सर्वघातिके स्पर्धकोंके उदयाभावको क्षय न कहकर देशघातिके स्पर्धकोंको 'क्षय' संज्ञा प्रदान करते हैं तथा सर्वघातिके स्पर्धकोंके उदयाभावको उपशम कहते हैं। इस प्रकार क्षय और उपशम युक्त भावको'धवला'टीकामें क्षयोपशम कहा है। पूज्यपाद, अकलंकदेव आदिने देशघातिके उदयका प्रतिपादन किया है, अतः उन्होंने देशघातिकी 'क्षय' संज्ञाका समर्थन नहीं किया है। जब देशघातिके उदयसे चल, मल तथा रुचिशैथिल्य रूप[1] अगाढ दोष उत्पन्न होते है, तब देशघातिको 'क्षय' स्वीकार करनेमें कठिनता उपस्थित होती है।

क्षयोपशमके विषयमें'गोम्मटसार' टीकामें पं० टोडरमलजीने इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है : "सर्वत्र क्षयोपशमका स्वरूप ऐसा ही जानना जहाँ प्रतिपक्षी कर्मके देशघातिया स्पर्धकनिका उदय पाइये तीहि सहित सर्वघातिया स्पर्धक उदयनिषेक सम्बन्धी तिनिका उदय

१ आप्तागमपदार्थश्रद्धानावस्थायामेव स्थितं कम्प्रमेव अगाढमिति कीर्त्यते। तद्यथा सर्वेषामर्हत्परमेष्ठिना अनन्तशक्तित्वे समाने स्थितेऽपि अस्मै शान्तकर्मणे शान्तिक्रियायै शान्तिनाथदेवः प्रभुर्भवति, अस्मै विघ्नविनाशनादिक्रियायै पार्श्वनाथदेवः प्रभुरित्यादिप्रकारेण रुचिशैथिल्यसम्भवात्, यथा वृद्धकरतलगतयष्टि: शिथिलसंबन्धतया अगाढा तथा वेदकसम्यक्त्वमपि ज्ञातव्यम्। –गो०,जी० संस्कृत टीका,पृ० ५१।

२७२. तिरिक्खेसु-दु(धु)विगाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अणंताणुबं०४ बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। णवरि मिच्छत्त-अबंधगा पारिणामिगो भावो। वेदणी० णिरयभंगो। एवं चदुणोकसा०। थिरादितिण्णियुग० तिण्णिवेदं णिरयभंगो। अपच्चक्खाणा०४ बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो ? खयोवसमिगो भावो। इत्थि-णवुंसभंगो

न पाइए बिना ही उदय दीये निर्जरै सोई क्षय अर जे उदय न प्राप्त भए आगामी निषेक तिनिका सत्तास्वरूप उपशम तिनि दोऊनि कौ होतैं क्षायोपशम हो है" (गो० जी०,पृ० ३७)

इस प्रकार क्षायोपशमके विषयमें दो प्रकारसे निरूपण किया गया है।

२७२ तिर्यंचोंमें-ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव हैं; अबन्धक नहीं है।

विशेष—इनके अबन्धक उपशान्त कषायादि गुणस्थानवाले होंगे। तिर्यंचोंमें केवल आदिके पाँच गुणस्थान होते हैं, इस कारण तिर्यंचोंमें ध्रुव प्रकृतियोंके अबन्धकोंका अभाव कहा है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चारके बन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक हैं। अबन्धकोंके कौन भाव हैं ? औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक हैं। इतना विशेष है कि मिथ्यात्वके अबन्धकोंके पारिणामिक भाव भी पाया जाता है। वेदनीयका नरक गतिके समान भंग है अर्थात् साता-असाताके बन्धक, अबन्धकोंमें औदयिक भाव हैं। दोनोंके बन्धकोंमें औदयिक भाव है; अबन्धक नहीं हैं।

चार नोकषायमें इसी प्रकार है। स्थिरादि तीन युगल, तीन वेदके बन्धकों,अबन्धकोंमें नरकगतिके समान भंग है। अप्रत्याख्यानावरण चारके बन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक हैं। अबन्धकोंके कौन भाव हैं ? क्षायोपशमिक भाव हैं।

विशेष—यहाँ देशसंयमी तिर्यंचोंकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है। इस सम्बन्धमें धवलाकार इस प्रकार स्पष्टीकरण करते हैं–क्षयोपशमरूप संयमासंयम परिणाम चारित्र मोहनीयके उदय होनेपर उत्पन्न होते हैं। यहाँ प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन और नोकषायोंके उदय होते हुए भी पूर्णतया चारित्रका विनाश नहीं होता। इस कारण प्रत्याख्यानादिके उदयकी क्षय संज्ञा की गयी है। उन्हीं प्रकृतियोंकी उपशम संज्ञा भी है, कारण वे चारित्र अथवा श्रेणीको आवरण नहीं करतीं। इस प्रकार क्षय और उपशमसे उत्पन्न हुए भावको क्षायोपशमिक भाव कहा है[1]।

कोई आचार्य कहते हैं– अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षयसे उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे तथा चारों संज्वलन और नव नोकषायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावी क्षय, उनके सदवस्थारूप उपशम तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे और प्रत्याख्यानावरण चारके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे देशसंयम होता है।

इस सम्बन्धमें धवलाकारका यह कथन है कि– उदयके अभावकी उपशम संज्ञा करनेसे उदयसे विरहित सर्व प्रकृतियोंकी तथा उन्हींके स्थिति, अनुभागके स्पर्धकोंको उपशम

१. "देशविरदे पमत्ते इदरे य खओवसमियभावो दु।" – गो० जीव० गा० १३।

तिण्णि-आयु० तिण्णिगदि-चदुजादि-ओरालि० पंचसंठा० ओरालि० अंगो० छस्संघ० तिण्णि आणु० आदावुज्जो० अप्पसत्थवि० थावरादि०४ दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचागोदं च। पुरिसवेदभंगो देवायु-देवगदि-पंचिंदि० वेउव्विय० समचदु० वेउव्वि० अंगो० देवाणु० परघादुस्सा० पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं च। एवं पत्तेगेण साधारणेण वेदणीय-भंगो। णवरि चदुआयु-दोअंगोवंग० छस्संघ० दोविहा० दोसर० बंधगा-अबंधात्ति को भावो? ओदइगो भावो। णवरि छस्संघडणाणं अबंधगा-त्ति ओदइगादिचत्तारिभावो।

संज्ञा प्राप्त हो जाती है। जिसका वर्तमानमें क्षय नहीं है, किन्तु उदय विद्यमान है उसका क्षय नामकरण अयुक्त है, इसलिए ये तीनों ही भाव उदयोपशमिकपनेको प्राप्त होते हैं। किन्तु इस बातका प्रतिपादक कोई सूत्र नहीं है। फलको देकर तथा निर्जराको प्राप्त होकर दूर हुए कर्म-स्कन्धोंकी 'क्षय' संज्ञा करके देशविरत गुणस्थानको क्षायोपशमिक कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टि आदि सभी भावोंके क्षायोपशमिकत्वका प्रसंग प्राप्त होगा। (ध० टी०,भावानु० पृ० २०२-२०३)

तीन आयु (देवायुको छोड़कर) तीन गति, चार जाति, औदारिक शरीर, समचतुरस्र-सस्थान बिना शेष पाँच संस्थान, औदारिक अंगोपांग, छह संहनन, देवानुपूर्वी बिना तीन आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावरादिक ४, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीच गोत्रमें स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके समान भंग है। अर्थात् बन्धकोंके औदयिक भाव हैं। अबन्धकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव हैं।

देवायु, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, देवानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्च गोत्रके बन्धकोंमें पुरुषवेदके समान भंग हैं, अर्थात् बन्धकों अबन्धकोंमें औदयिक भाव है।

विशेष—तिर्यंच गतिमें देवायु, देवगति, आदिकी बन्ध-व्युच्छित्तिवाले गुणस्थानका अभाव है, कारण यहाँ देश संयम गुण स्थान तक ही पाये जाते हैं, अतः अबन्धकोंका यह भाव है कि इन प्रकृतियोंके स्थानमें नरकायु आदिका बन्ध होता है, अतः देवायु आदिकी अबन्ध स्थितिमें नरकायु आदिके बन्धकी अपेक्षा अबन्धकोंमें औदयिक भाव कहा है।

इस प्रकार प्रत्येक तथा साधारणसे वेदनीयके समान भंग है अर्थात् बन्धकोंके औदयिक भाव है, अबन्धक नहीं है। विशेष यह है कि चार आयु, दो अंगोपांग, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरके बन्धकों,अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव हैं। विशेष छह संहननके अबन्धकोंमे औदयिक आदि चार भाव (पारिणामिकको छोड़कर) हैं।

विशेष—**शंका** – दो अंगोपांग, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वर, चार आयुके बन्धकोंके औदयिक भाव ठीक है, इनके अबन्धकोंमें औदयिक कैसे कहा? दूसरी बात यह है कि जब छह संहननके अबन्धकोंमे औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक भाव कहे गये, तब यहाँ भी विहायोगति आदिके अबन्धकोंमें केवल औदयिक भाव क्यों कहा?

समाधान—तिर्यंच गतिमे छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वर तथा दो अंगोपांगके अबन्धक एकेन्द्रियत्वके साथ हैं, कारण एकेन्द्रियमें संहनन, विहायोगति, स्वर तथा अंगोपांग-

२७३. एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख०३ । णवरि जोणिणीसु खइगं णत्थि । सव्व-अपज्जत्ताणं तसाणं सव्वे० (?) खयोवसम-पारिणामियं णत्थि । विगप्पा ओदइ० ।

२७४. एवं अणुद्दिस याव सव्वट्ठत्ति ।

२७५. सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचकाय० आहार० आहारमि० मदि०

का उदय नहीं है; इससे एकेन्द्रियकी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है। एकेन्द्रियके सिवाय देव और नारकी भी संहननरहित पाये जाते हैं, उनकी अपेक्षा सम्यक्त्वत्रयकी दृष्टिसे औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव भी अबन्धकोंमे कहे है।

२७३. पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त तथा पचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंचोंमे इसी प्रकार जानना। इतना विशेष है कि योनिमती तिर्यंचोंमे क्षायिक भाव नहीं है।

विशेष—तिर्यंच-स्त्रीमे क्षायिक भावके अभावका कारण यह है कि दर्शन मोहनीयका क्षपण मनुष्य गतिमे ही होता है और बद्धायुष्क क्षायिकसम्यक्त्वी जीवकी स्त्रीवेदी रूपसे उत्पत्ति नहीं होती। अतः स्त्रीतिर्यंचमें क्षायिक भाव नहीं पाया जाता।[1] (ध० टी०,भावा० पृ० २१३)

सर्व अपर्याप्त त्रसोंमें [औपशमिक, क्षायिक] क्षायोपशमिक तथा पारिणामिक नहीं है। [सर्व] विकल्पोंमे औदयिक भाव है।

२७४. अनुदिश स्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त इसी प्रकार है।

विशेषार्थ—अनुदिश आदिसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें सभी सम्यग्दृष्टि होते हैं। उनके औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव भी है।[2]

इसपर धवलाकार इन शब्दोंमें प्रकाश डालते हैं—"जैसे वेदक सम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायोपशमिक भाव, क्षायिक सम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायिक भाव और उपशम सम्यग्दृष्टि देवोंके औपशमिक भाव होता है।

शंका—अनुदिश आदि विमानोंमे मिथ्यादृष्टि जीवोंका अभाव होते हुए उपशम सम्यग्दृष्टियोंका होना कैसे सम्भव है, क्योंकि कारणका अभाव होनेपर कार्यकी उत्पत्तिका विरोध है।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उपशम सम्यक्त्वके साथ उपशम श्रेणीपर चढते और उतरते हुए मरणकर देवोंमें उत्पन्न होनेवाले संयतोंके उपशम सम्यक्त्व पाया जाता है। (जी० भावा० टीका पृ० २१६)

२७५. सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व पंचकाय, आहारक,[3] आहारकमिश्र,

---

१. खइयसम्मादिट्ठीण बद्धाउआणं त्थीवेदएसु उप्पत्तीए अभावा। मणुसगइवदिरित्तसेसगईसु दंसण-मोहणीयक्खवणाए अभावादो च। –ध० टी०,पृ० २१३। २. अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो ? ओवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो। –जी० भावा०, सूत्र २८। ३ आहारक, आहारक मिश्रमें चार संज्वलन और सात नोकषायोंके उदय प्राप्त देशघाती स्पर्धकोंकी उपशम संज्ञा है, कारण पूर्णतया चारित्रके घातनेकी शक्तिका वहाँ उपशम पाया जाता है। उन्हीं ग्यारह चारित्र मोहनीयकी प्रकृतियोंके सर्वघाती स्पर्धकोंकी क्षय संज्ञा है, क्योंकि उनका उदय भाव नष्ट हो चुका है। इस प्रकार क्षय और उपशमसे उत्पन्न संयम क्षायोपशमिक है। पूर्वोक्त ग्यारह प्रकृतियोंके उदयको ही क्षयोपशम संज्ञा है, कारण चारित्रके घातनेकी शक्तिके अभावकी ही क्षयोपशम संज्ञा है। इस प्रकार क्षयोपशमसे उत्पन्न प्रमादयुक्त संयम क्षायोपशमिक है। –ध० टी०,भावाणु०,पृ० २२१।

सुद० विभंग० अब्भवसि० सासण० सम्मामि० मिच्छादि० असण्णि त्ति। णवरि मदि० सुद० विभंगे मिच्छ० अबंधगात्ति को भावो? पारिणामिगो भावो।

२७६. देवाणं णिरयोघं याव णवगेवज्जा त्ति। णवरि देवोघादो याव सोधम्मीसाणा त्ति। एइंदिय-आदाव-थावर-बंधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिगो वा। तप्पडिपक्खाणं बंधा-अबंधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो। दोण्णं बंधगा त्ति

मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभंगावधि, अभव्यसिद्धिक, सासादन, सम्यग्मिथ्यात्वी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञीमें इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान तथा विभंगावधिमें मिथ्यात्वके अबन्धकोंके कौन भाव हैं? पारिणामिक भाव है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पंचकाय, अभव्यसिद्धिक, असंज्ञी, मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्व गुणस्थान कहा है। अतः इनके औदयिक भाव जानना चाहिए। मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभंगज्ञानमें मिथ्यात्व,सासादन गुणस्थान पाये जाते हैं। उनमें मिथ्यात्वके अबन्धक सासादन गुणस्थानवाले जीवों के दर्शन मोहनीयकी अपेक्षा पारिणामिक भाव कहा गया है। सासादन गुणस्थानमें पारिणामिक भाव है, मिश्रगुणस्थानमें क्षायोपशमिक भाव कहा है। 'गोम्मटसार' जीवकाण्डमें लिखा है—"मिश्रगुणस्थाने क्षायोपशमिकभावो भवति। कुतः? मिथ्यात्वप्रकृतेः सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणे क्षये सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदये विद्यमाने सत्यनुदयप्राप्तनिषेकाणामुपशमे च समुद्भूतत्वादेव कारणात्" (संस्कृत टीका,पृ० ३४)—मिश्रगुणस्थानमें क्षायोपशमिक भाव किस प्रकार होता है? मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाति-स्पर्धकोंका उदयाभाव लक्षण क्षय होनेपर तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदय होनेपर और उदयको प्राप्त न हुए निषेकोंके उपशम होनेपर यह क्षायोपशमिक भाव होता है।

आचार्य वीरसेन 'धवला'टीकामें इस परिभाषासे असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं—"तण्ण घडदे" यह परिभाषा घटित नहीं होती है। उनका कथन है—"सम्मामिच्छत्तुदए संते सद्दहणासद्दहणप्पओ करंचिओ जीवपरिणामो उप्पज्जइ। तत्थ जो सद्दहणंसो सो सम्मत्तावयवो। तं सम्मामिच्छत्तुदओ ण विणासेदि त्ति सम्मामिच्छत्तं खओवसमियं (जी० भा० टीका,पृ० १९८) सम्यक्त्व-मिथ्यात्व कर्मके उदय होनेपर श्रद्धानाश्रद्धानात्मक करंचित अर्थात् शबलित (मिश्रित) जीव परिणाम उत्पन्न होता है, उसमें जो श्रद्धानांश है, वह सम्यक्त्वका अवयव है। उसे सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका उदय नष्ट नहीं करता है, इससे सम्यग्मिथ्यात्व भाव क्षायोपशमिक है।

विशेष—यहाँ सासादन गुणस्थानकी दृष्टिसे दर्शनमोहनीयकी अपेक्षा पारिणामिक भाव कहा गया है।

२७६. देवोंमें-नव ग्रैवेयकपर्यन्त देवोंमें नारकियोंके ओघवत् जानना चाहिए। सामान्य देवोंसे सौधर्म ईशान स्वर्ग पर्यन्त विशेष है। एकेन्द्रिय आतप स्थावरके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक वा पारिणमिक भाव है। इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियोंके बन्धकों, अबन्धकोंके

१ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञान-श्रुताज्ञान-विभंगज्ञानेषु मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिश्चास्ति॥ –स० सि०,पृ० ११। एकेन्द्रियादिषु चतुरिन्द्रियपर्यन्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्। पृथ्वीकायादिषु वनस्पतिकायान्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्। असंज्ञिषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम्।

को भावो? ओदइगो भावो। अबंधा णत्थि। भवणवासि-वाणवेंतर-जोदिसिगेसु खइगं णत्थि।

२७७. ओरालिमि० पंचणा० छदंस० बारसक० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु० उप० णिमि० पंचंतराइगाणं बंधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो? खइगो भावो। थीणगिद्धि०३ मिच्छत्त-अणंताणु०४ बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? खइगो वा खयोवसमिगो वा। णवरि मिच्छत्त-पारिणामियो वि अत्थि। सादबंधाबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। असाद-बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो वा, खइगो वा। दोण्णं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा

कौन भाव है? औदयिक है। दोनोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है; अबन्धक नहीं है। भवनवासी, वाणव्यन्तर तथा ज्योतिषियोंमें क्षायिक भाव नहीं है।

विशेषार्थ—धवलाटीकामें यह शंका-समाधान दिया गया है—

शंका—भवनत्रिक आदि देव और देवियोंमें क्षायिक भाव क्यों नहीं कहा?

समाधान—नहीं, क्योंकि भवनवासी वाणव्यन्तर, ज्योतिषी देव, द्वितीयादि छह पृथिवियोंके नारकी, सर्वविकलेन्द्रिय, सर्वलब्ध्यपर्याप्तक और स्त्रीवेदियोंमें सम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती है। तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त अन्य गतियोंमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका अभाव है। इससे उक्त भवनत्रिक आदि देव-देवियोंमें क्षायिक भाव नहीं बतलाया गया। (जीव० ध०,टीका भावा० पृ० २१५)

२७७. औदारिक मिश्र काययोगमें—५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, १२ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? क्षायिक भाव है।

विशेष—यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अबन्धक कपाट समुद्घातयुक्त सयोगकेवलीकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है? क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। मिथ्यात्वके अबन्धकोंमें पारिणामिक भाव भी पाया जाता है।

विशेषार्थ—शंका—यहाँ औपशमिक भाव क्यों नहीं कहा गया?

समाधान—चारों गतियोंके उपशमसम्यक्त्वी जीवोंका मरण न होनेसे इस योगमें उपशमसम्यक्त्वका सद्भाव नहीं पाया जाता।[1]

शंका—उपशम श्रेणीपर चढ़ते-उतरते हुए संयतजीवोंका उपशमसम्यक्त्वके साथ मरण पाया जाता है।

---

1. ओवसमिओ भावो एत्थ किण्ण परूविदो? ण, चदुगइउवसमसम्माइट्ठीणं मरणाभावादो ओरालियमिस्सम्मि उवसमसम्मत्तगुणस्साभावा। उवसमसेढिं चडंत-ओअरंत संजदाणमुवसमसम्मत्तेण मरणं, अत्थि त्ति चे उच्चदि, किंतु ण ते उवसमसम्मत्तेण ओरालियमिस्सकायजोगिणो होंति, देवगदिं मोत्तूण तेसिमण्णत्थ उप्पत्तीए अभावा। –ध० टी०,भा०,पृ० २१९।

णत्थि। इत्थिणवुंसबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो वा खइगो वा खयोवसमियो वा। णवरि णवुंसगेसु पारिणामियो वि अत्थि। पुरिसवेदगेसु बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो?

समाधान—यह सत्य है, किन्तु उपशम श्रेणीमें मरनेवाले उपशमसम्यक्त्वीके औदारिक मिश्रकाययोग नहीं होता, कारण इनकी देवोंके सिवाय अन्यत्र उत्पत्तिका अभाव है। (ध० टी०,भावाणु० पृ० २१९)।

साताके बन्धकों,अबन्धकोंके कौन भाव हैं? औदयिक भाव है। असाताके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक वा क्षायिक भाव हैं। साता-असाताके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है; अबन्धक नहीं है।

विशेष—शंका—जब साताके बन्धकों-अबन्धकोंमें औदयिक भाव कहा, तब असाताके बन्धकों,अबन्धकोंमें औदयिक भाव ही कहना था। यहाँ असाताके अबन्धकोंमें औदयिकके साथ क्षायिक भाव क्यों कहा है?

समाधान—यहाँ यह ध्यान देना चाहिए कि औदारिक मिश्रयोगमें मिथ्यात्व, सासादन, अविरत तथा सयोगकेवली गुणस्थान होते हैं। साताके अबन्धक अयोगकेवली ही होंगे, जिनने साताकी बन्ध-व्युच्छित्ति कर ली है। औदारिक मिश्रकाययोगमें अयोगकेवली गुणस्थान न होनेसे साता-असाताके युगलके अबन्धकोंका यहाँ अभाव कहा है।

साता और असाताके बन्धकोंके औदयिक भाव हैं। साताका बन्ध होनेपर असाताका बन्ध नहीं होता और असाताका बन्ध होनेपर साताका बन्ध नहीं होता, कारण ये परस्पर प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ हैं। एकके बन्ध होनेपर अन्यका अबन्ध होगा। यह अबन्ध बन्धव्युच्छित्तिका द्योतक नहीं है। अबन्धके अनन्तर तो पुन बन्ध हो भी जाता है; किन्तु जिस गुणस्थानमें बन्धव्युच्छित्ति हुई है, उसमें आनेके पूर्व उस प्रकृतिका बन्ध नहीं होगा। साताकी बन्धव्युच्छित्ति जब सयोगकेवली गुणस्थानमें होती है,तब साताके अबन्धका अर्थ है-असाताका बन्ध। असाताकी बन्धव्युच्छित्ति प्रमत्तसंयतमें होती है,उसके पूर्व असाताके अबन्धका तात्पर्य साताके बन्धका होगा। प्रमत्त संयतके आगे असाताके अबन्धका भाव उसकी बन्धव्युच्छित्तिका होगा। इस कारण औदारिक मिश्रयोगकी अपेक्षा साताके अबन्धक तथा बन्धकके औदयिक भाव कहा है।- कारण यहाँ साताके अबन्धकके असाताका बन्ध होगा। असाता वेदनीयकी बात दूसरी है, वहाँ असाताके बन्धकके औदयिक भाव होगा और असाताके अबन्धक अर्थात् साताके बन्धक सयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव होगा। असाताके अबन्धकके अप्रमत्त आदि गुणस्थान इस योगमें नहीं होंगे, इसलिए यहाँ औदयिक भावके साथ क्षायिक भाव भी असाताके अबन्धकके साथ जोड़ा गया है। साताका अबन्धक इस योगमें चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त ही पाया जायेगा, उसके असाताका बन्ध होगा। इससे बन्धक,अबन्धकके औदयिक भाव कहा है।

स्त्रीवेद, नपुंसक वेदके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके बन्धक कौन भाव हैं? औदयिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिक हैं। इतना विशेष है कि नपुंसक वेदके अबन्धकोंके पारिणामिक भाव भी पाया जाता है।

विशेष—इस योगमें उपशम सम्यक्त्वका अभाव होनेसे औपशमिक भाव नहीं कहा।

पुरुष वेदके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव हैं?

ओदइगो वा खइगो वा। तिण्णं वेदाणं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? खइगो भावो। इत्थि-णवुंस० भंगो दोआयु-दोगदि-चदुजादि-ओरालि० पंचसंठा० ओरालिय-अंगो० छस्संघ० दोआणु० आदावुज्जो० अप्पसत्थवि० थावरादि०४ दूभग-दुस्सर-अणा० णीचागोदं च। पुरिसवेदभंगो चदुणोक० देवगदि-पंचिंदि० वेउव्वि० समचदु० वेउव्वि० अंगो देवाणु० परघादुस्सा० पसत्थवि० तस०४ थिरादिदोण्णियुगलं सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-उच्चागोदं च। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि। दो आयुबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामियो वा। एवं दो अंगो० छस्संघ० दो विहा० दो सर० किंचि विसेसो जाणिदूण णेदव्वं। सेसाणं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? खइगो भावो। तित्थयरं बंधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो वा खइगो वा।

औदयिक वा क्षायिक भाव है।

विशेष—पुरुष वेदके अबन्धक,किन्तु स्त्री-नपुंसक वेदके बन्धकोंकी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है। पुरुष वेदकी बन्धव्युच्छित्तियुक्त गुणस्थान इस योगमें सयोगकेवलीका होगा उस अपेक्षासे क्षायिक भाव कहा है।

तीनों वेदोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? क्षायिक भाव है।

विशेष—औदारिकमिश्रकाययोगमें तीनों वेदोंके अबन्धक सयोगी जिन होंगे, इस कारण उपशम भाव न कहकर, क्षायिक भाव ही कहा है।

दो आयु, दो गति, चार जाति, औदारिक शरीर, पाँच संस्थान, औदारिक अंगोपांग, छह संहनन, दो आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादि चार, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीचगोत्रके बन्धकोंका स्त्रीवेद, नपुंसक वेदके समान जानना चाहिए। हास्यादि चार नोकषाय, देवगति, पंचेंद्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, देवानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस चार, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रमें पुरुषवेदके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक तथा सामान्यसे जानना चाहिए। दो आयुके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक है।

विशेष—इस योगमें उपशम सम्यक्त्व न होनेसे तथा उपशम चारित्रका भी सद्भाव न होनेके कारण औपशमिक भाव नहीं कहा है।

इस प्रकार दो अंगोपांग, छह संहनन, दो विहायोगति, दो स्वरके विषयमें किंचित् विशेषताको जानकर भंग निकाल लेना चाहिए। शेष प्रकृतियोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? क्षायिक भाव है। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक वा क्षायिक भाव है।

विशेष—तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध न करनेवाले मिथ्यात्वीके दर्शन मोहनीयके उदयकी

२७८. वेउव्वियका०–देवोघं। वेउव्वि० मि० तं चेव। णवरि आयु-णत्थि।

२७९. कम्मइगका० धुविगाणं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगात्ति को भावो? खइगो भावो। थीणगिद्धितियं मिच्छत्त-अणंताणु०४ बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। मिच्छ०[अ]बंध० पारिणामियो भावो। साद-बंधाबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। असादबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो खइगो वा। दोण्णं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। इत्थि-णवुंसबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा।

अपेक्षा औदयिक भाव कहा जा सकता है। तीर्थंकर प्रकृतिकी बन्ध-व्युच्छित्तियुक्त इस योगमे सयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है।

२७८. वैक्रियिक काययोगियोंमे देवोंके ओघवत् जानना चाहिए।

वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंमे देवोंके ओघवत् है। इतना विशेष है कि यहाँ आयुका बन्ध नहीं पाया जाता है।

विशेष—इस योगमे मिथ्यात्वीके औदयिक, सासादन सम्यक्त्वीके पारिणामिक तथा असंयत सम्यक्त्वीके औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव हैं।

२७९. कार्मण काययोगियोंमे ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है? क्षायिक भाव है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चारके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है।

विशेष—यहाँ उक्त प्रकृतियोंके अबन्धक अविरत सम्यक्त्वीकी अपेक्षा औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव कहे हैं। सयोगकेवलीकी भी अपेक्षा क्षायिक भाव है।

मिथ्यात्वके बन्धकों(?)के कौन भाव हैं? पारिणामिक भी है।

विशेष—यहाँ बन्धकोंके स्थानपर अबन्धक पाठ ठीक बैठता है, कारण पारिणामिक भाव सासादन गुणस्थानमे पाया जाता है जहाँ मिथ्यात्वका अबन्ध है।

साताके बन्धकों, अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। असाताके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक वा क्षायिक भाव है। साता-असाता दोनोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है; अबन्धक नहीं है।

स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव हैं। नपुंसकवेदके

---

१ "कम्मइगकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी सजोगिकेवली ओघं। कुदो? मिच्छादिट्ठीणमोदइएण, सासणाणं पारणामिएण, कम्मइयकायजोगि-असंजदसम्मादिट्ठीण ओवसमिय-खइय-खओवसमियभावेहि सजोगिकेवलीण खइएण भावेण ओघम्मि गदगुणट्ठाणेहि साधम्मुवलंभा।" –जी० भा०, सू० ४०, पृ० २२१।

णवुंस० पारिणामियो भावो। पुरिस० बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अवंधगा त्ति को भावो? ओदइगो वा खइगो वा। तिण्णं वंधगात्ति को भावो? ओदइगो भावो। अवंधगा त्ति को भावो? खइगो भावो। एवं इत्थिभंगो तिरिक्खग० चदुसंठा० चदुसंघ० तिरिक्खाणु० उज्जो० अप्पसत्थ० दूभग-दुस्सर-अणा० णीचागोदं च। णवुंसकभंगो चदुजादि-हुंडसंठा० असंपत्तसे० आदाव-थावरादि०४। पुरिसभंगो चदुणोक० दोगदि० पंचिंदि० दोसरीर-समचदु० दोअंगो० वज्जरिसभ० दो-आणु० परघादुस्सा० पसत्थवि० तस०४ थिरादि दोण्णि युगलं सुभग-सुस्सर-आदे० उच्चागोदं च। एवं पत्तेगेण साधारणेण वि ओरालियमिस्स-भंगो।

२८०. इत्थिवेदेसु–पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० पंचंतराइगाणं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अवंधगा णत्थि। थीणगिद्धि-तिय-मिच्छत्त-बारसक० बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अवंधगा त्ति को भावो? उवसमिगो वा खइगो वा

अवन्धकोंमें पारिणामिक भाव भी पाया जाता है।

विशेष—इसके अवन्धक सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंकी अपेक्षा पारिणामिक भाव कहा है।

पुरुष वेदके वन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अवन्धकोके कौन भाव है? औदयिक या क्षायिक है।

विशेष—इस योगमे पुरुषवेदके वन्धका अभाव प्रतर तथा लोकपूरण समुद्घातगत सयोगकेवलीके होगा, यहाँ मोह-क्षयजनित क्षायिक भाव है। अन्य वेदद्वयके बन्धककी अपेक्षा औदयिक भाव भी कहा है।

तीनों वेदोंके वन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अवन्धकोंके कौन भाव है? क्षायिक है।

विशेष—यहाँ सयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है।

तिर्यंचगति, चार संस्थान, चार सहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, तथा नीच गोत्रका स्त्रीवेदके समान भग जानना चाहिए। चार जाति, हुण्डक सस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, आतप तथा स्थावरादि चारमे नपुंसकवेदके समान भग जानना चाहिए। चार नोकषाय, दो गति, पंचेन्द्रिय जाति, दो शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, दो अंगोपाग, वज्रवृषभसंहनन, दो आनुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस चार, स्थिरादि दो युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्च गोत्रके वन्धकोंमें पुरुषवेदके समान भंग जानना चाहिए। प्रत्येक और सामान्यसे औदारिक मिश्रकाययोगके समान भग जानना चाहिए।

२८०. स्त्रीवेदमें[1]—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ सञ्ज्वलन, ५ अन्तरायोंके वन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है; अवन्धक नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, बारह कषायके वन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अवन्धकोंके कौन भाव है? औपशमिक, क्षायिक

---

१ वेदानुवादेन त्रिषु वेदेषु मिथ्यादृष्ट्यादीनि अनिवृत्तिवादरस्थानान्तानि सन्ति। – स० सि०, पृ० ११।

खयोवसमिगो वा। मिच्छत्त० पारिणामि०। णिद्दापचला० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगुरु० उप० णिमि० बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? उवसमिगो वा खइगो वा। साद-बंधाबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। असाद-बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति को भावो? ओदइगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा। दोण्णं बंधगा त्ति को भावो? ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। तिण्णं वेदाणं पत्तेगेण ओघं। णवरि पुरिस० अबंधगा त्ति ओदइगो भावो। साधारणेण बंधा० ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। हस्सादि०४ पत्तेगेण ओघभंगो। साधारणेण बंधगा

तथा क्षायोपशमिक भाव है। विशेष, मिथ्यात्वके अबन्धकोंके पारिणामिक भाव भी है। निद्रा, प्रचला, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु, उपघात, निर्माणके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औपशमिक तथा क्षायिक हैं।

साताके बन्धकों अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है।

विशेष—यहाँ साताके अबन्धकोंके असाताके बन्धककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है।

असाताके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक है। दोनोंके बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धक नहीं है। तीनों वेदोंका पृथक्-पृथक् रूपसे ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है कि पुरुषवेदके अबन्धकोंमें औदयिक भाव है। सामान्यसे इनके बन्धकोंके औदयिक भाव है। अबन्धकोंका अभाव है। हास्यादि चारका प्रत्येकसे ओघवत् भंग जानना चाहिए। सामान्यसे हास्यादिके बन्धकोंके औदयिक भाव है। अबन्धकोंके औपशमिक तथा क्षायिक भाव है। इस प्रकार शेष प्रकृतियोंमें ओघके समान भंग जानना चाहिए।

विशेष—हास्यादिकके अबन्धक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें होंगे। उनके उपशम तथा क्षायिक चारित्रकी दृष्टिसे औपशमिक तथा क्षायिक भाव कहे हैं।

शंका—अनिवृत्तिकरणमें कर्मोंका उपशम न होनेसे औपशमिक भाव कैसे कहा जायेगा?

समाधान—उपशम शक्तिसे समन्वित अनिवृत्तिकरणके औपशमिक भाव माननेमें आपत्ति नहीं है। इस प्रकार उपशम होनेपर उत्पन्न होनेवाला तथा उपशम होने योग्य कर्मोंके उपशमनार्थ उत्पन्न हुआ भाव औपशमिक कहलाता है। अथवा, भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले उपशम भावमें भूतकालका उपचार करनेसे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें औपशमिक भाव बन जाता है। जैसे, सब प्रकारके असंयममें प्रवृत्त हुए चक्रवर्ती तीर्थंकरके 'तीर्थंकर' यह संज्ञाकरण बन जाता है।

शंका—अनिवृत्तिकरणमें मोहनीयका क्षय न होनेसे क्षायिक भावका · उचित नहीं है।

समाधान—मोहनीयका एकदेश क्षय करनेवाले बादरसाम्पराय सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकोंके भी कर्मक्षयजनित भाव पाया जाता है। कर्मक्षयके निमित्तभूत परिणाम पाये जानेसे अपूर्वकरण गुणस्थानमें भी क्षायिकभाव माना है। अथवा उपचारसे अपूर्वकरण संयतके

ओदइ० । अबंध० उवसमि० खइगो० । एवं सव्वाणं ओघं । णवरि जस० अज्जस० दोगोदं पत्तेगेण साधारणेण वि वेदणीयभंगो ।

२८१. एवं पुरिस० णवुंस कोधादि०४ । णवरि कोधे पुरिस० हस्सभंगो । माणे तिण्णं संजलणा० । मायाए दोण्णं संजलणा० । लोभे लोभ-संजल० धुविगाणं भंगो । सेस-संजलणं णिद्दाभंगो ।

२८२. अवगदवेदेसु–पंचणा० चदुदंस० चदुसंज० जस० उच्चागोद-पंचंतराइगाणं बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगा त्ति को भावो ? उवसमिगो वा खइगो वा । सादबंध० को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगा त्ति को भावो ? खइगो भावो ।

२८३. अकसाइगेसु–साद-बंधगा० ओदइगो भावो । अबंधगा० खइगो भावो ।

क्षायिक भाव मानना चाहिए। इसमें अतिप्रसंगकी आशा नहीं करनी चाहिए । कारण, प्रत्यासत्ति अर्थात् समीपवर्ती अर्थके प्रसंगवश अतिप्रसंग दोषका परिहार होता है । (ध० टी०, भावाणु० पृ० २०५–६)

इतना विशेष है कि यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तथा दो गोत्रोंका प्रत्येक सामान्यकी अपेक्षा वेदनीयके समान भंग है ।

२८१ पुरुषवेद, नपुंसकवेद तथा क्रोध आदि चार कषायोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।[1] विशेष यह है कि क्रोधमें, पुरुषवेदके बन्धकोंका हास्यके समान भंग है । मानमें, तीन सञ्ज्वलन, मायामें, दो संज्वलन तथा लोभमें लोभ संज्वलनके बन्धकोंका ध्रुव प्रकृतिके समान भंग है, अर्थात् बन्धकोंके औदयिक और अबन्धकोंके औपशमिक तथा क्षायिक भाव हैं । सञ्ज्वलन कषायमें बन्ध होनेवाली शेष प्रकृतियोंके बन्धकोंका निद्राके समान भंग है । अर्थात् बन्धकोंके औदयिक, अबन्धकोंके औपशमिक तथा क्षायिक है ।

२८२. अपगत वेदमें – ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, यशःकीर्ति, उच्च गोत्र तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक है । इनके बन्धकोंके कौन भाव हैं ? औपशमिक तथा क्षायिक हैं ।

साता वेदनीयके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है ? अबन्धकोंके कौन भाव हैं ? क्षायिक भाव हैं ।

विशेषार्थ—अपगत वेदियोंमें द्रव्य वेदका नाश नहीं होता । यहाँ भाव वेदका विनाश होता है । धवला टीकामें लिखा है–मोहनीयके द्रव्य कर्म स्कन्धको अथवा मोहनीय कर्मसे उत्पन्न होनेवाले जीवके परिणामको वेद कहते हैं । उनमें वेदजनित जीवके परिणामका अथवा परिणामके साथ मोहकर्म-स्कन्धका अभाव होनेसे जीव अपगत वेदी होता है । (ध० टी० भा०, पृ० २२२)

अपगतवेदमें साताके अबन्धक अयोगकेवली होंगे, उनके क्षायिक भाव है ।

२८३ अकषायियोंमें – साताके बन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है । अबन्धकोंके कौन भाव हैं ? क्षायिक भाव है ।

---

१. "क्रोधमानमायासु मिथ्यादृष्ट्यादीनि अनिवृत्तिबादरस्थानान्तानि सन्ति । लोभकषाये तान्येव सूक्ष्मसाम्परायस्थानाधिकानि ।" –स० सि०, पृ० ११ ।

२८४. एवं केवलणा० यथाखाद० केवल-दंसणा० ।

२८५. आभि० सुद० ओधि० मणपज्जव० संजद० ओधि० सम्मादि० खइग० ओघं । णवरि मिच्छ-संयुत्ताओ वज्ज० ।

२८६. सामाइ० छेदो०—पंचणा० चदुदंस० लोभसंजल० उच्चागोद-पंचंतराइगाणं बंधगा० ओदइगो भावो । अबंधा णत्थि । सेसं मणपज्जव-भंगो । परिहारे—देवायु-बंध० ओदइगो भावो । अबंध० ओदइ० खयोवसमिगो वा । एवं असादादिछ० । सेसं ओदइ० भावो । सुहुमसं०—संजदासंजद-सव्वाणं बंध० ओदइ० ।

विशेष—शंका – अकषाय मार्गणा नहीं बन सकती, कारण जीवका जैसे ज्ञानदर्शन गुण है, उसी प्रकार कषाय नामका भी गुण है । गुणका विनाश माननेपर गुणीका भी विनाश होगा । इस प्रकार अकषायमार्गणा माननेपर जीवका अभाव हो जायगा ।

समाधान—ज्ञानदर्शनके समान कषाय नहीं है, अतएव कषाय जीवका लक्षण नहीं हो सकता । कर्मजनित कषाय भावको, जीवका लक्षण या गुण मानना अयुक्त है । कषायोंका कर्मोंसे उत्पन्न होना असिद्ध नहीं है, कारण कषायकी वृद्धि होनेपर जीवके ज्ञानकी हानि अन्य प्रकारसे नहीं बन सकती है, इसलिए कषायका कर्मसे उत्पन्न होना सिद्ध है । गुण गुणान्तरका विरोधी नहीं होता, क्योंकि अन्यत्र वैसा नहीं देखा जाता । (ध० टी०, भावा० ५, पृ० २२३)

२८४ केवलज्ञान, यथाख्यातसंयम, केवलदर्शनमें इसी प्रकार जानना चाहिए ।[1]

२८५. आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, संयम, अवधिदर्शन, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टिके ओघवत् भाव जानना चाहिए ।[2] इतना विशेष है कि यहाँ मिथ्यात्वसंयुक्त प्रकृतियोंको नहीं लेना चाहिए ।

२८६. सामायिक, छेदोपस्थापना संयममें—५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, लोभ संज्वलन, उच्च गोत्र, तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंके औदयिक भाव है ; अबन्धक नहीं है । शेष प्रकृतियोंके बन्धकों-अबन्धकोंमें मनःपर्ययज्ञानके समान भंग जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यह संयम छठेसे नवे गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है, इससे इसमें ज्ञानावरणादिके अबन्धकोंका अभाव कहा है । उनके अबन्धक उपशान्तकषायादि होते हैं ।

परिहारविशुद्धि संयममें – देवायुके बन्धकोंके औदयिक भाव है । अबन्धकोंके औदयिक तथा क्षायोपशमिक भाव है ।

विशेष—परिहारविशुद्धि संयम प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानमें पाया जाता है । वहाँ देवायुका बन्ध न करनेवाले जीवोंके चारित्रमोहनीयकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है । अन्य प्रकृतियोंके बन्धकोंकी अपेक्षा औदयिक भाव है ।

इसी प्रकार असाता, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति, शोक तथा अरतिमें जानना चाहिए । शेषमें औदयिक भाव है । सूक्ष्मसाम्पराय तथा संयमासंयममें – सब प्रकृतियोंके बन्धकोंके औदयिक भाव है ।

१ "यथाख्यातविहारशुद्धिसयता उपशान्तकषायादयोऽयोगकेवल्यन्ता ।" २ "आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानेषु असयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति । मनःपर्ययज्ञाने प्रमत्तसयतादय क्षीणकषायान्ता सन्ति । संयता प्रमत्तादयोऽयोगकेवल्यन्ता । क्षायिकसम्यक्त्वे असयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अयोगकेवल्यन्तानि सन्ति ।"—स० सि०, पृ० १२ । ३ "तेज पद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यादीनि अप्रमत्तस्थानान्तानि ।" —स० सि०, पृ० १२ ।

२८७. असंजद० तिण्णि ले०-तिरिक्खोघं। णवरि अपच्चक्खाणा०४ अबंधगा णत्थि। तित्थय० बंधगा अत्थि।

२८८. तेऊए-पंचणा० छदंसणा० चदुसंज० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ अगु०४ बादर-पज्जत्त-पत्तेय-णिमि० पंचंत० बंधगा०, ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। थीणगिद्धि०३ अणंताणुबंधि०४ बंधगा० ओदइगो भावो। अबंधगा त्ति उवसमि० खइ० खयोवस०। मिच्छत्त० ओघं। साद० बंधा-अबंधगा त्ति ओदइगो भावो। असाद० बंध० ओदइगो भावो। अबंध० ओदइ० खयोवसमिगो वा। दोण्णं बंधा० ओदइगो भावो। अबंधा णत्थि। एवं चदुणोक० थिरादि-तिण्णियुगल-इत्थि-णवुंस० बंधगा ओदइगो भावो। अबंधगा ओदइ० उवसमि० खइगो० खयोवस०। णवुंस० पारिणामि०। पुरिसवे० बंधा अबं० ओदइगो भावो। तिण्णि बंधा० ओदइगो भावो। अबंधगा णत्थि। तिरिक्खायुबंधा० ओदइगो भावो। अबंधगा ओदइ० उवस० खइ०

---

२८७. असंयतों तथा कृष्णादि तीन लेश्यावालोंमें – तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक नहीं हैं, किन्तु यहाँ तीर्थंकरके बन्धक हैं।

विशेष—अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक देशसंयमी होते हैं उनका यहाँ अभाव है, कारण अशुभ-त्रिक लेश्या असंयतोंमें ही होती है।

२८८ तेजोलेश्यामें – ५ ज्ञानावरण, ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, भय-जुगुप्सा, तैजस-कार्मण, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, निर्माण तथा ५ अन्तरायोंके बन्धकोंके औदयिक भाव है; अबन्धक नहीं है।

विशेष—तेजोलेश्या अप्रमत्त संयतपर्यन्त पायी जाती है, अतः यहाँ ज्ञानावरणादिके अबन्धक नहीं पाये जाते हैं।

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव हैं? औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक हैं। मिथ्यात्वमें ओघके समान है। साता वेदनीयके बन्धकों, अबन्धकोंमें औदयिक भाव है? असाताके बन्धकोंमें औदयिक भाव है। अबन्धकोंमें कौन भाव है? औदयिक अथवा क्षायोपशमिक भाव है।

विशेष—असाताकी बन्धव्युच्छित्तियुक्त अप्रमत्त गुणस्थानकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव है। असाताके अबन्धक,किन्तु साताके बन्धककी अपेक्षा औदयिक भाव कहा है।

साता-असाता दोनोंके बन्धकोंके औदयिक भाव है; अबन्धक नहीं हैं। इस प्रकार ४ नोकषाय, स्थिरादि ३ युगलमें जानना चाहिए। स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके बन्धकोंके औदयिक भाव है। अबन्धकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव है। विशेष यह है कि नपुंसकवेदके अबन्धकोंमें पारिणामिक भाव भी है।

पुरुषवेदके बन्धकों, अबन्धकोंके कौन भाव है? औदयिक भाव है। तीनों वेदोंके बन्धकोंमें औदयिक भाव है; अबन्धक नहीं है। तिर्यंचायुके बन्धकोंमें औदयिक भाव है।

---

१. "[illegible] विशुद्धिसंयता प्रमताप्रमत्ताश्च।" –स० सि०,१२। २ "कृष्णनीलकापोतलेश्यासु मिथ्यादृष्टयादीनि [illegible] सम्यग्दृष्टयन्तानि सन्ति।

खयोवस० । मणुस-देवायु बंधा० ओदइ० । अबंधगा ओदइ० खयोव० । तिण्णिआयु० बंधा० ओदइ० । अबंध० ओदइ० खयोव० । इत्थि-णवुंसग-भंगो तिरिक्खगदि-एइंदियजादि-पंचसंठा० पंचसंघ० तिरिक्खाणु० आदा-उज्जो० अप्पसत्थवि० थावरदूभग-दुस्सर-अणा० णीचागोदं च । मणुसगदि-ओरालि० ओरालि० अंगो० वज्जरिस० मणुसाणु० बंध० ओदइगो भावो । अबं० ओदइ० खयोवसमिगो वा । देवगदि०४ पंचिंदि० आहारदुग-समचदु० पसत्थवि० तस० सुभग-सुस्सर-आदे० तित्थय० बंध० अबं० ओदइगो भावो । तिण्णं गदीणं बंध० ओदइ० । अबंधगा णत्थि । एदेण बीजपदेण णेदव्वं ।

२८९. एवं पम्माए, एइंदिय० आदाव-थावरं वज्ज ।

२९०. वेदगे-धुविगाणं बंधगा० ओदइगो भावो । अबंधा णत्थि । सेसाणं तेउ-भंगो ।

अबन्धकोंमें औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव हैं ।

विशेष—अन्य आयुबन्धकी अपेक्षा औदयिक भाव है तथा तिर्यंचायुके अबन्धक अविरतसम्यक्त्वीके सम्यक्त्वत्रयवालोंकी अपेक्षा औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भाव हैं । देशविरत, प्रमत्त, अप्रमत्तकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव है ।

मनुष्यायु-देवायुके बन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक[1] भाव है । अबन्धकोंके औदयिक, क्षायोपशमिक भाव हैं । तिर्यंच-मनुष्य-देवायुके बन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक है ।

विशेष—तेजोलेश्यामें नरकायुका बन्ध नहीं होनेसे उसका ग्रहण नहीं किया है ।

आयुत्रयके अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक तथा क्षायोपशमिक है ।

तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, ५ संस्थान, ५ संहनन, तिर्यंचानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्त-विहायोगति, स्थावर, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय तथा नीच गोत्रमें स्त्रीवेद, नपुंसकवेदके समान भंग जानना चाहिए । अर्थात् बन्धकोंके औदयिक है; अबन्धकोंके औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक है ।

मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभसंहनन तथा मनुष्यानुपूर्वीके बन्धकोंके औदयिक भाव है । अबन्धकोंके औदयिक वा क्षायोपशमिक भाव है ।

देवगति ४, पंचेन्द्रिय जाति, आहारकद्विक, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा तीर्थंकरके बन्धकों,अबन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है । तीन गतियोंके बन्धकोंके कौन भाव हैं ? औदयिक भाव है; अबन्धक नहीं है । इसी बीजपदके द्वारा अन्य प्रकृतियोंका वर्णन जानना चाहिए ।

२८९. पद्मलेश्यामें – इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि यहाँ एकेन्द्रिय, आतप तथा स्थावर प्रकृतियोंको नहीं ग्रहण करना चाहिए ।

२९०. वेदकसम्यक्त्वमें – ध्रुव प्रकृतियोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है; अबन्धक नहीं है ।

---

१ "मिच्छस्सतिमणवय वार न हि तेउपम्मेसु ।" –गो० क०,गा० १२० ।

२९१. उवसम०-पंचणा० छदंस० चदुसंज० पुरिस० भयदु० तेजाक० वण्ण०४ पंचिंदि० अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे० णिमि० तित्थयर० उच्चा-गोदं पंचंत० बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंध० उवसमियो भावो। साद-बंधा-अबंध० ओदइगो भावो। असाद-बंधगा त्ति को भावो ? ओदइ०। अबंधगा त्ति०-ओदइग० उवस० खयोवस०। दोण्णं बंधगा० ओदइ०। अबंधा णत्थि। अट्ठकसा० बंध० ओदइगो भावो। अबंध० उवस० खयोवसमिगो वा। हस्सरदि० बंधगात्ति को भावो ? ओदइगो भावो। अबंध० ओदइगो वा उवसमिगो वा। अरदि-सोगं बंधगा त्ति ओदइ०। अबंधगा० ओदइ० उवस० खयोव०। दोण्णं बंधगा त्ति

विशेष—वेदकसम्यक्त्व अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है और ध्रुव प्रकृतियों-के अबन्धक [1]उपशान्तकषायी होते हैं। इस कारण यहाँ ध्रुव प्रकृतियोंके अबन्धक नहीं कहे हैं।

शेष प्रकृतियोंमें तेजोलेश्याके समान भंग है।

२९१. उपशम सम्यक्त्वमें[2] – ५ ज्ञानावरण, स्त्यानगृद्धित्रिक रहित ६ दर्शनावरण, ४ संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, तैजस- कार्मण शरीर, वर्ण ४, पंचेन्द्रिय जाति, अगुरु-लघु, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्च गोत्र तथा पाँच अन्तरायोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके औपशमिक भाव है। साता वेदनीयके बन्धकों, अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। असाता वेद-नीयके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक तथा क्षायोपशमिक है।

साता-असाताके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है; अबन्धक नहीं हैं। आठ कषायोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औप-शमिक वा क्षायोपशमिक है।

हास्य-रतिके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक वा औपशमिक है। अरति-शोकके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक, क्षायोपशमिक तथा औपशमिक भाव है।

विशेष—अरति-शोकके अबन्धक, किन्तु हास्य-रतिके बन्धककी दृष्टिसे औदयिक भाव है। अरति, शोककी बन्ध-व्युच्छित्ति प्रमत्तसंयतोंके होती है। अतएव अरति, शोकके, अबन्धक अप्रमत्त संयतोंकी अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव कहा है। उपशम श्रेणीकी अपेक्षा औपशमिक भाव कहा है।

हास्य-रति, अरति-शोक इन दोनों युगलोंके बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औपशमिक भाव है।

विशेष—इन चारोंके अबन्धक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती होंगे, वहाँ चारित्र-मोहनीयकी अपेक्षा औपशमिक भाव कहा है।

---

१ "क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अप्रमत्तान्तानि।" –स० सि०, पृ० १२।
२ "औपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि उपशान्तकषायान्तानि।" –पृ० १२।

ओदइ० । अबंध० उवसमिगो भावो । एवं दोगदि-दोआणु० दोसरीर-दोअंगोवंग-आहारदुग-थिरादि-तिण्णियुगलं ।

२९२. अणाहारे–कम्मइगभंगो । णवरि साद० ओघं । साधारणेण वि ओघं । मिच्छत्त-संजुत्ताओ सोलस-पगदीओ ओघाओ । सव्वत्थ याव अणाहारग त्ति बंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो भावो । अबंधगा त्ति को भावो ? ओदइगो वा उवसमिगो वा खइगो वा खयोवसमिगो वा पारिणामिओ वा भावो ।

एव भावं समत्तं ।

इस प्रकार मनुष्य-देव गति, दो आनुपूर्वी, औदारिक-वैक्रियिक शरीर, २ अंगोपांग, आहारकद्विक, स्थिरादि तीन युगलोंके बन्धकोंमें कौन भाव है ? औदयिक भाव है । अबन्धकोंके कौन भाव है ? औपशमिक भाव है ।

२९२. अनाहारकमें— कार्मण-काययोगके समान भंग है। विशेष यह है कि यहाँ साता वेदनीयका ओघवत् भंग जानना चाहिए। इसी प्रकार सामान्यसे भी ओघवत् जानना चाहिए। मिथ्यात्व संयुक्त[1] १६ प्रकृतियोंका ओघवत् भंग है। अनाहारकपर्यन्त सर्वत्र बन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक है। अबन्धकोंके कौन भाव है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक वा पारिणामिक है।

विशेषार्थ—अनाहारकोंमें मिथ्यात्व गुणस्थानकी अपेक्षा औदयिकभाव है। सासादनकी अपेक्षा पारिणामिक है। चतुर्थ गुणस्थानकी अपेक्षा औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपमिक है। समुद्घातगत सयोगी तथा अयोगी जिनकी अपेक्षा क्षायिक भाव है।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

---

१ "मिच्छत्तहुडमढा सपत्तेयक्खथावरादावं । सुहुमतिय वियलिंदी णिरयदुणिरयायुग मिच्छे ॥" –गो० क०, गा० ९५ । २ "अणाहाराण कम्मइयभंगो । णवरि विसेसो अजोगिकेवलि त्ति को भावो ? खइओ भावो । –जी० भावा०, सूत्र० ९२, ९३ । अनाहारकेषु विग्रहगत्यापन्नेषु त्रीणि गुणस्थानानि, मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिश्च । समुद्घातगत सयोगकेवल्ययोगकेवली च ॥" –स० सि०, सू० ८, अ० १, पृ० १२ ।

[अप्पाबहुगपरूवणा]

२६३. अप्पाबहुगं दुविधं, जीव-अप्पाबहुगं चेव, अद्धा-अप्पाबहुगं चेव। तत्थ जीव-अप्पाबहुगं दुविधं, सत्थाणं परत्थाणं च। सत्थाण-जीवअप्पाबहुगे दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा पंचणाणावरणं अबंधगा जीवा, [बंधगा] अणंतगुणा। सव्वत्थोवा चदुदंसणावरणाणं अबंधगा जीवा। णिद्दापचलाणं अबंधगा

[अल्पबहुत्व]

२६३. अल्पबहुत्वके दो भेद हैं— एक जीव अल्पबहुत्व, दूसरा काल अल्पबहुत्व। जीव अल्पबहुत्व भी स्वस्थान जीव अल्पबहुत्व और परस्थान जीव अल्पबहुत्वके भेदसे दो प्रकार है।

विशेष—अल्पता, बहुलताका वर्णन करनेवाला अनुगम अल्पबहुत्वानुगम है। ओघ-वर्णनमें अभेद दृष्टिको ग्रहण करनेवाले द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन लिया जाता है। आदेश वर्णनमें भेदयुक्त दृष्टिको ग्रहण करनेवाले पर्यायार्थिक नयका आश्रय लिया गया है।[1]

यह अल्पबहुत्व नाम, स्थापना, द्रव्य तथा भावके भेदसे चार प्रकारका है। द्रव्य अल्पबहुत्व आगम, नोआगमके भेदसे दो प्रकार है। जो अल्पबहुत्वविषयक प्राभृतको जाननेवाला है, परन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित है, उसे आगमद्रव्य अल्पबहुत्व कहते हैं। नोआगम द्रव्य अल्पबहुत्व ज्ञायक शरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारका है। इसमें तद्व्यतिरिक्त अल्पबहुत्व सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे त्रय युक्त है। इनमें जीव द्रव्यविषयक अल्पबहुत्व सचित्त है—"जीवदव्वप्पाबहुगं सचित्तं"। शेष द्रव्य विषयक अल्पबहुत्व अचित्त है। दोनोंका अल्पबहुत्व मिश्र है।

प्रश्न—"एदेसु अप्पाबहुएसु केण पयदं"—इन अल्पबहुत्वोंमें-से प्रकृतमें किससे प्रयोजन है?

उत्तर—'सचित्तदव्वप्पाबहुएण पयदं'—यहाँ सचित्त द्रव्य अल्पबहुत्वसे प्रयोजन है।

इस अल्पबहुत्व प्ररूपणाका सबके अन्तमें निरूपण किया गया है, क्योंकि यह पूर्वोक्त सभी अनुपयोग द्वारोंसे सम्बद्ध है।[2]

स्वस्थान जीव अल्पबहुत्वमें ओघ तथा आदेशसे दो प्रकार निर्देश किया जाता है।

ओघसे—५ ज्ञानावरणके अबन्धक जीव सबसे कम हैं। [बन्धक] जीव उनसे अनन्तगुणे हैं।

चार दर्शनावरणके अबन्धक जीव सबसे कम हैं। निद्रा, प्रचलाके अबन्धक जीव

---

१. "अप्पं च बहुगं च अप्पाबहुआणि। तेसिमणुगमो अप्पाबहुआणुगमो। तेण अप्पाबहुआणुगमेण णिद्देसो दुविहो होदि। ओघो आदेसो त्ति। संगहिदवयणकलावो दव्वट्ठियणिबंधणो ओघो णाम। असंगहिद-वयणकलाओ पुव्विलत्थावयवणिबंधो पज्जवट्ठियणिबंधो आदेसो णाम।" –ध० टी०, अप्पाबहु० पृ० २४३। अल्पबहुत्वमन्योन्यापेक्षया विशेषप्रतिपत्तिः –स० सि०, पृ० १०। २ एदेसिं पच्छा अप्पाबहुगाणुगमो परूविदो, सव्वाणिओगद्दारेसु पडिबद्धत्तादो –खु० बं०, सामित्ताणुगम टीका, पृ० २७।

जीवा विसेसाहिया । थीणगिद्धि०३ अबंधगा जीवा विसेसाहिया । बंधगा जीवा अणंतगुणा । णिद्दापचलाबंधगा जीवा विसेसाहिया । चदुदंस० बंधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा सादासादाणं दोण्णं पगदीणं अबंधगा जीवा । सादबंधगा जीवा अणंतगुणा । असादबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया ।

२९४. सव्वत्थोवा लोभसंजलण-अबंधगा जीवा । माय-संजलण-अबंधगा जीवा विसेसाहिया । माण-संजलणअबंधगा जीवा विसेसाहिया । कोधसंजलण-अबंधगा जीवा विसेसाहिया । पच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा विसेसाहिया । अपच्चक्खाणावर०४ अबंधगा जीवा विसेसाहिया । अणंताणुबंधि०४ अबंधगा जीवा विसेसाहिया । मिच्छत्त-अबंधगा जीवा विसेसाहिया, बंधगा जीवा अणंतगुणा । अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसाहिया । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसाहिया । पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसाहिया । कोधसंजलण-बंधगा जीवा विसे० । माणसंजलण-बंधगा जीवा विसे० । मायसंजलण-बंधगा जीवा विसे० । लोभसंजलण-बंधगा जीवा विसे० ।

२९५. सव्वत्थोवा णवणोकसायाणं अबंधगा जीवा । पुरिसवेदस्स बंधगा जीवा

इनसे विशेष अधिक हैं। स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। इनके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। चार दर्शनावरणके बन्धक जीव इनसे विशेषाधिक हैं।

साता-असाता दोनों प्रकृतियोंके अबन्धक जीव सबसे कम अर्थात् स्तोक हैं। साताके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। असाताके बन्धक जीव संख्यातगुणित हैं। दोनोंके बन्धक जीव इनसे विशेषाधिक हैं।

विशेषार्थ—साता-असाताके अबन्धक अयोगकेवली हैं। उनकी संख्या ५९८ है। 'गोम्मटसार' जीव काण्डमें लिखा है—प्रमत्त गुणस्थानवाले ५९३९८२०६ हैं, अप्रमत्त गुणस्थानवाले २९६९९१०३ हैं, उपशम श्रेणीवाले चार गुणस्थानवर्ती ११९६, क्षपक श्रेणीवाले चारों गुणस्थानवर्ती २३९२ हैं, सयोगीजिन ८९८५०२ हैं। इनको जोड़नेपर ८९९९९३९९ संख्या होती है। तीन घाटि नव कोटि प्रमाण समस्त सकल संयमियोंकी संख्यामेंसे उक्त प्रमाण घटानेपर ५९८ अयोगीजिन कहे गये हैं। (गो० जी०,सं० टीका पृ० १०८५)

२९४. सबसे स्तोक लोभ संज्वलनके अबन्धक जीव हैं। माया संज्वलनके अबन्धक जीव इनसे विशेषाधिक हैं। मान संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। क्रोध संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मिथ्यात्वके बन्धक जीव इनसे अनन्तगुणे हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। क्रोध संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मान संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। माया संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। लोभ संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

२९५. नव नोकषायोंके अबन्धक जीव सबसे स्तोक अर्थात् अल्प हैं। पुरुषवेदके

अणंतगुणा। इत्थिवेदस्स बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अरदिसोगाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। णवुंसगवेदस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया। भयदुगुं० बंधगा जीवा विसे०।

२९६. सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्ज-गुणा। देवायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। तिरिक्खायुबंधगा जीवा अणंतगुणा। चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा।

२९७. सव्वत्थोवा देवगदि-बंधगा जीवा। णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। चदुण्णं गदीणं अबंधगा जीवा अणंतगुणा। मणुसगदि-बंधगा जीवा अणंतगुणा। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा पंचण्णं जादीणं अबंधगा जीवा। पंचिंदिय०-बंधगा जीवा अणंतगुणा। चदुरिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। बीइंदिय बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। पंचण्हं जादीणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा आहारसरीरस्स बंधगा जीवा। वेउव्वियसरीरस्स बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा अणंतगुणा। ओरालिय-सरीरस्स बंधगा जीवा अणंतगुणा। तेजाकम्मइग-सरीरस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया। यथा जादिणामाणं तथा संठाणणामाणं। सव्वत्थोवा आहार० अंगोवंग० बंधगा जीवा। वेउव्विय-अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। ओरालिय-अंगो० बंधगा जीवा अणंत-

---

बन्धक जीव इनसे अनन्तगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव इनसे सख्यातगुणे हैं। हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नपुंसक वेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

२९६. सर्वस्तोक मनुष्यायुके बन्धक जीव हैं। नरकायुके बन्धक इनसे असख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। चारों आयुओंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव सख्यातगुणे हैं।

२९७. देवगतिके बन्धक जीव सर्वस्तोक अर्थात् सबसे कम हैं। नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। चारों गतियोंके अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। चारों गतियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। पाँच जातियोंके अबन्धक जीव सबसे अल्प हैं। पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। चतुरिन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। त्रीन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। द्वीन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। एकेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यात-गुणे हैं। पाँचों जातियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। आहारक शरीरके बन्धक सबसे स्तोक हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक असंख्यातगुणे हैं। पाँचों शरीरोंके अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। तैजस-कार्मण शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। जाति नामकर्मके अल्पबहुत्वके समान संस्थान नामकर्मका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। आहारक अंगोपांगके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक

गुणा। तिण्णि अंगोवंगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा वज्जरिसभसंघडणं बंधगा जीवा। वज्जणारायाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। णारायाण बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अद्धणारायाण बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। खीलिय० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। असंपत्तसेवट्ट० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। छस्संघडण-बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा वण्ण०४ णिमिण-अबंधगा जीवा, बंधगा जीवा, अणंतगुणा। यथागदि तथाआणुपुव्वि। सव्वत्थोवा अगुरु० उपघा० अबंधगा जीवा। परघादुस्सा० बंधगा जीवा अणंतगुणा। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अगुरु० उपघा० बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा आदावुज्जो० बंधगा जीवा, अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा पसत्थविहाय० सुस्सर० बंधगा जीवा। अप्पसत्थविहाय० दुस्सर० बंधगा. जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा तसथावर-अबंधगा जीवा। तस० बंधगा जीवा अणंतगुणा। थावरबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया। एवं सेसाणं जुगलाणं गोदंतियाणं। सव्वत्थोवा तित्थयर-बंधगा जीवा। अबंधगा जीवा अणंतगुणा। सव्वत्थोवा पंचंतराइगाणं अबंधगा जीवा। बंधगा जीवा अणंतगुणा।

जीव असंख्यातगुणे हैं। औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। तीनों अंगोपांगोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है; अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वज्रवृषभसंहननके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। वज्रनाराचसंहननके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नाराचसंहननके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। अर्धनाराचसंहननके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। कीलित संहननके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। असंप्राप्तासृपाटिका संहननके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। छह संहननके बन्धक जीव विशेषाधिक है; अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वर्णचतुष्क तथा निर्माणके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है। इनके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। गतिके समान आनुपूर्वीका अल्पबहुत्व जानना चाहिए। अगुरुलघु, उपघातके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। परघात, उच्छ्वासके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं; अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अगुरुलघु, उपघातके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। आतप, उद्योतके बन्धक जीव सर्वस्तोक है; अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। प्रशस्त विहायोगति, सुस्वरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वरके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं; अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। त्रस-स्थावरके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है। त्रसके बन्धक जीव अनन्तगुणे है। स्थावरके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। दोनोंके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं।

इस प्रकार गोत्र कर्म है अन्तमें जिनके-ऐसे शेष युगलोंका क्रम जानना चाहिए।

विशेष—बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, आदेय-सदृश नामकर्मको शेष युगल प्रकृतियोंका अल्पबहुत्व त्रस स्थावरके समान जानना चाहिए। गोत्र कर्मका भी ऐसा ही है।

तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक है; अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। ५ अन्तरायोंके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं; बन्धक जीव अनन्तगुणे है।

२९८. आदेसेण—गदियाणुवादेण णिरयगदि-णेरइएसु-सव्वत्थोवा थीणगिद्धि० ३ अबंधगा जीवा, बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। छदंस० बंधगा जीवा विसेसाहिया।

२९९. सव्वत्थोवा सादबंधगा जीवा, असादबंधगा जीव संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीव विसेसाहिया।

३००. सव्वत्थोवा अणंताणुबं०४ अबंधगा जीवा। मिच्छत्त-अबंधगा जीवा विसेसाहिया। बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसाहिया। बारसकसायाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा पुरिसवेदस्स बंधगा जीवा। इत्थिवेदस्स बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। हस्सरदिबंधगा जीवा विसेसाहिया। णवुंसकवेदस्स बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अरदिसोगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। भयदु० बंधगा जीवा विसे०।

३०१. सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा। तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। दोण्णं आयुगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा मणुसगदिबंधगा जीवा। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया। अबंधगा णत्थि। एवं दो आणु० दो विहाय० थिरादिछ-युगलं दोगोदं च। समचदु० बंधगा जीवा सव्वत्थोवा। सेससंठाणं बंधगा जीवा

---

२९८ आदेशसे—गतिके अनुवादसे नरक गतिके नारकियोंमे स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है; बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। छह दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

विशेष—५ ज्ञानावरण, ५ अन्तरायके सर्व नारकी बन्धक है; अबन्धक नहीं है। इस कारण उनका अल्पबहुत्व यहाँ नहीं कहा है। उनका एक साथ निरन्तर बन्ध होता है।

२९९. साताके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। असाताके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

३०० अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक है। बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। १२ कषायोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है। पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। स्त्रीवेदके बन्धक संख्यातगुणे है। हास्य, रतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नपुसकवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। अरति, शोकके बन्धक जीव विशेषाधिक है। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

३०१ मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। दोनों आयुओंके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक जीव संख्यातगुणे है।

मनुष्यगतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं; अबन्धक नहीं है। इसी प्रकार २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि छह युगल तथा दो गोत्रोंमे जानना चाहिए।

समचतुरस्रसंस्थानके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। शेष संस्थानोके बन्धक जीव संख्यात-

संखेज्जगुणा । एवं संघड० । सव्वत्थोवा उज्जोवं बंधगा जीवा । अबंधगा जीवा संखेज्ज-गुणा । सव्वत्थोवा तित्थयरं बंधगा जीवा । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।

३०२. एवं सत्तसु पुढवीसु । णवरि मज्झिमासु सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । दोण्णं आयुगस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया । अबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा सत्तमाए पुढवीए मणुसगदि-मणुसाणुपुव्वि-उच्चागोदाणं बंधगा जीवा । तिरिक्खगदि-तिरिक्खाणुपुव्वि-णीचागोदाणं बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अबंधगा जीवा णत्थि । सव्वत्थोवा तिरिक्खायुबंधगा जीवा, अबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा ।

३०३. तिरिक्खेसु–सव्वत्थोवा थीणगिद्धि०३ अबंधगा जीवा । बंधगा जीवा अणंतगुणा । छदंसणा० बंधगा जीवा विसेसाहिया । सव्वत्थोवा सादबंधगा जीवा । असादबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अबंधगा णत्थि । सव्वत्थोवा अपच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा । अणंताणुबं०४ अबंधगा असंखेज्जगुणा । मिच्छत्त-अबंधगा जीवा विसे० । बंधगा जीवा अणंतगुणा। अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणावरण०४ (?) बंधगा जीवा विसेसा० । अट्ठकसायाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। सव्वत्थोवा पुरिसवेदस्स बंधगा जीवा। इत्थिवेदस्स बंधगा जीवा

गुणे है। इस प्रकार संहननमें भी जानना चाहिए।

उद्योतके बन्धक जीव सर्व स्तोक है; अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तीर्थंकर प्रकृति-के बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं; अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

३०२. इसी प्रकार सात पृथिवियोंमें जानना चाहिए। विशेष यह है कि मध्यम पृथिवियों-में मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। दोनों आयुओंके बन्धक जीव विशेषाधिक है; अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

सातवीं पृथ्वीमें—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी तथा उच्च गोत्रके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी तथा नीच गोत्रके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। दोनोंके (मनुष्यगति, तिर्यंचगति आदि) बन्धक जीव विशेष अधिक है; अबन्धक नहीं है। तिर्यं-चायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं; अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

३०३. तिर्यंचोंमें—स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं; बन्धक जीव अनन्त गुणे है। ६ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

सातावेदनीयके बन्धक जीव सर्व स्तोक है; असाताके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेष अधिक है; अबन्धक नहीं है। अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेष अधिक हैं। इसके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेष अधिक है। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। ८ कषाय, ८ प्रत्याख्यानावरण तथा संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

विशेष—यहाँ प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धकके स्थानमें अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक पाठ सम्यक् प्रतीत होता है।

संखेज्जगुणा। हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अरदिसोगाणं बंधगा जीवा संखेज्ज-गुणा। णवुंसकवेदस्स बंधगा जीवा विसेसाहिया। भयदुगुंछाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया। आयु० अंगोवं० संघ० आदा० उज्जो० विहाय० संठाणं च मूलोघं। सव्वत्थोवा पंचिंदिय-बंधगा जीवा। सेस-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा देव-गदिबंधगा जीवा। णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। मणुसगदिबंधगा जीवा अणंत-गुणा। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा वेउव्विय-बंधगा जीवा। ओरालियबंधगा जीवा अणंतगुणा। तेजाकम्मइग-बंधगा जीवा विसेसा०। संठाणं णिरयभंगो। सव्वत्थोवा परघादुस्सा० बंधगा जीवा। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अगु० उप० बंधगा जीवा विसेसा०। सेसाणं युगलाणं सादासादभंगो। एवं पंचिंदियतिरिक्खाणं। णवरि यं हि अणंतगुणं तं हि असं-खेज्जगुणं कादव्वं।

३०४ पंचिंदिय-तिरिक्ख-जोणिणीसु–दंसणावरण-मोहणीय-गोदे एसेव भंगो। सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा। णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। देवायु-बंधगा

पुरुषवेदके वन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। स्त्रीवेदके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। हास्य, रतिके वन्धक जीव सख्यातगुणे है। अरति, शोकके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नपुंसकवेदके वन्धक जीव विशेष अधिक है। भय, जुगुप्साके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

आयु, अंगोपांग. संहनन, आतप, उद्योत, विहायोगति, संस्थानके वन्धकोंमे मूलके ओघवत् जानना चाहिए।

पंचेन्द्रिय जातिके वन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। शेष जातियोंके वन्धक जीव सख्यात-गुणे हैं। देवगतिके वन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। नरक गतिके वन्धक जीव संख्यातगुणे है। मनुष्यगतिके वन्धक जीव अनन्तगुणे है। तिर्यंचगतिके वन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। चारों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। वैक्रियिक शरीरके वन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। औदा-रिक शरीरके वन्धक जीव अनन्तगुणे है। तैजस, कार्मण के बन्धक जीव विशेषाधिक है।

संस्थानोंके वन्धकोंमे नरकगतिके समान भग हैं। अर्थात् समचतुरस्र संस्थानके वन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। शेषके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। परघात, उछ्वासके वन्धक जीव सर्व स्तोक है। अवन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अगुरुलघु, उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष युगलोंके वन्धकोंमे साता-असाताका भंग जानना चाहिए। पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि जहाँ 'अनन्तगुणा' है वहाँ 'असंख्यातगुणा' लगाना चाहिए।

विशेषार्थ—पचेन्द्रिय-तिर्यंच-पर्याप्तकोंका पृथक् वर्णन नहीं किया गया है, अतः प्रतीत होता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान उनका वर्णन होगा।

३०४ पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-योनिमतियोंमे – दर्शनावरण, मोहनीय और गोत्रके वन्धकोंमें यही भंग जानना चाहिए।

मनुष्यायुके वन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। नरकायुके वन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके वन्धक जीव असंख्यातगुणे है। तिर्यंचायुके वन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। चारों

जीवा असंखे गुणा। तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जीवा विसेसा०। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा देवगदि-बंधगा जीवा। मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा चदुरिंदिय-बंधगा (१) जीवा। तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। बीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। पंचिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा (१)। सव्वत्थोवा ओरालिय-सरीरबंधगा जीवा। वेउव्विय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तेजाकम्मइग० बंधगा जीवा विसेसा०। संठाणं संघडणं पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो। सव्वत्थोवा ओरालिय-अंगोवंग-बंधगा जीवा। दोण्णं अंगो० अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। वेउव्विय-अंगो० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं अंगो० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा परघादुस्सा० अबंधगा जीवा। बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अगु० उप० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा पसत्थविहायगदि-बंधगा जीवा सुस्सर-बंधगा जीवा०। दोण्णं अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अप्पसत्थ-विहायगदि-बंधगा, दुस्सरबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा थावरादि०४ बंधगा जीवा। तसादि०४ बंधगा जीवा संखेज्जगुणा।

आयुके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं; अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

देवगतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। नरक गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। चतुरिन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। त्रीन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। दो इन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। एकेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पंचेन्द्रियके बन्धक(?)जीव संख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सर्व स्तोक होना चाहिए। कारण "सव्व-त्थोवा पंचिंदिया" – पंचेन्द्रिय सर्व स्तोक हैं। अतः पंचेन्द्रियके बन्धक संख्यातगुणे हैं, यह पाठ असम्यक् प्रतीत होता है। पंचेन्द्रियकी अपेक्षा चौइन्द्रियपना विशेष सुलभ है, अतः पंचेन्द्रियके बन्धक सर्व स्तोक होंगे।

औदारिक शरीरके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तैजस, कार्मण के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। संस्थान और संहननके बन्धकोंमे पंचेन्द्रिय तिर्यंचका भंग जानना चाहिए। औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। दोनों अंगोपांगके अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। दोनों अंगोपांगके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। परघात, उच्छ्वासके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अगुरुलघु, उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। प्रशस्त विहायोगति तथा सुस्वरके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। दोनोंके अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अप्रशस्त विहायोगतिके बन्धक और दुस्वरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्थावरादि ४ के बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। त्रसादि ४ के बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

---

१. "पंचण्हमिंदियाणं सव्वीवसमलद्धीए सुट्ठु दुल्लभत्तादो। चउरिंदिया विसेसाहिया, कुदो? पचण्हमिं-दियाणं सामग्गीदो चदुण्हमिंदियाण सामग्गीए अइसुलभत्तादो। –खु० बं०,टीका,पृ० ५२४।

३०५. पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु-सव्वत्थोवा पुरिसवेदबंधगा जीवा। इत्थिवेदबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा०। भयदु० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज-गुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा०। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा मणुसगदिबंधगा जीवा। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा०। अबंधगा णत्थि। सव्व[त्थोवा] पंचिंदिय-बंधगा जीवा०। चदुरिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज०। बीइंदि० बंधगा जीवा संखेज्ज०। एइंदियबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सव्वत्थोवा ओरालिय-अंगो० आदा-उज्जो० बंध० जीवा। अबंधगा जीवा संखेज्ज०। संठाण-संघडण० पर० उस्सा० दो विहा० तस-थावरादि-दसयुगलं दोगोदं च पंचिंदिय-तिरिक्खभंगो। एवं सव्व-अपज्जत्तगाणं तसाणं सव्वएइंदिय-विगलिंदिय-सव्वपंचकायाणं च। णवरि वणप्फदि काय-णिगोदेसु सव्व-त्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। तिरिक्खायुबंधगा जीवा अणंतगुणा। दोण्णं बंधगा जीवा विसे०। अबंधगा जीवा संखेज्ज०।

३०६. मणुसेसु-सव्वत्थोवा पंचणा० अबंधगा जीवा, बंधगा जीवा असंखेज्ज-

---

३०५. पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमे – पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। स्त्री-वेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक संख्यातगुणे हैं।

मनुष्यगतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक संख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक विशेषाधिक हैं; अबन्धक नहीं हैं। पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। त्रीन्द्रिय जातिके बन्धक संख्यातगुणे हैं। दोइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। एकेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यात-गुणे हैं। औदारिक अंगोपांग, आतप, उद्योतके बन्धक जीव सर्व स्तोक है; अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। संस्थान, संहनन, परघात, उच्छ्वास, दो विहायोगति, त्रस-स्थावरादि दस युगल तथा दो गोत्रोंके बन्धकोंमे पंचेन्द्रिय तिर्यंचके समान भंग जानना चाहिए।

इसी प्रकार सर्व लब्ध्यपर्याप्तक त्रसों, सर्व एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सर्व पंचकाय-वालोंमें हैं। विशेष यह है, कि वनस्पति काय-निगोदियोंमे मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेष अधिक है। दोनों-के अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

३०६ मनुष्योंमे – ५ ज्ञानावरणके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। बन्धक जीव असं-

गुणा । एवं अंतराइगाणं चेव । सव्वत्थोवा चदुदंस० अबंधगा जीवा । णिद्दापचला-अबंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि०३ अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । णिद्दापचला-बंधगा जीवा विसेसा० । चदुदंस० बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा सादासाद-अबंधगा जीवा । साद-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । असाद-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा लोभसंजल० अबंधगा जीवा । मायासंज० अबं० जीवा विसेसा० । माणसंज० अबं० जीवा विसेसा० । कोधसंज० अबं० जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणावरण०४ अबं० जीवा संखेज्ज० । अपच्चक्खाणाव०४ अबं० जीवा संखेज्ज० । अणंताणुबंधि०४ अबं० जीवा संखेज्जगु० । मिच्छ० अबं० जीवा विसेसा० । बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणावर०४ बंधगा जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणावर०४ बंधगा जीवा विसेसा० । कोधसंज० बंधगा जीवा विसेसा० । माणसंज० बंधगा जीवा विसेसा० । माया-संज० बंधगा जीवा विसेसा० । लोभसंज० बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा णवण्णं णोकसायाणं अबंधगा जीवा । पुरिस० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । सेसं तिरिक्खोघं । सव्वत्थोवा णिरयायु-बंधगा जीवा । देवायु-बंधगा

ख्यातगुणे है । इसी प्रकार अन्तरायोंमें भी जानना । अर्थात् अबन्धक जीव सर्व स्तोक और बन्धक जीव असंख्यातगुणे है ।

चार दर्शनावरणके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । निद्रा-प्रचलाके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । निद्रा-प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक है । चार दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

साता, असाता वेदनीयके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । साताके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । असाताके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

लोभ-संज्वलनके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है । माया-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । मान-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव संख्यातगुणे है । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव संख्यातगुणे है । अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव संख्यातगुणे है । मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक है । बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । क्रोध-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मान-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

नव नोकषायके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है । पुरुषवेदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । शेष प्रकृतियोंके तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए ।

जीवा संखेज्जगु० । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा चदुण्णं गदीणं अबंधगा जीवा । देवगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । सव्वत्थोवा पंचण्णं जादीणं अबंध० जीवा । पंचिंदि० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । सेसं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा आहारसरीर-बंधगा जीवा । पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेउव्वियसरीरबंधगा जीवा संखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा असंखे० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा छण्णं संठाणाणं अबंधगा जीवा । समचदु० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । सेसं ओघं । सव्वत्थोवा आहार० अंगो० बंधगा जीवा । वेउव्वियअंगो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । तिण्णि अंगोवंगाणं बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा संखेज्जगु० । संघड० आदाउज्जो० दो विहा० दोसर० ओघं । सव्वत्थोव वण्ण०४ णिमिण-अबंधगा जीवा । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । सव्वत्थोवा अगु० उप०

विशेष—स्त्रीवेदके बन्धक सख्यातगुणे हैं । हास्यरतिके बन्धक सख्यातगुणे है । अरति शोकके बन्धक संख्यातगुणे है । नपुंसकवेदके बन्धक विशेषाधिक है । भय-जुगुप्साके बन्धक विशेषाधिक है ।

नरकायुके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । देवायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । मनुष्यायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । चारों आयुओंके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अबन्धक जीव संख्यातगुणे है ।

चारों गतिके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है । देवगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तिर्यंच गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । पाँचों जातिके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । शेष जातियोंके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्व स्तोक है । पाँचो शरीरोंके अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । तैजस, कार्मण के बन्धक जीव विशेषाधिक है । ६ संस्थानोंके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है । समचतुरस्रसंस्थानके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है ।

शेप सस्थानोंमे ओघवत् जानना चाहिए । अर्थात् शेपके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । आहारक अगोपागके बन्धक जीव सर्व स्तोक है । वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । औदारिक अंगोपागके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । तीनों अगोपागके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अबन्धक जीव संख्यातगुणे है । संहनन, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, २ स्वरोंमे ओघवत् जानना चाहिए । वर्ण ४ और निर्माणके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । अगुरुलघु, उपघातके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है । परघात [illegible] बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । अबन्धक जीव सख्यातगुणे हैं । अगुरु-

अबंधगा जीवा। परघादुस्सा० बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। अबंधगा जीवा संखेज्जगु०। अगुरु० उप० बंधगा जीवा विसेसा०। सेसाणं युगलाणं ओघ-भंगो। णवरि यं हि अणंतगुणं तं हि असंखेज्जगुणं कादव्वं। सव्वत्थोवा तित्थयरबंधगा जीवा। अबंधगा-जीवा असंखेज्जगुणा।

३०७. मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु एसेव भंगो। णवरि यं हि असंखेज्जगुणं द्व्वं, तं हि संखेज्जगुणं कादव्वं। यासु सरिसताओ इमाओ पगदीओ गदिसु च जादिसु च णिरयगदि-पंचिंदिय पच्छा कादव्वा। आहारसरीरबंधगा थोवा। पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। ओरालि० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। वेउव्वि० बंधगा जीवा संखेज्ज०। तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा०। तसादि-चदुयुगलाणं च। सव्वत्थोवा अबंधगा जीवा अप्पसत्थाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तसादि०४ बंधगा जीवा संखेज्ज०। विहाय० सरणाम तिरिक्खिणीभंगो।

३०८. देवेसु-णिरयभंगो। एवं याव सदरसहस्सारत्ति। किंचि विसेसो देवोघादो याव ईसाण त्ति, तं पुण इमं। सव्वत्थोवा पुरिसवे० बंधगा जीवा। इत्थिवे०

लघु, उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक है। शेष युगलोंमे ओघके समान भंग जानना चाहिए। इतना विशेष है कि जहाँ 'अनन्तगुणा' कहा है वहाँ 'असंख्यातगुणा' कर लेना चाहिए।

तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक है। अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

३०७ मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यनियोंमे—इसी प्रकार भंग जानना चाहिए। यह विशेष है कि जहाँ असख्यातगुणित द्रव्य कहा है, वहाँ संख्यातगुणित कर लेना चाहिए।

जो गति और जाति नामकी समान प्रकृतियाँ है उनमें नरक गति और पंचेन्द्रिय जातिको पीछे कर लेना चाहिए।

विशेष—चारों गतिके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है, मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है, तिर्यंच गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं, नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है।

पंच जातियोंके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। पंचेन्द्रियको छोड़कर शेषके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। पंचेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे है।

आहारक शरीरके बन्धक स्तोक है। ५ शरीरके अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। तैजस, कार्मण शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

यही क्रम त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकके युगलोंमे भी लगा लेना चाहिए।

स्थावर, सूक्ष्म अपर्याप्तक साधारण इन अप्रशस्त प्रकृतियोंके अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। त्रसादिक चतुष्कके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। विहायोगति, स्वर नामक प्रकृतियोंमे तिर्यंचिनीके समान भंग जानना चाहिए।

३०८. देवोंमे नारकियोंके समान भंग जानना चाहिए। यह बात शतार, सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त जाननी चाहिए। किन्तु देवोघकी अपेक्षा ईशान स्वर्ग पर्यन्त किंचित् विशेषता है, वह यह है।

बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज०। णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा०। भयदु० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा पंचिंदियस्स बंधगा जीवा। एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज०। सव्वत्थोवा ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। संघड० आदा-उज्जो० दोविहाय० दोसर० ओघभंगो। एवं विसेसो णादव्वो आणद याव णवगेवज्जा त्ति। सव्वत्थोवा थीणगिद्धि०३ बंधगा जीवा। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सेसाणं बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा मिच्छत्त-बंधगा जीवा। अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसेसा०। अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। मिच्छत्तस्स अबंधगा जीवा विसेसा०। सेसबंधगा जीवा विसे०। सव्वत्थोवा इत्थि-बंधगा जीवा। णवुंसबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु०। अरदिसो० बंध० जीवा संखेज्ज०। पुरिसवे०

विशेष—सौधर्मद्विक पर्यन्त एकेन्द्रिय, स्थावर, आतपका बन्ध होता है। सहस्रार पर्यन्त तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु तथा उद्योतका बन्ध होता है।

पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। हास्य-रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नपुंसक वेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। एकेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—देवोंका विकलत्रयमें उत्पाद नहीं होता। इससे दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय चौइन्द्रिय जातिके बन्धकोंका उल्लेख नहीं है। देवोंका एकेन्द्रियमें उत्पाद होनेसे एकेन्द्रिय जातिका वर्णन किया गया है।

औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। संहनन, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, २ स्वरका ओघवत् जानना चाहिए।

आनतसे लेकर नव ग्रैवेयक पर्यन्त विशेषता निकाल लेनी चाहिए।

विशेष—आनतादि स्वर्गोंमें तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु तथा उद्योतका बन्ध नहीं होता है। सानत्कुमारादिमें एकेन्द्रिय, स्थावर तथा आतपका बन्ध नहीं होता है।

स्त्यानगृद्धित्रिकके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

मिथ्यात्वके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक विशेषाधिक हैं। स्त्रीवेदके बन्धक सबसे स्तोक हैं। नपुंसक वेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अरति शोकके बन्धक

---

१ "कप्पित्थीसु ण तित्थं सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं।
तिरियाऊ उज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ॥" –गो० क०, गा० ११२।

२ 'णिरयेव होदि देवे आईसाणोत्ति सत्त वाम छिदी।
सोलस चेव अबंधा भवणतिए णत्थि तित्थयरं॥" –गो० क०, गा० ११३।

बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंध० जीवा विसेसा० । मणुसायुबंध० जीवा थोवा । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । णग्गोद० बंध० जीवा थोवा । सादिय० बंध० जीवा संखेज्जगु० । खुज्ज० बंध० जीवा संखेज्ज० । वामण० बंध० जीवा संखेज्जगु० । हुंडसं० बंध० जीवा संखेज्ज० । समचदु० बंध० जीवा संखेज्ज० । संघडणं संठाणभंगो । अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं बंधगा जीवा थोवा । तप्पडिपक्खाणं बंधगा जीवा संखेज्ज० । सेसाणं युगलाणं णिरयभंगो । तित्थयरं बंधगा जीवा थोवा । अबंधगा जीवा संखेज्ज० । अणुदिस याव सव्वट्ठ त्ति सव्वत्थोवा हस्सरदि बंध० जीवा । अरदिसोग-बंध० जीवा संखेज्ज० । पुरिसवे० भयदु० बंध० जीवा विसेसा० । सेसाणं युगलाणं णिरयभंगो । आयु० तित्थय० आणदभंगो । णवरि सवट्ठे आयु० बंधगा जीवा थोवा । अबंध० जीवा संखेज्ज० ।

३०९. पंचिंदियेसु–पंचणा० सव्वत्थोवा अबंध० जीवा । बंधगा जीवा असं-

जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदके बन्धक विशेष अधिक है । भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक हैं । अवन्धक जीव असंख्यातगुणे है ।

विशेष—आनतादि स्वर्गोंमें एक मनुष्यायुका ही बन्ध होता है ।

न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थानके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । स्वाति संस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । कुब्जकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वामनके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । हुण्डकसंस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । समचतुरस्र संस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ।

संहननोंमे संस्थानके समान भंग है । अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय तथा नीचगोत्रके बन्धक जीव सबसे स्तोक है ।

इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ अर्थात् सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । शेष युगलोंके विषयमें नरक गतिके समान भंग है । तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव सबसे स्तोक है । अवन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ।

अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धिमे – हास्य-रतिके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । अरति-शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । पुरुषवेद तथा भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष युगलोंमें नरक गतिके समान भंग हैं ।

आयु तथा तीर्थंकरके बन्धकोंमें आनतके समान भंग हैं । विशेष, सर्वार्थसिद्धिमें आयु-के बन्धक सर्व स्तोक हैं । अवन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ।

विशेषार्थ—सर्वार्थसिद्धिके देवोंकी संख्या संख्यात होनेसे यहाँ 'असंख्यात'का उल्लेख नहीं किया गया है । जीवट्ठाणमें उनका प्रमाण मनुष्यनीके प्रमाणसे तिगुना कहा है, 'मणुसिणिरासीदो तिउणमेत्ता हवंति' (ताम्रपत्र प्रति पृ० २८६) ।

३०९. पंचेन्द्रियोंमें – ५ ज्ञानावरणके अवन्धक जीव सबसे स्तोक है । बन्धक जीव

१. "सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ।" – जीव० ताम्रपत्र प्रति पृ० २८६ ।

खेज्ज०। चदुदंस० अबंध० जीवा थोवा। णिद्दापचला-अबंध० जीवा विसेसा०। थीणगिद्धि०३ अबंध० जीवा असंखेज्ज०। बंध० जीवा असंखेज्ज०। णिद्दा-पचलाणं बंध० जीवा विसेसा०। चदुण्णं दंसणावरणाणं बंध० जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा लोभ-संजल० अबंधगा जीवा। माया-संज० अबंध० जीवा विसेसा०। माणसंज० अबंध० जीवा विसेसा०। कोधसंज० अबं० जीवा विसेसा०। पच्चक्खाणावरणी०४ अबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा (?)। [अपच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा असंखेज्ज०।] अणंताणुबंध०४ अबंध० जीवा असंखेज्ज०। मिच्छत्त-अबंध० जीवा विसेसा०[1]। बंधगा जीवा असंखेज्ज०। एत्तो पडिलोमं विसेसाहियं। सादा-साद-पंचजादि-संठाण-संघड० वण्ण०४ अगुरु०४ आदाउज्जो० दोविहाय० तसादि-दसयुगल० तित्थय० दोगोद० पंचंतराइगाणं मणुसोघं। मणुसायुबंधगा जीवा थोवा। णिरयायु-बंधगा जीवा असं-

असंख्यातगुणे हैं। ४ दर्शनावरणके अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। निद्रा-प्रचलाके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। निद्रा. प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। ४ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

लोभ-संज्वलनके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। माया-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मान-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। क्रोध-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेष अधिक हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक सकल संयमी हैं। उनकी संख्या तीन घाटि नव कोटि प्रमाण है, अतः 'असंखेज्जगुणा' के स्थानमें 'संखेज्जगुणा' पाठ सम्यक् प्रतीत होता है।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक देशसंयमी तेरह करोड़ प्रमाण कहे गये हैं। उनसे अधिक तिर्यंच पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। (गो० जी०, गा० ६२४)

अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

इससे विपरीत क्रम विशेष अधिकका शेष बन्धकोंमें लगाना चाहिए अर्थात् अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीवोंमें विशेषाधिकका क्रम जानना चाहिए तथा क्रोध, मान, माया तथा लोभ संज्वलनमें विशेषाधिककी योजना प्रत्येकमें करनी चाहिए।

साता, असाता, पंचजाति, ६ संस्थान, ६ संहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रसादि दस युगल, तीर्थंकर, दो गोत्र, ५ अन्तरायोंके बन्धकोंमें मनुष्योंके ओघवत् जानना चाहिए।

1. सासादनसम्यग्दृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टयः संयतासंयताश्च पल्योपमासंख्येयभागप्रमिताः। –स० सि०, पृ० १३।

मिच्छा सावय-सासण-मिस्सा-विरदा दुवारणंता य।
पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं संखसंखगुणं॥ –गो० जी०, गा० ६२४।

खेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । चदुण्णं आयुगाणं बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सव्वत्थोवा चदुण्णं गदीणं अबंधगा जीवा । देवगदि बंध० जीवा असंखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदिबंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । सव्वत्थोवा आहारस० बंध० जीवा । पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेउव्वि० बंध० जीवा असंखेज्जगुणा । ओरालि० बंध० जीवा असंखेज्जगुणा । तेजा-कम्मइ-बंधगा जीवा विसेसाहिया । आहार०अंगो० बंधगा जीवा थोवा । वेउव्वि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं अंगोवंगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । अ'धगा जीवा संखेज्जगुणा । गदिभंगो आणुपुव्वीए ।

३१०. पंचिंदिय पज्जत्तगेसु–एसेव भंगो । णवरि आयु० पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो । चदुगदिअबंधगा जीवा थोवा । देवगदिबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । मणुसगदिबंधगा संखेज्जगुणा । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा (?) णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसा० । पंचजादीणं अबंधगा जीवा थोवा । चदुरिंदियबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । तीइंदि० बंध० जीवा संखेज्ज० ।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक हैं । नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । चारों आयुओंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव संख्यातगुणे है ।

४ गतिके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । मनुष्यगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । पाँचों शरीरोंके अबन्धक जीव संख्यातगुणे है । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तैजस, कार्मण के बन्धक जीव विशेषाधिक है । आहारक अंगोपांगके बन्धक जीव सर्व स्तोक है । वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीर अंगोपांगके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तीनों अंगोपांगके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । आनुपूर्वीमें गतिके समान भंग जानना चाहिए ।

३१०. पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें—ऐसे ही (पंचेन्द्रिय समान) भंग जानना चाहिए । विशेष यह है कि आयुके बन्धक जीवोंमे पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकके समान भग करना चाहिए । चारों गतिके अबन्धक जीव स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । मनुष्यगति-के बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । चारों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । पाँचो जातिके अबन्धक जीव स्तोक हैं । चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । त्रीन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । दो इन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

बीइंदि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । एइंदियबंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचिंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा (?) आहारस० बंध० जीवा थोवा । पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । ओरालि० बंध० जीवा असंखेज्ज० । वेउव्वि० बंधगा जीवा संखेज्ज० । तेजाक० बंध० जीवा विसेसाहिया । आहारस० अंगो० बंधगा जीवा थोवा । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णि अंगो० अबंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्वि० अंगो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । तिण्णं अंगोवंगाणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । [तस] थावरादि०४ अबंधगा जीवा थोवा । [थावरादि] बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । तसादि४ बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । थिरादि६ युगल-दोगोदाणं अबंधगा थोवा । थिरादिछक्क-उच्चगोदाणं च बंधगा असंखेज्जगुणा । तप्पडिपक्खाणं बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णवरि दोविहा० दोसर० पचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो । एवं विसेसो तसेसु पंचिंदियोघं । णवरि पज्जत्तगेसु तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णामस्स सव्व-त्थोवा चदुगदि-अबंधगा जीवा । देवगदिबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । मणुसगदि-बंध० जीवा संखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचण्णं जादीणं अबंधगा जीवा थोवा । चदुरिंदियबंधगा असंखेज्जगुणा। तीइंदियबंधगा जीवा संखेज्ज० । बीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचिंदिय-

---

एकेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं (?) ।

आहारक शरीरके बन्धक जीव स्तोक हैं । पाँचों शरीरोंके अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तैजस, कार्मणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

आहारक शरीरांगोपांगके बन्धक जीव स्तोक हैं । औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तीनों अंगोपांगके अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तीनों अंगोपांगके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । [त्रस] स्थाव-रादि चतुष्कके अबन्धक जीव स्तोक हैं । [स्थावरादिके] बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । त्रसादिचतुष्कके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्थिरादि छह युगल, २ गोत्रोंके अबन्धक जीव स्तोक हैं । स्थिरादिषट्क तथा उच्च गोत्रके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनकी प्रति-पक्षी प्रकृतियोंके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं अर्थात् अस्थिरादि षट्क तथा नीच गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । विशेष यह है कि २ विहायोगति, २ स्वरोंके विषयमे पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकके समान भंग जानना चाहिए ।

त्रस जीवोंमे—पंचेन्द्रियके ओघवत् विशेषता जाननी चाहिए । इतना विशेष है कि यहाँ पर्याप्तकोंमें तिर्यंचायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ।

नामकर्मसम्बन्धी चार गतियोंके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पाँचों जातियोंके अबन्धक जीव स्तोक हैं । चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । त्रीन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । दोइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक

बंधगा जीवा संखेज्ज० । एइंदिय-बंध० जीवा संखेज्जगुणा । तस-थावरादि चदुयुगलं [अ]बंधगा जीवा थोवा । तसादि०४ बंधगा जीवा असंखेज्ज० । थावरादि४ बंधगा जीवा संखेज्जगु० । एदेण बीजेण णेदव्वं । पंचमण० तिण्णिवचि० छण्णं कम्माणं पंचिंदियभंगो । णवरि वेदणी० अबंधा णत्थि । मणुसायु- बंधगा जीवा थोवा । णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । देवायु बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । चदुआयु-बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चदुण्णं गदीणं अबंधगा जीवा थोवा । णिरयगदिबंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवगदिबंधगा जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु० । चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसा० । पंचण्णं जादीणं अबंधगा जीवा थोवा । चदुरिंदिय-बंध० जीवा असंखेज्ज० । तीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । बीइंदि० बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचिंदिय० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । एइंदिय० बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचण्णं जादीणं बंधगा जीवा विसेसा० । पंचण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा थोवा । आहारस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । तेजाक०

जीव संख्यातगुणे है । एकेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ।

त्रस-स्थावरादि चार युगलके [अ]बन्धक जीव स्तोक हैं । त्रसादि चारके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । स्थावरादि ४ के बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । इस बीजसे अर्थात् इस ढंगसे अन्य प्रकृतियोंमें जानना चाहिए ।

विशेष—त्रस-स्थावरादि चार युगलके समान शेष बचे स्थिर, शुभ, सुभगादि युगलों- का वर्णन जानना चाहिए ।

५ मनोयोगी, ३ वचनयोगियोंमें ६ कर्मोंके बन्धक जीवोंमें पंचेन्द्रियके समान भंग निकालना चाहिए । विशेष यह है कि वेदनीयके अबन्धक नहीं है ।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक हैं । नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । चारों आयुके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ।

चारों गतिके अबन्धक जीव स्तोक हैं । नरक गतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । मनुष्य गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तिर्यंच- गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । चारों गतिके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं ।

पाँचों जातिके अबन्धक जीव स्तोक हैं । चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यात- गुणे हैं । त्रीन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । दोइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । एकेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पाँचों जातियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

पाँचों शरीरके अबन्धक जीव स्तोक हैं । आहारक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव

बंधगा जीवा विसेसाहिया। संठाणं अंगोवं० संघड० वण्ण०४ आदा-उज्जो० दोवि-हाय० तसथावरादिछयुगल-णिमिण-तित्थयर० पंचिंदियभंगो। गदिभंगो आणुपुव्वि०। अगु० उप० अबं० जीवा थोवा। परघादुस्सा० अबंधगा जीवा असंखेज्ज०। बंधगा जोवा असंखेज्ज०। अगु० उप० बंधगा जोवा विसेसा०। सव्वत्थोवा बादरादि-तिण्णि-युगलाणं अबंधगा जीवा। सुहुमादितिण्णिबंधगा जीवा असखेज्ज०। बादरादि-तिण्णि बंधगा जीवा असंखेज्जगु०। दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा०।

३११. वचिजोगि-असच्चमोसवचि० तसपज्जत्तभंगो। काजोगोसु ओरालियका०-ओघभंगो, किंचि विसेसा० (सो०)। ओरालिय-मिस्से—सव्वत्थोवा छदंसणा० अबंधगा जीवा। थीणगिद्धि३ अबंधगा० संखेज्ज०। अबंधगा (बंधगा) जीवा अणंतगु०। छदंसणा० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा बारसक० अबंधगा जीवा। अणं-ताणु०४ अबंधगा० संखेज्ज०। मिच्छ० अबंधगा जीवा असंखेज्ज०। बंधगा जीवा अणंतगुणा। अणंताणुबंधि०४ बंधगा० विसेसा०। बारसक० बंधगा० जीवा विसेसा०।

संख्यातगुणे है। तैजस, कार्मण के बन्धक जीव विशेषाधिक है।

संस्थान, अंगोपांग, संहनन, वर्ण ४, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस-स्थावर तथा स्थिरादि ६ युगल, निर्माण और तीर्थंकरके बन्धकोंमें पंचेन्द्रियके समान भंग जानना चाहिए।

आनुपूर्वीमें गतिके समान जानना चाहिए।

अगुरुलघु, उपघातके अबन्धक जीव स्तोक हैं। परघात, उच्छ्वासके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है। बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। अगुरुलघु उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

बादरादि तीन युगलोंके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। सूक्ष्मादि तीनके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। बादरादि तीनके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

३११ वचनयोगी, असत्यमृषा वचनयोगी अर्थात् अनुभय वचनयोगीमें त्रस पर्याप्तक-के समान भंग हैं।

काययोगियों तथा औदारिक काययोगियोंमें – ओघके समान भंग है। किन्तु उसमें जो विशेषता है उसे जानना चाहिए।

औदारिक मिश्रमें – ६ दर्शनावरणके अबन्धक जीव सर्व स्तोक है। स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक (बन्धक) जीव अनन्तगुणे हैं। ६ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

विशेष—द्वितीय बार आगत स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धकके स्थानमें बन्धकका पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है।

अप्रत्याख्यानावरणादि बारह कषायके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। बारह कषायके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

तिण्णं गदीणं [अ]बंधगा जीवा थोवा। देवगदिबंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुसगदि-बंधगा जीवा अणंतगुणा। तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तिण्णि गदीणं बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा चदुण्णं सरीराणं अबंधगा जीवा। वेउव्वियसरीरं बंधगा जीवा संखेज्ज०। ओरालि० बंधगा० अणंतगु०। तेजाक० बंधगा० विसेसा०। वेउव्विय अंगो० बंधगा जीवा थोवा। ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा अणंतगु०। दोण्णं बंधगा जीवा विसे०। अबंधगा जीवा संखेज्ज०। गदिभंगो आणुपुव्वि। सेसं ओघं।

३१२. वेउव्वियका० वेउव्वियमि० देवोघं।

३१३. आहार० आहारमि० सव्वट्ठभंगो।

३१४. कम्मइ० ओरालिय-मिस्स-भंगो। णवरि सव्वत्थोवा छदंसणा० अबधगा जीवा। थीणगिद्धि३ अबंधगा जीवा असंखे०। बंधगा जीवा अणंतगुणा। छदंसणा० बंधगा जीवा विसेसा०। सव्वत्थोवा बारसक० अबंधगा जीवा। अणंताणुबंधि०४ अबंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। मिच्छ० अबंधगा जीवा विसेसाहिया। बंधगा जीवा अणंतगु०। अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसेसा०। बारसक० बंध० जीवा

तीन गतिके[अ]बन्धक जीव स्तोक हैं। देवगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। तिर्यंच गतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तीनों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

विशेष—यहाँ नरकगतिका बन्ध नहीं होता है। इस कारण तीन गतियोंका वर्णन किया गया है।

चारों शरीरके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। तैजस कार्मण के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं

वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक जीव स्तोक हैं। औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक जीव संख्यातगुणे है।

आनुपूर्वीमें गतिके समान भंग कहना चाहिए। शेष प्रकृतियोंमें ओघवत् जानना चाहिए।

३१२. वैक्रियिक काययोगी और वैक्रियिक मिश्रयोगीमें देवोंके ओघवत् जानना चाहिए।

३१३. आहारक काययोगी और आहारक मिश्रयोगोमें सर्वार्थसिद्धिके समान भंग हैं।

३१४. कार्मण काययोगियोंमें – औदारिक मिश्र काययोगीके समान भंग कहना चाहिए। विशेष यह है कि ६ दर्शनावरणके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। स्त्यानगृद्धि ३ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। ६ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। १२ कषायके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। १२ कषायके बन्धक जीव विशेषाधिक

विसेसा० । सव्वत्थोवा तिण्णं गदीणं अबंधगा जीवा । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुसगदिबंधगा जीवा अणंतगु० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । एदेण कमेण णेदव्वं ।

३१५. इत्थिवेद०—सव्वत्थोवा णिद्दापचलाणं अबंधगा जीवा । थीणगिद्धि३ अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिद्दापचलाणं बंधगा जीवा विसेसा० । चदुदंसण० बंधगा जीवा विसेसा० । वेदणीयं मणभंगो । सव्वत्थोवा पच्चक्खाणा० चदु० अबंधगा जीवा । अपच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । अणंताणुबं०४ अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । मिच्छत्त-अबंध० जीवा विसेसा० । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । अणंताणु०४ बंध० जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । चदुसंजलण-बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा पुरिसवेद-बंधगा जीवा । इत्थिवेद-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । भय-दुगुं० बंधगा जीवा विसेसा० । णवणोक० बंधगा जीवा विसेसा० । आयुचदुक्क-पंचिंदि०-तिरिक्ख-पज्जत्तभंगो । सव्वत्थोवा चदुण्णं गदीणं

हैं । तीनों गतिके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । इस क्रमसे अन्यत्र जानना चाहिए ।

विशेष—इस योगमें नरकगतिका बन्ध नहीं होता है ।

३१५. स्त्रीवेदमें – निद्रा, प्रचलाके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । चारों दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

विशेष—यहाँ दर्शनावरण ४ के अबन्धक जीव नहीं पाये जाते । वे उपशान्तकषाय गुणस्थानमें पाये जाते हैं ।

वेदनीयके बन्धक जीवोंमे मनोयोगीके समान भंग हैं ।

प्रत्याख्यानावरण ४के अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । अनन्तानुबन्धी ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । ४ संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । नपुंसक वेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नव नोकषायके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । ४ आयुके बन्धकोंमे पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तकका भंग जानना चाहिए ।

अबंधगा जीवा । देवगदिबंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसगदिबंधगा संखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा पंचजादि-अबंधगा जीवा । चदुरिंदिय-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तीइंदि० बंध० जीवा संखेज्ज० । बीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । एइंदि० बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचजादीणं बंधगा जीवा विसेसाहिया । पंचसरीर० छसंठाणं तिण्णि-अंगो० छस्संघ० दोविहा० दोसरं मणजोगिभंगो । सव्वत्थोवा अगु० उप० अबंधगा जीवा । परघादुस्सा० अबंध० जीवा असंखेज्ज० । बंधगा जीवा संखेज्ज० । अगुरु० उप० बंधगा जीवा विसेसा० । तसथावरादि पंचयुगल-तित्थयर-दोगोदाणं मणजोगिभंगो । णवरि जस-अजस० दोगोदाणं साधारणेण अबंधगा णत्थि । सव्वत्थोवा बादरादि-तिण्णि-युगल-अबंधगा जीवा । सुहुमादितिण्णि युगल (?) बंधगा जीवा असंखेज्ज० । बादरादि-तिण्णि युगल (?) बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । एवं पुरिसवे० । णवुंसगवे० ओघभंगो । णवरि विसेसो वि इत्थिवेदेण साधिज्जदि । अवगद-

---

चारों गतिके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। नरक गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तिर्यंच गतिके बन्धक जीव संख्यातेगुणे हैं। चारों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

पंच जातियोंके अबन्धक जीव सर्वस्तोक है। चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। त्रीइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। दो इन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। एकेन्द्रिय जातिके बन्धक जाव संख्यातगुणे हैं। पाँचों जातियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

विशेष—यहाँ पंचेन्द्रिय जातिके बन्धकोंका प्रमाण वर्णन करनेसे छूट गया प्रतीत होता है।

५ शरीर, ६ संस्थान, ३ अंगोपांग, ६ संहनन, २ विहायोगति, २ स्वरके बन्धक जीवोंमें मनोयोगियोंके समान भंग जानना चाहिए।

अगुरुलघु, उपघातके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। परघात, उच्छ्वासके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अगुरुलघु, उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

त्रस, स्थावर, स्थिरादि ५ युगल, तीर्थंकर, २ गोत्रके विषयमें मनोयोगियोंमें समान भंग हैं। विशेष यह है कि यशःकीर्ति, अयश कीर्ति तथा दोनों गोत्रोंके सामान्यसे अबन्धक नहीं हैं। बादरादि तीन युगलके अबन्धक जीव सर्व स्तोक हैं। सूक्ष्मादि तीन युगल (?) के बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। बादरादि तीन युगल (?) के बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

विशेष—यहाँ सूक्ष्मादि तीन तथा बादरादि तीनके बन्धकोंके साथमे युगल शब्द अधिक प्रतीत होता है। कारण सूक्ष्मादि तीन युगलके ही अन्तर्गत बादरादि तीन प्रकृतियाँ हैं, एवं बादरादि तीन युगलमे सूक्ष्मादि तीन प्रकृतियाँ हैं।

पुरुषवेदमें—स्त्रीवेदके समान भंग है।

नपुंसकवेदमें—ओघवत् भंग है। विशेष, स्त्रीवेदसे जो विशेषता हो, उसे निकाल लेना चाहिए।

वेदेसु-सव्वत्थोवा पंचणा० बंधगा० । अबंधगा जीवा अणंतगुणा । एवं चदुदंसणा०, साद० जस० उच्चगो० पंचंत० । सव्वत्थोवा कोध-संजल० बंधगा । माण-संजल० बंधगा जीवा विसेसा० । माया-संज० बंधगा जीवा विसेसा० । लोभसंज० बंध० जीवा विसेसा० । तस्सेव अबंधगा जीवा अणंतगुणा । मायासंज० अबंधगा जीवा विसे० । माण-संज० अबं० जीवा विसे० । कोध-संज० अबंध० जीवा विसेसा० ।

३१६. कोधे-णवुंसकभंगो । णवरि णव णोकसायं ओघं । माणे-सव्वत्थोवा कोध-संज० अबं० जीवा । सेसं ओघं । णवरि कोध बंधगा जीवा विसे० । माण-माय-लोभ-संजलणबंधगा जीवा विसेसा० । मायाए-सव्वत्थोवा माणसंज० अबं० जीवा । सेसं माणकसाइ-भंगो । णवरि मायलोभसंज० बंधगा जीवा विसे० । लोभे-मोह० ओघं । सेसं कोधभंगो । अकसाइ-सव्वत्थोवा साद-बंध० । अबंधगा जीवा अणंतगु० । एवं केवलणा० केवलदंसणा० ।

३१७. मदि० सुद०-सव्वत्थोवा मिच्छत्त-अबंधगा जीवा । बंधगा जीवा

अपगतवेदियोंमे-५ ज्ञानावरणके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । इसी प्रकार ४ दर्शनावरण, साता वेदनीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और ५ अन्तरायोंके बन्धकों,अबन्धकोंमें भी जानना चाहिए ।

क्रोध-संज्वलनके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । मान संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ संज्वलनके अबन्धक जीव अनन्तगुणे है । माया-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

३१६. क्रोधमें-नपुंसकवेदके समान जानना चाहिए । विशेष यह है कि ९ नोकषायोंके बन्धकोंमे ओघवत् जानना चाहिए ।

मानमें-क्रोध-संज्वलनके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । शेष प्रकृतियोंमें ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, क्रोधके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मान, माया, लोभ संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

मायामें-मान-संज्वलनके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । शेष प्रकृतियोंमें मान-कषायियोंके समान भंग जानना । विशेष यह है कि माया, लोभ संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

लोभमें-मोहनीयके प्रकृतियोंमे ओघके समान भंग है । शेष प्रकृतियोंमे क्रोधके समान भंग हैं ।

अकषाय जीवोंमें-साता वेदनीयके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । इसी प्रकार केवलज्ञानी, केवलदर्शनवाले जीवोंमे जानना चाहिए ।

३१७. मत्यज्ञान, श्रुताज्ञानमें-मिथ्यात्वके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं ।

विशेषार्थ-मत्यज्ञान तथा श्रुताज्ञानमे मिथ्यात्व तथा सासादन गुणस्थान पाये जाते

अणंतगुणा । सोलसक० बंधगा जीवा विसेसा० । सेसं तिरिक्खोघं । णवरि सम्मत्त-संयुत्तं णत्थि । विभंगे-सव्वत्थोवा मिच्छत्त-अबं० जीवा । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । सोलसक० बंधगा जीवा विसेसा० । दोवेदणी० णवणोक० छस्संठाण छस्संघ० दो-विहा० तसथावरादि छयुगलाणं दोगोद० देवोघ-भंगो । सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । णिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंध० जीवा असंखेज्ज० । चदुण्णं आयुबंधगा जीवा विसे० । अबंधगा जीवा संखेज्ज० । णिरयगदि-बंध० जीवा थोवा । देवगदि-बंध० जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदि बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । चदुण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसेसा० । एवं आणुपु० । चदुरिंदिय-बंधगा जीवा थोवा । तीइंदियबंधगा जीवा संखेज्ज० । बीइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचिंदि०'बंध० जीवा असंखेज्ज० । एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पंचजादीणं बंधगा जीवा विसेसा० । वेउव्वियसरीरबंधगा जीवा थोवा । ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० ।

हैं । मिथ्यात्वके अवन्धक सासादन गुणस्थानकी अपेक्षा कहे गये हैं । मिथ्यात्वके वन्धक अनन्तगुणे कहे गये हैं, क्योंकि मिथ्यात्वी जीवोंकी संख्या अनन्त है । परिमाणानुगममें कहा है-"मिच्छत्तस्स बंधगा अणंता" ।

सोलह कषायके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बारेमें तिर्यंचोंके ओघ-समान जानना चाहिए । विशेष यह है कि यहाँ सम्यक्त्वके साथ बँधनेवाली प्रकृतियोंका अभाव है ।

विशेष—तीर्थंकर तथा आहारकद्विकका सम्यक्त्वके साथ ही बन्ध होता है । अतः यहाँ इनका बन्ध न होगा ।

विभंगज्ञानियोंमें-मिथ्यात्वके अवन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । वन्धक जीव असंख्यात-गुणे हैं । सोलह कषायके वन्धक जीव विशेषाधिक हैं । २ वेदनीय, ९ नोकषाय, ६ संस्थान, ६ संहनन, २ विहायोगति, त्रस-स्थावर स्थिरादि ६ युगल तथा दो गोत्रोंमें देवोंके ओघवत् भंग हैं ।

मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । चारों आयुके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ।

नरकगतिके बन्धक जीव स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । मनुष्य-गतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । चारों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

इसी प्रकार आनुपूर्वियोंमें जानना चाहिए ।

चौइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव स्तोक हैं । त्रीइन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । द्वीन्द्रिय जातिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पंचेन्द्रिय जातिके बन्धक जीव असंख्यात-गुणे हैं । एकेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । ५ जातियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव स्तोक हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यात-

तेजाक० बंध० जीवा विसे० । सव्वत्थोवा वेउव्वि० अंगो० बंधगा जीवा । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं अंगो० बंधगा जी० विसेसा० । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । परघादुस्सा० अबंध० जीवा थोवा । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । अगु० उप० बंधगा जीवा विसेसा० । आदावुज्जोव-देवोघं । सव्वत्थोवा सुहुमादितिण्णि बंधगा जीवा । तप्पडिपक्खाणं बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । आभि० सुद० ओधि०-सव्वत्थोवा पंचणा० अबंधगा जीवा । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । एवं अंतराइगं । सव्वत्थोवा चदुदंस० अबं० जीवा । णिद्दापचला-अबं० जी० विसेसा० । बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । चदुदंस० बंध० जीवा विसेसा० । दोवेदणी० देवोघं । सव्वत्थोवा लोभसंज० अबं० जीवा । मायासंज० अबं० जीवा विसेसा० । माणसंज० अबं० जीवा विसेसा० । कोधसंज० अबं० जीवा विसेसाहिया । पच्चक्खाणावर०४ अबंध० जीवा संखेज्ज० । अपच्चक्खाणावर०४ अबंध० जीवा असंखेज्जगु० । बंध० जीवा असंखेज्ज० । पच्चक्खाणा०४ बंध० जीवा विसेसा० । कोधसंज० बंध० जीवा विसेसा० । माणसंज० बंध० जीवा विसे० । मायासंज० बंध०

गुणे हैं । तैजस, कार्मण के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । औदारिक अंगोपांगके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । दोनों अंगोपांगके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव असंख्यात-गुणे हैं ।

विशेषार्थ—आहारकद्विकका बन्ध अप्रमत्त गुणस्थानमें होनेसे यहाँ उनका वर्णन नहीं किया गया है ।

परघात, उच्छ्वासके अबन्धक जीव स्तोक हैं। बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। अगुरुलघु, उपघातके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । आतप, उद्योतके विषयमें देवोघवत् जानना चाहिए ।

सूक्ष्मादि ३ के बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । इनके प्रतिपक्षी बादरादि ३ के बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधिज्ञानमें ५ ज्ञानावरणके अबन्धक जीव स्तोक हैं । बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । ऐसा ही अन्तराय वर्णन जानना चाहिए अर्थात् अबन्धक जीव सर्व-स्तोक हैं और बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

४ दर्शनावरणके अबन्धक जीव सबसे कम हैं । निद्रा, प्रचलाके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । इसके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । ४ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

दो वेदनीयके बन्धक, अबन्धक जीवोंमें देवोघवत् जानना ।

लोभ-संज्वलनके अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । माया-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेष अधिक हैं । मान-संज्वलनके अबन्धक जीव इनसे कुछ अधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेष अधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं तथा बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । माया-संज्वलनके बन्धक जीव

जीवा विसे० । लोभसंज० बंध० जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा सत्तणोक० अबंधगा जीवा । हस्सरदिबंधगा जीवा असंखेज्जगु० । अरदिसोग-बंधगा जीवा विसेसा० । भयदुगुंच्छाबंधगा जीवा विसेसा० । ※लोभसंज० बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा सत्तणोक०※ पुरिस० बंधगा जीवा विसेसा० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । देवाउगं बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं बंधगा जीवा विसे० । अबं० जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं गदीणं अबंध० जीवा थोवा । देवगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा असखेज्ज० । दोण्णं बंध० जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा पंचिंदि० समचदुर० वज्जरिसभ-संघ० वण्ण०४ अगुरु०४ पसत्थवि० तस०४ सुभग-सुस्सर-आदे०-णिमिण-उच्चागोदाणं अबंधगा । बंध० जीवा असंखेज्ज० । पंचसरी० अबंधगा जीवा थोवा । आहारसरीर-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । वेउव्विय० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा तिण्णि-अंगो० अबंधगा जीवा । आहार० अंगो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय०

विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

सात नोकषायके अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। हास्य-रतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । अरति शोकके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

विशेषार्थ—नपुंसकवेदके बन्धक मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती है । स्त्रीवेदके बन्धक सासादन पर्यन्त हैं । अतः इस सम्यक्ज्ञानके वर्णनमें उक्त वेदद्वयको छोड़कर सात नोकषायका कथन किया गया है ।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव असख्यातगुणे है ।

विशेषार्थ—नरकायुकी बन्धव्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थानमें होती है । तिर्यंचायुकी सासादनमें बन्ध व्युच्छित्ति कही है, इससे यहाँ इन दो आयुओंका कथन नहीं किया गया है ।

दोनों गतिके अबन्धक जीव स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । मनुष्य गतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और उच्च गोत्रके अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

५ शरीरके अबन्धक जीव स्तोक हैं । आहारक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तैजस, कार्मण के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

तीनों अंगोपांगके अबन्धक जीव सबसे कम हैं । आहारक अंगोपांगके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । औदारिक अंगोपांगके

※ एतच्चिह्नान्तर्गत- पाठोऽधिक प्रतिभाति ।

अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० अंगो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । थिरादि-तिण्णि-युगलं पंचिंदिय-भंगो । तित्थयरं बंधगा जीवा थोवा । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । एवं ओधिदंस० । मणपज्जवणा० ओधिभंगो । णवरि असंखेज्जगुणं कादव्वं । संखेज्जगुणं कादव्वं ।

३१८ एवं संजद० वेदणीयमणुसिभंगो ।

३१९. सामाइ० छेदो०-सव्वत्थोवा मायासंज० अबं० जीवा । माणसंज० अबं० जीवा विसेसा० । कोधसंज० अबं० जीवा विसेसा० । बंधगा जीवा असंखेज्ज० (?) माणसंज० बंधगा जीवा विसेसा० । मायासंज० बंधगा जीवा विसे० । लोभ-संज० बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं किंचि विसेसेण मणपज्जवभंगो ।

३२०. परिहार०-आहारकाजोगिभंगो । णवरि आहारदुगं अत्थि । सुहुमसंपरा-

---

बन्धक असंख्यातगुणे हैं । तीनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

स्थिरादि ३ युगलोंका पंचेन्द्रियके समान भंग जानना चाहिए ।

तीर्थंकरके बन्धक जीव स्तोक हैं । अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार अवधि-दर्शनमे जानना चाहिए । मनःपर्ययज्ञानमे अवधिज्ञानके समान भंग है । विशेष यह है कि यहाँ मनःपर्ययज्ञानमें असंख्यातगुणी संख्यावाली प्रकृति नहीं है । उनके स्थानमें संख्यातगुणेका पाठ करना चाहिए । तात्पर्य यह है कि मनःपर्ययज्ञानमे संख्यातगुणेका क्रम लगाना चाहिए ।

"मणपज्जवणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ? संखेज्जा" (दव्वपमाणाणुगम सूत्र १२४, १२५) । इस कारण यहाँ संख्यातगुणे करनेका विशेष कथन किया गया है ।

३१८. इसी प्रकार संयममार्गणामे जानना चाहिए । वेदनीयका मनुष्यनीके समान भंग है । अर्थात् साता-असाताके अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । साताके बन्धक संख्यातगुणे हैं । असाताके बन्धक संख्यातगुणे हैं । दोनोंके बन्धक विशेषाधिक हैं ।

३१९. सामायिक छेदोपस्थापना संयममे – माया-संज्वलनके अबन्धक जीव सबसे कम हैं । मान-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं (?) मान-संज्वलनके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । शेष प्रकृतियोंमे कुछ विशेषताके साथ मनःपर्ययज्ञानके समान भंग हैं ।

विशेषार्थ—खुद्दाबन्धमें इन संयमियोंकी संख्या 'कोडि पुधत्तं' – कोटि पृथक्त्व कही है (सू० १२६ द० प्र०) । इससे क्रोध-संज्वलनके बन्धक 'असंख्यातगुणे'के स्थानमे 'संख्यातगुणे' होना चाहिए ।

३२० परिहार विशुद्धि संयममे – आहारक काययोगीके समान भंग है । विशेष, इस संयममे आहारकद्विकका बन्ध पाया जाता है ।

विशेष – परिहारविशुद्धि संयममे आहारकद्विकके उदयका विरोध है, बन्धका नहीं है ।[1]

---

१ "मणपज्जवपरिहारे णवरि ण संढित्थिहारदुगं ।" –गो० क०,३२७ ।

इयस्स–णत्थि अप्पाबहुगं। यथाक्खादस्स–अबंधगा जीवा थोवा। बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। संजदासंजदा–परिहारभंगो। णवरि थोवा देवायु-तित्थयर-बंधगा जीवा। अबंधगा जीवा असंखेज्ज०। असंजद-तिरिक्खोघं। णवरि अपच्चक्खाणावरणस्स अबंधगा णत्थि। तित्थयरं ओघं।

३२१. चक्खुदंस०–तसपज्जत्तभंगो। अचक्खुदं० ओघं। णवरि एदेसिं दोण्णं विसेसो णादव्वो।

३२२. तिण्णिलेस्सा–असंजदभंगो। तेऊए–सव्वत्थोवा थीणगिद्धि३ अबं०। बंधगा जीवा असंखेज्ज०। छदंसण० बंधगा जीवा विसेसा०। दोवेदणी० णवणोक० छस्संठाण० छसंघ० आदाउज्जो० दोविहा० तसथाव० थिरादिछयुगं दोगोदं देवोघं। सव्वत्थोवा पच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा। अपच्चक्खाणा०४ अबंध० जीवा असंखेज्ज०। अणंता-

---

सूक्ष्मसाम्परायमे अल्पबहुत्व नहीं है।

विशेष—यहाँ ज्ञानावरण ५, अन्तराय ५, दर्शनावरण ४, यशःकीर्ति, उच्च गोत्र तथा सातावेदनीयका बन्ध होता है। इनके बन्धकोंमे हीनाधिकपनेका अभाव है। यहाँ इन १७ प्रकृतियोका बन्ध सबके पाया जायेगा।

यथाख्यातसंयममे—अबन्धक जीव स्तोक हैं। बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—यथाख्यात संयम उपशान्त कषायसे अयोगी जिन पर्यन्त पाया जाता है। अयोगी जिनको छोड़कर शेष जीवोंके साता वेदनीयका ही बन्ध होता है। अयोगी जिन ५९८ कहे गये हैं। ये अबन्धक हैं। इनकी अपेक्षा बन्धक संख्यातगुणे कहे हैं।

संयतासंयतोंमे-परिहारविशुद्धिके समान भंग है। विशेष, देवायु तथा तीर्थंकरके बन्धक स्तोक है। अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। असयममे—तिर्यचोके ओघवत् हैं। विशेष, यहाँ अप्रत्याख्यानावरणके अबन्धक नहीं हैं। तीर्थंकर प्रकृतिका ओघवत् जानना चाहिए।

विशेषार्थ—असंयममें अप्रत्याख्यानावरणका बन्ध होता है। इससे उसके अबन्धकका निषेध किया है।

३२१. चक्षुदर्शनमे—त्रस पर्याप्तकके समान भग हैं।

अचक्षुदर्शनमे—ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है कि इन दोनोंमे जो विशेषता है उसे जान लेना चाहिए।

विशेषार्थ—चक्षुदर्शन त्रसोंके ही होता है। चक्षुदर्शनी असंख्यात कहे हैं। अचक्षुदर्शन स्थावरोंके भी होता है। अचक्षुदर्शनी अनन्त हैं। (खु० बं०,द्र० प्र० सू० १४१, १४४)

३२२. कृष्णादि तीन लेश्यामे—असंयतके समान भंग हैं।

तेजोलेश्यामे—स्त्यानगृद्धिके अबन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। इनके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। ६ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

२ वेदनीय, ९ नोकषाय, ६ संस्थान, ६ संहनन, आतप, उद्योत, २ विहायोगति, त्रस, स्थावर, स्थिरादि ६ युगल तथा २ गोत्रका देवोघके समान समझना चाहिए।

प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव सबसे कम हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के अब-

णुबं०४ अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । मिच्छत्त० अबं० जीवा विसेसा० । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । अणंताणु०४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । चदुसंज० बंधगा जीवा विसेसा० । सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा विसेसा० । तिण्णि बंधगा जीवा विसेसा० । अबं० जीवा असंखेज्ज० । एवं चिंतिज्जदि । एवं पुण परिज्जदि । सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा थोवा । मणुसगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । तिण्णं गदीणं बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुव्वि० । पंचिंदिय-बंधगा जीवा थोवा । एइंदिय-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । दोण्णं बंधगा जीवा विसे० । आहारस० बंधगा जीवा थोवा । वेउव्वियबंधगा जीवा

न्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। इसके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। चारों संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

विशेषार्थ—संज्वलनके अबन्धक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें होते हैं। तेजोलेश्या देश-विरतित्रिकमें पायी जाती है, इस कारण इस लेश्यामें संज्वलनके अबन्धक नहीं कहे हैं।

मनुष्यायुके बन्धक जीव सबसे कम हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तीनों आयुके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

विशेष—अशुभत्रिक लेश्यामें नरकायुका बन्ध होता है। इस लेश्यामें नरकायुका बन्ध नहीं होता है।

यह चिन्तनीय है तथा ऐसा समझमें आता है कि मनुष्यायुके बन्धक जीव सबसे कम हैं। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तीनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

विशेष—आयुके विषयमें दो प्रकारकी प्रतिपादना सम्भवतः दो परम्पराओंको बताती है।

देवगतिके बन्धक जीव स्तोक हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तिर्यंच-गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तीनों गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार आनुपूर्वीमें भी जानना चाहिए।

पंचेन्द्रियके बन्धक जीव स्तोक हैं। एकेन्द्रियके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

विशेषार्थ—शंका—तेजोलेश्यामें जब द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रियके बन्धकोंका कथन नहीं है, तब यहाँ एकेन्द्रियके बन्धकका निषेध क्यों नहीं किया गया ?

असंखे० । ओरालि० बंध० जीवा संखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । तिण्णं अंगो० एवं चेव । णवरि तिण्णं अंगो० बंधगा जीवा विसे० । अबं० जीवा संखेज्ज० । एवं पम्माए । णवरि थोवा इत्थिवेदाणं बंध० जीवा । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंधगा जीवा विसेसा० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा विसे० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा थोवा । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुव्वि० । सव्वत्थोवा आहारस० बंधगा जीवा । ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । वेउव्वि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । एवं अंगो० । सव्वत्थोवा णग्गोदपरि० बंधगा जीवा । सादियसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० । खुज्जसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० । वामणसं० बंधगा जीवा संखेज्ज० ।

समाधान—सौधर्म, ईशान स्वर्ग तकके देव तेजोलेश्याधारी होते हुए विकलत्रयमें जन्म न ले, एकेन्द्रिय पर्याय प्राप्त करते हैं, इस कारण यहाँ एकेन्द्रियके बन्धक कहे गये है। ऐसी आगमकी आज्ञा है।

आहारक शरीरके बन्धक जीव स्तोक है। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। तैजस, कार्मणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

तीनों अंगोपांगमें ऐसा ही है, किन्तु तीनों अंगोपांगके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

पद्मलेश्यामें इसी प्रकार जानना चाहिए। यहाँ इतना विशेष है, स्त्रीवेदके बन्धक जीव स्तोक हैं। नपुंसकवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। हास्य-रतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। अरति-शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तीनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

मनुष्यगतिके बन्धक जीव स्तोक हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तीनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार आनुपूर्वीमें भी समझना चाहिए।

आहारक शरीरके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तैजस, कार्मणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार अंगोपांगमें भी समझना चाहिए।

न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानके बन्धक जीव सबसे कम हैं। स्वातिकसंस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। कुब्जकसंस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। वामनसंस्थानके बन्धक

हुंडसंठाण-बंधगा जीवा संखेज्ज० । समचदुर० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । छण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । वज्जरिसभ-संघ० बंधगा जीवा थोवा । वज्जणाराच० बंधगा जीवा संखेज्ज० । उवरि संखेज्जगुणं कादव्वं । छस्संघड० बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । उज्जोव-तित्थय० बंधगा जीवा थोवा । अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादे०-णीचागो० बंधगा जीवा थोवा । तप्पडिपक्खं बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । थिरादि तिण्णि-युगलं देवोघं । सुक्काए-पंचणा० पंचिदि० वण्ण०४ अगु०४ तस०४ णिमि० पंचंतराइगाणं अबंधगा जीवा थोवा । बंधगा जीवा असंखेज्ज० । चदुदं० अबंधगा जीवा थोवा । णिद्दापचला० अबंधगा जीवा विसेसाहिया । थीणगिद्धि ३ [अ] बंधगा जीवा असंखेज्ज० । बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णिद्दा-पचला-बंधगा जीवा विसे० । चदुदं० बंधगा जीवा विसेसा० । वेदणीयं देवोघं । लोभ-संज० अबंधगा जीवा थोवा । माया-संज० अबं० जीवा विसे० । माण संज० अबं० जीवा विसे० । कोध संज० अबं० जीवा विसे० । पच्चक्खाणा०४ अबं० जीवा संखेज्ज० । अपच्चक्खाणा०४ अबं० जीवा असंखेज्ज० । मिच्छत्त-अबंधगा जीवा असंखेज्ज० । अणंताणु०४ [अ]बंधगा जीवा

जीव सख्यातगुणे हैं। हुण्डकसंस्थानके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। समचतुरस्रसंस्थानके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। छहों संस्थानोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है।

वज्रवृषभसंहननके बन्धक जीव स्तोक हैं। वज्रनाराचसंहननके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। आगेके सहननोंमे संख्यातगुणे अधिकका क्रम लगाना चाहिए। छह संहननोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

उद्योत, तीर्थंकरके बन्धक जीव स्तोक है। अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्रके बन्धक जीव स्तोक है। इनके प्रतिपक्षी प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, उच्चगोत्रके बन्धक जीव असख्यातगुणे है। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

स्थिरादि ३ युगलोंका देवोघके समान जानना चाहिए।

शुक्ल लेश्यामे – ५ ज्ञानावरण, पचेन्द्रिय जाति, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, त्रस ४, निर्माण और ५ अन्तरायके अबन्धक जीव स्तोक हैं। बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

४ दर्शनावरणके अबन्धक जीव स्तोक हैं। निद्रा, प्रचलाके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। स्त्यानगृद्धित्रिकके [अ]बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। निद्रा-प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। ४ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

वेदनीयका देवोघके समान जानना चाहिए।

लोभ-सज्वलनके अबन्धक जीव स्तोक है। माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है। मान-सज्वलनके अबन्धक जीव विशेष अधिक हैं। क्रोध संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव संख्यातगुणे है। अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे है। मिथ्यात्वके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

विसेसा० । अवंधगा (वंधगा) जीवा संखेज्जगुणा । मिच्छत्त-अवंधगा (?) वंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ वंधगा जीवा विसे० । पच्चक्खाणावरण० वंधगा जीवा विसे० । कोधसंज० वंधगा जीवा विसे० । माणसंज० वंधगा जीवा विसे० । माया-संज० वंधगा जीवा विसेसा० । लोभसंज० वंधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा णव-णोक० अवंधगा जीवा । इत्थिवे० वंधगा जीवा असंखेज्ज० । णवुंसक० वंधगा जीवा संखेज्ज० । हस्सरदि-वंधगा जीवा संखेज्ज० । अरदिसोग-वंधगा जीवा संखेज्जगुणा । पुरिसवे० वंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० वंधगा जीवा विसे० । सव्वत्थोवा मणुसायु-वंधगा जीवा । देवायु-वंधगा जीवा विसेसा० । दोण्णं वंधगा जीवा विसेसा० । अवंधगा जीवा असंखेज्ज० । सव्वत्थोवा दोण्णं गदीणं अवंधगा जीवा । देवगदि-वंधगा जीवा असंखेज्ज० । मणुसगदि-वंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं गदीणं वंधगा जीवा विसेसा० । पंचण्णं सरीराणं अवंधगा जीवा थोवा । आहारस० वंध० जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय-वंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । ओरालि० वंध० जीवा असंखेज्ज० । तेजाक० वंधगा जीवा विसे० । एवं अंगो० । सव्वत्थोवा छस्संठा० अवं० जीवा । णग्गोद-वंधगा जीवा असंखेज्ज० । सादिय-वंधगा जीवा संखेज्जगु० । खुज्जसं० वंधगा जीवा संखेज्ज० ।

अनन्तानुबन्धी ४ के [अ]बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । इनके अवन्धक (वन्धक) जीव संख्यातगुणे हैं । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

नव नोकषायके अवन्धक जीव सबसे कम हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । नपुंसकवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । हास्य-रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । अरतिशोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके बन्धक जीव सबसे कम हैं । देवायुके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अवन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

दोनों गति (देव-मनुष्यगति) के अवन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । देवगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । दोनों गतियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

पाँचों शरीरके अवन्धक जीव स्तोक हैं । आहारक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तैजस, कार्मणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । इसी प्रकार अंगोपांगमें भी जानना ।

६ संस्थानोंके अवन्धक जीव सबसे कम हैं । न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थानके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । स्वातिक संस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । कुब्जकके बन्धक जीव

वामणवं० जीवा संखेज्ज० । हुंडसं० बंध जीवा संखेज्ज० । समचदु० बंधगा जीवा संखेज्ज० । छण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । एवं छस्संघ० । दोविहा० सुभगादि-तिण्णि-युगल-णीचुच्चागो० अबं० जीवा थोवा । अप्पसत्थवि० दूभग-दुस्सर-अणादे० णीचागो० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तप्पडिपक्खाणं बंधगा जीवा संखेज्ज० । थिरादितिण्णियुग० मणभंगो । सव्वत्थोवा तित्थयरबंधगा जीवा । अबंधगा जीवा संखेज्ज० । भवसिद्धि०—ओघं । अब्भवसिद्धिया—मदिभंगो । णवरि मिच्छत्त-अबंधगा जीवा णत्थि ।

३२३. सम्मादिट्ठीसु—सव्वत्थोवा पंचणा० पंचिंदि० समचदु० वज्जरिसभ० वण्ण०४ अगुरु०४ पसत्थविहा० तस०४ सुभगादितिण्णियु० णिमिण-तित्थय० उच्चागो० पंचंत० बंधगा जीवा । अबंध० अणंतगुणा । सव्वत्थोवा णिद्दापचला-बंधगा जीवा । चदुदंस० बंधगा जीवा विसेसा० । अबं० अणंतगुणा । णिद्दापचला अबंधगा जीवा विसेसा० । साद-बंधगा जीवा थोवा । असाद-बंधगा जी० संखेज्ज० । दोण्णं बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा अणंतगु० । अपच्चक्खाणा०४ बंध० जीवा थोवा ।

संख्यातगुणे हैं । वामनसंस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । हुण्डकसंस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । समचतुरस्रसंस्थानके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । छहों संस्थानोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

इस प्रकार ६ संहननमें जानना चाहिए ।

२ विहायोगति, सुभगादि ३ युगल, नीच तथा उच्चगोत्रके अबन्धक जीव स्तोक हैं । अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, नीच गोत्रके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । इनके प्रतिपक्षी प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय तथा उच्चगोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्थिरादि ३ युगलोंमें मनोयोगियोंके समान भंग हैं ।

तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । अबन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । भव्यसिद्धिकोंमें ओघवत् जानना चाहिए । अभव्यसिद्धिकोंमें—मत्यज्ञानके समान जानना चाहिए । विशेष, मिथ्यात्वके अबन्धक जीव नहीं हैं ।

३२३. सम्यग्दृष्टियोंमें—५ ज्ञानावरण, पंचेन्द्रिय जाति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभसंहनन, वर्ण ४, अगुरुलघु ४, प्रशस्त विहायोगति, त्रस ४, सुभगादि तीन युगल, निर्माण, तीर्थंकर, उच्च गोत्र, ५ अन्तरायके बन्धक जीव स्तोक हैं । अबन्धक अनन्तगुणे हैं ।

निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव सर्व स्तोक हैं । ४ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । इनके अबन्धक अनन्तगुणे हैं । निद्रा, प्रचलाके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

साताके बन्धक जीव स्तोक हैं । असाताके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं ।

विशेषार्थ—साता तथा असाताके अबन्धक अयोगकेवली अल्पसंख्या युक्त हैं । यहाँ अबन्धक जीव अनन्तगुणे कहे गये हैं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि होते हुए वेदनीयका अबन्धकपना अनन्त सिद्धोंमें भी पाया जाता है । 'खुद्दा बन्धमें सम्यक्त्व मार्गणामें अल्पबहुत्वका कथन करते हुए सिद्धोंकी अनन्तराशिका वर्णन किया गया है, "यथा सम्मत्ताणुवादेण सव्वत्थोवा सम्मा-मिच्छाइट्ठी । सम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा, सिद्धा अणंतगुणा, मिच्छाइट्ठी अणंतगुणा" (सू० १८२-१९२) ।

पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसे० । कोध-सं० बं० जी० विसे० । माणसंज० बंध० जी० विसेसा० । मायासंज० बंध० जी० विसेसा० । लोभसंज० बंधगा जीवा विसे० । अबंध० अणंतगुणा । मायासं० अबं० जीवा विसे० । माणसंज० अबं० जीवा विसेसा० । कोधसंज० अबं० जीवा विसे० । पच्चक्खाणा०४ अबं० जीवा विसे० । अपच्चक्खाणा०४ अबं० जीवा विसेसा० । हस्सरदि-बंधगा जीवा थोवा। अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । भयदु० बंध० जीवा विसे० । पुरिस-वे० बंधगा जीवा विसे० । अबंध० अणंतगुणा । भयदु० अबं० जीवा विसे० । अरदिसोग-अबं० जीवा विसे० । हस्सरदि-अबं० जी० विसे० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं बंधगा जीवा विसे० । अबंध० जीवा अणंतगुणा । देवगदि-बं० जीवा थोवा । मणुसगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । दोण्णं बंध० जीवा विसे० । अबं० अणंतगुणा । एवं दो आणुपुव्वि० । आहारसरी० बंधगा जीवा थोवा । वेउव्वि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । अबंधगा जीवा अणंतगुणा । एवं तिण्णि-अंगो० । थिरादि-तिण्णियुगलं

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव स्तोक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । इसके अवन्धक अनन्तगुणे हैं । माया-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

हास्य, रतिके बन्धक जीव स्तोक हैं । अरतिशोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । भय, जुगुप्साके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अरति, शोकके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । हास्य, रतिके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं ।

विशेषार्थ—यहाँ नरकायु तथा तिर्यंचायुका कथन नहीं किया गया है, कारण नरकायु-की बन्धव्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थानमे तथा तिर्यंचायुकी बन्धव्युच्छित्ति सासादन गुण-स्थानमे होती है ।

देवगतिके बन्धक जीव स्तोक हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । दोनों-के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । इनके अबन्धक अनन्तगुणे हैं ।

इसी प्रकार दो आनुपूर्वी (देवमनुष्यानुपूर्वी) मे भी जानना चाहिए ।

आहारक शरीरके बन्धक जीव स्तोक है । वैक्रियिकशरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । औदारिकशरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तैजस, कार्मणके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अवन्धक जीव अनन्तगुणे है । इसी प्रकार ३ अंगोपांगमे भी जानना चाहिए ।

वेदणीय-भंगो। एवं खइग-सम्मा०। णवरि थोवा देवायु-बंधगा जीवा। मणुसायु-बंधगा जीवा विसे०। सव्वत्थोवा अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा। पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसे०। एवं चदुसंजल० बंधगा जीवा विसे०। अबं० अणंतगुणा। सेसं पडिलोमेण भाणिदव्वं। हस्सरदि-बंधगा जीवा थोवा। अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज०। भयदु० बंधगा जीवा विसे०। पुरिसवेद-बंधगा जीवा विसे०। अबं० अणंतगुणा। सेसं पडिलोमेण भाणिदव्वं। वेदगे—सव्वत्थोवा पच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा। अपच्चक्खाणा०४ अबंधगा जीवा असंखेज्ज०। बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसे०। चदुसंज० बंधगा जीवा विसे०। सव्वत्थोवा हस्सरदि-बंधगा जीवा। अरदिसोग-बंधगा जीवा संखेज्ज०। भयदु० पुरिसवे० बंधगा जी० विसे०। मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा। देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। दोण्णं बंधगा जीवा विसे०। अबं० जीवा असंखेज्ज०। देवगदि-बंधगा जीवा थोवा। मणुसगदि-बंधगा

स्थिरादि ३ युगलके बन्धकोंमे वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए।

क्षायिकसम्यक्त्वमे – इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि देवायुके बन्धक स्तोक हैं। मनुष्यायुके बन्धक विशेषाधिक हैं।

अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है। इसी प्रकार ४ संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक अनन्तगुणे हैं।

शेष भंग प्रतिलोमसे जानना चाहिए, अर्थात् प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक है, अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

हास्य, रतिके बन्धक जीव स्तोक हैं। अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक है। पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। शेष भंगमे प्रतिलोमसे जानना चाहिए अर्थात् भय, जुगुप्साके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अरति-शोकके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। हास्य-रतिके अबन्धक जीव भी सख्यातगुणे हैं।

वेदकसम्यक्त्वमे – प्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। ४ संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

विशेष—संज्वलनचतुष्कके अबन्धक जीवोंका यहाँ वर्णन नहीं किया गया। कारण वेदकसम्यक्त्व ४ से ७ वे गुणस्थान तक पाया जाता है, और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभकी बन्धव्युच्छित्ति अनिवृत्तिकरणमे होती है। अतः वेदकसम्यक्त्वकी अपेक्षा संज्वलन ४ के अबन्धक जीवका अभाव होनेसे वर्णन नहीं किया गया।

हास्य-रतिके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। अरति-शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक हैं। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। दोनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अबन्धक जीव असख्यातगुणे हैं।

असंखेज्ज० । दोण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं दो आणुपुव्वि० । आहार० बंधगा जीवा थोवा । वेउव्विय० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । ओरालि० बंधगा असखेज्ज० । तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । एवं तिण्णि अंगोवंग० । वज्जरिसभ-संघ ओधिभंगो । सेसं युगलं देवोघं । उवसमसं०–ओधिभंगो । सासणे–वेदणीय पंचसंठा० उज्जोव-दोविहाय० थिरादि-छयुग० दोगोदं णिरयोघं । सव्वत्थोवा पुरिसवे० बंधगा जीवा । हस्सरदि-बंधगा जीवा विसे० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । अरदिसोग-बंधगा जीवा विसे० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । मणुसायु-बंधगा जीवा थोवा । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । अबं० जीवा असंखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा थोवा । मणुसगदि-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुव्वि० । वेउव्वियस० बंधगा जीवा थोवा । ओरालि० बंधगा जीवा असखेज्ज० ।

देवगतिके बन्धक जीव स्तोक है । मनुष्यगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । दोनों-के बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

इसी प्रकार दोनो आनुपूर्वियोंमें भी जानना चाहिए ।

आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्व स्तोक है । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असं-ख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तैजस-कार्मण-शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है । इसी प्रकार तीनों अंगोपागमे भी जानना चाहिए । वज्रवृषभ-नाराच-संहननमे अवधिज्ञानके समान भंग है । शेष युगलोंमे देवोंके ओघ समान जानना चाहिए ।

उपशमसम्यक्त्वमें अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए । सासादनसम्यक्त्वमें–वेदनीय, ५ संस्थान, उद्योत, २ विहायोगति, स्थिरादि ६ युगल, २ गोत्रके बन्धकोंमे नरकके ओघवत् जानना चाहिए ।

पुरुषवेदके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । हास्य-रतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । अरति-शोकके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक है ।

मनुष्यायुके बन्धक जीव स्तोक है । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तिर्यंचायु-के बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । तीनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक है । इनके अबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

विशेष—नरकायुका मिथ्यात्वगुणस्थान तक बन्ध होनेसे यहाँ उसका अभाव है ।

देवगतिके बन्धक जीव स्तोक है । मनुष्यगतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तिर्यंच-गतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तीनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

इसी प्रकारका क्रम आनुपूर्वीमे भी जानना चाहिए ।

वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव स्तोक है । औदारिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यात-गुणे हैं । तैजस, कार्मण के बन्धक जीव विशेषाधिक है । इसी प्रकार अंगोपागमे भी जानना चाहिए ।

तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । एवं अंगोवंग० । पंचसंघ० अबंधगा जीवा थोवा । वज्जरिसभ० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । उवरि संखेज्जगुणा । पंचण्णं बंधगा जीवा विसे० । सम्मामिच्छे-वेदणी० सत्तणोक० दोगदि-दो-सरीर-दोअंगो० वज्जरिसभ० थिरादितिण्णियुगलं वेद[ग]भंगो । मिच्छादिट्ठि-असण्णि-अब्भवसिद्धिय-भंगो ।

३२४. सण्णी-मणजोगि-भंगो । आहार-ओघभंगो । अणाहार०-पंचणा० पंचंत० वण्ण०४ णिमि० अबंधगा जीवा थोवा । बंधगा जीवा अणंतगुणा । छदंस० अबंधगा जीवा थोवा । थीणगिद्धि३ अबंधगा जीवा विसे० । बंधगा जीवा अणंतगु० । छदंस० बंधगा जीवा विसे० । सेसं ओघं । णवरि थोवा देवगदि-बंधगा । तिण्णं गदीणं अबंधगा जीवा अणंतगुणा । मणुसगदि-बंधगा [जीवा अणंतगुण] तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा० संखेज्ज० । तिण्णं बंधगा जीवा विसे० । एवं आणुपुव्वि० । अंगो० कम्मइगभंगो ।

एवं सत्थाण-जीव-अप्पाबहुगं समत्तं ।

---

५ संहननके अबन्धक जीव स्तोक हैं । वज्रवृषभनाराचसंहननके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । वज्रनाराच, नाराच आदि संहननोंके बन्धक जीवोंमें संख्यातगुणित क्रम जानना चाहिए । पाँचों संहननोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

विशेष—हुण्डक संस्थानकी बन्धव्युच्छित्ति प्रथम गुणस्थानमें होनेसे उसका वर्णन नहीं हुआ ।

सम्यक्त्व-मिथ्यात्वमे, २ वेदनीय, ७ नोकषाय, २ गति, २ शरीर, २ अंगोपांग, वज्रवृषभसंहनन, स्थिरादि ३ युगलमे वेदकसम्यक्त्वके समान भंग जानना चाहिए ।

मिथ्यादृष्टि तथा असंज्ञामे अभव्यसिद्धिकोंका भंग जानना चाहिए ।

३२४ संज्ञामें – मनोयोगियोंका भंग जानना चाहिए । आहारकमें – ओघवत् भंग हैं । अनाहारकोंमे – ५ ज्ञानावरण, ५ अन्तराय, वर्ण ४, निर्माणके अबन्धक जीव स्तोक हैं । इनके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । ६ दर्शनावरणके अबन्धक जीव स्तोक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिकके अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं । बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । ६ दर्शनावरणके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंमे ओघवत् हैं । विशेष यह है कि देवगतिके बन्धक जीव स्तोक हैं । तीनों गतिके अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । मनुष्य गतिके बन्धक [अबन्धगुणे हैं] तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तीनोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

विशेष—अनाहारकोंमे नरकगतिके बन्धकोंका अभाव है, इससे उसकी यहाँ परिगणना नहीं हुई है ।

इसी प्रकार आनुपूर्वीमें भी जानना चाहिए । अंगोपांगमे कार्मण काययोगके समान भंग जानना चाहिए ।

इसी प्रकार स्वस्थान-जीव-अल्प-बहुत्वका वर्णन समाप्त हुआ ।

---

१ "आहाराणुवादेण सव्वत्थोवा अणाहारा अबधा । बधा अणतगुणा ।" –खु० बं०, अप्पा० सू० २०३, २०४ । २ "सण्णियाणुवादेण सव्वत्थोवा सण्णी । णेव सण्णी, णेव असण्णी अणतगुणा । असण्णी अणतगुणा । –सू० २००-२०२ ।

[परत्थाण-जीव-अप्पा-बहुगपरूवणा]

३२५. परत्थाण-जीव-अप्पा-बहुगाणुगमेण दुविहो णिद्देसो। ओघेण, आदेसेण य।

३२६. तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा आहारसरीर-बंधगा जीवा। तित्थयर-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। णिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्ज०। वेउव्वि० बंधगा जीवा विसे०। तिरिक्खायु-बंधगा जीवा अणंतगुणा। उच्चागोद-बंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुस-गइ-बंधगा जीवा संखेज्ज०। पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज०। इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज०। जसगित्तिबंधगा जी० संखेज्ज०। हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। साद-बंधगा जीवा विसे०। असाद-अरदिसो० बंधगा जीवा संखेज्ज०। अजस० बंधगा जीवा विसे०। णवुंस० बंधगा० जीवा विसे०। तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसे०। णीचागो० बंधगा जीवा विसे०।

[परस्थान-जीव-अल्प-बहुत्व]

३२५. अब परस्थान जीव अल्पबहुत्व अनुगमका ओघ और आदेशसे दो प्रकार वर्णन करते हैं।

विशेषार्थ—स्वस्थान-जीव-अल्पबहुत्व प्ररूपणामे बन्धक तथा अबन्धक जीवोंका कथन किया गया है। इस परस्थान जीव अल्पबहुत्व प्ररूपणामे बन्धकोंका ही कथन किया गया है। परस्थान जीव अल्पबहुत्व प्ररूपणामे स्वस्थान प्ररूपणाके समान कथन न करके सामान्य-रूपसे सभी कर्मोंके बन्धकोंका अल्पबहुत्वके आधारपर कथन किया गया है। इसमे सजातीय तथा भिन्नजातीय प्रकृतियोंका यथायोग्य मिला हुआ वर्णन पाया जाता है।

३२६. ओघकी अपेक्षा आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। मनुष्यायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। हास्य-रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। साता-वेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक

१. आहारकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? चदुवण्णं। आहारमिस्सकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ? —संखेज्जा०।सूत्र ९८-१००,खु०,बं०, पृ २८० । आइरियपरंपरागदउवदेसेण पुण सत्तावीसा होंति। —ध० टी०,पृ० २८१।

ओरालि० बंधगा जी० विसे० । मिच्छत्तबंधगा जी० विसे० । थीणगिद्धि ३ अणंताणु०४ बंधगा जीवा विसे० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसे० । पच्चक्खाणा० बंध० जीवा विसे० । णिद्दापचला-बंधगा जीवा विसे० । तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । कोध-संज०बंधगा जीवा विसे० । माणसं० बं० जीवा विसे० । माया-सं० बंधगा जीवा विसे० । लोभसं० बंधगा जीवा विसे० । पंचणा०, चदुदंस०, पंचंत० बंधा तुल्ला विसेसाहिया ।

३२७. आदेसेण णेरइएसु-सव्वत्थोवा मणुसायु बंधगा जीवा । तित्थय० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखे० । उच्चागो० बंधगा जी० संखेज्ज० । मणुसगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-जस-हस्स-रदिबंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । असाद-अरदिसो० अजसगित्ति-बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसाहिया । थीणगिद्धि-तिय-अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसाहिया । सेसाणं पगदीणं तुल्ला विसेसाहिया । एवं पढमाए । पंचसु मज्झिमासु एवं चेव । णवरि उच्चागोदस्स बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा । सत्तमाए पुढवीए–

हैं । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । तैजस, कार्मण शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मान-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । माया-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तरायके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

३२७. आदेशसे—नारकियोंमें–मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । साता-वेदनीय, यशःकीर्ति, हास्य, रतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । नपुंसकवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । असाता-वेदनीय, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंमें बन्धक जीव समान रूपसे विशेष अधिक क्रमवाले हैं । इसी प्रकार प्रथम पृथ्वीमें जानना चाहिए ।

मध्यवर्ती ५ पृथ्वियोंमें अर्थात् दूसरीसे छठी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए ।

सव्वत्थोवा मणुसगदि-उच्चागो० बंधगा जीवा। तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज-गुणा। पुरिसवे० बंधगा जीवा असंखेज्ज०। इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। उवरि सो चेव भंगो। णवरि मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा०। थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधि४ तिरिक्खगदि-णीचागो० बंधगा जीवा सरिसा विसेसा०। सेसाणं बंधगा जीवा विसेसा०।

३२८. तिरिक्खेसु–सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। णिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। वेउव्विय० बंधगा विसेसा०। तिरिक्खायु-बंधगा जीवा अणंतगुणा। उच्चागोदस्स बंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज०। इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्ज०। जस० बंधगा जीवा संखेज्ज०। साद-हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। असाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा संखेज्ज०। अजस० बंधगा जीवा विसेसा०। णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा०। तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा०। णीचागो० बंधगा जीवा विसेसा०।

विशेष, उच्चगोत्रके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक तीसरी पृथ्वी पर्यन्त पाये जाते हैं, नीचे नहीं पाये जाते।

सातवीं पृथ्वीमें–मनुष्यगति, उच्चगोत्रके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

विशेषार्थ—सातवीं पृथ्वीमें मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता है, "चरिमे मिच्छेव तिरियाम्" (गो० क० १०६)। "छट्ठोत्ति य मणुवाऊ।" सातवीं पृथ्वीमें मिथ्यात्वगुणस्थानमें ही तिर्यंचायुका बन्ध होता है। मनुष्यायुका छठी पृथ्वी तक बन्ध कहा है, इससे यहाँ मनुष्यायुका कथन नहीं किया गया है।

पुरुषवेदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे गुणे है। आगे इसी प्रकार संख्यातगुणे संख्यातगुणेका भंग है। विशेष यह है कि मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४, तिर्यंचगति और नीच गोत्रके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

३२८. तिर्यंचोंमें – मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। यशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। साता-वेदनीय, हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अयशःकीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि-तियं अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं पगदीणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसाहिया । एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख० । णवरि असंखेज्जगुणं कादव्वं ।

३२६. पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्त-जोणिणीसु–सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा । णिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । उच्चागोद बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-हस्स-रदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । वेउव्वि० बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सोगबंधगा जीवा विसेसा० । अजस० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जी० विसेसा० । मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धितियं अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं पगदीणं बंधगा सरिसा विसेसा० । पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु-सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा

औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ असंख्यातगुणा क्रम करना चाहिए।

३२६. पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-पर्याप्त, पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-योनिमतियोंमें – मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। यशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। साता-वेदनीय, हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। असाता, अरति शोकके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अयश-कीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। तिर्यंचायुके

असंखेज्जगु० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । सादहस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । अज्जस० बंधगा जीवा विसे० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं पगदीणं बंधगा सरिसा विसेसाहिया ।

३३०. मणुसेसु-सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । [तित्थयर बंधगा जीवा] संखेज्जगुणा । णिरयायु-बंधगा-जीवा संखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्वि० बंधगा जीवा० विसे० । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । उच्चागोद० बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा संखेज्ज० । अजस० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छ० बंधगा जीवा विसे० ।

बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। साता, हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं।

३३०. मनुष्य गतिमें आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। [तीर्थंकरके बन्धक] संख्यातगुणे हैं। नरकायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। देवायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मनुष्यायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। साता वेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। असाता वेदनीय, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं। मिथ्यात्वके

उवरि मूलोघं।

३३१. मणुस-पज्जत्त-मणुसिणीसु—सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा। तित्थय० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। मणुसायुबंधगा जीवा संखेज्जगु०। णिरयायु-बंधगा जीवा संखेज्ज०। देवायु-बंधगा जीवा संखेज्जगु०। तिरिक्खायु-बंध० जीवा संखेज्जगु०। देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु०। उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। पुरिस० बंधगा संखेज्ज०। इत्थि० बंधगा जीवा संखेज्ज०। जस० बंधगा जीवा संखेज्ज०। हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। साद-बंधगा जीवा विसे०। तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। ओरालि० बंधगा जीवा विसे०। णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज०। वेउव्वि० बंधगा जीवा विसे०। असाद-अरदि-सोगबंधगा जीवा विसे०। अजस० बंधगा जीवा विसे०। णवुंस० बंधगा जीवा विसे०। णीचागो० बंधगा जीवा विसे०। मिच्छत्तबंधगा जीवा विसे०। उवरि मूलोघं। मणुस-अपज्जत्त-पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो।

३३२. देवेसु सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा। तित्थय० बंधगा जीवा असंखेज्जगु०। तिरिक्खायु-बंधगा असंखेज्ज०। उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्ज०।

बन्धक जीव विशेष अधिक है। आगेकी प्रकृतियोंमें अर्थात् स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४, अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, निद्रा, प्रचला, तैजस, कार्मण, भय, जुगुप्सा, संज्वलन-क्रोध मान माया लोभ, ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय मूलके ओघवत् जानना चाहिए।

३३१ मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यनियोंमें आहारक शरीरके बन्धक सर्वस्तोक हैं। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नरकायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। यशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। सातावेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। असाता, अरति, शोकके बन्धक विशेष अधिक हैं। अयशःकीर्तिके बन्धक विशेषाधिक हैं। नपुंसकवेदके बन्धक विशेषाधिक हैं। नीच गोत्रके बन्धक विशेषाधिक हैं। मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

आगेकी प्रकृतियोंमें अर्थात् ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ४, अन्तराय ५, स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ आदिमें मूलके ओघवत् जानना चाहिए।

मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकोंमें – पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकके समान भंग है।

३३२ देवोंमें – मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव

मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । इत्थि० बं० जी० संखे० । साद-हस्स-रदि-जसगि० बंधगा सरिसा संखेज्जगु० । असाद-अरदि-सोग-अज्जसगि० बंधगा जीवा सरिसा संखेज्जगु० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छ० बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि३ अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसे० । एवं भवण० याव ईसाणत्ति । णवरि जोदिसियसोधम्मीसाणे उच्चागोदस्स बंधगा जीवा असंखेज्ज० । सणक्कुमार याव सहस्सारत्ति विदियपुढविभंगो । आणद याव उवरिमगेवज्जात्ति सव्वत्थोवा मणुसायुबंधगा जीवा । इत्थिवे० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्तबंधगा जी० विसे० । थीणगिद्धि-तिय० अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसे० । साद-हस्स-रदि-जसगि० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । असाद-अरति-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । उच्चागो० बंधगा जीवा विसे० । पुरिसवे० बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० । अणुदिस-अणुत्तर० सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । साद-हस्स-रदि-जसगि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । असाद-अरदि-सोग-अजस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० ।

संख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धक जीव समान रूपसे संख्यातगुणे हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धक जीव समान रूपसे संख्यातगुणे हैं । नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है । स्त्यानगृद्धि ३, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके अर्थात् अप्रत्याख्यानावरणादिके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

भवनवासियोंसे ईशान स्वर्गपर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए ।

विशेष यह है कि ज्योतिष्कदेव तथा सौधर्म, ईशान स्वर्गवासियोंमें उच्चगोत्रके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

सनत्कुमारसे सहस्रार स्वर्ग तक दूसरे नरकके समान भंग जानना चाहिए ।

आनतसे उपरिम ग्रैवेयक तक मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । नपुंसकवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक विशेषाधिक हैं । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । उच्च गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेष अधिक हैं ।

अनुदिश-अनुत्तरवासी देवोंमें – मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके

एवं सव्वट्ठे। णवरि संखेज्जगुणं कादव्वं।

३३३. सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचकायाणं पंचिंदियतस-अपज्जत्ताणं च पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो। णवरि एइंदियवणप्फदिणिगोदेसु तिरिक्खायु-बंधगा जीवा अणंतगुणा। तेउ-वाउ०-मणुसगदि-मणुसाणुपु० उच्चागो० बंधगा जीवा णत्थि। पंचिंदिय-तसाणं मूलोघं। णवरि तिरिक्खायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। पंचिंदिय-पज्जत्तगेसु-सव्वत्थोवा आहार-बंधगा जीवा। मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगुणा। णिरयायुबंधगा जीवा असंखेज्ज०। देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज०। तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखेज्ज०। देवगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु०। उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्ज०। मणुसग० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। पुरिसवे० बंधगा जीवा

बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेष अधिक हैं।

सर्वार्थसिद्धिमे ऐसा ही जानना चाहिए। विशेष, वहाँ 'संख्यातगुणे' क्रमकी योजना करनी चाहिए।

विशेषार्थ—सर्वार्थसिद्धिके देवोंकी संख्या संख्यात कही गयी है अतः यहाँ बन्धकोंमे संख्यातगुणे क्रमकी योजनाका कथन किया गया है। खुद्दाबन्ध टीकामे लिखा है मनुष्यनियोंसे सर्वार्थसिद्धिवासी देव संख्यातगुणे है। धवलाटीकाकार लिखते है: "गुणकार क्या है? संख्यात समय गुणकार है। कोई आचार्य सात रूप, कोई चार रूप और कितने ही आचार्य सामान्य रूपसे संख्यात गुणकार कहते हैं। इससे यहाँ गुणकारके विषयमे तीन उपदेश हैं। तीनोंके मध्यमें एक ही जात्य (श्रेष्ठ) है परन्तु वह जाना नहीं जाता, कारण इस विषयमें विशिष्ट उपदेशका अभाव है। इस कारण तीनोका ही सग्रह करना चाहिए। (अप्पाबहुगाणुग महादण्डक पृ० ५७७)।[1]

३३३ सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व पंचकायवालोंमे पंचेन्द्रिय तथा त्रसके लब्ध्यपर्याप्तकोंमे – पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, एकेन्द्रिय वनस्पति निगोद जीवोंमे तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं।

तेजकाय वायुकायमे – मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, उच्च गोत्रके बन्धक जीव नहीं हैं।[2]

पंचेन्द्रिय तथा त्रसोंमे – मूलके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष यह है कि तिर्यंचायु-के बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं।

पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमे - आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। मनुष्यायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव

१ "को गुणकारो? संखेज्जसमया। के वि आयरिया सत्तरूवाणि के वि पुण चत्तारि रूवाणि, के वि सामण्णेण संखेज्जाणि रूवाणि गुणगारो त्ति भणंति। तेणेत्थ गुणगारे तिण्णि उवएसा। तिण्ण मज्झे एक्कोच्चिय जच्चोवएसो, सो वि ण णव्वइ, विसिट्ठोवएसाभावादो। तम्हा तिण्हं पि संगहो कायव्वो" –पृ० ५७७।
२ "मणुवदुगं मणुवाऊ उच्चं ण हि तेउवाउम्हि॥ –गो० क० ११४।

संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखे० गु० । हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । साद०-बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । ओरालि० बंधगा जीवा विसे० । णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय० बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा विसे० । अज्ज० बंधगा जीवा विसे० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्तबंधगा जीवा विसे० । सेसं मूलोघं ।

३३४. तस-पज्जत्तगेसु–सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । मणुसायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयायुबंधगा जीवा असं० गु० । देवायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखे० गु० । देवगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखे० गु० । जस० बंधगा जीवा संखे० गु० । हस्सरदिबंधगा जीवा सं० गु० । सादबंधगा जीवा विसे० । णिरयगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु० । वेउव्विय० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु० । ओरालिय० बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोगबंधगा जीवा विसे० । अज्ज० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्त० अबंधगा (बंधगा) जीवा विसे० । सेसं मूलोघं ।

संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । हास्य रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । साता वेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंमें मूलके ओघवत् जानना चाहिए ।

३३४. त्रसपर्याप्तकोंमें – आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । मनुष्यायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तिर्यंचायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । उच्चगोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । सातावेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक है । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है । असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके अबन्धक (?) जीव विशेषाधिक हैं । शेष

३३५. पंचमण० तिण्णिवचि०—सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयायुबंधगा जीवा असं० गु० । देवायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवगदिबंधगा जीवा संखेज्जगु० । वेउव्विय० बंधगा जीवा विसे० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसग० बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा जीवा संखेज्ज० । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु०, अथवा विसेसाहियं । साद-बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अज्ज० बंधगा जीवा विसे० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदिबंधगा जीवा विसे० । णीचागोद० बंधगा जीवा विसे० । ओरालि० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छ० बंधगा जीवा विसे० । उवरि ओघभंगो । वचिजोगि-असच्चमोस०-तसपज्जत्तभंगो । काजोगि-ओरालिय-काजोगि-ओघभंगो । ओरालिय-मिस्से—सव्वत्थोवा देवगदि-वेगुव्वि० बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायु-बंधगा जीवा अणंतगुणा । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा ।

प्रकृतियोंमे मूलोघवत् जानना चाहिए ।

विशेष—यहाँ मिथ्यात्वके अबन्धकके स्थानमें बन्धक पाठ, उपयुक्त प्रतीत होता है ।

३३५. पाँच मन, तीन वचनयोगमे-आहारक शरीरके बन्धक जीव सबसे स्तोक है । मनुष्यायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है ।, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं अथवा विशेषाधिक हैं । साता वेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक है । असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेष अधिक है । औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अवशेष आगेकी प्रकृतियोंमे ओघवत् जानना चाहिए ।

वचनयोगी, असत्यमृषा अर्थात् अनुभयवचनयोगीमे—त्रसपर्याप्तकके समान भंग है ।

काययोगी, औदारिक काययोगीमें ओघभंग है ।

औदारिक मिश्र काययोगीमे – देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । मनुष्यायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । तिर्यंचायुके बन्धक जीव अनन्तगुणे है । उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुष-

इत्थिवे० । 'धगा जीवा संखेज्ज० । जस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । हस्सरदिबंधगा जीवा संखेज्ज० । साद-बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्ज० । अज्ज० बंधगा जीवा विसे० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्त० बंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि३ अणंताणुबंधि०४ ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसा० । वेउव्विय-काजो०, वेउव्वियमि०—देवोघं । णवरि मिस्से आयुगं णत्थि । आहार० आहारमिस्स०—सव्वत्थोवा तित्थयरबंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । साद-हस्स-रदि-जसगित्ति-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । असाद-अरदि-सोग-अजसगित्तिबंधगा जीवा संखेज्जगुणा । सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसाहिया । कम्मइगका० सव्वत्थोवा देवगदि-वेउव्विय० बंधगा जीवा । उच्चागो० बंधगा जीवा अणंतगुणा । मणुसग० बंधगा जीवा संखे० गुणा । पुरिस० बंध० जीवा

वेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । यश कीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । साताके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ तथा औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतिके बन्धक जीवोंमे समान रूपसे विशेष अधिकका क्रम है ।

वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंमे देवोंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, वैक्रियिकमिश्र काययोगमे आयुका बन्ध नहीं है ।

विशेषार्थ—वैक्रियिक मिश्रकाययोगमें नरकायु तथा देवायुका बन्ध निषिद्ध है, कारण देव तथा नारकी मरण कर देव तथा नारकी अवस्थाको नहीं बाँधते हैं । वैक्रियिक मिश्रकाययोगमे "देवे वा वेगुव्वे मिस्से णरतिरियाउगं णत्थि" (गो० क०, ११८) के नियमानुसार मनुष्यायु तथा तिर्यंचायुका भी बन्ध नहीं होता है । इससे यहाँ आयुबन्धका निषेध किया है ।

आहारक, आहारक मिश्रकाययोगियोंमे – तीर्थंकरके बन्धक सर्वस्तोक हैं । देवायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक है ।

विशेषार्थ—आहारक तथा आहारक मिश्रकाययोगियोंमें इतना अन्तर है कि आहारक काययोगीके देवायुका बन्ध होता है, किन्तु आहारक मिश्रकाययोगियोंमे देवायुका बन्ध नहीं होता । गोम्मटसार कर्मकाण्डमे लिखा है, "छट्ठगुणं वाहारे तम्मिस्से णत्थि देवाऊ ।" (गाथा ११८) ।

कार्मण काययोगियोंमें – देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं । उच्च गोत्रके बन्धक जीव अनन्तगुणे हैं । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुष-

संखेज्जगुणा । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्स-रदि-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अज्ज० बंधगा जीवा विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागो० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्तबंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि३ अणंताणुबं०४ बंधगा जीवा विसेसा० । ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० ।

३३६. इत्थिवे० पुरिस०–सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । तिरिक्खायुबंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जी० संखेज्जगु० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखे० गुणा । वेउव्विय-बंधगा जी० विसेसा० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदि० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखे० गुणा । इत्थिवे० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा जीवा संखे० गुणा । हस्सरदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अथवा हस्सरदि० बंधगा जीवा विसेसा० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सोग-बंधगा जीवा संखे० गुणा । अज्ज० बंधगा जीवा

वेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हे। साताबेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। अयशः-कीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है। तिर्यंच गतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेपाधिक है। मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेपाधिक हैं। स्त्यानगृद्धित्रिक तथा अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेपा-धिक हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेपाधिक हैं।

विशेषार्थ— कार्मणकाययोगमे आयुचतुष्कका बन्ध नहीं होता, इससे यहाँ आयु-बन्धका वर्णन नहीं किया गया है। कहा भी है—"कम्मे उरालमिस्सं वा णाउदुगेपि।" (गो० क०,११६)।

३३६ स्त्रीवेद, पुरुषवेदमे – आहारक शरीरके बन्धक जीव सबसे स्तोक हैं। मनुष्यायु-के बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं। नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। तिर्यंचायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेपाधिक है। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुपवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। हास्य, रतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं। अथवा हास्य, रतिके बन्धक जीव विशेपाधिक हैं। साताके बन्धक जीव विशेपाधिक है। असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। अयश कीर्त्तिके बन्धक जीव विशेपा-

विसेसा० । णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसेसा० । णीचागोद-बंधगा जीवा विसेसा० । ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । मिच्छत्तबंधगा जीवा विसेसा० । थीणगिद्धि३ अणंताणुबंधि०४ बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंध० जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । णिद्दापचलाणं बंधगा जी० विसे० । तेजाक० बंधगा जी० विसे० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसा० । णवुंसगवे०—मूलोघं । णवरि भयदुगुंच्छादो उवरि तुल्ला विसेसा० ।

३३७. अवगदवे०—सव्वत्थोवा कोध-संज० बंधगा जीवा । माणसंज० बंधगा जीवा विसेसा० । माया-संज० बंधगा जीवा विसे० । लोभ-संज० बंधगा जीवा विसे० । पंचणा० चदुदंस० जस० उच्चागो० पंचंत० बंधगा जीवा विसेसा० । साद-बंधगा जीवा संखेज्ज० । कसायाणुवादेण—कोधादि०४ याव भयदुगुं० ताव मूलोघं । उवरिं साधेदूण भाणिदव्वं ।

३३८. मदि० सुद०—तिरिक्खोघं । णवरि मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसेसा० ।

धिक हैं । नपुंसकवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । स्त्यानगृद्धि ३, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । तैजस, कार्मण के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । भय, जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं ।

विशेष—यहाँ हास्य, रतिके बन्धक जीवोंको संख्यातगुणा कहा है अथवा कहकर उनके बन्धकोंको विशेषाधिक कहा है । यह कथन भिन्न परम्पराओंको सूचित करता है । पाँच मनोयोगी तथा तीन वचनयोगी जीवोंमें भी इसी प्रकार हास्य-रतिके विषयमें कथन किया गया है ।

नपुंसकवेदमें मूलके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, भय, जुगुप्साके आगेकी प्रकृतियोंमें अर्थात् संज्वलन क्रोधादि ४ ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तरायमें समान रूपसे विशेषाधिकता है ।

३३७ अपगतवेदमें-क्रोध-संज्वलनके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । मान-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । माया-सञ्ज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । लोभ-संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, यशःकीर्ति, उच्च गोत्र तथा ५ अन्तरायोंके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । सातावेदनीयके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं ।

कषायानुवादसे—क्रोधादि ४ से लेकर भय, जुगुप्सापर्यन्त मूलके ओघवत् कथन है । आगेकी प्रकृतियोंका अल्पबहुत्व योग्य रीतिसे निकाल लेना चाहिए ।

३३८. मत्यज्ञान-श्रुताज्ञानमें तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए । विशेष, मिथ्यात्वके

सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा० । विभंगे—सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । णिरयायु-बंधगा जीवा असंखे० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । णिरयगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । देवगदि-बंधगा जीवा संखेज्ज० । वेउव्विय० बंधगा जी० विसेसा० । तिरिक्खायु-बंधगा जी० असंखेज्ज० । उच्चागो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसगदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखे० गुणा । इत्थिवे० बंधगा जी० संखे० गुणा । जस० बंधगा [जीवा] संखेज्जगु० । साद-हस्स-रदि-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-सो० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । अज्ज० बंधगा जीवा विसेसा० णवुंस० बंधगा जीवा विसे० । तिरिक्खगदि-बंधगा जी० विसे० । णीचागोद० बंधगा जीवा विसे० । ओरालि बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्तबंधगा जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसा० ।

३३९ आभि० सुद० ओधि०—सव्वत्थोवा आहारस० बंधगा जीवा । मणुसायु-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्ज० । देवगदिवेउव्वि० बंधगा जीवा असंखेज्ज० । हस्स-रदि-बंधगा जी० असं० गुणा । जस० बंधगा जीवा विसेसा० । साद-बंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोग-अज्जस० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । मणुसगदि-ओरालि० बंधगा जीवा विसेसा० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । पच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । णिद्दापचला-बंधगा

बन्धक जीव विशेषाधिक है । शेषके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक है ।

विभंगावधिमे—मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । नरकायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । देवायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे है । नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । देवगतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । तिर्यचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । उच्चगोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव सख्यातगुणे है । यशःकीर्तिके बन्धक [जीव] सख्यातगुणे है । साता, हास्य, रतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । असाता, अरति, शोकके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । अयशःकीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । नपुसकवेदके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेष अधिक है । औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेष अधिक है । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक है ।

३३९ आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधि-ज्ञानमे—आहारक शरीरके बन्धक जीव सबसे स्तोक है । मनुष्यायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । देवायुके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । हास्य, रतिके बन्धक जीव असख्यातगुणे हैं । यशःकीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । साता वेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । मनुष्यगति, औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

जीवा विसेसा० । तेजाक० बंधगा जीवा विसेसा० । भयदु० बंधगा जीवा विसे० । पुरिसवे० बंधगा जीवा विसे० । कोधसंज० बंधगा जीवा विसेसाहिया । माणसं० बंधगा जीवा विसेसा० । मायासं० बंधगा जीवा विसे० । लोभसं० बंधगा जीवा विसे० । पंचणा० चदुदंस० उच्चागो० पंचंत० बंधगा जीवा विसे० । मणपज्जव०— सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । हस्स-रदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा जीवा विसे० । सादबंधगा जीवा विसे० । असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । णिद्दा-पचला-बंधगा जीवा विसे० । देवगदि-वेउव्विय० तेजाक० बंधगा जीवा विसे० । पुरिसवे० बंधगा जीवा विसे० । कोधसंज० बंधगा जीवा विसे० । माणसं० बंधगा जीवा विसे० । मायासं० बंधगा जीवा विसे० । लोभसं० बंधगा जीवा विसेसा० । पंचणा० चदुदंस० उच्चागो० पंचंत० बंधगा जीवा विसे० ।

३४०. एवं संजद-सामाइ० छेदो० । णवरि याव मायासंजलणं ताव मणपज्जव-भंगो । उवरि सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसाहिया ।

प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक है । तैजस, कार्मण के बन्धक जीव विशेषाधिक है । भय-जुगुप्साके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है । क्रोधसंज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मानसंज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मायासंज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । लोभसंज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धक जीव विशेष अधिक है ।

मनःपर्ययज्ञानमें—आहारकशरीरके बन्धक जीव सबसे स्तोक है ।

विशेषार्थ—यहाँ मनःपर्ययज्ञानमें आहारक शरीरके बन्धकका कथन किया गया है, कारण मनःपर्ययज्ञान तथा आहारकद्विकके बन्धका विरोध नहीं है, इनके उदयका विरोध है । गो० क० की टीकामें लिखा है—अत्र (मनःपर्ययज्ञाने) आहारकद्वयोदय एव विरुध्यते (पृ० ११२, सं० टीका)

देवायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । हास्य, रतिके बन्धक जीव सख्यातगुणे हैं । यशःकीर्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है । साताके बन्धक जीव विशेषाधिक है । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । निद्रा, प्रचलाके बन्धक जीव विशेषाधिक है । देवगति, वैक्रियिक तैजस कार्मण शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । क्रोध संज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मानसंज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मायासंज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । लोभसंज्वलनके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, उच्चगोत्र, ५ अन्तरायके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं ।

३४०. सयम, सामायिक छेदोपस्थाना संयममें इसी प्रकार है । विशेष, मायासंज्वलन-पर्यन्त मन पर्ययके समान भंग है । आगेकी शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीवोंमें सदृश रूपसे विशेषाधिकता है ।

३४१. परिहारे—सव्वत्थोवा देवायुबंधगा जीवा। आहार० बंधगा जीवा संखेज्ज०। साद-हस्स-रदि-जसगि० सरिसा संखेज्जगुणा। असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। सेसाणं सरिसा विसेसा०।

३४२. संजदासंजदा—सव्वत्थोवा देवायु-बंधगा जीवा। साद-हस्स-रदि-जस० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसाहिया।

३४३. असंजदेसु—तिरिक्खोघं। णवरि थीणगिद्धि३ अणंताणुबंधि४ बंधगा जीवा विसेसा०। सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा० विसेसा०।

३४४. चक्खुदंसणी—तस-पज्जत्तभंगो। अचक्खुदंसणी—ओघं। ओधिदंसणी—ओधिणाणिभंगो।

३४५. तिण्णि लेस्सा—असंजदभंगो। तेउलेस्सि०—सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा। मणुसायु-बंधगा जीवा संखेज्ज०। देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु०। तिरिक्खायुबंधगा असंखेज्ज०। देवगदि-वेउव्वियि० बंधगा संखेज्जगुणा। उच्चागो०

---

३४१ परिहारविशुद्धि सयममे—देवायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। आहारकशरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धक जीव सदृश रूपसे संख्यातगुणे हैं। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। शेष प्रकृतिके बन्धक सदृश रूप विशेषाधिक हैं।

विशेषार्थ—परिहार विशुद्धि संयममें आहारकद्विकका बन्ध होता है। यहाँ आहारक शरीरके बन्धका विरोध न होनेसे आहारक शरीरके बन्धकोंका कथन किया गया है। इतना विशेष है कि इस संयममे आहारकके उदयका विरोध है। 'गो० कर्मकाण्ड' टीकामे लिखा है—"परिहारविशुद्धिसंयमे तीर्थंकर आहारकद्विकबन्धोऽस्ति, नाहारकर्धिः"–पृ० ११३।

३४२. संयतासंयतोंमे—देवायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव सदृश रूपसे विशेषाधिक हैं।

३४३. असंयतोंमें—तिर्यंचोंके ओघवत् जानना चाहिए। विशेष, स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव सदृश रूपसे विशेषाधिक हैं।

३४४. चक्षुदर्शनवालोंमे—त्रसपर्याप्तकके समान भंग जानना चाहिए। अचक्षुदर्शन-वालोंमें—ओघवत् जानना चाहिए। अवधिदर्शनवालोंमे—अवधिज्ञानके समान भंग हैं।

३४५. कृष्णादि तीन लेश्यावालोंमें—असंयतोंके समान भंग हैं।

विशेष—कृष्णादि लेश्यात्रय असंयत गुणस्थानपर्यन्त कही गयी है। अतः असंयतोंके समान इनका भंग कहा गया है।

तेजोलेश्यावालोंमें—आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। मनुष्यायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक असंख्यातगुणे हैं। देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। उच्चगोत्रके

बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। मणुसग० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। पुरिसवे० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। इत्थिवे० बंधगा संखेज्जगुणा। साद-हस्स-रदि-जस० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। असाद-अरदि-सोग-अज्ज० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तिरिक्खगदि-बंधगा जीवा विसे०। णीचागो० बंधगा जीवा विसे०। ओरालि० बंधगा जीवा विसे०। मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसे०। थीणगिद्धि३ अणंताणुबंधि४ बंधगा जीवा विसेसाहिया। अपच्चक्खाणावर०४ बंधगा जी० विसे०। पच्चक्खाणावर०४ बं० जीवा विसे०। सेसाणं बंधगा सरिसा विसेसा०। पम्माए—आहार० थोवा। मणुसाणु-बंधगा जीवा संखेज्जगुणा। तिरिक्खायु-बंध० जीवा असंखेज्जगु०। देवायु-बंधगा जीवा विसेसा०। मणुसग० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। इत्थिवे० बं० जीवा संखेज्जगु०। णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। तिरिक्खगदि-बंधगा जी० विसे०। णीचागो० बं० जीवा विसे०। ओरालि० बंधगा जीवा विसे०। साद-हस्स-रदि-जस० बंधगा सरिसा असंखेज्जगुणा। असाद-अरदि-सो०-अजस० बंध० सरिसा संखेज्जगुणा। देवगदि-वेउव्वि० बंधगा जीवा विसे०। उच्चागो० बंध० जी० विसे०। पुरिस० बंधगा जीवा विसे०। मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसे०। उवरि तेउभंगो। सुक्काए—सव्वत्थोवा आहारस० बंधगा जीवा। मणुसायु-बंधगा जीवा

बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक संख्यातगुणे हैं। साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नपुंसकवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नीचगोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। स्त्यानगृद्धि ३, अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समानरूपसे विशेषाधिक हैं।

पद्मलेश्यामें—आहारक शरीरके बन्धक जीव स्तोक हैं। मनुष्यायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। नपुंसक वेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नीचगोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। साता वेदनीय, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धक जीव समान रूपसे असंख्यातगुणे हैं। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धक जीव समान रूपसे संख्यातगुणे हैं। देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। उच्चगोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। आगेकी प्रकृतियोंमें अर्थात् स्त्यानगृद्धित्रिक, अनन्तानुबन्धी ४ आदिमें तेजोलेश्याके समान भंग है।

शुक्ललेश्यामें—आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। मनुष्यायुके बन्धक जीव

संखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा विसे० । देवगदि-वेउव्वि० बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । इत्थिवे० बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । णवुंस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । णीचागो० बंधगा जीवा विसे० । मिच्छत्त-बंधगा जीवा विसे० । थीणगिद्धि३ बं०, अणंताणुबं०४ बंधगा विसे० । हस्स-रदि-बंधगा जीवा संखेज्जगु० । जस० बंधगा जीवा विसे० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । असाद-अरदि-[सोग] अज० बंधगा जीवा संखेज्जगुणा । उच्चागो० बंधगा जीवा विसेसा० । पुरिस० बंध० जीवा विसेसा० । मणुसग० ओरालि० बंधगा जी० विसे० । अपच्चक्खाणा०४ बंध० जीवा विसेसा० । पच्च-क्खाणा०४ बंधगा जीवा विसेसा० । उवरि ओघभंगो । भवसिद्धि-मूलोघं । अब्भव-सिद्धि-मदिभंगो । णवरि मिच्छत्त-सोलस-कसा० एकत्थ भाणिदव्वा ।

३४६. सम्मादिट्ठि-ओधिभंगो । खइग-सम्मा०-सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा । देवायु-बंध० जी० संखेज्ज० । मणुसायु-बंधगा जीवा विसे० । देवगदि-वेउव्वि० बंधगा जीवा विसे० । उवरि ओधिभंगो । वेदगे—सव्वत्थोवा आहार० बं० जीवा । मणुसायुबंधगा जीवा संखेज्जगु० । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । देवगदि-वेउव्वि०

संख्यातगुणे है । देवायुके बन्धक जीव विशेषाधिक है । देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । स्त्रीवेदके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है । नपुंसकवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । नीचगोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है । मिथ्यात्वके बन्धक जीव विशेषाधिक है । स्त्यानगृद्धित्रिकके बन्धक जीव और अनन्तानुबन्धी ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । हास्य, रतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । साताके बन्धक जीव विशेषाधिक है । असाता, अरति, [शोक,] अयश कीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है । उच्चगोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक है । पुरुषवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । मनुष्यगति, औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है । अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है । प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं । आगेकी प्रकृतियोंमे – ओघवत् भंग जानना चाहिए ।

भव्यसिद्धिकोंमे – मूल ओघवत् जानना चाहिए । अभव्यसिद्धिकोमे – मत्यज्ञानवत् भंग जानना चाहिए । विशेष, मिथ्यात्व और सोलह कषायके बन्धकोंका भंग एक साथ लगाना चाहिए ।

विशेष—यहाँ मिथ्यात्वके साथ १६ कषायका सदा बन्ध होता है । इस कारण उनका पृथक् भंग नहीं कहा है ।

३४६. सम्यग्दृष्टियोंमें – अवधिज्ञानके समान भंग जानना चाहिए । क्षायिकसम्यक्त्व-मे – आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं । देवायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्यायुके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेष अधिक हैं । आगे अवधिज्ञानके समान भंग है ।

वेदकसम्यक्त्वमे – आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक है । मनुष्यायुके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं । देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं । देवगति, वैक्रियिक शरीरके

बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । साद-हस्स-रदि०-जस० बंधगा जी० असंखे० गु० । असाद-अरदि-सो० अजस० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । मणुसग० ओरालि० बंधगा जीवा विसे० । अपच्चक्खाणा०४ बंधगा जीवा विसे० । पच्चक्खाणा०४ बंध० जीवा विसे० । सेसाणं बंधगा जीवा सरिसा विसे० । उवसम-सं०-सव्वत्थोवा आहार०[1] बंधगा जीवा । देवगदि-वेउव्विय-बंधगा जी० असंखेज्जगु० । उवरि ओधिभंगो ।

३४७. सासणे-सव्वत्थोवा मणुसायु-बंधगा जीवा । देवायु-बंधगा जीवा असंखेज्जगु० । देवगदि-वेउव्वि० बंधगा जी० असंखे० गुणा । तिरिक्खायु-बंधगा जी० असंखे० गुणा । मणुसगदि-बंधगा जी० संखेज्जगुणा । पुरिसवे० बंधगा जीवा संखे० गुणा । साद-हस्स-रदि-जस० बंध० जीवा विसे० । इत्थिवे० बंधगा जी० संखेज्जगुणा । असाद-अरदि-सो० अज० बं० जीवा विसेसा० । अथवा असाद-अरदि-सो० अज० बंधगा जीवा संखेज्जगु० । इत्थिवे० बंधगा जीवा विसेसा० । तिरिक्खगदि० बंधगा जी० विसे० । णीचागो० बंधगा जी० विसे० । ओरालि० बंधगा जी० विसे० ।

बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। मनुष्यगति, औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अप्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। प्रत्याख्यानावरण ४ के बन्धक जीव विशेषाधिक है। शेष प्रकृतिके बन्धक जीव समानरूपसे विशेषाधिक है।

उपशमसम्यक्त्वमें – आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। आगेकी प्रकृतियोंमें अवधिज्ञानका भंग है।

विशेषार्थ—क्षायिक सम्यक्त्वमें, आहारक शरीरके बन्धकोंकी अपेक्षा देवायुके बन्धकोंको संख्यातगुणा कहा है। वेदक सम्यक्त्वमे आहारक शरीरके बन्धकोंकी अपेक्षा मनुष्यायुके बन्धकोंको संख्यातगुणा कहा है। उपशम सम्यक्त्वमे आयुका बन्ध नहीं होनेसे किसी भी आयुके बन्धकका कथन नहीं किया गया है। इन तीनों सम्यक्त्वोंकी विशेषता ध्यान देने योग्य है।

३४७. सासादनसम्यक्त्वमें – मनुष्यायुके बन्धक जीव सर्वस्तोक है। देवायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे है। देवगति, वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव विशेषाधिक है। अथवा असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे है। स्त्रीवेदके बन्धक जीव विशेषाधिक है। तिर्यंचगतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। नीच गोत्रके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

---

१ "णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण। गो० क०,१२० गाथा। उपशमसम्यग्दृष्टीना तिर्यग्मनुष्यगत्योर्देवायुषोर्नरकदेवगत्योर्मनुष्यायुषश्चाबन्धादुभयोपशमसम्यक्त्वे तद्द्वयस्याप्यभावात्।" –गो० क०,सं० टीका,पृ० ११८।

सेसाणं पगदीणं बंधगा जीवा सरिसा विसेसा०। सम्मामिच्छ०—सव्वत्थोवा देवगदि-बंधगा जीवा, वेउव्वि० बंधगा जीवा। साद-हस्स-रदि जस० बंधगा जीवा असंखे० गुणा। असाद-अरदि-सो० अज्ज० बंधगा जी० संखेज्जगु०। मणुसग० ओरालि० बंधगा जी० विसे०। सेसाणं पगदीणं बंधगा जीवा सरिसा विसे०। मिच्छादिट्ठि अब्भवसिद्धिभंगो।

३४८. सण्णीसु—सव्वत्थोवा आहार० बंधगा जीवा। मणुसायु-बंधगा जी० असंखे० गुणा। णिरयायु-बं० जीवा असंखे० गुणा। देवायु-बंधगा असंखे० गुणा। णिरयगदि-बंधगा जी० संखेज्जगुणा। तिरिक्खायुबंधगा जो० असंखे० गुणा। देवगदि-बंधगा जी० संखेज्जगु०। वेउव्वि० बंधगा जी० विसे०। उच्चागो० बंधगा जी० संखेज्जगु०। मणुसग० बंधगा जी० संखेज्जगु०। पुरिस० बंधगा जीवा संखेज्जगु०। इत्थिवे० बंधगा जी० सखेज्जगु०। जस० बंधगा जी० संखे० गु०। हस्स-रदि-बंधगा जी०

शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं।

विशेषार्थ—नरकायुकी बन्ध-व्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थानमें होनेसे सासादन गुणस्थानके वर्णनमें नरकायुका कथन नहीं आया है।

सम्यग्मिथ्यात्वमें – देवगतिके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव भी इसी प्रकार हैं। साता वेदनीय, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगति, औदारिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। शेष प्रकृतियोंके बन्धक जीव समान रूपसे विशेषाधिक हैं।

विशेषार्थ—मिश्रगुणस्थानमें आयुके बन्धका निषेध है–"मिस्सूणे आउस्स य" (गो० क० गा० ९२)। इससे यहाँ आयुके बन्धका वर्णन नहीं किया गया है। इस गुणस्थानमें मरणका निषेध है। मिश्रगुणस्थानके पूर्व जिस सम्यक्त्व या मिथ्यात्व भावमें आयु बन्ध हुआ था, उसी परिणाममें मरण होता है। कुछ आचार्य कथन करते हैं कि ऐसा नियम नहीं है।[1]

मिथ्यादृष्टिमें – अभव्य सिद्धिकोंके समान भंग हैं।

३४८. संज्ञीमें – आहारक शरीरके बन्धक जीव सर्वस्तोक हैं। मनुष्यायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। नरकायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवायुके बन्धक असंख्यातगुणे हैं। नरकगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। तिर्यंचायुके बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं। देवगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। वैक्रियिक शरीरके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। उच्च गोत्रके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्यगतिके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। पुरुषवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। स्त्रीवेदके बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। यशःकीर्तिके

---

१ "सम्मत्तमिच्छपरिणामेसु जहिं आउगं पुरा बद्ध।
तहिं मरण मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि॥" –गो० जी०, गा० २४।

विसे० । साद-बंधगा जीवा विसेसा० । उवरि मणजोगिभंगो । असण्णी-मिच्छादिट्ठि-भंगो । आहारा-ओघभंगो । अणाहारा-कम्मइगभंगो ।

एवं परत्थाण-जीव-अप्पाबहुगं समत्तं ।

बन्धक जीव संख्यातगुणे हैं। हास्य, रतिके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। साता वेदनीयके बन्धक जीव विशेषाधिक हैं। आगेकी शेष प्रकृतियोंमें मनोयोगीके समान भंग हैं। असंज्ञीमें[1] मिथ्यादृष्टिके समान भंग हैं।

आहारकमें – ओघके समान भंग हैं। अनाहारकोंमें – कार्मण काययोगीके समान भंग हैं।

इस प्रकार परस्थान जीव अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

१. "सण्णियाणुवादेण सव्वत्थोवा सण्णी। णेव सण्णी णेव असण्णी अणंतगुणा। असण्णी अणंतगुणा।
–खु० बं०, अप्पाबहु सू० २००–२०२, पृ. ५७३

[अद्धा-अप्पा-बहुगपरूवणा]

३४६. अद्धा-अप्पाबहुगं दुविहं । सत्थाण-अद्धा-अप्पाबहुगं चेव, परत्थाण अद्धा-अप्पाबहुगं चेव । सत्थाण-अद्धा-अप्पाबहुगं पगदं । दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण-एत्तो परियत्तमाणियाणं अद्धाणं जहण्णुक्कस्सपदेण एक्कदो कादूण चोद्दसण्णं जीवसमासाणं ओघियअप्पाबहुगं वत्तइस्सामो । चोद्दसण्णं जीवसमासाणं-सादासादं दोण्णं पगदीणं जहण्णियाओ बंध-गद्धाओ सरिसाओ थोवाओ । सुहुम-अपज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा । असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा

[अद्धा अल्प बहुत्व]

३४६ अद्धा-अल्पबहुत्वका अर्थ है कालसम्बन्धी हीनाधिकपना । यहाँ स्वस्थान-अद्धा-अल्प-बहुत्व तथा परस्थान-अद्धा अल्प-बहुत्वके भेदसे अद्धा-अल्प-बहुत्व दो प्रकारका है । स्वस्थान-अद्धा-अल्प बहुत्व प्रकृत है । उसका ओघ तथा आदेश-द्वारा दो प्रकारसे निर्देश करते हैं ।

ओघसे-यहाँ से आगे चौदह[1] जीवसमासोंमे ओघसम्बन्धी अल्प-बहुत्वका परिवर्तमान प्रकृतियोंके कालको जघन्य और उत्कृष्ट पदके द्वारा एक-एक करके, वर्णन करेंगे ।

चौदह जीव समासोंमे साता-असाता इन दोनों प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है ।

विशेष—सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय, इन सातोंमें-से प्रत्येकके पर्याप्त-अपर्याप्त भेद करनेपर चौदह जीव-समास होते हैं।[2] यहाँ वेदनीय २, वेद ३, हास्यादि ४, गति ४, जाति ५, शरीर २, संस्थान ६, संहनन ६, आनुपूर्वी ४, विहायोगति, त्रसस्थावरादि ४, स्थिरादि ६ युगल, अंगोपांग २, गोत्र २ ये परिवर्तमान प्रकृतियाँ जघन्य उत्कृष्ट कालके भेदसे चौदह जीवसमासोंमे वर्णित की गयी हैं ।

सूक्ष्म अपर्याप्तकमे साताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाताके बन्धक-

---

१. "अत्थि चोद्दस जीवसमासा । के ते ? एइंदिया दुविहा बादरा सुहुमा । बादरा दुविहा, पज्जत्ता, अपज्जत्ता । सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । बीइंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । तीइंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । चउरिंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । पंचिंदिया दुविहा सण्णिणो असण्णिणो । सण्णिणो दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता । असण्णिणो दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता इदि । एदे चोद्दस जीवसमासा, अदीदजीवसमासा वि अत्थि ।" –ध० टी० भा० २ पृ० ४१५, ४१६ ।

बादर-सुहमेइंदिय-बि-ति-चउरिंदिय-असण्णि-सण्णी य ।

पज्जत्तापज्जत्ता एवं ते चोद्दसा होंति । –गो० जी० ७२ ।

२. "पूर्णा पर्याप्ता:, अपूर्णाद्विका द्विधा – अपर्याप्ता – निवृत्त्यपर्याप्ता लब्ध्यपर्याप्ताश्चेति ।" –गो० जी० सं० टी० पृ० १६० ।

संखेज्जगुणा। तिरिक्खगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। बादर० वेदणीयभंगो। एवं याव सण्णि-असण्णि अपज्जत्तग त्ति वेदणीयभंगो। पंचिंदिय असण्णि-अपज्जत्तस्स (पज्जत्तस्स) देवगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। मणुसगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। तिरिक्खगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। णिरयगदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एवं पंचिंदिय-सण्णि-पज्जत्तस्स०। पंचण्णं जादीणं जहण्णियाओ बंधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ। सुहुम-अपज्जत्तस्स पंचिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। चदुरिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। तेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। बेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा।· एवं बादर-अपज्जत्ताणं। सुहुम-बादर-एइंदिय--पज्जत्ताणं च एवं चेव भंगो। बेइंदिय-अपज्जत्तस्स पंचिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। तेइंदियस्स-अपज्जत्तस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसाहिया। चदुरिंदिय-अपज्जत्तस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। एवं सेसाणं जादीणं। एवं पज्जत्ताणं च णेदव्वं। पंचिंदियं-सण्णि-असण्णि-अपज्जत्ता सुहुम-अपज्जत्तभंगो। पंचिंदिय-असण्णि-पज्जत्तस्स—चदुरिं० उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। तेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा।

हैं। सूक्ष्म अपर्याप्तकमें—मनुष्यगतिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। तिर्यंचगतिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। बादर-अपर्याप्तकमें—वेदनीयके समान भंग है। इसी प्रकार संज्ञी, असंज्ञी अपर्याप्तक पर्यन्त वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। पंचेन्द्रिय-असंज्ञी पर्याप्तकमें – देवगतिके बन्धकका उत्कृष्ट काल सख्यातगुणा हैं। मनुष्यगतिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। तिर्यंचगतिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। नरकगतिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पंचेन्द्रिय-संज्ञी-पर्याप्तकमें – पंचेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तकके समान जानना चाहिए।

पंचजातियोंके बंधकोंका जघन्य काल समानरूपसे स्तोक है। सूक्ष्म-अपर्याप्तकमें—पंचेन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। चौइन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। त्रीन्द्रियके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। दोइन्द्रियके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। एकेन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। बादर अपर्याप्तकमें इसी प्रकार भंग है। सूक्ष्म-बादर-एकेन्द्रिय-पर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

दोइन्द्रिय-अपर्याप्तकमें—पंचेन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। त्रीन्द्रिय अपर्याप्तकमें—पंचेन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। चौइन्द्रिय-अपर्याप्तकमें—पंचेन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। चौइन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, दोइन्द्रिय जाति, एकेन्द्रिय जातिके बन्धकोंका काल इसी प्रकार जानना चाहिए। इसी प्रकारका वर्णन दोइन्द्रिय पर्याप्तक, त्रीन्द्रिय-पर्याप्तक, चौइन्द्रिय-पर्याप्तकमें जानना चाहिए। पंचेन्द्रिय संज्ञी-असंज्ञी-अपर्याप्तकमें सूक्ष्म-अपर्याप्तकके समान भंग जानना चाहिए।

पंचेन्द्रिय-असंज्ञी पर्याप्तकमें—चौइन्द्रियके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है।

बेइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एइंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पंचिंदियस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एवं सण्णि-पज्जत्ता। दोण्णं सरीराणं जहण्णिगाओ बंधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ। सुहुम-अपज्जत्तस्स ओरालिय-सरीरस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एवं याव पंचिंदिय-असण्णि-सण्णि-[अ] पज्जत्तगत्ति। तेसिं चेव पज्जत्तेसु ओरालियसरीरस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। वेउव्वियसरीरस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एवं पंचिंदिय-सण्णि-पज्जत्तयस्स०। छस्संठाणं छस्संघडणं चदु-आणुपुव्वि-दो-विहायगदि-तसथावरादि०४-थिरादिछयुगलं सादासादाणं भंगो याव पंचिंदिय-असण्णि-सण्णि-पज्जत्तात्ति। णवरि पंचिंदिय-असण्णि-पज्जत्तस्स थावर० उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। तसस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एवं पंचिंदिय सण्णि-पज्जत्तस्स। एवं बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-पत्तेय-साधारणं कादव्वं। दो-अंगोवंगाणं सरीर-भंगो। दो-गोदं वेदणीय-भंगो।

३५२. आदेसेण-णेरइएसु दोण्णं जीवसमासाणं दोण्णं पगदीणं जहण्णियाओ बंधगद्धाओ सरिसाओ थोवा। अपज्जत्तयस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा।

त्रीन्द्रियके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। दोइन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। एकेन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पंचेन्द्रिय जातिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पंचेन्द्रिय-संज्ञी-पर्याप्तकमें—इसी प्रकार भंग है।

दोनों शरीरो—वैक्रियिक-औदारिक शरीरके बंधकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है। सूक्ष्म-अपर्याप्तकमे—औदारिक शरीरके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पंचेन्द्रिय-असंज्ञी-संज्ञी [अ]पर्याप्तक पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए। इसके ही पर्याप्तकोंमें अर्थात् पंचेन्द्रिय असंज्ञी-पर्याप्तकोंमे औदारिक शरीरके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। वैक्रियिक शरीरके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पंचेन्द्रिय-संज्ञी-पर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

६ संस्थान, ६ संहनन, ४ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, त्रस तथा स्थावरादि ४, स्थिरादि ६ युगलोंके विषयमे पंचेन्द्रिय असंज्ञी-संज्ञी-पर्याप्तक पर्यन्त साता, असाताके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, पंचेन्द्रिय-असंज्ञी-पर्याप्तकमे स्थावर प्रकृतिके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। त्रसके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय-संज्ञी-पर्याप्तकमें भी जानना चाहिए। बादर-सूक्ष्म-पर्याप्त-अपर्याप्त-प्रत्येक-साधारणमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। अर्थात् जिस प्रकार स्थावर तथा त्रसके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यात-गुणा कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी बादर, सूक्ष्मादिके बन्धकोंमें जानना चाहिए। दो अंगो-पांग अर्थात् औदारिक-वैक्रियिक अंगोपांगके बन्धकोंमें शरीरके समान भंग जानना चाहिए अर्थात् औदारिक, वैक्रियिक शरीरके बन्धकोंके समान इनके भग हैं। नीच, उच्च गोत्रके बन्धकों-में वेदनीयके सदृश भंग है।

३५२. आदेशसे—नारकियोंमे – पर्याप्तक, अपर्याप्तक रूप दो जीव समासोंमें साता-असाता इन दो प्रकृतियोंका जघन्य बन्धकाल समान रूपसे स्तोक है। अपर्याप्तक नारकीमें–

असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पज्जत्तस्स सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असादस्स उक्कसिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एवं तिण्णि-वेदाणं हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं दोगदि-छस्संठाणं छस्संघडणं दो-आणुपुव्वि-दोविहायगदि-थिरादिछ-युगलं दोगोदाणं च सादासादभंगो। एवं याव छट्ठित्ति। सत्तमाए एवं चेव। णवरि दोगदि-दोआणुपुव्वि-दोगोदाणं च णत्थि अप्पाबहुगं। तिरिक्[ख] गदि-णवुंसगवेद-मदिअण्णाणि - सुदअण्णाणि-असंजद-अचक्खुदंसणि - भवसिद्धिय-अब्भवसिद्धिय - मिच्छा-दिट्ठि-असण्णि-आहारग त्ति ओघभंगो। णवरि असण्णीसु बारस जीवसमासा त्ति भाणिदव्वं। पंचिंदिय-तिरिक्खेसु-चदुण्णं जीवसमासाणं कादव्वं। पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्तजोणिणीसु दोजीवसमासाणं भाणिदव्वं सण्णि-असण्णित्ति। पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तगेसु दोजीवसमासा सण्णि-असण्णित्ति। मणुसेसु–दो जीवसमासा। पज्जत्त-

सातोके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पर्याप्तक नारकोंमें-साताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाताके बन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, २ गति, (मनुष्य-तिर्यंचगति), ६ संस्थान, ६ संहनन, २ आनुपूर्वी, २ विहायोगति, स्थिरादि छह युगल तथा दो गोत्रोंके बन्धकोंमें साता, असाता वेदनीयके समान भंग जानना चाहिए। यह क्रम प्रथम पृथ्वीसे छठी पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए। सातवीं पृथ्वीमें—इसी प्रकार भंग है। विशेष, दो गति, २ आनुपूर्वी, २ गोत्रोंके बन्धकोंमें अल्पबहुत्व नहीं है।

विशेष—सातवीं पृथ्वीमे मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थानमें ही तिर्यंचगति, तिर्यंचानु-पूर्वी तथा नीच गोत्रका बन्ध होता है। तृतीय तथा चतुर्थ गुणस्थानमें ही मनुष्यगति, मनु-ष्यानुपूर्वी तथा उच्च गोत्रका बन्ध होता है। अतः इनके निमित्तसे सप्तम पृथ्वीमें अल्पबहुत्व-पना नहीं पाया जाता है।

तिर्यंचगति, नपुंसकवेद, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयमी, अचक्षुदर्शनी, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टी, असंज्ञी, आहारकमें ओघके समान भंग जानना चाहिए। विशेष, असंज्ञी जीवोंमें बारह जीवसमास कहना चाहिए।

विशेष—इनमें संज्ञी पर्याप्तक तथा संज्ञी अपर्याप्तक ये दो जीवसमास नहीं होते हैं।

पंचेन्द्रिय-तिर्यंचोंमें—संज्ञी, असंज्ञी तथा इन दोनोंके पर्याप्तक, अपर्याप्तक भेदरूप चार जीवसमास हैं।

पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-पर्याप्तक तथा पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-योनिमतियोंमें—संज्ञी तथा असंज्ञी ये दो जीवसमास कहना चाहिए। पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-अपर्याप्तकोंमें—संज्ञी तथा असंज्ञी ये दो जीवसमास हैं।

मनुष्योंमें—संज्ञी पर्याप्तक तथा संज्ञी-अपर्याप्तक ये दो जीवसमास हैं।

विशेषार्थ—मनुष्योंमें असंज्ञी भेद नहीं होता।[1] लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य भी संज्ञी ही

१ मनुष्यगतौ कर्मभूमौ आर्यखण्डे पर्याप्त-निवृत्त्यपर्याप्त-लब्ध्यपर्याप्तास्त्रयो जीवसमासाः। म्लेच्छखण्डे लब्ध्यपर्याप्तकाभावात् द्वौ जीवसमासौ। भोगभूमौ कुभोगभूमौ च द्वौ द्वौ जीवसमासौ तत्रापि लब्ध्यपर्याप्तका-भावात्। कर्मभूमौ मनुष्याणा आर्यखण्डे गर्भजेषु पर्याप्त निवृत्त्यपर्याप्तौ, संमूर्छिमे तु लब्ध्यपर्याप्त एवेति त्रय। —गो० जी०, सं० टीका, पृ० १६६।

जोणिणीसु एक्कं चेव। सादासादाणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा। सादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असादस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एदेण कमेण भाणिदव्वं। एवं मणुस-अपज्जत्ता। देवाणं-णिरयभंगो याव सहस्सार त्ति। णवरि भवणवासिय याव ईसाण त्ति। दोण्णं जादीणं तसथावरादीणं दोण्णं जीवसमासाणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा। अपज्जत्त-पंचिंदिय-तसस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। एइंदिय-थावरस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। तं चेव पज्जत्ते०। आणद याव उवरिम-गेवज्जा त्ति णेरइयभंगो। णवरि मणुसगदि०२ धुवं कादव्वं। अणुदिसादि याव सवट्ठत्ति-दोण्णं जीवसमासाणं दोवेदणीय-हस्स-रदि-अरदि-सोग-थिरादि-तिण्णियुगलं णिरयभंगो। सेसाणं णत्थि अप्पाबहुगं। एइंदिएसु-चदुण्णं जीवसमासाणं ओघभंगो। एवं बादर० दोण्ण०[ण्णं] जीवसमासाणं। सुहुम० दोण्णं जीवसमासाणं,बादर-पज्जत्त-अपज्जत्त-सुहुम-पज्जत्ता-पज्जत्तगेसु पत्तेगं पत्तेगं एगं जीवट्ठाणं।

होते हैं। भोगभूमि तथा कुभोगभूमिके मनुष्योंमे लब्ध्यपर्याप्तक भेद नहीं है। म्लेच्छ खण्डके मनुष्योंमे भी लब्ध्यपर्याप्तक भेद नहीं है। आर्य खण्डके कर्मभूमिज मनुष्योंमे पर्याप्त, निर्वृत्य-पर्याप्त तथा लब्ध्यपर्याप्त भेद कहे हैं। गर्भज कर्मभूमि या आर्य खण्डके मनुष्योंमे लब्ध्य-पर्याप्तक भेद नहीं है। सम्मूर्छन मनुष्य ही होते है।

मनुष्य-पर्याप्तक तथा मनुष्यनीमें—एक पर्याप्तक रूप ही जीवसमास है। साता-असाताके वन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है। साताके वन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाताके वन्धकका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। इस क्रमसे अन्य प्रकृतियों-के वन्धका काल जानना चाहिए।

मनुष्य-अपर्याप्तकोंमे—इसी प्रकार जानना चाहिए।

देवगतिमे—सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त नारकियोंके समान भंग है। विशेष, भवनत्रिक तथा सौधर्म ईशानमे त्रस-स्थावरादिके वन्धकोंका जघन्यकाल दोनों जीवसमासोंमे समान रूपसे स्तोक है। अपर्याप्तकोंमें पंचेन्द्रिय-त्रसका उत्कृष्ट वन्धकाल संख्यातगुणा है। एकेन्द्रिय-स्थावरका उत्कृष्ट वन्धकाल संख्यातगुणा है। पर्याप्तकोंमें पंचेन्द्रिय-त्रस तथा एकेन्द्रिय-स्थावरके वन्धकके विषयमे अपर्याप्तकोंके समान भंग है। आनतसे उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त-नारकियोंके समान भग है। विशेष यह है, कि यहाँ मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वीका ध्रुव भंग करना चाहिए। कारण वहाँ तिर्यंचगतिद्विकका वन्ध नहीं होता है। अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त-पर्याप्त अपर्याप्त रूप दोनों जीव समासोंमे—दो वेदनीय, हास्य-रति, अरति-शोक, स्थिरादि तीन युगलके वन्धकोंका नरकके समान भंग जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंमे अल्पबहुत्व नहीं है।

एकेन्द्रियोंमे—सूक्ष्म, वादर तथा इनके पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक रूप चार जीव-समास होते हैं, उनमे ओघवत् भग है। इसी प्रकार वादरमे पर्याप्त, अपर्याप्त रूप दो जीव-समास हैं। सूक्ष्ममे भी पूर्वोक्त पर्याप्त, अपर्याप्तमे दो जीवसमास हैं। वादर, पर्याप्त-अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त-अपर्याप्तमे प्रत्येक,प्रत्येकका एक जीवसमास है।

विशेष—एकेन्द्रियोंमे वादर, सूक्ष्म तथा इनके पर्याप्त,अपर्याप्त इस प्रकार चार पृथक्-पृथक् जीवसमास होते हैं।

एवं पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-णिगोदाणं। णवरि तेउ-वाऊणं मणुस-गदितियं णत्थि। वणप्फदि-काइय-छण्णं जीवसमासाणं। बादर-वणप्फदि-पत्तेय० दोण्णं जीवसमासाणं। विगलिंदि० दोण्णं जीवसमासाणं। पज्जत्तापज्जत्ताणं एक्कं चेव जीवसमासा। पंचिंदिएसु चदुण्णं जीवसमासाणं। पज्जत्ते दोण्णं जीवसमासाणं। अपज्जत्ते दोण्णं जीवसमासाणं। तसेसु-दस-जीवसमासाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं पंच जीवसमासाणं।

३५३. पंचमण० पंचवचि० वेउव्विय० वेउव्वियमिस्सका० [आहार] आहार-मिस्सका० कम्मइग० अवगद० कोधादि०४ सुहुमसांपराय-सासणसम्माइट्ठि-सम्मा-मिच्छाइट्ठि-अणाहारगत्ति णत्थि अप्पाबहुगं। कायजोगीसु-वेउव्वियछक्कं वज्ज सेसाणं ओघभंगो कादव्वो। एवं ओरालिय-कायजोगि-ओरालियमिस्स-कायजोगीसु। णवरि सत्तण्णं जीवसमासाणं त्ति भाणिदव्वं। इत्थिवेद-पुरिसवेदेसु-चदुण्णं जीवसमासात्ति

पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक तथा निगोदियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, तेजकायिक, वायुकायिकमें मनुष्यगति, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी तथा उच्चगोत्रका बन्ध नहीं होता है। वनस्पतिकायिकमें साधारण तथा प्रत्येक ये दो भेद हैं। इनमें-से प्रत्येकके पर्याप्त तथा अपर्याप्त ये दो भेद हैं। साधारणके बादर तथा सूक्ष्म ये दो भेद हैं। बादरके पर्याप्त तथा अपर्याप्त और सूक्ष्मके भी पर्याप्त तथा अपर्याप्त इस प्रकार वनस्पति-कायिकमें ६ जीव-समास हैं। बादर-वनस्पति प्रत्येकके पर्याप्तक, अपर्याप्तक ये दो जीव-समास हैं। विकलेन्द्रियके पर्याप्तक, अपर्याप्तक ये दो जीव-समास हैं। इनके पर्याप्तकों तथा अपर्याप्तकोंमें एक-एक जीव-समास हैं। पंचेन्द्रियोंमें चार जीव-समास हैं। पर्याप्तकोंमें संज्ञी और असंज्ञी ये दो जीव-समास हैं। अपर्याप्तकोंमें भी संज्ञी और असंज्ञी ये दो जीव-समास हैं।

त्रसोंमें—दस जीव समास हैं, पर्याप्तकोंमें पाँच अर्थात् दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय ये पाँच हैं तथा अपर्याप्तकोंमें भी पाँच जीव समास हैं। इस प्रकार दोनों मिलकर दस जीव-समास होते हैं।

३५३. ५ मनोयोगी, ५ वचनयोगी, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, [आहारक,] आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मण काययोगी, अपगतवेद, क्रोधादि ४ कषाय, सूक्ष्मसाम्पराय, सासादनसम्यक्त्वी, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अनाहारकमें अल्पबहुत्व नहीं है।

काययोगियोंमें—वैक्रियिकषट्कको छोड़कर शेष प्रकृतियोंका ओघवत् भंग करना चाहिए। औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगीमें—इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ सात जीव-समास करना चाहिए। अर्थात् औदारिककाययोगमें पर्याप्तकोंके सूक्ष्म-बादर-एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय ये सात भेद हैं तथा औदारिकमिश्रमें अपर्याप्तकोंके भी ये सात जीव-समास हैं।

स्त्रीवेदियों, पुरुषवेदियोंमें—पर्याप्त, अपर्याप्त भेद युक्त संज्ञी तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय ये चार जीव-समास कहना चाहिए।

भाणिदव्वं। विभंगे वेउव्विय-छक्कं तिण्णिजादि-सुहुम-अपज्जत्त-साधारणाणं णत्थि अप्पाबहुगं। सेसाणं देवभंगो। आभि० सुद० ओधिणाणीसु—दोण्णं जीवसमासाणं दोवेदणीय-चदु-णोकसाय-थिरादि-तिण्णि-युगलाणं ओघं। सेसाणं णत्थि अप्पाबहुगं। एवं ओधिदं० सम्मादिट्ठी-खइग-सम्मादिट्ठी-वेदग-सम्मादिट्ठी-उवसम-सम्मादिट्ठी त्ति। मणपज्जवणाणिओधिभंगो। णवरि एक्कं जीवट्ठाणं। एवं संजद-सामाइय-छेदोवट्ठावणं परिहार-संजदासंजद०। चक्खु-दंसणी तिण्णि जीवसमासाणि। तिण्णिलेस्सि० वेउव्विय-छक्कं पंचजादि-तसथावरादि०४ णत्थि अप्पाबहुगं। सेसाणं णिरय-भंगो। तेउलेस्सि०—देवगदि०४ वज्ज सेसाणं देवोघभंगो। एवं पम्माए। णवरि सहस्सार-भंगो। सुक्काए-आणद-भंगो। सण्णिस्स दोण्णं जीवसमासाणं ओघं।

एवं सत्थाणं अद्धा अप्पाबहुगं समत्तं। एवं पत्तेगेण णीदं।

विभंगावधिमे—वैक्रियिकषट्क, तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्तक-साधारणके बन्धकोंमे अल्पबहुत्व नहीं है। शेष प्रकृतियोंके विषयमे देवगतिके समान भंग है।

आभिनिबोधिक-श्रुत-अवधिज्ञानियोमे—पर्याप्तक, अपर्याप्तकरूप दो जीव-समास है। इनमे दो वेदनीय, चार नोकषाय, स्थिरादि तीन युगलके बन्धकोंमे ओघवत् जानना चाहिए। शेष प्रकृतियोंमे अल्पबहुत्व नहीं है।

अवधिदर्शन, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टिमे—इसी प्रकार जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानीमे—अवधिज्ञानके समान भंग है। विशेष, यहाँ संज्ञी पर्याप्तकरूप एक ही जीव स्थान है।

संयमी, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि संयतासंयतोंमे—मनःपर्ययज्ञानके समान एक जीव-स्थान है। चक्षुदर्शनीमे—चौइन्द्रिय पर्याप्तक तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक एवं असंज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तक ये तीन जीव-समास हैं।

कृष्ण-नील-कापोत-लेश्याओंमे—वैक्रियिकषट्क,५ जाति, त्रस स्थावरादि ४के बन्धकोंमे अल्पबहुत्व नहीं है। शेष प्रकृतियोंमे नरकगतिके समान भंग हैं।

तेजोलेश्यामे—देवगति ४ को छोडकर शेष प्रकृतियोंके विषयमे देवोके ओघवत् भंग है।

पद्मलेश्यामे—इसी प्रकार भंग है। विशेष यह है कि यहाँ सहस्रार स्वर्गके समान भंग है।

शुक्ललेश्यामे—आनत स्वर्गके समान भंग है।

संज्ञीमे—पर्याप्तक, अपर्याप्तक ये दो जीव-समास है। उनमे ओघवत् जानना चाहिए।

इस प्रकार स्वस्थान अद्धा-अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।
इस प्रकार प्रत्येक रूपसे वर्णन किया।

[परत्थाण-अद्धा-अप्पाबहुगपरूवणा]

३५४. एत्तो परत्थाण-अद्धा-अप्पाबहुगेण पगदं। एत्तो परियत्तमाणियाणं अद्धाणं जहण्णुक्कस्सेण पदेण एकदो कादूण ओघियं परत्थाण-अद्धा-अप्पाबहुगं वत्तइस्सामो। आयुगवज्जाणं सत्तारस पगदीणं जहण्णियाओ बंधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ। चदुण्णं आयुगाणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा संखेज्जगुणा। उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। देवगदिउक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। उच्चागोदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। मणुसग० उक्कस्सिया बंधगद्धा संखे० गुणा। पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। इत्थिवेदस्स उक० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। सादावे० हस्सरदि-जसगित्तिस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। तिरिक्खगदि-उक्कस्सि० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। णिरयग० उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। असाद-अरदि-सोग-अजसगित्ति० उक्कस्सि० बंधगद्धा विसेसा०। णवुंसगवेदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा विसेसा०। णीचागोदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०।

३५५. एवं ओघभंगो तिरिक्खा-पंचिंदिय-तिरिक्ख, पंचिंदिय-तिरिक्ख-पज्जत्त,

---

[परस्थान-अद्धा-अल्पबहुत्व]

३५४ अब परस्थान-अद्धा अल्पबहुत्व प्रकृत है। यहाँ से परिवर्तमान प्रकृतियोंके कालको जघन्य तथा उत्कृष्ट पद-द्वारा पृथक्-पृथक् करके ओघसम्बन्धी परस्थान-अद्धा-अल्पबहुत्व कहेंगे।

विशेष—यहाँ परिवर्तमान प्रकृतियोंका परस्थानमें जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थानों-द्वारा अल्पबहुत्वका प्रतिपादन करते हैं। यहाँ ४ गति, ३ वेद, २ गोत्र, २ वेदनीय, ४ आयु, हास्य-रतियुगल तथा यशःकीर्तियुगल इन २१ प्रकृतियोंका ओघ तथा आदेशसे जघन्य, उत्कृष्ट कालका अल्पबहुत्व वर्णन किया गया है।

चार आयुको छोड़कर (पूर्वोक्त) सत्रह प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे अल्प है। ४ आयुके बन्धकोंका जघन्य काल सदृश रूपसे संख्यातगुणा है। उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। देवगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। उच्चगोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। मनुष्यगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पुरुषवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। सातावेदनीय, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। तिर्यंचगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। नरकगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यात गुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट-काल विशेषाधिक है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। नीच गोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है।

३५५. तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि-

पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीसु-मणुस०३ पंचिंदिय-तस०२ इत्थि० पुरिस० णवुंस० मदिअण्णाणि० सुदअण्णाणि० असंजद० चक्खुदं० अचक्खुदं० भवसिद्धि० अब्भवसिद्धि० मिच्छादि० सण्णि-असण्णि-आहारगत्ति।

३५६ आदेसेण—णेरइएसु-आयुगवज्जाणं पण्णारसण्णं पगदीणं जहण्णियाओ बंधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ। दोण्णं आयुगाणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा संखेज्ज-गुणा। उक्क० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। उच्चागोदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखेज्ज-गुणा। मणुसगदि-उक्कस्सि० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पुरिसवेदस्स उक्कस्सि० बंध-गद्धा संखेज्जगुणा। इत्थिवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। साद-हस्स-रदि-जस० उक्कस्सि० बंधगद्धा विसेसा०। णवुंसग-वेदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। असाद-अरदि-सोग-अजस० उक्कस्सि० बंधगद्धा विसेसा०। तिरिक्ख-गदि-उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। णीचागोदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। एवं छसु पुढवीसु०। सत्तमाए आयुग-वज्जाणं एक्कारसण्णं पगदीणं जहण्णि-याओ बंधगद्धाओ सरिसाओ थोवाओ। तिरिक्खायु-जहण्णिया बंधगद्धा संखेज्ज-

---

मतियोंमे, मनुष्य, मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यनी, पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, त्रस, त्रस-पर्याप्तक, स्त्री-वेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्यसि-द्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारकमे ओघवत् भंग जानना चाहिए।

३५६ आदेशसे, नारकियोंमे—आयुको छोड़कर १५ प्रकृतियोंके बन्धकोंका समान रूप-से स्तोककाल है।

विशेष—यहाँ पूर्वोक्त २१ प्रकृतियोंमें-से चार आयु तथा नरकगति, देवगतिको घटाने-से शेष १५ प्रकृति रहती है। नरकगति, देवगतिका बन्ध नारकियोंके नही पाया जाता है। (गो० क०, गा० १०५)।

मनुष्यायु, तिर्यंचायुके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे संख्यातगुणा है। उत्कृष्ट बन्धकोंका काल संख्यातगुणा है। उच्चगोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। मनुष्य-गतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पुरुषवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धकों-का उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। तिर्यंचगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। नीच गोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है।

इस प्रकार छह पृथ्वियोमें जानना चाहिए।

सातवीं पृथ्वीमे—आयुको छोड़कर ११ प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है।

विशेष—नारकियोंकी सामान्यसे १५ प्रकृतियाँ हैं। उनमे-से मनुष्यगति, तिर्यंचगति तथा दो गोत्रको घटानेसे ११ शेष रहती है। इसका कारण यह है कि सातवे नरकमे मनुष्य-गति तथा उच्चगोत्रका बन्ध सम्यक्त्व, मिथ्यात्व तथा अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमे ही होता

गुणा। उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। पुरिसवेदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा संखेज्जगुणा। इत्थिवेदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। साद-हस्स-रदि-जस० उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। णवुंसगवेदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखेज्जगुणा। असाद-अरदि-सोग-अज्जस० उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा०। पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तेसु-आयुगवज्जाणं पण्णारसण्णं पगदीणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा। दोण्णं आयुगाणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा संखेज्जगुणा। उक्कस्सि० बंधगद्धा सरिसा संखे० गुणा। उच्चागोदस्स उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। मणुस० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा। पुरिसवे० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा। इत्थिवे० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा। साद-हस्स-रदि-जस० उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। असाद-अरदि-सोग० अज्ज० उक्कस्सि० बंधगद्धा संखे० गुणा। णवुंसगवे० उक्कस्सि० बंधग० विसेसा०। तिरिक्खग० उक्कस्सिया

है, मिथ्यात्व, सासादनमें नहीं होता। प्रथम, द्वितीय[1] गुणस्थानमें ही तिर्यंचगति तथा नीच गोत्रका बन्ध होता है। इस प्रकार ये चार प्रकृतियाँ परिवर्तमान नहीं रहती है। कारण, प्रतिपक्षी प्रकृतियोंका अभाव हो जाता है।

तिर्यंचायुके बन्धकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है। उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पुरुषवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है।

पञ्चेन्द्रिय-तिर्यंच-अपर्याप्तकोंमें—आयुको छोड़कर पन्द्रह प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य-काल समान रूपसे स्तोक है।

विशेष—पञ्चेन्द्रिय-तिर्यंच-लब्ध्यपर्याप्तकोंमें नरकगति तथा देवगतिका बन्ध नहीं होता है[2]। इस कारण आयुको छोड़कर शेष बची १७ प्रकृतियोंमें-से दो घटानेपर पन्द्रह प्रकृतियाँ रह जाती हैं।

मनुष्य-तिर्यंचायुके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे संख्यातगुणा है। दोनों आयुओंके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। उच्चगोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। मनुष्यगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। पुरुषवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल

---

१. "मिस्साविरदे उच्चं मणुवदुगं सत्तमे हवे बंधो।
मिच्छा सासणसम्मा मणुवदुगुच्चं ण बंधंति॥"–गो० क०,१०७।

२ "सामण्ण-तिरियपंचिंदियपुण्णगजोणिणीसु एमेव।
सुरणिरयाउ अपुण्णे वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि॥"–गो० क०,१०९।

बंधग० विसेसा० । णीचागोदस्स उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा० । एवं सव्व-अपज्जत्ताणं तसाणं सव्वएइंदि० सव्वविगलिंदि० सव्वपुढवि० आउ० वणप्फदिणिगोदाणं च ।

३५७. देवेसु—भवणवासिय याव ईसाण त्ति पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्त-भंगो । सणक्कुमार याव सहस्सार त्ति णिरयभंगो । आणद याव उवरिमगेवज्जात्ति-आयुग-वज्जाणं तेरसण्णं पगदीणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा । आयु० जहण्णिया बंधगद्धा संखे० गुणा । उक्क० बंधग० संखे० गुणा । उच्चागो० उक्क० बंधग० संखे० गुणा । पुरिसवे० उक्क० बंधग० संखे० गुणा । इत्थिवे० उक्क० बंधग० संखे० गुणा । साद० हस्स-रदि-जस० उक्कस्सिया बंधगद्धा विसेसा० । णवुंसवे० उक्क० बंधग० संखे० गुणा । असाद-अरदि-सो० अज्ज० उक्क० बंधग० विसेसा० । णीचागो० उक्क० बंधग० संखे० गुणा । अणुदिस याव सव्वट्ठत्ति—आयुगवज्जाणं अट्ठण्णं पगदीणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा । आयुग० जह० बंधगद्धा संखेज्जगुणा । उक्क० बंधग० संखे० गुणा । साद-हस्सरदि-जस० उक्क० बंधग० संखे० गुणा । असाद-अरदि-सो० अज्जस० उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा ।

विशेषाधिक है । तिर्यंचगतिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नीच गोत्रके बन्धकों-का उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है ।

सर्व अपर्याप्तक त्रसों, सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व पृथ्वीकाय-अप्काय तथा वनस्पतिनिगोदोंका इसी प्रकार भंग जानना चाहिए ।

३५७ देवोंमे—भवनवासियोंसे ईशान पर्यन्त पंचेन्द्रिय-तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान भंग है । सनत्कुमारसे सहस्रारपर्यन्त नरकगतिके समान भंग है । आनतसे उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त आयुको छोडकर १३ प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है ।

विशेष—आनतादि स्वर्गोंमे केवल मनुष्यगतिका बन्ध होता है । अतः परिवर्तमान १७ प्रकृतियोंमें-से गतिचतुष्क घटा ली गयीं । इस प्रकार १३ प्रकृतियाँ शेष रहीं ।

मनुष्यायुके बन्धकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है । उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । उच्चगोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । पुरुषवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । साता, हास्य, रति, यशः-कीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यात-गुणा है । असाता, अरति, शोक, अयश कीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है । नीचगोत्रके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।

अनुदिशसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त आयुको छोड़कर आठ प्रकृतियोंके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है ।

विशेष—अनुदिशादि स्वर्गोंमें सम्यग्दृष्टि जीव ही होते हैं । उनके नीच गोत्र, स्त्रीवेद तथा नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता है । अतः गोत्रद्वय तथा तीन वेदनिमित्तक परिवर्तन न होनेसे आनतादिकी १३ प्रकृतियोंमें-से ५ प्रकृतियाँ घटानेपर ८ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं ।

मनुष्यायुके बन्धकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है । उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है । असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है ।

३५८. तेउ० वाउ०--आयुगवज्जाणं एक्कारसण्णं पगदीणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा। आयु० जहण्णिया बंधगद्धा संखे० गुणा। [उक्क० बंधग० संखे० गुणा।] पुरिसवे० उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा। इत्थिवे० उक्कस्सि० बंधग० संखे० गुणा। साद-हस्स-रदि-जस० उक्क० बंधग० संखे० गुणा। असाद-अरदि-सो० अजस० उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा। णवुंस० उक्क० बंधगद्धा विसेसा०। पंचमण० पंचवचि० वेउव्वि० वेउव्वियमि० आहार० आहारमि० कम्मइग० अवगदवे० कोधादि०४ सासण० सम्मामि० त्ति साधेदूण णेदव्वं। णवरि कोधा०४ कसायाणं साधेदूण णेदव्वं। कसायकालो थोवो। उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा। ओरालि० ओरालिमि० पंचिंदिय-तिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो। विभंगे--णिरयभंगो। आभि० सुद० ओधि० आयुगवज्जाणं अट्ठण्णं पगदीणं जहण्णिया बंधगद्धा सरिसा थोवा। आयु० जह० बंधगद्धा संखे० गुणा। उक्क० बंधगद्धा संखे० गुणा। साद-हस्स-रदि-जस० उक्क० बंधग०

---

३५८. तेजकाय, वायुकायमे--आयुको छोड़कर ११ प्रकृतियोके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है।

विशेष--अनुदिशसम्बन्धी पूर्वोक्त आठ प्रकृतियोंमे अर्थात् हास्य, रति, अरति, शोक, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, साता, असातामे वेदत्रयको जोडनेसे ११ प्रकृतियाँ होती हैं। यहाँ वेदत्रयका बन्ध होनेसे परिवर्तमान प्रकृतियोंमे उनको परिगणित किया है।

तिर्यंचायुके बन्धकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है। [उत्कृष्ट बन्धकाल संख्यातगुणा है।] पुरुषवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। स्त्रीवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। साता, हास्य, रति, यशःकीर्त्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्त्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। नपुंसकवेदके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक है।

५ मनोयोगी, ५ वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकआहारकमिश्रयोगी, कार्मणकाययोगी, अपगतवेद, क्रोधादि चार कषाय, सासादनसम्यक्त्वी, सम्यक्मिथ्यात्वीमें परिवर्तमान प्रकृतियोंके बन्धकोंका बन्धकाल निकालकर जान लेना चाहिए। विशेष-क्रोधादि चार कषायोंमें विचार करके भंग जानना चाहिए। कषायका काल स्तोक है। बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है।

औदारिक तथा औदारिकमिश्रकाययोगके--पंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा अपर्याप्तकके समान भंग हैं।

विभंगावधिमें--नरकगतिके समान भंग है अर्थात् वहाँ १५ प्रकृतियाँ हैं। आभिनिबोधिक-ज्ञान, अवधिज्ञानमें--आयुको छोड़कर शेष ८ प्रकृतियोके बन्धकोंका जघन्य काल समान रूपसे स्तोक है।

विशेष--यहाँ साता, हास्य, रति, अरति, शोक, असाता, यशःकीर्त्ति, अयशःकीर्त्ति ये ८ परिवर्तमान प्रकृतियाँ हैं।

आयुके बन्धकोंका जघन्य काल संख्यातगुणा है। उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है।

संखे० गुणा। असाद-अरदि-सोग० अज० उक्कस्सिया बंधगद्धा संखे० गुणा। एवं मणपज्जव०। णवरि दो-आयुगाणं भाणिदव्वं(व्वे) एक्कं चेव भाणिदव्वं।

३५९. संजदा-सामाइ० छेदो० परिहार० संजदासंजद० मणपज्जव० भंगो। ओधिदं० ओधिणाणिभंगो।

३६०. किण्णणीलकाउलेस्सि० णिरयभंगो। तेउ०-देवोघं। पम्म०-सहस्सार-भंगो। सुक्कले०-आणदभंगो।

३६१. सम्मादिट्ठी-खइग० वेदग० उवसम० ओधिणाणि-भंगो। णवरि उवसम० आयुगाणं णत्थि अप्पाबहुगं।

३६२. आहाराणुवादेण-आहारा मूलोघं। अणाहारा-कम्म (?) कम्मइ० का-जोगि-भंगो।

एवं परत्थाण-अद्धा-अप्पाबहुगं समत्तं।

एवं पगदिबंधो समत्तो।

साता, हास्य, रति, यशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। असाता, अरति, शोक, अयशःकीर्तिके बन्धकोंका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है। मनःपर्ययज्ञानमें—इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष, यहाँ बन्धकोंमे दो आयुके स्थानमें एक देवायुका ही बन्ध कहना चाहिए।

३५९. संयत, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि तथा संयतासंयतोंमें-मनः-पर्ययवत् भंग है।

अवधिदर्शनमें—अवधिज्ञानका भंग है।

३६०. कृष्ण-नील-कापोत लेश्यामे—नरकगतिके समान भंग है। तेजोलेश्यामें—देवोंके ओघवत् है। पद्मलेश्यामे—सहस्रार स्वर्गके समान भंग है। शुक्ललेश्यामे—आनत-स्वर्गका भंग है।

३६१. सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टिमें—अवधि-ज्ञानके समान भंग है। विशेष, उपशमसम्यक्त्वमें आयुकृत अल्पबहुत्व नहीं है।

विशेष—सम्यग्दृष्टिके मनुष्य अथवा देवायुका ही बन्ध होता है, उपशम सम्यक्त्वमें—इन दोनोंका ही बन्ध नहीं होता है।[1]

३६२. आहारानुवादसे—आहारकोंमें मूलके ओघवत् जानना चाहिए। अनाहारकमें-कार्मण काययोगवत् जानना चाहिए।

इस प्रकार परस्थान-अद्धा-अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

इस प्रकार प्रकृतिबन्ध समाप्त हुआ।

---

१ "णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेण।"—गो० क०, गा० १२०।